जाम्भा पुराण

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

फाल्गुन बदी अमावस्या को मुकाम मेला लगा हुआ था। विशाल हवन हो रहा था, शब्दों का सस्वर पाठ हो रहा था। बिश्नोई भक्त-संत शुभ समय का लाभ उठा रहे थे। मुकाम के अति निकट हिमटसर गाँव में संतों की जमात ने आकर आसन लगाया था। प्रात:कालीन शुभ वेला में मुकाम मन्दिर से शब्दों की ध्वनि हिमटसर में संतमण्डली के कानों में गुंजायमान हुई। उन संत मण्डली में बालक वील्होजी ने ध्यानपूर्वक सुना। वह अधिकारी बालक आकर्षित हुआ। कर्णप्रिय शब्दों को सुनकर अपने अन्य साथी साधुओं से पूछा कि इधर जो शब्दों की ध्वनि आ रही है, वह क्या है? साथी साधु तो अनजान थे। कुछ भी नहीं बता सके। किन्तु उसी गाँव की एक वृद्धा स्त्री ने बताया कि इधर जहाँ से शब्दों के ध्वनि आ रही है, उधर **जाम्भा द्वारा** है।

वील्होजी अभी अन्धे थे। आँखों से भी तथा ज्ञान से भी। अपने साथियों से कहने लगे-मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ से आवाज आ रही है। मैं अपने आप को रोक नहीं पा रहा हूँ। मुझे अब वहाँ जाना ही पड़ेगा। मेरी सोई हुई आत्मा, संस्कार जाग गये हैं। साथी साधुओं ने वील्होजी संत की भावना देखी और मुकाम मंदिर तक पहुँचा दिया।

वील्होजी ने पहली बार हवन-ज्योति का साक्षात्कार किया था तथा वेदवाणी शब्दों का श्रवण किया था। शब्द श्रवण एवं ज्योति दर्शन से वील्होजी के अन्तर एवं बाह्य दोनों नेत्र खुल गये थे और वाह-वाह कहने लगे थे। प्रथम बार शब्द श्रवण करने से ही 120 शब्द कण्ठस्थ हो गये थे तथा पुन: दोहराने लगे थे। वहाँ पर उपस्थित साधु श्री नाथोजी, उधवजी आदि ने वील्होजी को जाम्भोजी का उत्तराधिकारी जानकर जो पोशाक सफेद चादर,चोलो,टोपी एवं माला जाम्भोजी ने धरोहर रूप में रखी थी, वह वील्होजी को प्रदान करके नाथोजी ने अपना शिष्य बना लिया। जाम्भोजी द्वारा कहे गये 120 शब्द-मंत्र आदि नाथोजी को याद थे। उन्हीं को वील्होजी ने धारण किया तथा आगे प्रचार-प्रसार किया।

वील्होजी ने अपने साथियों से कहा कि मैं तो अब यही रहूँगा। मुझे मेरा स्थान मिल गया है। आप लोग स्वेच्छा से जा सकते हैं। वील्होजी ने अपने गुरु नाथोजी से गुरुमंत्र लिया और पंथ के बारे में तथा जाम्भोजी के बारे में अपने गुरु नाथोजी से वार्तालाप करते हुए पूछा कि-हे गुरुदेव! इस असार संसार सागर में युक्तिपूर्वक जीवन एवं मुक्ति किस प्रकार से हो सकती है? मैं जहाँ तक समझता हूँ, इस प्रकार से अज्ञान अन्धकार के रहते हुए सतपंथ तो दिखाई भी नहीं पड़ता है। आप हमें संसार सागर से पार उतरने के लिए दृढ़ नौका प्रदान कीजिए। यह बिश्नोई पंथ है, जिसमें मैं आपकी कृपा से सम्मिलित हुआ हूँ। क्या यह मुझे सच्चे घर पहुँचा देगा? यह पंथ कब और कैसे चला? यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ? इस पंथ के स्वामी भगवान श्री जाम्भोजी ही हमारे सतगुरु हैं। उन्हीं के बारे में यदि विस्तार से जान सकूँ, तो मैं अनन्त खुशी प्राप्त कर

सकूंगा। इन्हीं सभी प्रश्नों के बारे में आप से अधिक ज्ञाता आचार्य इस समय मुझे कोई नहीं दिख रहा है।

हे गुरुदेव! आप सदा ही अति निकट रहे हैं। आपने परमेश्वर का सान्निध्य सुख प्राप्त किया है। जाम्भोजी के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा उनके साथ ले जाने में समर्थ नहीं हो सकी, इसका कारण क्या है?

आप अपने प्राणों के चले जाने पर भी अभी जीवित रहकर कुछ शून्य में निहार रहे हैं। लगता है कि आप किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या आपको गुरु महाराज ने जीवन धारण करने का आदेश दिया था। इसलिए आप अनमने मन से जीवन जी रहे हैं। जाम्भोजी आपको अपनी धरोहर शब्दवाणी, समर्पित करके गये हैं। आप उसकी सुरक्षा कर रहे हैं, तथा किसी अधिकारी शिष्य को प्रदान करना चाहते हैं। यदि मैं इस धरोहर को सम्भालने में सक्षम अधिकारी हूँ, तो आप मुझे प्रदान कीजिये। मैं आपकी कृपा से इसका विस्तार करूँगा। कंजूस की भांति आपकी विद्या को संकुचित नहीं करूँगा। मैंने जो कुछ भी जानना चाहा है, या अनभिज्ञता के कारण आप से जानने की प्रार्थना नहीं की है, वह सभी यदि कहने योग्य हो तथा मुझे अधिकारी समझते हो तो कहने की कृपा करें।

नाथोजी कहने लगे- हे शिष्य! यह संसार तो चलायमान है। यहाँ की कोई वस्तु स्थिर नहीं है। जाम्भोजी महाराज ने बतलाया था कि **अनेक-अनेक चलंता दीठा, कलि का माणस कौन विचारूं** यहाँ पर सदा-सदा के लिए रहने की कोशिश मत करो।

युक्तिपूर्वक जीवन जीने से ही मुक्ति हो सकती है। मुक्ति का अर्थ है कि जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाना, भगवान् के पास ही विराजमान हो जाना या भगवान् के लोक तक पहुँच जाना अथवा भगवान् के पास पहुँचने की योग्यता प्राप्त कर लेना। कुल मिलाकर के यह कहा जा सकता है कि पुन: जन्म नहीं होगा तो मृत्यु कहाँ से होगी? यह मुक्ति तो सदाचार जीवन जीने से संभव है। युक्तिपूर्वक जीवन जीने की कला विश्नोई सतपंथ में बतलाई, अन्यत्र दुर्लभ है। **जां जीवन की विधि जांणी।** जीने की कला से ही युक्त यह जीवन है एवं सतपंथ है।

वील्होजी ने सतपंथ की बात श्रवण करके पूछा कि - हे गुरुदेव! यह सतपंथ क्या जम्भदेवजी ने ही चलाया था या इससे पूर्व भी था? यदि प्रथम बार ही जाम्भोजी ने पंथ स्थापना की है, तो कब व किस काल में उदय हुआ और यदि इससे पूर्व भी यदि पंथ की स्थापना हो चुकी थी, तो सर्वप्रथम इस पंथ का प्रकाशक कौन था? आप कृपा करके इस युक्तिमुक्ति दाता पंथ के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिए। मैं आपकी वार्ता श्रवण करते हुए तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ। उत्तरोत्तर मेरी जिज्ञासा बलवती होती जा रही है।

नाथोजी आचार्य बोले- हे शिष्य! तुमने ये महत्वपूर्ण सवाल पूछकर इस सतपंथ के बारे में जानने की जिज्ञासा प्रकट की है। गुरु जाम्भोजी द्वारा बताये गये मार्ग का मैं अनुयायी हूँ। मुझे इस पंथ पर चलने में आनन्द की अनुभूति होती है। वह आनन्द मैं अधिकारी शिष्य को प्रदान करना चाहता था। अब मुझे तुम्हारे जैसा सुपात्र अधिकारी शिष्य मिल गया है। मैं तुझे प्रत्येक बात विस्तार से बतलाऊँगा। ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

बिश्नोई पंथ एवं प्रहलाद

समय बड़ा ही बलवान है। हम लोग इस काल को चार विभागों में बाँटते हैं। वैसे तो काल-समय बाँटा ही नहीं जा सकता है। फिर भी काल गणना की सुविधा के लिए सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग प्रसिद्ध है। 17 लाख 28 हजार वर्षों का सतयुग, 12 लाख 96 हजार वर्षों का त्रेतायुग, 8 लाख 64 हजार वर्षों का द्वापर युग तथा 4 लाख 32हजार वर्षों का कलयुग होता है।

सतयुग सृष्टि के आदि का है। इस युग में शरीर धारी भगवान् विष्णु प्रकट होते हैं। वही निराकार विष्णु जब सृष्टि का प्रारम्भ, स्थिर एवं विनाश करना चाहते हैं, तब सर्वप्रथम विष्णुरूप में प्रकट होते हैं। उन्हीं शेषशायी भगवान् विष्णु की नाभि से कमल प्रकट होता है। उसी कमल में ब्रह्मा बीज रूप से प्रगट होते हैं। वह ब्रह्मा सृष्टि के रचियता हैं। स्वयं विष्णु सृष्टि के पालन-पोषण करते हैं। शिव रूप से सृष्टि का संहार करते हैं। एक ही सत्ता के तीन नाम प्रसिद्ध हैं, क्योंकि कार्य तीन ही करते हैं। भगवान् की इच्छा का खेल ही यह सम्पूर्ण सृष्टि है।

ब्रह्माजी से मरीचि ऋषि हुए तथा मरीचि के कश्यप हुए। कश्यप के दो पत्नियाँ थी-दिति और अदिति। अदिति के जो संतानें हुई वे आदित्य देवता कहलाए तथा दिति से जो संतानें हुई वे दैत्य कहलाई। बड़ी विचित्र बात है कि पिता एक ही किन्तु संतान दैत्य और आदित्य। अपने स्वभाव गुणों से राक्षस एवं देवता बन गये। इसी समय भी प्राय: ऐसा ही हो रहा है।

वील्होजी ने पूछा कि- हे गुरुदेव! यह कैसे संभव हुआ कि एक पिता देव-दानवों का होते हुए भी संतान में एकता क्यों नहीं हो सकी? क्या माता-पिता भी अपनी प्रिय संतानों में भेदभाव रखते हैं?

नाथोजी उवाच- माता-पिता तो अपनी संतानों में भेदभाव नहीं रखते, किन्तु संतानों का जन्म, कर्म एवं भाग्य अपने-अपने साथ ही पैदा होता है। इसमें जन्म भी कारण बन जाता है। बच्चा जब अपनी माँ के गर्भ में प्रवेश करता है, वह समय भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान देता है। एक समय की बात है कि जब कश्यप ऋषि ध्यान में बैठे थे, उसी समय उनकी धर्मपत्नी दिति उपस्थित हुई और उन्होनें अपने पति से ऋतुदान की याचना की। ऋषि संध्या के लिए तैयार थे, किन्तु पत्नी इस कुवेला में ऋतुदान की याचना कर रही थी।

ऋषि ने अपनी पत्नी को बहुत प्रकार से समझाया कि यह वेला ऋतुदान की नहीं है। यह तो संध्या वेला है। इस समय तो परमात्मा का ध्यान, जप, ब्रह्मचर्य पालन एवं हवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त **(कांयरे मूर्खा तैं पालंग सेज निहाल बिछायो)** यह विपरीत कार्य नहीं करना चाहिए। इस समय राक्षस लोग भ्रमण करते रहते हैं। उनसे आकृष्ट हो जावोगी। मर्यादा का उल्लंघन करोगी, तो तुम्हारे होने वाली संतान राक्षस ही होगी।

दिति कामातुर थी। उसने ऋषि की बात का उल्लंघन किया। ऐसे समय में गर्भ में जो बालक आया था, वह राक्षस ही स्वभाव से था। ऋषि ने कहा हे दिति! तुम्हारे जो संतान होगी, वह राक्षस ही होगी, क्योंकि तुमने नियम को तोड़ा है। सम्पूर्ण सृष्टि नियम से ही चलती है। जहाँ नियम टूट जाता है, वहीं उपद्रव एवं विनाश उपस्थित हो जाता है। दिति ने अपने पति कश्यप के वचनों को सुना और घबरा गयी। अब क्या हो सकता है? बेटा राक्षस हो जाए तो माँ के दु:ख का कोई पार नहीं होता। दिति ने प्रार्थना करते हुए कहा हे पतिदेव!

इस पाप का प्रायश्चित कैसे होगा ? ऋषि ने ध्यान लगाया और देखा कि दिति के गर्भ में जो बच्चा है, वह तो राक्षस ही होगा, किन्तु इसका पुत्र तथा हमारा पौत्र होगा, वह ईश्वर का परमभक्त होगा। तीन लोकों को जीतने वाला होगा। इसलिए देवी तुम निश्चिंत हो जाओ। परमात्मा को स्मरण करो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा। समय आने पर दिति के गर्भ से दो जुड़वाँ बालक पैदा हुए। प्रथम बालक हिरण्याक्ष तथा दूसरा बालक हिरण्यकश्यपु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके संसार में आते ही बहुत सारे अपशकुन होने लगे। दुनिया दु:ख से त्राहि-त्राहि करने लगी। माता दिति ने तो अपने पुत्र के जन्म अवसर पर खुशी ही मनाई थी। क्योंकि माँ के तो अपने बेटे ही सर्वस्व होते हैं। चाहे कैसे भी क्यों न हो ?

वील्होजी ने पूछा- हे गुरुदेव! कुछ वर्ष पूर्व ही तो सृष्टि की संरचना हुई थी। इस प्रथम शुभवेला में ये दो राक्षस कैसे पैदा हो गये ? ये दोनों कौन थे ? जो इस प्रकार से जन्म लेकर दुनिया को दु:ख देने के लिए तैयार थे, आप तो इनके पूर्व की जन्म की कथा वृतान्त अवश्य ही जानते होंगे, क्योंकि सद्गुरु जाम्भोजी भगवान् के आप अतिनिकट रहे हैं। यदि इस विषय में आप जानते हैं तो अवश्य ही बतलाने का कष्ट करें।

नाथोजी कहने लगे- हे शिष्य! भगवान् विष्णु का वैकुण्ठ प्रसिद्ध है। सदा ही वहाँ भगवान् चतुर्भुजी पालनपोषण कर्ता, विराजमान रहते हैं। उस धाम में पहुँचने के लिए योगी लोग सदा ही ध्यान, ज्ञान, पूजा-अर्चना करते हैं। उसी धाम में जाने के लिए एक बार सनकादिक चारों भाई जो सदा ही पाँच वर्षों की अवस्था में रहते हैं, जाने के लिए तैयार हुए। जब पाँचवें दरवाजे से प्रवेश करने लगे, तब वहाँ पहले से ही उपस्थित जय और विजय नाम के पहरेदारों ने अन्दर प्रवेश करने से रोक दिया। सनकादिकों का आदर-सत्कार करना चाहिये था। किन्तु उन्हें अप्रिय शब्दों द्वारा फटकारते हुए कहने लगे- तुम लोग विष्णुपुरी में प्रवेश करने योग्य नहीं हो। तुम्हारा कुरूप तथा दिगम्बर ही वेश है। तुम वस्त्र ही धारण करना नहीं जानते। विष्णुपुरी में प्रवेश कैसे कर सकते हो ? वैसे तो सनकादिक पूर्ण ज्ञानी थे। उन्हें मान-अपमान से कुछ भी लेना देना नहीं था। फिर भी उन परहेदारों को अनधिकारी मानकर उन्हें उनके कर्तव्य का बोध कराया और कहा-जय विजय! तुम दोनों मृत्युलोक में जाओ। वहाँ जाकर अपनी दुष्टता प्रकट करो। यहाँ तो सज्जन व्यक्ति का होना चाहिये। तुम्हारा यहाँ क्या काम है ? तुम लोग मृत्युलोक में जाकर राक्षस बन जाओ! यही कारण था कि जय-विजय को मृत्युलोक में आना पड़ा और राक्षस बनकर अपना समय पूरा करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

भगवान् विष्णु सदा ही अपने प्रिय भक्तों के सहायक हैं। सनकादिकों का ही समर्थन किया और कहा- इन संतों के वचन ही प्रमाण हैं। जय-विजय ने बहुत प्रकार से प्रार्थना की और कहा- हे देव! हमने भूल की है तथा हम क्षमा माँगते हैं। इन परम ऋषियों के वचन प्रमाण हैं। हे विष्णो! हमारा वापिस आना कब और कैसे होगा, आप कृपा करके अतिशीघ्र ही हमें वापिस बुलाइयेगा।

भगवान् ने कहा- तुम्हें जीवन जीना है। मृत्युलोक में, किन्तु खेल की तरह ही। यदि इस संसार में खेल को सत्य मानकर इसमें लिप्त हो गये, तो वापिस आने में बहुत ही देर लग जायेगी। तुम सावधान रहना। भूल मत करना। किन्तु तुम्हारे वश की बात कहाँ है ? तुम तो अवश्य ही करतूत करोगे। संसार में सहयोग की भावना से तुम्हारा जीना मुझे दिखलाई नहीं दे रहा है। इसलिए तुम विरोधी जीवन जीओगे। तुम्हारे बराबर का अन्य कोई शत्रु तुम्हें नहीं मिलेगा, तो तुम मुझ विष्णु से ही विरोध ठानकर अपनी ताकत का प्रदर्शन करोगे। इसलिए तीसरे जन्म में तुम्हारा आगमन हो सकेगा और यदि सहयोग भाव, भक्ति, श्रद्धा से जीवन जीओगे तो सात जन्म वापिस आने में लग सकते हैं। क्योंकि विरोधी भी अपने शत्रु को याद रखता है, मित्र भी अपने

मित्र को याद रखता है। प्रेमी मित्र तो अपने सुहृदय प्रिय को भूल जाता है, किन्तु शत्रु कभी भूलता नहीं है। दिन-रात, आठों पहर याद रखता है। यह ध्यान की तीव्रता एवं मन्दता पर निर्भर है। इसलिए जय-विजय तुम दोनों मृत्युलोक में जाओ। इन संतों का शाप शिरोधार्य करो तथा तीन जन्मों को पूरा करके वापिस लौट आओ।

इतनी बातें कहते ही जय-विजय का दैविक शरीर लोप हो गया। मृत्युलोक में कश्यप की पत्नी दिति के गर्भ से दो बच्चे हुए, उनका नाम हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यपु रखा गया, जो सृष्टि के आदि में भयंकर राक्षस भगवान के विरोधी हुए।

शिष्य वील्हा ने अपने गुरु नाथोजी से पूछा-हे गुरुदेव! यह जानने की मेरी प्रबल इच्छा है कि जय-विजय ने इस धरती पर आकर क्या उपद्रव किया, जिससे भगवान को अवतार लेना पड़ा? क्या भगवान् अपनी इच्छा मात्र से ही राक्षसों का विनाश करने में सक्षम नहीं हो सकते? क्योंकि भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। उनके लिए तो कुछ भी अकरणीय नहीं है। भगवान स्वयं ही ऐसा क्यों करते हैं? आप मेरे इस संशय को निवृत्त कीजिए।

नाथोजी अपने परम शिष्य से इस प्रकार कहने लगे- हे शिष्य! पहली बात तो यह है कि भगवान स्वेच्छा से ही अवतरित होते हैं। अपना स्वयं का अनेक रूपों में परिवर्तन कर लेना तो उनकी अपनी इच्छा ही है। दूसरी बात यह है कि भक्तों की श्रद्धा भगवान् के प्रति बढ़े इसलिए भगवान् निराकार से साकार रूप में आकर साक्षात् दर्शन, स्पर्श एवं वार्तालाप करते हैं, जिससे भक्तों की निष्ठा दृढ़ हो सके। राक्षसों के अभिमान को भी भगवान् प्रकट होकर चूर-चूर कर देते हैं। अन्यथा उन्हें भी कैसे पता चले कि हमारे से ऊपर कोई और भी सत्ता विद्यमान है। हम तो उसकी एक कला की बराबरी भी नहीं कर सकते। वरदान या श्राप के कारण भी भगवान स्वयं आकर अपने वचनों को पूरा करते हैं तथा अपना कर्त्तव्य निभाते हैं। सृष्टि का कालचक्र यथावत चलता रहे, जीओ और जीने दो, के सिद्धांत को भगवान स्वयं आकर स्थित करते हैं।

सभी का पालन-पोषण होवे, उसमें कोई विघ्न उपस्थित करे, तो भगवान् से सहन नहीं होता। वे स्वयं झटिति किसी भी रूप में प्रकट हो जाते हैं और अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं। जैसे माँ अपने शिशु के कष्ट को स्वयं अपने ऊपर लेकर, सभी प्रकार से रक्षा करती है। भगवान् कहीं माता, तो कहीं पिता तथा भाई-बन्धु-सहायक का पाठ अदा करते हैं।

हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यपु ये दोनों बड़े ही उपद्रवकारी थे। जहाँ-तहाँ देखो, दूसरों को दुःख देने में ही अपना सुख मानते थे। हिरण्याक्ष तो बड़ा ही वीर था। हाथ में गदा-शस्त्र लेकर पृथ्वी पर भ्रमण के लिए निकल पड़ा और युद्ध के लिए ललकारने लगा था। हिरण्याक्ष की भीषण हुँकार का जवाब देने वाला कोई नहीं था। वह किससे लड़े? दूसरों को दुःख दिये बिना उसे चैन नहीं पड़ता था। इस पृथ्वी पर उसे बराबरी का कोई मिला ही नहीं, जिससे युद्ध कर सके। भगवान विष्णु ही एक योद्धा हैं, जो युद्ध में उसे आनन्द दे सके। किन्तु विष्णु उसे कहाँ मिले और कब मिले तथा कब अपनी ताकत का आजमाईश कर सकूँ।

विष्णु नहीं मिले तो क्या हुआ? विष्णु की बनाई हुई यह कृति धरती है। इससे ही छेड़खानी की जाये। विष्णु स्वयं ही अपनी दुर्दशा देखकर आ जायेंगे और मैं अपनी इच्छा युद्ध करके पूर्ण करूँगा। ऐसा विचार करके हिरण्याक्ष ने सम्पूर्ण धरती को जल में डुबाने का प्रयास प्रारम्भ किया। धरती पर जल ही जल कर दिया जाये जिससे न तो अन्न पैदा होगा और न ही कहीं पर मनुष्यों को रहने की जगह मिल सकेगी। लोग दुःखी होंगे। विष्णु से पुकार करेंगे। रोयेंगे-चिल्लाएंगे, तब कहीं भगवान विष्णु आयेंगे। तब मुझे अपनी इच्छा

पूरी करने का अवसर मिलेगा। यही किया हिरण्याक्ष ने। धरती को जल में डुबो दिया। ब्रह्मादि देवता भगवान् विष्णु से पुकार करने लगे। विष्णु ने प्रकट होकर देवताओं को दर्शन दिया। उन्हें धैर्य बंधाया कि तुम लोग चिंता मत करो, मैं पहले से ही तैयार हूँ। जब पाप का घड़ा भर जायेगा, तब फूटेगा। अभी फूटने ही वाला है। देवता लोग अपने-अपने स्थान पर लौट आये।

भगवान् विष्णु ने अपनी प्रकृति-माया को वशीभूत करके, अपनी ही इच्छा से देश-काल परिस्थिति के अनुसार शूकर का रूप धारण किया और पुष्कर में धरती को जल से ऊपर उठाते हुए प्रकट हुए। वहीं पर पाताल लोक से पीछे-पीछे दैत्य हिरण्याक्ष आ रहा था। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। भगवान् ने पृथ्वी को जल से बाहर निकाला। पृथ्वी को अन्न पैदा करने की योग्यता प्रदान की और उजड़े हुए लोगों को पुनः बसाया। दैत्य से भयंकर युद्ध किया और उसे मार गिराया। देवताओं ने जय-जयकार की। दुष्ट राक्षस हिरण्याक्ष को भगवान् ने शूकर रूप धारण करके मार दिया। भगवान् ने यह बड़ी विचित्र लीला की।

पुत्र का इस प्रकार मारा जाना सुनकर दिति शोक से व्याकुल हो गयी। अपने दूसरे बेटे को पास में बुलाकर कहने लगी- बेटे! अब तो तुम ही मेरे एक सहारे हो। मेरे लाल! तुम्हारे भाई को तो साक्षात् विष्णु ने ही शूकर रूप धारण कर मारा है। वह विष्णु के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गया है। अब तुम्हें भी वही कार्य करना चाहिये, जो तुम्हारे भाई ने किया। जब तक विष्णु जिन्दा रहेगा, तब तक तुम्हें भी सुख से नहीं जीने देगा। अपने कुल परिवार की अभिवृद्धि भी नहीं होने देगा। तुम ऐसा कार्य करो कि तुम्हारा जन्मजात शत्रु मारा जाये और तुम निष्कटंक होकर राज्य करो। किन्तु विष्णु के जीवित रहते हुए यह असंभव है। अब तो तुम्हारा बैरी। विष्णु बन ही गया है। तुम्हारा भाई हिरण्याक्ष अप्रतिम वीर था। जो सम्पूर्ण धरती को तोलता था। उसकी हत्या शूकर रूप धारण कर विष्णु ने ही की है। अन्यथा एक मामूली सा शूकर जानवर तुम्हारे भाई को कैसे मार सकता है ? हमारे किये हुए कार्य पर तो विष्णु ने पानी फेर ही दिया। अब हमें भी शान्त नहीं रहना चाहिये। हमें भी विष्णु के कर्त्तव्यों पर पानी फेर देना चाहिये।

अपनी माता की बात सुनकर पहले तो हिरण्यकश्यपु कुछ घबराया। किन्तु धैर्य धारण करके अपनी माता को धीरज बंधाते हुए कहने लगा- हे मात! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मुझे अपनी जान की बाजी लगा देनी पड़े तो भी पीछे नहीं हटूँगा। पहले विष्णु को मारूँगा, फिर अन्न-जल ग्रहण करूँगा।

ऐसा कहते हुए दैत्यराज हाथ में गदा लेकर विष्णु को मारने के लिए वैकुण्ठ धाम की तरफ अबाध गति से चल पड़ा। भगवान् विष्णु ने देखा कि दैत्यराज बड़े ही क्रोध से भरकर युद्ध करने की इच्छा से आ रहा है। इस राक्षस को अब तक यह पता नहीं है कि भविष्य में क्या होने वाला है ? भगवान् तो जानते थे कि अब तो युद्ध को टालना है। जब युद्ध का समय आयेगा, तो अवश्य ही युद्ध होगा। अब तक समय नहीं आया है। इस समय तो इसे शांत करना चाहिये। ऐसा विचार करके भगवान् विष्णु हिरण्यकश्यपु के हृदय में प्रवेश कर गये। अब दैत्य तो भगवान् को बाहर देखता है, किन्तु विष्णु तो दैत्य के हृदय में प्रवेश कर गये हैं। कैसे मिलेंगे ? जहाँ पर है, वहाँ पर तो खोजता नहीं है। जहाँ पर नहीं है, वहाँ पर खोजता है। यही सभी की विडम्बना है।

भगवान वैकुण्ठ में मिले नहीं, दैत्य वापिस लौट आया। अपने साथियों की सभा बुलाई और कहने लगा-भाई लोगो ? यह बतलाओ कि आततायी विष्णु कैसे मरे ? सभी दैत्यों ने मिलकर विचार किया-इस प्रकार से प्रत्यक्ष युद्ध में मायावी विष्णु मारे नहीं जा सकते। उनको मारने का एक ही उपाय है जिससे जीवित विष्णु तुरंत मारे जा सकते हैं। केवल डाली-पत्तों में पानी डालने से पेड़ हरा भरा नहीं हो सकता। जब तक

कि उसके मूल में सिंचाई न की जावे। ये देवता तो डाली-पत्तों की तरह हैं। इन सभी का मूल तो विष्णु है। स्वयं विष्णु तो सभी का मूल है। उनका मूल, कोई नहीं है। मूल रूप विष्णु को काटने से डाली रूप देवता स्वयं ही कट जायेंगे।

सर्व मूल रूप विष्णु को मारने का एक ही उपाय हो सकता है कि विष्णु की बनाई हुई मर्यादा को मिटा दिया जावे। इससे विष्णु मरे हुए के समान ही हो जाएगा। जो लोग हवन-पूजा, पाठ,शास्त्र-अध्ययन, भजन-कीर्तन तथा नियमों का पालन करते हैं, ये ही विष्णु के मूल हैं। इन्हें ही बन्द करवा दिया जावे। इससे विष्णु स्वत: कमजोर हो जायेंगे। यदि जीयेंगे तो भी मरे हुए जैसे शक्तिविहीन हो जायेंगे। तब तो अपना ही आदेश-राज्य चलेगा। हम स्वयं ही भगवान्-सम्राट बन जायेंगे। विष्णु तथा उनके चाटुकार देवताओं को मार गिरायेंगे। हम ही एकछत्र साम्राज्य करेंगे हमारे ही विधि विधान इस लोक में चलेंगे।

ऐसा विचार करते हुए सभी दैत्य एकत्रित हुए और गाँव-नगरों को चारों तरफ से घेर लिया। विष्णु की मर्यादा उठवा दी और अपनी राक्षसी मर्यादा स्थापित करने का प्रयास होने लगा। स्वयं हिरण्यकश्यपु अपने साथियों को इस कार्य के लिए नियुक्त कर वन में तपस्या करने के लिए चला गया।

हिरण्यकश्यपु ने ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। ब्रह्माजी हमारे पितामह हैं। वही हमें वरदान देकर शक्तिसम्पन्न बनायेंगे। दिव्य शत वर्षों तक घोर तपस्या की। ब्रह्माजी प्रसन्न हुए तथा वरदान माँगने को कहा-तब हिरण्यकश्यपु ने अपनी तपस्या का फल साक्षात प्रगट देखा और कहने लगा- मैं आपका पौत्र प्रणाम करता हूँ यदि आप मेरी तपस्या से प्रसन्न हो गये हैं, तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये जिससे मैं अजर अमर हो जाऊँ। ब्रह्माजी ने कहा **तथास्तु**! ऐसा ही होगा। किन्तु हे तपस्वी ! मैं तुम से यह जानना चाहता हूँ कि इस तेरी माँग का क्या अर्थ है ? जरा मुझे खोलकर बताओ ताकि मैं तुम्हें ठीक से जो तुम माँगो, वही दे सकूँ।

प्रसन्नता से प्रफुल्लित दैत्यराज माँग दुहराते हुए कहने लगा- सुनो ! मैं दिन में नहीं मरूँ, रात्रि में भी नहीं मरूँ,मैं अन्दर भी नहीं मरूँ, बाहर भी नहीं मरूँ, नर से भी नहीं मरूँ, नारी से भी नहीं मरूँ, घाव से भी नहीं मरूँ, शस्त्र से भी नहीं मरूँ, देव से भी नहीं मरूँ, दैत्यों से भी नहीं मरूँ। हे प्रभु ! आप यदि मेरे पर प्रसन्न हो गये हैं, तो इनमें से मुझे कोई नहीं मार सके। ऐसी व्याख्या सुनकर ब्रह्माजी ने वरदान दिया और अन्तर्ध्यान हो गये।

हमारा राजा वरदान लेकर, शक्ति सम्पन्न होकर वापिस लौटा है। ऐसी वार्ता सुनकर दैत्यों की खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा और दिनों दिन अपराध को बढ़ावा देने लगे। यह सभी कुछ उस सृष्टि के नियंता-परमेश्वर की इच्छा से हो रहा था। किन्तु दैत्य इस बात को समझने में असमर्थ थे। जिससे दिनों-दिन उपद्रव बढ़ते ही जा रहे थे।

वील्होजी ने पूछा- हे गुरुदेव ! तब तो यह सिलसिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा होगा ? दुनिया में त्राहि-त्राहि मच गयी होगी। तब तो भगवान् को अवतार लेना था। दैत्य वंश का विनाश करना था। भगवान् सर्वज्ञ होते हुए भी न जाने इतनी देर क्यों करते हैं ? यह भगवान् के द्वारा कैसी परीक्षा, जिससे तबाही मचती हो ?

नाथोजी महाराज बोले हे शिष्य ! भगवान एक कार्य को एक ही बार करते हैं। दुबारा उसकी नकल कभी नहीं करते। अबकी बार तो कुछ नया करना था। इस बार तो भगवान् स्वयं नहीं आये, किन्तु पहले अपने भक्त को यहाँ पर भेजा था। भक्त एवं भगवान् में कितना गहरा सम्बन्ध है। भक्त के लिए भगवान आते

हैं। यह बताने के लिए ही तो प्रथम प्रह्लाद को भगवान ने हिरण्यकश्यपु की पत्नी कयाधु के गर्भ में भेजा था तथा यह बताया कि मैं पीछे आऊँगा, पहले तुम जाकर भक्ति को दृढ़ करो। हिरण्यकश्यपु के अपराध को पराकाष्ठा तक पहुँचा दो।

फिर भगवान ने कहा-मेरा आना ठीक होगा। पिता राक्षस, बेटा भक्त देवता, कैसा यह मोहमाया का जाल? बाप-बेटे का सम्बन्ध, किन्तु वैचारिक मतभेद से किस प्रकार भक्ति का अंकुर फूटेगा और पनप सकेगा। यही परीक्षा है। जिसमें उत्तीर्ण हो जाये, तो समझो असली भक्त है।

माता कयाधु के गर्भ से हिरण्यकश्यपु के पुत्र के रूप में प्रह्लाद ने जन्म ले लिया। तीनों लोकों में खुशी का ठिकाना नहीं रहा। सम्पूर्ण प्रकृति खिल उठी, बाजे बजने लगे। मंगल गीत गाये जाने लगे। माता-पिता, कुटुम्बी जनों को यह आभास हुआ कि हमारे कुल दीपक आ गये हैं। अब हमारा कुल आगे बढ़ेगा। प्रह्लाद ही हमारे सर्वेसर्वा होंगे। देवता एवं भक्तजनों को भी अपार खुशी हुई। एक दूसरे को बधाइयाँ बाँटने लगे। अपने कुल-दीपक आ गये हैं। ठण्डी-ठण्डी हवा आती है, तो पीछे मेघ भी अवश्य ही आते हैं। प्रथम भक्त आये हैं तो पीछे अवश्य हमारे प्राणों के प्यारे भगवान् भी आयेंगे।

वील्हा ने अपने गुरु देव नाथाजी से पूछा-हे गुरु देव! आपने तो सुना ही होगा कि प्रह्लाद ने बहुत ही दु:ख उठाया, किन्तु अपने पिता की आज्ञा नहीं मानी। ऐसा क्यों हुआ? माता-पिता की आज्ञा तो पुत्र को आँखें मूँद करके भी माननी चाहिए? प्रह्लाद को भगवान् की भक्ति की तरफ अग्रसर करने में किसका सहयोग था? ऐसा माना जाता है कि वहाँ उस समय तो असुरों का ही साम्राज्य था। भगवान् की भक्ति के तो वे लोग विरुद्ध ही थे। प्रह्लाद भक्त की पढाई-लिखाई कहाँ, किस प्रकार से हुई? जिससे प्रह्लाद के अंदर सोया हुआ बीज अंकुरित हो सका। अन्य भी बाल सुलभ लीलाएँ जो प्रह्लाद ने की थी, उनका विवेचन करें? मेरे मन में प्रभु परमात्मा एवं आत्मा के मिलन की कथा सुनने की अति जिज्ञासा है।

आपके अमृतमय वचनों से मैं तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ। ऐसे जिज्ञासु शिष्य के वचनों को श्रवण करके गुरु जांभोजी विष्णु के परम भक्त-आचार्य नाथोजी ने विस्तार पूर्वक प्रह्लाद की कथा कहते हुए इस प्रकार से बोले-देखिए! इस असार संसार की क्या नियति है यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परमात्मा किसके द्वारा क्या करवाना चाहते हैं, यह कहना अति कठिन है। फिर भी अपनी मति के अनुसार ही ऋषि महात्मा जन अपनी-अपनी बात कहते हैं। जिस कथा में भगवान् का परम पवित्र चित्रण न हो, उसे कथा ही नहीं कहना चाहिए और जिस व्यक्ति ने भगवान् की परम पवित्र लीला का श्रवण नहीं किया, उसका संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है।

जब प्रह्लाद बड़ा हो गया, तो माता-पिता ने प्रह्लाद को पाठशाला में पढने के लिए भेजा। दैत्य गुरु शुक्राचार्य को बुलाया और प्रह्लाद का हाथ गुरु के हाथ में सौंप दिया, और हिरण्यकश्यपु निश्चिंत हो गया। शुक्राचार्य ने अपने बेटे शण्ड और अमर्क से कहा कि प्रह्लाद को नीति और आसुरी विद्या सिखलाओ। अन्य दैत्य बालकों की भाँति प्रह्लाद को भी विद्या पढाना प्रारम्भ किया। प्रह्लाद ने प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान श्रवण किया।

प्रह्लाद तो राज कुमार था। वह कोई सामान्य बालक तो नहीं था। अब तक प्रह्लाद की सोयी हुई आत्मा- धर्म जाग्रत भी नहीं हुआ था। ज्ञान तो बीज रूप में था। उस बीज को फलने-फूलने के लिए हवा,जमीन,पानी,मौसम आदि चाहिए था, वह प्राप्त नहीं था।

संयोग वश एक दिन प्रह्लाद घोड़े पर सवार हो कर नगर भ्रमण को निकला था। अपने पिता की राज्य

व्यवस्था एवं प्रभाव देखने के लिए। एक जगह गरीब की झोंपड़ी के पास से होकर प्रह्लाद गुजर रहा था। उसी समय ही प्रह्लाद के कानों में ओम् की ध्वनि-विष्णु का नाम जप सुनाई पड़ा। प्रह्लाद ने प्रार्थना के उद्गार अपने पिता के राज्य में प्रथम बार ही सुना था। प्रह्लाद का घोड़ा वहीं रुक गया। आगे नहीं बढ़ सका। प्रह्लाद तत्काल घोड़े से नीचे उतर गया और झोंपड़ी में जाकर देखा तो दो व्यक्ति, पति-पत्नी आसन पर बैठे हुए भगवान् के नाम का जप कर रहे थे। वह उनकी ही ध्वनि थी।

अचानक प्रह्लाद के आ जाने पर जप नहीं रुका, किन्तु डर के मारे मौन भाव से। प्रह्लाद ने कहा-डरो मत। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि पूर्व में जो नाम की ध्वनि आ रही थी वह अब शांत क्यों? यदि कोई परमात्मा है, तो फिर डर क्यों? किसलिए यह नाम जप हो रहा है? क्या मेरे पिता के अतिरिक्त भी ईश्वर जैसी सत्ता हो सकती है, जिसका तुम नाम लेते हो। तुम्हें जो कुछ चाहिए, वह मेरे पिता राजा से ले सकते हैं। राजा ही ईश्वर होता है। कहिए क्या विपत्ति आई है?

उन दम्पति ने डरते-काँपते हुए कहा-हे राजकुमार! क्षमा करें। हमारी भूल हुई है। हमने आपके पिता का नाम एवं शरण छोड़ कर उस परम पिता परमात्मा की शरण ली है। हम तो कुम्हार हैं। मिट्टी के बर्तन बनाना हमारा कर्म है। हम अपनी ही भूल का पछतावा कर रहे हैं। हमने बरतन पकाने के लिए निहाई (आवा) में रख दिए और आग लगा दी। पूरा ईंधन समाप्त हुए बिना आग ठंडी कैसे होगी? भूल से अंदर रहे हुए बिल्ली के छोटे बच्चे जल कर मर जाएँगे। उन्हें ईश्वर के बिना कौन बचाएगा? हे राजकुमार! जलती अग्नि से इन्हें न तो तुम बचा सकोगे, न ही हम और न ही तुम्हारे पिताजी। केवल एक पालन-पोषण कर्ता भगवान् विष्णु ही रक्षा कर सकता है। हमें घोर पाप से उबार सकता है। हम तो उन्हीं का स्मरण-भजन कर रहे हैं। अब आप हमें चाहे मारो या उबारो, यह आप पर ही निर्भर है।

प्रह्लाद को भी यह वार्ता प्रिय लगी और कहा-तब ठीक है। आप अवश्य ही परमात्मा-विष्णु का स्मरण कीजिए। किन्तु एक बात अवश्य ही सुनलो- मैं भी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहूँगा। जब तुम्हारे बर्तन पक जाएँ, तो पहले मुझे बुला लेना। फिर निहाई खोलना। मैं बिल्ली के बच्चों को जिंदा अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ। अब तो मैं अपने घर जाता हूँ। आप लोग जितना प्रयत्न करना चाहें वह कर लेना। यदि ईश्वर-विष्णु रक्षा नहीं कर सका तो मैं आपको मृत्यु-दण्ड दूँगा। घाणी में पिलवा दूँगा। ऐसे कहते हुए प्रह्लाद अपने घर लौट गया।

इधर कुम्हार दम्पत्ति निश्चिंत होकर एक मन एक चित्त से भगवान् का स्मरण करने लगे। हार्दिक पुकार करने लगे। भगवान् बचाएँगे, तो ये निरीह प्राणी तथा हम भी बच जाएँगे। अन्यथा तो सभी का मरना निश्चित है। एक सप्ताह तक निरंतर हरि का स्मरण-पुकार की और सातवें दिन नियम से बर्तन पक गये तथा ठण्डे भी हो गये। निहाई खोलने का समय उपस्थित हुआ। प्रथम प्रह्लाद को बुलाया गया और उनके सामने ही बर्तन निकालने प्रारम्भ किए गए।

बिल्कुल पके हुए बर्तन निकलते जा रहे हैं। प्रह्लाद एक दृष्टि से निहार रहे हैं। वह चमत्कार न जाने कब होगा? उसकी प्रतीक्षा में खड़े हुए हैं। प्रह्लाद के देखते हुए वह समय शीघ्र ही उपस्थित हुआ और प्रह्लाद ने देखा- बाहर तो सभी बरतन पके हुए हैं, किन्तु बीच में कुछ बर्तन अभी कच्चे हैं। उन बर्तनों को उठाया, तो बिल्ली के बच्चे खेलते हुए दौड़ कर बाहर आये। यह देखकर कुम्हार दम्पत्ति को खुशी का ठिकाना ही न रहा। भगवान् को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। प्रह्लाद की उदारता का भी गुण-गान किया।

प्रह्लाद ने अपने छोटे से जीवन में यह प्रथम छोटी सी अलौकिक घटना प्रत्यक्ष देखी थी। आश्चर्य

चकित नेत्रों से देखता ही रह गया। यह देख कर वापिस घर लौट आया। बाल हृदय पर जो अमिट प्रभाव पड़ा, वही अंत तक निकल न सका। प्रह्लाद का जीवन ही बदल गया। अब तो सर्वत्र ईश्वर का ही दर्शन होने लगा। माता-पिता तो केवल जन्म दाता हैं। किन्तु यह विचित्र कार्य करने वाला तो कोई और ही होगा, जिसका प्रमाण मैंने प्रत्यक्ष देखा है। बालक प्रह्लाद विद्या पढ़ने को गुरु स्थान-पाठशाला में तो अवश्य ही जाता, किन्तु गुरु के बताए हुए वचनों की तरफ ध्यान नहीं देता। बार बार गुरु उसे सम्बोधित करते हुए कहते-हे बालक प्रह्लाद तू अभी छोटा है, तुम्हें पता नहीं है, जैसा हम पढाते हैं, वैसा पढो।

असुरों की विद्या पढ लीजिए, जिससे सम्पूर्ण विघ्नों का नाश हो जाएगा। तुम्हें ही तो राजा बनना है। यदि हमारी बात पर अब ध्यान नहीं दोगे, तो बाद में पछतावोगे। यदि तुम्हारे पिता को इस बात का पता चल गया, तो वे हमें भी मारेंगे और तुम्हें भी मार गिरायेंगे।

प्रह्लाद ने अपने गुरु की एक बात भी नहीं मानी। उल्टा समझाते हुए कहा-हे गुरु जनो। आप मुझे क्षमा करें। आप जो मुझे विद्या सिखाना चाहते हैं, उस विद्या की मुझे आवश्यकता ही नहीं है। जो कुछ मुझे जानना था वह मैंने जान लिया है। अब कुछ भी मेरे लिए जानना शेष नहीं है। मेरे तथा तुम्हारे भी माता-पिता गुरु-बंधु जन, सभी कुछ वह विष्णु परमात्मा ही हैं। उसी एक को जानने से सभी कुछ जान लिया जाता है। और यदि उस एक को ही नहीं जाना, तो तुमने कुछ भी नहीं जाना। अन्य सभी बातें जानना व्यर्थ है। जिस देही में प्राण ही नहीं है, वह तो स्वतः मृत है। सभी ज्ञानों का प्राण स्वरूप ज्ञान तो ईश्वरीय ज्ञान ही है। वही तो मुझे प्राप्त हो चुका है। जो व्यक्ति खेती तो करता है, हल चलाता है, किन्तु उसमें बीज नहीं बोता है, वह खेती व्यर्थ है। उसी प्रकार से बिना भगवद् ज्ञान के अन्य ज्ञान तो व्यर्थ ही समझो। आप लोग तो पुस्तकों की देखी बात करते है। किन्तु मैं अपनी आँखों देखी कहता हूँ। इसमें संदेह कहाँ है ?

जब गुरु जन प्रह्लाद की वार्ता श्रवण करके अनमने मन से घर चले गये, तब अन्य बालकों ने प्रह्लाद से पूछा-हे राजकुमार! यह विद्या तुमने कहाँ से प्राप्त की ? अभी तो ऐसा अवसर दिखाई नहीं देता। हे प्रह्लाद! यह कार्य तो बड़ा ही जटिल है। यहाँ पर सभी का विरोधी बन कर, तुम कैसे जीवन जी सकोगे ? कैसे विद्या पढ़कर राजा बन सकोगे ? हमें तो इस बात पर संदेह है कि शायद तुम्हारा जीवित रहना भी मुश्किल जान पड़ता है। इसीलिए गुरु एवं राजा ही ईश्वर होता है। उनकी आज्ञा मानने से विघ्न नहीं होते अन्यथा तो अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ेगा।

प्रह्लाद उवाच-हे साथियो! अभी आपको पता नहीं है। तुम बहुत भोले हो। जिन्होंने गर्भ में रक्षा की है, क्या वह अब बच्चा बनने पर रक्षा नहीं करेगा ? यह सम्पूर्ण सृष्टि उसकी ही शक्ति विशेष से उत्पन्न होती है। उसी से स्थिर एवं प्रलय भी हो जाती है। भगवान् के हाथ लम्बे हैं, वे हमें उबारेंगे। तुम लोग श्रद्धा भक्ति विश्वास से उसी का स्मरण करो। तभी तुम्हारा भला होगा।

अपने जन्म से पूर्व की कथा प्रह्लाद ने अपने साथियों को बताते हुए कहा- जब मेरे पिताजी वन में तपस्या करने चले गए थे, तब मैं अपनी मां के गर्भ में था। अभी मैं अचेत अवस्था में बड़ा हो रहा था। तब देव राज इन्द्र ने सोचा कि एक तो दुष्ट तपस्या करने को चला गया, दूसरा यही उसी का ही अंश अपनी माँ के पेट में पल रहा है। जैसा बाप वैसा बेटा। क्यों न इस गर्भस्थ शिशु को नष्ट ही कर दिया जाए। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। न तो यह पैदा ही होगा न ही उपद्रव करेगा। देवराज इन्द्र मेरी माँ को अधीन करके स्वर्ग लोक में ले जा रहे थे। तभी मार्ग में नारदजी मिल गये।

उन्होंने पूछा- देवराज! यह क्या करने जा रहे हो। इस बेचारी अबला कयाधु को कहाँ ले जा रहे हो।

इसका पति अभी तपस्या करने गया है। एक तो यह अबला-निराश्रिता तथा गर्भवती भी है।

इन्द्र के कहा-हे नारद! इस के गर्भ में जो बच्चा बड़ा हो रहा है, उसको जन्म के पूर्व ही नष्ट करने जा रहा हूँ। क्योंकि यह पुत्र भी पिता जैसा ही होगा। आग लगने से पूर्व ही कुआँ खोद लेना चाहिए। ऐसी नीति है। नारद तो तीनों कालों की जानने वाले देव ऋषि हैं। उन्हें मालूम था कि यह गर्भस्थ बालक कौन है ? नारदजी ने इन्द्र से कहा कि आप इसे नष्ट करने की न सोचें। इसे मारने से तीनों लोक मर जाएँगे। यह बालक तुम्हारा देवताओं का भी संरक्षक है। देवराज! तुम इस बात से पूर्णतया अनभिज्ञ हो। मैं जानता हूँ। इसीलिए आदर सहित कयाधु को छोड़ दीजिए। इसके गर्भ में भगवान् का भक्त पल रहा है। शीघ्र पैदा होकर सम्पूर्ण दुनिया को भक्ति का पाठ पढाएगा। पुन: मर्यादा बाँधेगा। न जाने कितने ही जीवों का उद्धार करेगा।

इन्द्र को इस प्रकार समझाने पर मेरी माता को बंधन मुक्त कर दिया। वहाँ से नारदजी मेरी माता को ऋषियों के आश्रम में ले आये। वहीं पर उन्होंने मेरी माता को ज्ञान-ध्यान की बातें सुनायी थी। मैं तो अभी जन्म भी नहीं ले सका था। अपनी माँ के पेट में ही सभी प्रकार की ज्ञान-ध्यान की बातें सुनी थी। उस समय तो मैं पवित्र हृदय वाला कोरा कागज ही था। जो भी बात मेरी माता ने सुनी, मेरे हृदय पर ज्यों की त्यों अंकित हो गई। उन्हीं बातों का प्रभाव इस समय मेरे पर हो रहा है। उन्हीं बातों को स्मरण करके मैं आनंदित हो रहा हूँ। अब मुझे कुछ भी सुनने की अभिलाषा नहीं है। जो कुछ भी सुनना था, सुन लिया। जो कुछ भी जानना था, वह जान लिया। अब क्या जानना व सुनना शेष है ?

बालकों ने पूछा-हे प्रह्लाद! आप हमें भी तो इतना ज्ञानी बना दीजिए, जितने आप स्वयं हो। हमें भी तो आपकी तरह गर्भ में ज्ञान क्यों नहीं हुआ ? प्रह्लाद बोले हे बालको! यह तो तुम्हारी पात्रता पर ही निर्भर करता है। तुम्हारी माताओं को अच्छी संगति नहीं मिल पायी। असुरों की संगति करने से तुम्हारा मन असुरता को ग्रहण कर गया है। किन्तु घबराओ मत। धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते एक दिन तुम भी अवश्य ही भगवान् की भक्ति रस से भर जाओगे। तब तुम्हें संसार तथा संसार सुख तुच्छ ही मालूम पड़ेंगे। अभी तो कुछ भी देरी नहीं हुई है। बहुत सुनहरा अवसर तुम्हारे पास है। इसका सदुपयोग तुम कर सकते हो।

एक दिन राजा हिरण्यकश्यपु ने अपने प्रिय पुत्र प्रह्लाद को अपने पास बुलाया। मुख चूमा। प्यार किया और अपनी गोदी में बिठाया तथा पूछा-बेटा! बतलाओ कि अब तुम्हें पाठशाला में रहते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये। तुमने कितनी विद्या पढ़ी तथा क्या पढ़ा ? मुझे भी सुनाओ। मैं सुनना चाहता हूँ। तुम मेरे प्रिय पुत्र हो। इसलिए घबराने की आवश्यकता नहीं है। निडर होकर जो कुछ भी पढ़ा है, वह मुझे शीघ्र ही सुनाओ।

अपने पिता की बात सुनकर प्रह्लाद बड़े ही प्रसन्न हुए और कहने लगे-हे मेरे पूज्य पिता श्री! मैंने हरि का नाम हृदय में लिख लिया है और जंजाल सब छोड़ दिये हैं। एक हरि का नाम ही सुखदायी है। वह भगवान् ही सभी के माता-पिता सर्वस्व हैं। उनकी सत्ता से ही सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन होता है। उस विष्णु को छोड़कर मैं किसका नाम लूं और किसकी शरण लूँ ? वही मेरे तथा आपके जीवन आधार हैं। इसलिए हे मेरे दैहिक पिताश्री! आप भी उन्हीं का स्मरण कीजिये इसमें ही सभी का भला है।

ऐसी आश्चर्यजनक एवं विरोधी बात सुनकर हिरण्यकश्यपु आग बबूला हो गया और प्रह्लाद को गोदी से नीचे झटक दिया और कठोर वचनों से ताड़ना देते हुए वह भयंकर राक्षस कहने लगा-रे रे विप्रो! इस बालक को मेरे सामने से हटा लो! मैं इसे देखना ही नहीं चाहता। यह बालक तो अभी छोटा है, ये सभी करतूत इन गुरुओं की है जिन्होंने मेरे बालक को बिगाड़ दिया। मैंने तो उन पर विश्वास किया था किन्तु

उन्होंने मेरे से विश्वासघात किया है। मेरा बैरी विष्णु, उसका ध्यान-नाम लेना सिखा दिया है। मेरा बेटा ही मेरे दुश्मन का नाम लेता है। इन लोगों ने मेरे घर में ही दुश्मन पैदा कर दिया है। घर में आग लगा दी है।

हिरण्यकश्यपु ने गुरु शुक्राचार्य के पुत्रों को बुलाकर प्रह्लाद का हाथ पकड़ाया। शुक्र के पुत्रों ने पाठशाला में लेजाकर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से समझाने की कोशिश की। किन्तु प्रह्लाद ने उनकी एक भी नहीं मानी।

शुक्र ने आखिर हारकर प्रह्लाद को उनके पिता को सौंप दिया और कहा-यह तुम्हारा बालक हमसे नहीं मानेगा। हमने सभी प्रकार की नीति का आचरण करके देख लिया। पहले तो यह एक ही था, किन्तु अब इसकी देखादेखी अन्य सभी बालक विष्णु का ही नाम लेते हैं। हमारी एक भी बात नहीं मानते हैं। केवल प्रह्लाद की ही बात को स्वीकार करते हैं।

हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को पास में बुलाया, प्रेम से गोदी में बैठाया, मीठे-मीठे वचनों द्वारा स्वयं समझाने का प्रयास करने लगा। हिरण्यकश्यपु बोला-देख बेटा ! तुम्हें मालूम नहीं है। हमारा यह राक्षस कुल ही सबसे बड़ा कुल है। यह उत्तम कुल श्रेष्ठ भी है। अपने से महान कोई नहीं है। मेरा भाई हिरण्याक्ष था। उसको विष्णु ने मारा था और तू विष्णु का नाम लेता है। जो मेरा शत्रु है। हे बेटा ! जो मेरा शत्रु वह तेरा भी तो शत्रु है। शत्रु का नाम नहीं लेना चाहिये। यह नीति है। आज ही तू विष्णु का नाम लेना छोड़ दे, तो मैं तुम्हारे पर बहुत ही प्रसन्न होऊँगा। मैं तुम्हे आज ही राजतिलक दे दूँगा। अब तुम बड़े, तथा सयाने हो गये हो। यदि मेरा कहना नहीं मानोगे, तो मैं तुझे स्वयं अपने हाथों से मार गिराऊँगा। या तो राजा बन जाओ या मरने के लिए तैयार हो जाओ। दोनों में से एक फैसला तुम्हें करना ही होगा।

प्रह्लाद ने बिना किसी झिझक के कहा- हे पिताजी ! आप अपने ढ़ंग से जो बात कह रहे हैं, वह अपनी जगह पर नीति युक्त है। मेरे लिये ये बातें अनुकूल नहीं हैं। जिन्होंने अमृत का पान कर लिया है, वह भला बताओ विष से क्या करे ? आप अब तक उस अमृत से वंचित रहे हैं। इसलिए तो ऐसी बात कर रहे हैं। यदि आपको भी एक बार अमृत के आनन्द का अनुभव हो जाता, तो आप कभी ऐसा नहीं कहते। तब आप मेरा ही समर्थन करते। किन्तु मैं क्या करूँ ? यह आपका दुर्भाग्य है !

राज-पाट तो नाशवान है। आज है, कल नहीं रहेगा। वह अटल राज तो भगवान् का सान्निध्य है, उसकी बराबरी यह तुम्हारा राज्य कभी नहीं कर सकता। मरने और मारने की बात तो जहां तक है, उसका कुछ पता नहीं है। कौन किसको मारता है और कौन मरता है ? जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु ध्रुव है। जब मृत्यु आयेगी तो आयेगी ही, और नहीं आयेगी तो कौन लायेगा ?

हे पिताजी !आप अपना अहँकार विसर्जन कीजिए और विष्णु को स्वीकार कीजिये तथा जीवन में खुश रहिये। क्यों किसी से विरोध बढ़ा रहे हैं। वह भी किसी सामान्य व्यक्ति से नहीं, सम्पूर्ण चराचर स्वामी भगवान् विष्णु से ! हे पिताजी ! आपकी और विष्णु की क्या बराबरी है ? वे तो तीनों लोकों के राजा हैं। आप तो इस छोटे से राज्य का भी शासन नहीं कर पा रहे हैं। व्यर्थ का बैर विरोध बढ़ा रहे हैं। इसे यही पर ही शांत कीजिये और विष्णु से मित्रता स्थापित कीजिये।

मैंने स्वीकार किया है कि आपके भाई को विष्णु ने मारा था। किन्तु आप यह क्यों नहीं मानते कि आपके भाई ने दुनिया को दुःख देने का बीड़ा उठाया था। तो वह अपने कुकर्मों से ही मारा गया है। आप उसकी चिन्ता न करें। यदि इस प्रकार से आपका विरोध चलता रहा, तो वह दिन दूर नहीं, जो आपको भी आपके भाई के पास जाना पड़े। यह दो दिन का छोटा सा जीवन यूँ ही व्यर्थ में गंवाने के लिए नहीं है। आप

तो पिताजी राज के मद में मस्त हो गये हैं। अब आपको तो कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान ही नहीं है। आप से मैं केवल निवेदन मात्र ही कर रहा हूँ। आप इस बात को अन्यथा न समझें।

एक पिता होने के नाते आप हमें सन्मार्ग का पथिक बनायें। अन्याय से दूर हटायें। किन्तु मुझे आपको उचित बात कहनी पड़ रही है। मेरे तो रोम-रोम में सर्वत्र रमण करने वाले राम प्रवेश कर गये हैं। इसमें उचित या अनुचित का मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं हो रहा है। हो सकता है आपकी अपनी निजी बुद्धि के अनुसार मैं कुछ अनुचित भी कर रहा हूँ। किन्तु अब मेरे वश की बात भी नहीं है। आप स्वयं ही इस स्थिति को देख रहे हैं। मेरा ऐसा कोई विचार नहीं है कि मैं अपने पूज्य पिता से विरोध करूँ। लेकिन जो होनहार है, वही होगा।

आप अपने को समर्थ मान करके मेरे को तुच्छ बालक मानकर अपराध क्षमा करें। पिता तो बालक की न्याय सत्यता देखकर क्रुद्ध नहीं होते अपितु प्रसन्न ही होते हैं। किन्तु आप में ऐसी प्रवृत्ति देखने को नहीं मिल रही है।

प्रह्लाद के न्याययुक्त वचनों को हिरण्यकश्यपु ने सुना और झुंझलाकर कहने लगा-रे अनुचरो! इस दुष्ट बालक को मेरी आँखों के सामने से हटा लो। मैं एक क्षण भी इसे जीवित नहीं देखना चाहता। जिस उपाय से यह मारा जावे, ऐसा प्रयत्न करो। भृत्यगणों ने अपने राजा के वचनों को ही प्रमाण मानकर प्रह्लाद को अनेकों प्रकार से कष्ट देना आरम्भ किया, जिससे दु:खी होकर हरि का स्मरण त्याग दे अथवा मृत्यु को ही प्राप्त हो जाये।

प्रह्लाद को विषधर नागों द्वारा डसाया गया, ताकि जहर चढ़ जाये, भयभीत हो जाये। मर जाये, हमारे स्वामी का कार्य हो जाये। हमारे स्वामी हमें बहुत सा पुरस्कार प्रदान करेंगे। किन्तु जहर भी भगवान् की कृपा से अमृत हो गया। जिसके रोम-रोम में भगवान् रमे हो उसके विष भी क्या कर सकता है? पीने के लिए भी विष दिया गया किन्तु भगवान् का प्रसाद मानकर पी गये। कुछ भी नहीं बिगड़ा। दैत्य समूह प्रह्लाद की अमरता को देखकर घबरा गये।

प्रह्लाद को एक कुएँ में डाला गया। उस सूखे कुएँ में अनेकों विषैले साँप आदि थे, उनके काटने से मर जायेगा। कहीं बाहर न निकल जावे, इसके लिए ऊपर मिट्टी पत्थर डाल दिये गये, नीचे दबकर मर जाये, किन्तु वहाँ पर भी परमेश्वर ने रक्षा की। प्रह्लाद सकुशल बाहर निकल आये। यह प्रह्लाद कुएँ के अन्दर तो नहीं मर सकता, शायद कुछ देवता या मंत्र इसके सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

अब इसे पहाड़ के ऊपर से गिरवायेंगे। तब देखते हैं, इसे कौनसा देवता तंत्र या मंत्र बचाते हैं? हमारे स्वामी का जिस प्रकार से भी प्रिय हो, हमें तो वही कार्य करना है। एक बहुत ऊँचे पहाड़ की चोटी पर ले जाकर हाथ-पाँव बाँधकर प्रह्लाद को नीचे गिरा दिया। गिरता हुआ, नीचे आता हुआ सभी ने देखा। सभी दैत्यों ने बड़ी खुशी मनाई थी। अब हम अपने कार्य में सफल हो गये हैं। इस पहाड़ की इतनी ऊँचाई से अब इसे कोई नहीं बचा पायेगा। प्रह्लाद झूले में झूलते हुए क्रमश: नीचे आ रहा है। नीचे की धरती जहाँ पर गिरना था, वह दूध के फेन-झाग की तरह कोमल हो गयी। प्रह्लाद उन्हीं कोमल फेनों में जिस प्रकार भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या पर सोते हैं, उसी प्रकार सोते हुए आनन्दित हो रहे थे। ऐसा आश्चर्य देखकर सभी अचम्भित हो गये।

इस बार दैत्यों के विचार में बात कुछ इस प्रकार से आयी कि-अग्नि सभी को जलाकर भस्म कर देती है क्यों न प्रह्लाद को अग्नि में जलाया जावे? यह मत सभी को पसन्द आया, इसके लिए उन्होंने एक लोहे

का खम्भा अग्नि से तपा कर लाल कर दिया और प्रह्लाद को उस खम्भे से बाँध दिया।

प्रह्लाद लाल-लाल, तपता हुआ लोहे का खम्भा देखकर कुछ घबराये, किन्तु तुरंत देखते हैं कि उस तपे हुए खम्भे पर छोटी-छोटी चींटियाँ घूम रही हैं। उन्हें देखकर प्रह्लाद को दृढ़ निश्चय हो गया कि ये छोटी-छोटी चींटियां भी नहीं जल रही हैं, तो तेरा क्या बिगड़ेगा? उस तपते हुए लोहे के खम्भे को भी ईश्वर मानकर दोनों बाहुओं द्वारा आलिंगन किया और कहा-आइये मेरे प्रभु! इस बार आप इस रूप में भी आ गये। मुझे गले लगाने के लिए। धन्य हो मेरे प्रभु!

दैत्य अब तो पूरी तरह हार मान गये और हिरण्यकश्यपु से कहने लगे-यह तुम्हारा बेटा न तो हमसे मारा जायेगा और न ही किसी प्रकार से डरता ही है। हमने तो सभी यत्न करके देख लिया है। अब आप जैसा ठीक समझें, वैसा ही करें।

हे दैत्यराज! हमारा कहना मानो तो इस बालक से समझौता कर लो। यह बालक सामान्य नहीं है। यह तो कोई देवता ही है। जो न तो अग्नि, वायु, जल, पहाड़ से डरता है और न ही मरता है। हम तो पूरी तरह हार गये हैं।

वील्हा ने अपने सतगुरु नाथाजी से पूछा-हे गुरुदेव! आप कृपा करके आगे पुन: बतलाईये कि जब दैत्यों ने अपने सम्पूर्ण हथियार प्रह्लाद के सामने डाल दिये, तब हिरण्यकश्यपु ने क्या किया? क्या अपने अनुचरों के कहे अनुसार समझौता कर लिया था या अन्य कुछ उपाय अवशिष्ट थे, जिससे प्रह्लाद को मारा जा सके तथा यह बताने की कृपा करें कि सम्पूर्ण दैत्य समाज तो प्रह्लाद का पूरी तरह विरोधी था। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखता था, जो प्रह्लाद का सहयोग करे। प्रह्लाद पंथ का पथिक बन सके। क्या हिरण्यकश्यपु के भय से भयभीत थे। यदि ऐसा ही था तो यह प्रह्लाद पंथ किस प्रकार से प्रकाशन में आया। ये बातें आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलाईये! जिससे मेरी जिज्ञासा शाँत हो सके और मेरी श्रद्धा विष्णु परमात्मा के प्रति हो सके तथा मैं भगवान् का भक्त हो सकूँ।

वील्हा की भक्तिपूर्वक जिज्ञासा श्रवण करके नाथोजी अपने शिष्य के प्रति प्रेमपूर्वक इस प्रकार से कहने लगे-जब दैत्यों ने हिरण्यकश्यपु को यह कह दिया कि हम सभी आपके बालक को मारने में असमर्थ हैं, तब हिरण्कश्यपू चिन्ता में पड़ गया कि यह बालक अवश्य ही कोई देवता है। जो मेरे यहाँ बेटा बनकर आया है। यह मारा नहीं जायेगा, तो हो सकता है मेरे को मारकर मेरा राज छीन ले। अब क्या किया जाये? मारने के जितने उपाय थे, वे सभी कर लिये। अब तो डर के मारे रात्रि में नींद ही नहीं आ रही है। एक-एक पलक कल्प के समान व्यतीत हो रहा है। चिंता में हिरण्यकश्यपु थकने लगा था। ऐसा ही होता है। भगवान् के विमुखी, अहंकारी प्राणी को। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

हिरण्यकश्यपु चिंता में थक रहा है। एक दिन हिरण्यकश्पू की बहिन होलिका आ गयी और अपने लाडले भाई से पूछा-भाई! तुम दिनों-दिन थकते जा रहे हो, क्या बात है? तुम्हें इस असुर कुल में जन्म लेने से चिंता नहीं करनी चाहिये। हे भाई! मुझे बतलाओ मैं आपकी क्या सेवा करूँ? यदि मुझे सेवा का अवसर मिलेगा, तो मैं अपने आप को धन्यभागी समझूँगी। विपत्तिकाल में भाई-बहन एक दूसरे के सहयोगी होते हैं। तुम मुझे अपनी विपत्ति की बात नि:संकोच होकर कहो।

हिरण्यकश्यपु बोला-क्या कहूँ बहिन! मेरा बेटा प्रह्लाद, तुम्हारा प्रिय भतीजा ही मेरा शत्रु हो गया है। बाह्य शत्रु का तो मैं सामना कर सकता हूँ। उसे जड़-मूल से उखाड़ सकता हूँ। किन्तु मेरा ही पुत्र जब मेरा शत्रु बन जाये तो क्या किया जाए? मैं तो अपने ही दैत्यकुल को बढ़ाना चाहता हूँ। मैं अपने पुत्र को कैसे मार

सकता हूँ ? यही मेरे से होना कठिन है। हे बहिन! अन्य लोगों द्वारा तो मैंने उसे मारने, डराने, धमकाने के कई उपाय कर लिये हैं। किन्तु यह बालक न तो विष्णु की भक्ति ही छोड़ता है और न ही राज-पाट,परिवार का लोभ इसे मेरी तरफ आकर्षित करता है। मेरा शत्रु विष्णु और यह विष्णु की भक्ति करता है। तुम्हीं बतलाओ-यह मेरे से सहन कैसे हो ? जब तक यह प्रह्लाद मरेगा नहीं, तब तक मैं सुख-चैन से नहीं बैठ सकता।

होलिका बहन ने अपने भैया की कथा-व्यथा सुनी और कहने लगी-भाई साहब! आप चिंता न करें। तुम्हें इस बात का पता नहीं है कि '' **काज पराया सीवला, जहाँ दुखे तहाँ पीड़** '' पराया कार्य ठण्डा ही होता है। दूसरा क्या जाने परायी पीड़ा को ? जिसके पीड़ा होती है, दु:ख भी उसी को ही होता है। मैं तुम्हारी बहिन हूँ, इसलिए तुम्हारी पीड़ा का निकटता से अनुभव करती हूँ।

सुनो! मैं तुझे भक्त प्रह्लाद के मरण का उपाय बतलाती हूँ। मैं महादेवजी के चरणों की पूजा-ध्यान करती हूँ। महादेवजी द्वारा मुझे वरदान प्राप्त है। मुझे एक शीतल वस्त्र (ओढ़ना) महादेवजी ने प्रदान किया है। जिसको ओढ़कर मैं अग्नि में बैठ जाऊँगी। मैं तो जलूँगी नहीं, किन्तु प्रह्लाद को गोदी में लेकर जला दूँगी। तुम लोग मेरे चारों तरफ लकड़ियां चिन देना और पूरा यत्न कर देना कि जब प्रह्लाद को आग की ताप लगे कहीं निकलकर भाग न जाये। पहरेदार खड़े कर देना, यह कार्य तुम शीघ्र करो।

मैं आज शाम को ही प्रह्लाद को लाड़-प्यार करते हुए शीतल ओढ़ना ओढ़कर प्रह्लाद को गोदी में लेकर बैठ जाऊँगी। आप लोग चारों तरफ लकड़ियाँ चिनकर के आग लगा देना। प्रह्लाद कहीं निकलकर भाग न जाये इसके लिए पूरा यत्न कर देना। निश्चित ही प्रह्लाद मारा जायेगा और मैं बचकर निकल आऊँगी। सदा-सदा के लिए तुम्हारा काँटा निकल जायेगा। तब तुम निश्चित होकर राज करोगे।

हिरण्यकश्यपु ने तुरंत सभी उपाय कर दिये। होली तैयार करदी और अपने अनुचरों को सावधान कर दिया। वह बोला खबरदार! यदि किसी प्रकार की लापरवाही की तो दण्ड दिया जायेगा। होलिका अपने भतीजे प्रह्लाद को गोदी में लेकर बैठ गयी। चारों तरफ से आग लगा दी गयी। लकड़ियाँ एवं होलिका धू-धू कर जलने लगी। पहरेदरों ने सोचा कि प्रह्लाद जल रहा है। किन्तु वहाँ पर तो होलिका जल रही थी। होली जलाकर सभी दैत्य अपने-अपने घर लौट आये। हिरण्यकश्यपु को सूचना दे दी कि प्रह्लाद अग्नि में जल गया है।

होली के शाम को दैत्यों ने खुशी मनाई। आज प्रह्लाद का मरण हो गया है। उस अपार खुशी में यह किसी को भी पता नहीं चला कि होलिका कहाँ गयी। खुशी में कौन किस की परवाह करता है ?

प्रह्लाद की माता कयाधु को यह पता चला कि आज मेरी ननद ही मेरे बेटे को मारने के लिए अग्नि में लेकर बैठ गयी है। दु:ख की कोई सीमा ही नहीं रही। रोने लगी, विलाप करते हुए कहा-हे बेटा प्रह्लाद! अब तुम कहाँ हो ? एक बार आओ, दर्शन दे जाओ। आज मेरा बेटा अपनी बुआ तथा पिता की वजह से अग्नि की भेंट चढ़ गया है। मुझे क्या मालूम था कि एक दिन ऐसा होगा। मैं पुत्रविहीन नारी कैसे अपना कलंकित जीवन जी सकूँगी। मैं अपनी ननदरानी को हाथ जोड़ती, पाँव पकड़ती, प्रार्थना करती तो क्या पता अपने पुत्र को बचा लेती। मेरे पति तो नर हैं तथा दैत्य भी हैं। वो क्या जाने माँ के हृदय की बात ?

किन्तु हे ननद! तू तो एक माँ का हृदय लेकर आयी है। तुम्हारे से यह कैसे सम्भव हुआ ? असंभव है कि एक नारी यह कार्य कर सके। पता नहीं मैंने कौन पाप कर्म किए थे, जिस वजह से मैं अपने ही सामने पुत्र की मृत्यु देख रही हूँ। यदि मेरे में ही सहृदयता होती तो मैं यह कार्य कदापि नहीं होने देती। स्वयं अपने

प्राण त्याग देती किन्तु अपने बेटे को बचा लेती। किन्तु क्या कहूँ किससे कहूँ ? अभी तो सब कुछ बीत चुका है। भगवान् ही इस समय तो मेरे बेटे के रक्षक हैं।

इससे पूर्व भी अनेकों बार भगवान् ने बचाया था। ये लोग तो अब तक कभी मार सकते थे। हे भगवान्! आप ही रक्षा कीजिये। मैं प्रात:काल की वेला में प्रह्लाद के दर्शन नित्यप्रति की भांति करना चाहती हूँ। इस प्रकार से माता कयाधु एवं प्रह्लाद के अनुयायी लोगों ने भगवान का भजन करते हुए रात्रि व्यतीत की।

यह रात्रि, शोक रात्रि प्रह्लाद पंथियों के लिए कही जाती है। किन्तु हिरण्यकश्यपु पंथियों के लिए खुशी की रात्रि मानी जाती है। प्रात:काल हुआ। दैत्य लोग सूर्योदय होने के पश्चात उठे और कहने लगे- देखो भाई ! रात्रि के उत्सव में किसी को कुछ नुकसान तो नहीं हो गया है। अब तो सचेत हैं, किन्तु रात्रि में तो अचेत ही थे। सभी ने अपनी-अपनी उपस्थिति दी, सभी कुशल थे।

हिरण्यकश्यपु ने पूछा-क्या बात हैं ? अब तक होलिका नहीं आयी। तुम तो सभी लोग आ गये हो। खुशी मना रहे हो। बिना बहिन के खुशी कैसी ? दैत्यों ने देखा कि होलिका तो नहीं आयी किन्तु प्रह्लाद खेलता हुआ आता दिखाई दिया। दैत्यों के तो प्रह्लाद को देखते ही मानो सौ घड़ा ठण्डा पानी सिर पर गिर गया हो।

दैत्यों ने हिरण्कश्यपु को कहा-हे राजन्! जिसकी तुम आने की प्रतीक्षा कर रहे हो, वह होलिका लौटकर कभी नहीं आयेगी। जल बल कर राख हो गई है। वहाँ पर दो मुट्ठी राख पड़ी हुई है। कहो तो लाकर दे दें। तथा जिसके आने की प्रतीक्षा तुम कभी नहीं करते, वह तुम्हारा शत्रु प्रह्लाद आ रहा है। हे राजन्। जैसा नियति का विधान है, वैसा ही होगा। ये सभी कार्य उलट पुलट हो गये।

हिरण्यकश्यपु ने कहा-रे दुष्टो! तुमने ठीक से पहरा नहीं दिया। प्रह्लाद निकल कर भाग आया। यह कैसे हुआ ? दैत्यों ने कहा-हे राजन्! यहाँ विधि का विधान कुछ और ही है। किसी का कुछ जोर चलता ही नहीं है। जब पहरेदार खड़े थे, तब अग्नि लग चुकी थी। उसी समय जोरों की पवन चली थी, उस पवन ने सारा कार्य गड़बड़ कर दिया था। जो शीतल वस्त्र होलिका ने ओढ़ रखा था, वही वस्त्र पवन देवता ने प्रह्लाद को ओढ़ा दिया। जिसके प्रभाव से प्रह्लाद तो बच गया और बेचारी होलिका जलकर राख हो गयी। भगवान् का विरोध करने वालों की यही गति होती है।

हे राजन्! इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। सभी कुछ तुम्हारा ही दोष है। जो राक्षस प्रभु की सत्ता को नहीं जानता था, वह तो दूसरों को ही दोषी ठहराता था। उन लोगों ने एक दूसरों पर कीचड़ उछाला। दोषारोपण किया। अपने तथा दूसरों को धिक्कार ही दिया। इस प्रकार से होली खेली गयी। भक्त प्रह्लाद के अनुयायी लोग तथा माता कयाधु ने खुशियाँ मनाई। बधाईयाँ बाँटी गई। इस प्रकार शांत सौम्यता से होली का त्योहार मनाया गया था।

प्रह्लाद के अनुयायी लोग आज भी उसी रूप में खुशी मनाते हैं। उसी होलिका के जलन और प्रह्लाद के ताकतवर होने के दिन से ही यह प्रह्लाद पंथ चला था। प्रह्लाद ने सतयुग में सर्वप्रथम कलश की स्थापना की थी। उस दिन असत्य-अन्याय की पराजय और सत्य की विजय थी। देरी से भले ही हो, किन्तु आखिर जीत तो सत्य की ही होती है। प्रह्लाद ने अपने सेवक अनुयायियों को एकत्रित किया और उन्हें कलश का अभिमंत्रित जल पाहल हाथ में देकर संकल्प करवाया।

प्रह्लाद ने कहा- सुनो बन्धु जनो! यह आपके हाथ में जल देवता है तथा आपके सामने यज्ञदेवता अग्नि है, चारों ओर सर्वत्र व्यापक पवनरूप परमेश्वर है, इन्ही प्रमुख देवताओं के सामने आप लोग संकल्प करो,

अपने निजी जीवन का मार्ग स्वयं ही चुनो। तुम्हें हिरण्यकश्यपु का साथ देना है या मेरा साथ निभाना है। पिताजी के तरफ तो राज्य, सुख-सुविधा का लोभ है, किन्तु मेरी तरफ से कष्ट तथा तपस्या का दु:खमय जीवन है।

याद रखो! प्रारम्भ के कष्टदायी कार्य अन्त में सुमधुर फलदायी होते हैं। प्रारम्भ में सुखदायी कार्य परिणाम में विष की तरह होता है। आप लोग जल देवता को हाथ में लेकर संकल्पवान हो जाओ। उसी से ही देवता द्वारा तुम्हारी रक्षा होगी। आप लोग मेरे को देख ही रहे हैं। मैंने सत्य संकल्प कर लिया। अब चाहे कितना ही कष्ट आये। वे कष्ट मुझे दु:ख नहीं दे सकते। जो लोग थोड़ी सी विपत्ति से ही डांवाडोल हो जाते हैं, वे कभी कुछ कार्य नहीं कर पायेंगे। जब आप सस्नेह मेरे पास आये हैं, तो मुझे लगता है कि आप में भी भक्ति का बीज विद्यमान है। किन्तु हिरण्यकश्यपु के भय के मारे अंकुरित नहीं हो पा रहा है। ये मेरे पिताजी तो भयंकर अकाल हैं, जो किसी को पनपनें ही नहीं देंगे।

हे बन्धु गणो! तुम्हें फलने-फूलने का पूर्ण अधिकार है। आज से सभी निर्भय हो जाओ तथा उस परमात्मा-विष्णु को याद करो। उसी को ही माता-पिता, भाई-बन्धु तथा राजा सभी कुछ स्वीकार करो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा।

अग्नि से भी प्रह्लाद बच गया जिसको स्वयं होलिका भी नहीं जला सकी। हिरण्कश्यपु एवं उनके अनुचर भी उस प्रह्लाद का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। अवश्य ही कोई अलौकिक शक्ति कार्य कर रही है। हम भी उस परमशक्ति का आश्रय ग्रहण करें। वही हमारा अन्तिम लक्ष्य है। ऐसा विचार करते हुए अधिकतर जनता ने मन ही मन प्रह्लाद का अनुसरण किया। कुछ लोग तो अभी दबी जुबान से प्रह्लाद का समर्थन करते थे, क्योंकि अब तक हिरण्यकश्यपु का भय विद्यमान था तथा कुछ लोग खुलकर प्रह्लाद का समर्थन करते और हिरण्यकश्यपु के विरोध में खड़े हो गये। अब तक प्रभु की अनन्य भक्ति में सभी तो प्रवीण नहीं थे। अधिकारी भेद से ही भक्ति का मार्ग चुना था।

ऐसा कहा जाता है कि उस समय कुल जनसंख्या 33 करोड़ थी। उनमें पांच करोड़ ही प्रह्लाद के अनुयायी पूर्ण भक्त थे। बाकी तो डाँवा-डोल की स्थिति में थे। उनमें अब तक दृढ़ता नहीं आयी थी। ऐसी अवस्था में उत्तरोत्तर प्रह्लाद पंथ का विस्तार ही हो रहा था। हिरण्यकश्यपु की तरफ जनता मुँह मोड़ रही थी, क्योकि हिरण्यकश्यपु के पास केवल अहंकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। प्रह्लाद के पास निर्मलता, सज्जनता, समर्पणता एवं ईश्वरीय दिव्यता थी। लोगों का समर्पित होना स्वाभाविक था।

हिरण्कश्यपु ने एक दिन प्रह्लाद को अपने पास बुलाया। प्रेम से बैठाया और कहने लगा- हे पुत्र! तू मेरे से विवाद मत कर। आज तक तुमने मेरी एक भी बात नहीं मानी। किन्तु आज तुम मेरे कहने से भक्ति छोड़ दे। मैं तुम्हें आज ही राजतिलक देकर राजा बना दूँगा। नहीं तो, मैं आज ही तुम्हें स्वयं मार डालूँगा। अब तक तो मैं पुत्र मोह के वशीभूत होकर स्वयं मारने को तैयार ही नहीं हुआ। तुमने राजद्रोह किया है। इसलिए मैं क्षमा नहीं करूँगा। मेरी प्रजा को भी तुमने बहला-फुसलाकर अपनी ही तरह विष्णु की भक्ति सिखला दी है। पहले तो तू अकेला था। किन्तु इस समय तुम्हारे चेलों की संख्या बढ़ गई है। मैंने यह सभी अपनी आँखों से देखा एवं कानों से सुना भी है। अब तेरा अपराध क्षमा करने योग्य कदापि नहीं है।

पिता की ऐसी अधार्मिक, क्रूर बातें प्रह्लाद ने सुनीं और कहने लगा-पिताजी! आप ऐसी बातें न करें। न तो मुझे राज-पाट तिलक चाहिये और न ही मुझे आपके कठोर वचनों से ही डर है। जो एक बार भक्ति अमृतरस का पान करले वह तुम्हारे राजपाट रूपी विष का क्या करे? इस मृत्यु को जानबूझकर गले क्यों

लगाये ?

मेरा कहना मानो तो एक बार आप भी विष्णु का स्मरण एवं समर्पित होके देख लीजिये। आपको भी आनन्द की कितनी अनुभूति होती है ? फिर आप कभी ऐसी वार्ता नहीं करेंगे। भगवान् विष्णु बड़े ही दयालु हैं। आप पर भी अवश्य ही कृपा करेंगे। वे भगवान् तो भक्तवत्सल, दीन दयालु, अतिकृपालु हैं। अति दुराचारी, पापी से पापी को भी भगवान् ने अपना बना लिया। उन्हें सर्वोच्च पद प्रदान किया। आप नि:संकोच होकर शरण में आइये और जीवन को अमृतमय बनाइये।

बेटे प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकश्यपु को सुन्दर व हितकर वचन कहे। किन्तु असुर बुद्धि पिता को ये वचन जहर की तरह लगे। उन्हें ग्रहण नहीं किया। प्रह्लाद को पकड़कर विश्वकर्मा द्वारा रचित जेल में डाल दिया। उनके जितने भी अनुयायी थे, उन्हें भी साथ में ही डाल दिया। प्रह्लाद के मुख्य अनुयायियों को ही जेल में डाला गया। अन्य साधारण लोगों को छोड़ दिया।

ऐसी विचित्र जेल विश्वकर्मा द्वारा विरचित थी। जहाँ पर अन्न-जल का नाम ही नहीं था। केवल सूर्य, वायु एवं आकाश ही था। इनसे ही जीने के लिए मजबूर कर दिया था। अन्न, जल, के बिना केवल श्वास के द्वारा जीना कितने दिन हो सकता है ? आखिर तो एक दिन प्रह्लाद को अपने साथियों सहित मरना ही था।

अन्य प्रह्लाद के बंदी साथी तो ऐसी दशा देखकर घबरा गये। प्रह्लाद ने कहा-भाइयो ! आप निश्चित रहो ! जिसने हमको संसार में भेजा है, वही हमारा पालन-पोषण भी करेगा। आप लोग तो केवल विष्णु का ही ध्यान करो। बाकी कार्य वही करेगा। वह किस रूप में करता है, वह तुम देखते रहो। तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह हमें नहीं बचाना चाहेगा, तो हम कैसे बचेंगे और यदि वह बचाना चाहेगा, तो भला यह बतलाओ कि हमें मारने वाला कौन है ?

सभी बंदी परमात्मा-विष्णु का ही ध्यान करने लगे। अन्य सभी आशाएँ छोड़ दीं। अब उन्हें मृत्यु का भय नहीं रहा। फिर हिरण्कश्यपु का भय कैसे हो सकता था ? ओंकार की ध्वनि से आकाश गुंजायमान हो रहा था। उसी समय ही भगवान् विष्णु ने देवताओं को आदेश दिया कि मृत्युलोक में जाओ। वहाँ पर भक्त प्रह्लाद व उनके चेलों की रक्षा करो। इन्द्र देवता मेघ बनकर वर्षा करने लगे। वायु देवता शीतल सुगन्ध बनकर वायु का प्रसार करने लगे। सूर्य देवता- सर्दी-गर्मी की समानता प्रदान करने लगे। धरती माता उपजाऊ होकर धन-धान्य तथा फलों से परिपूर्ण हो गयी। अनेकों मेवा-मिष्ठान उपजने लगे।

परमात्मा चाहे तो क्या नहीं हो सकता। जो हम चाहेंगे, वही तो हमें मिलेगा। भगवान् की कृपा से जेल में भी मंगलाचार होने लगा। जेल में पड़े हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया था। एक वर्ष पश्चात् हिरण्यकश्यपु ने अपने अनुचरों को पास में बुलाया और कहने लगा-हे अनुचरो ! आप लोग जाकर देखिये, मेरा कुपुत्र अपने संगी-साथियों के साथ अब तक मर गया होगा। मैंने बाहर से सम्पूर्ण सामग्री बन्द कर दी थी। भूख से तड़प-तड़प करके मर गये होंगे।

अनुचरों ने जाकर दरवाजा खोलकर के देखा तो अन्दर भक्त लोग देवताओं की तरह बैठे हुए हैं। वे तो इतने तेजस्वी हो गये हैं कि सूर्य की भाँति दिखाई देते हैं। उन्हें आखों से देखा भी नहीं जाता। आँखें चकाचौंध हो गयी। अन्दर अन्न, जल,मेवा-मिष्ठान्न के भण्डार भरे हुए देखा। अनुचरों ने पुन: दरवाजा बन्द कर दिया और दौड़कर हिरण्यकश्यपु के पास गये और उन्हें सम्पूर्ण स्थिति से अवगत करवाया।

हिरण्यकश्यपु की स्थिति कुछ ठीक नहीं हुई। वह कुछ कहने लगा-यह कैसे हो सकता है ?, उन्हें जीने की सामग्री किसने पहुँचाई ? सच बताओ अन्यथा प्रह्लाद के पास ही पहुँचा दूँगा। अनुचर कहने लगे-

महाराज क्षमा करें ! यह तो सभी आपकी ही करामात है। यहाँ पर अन्य किसी का भी दोष नहीं है। आपको मालूम है कि बैर-भाव किससे कर रहे हैं ? कहीं से भी पहुँच सकता है। वह तो सभी जीवों का पालण-पोषण करता है। उस विष्णु के लिए असंभव ही क्या है ? आपने ही सम्पूर्ण परिस्थितियाँ पैदा की हैं। स्वयं आपने ही यह कुआँ खोदा है। इसमें जल तो नहीं मिलेगा, किन्तु पड़ोगे अवश्य ही। इस प्रकार से आप प्राणों को खो बैठोगे। आपको बचाने वाला इस समय कोई नहीं है। इस समय आपके सहायक न तो विष्णु हैं, न ही आपके कुटुम्बी या मित्र। आपके अतिरिक्त यहाँ सभी विष्णु के उपासक हैं। अब तो समय है। समय रहते हुए जो कुछ भी करना है वह कर लीजिये। अन्यथा पछताना पड़ेगा।

अनुचरों की न्याय-भक्ति युक्त वार्ता सुनकर हिरण्यकश्यपु और भी क्रोधित हो गया। वह साँप की तरह फन किए हुए ही बैठा था और उन अनुचरों ने फन पर पाँव रख दिया। वह फुफकार मारते हुए जहर उगलने लग। मानो वह स्वयं अग्नि की तरह सभी को जला देना वाला तो पूर्व ही था और उन अनुचरों ने जलती हुई अग्नि में घी डाल दिया। वह असुर भभक उठा और अपने ही अनुचरों पर क्रोध उतारते हुए छाती पीटते हुए कठोर वचन कहने लगा।

आज ही मैं प्रह्लाद व उसके शिष्यों को मार डालूँगा। आज इस खड्ग से इन्हें कौन बचायेगा ? स्वयं विष्णु आ जाये तो मैं उसको मारकर फिर प्रह्लाद को मारूँगा। तभी मेरी छाती ठण्डी होगी। मैं अपने भाई-बहिन की मौत का बदला ले सकूँगा। ऐसा कहता हुआ वह दैत्य हाथ में खड्ग लेकर प्रह्लाद को मारने के लिए दौड़ पड़ा। जैसे कहीं आग लगी हो, उसे बुझाने के लिए लोग दौड़ते हैं। वही कार्य हिरण्यकश्यपु ने किया। एक छोटी खिड़की को खोल दीजिये। मैं एक-एक को अपने ही हाथों से मौत के घाट उतारूँगा। दैत्य की आँखें क्रोध के मारे लाल लाल हो रही थी। सम्पूर्ण शरीर तन गया था। आपा खो बैठा था। मैं क्या करने जा रहा हूँ, इस बात की उसे सुध नहीं थी।

प्रह्लाद ने अपने साथियों से कहा-तुम अब रुको, आगे मत बढ़ो। मुझे आगे जाने दो, क्योंकि मेरे आगे बढ़ने से ही तुम्हारा भला होगा। अन्य संत-भक्त कहने लगे-पहले हम, पहले हम दैत्य की तलवार से कटेंगे और स्वर्ग प्रयाण करेंगे। प्रह्लाद ने कहा हे बन्धुओ ! अभी तुम्हारे मरने का समय नहीं आया है। जैसा मैं कहता हूँ, तुम वैसा ही करो।

प्रह्लाद स्वयं सभी से आगे बढ़े। हिरण्यकश्यपु ने देखा कि सर्वप्रथम मरने के लिए मेरा ही पुत्र आ रहा है। तनिक सोचा। पुत्र मोह जागा तो मार नहीं सका। प्रह्लाद से कहा-तू अभी पीछे हटजा, पहले तेरे शिष्यों को आने दे। पहले उन्हें मौत के घाट उतारूँगा, पीछे तुम्हें मारूँगा। आज किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।

प्रह्लाद ने कहा, पिताजी ! आप इन बिचारे निरपराध जनों को क्यों मार रहे हैं ? इन सभी का मूल तो मैं हूँ। मुझ मूल को ही प्रथम उखाड़िये। ये डाली-पत्ते तो स्वयं ही उखड़ जायेंगे। सूख जायेंगे। यदि इन डाली-पत्तों को ही काटते रहोगे, तो भी मूल जीवित रहेगा। वह पुनः डाली पत्ते युक्त हो जाएगा। उसे अपने बेटे की बात समझ में आ गयी और हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को खम्भे से बाँध दिया कि कहीं भाग न जाये।

भगवान् विष्णु सर्व व्यापक हैं। सभी का खेल देख रहे हैं। अपने भक्तों का तथा अपने शत्रुओं का भी। भगवान् ने अपनी व्यापकता प्रकट करने के लिए जिस खम्भे से प्रह्लाद को बाँधा था, उसी खम्भे में नृसिंह रूप में आकर प्रवेश हो गये। भगवान् स्वयं की लीला ही देख रहे हैं तथा स्वयं ही खेल रहे हैं। माया मोह से ग्रसित मानव-दानव बेचारे क्या जाने ? प्रह्लाद को मारने के लिए हिरण्यकश्यपु ने खड़ग उठाया और पूछा- अब बताओ तुम्हारे विष्णु कहाँ हैं ? पहले मैं तुम्हारे विष्णु को मारूँगा, फिर तुम्हें तथा तुम्हारे

अनुयायियों को। अब बताओ–इस भयंकर खड़ग से तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? प्रह्लाद ने कहा सुनो–

मोह में तोह में, खड्ग में, रहे खम्भ के मांही।
हरि विना खाली है नहीं, तव कर कोप डराहि।।

प्रह्लाद तुम क्या बोलते हो? क्या वह तुम्हारा विष्णु इस खड्ग, खम्भे तथा मेरे में भी है? यदि है, तो ठीक है। मैं एक बार विष्णु को खोजने के लिए बैकुण्ठधाम गया था, वहाँ तो मिले नहीं, किन्तु अब मेरा कार्य बन गया है। तुम्हारे कथनानुसार मैं प्रथम विष्णु को मारूँगा, मेरे भाई का बदला लूँगा। फिर तुम्हें मारूँगा।

हे शिष्य वील्ह! जिनकी मृत्यु निकट आ जाती है, वह इसी प्रकार से प्रलाप करता है। क्या यह प्रलाप इस समय करना उचित था। किन्तु मानव का स्वभाव है। मृत्यु निकट आने पर वह तो कुछ-कुछ बकता ही रहेगा। हिरण्कश्यपु क्रोध के वशीभूत था। जोर से खड्ग द्वारा खम्भे पर प्रहार किया। खम्भ टूट गया, प्रह्लाद का बंधन खुल गया। उसी खम्भे में से भयंकर गर्जना करते हुए भगवान् विष्णु ही नृसिंह रूप में प्रकट हुए। आधा नर, आधा सिंह, बड़ा ही विचित्र रूप था।

हिरण्यकश्यपु ऐसा विचित्र रूप पहली बार ही देख रहा था। आश्चर्यचकित होकर घबराने लगा। थर-थर काँपने लगा। खड्ग हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। क्योंकि मृत्यु को साक्षात् देख रहा था। मारने तो दूसरों को चला था, किन्तु देख रहा है स्वयं की मृत्यु को। थोड़ी देर के लिए तो भगवान् ने क्रीड़ा की और अन्त में हिरण्यकश्यपु को थका हुआ मानकर उसे मारने से पूर्व कुछ वार्ता करने लगे।

भगवान् नृसिंह ने पूछा–हे दैत्यराज! अब बताओ कौन किसको मारेगा? तुमने तपस्या करके जो ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था, अजर-अमर होने के लिए, क्या इस समय वे वरदान पूरे नहीं हो रहे हैं? यह देख मैं कौन हूँ? नर हूँ या नारी? पशु हूँ या मानव? कोई शस्त्रधारी देव या दानव? अब बता तेरे को मारूँ या रुक जाऊँ।

तुमने माँगा था कि दिन में न मरूँ, रात्रि में न मरूँ। अब बताओ यह दिन है या रात्रि? इस समय तो यह संध्या वेला है। न तो दिन और न ही रात्रि। तुमने कहा था, न बाहर मरूँ न अन्दर। किन्तु तुम इस समय चौखट पर हो न तो अन्दर और न ही बाहर। तुमने कहा था कि शस्त्र से न मरूँ। इस समय मेरे पास कोई शस्त्र नहीं है, केवल नाखून ही हैं।

हे दैत्यराज! तुमने कभी इस रूप की कल्पना भी नहीं की होगी। तू अजर-अमर होकर घर आ गया तथा अत्याचार करने लगा। स्वयं को ही सभी कुछ मानने लगा। अभी मैं तेरे को मारता हूँ। ऐसा कहते हुए नृसिंह ने अपने तीखे नाखूनों से दैत्यराज हिरण्यकश्यपु की छाती चीर डाली।

भगवान् ने ऐसा भयंकर रूप धारण किया, ऐसा जानकर देवता लोग भी इस नवीन रूप का दर्शन करने आये। किन्तु किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि भगवान् के विकराल रूप के सामने खड़ हो सकें। स्तुति कर सके। देवताओं ने लक्ष्मी से कहा– हे देवी! तुम नित्यप्रति भगवान् की सेवा करती हो। सामने जाकर स्तुति करो, जिससे भगवान् प्रसन्न हो सके। यदि इस प्रकार के रूप को शांत नहीं किया, तो सम्पूर्ण संसार को लील जायेंगे। लक्ष्मी की भी हिम्मत नहीं हुई कि सामने जा सके। न जाने क्या हो? आज भगवान् बड़ी ही विकराल अवस्था में है।

लक्ष्मी ने कहा–बेटा प्रह्लाद! अब तो तुम्हीं हमारे एक सहारे हो, तुम पर भगवान् अतिप्रसन्न है, स्तुति करो। इन्हें यथास्थिति में लाने का प्रयत्न करो। प्रह्लाद ने भगवान् का उत्तम श्लोकों द्वारा स्तुति गायन किया,

तब भगवान् प्रसन्न हुए।

प्रह्लाद को अपनी गोदी में बिठाया और कहा-बेटा! तुमने बहुत कष्ट उठाये। मैं जल्दी नहीं आ सका। मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम जो कुछ भी माँगोगे, वही मैं दूँगा। तुमने भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। तुमने सत्य का मार्ग पकड़ा है। कष्टों में भी तुमने धर्म को नहीं छोड़ा। तुम सच्चे भक्त हो। जो कुछ भी हो, अवश्य माँगो। प्रह्लाद ने हाथ जोड़ते हुए विनती की-

हे दीनानाथ! आपके सिवाय मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। आप ही मिल गये, तो मुझे सभी कुछ मिल गया। मेरे पिताजी अज्ञानतावश आपसे विरोध करते रहे हैं। आपसे विमुख हो जाने से उनकी कहीं दुर्गति न हो जाये। मेरे पिताजी को सद्गति मिले।

भगवान ने कहा-हे प्रह्लाद! कोई जीव भगवान् से भले ही विमुख हो जाये, किन्तु उनका ईश्वर कभी उनसे विरुद्ध नहीं होता। वह तो सभी का पालन-पोषण करता है। वह कैसे विरुद्ध होगा। तुम्हारे जैसे जिनके पुत्र हो, उन्हें सद्गति का संशय नहीं होना चाहिए। तुम्हारे पिता तीन युगों में तीन बार जन्म लेंगे। एक तो पूरा हो चुका है, अभी उनके दो जन्म और बाकी हैं। तीसरे जन्म में उनकी गति सुनिश्चित है। ऐसा ही उनके भाग्य का खेल है। उनकी चिंता तुम छोड़ो, तुम अपनी बात करो।

हे भगवन्! मेरे पिता तो अवश्य ही अन्यायकारी थे, किन्तु उनकी प्रजा 33 करोड़ है। उनका तो उद्धार होना ही चाहिये। ये तो बेचारे निरपराधी हैं। इस लोक में कोई भी व्यक्ति दु:खी न हो। ऐसा वरदान मैं माँगता हूँ। नृसिंह भगवान् ने बतलाया कि इस समय सतयुग में तो तुम्हारे साथ पाँच करोड़ का ही उद्धार होगा। तुम्हारे पक्के अधिकारी शिष्य तो इस समय पाँच करोड़ ही हैं। इस समय तो तुम इनसे ही संतोष करो। त्रेतायुग में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र होंगे, उनके साथ सात करोड़ का उद्धार हो जायेगा। द्वापर युग में धर्मात्मा युधिष्ठिर होंगे, उनके साथ नौ करोड़ का उद्धार हो जायेगा। कलयुग में ऐसा धर्मात्मा-सत्यवादी राजा होना असंभव है। उस समय मैं स्वयं ही आऊँगा और शेष 12 करोड़ का उद्धार करूँगा। इस समय तो केवल पाँच करोड़ का ही उद्धार हो सकेगा। भगवान् नृसिंह का आश्वासन सुनकर प्रह्लाद अतिप्रसन्न हुए। जय-जयकार करने लगे।

अपने पिता की मृत्यु का कुछ भी शोक नहीं किया। भगवान् नृसिंह कहने लगे-प्रह्लाद! अब तक तुमने अपने लिए भी कुछ नहीं माँगा। कुछ अपने लिए भी तो माँग लो। प्रह्लाद कहने लगा- हे देव! मैं अपने लिये क्या माँगू? मुझे आप मिल गये तो सभी कुछ मिल गया। हे देव! आपकी भक्ति सदैव बनी रहे, यही मैं आपसे माँगता हूँ।

भगवान् ने कहा-यह तो पहले से ही तुम्हारे पास है। किन्तु मैं तुम्हें उपहार रूप में कुछ देना चाहता हूँ। इस समय तुम्हारे पिता की मृत्यु हो चुकी है। प्रजा राजा विहीन हो गयी है। अब तुम राज करो। यह मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। इसे तुम स्वीकार करो। नीति से राज करते हुए प्रजा का पालन करो। प्रजा को सुख प्रदान करो। तभी तुम्हारे अन्य वरदान सफल होंगे। ऐसा कहते हुए भगवान् नृसिंह अन्तर्ध्यान हो गये।

वील्हा ने अपने गुरु नाथाजी से पूछा-हे गुरुदेव! अब आगे मैं प्रह्लाद पंथ के विस्तार की कथा एवं प्रह्लाद कुल परम्परा सुनना चाहता हूँ। भगवान् तथा भक्त की लीला श्रवण करने से मेरी श्रद्धा-भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है।

नाथोजी उवाच- नाद तथा बिन्द यह दो प्रकार की परम्परा चलती है। प्रह्लाद का यह पंथ नाद परम्परा से है। इसका विकास क्रमशः हुआ है। इस समय का अंतिम पड़ाव, यह बिश्नोई पंथ है। जिसको मैं विस्तार

से आगे बतलाऊँगा। गुरु शिष्य को नाद-मंत्र ही देता है। प्रह्लाद ने अपने शिष्यों को नाद-मंत्र ही दिया था। इसलिए यह विश्नोई नाद परम्परा है। इस परम्परा में कुल जाति का महत्व नहीं है।

बिन्द परम्परा पिता के वीर्य-बिन्द से संतान होती है, जिनका शरीर से सम्बन्ध है। वह शरीर जिस कुल में पैदा होगा, वह उसी कुल का हो जायेगा। प्रह्लाद की बिन्द परम्परा में-प्रह्लाद के विरोचन (बहलोचन) हुए। ये भी प्रह्लाद जैसे ही धर्मात्मा थे। विरोचन एक बार ब्रह्माजी के पास ज्ञानप्राप्ति हेतु गये थे, साथ में इन्द्र भी गये थे। दोनों को प्रजापति ने ज्ञान दिया था। दोनों ही ब्रह्मज्ञानी बनकर लौटै थे।

राक्षस कुल में जन्म लेने से विरोचन अधूरा ही ज्ञान प्राप्त कर सका था। वह संसार एवं शरीर को ही आत्मा समझकर अपने को ब्रह्मज्ञानी मानने लगा था। इन्द्र देवता होने से पूर्णरूपेण आत्मज्ञान को प्राप्त कर सका था। यही देव और दानव में अन्तर है। विरोचन के पुत्र राजा बलि हुए। बलि ने अपने ऐश्वर्य-शौर्य से देवताओं को पराजित करके सम्पूर्ण राज्य प्राप्त कर लिया। बलि अनेक यज्ञ करके राज्य को स्थिर करने की अभिलाषा से प्रयत्नशील थे।

देव माता अदिति अपने पति कश्यप ऋषि के शरण गयी और अपने बेटे देवताओं की दुर्दशा देखकर रोने लगी। कश्यप ने कहा- देवी! धैर्य धारण करो। किसी भी प्रकार से देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णु को प्रसन्न करो। वही तुम्हारे कष्ट को दूर करेंगे।

अदिति ने बारह दिनों तक पयोव्रत किया। केवल दुग्ध आहार लेकर भगवान् की आराधना की। भगवान् प्रसन्न हुए और सामने साक्षात् प्रकट होकर वरदान दिया। अदिति ने भगवान् को ही पुत्र रूप में माँग लिया। समय आने पर भगवान् विष्णु ही बावन रूप में प्रकट हुए। देवताओं ने खुशियाँ मनाई। अपना उद्धारक स्वयं भगवान् ही बावन रूप में प्रकट हुए हैं। अब हमारा खोया हुआ राज्य अतिशीघ्र ही वापिस दिला देंगे। बावन भगवान् ने ब्रह्मचारी रूप में राजा बलि की यज्ञशाला में प्रवेश किया। बलि तथा अन्य लोगों ने देखा कि प्रदीप्त अग्नि की तरह यह कोई बाल सूर्य हो सकता है या स्वयं भगवान् विष्णु ही आज तो ब्रह्मचारी बनकर यज्ञशाला में पधारे हैं। सभी ने स्वागत किया। बलि ने आगे बढ़कर चरणों को धोया और यज्ञशाला में प्रवेश करवाया।

हाथ जोड़कर विनती करते हुए पूछा-आप हमारे अतिथि हो, आईये, बैठिये। जल-पान ग्रहण कीजिए। भगवान् बावन ने कहा-अच्छी बात है राजन्! आपने बैठने के लिए कहा है। किन्तु मैं बैठूँ कहाँ? आप प्रह्लाद के पौत्र होकर केवल वचनों द्वारा ही आदर नहीं करते? बैठने के लिए स्थान-भूमि भी देते हैं।

बलि ने बड़े गर्व से कहा-आपको भूमि चाहिये। कहो कितनी चाहिये? गाँव,नगर,देश या सभी धरती, राज्य आपको दे दूँ। मैं आपको दूँगा। जितना भी माँगोगे उतना ही दूँगा।

बावन बोले- हे बलि! इतना अंहकार करना अच्छा नहीं होता। मुझे तो तीन पैंड धरती दे दो। बहुत है मेरे लिए। मैं उसमें बैठ सकूँ। शयन कर सकूँ। मैं कोई लालची ब्रह्मचारी नहीं हूँ।

बलि ने कहा-हे भगवन्! इस प्रकार से थोड़ी भूमि माँगकर मुझे लज्जित न करें। उतनी धरती तो अवश्य ही माँग लो, ताकि अन्यत्र कहीं दूसरी जगह माँगने के लिए जाना न पड़े।

भगवान् ने कहा-केवल बातें करने से क्या होता है? पहले इतनी भूमि देने का संकल्प करके दे दो। बलि ने ज्योंहि तुरंत संकल्प करने के लिए जल उठाया, त्योंहि दैत्यगुरु शुक्राचार्य आ गये। बलि को समझाया-रे बलि! इसे देने का संकल्प मत कर, यह तुम्हे छोटा सा दिखता है किन्तु जब बढ़ने लगेगा तो तू इनकी पूर्ति नहीं कर सकेगा। तू जानता है कि यह कौन है? ये तो साक्षात् विष्णु हैं। तुम्हें ठगने के लिए आये

हैं। अभी ही ना कर दे, आखिर तो ना कहना ही होगा।

बलि कहने लगा-हे गुरुदेव! आपकी बात तो सत्य है। किन्तु मैंने देने को कह दिया है। अब मैं ना कैसे कह सकता हूँ। बलि ने गुरु की बात नहीं मानी। हाथ में जल लेकर संकल्प कर लिया।

बलि ने कहा-हे देव! अब तीन पैण्ड भूमि नाप लीजिये! उसी समय ही बावन भगवान् ने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। देखते ही देखते तीन लोकों में व्याप्त हो गया। एक पैण्ड से सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली। दूसरे पैण्ड से स्वर्ग को नाप लिया। अब तीसरा पैर कहाँ रखे।

भगवान् ने गरुड़जी को आज्ञा दी। इस बलि को बाँध दिया जावे। बलि बँधन में आ गया। भगवान् ने कहा-अब तो तू कह रहा था कि थोड़ी और ले लो, अब इसको ही पूरी कर दो।

बलि कहने लगा-हे नाथ! आपकी महिमा आप ही जानो। अब तो मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। यह शरीर मेरा है। इसे नाप लीजिये। भगवान् ने बलि के पीठ पर पाँव रखा और उसे सुतल लोक में भेज दिया। बलि ने भगवान् के चरण पकड़ लिए।

बोले-अब कहाँ जाओगे? मैंने सर्वस्व आपको समर्पित कर दिया। भगवान् भी भक्त के वशीभूत हो गये। वहीं सुतल लोक में बलि के पास रहने लगे। इधर लक्ष्मी ने देखा कि भगवान् लौटकर नहीं आये। क्या बात है? लक्ष्मी भगवान् को छुड़ाने के लिए बलि के द्वार पहुँची। बलि के रक्षा सूत्र बाँधकर भाई बनाया और भाई से पुरस्कार रूप में विष्णु को छुड़ाकर ले आयी।

जाते समय बलि ने कहा-बहन! भगवान् विष्णु चार महीने तक मेरे पास रहे हैं, इसलिए सदा-सदा के लिए आगामी भी इसी प्रकार से मेरे यहाँ सुतल लोक में रहेंगे। बाकी आठ महीनों के लिए बहन तुम अपने पति परमेश्वर को ले जाओ। इनकी सेवा करो।

उस सुतल लोक से चलते हुए भगवान् ने कहा-हे बलि! तुम्हारा दिया हुआ परम दान व्यर्थ में नहीं जायेगा। इस समय तो यहीं सुतल लोक में राज्य करो। समय आने पर तुम्हें पुन: स्वर्ग का राज्य दिया जायेगा। तुम अवश्य ही इन्द्रपदवी से विभूषित होगे।

बलि का बेटा बाणासुर था। जिसने भगवान् कृष्ण से युद्ध किया था। भगवान् कृष्ण ने बाणासुर को पकड़कर छोड़ दिया था। बलरामजी ने कहा- हे कृष्ण! तुम बहुत ही भूल करते हो। काबू में आए हुए इस बाणासुर को मारा क्यों नहीं? बार-बार इसे कैसे छोड़ देते हो?

भगवान् कृष्ण ने कहा-हे बलराम! तुम्हें मालूम नहीं है। यह दैत्य प्रह्लाद कुल में जन्मा है। मैंने भक्त प्रह्लाद को वचन दिया था कि मैं तुम्हारे कुल में जन्म लेने वाले किसी को भी मारूँगा नहीं। उन्हें दिए हुए वचनों को निभाते हुए मैं इसे छोड़ रहा हूँ। ऐसा कहते हुए बाणासुर को छोड़ दिया था।

हे वील्ह! यह वंश परम्परा प्रह्लाद की बिन्द से चली है। अब मैं तुम्हें आगे प्रह्लाद की नाद परम्परा यानी शिष्य परम्परा के बारे में बताऊँगा। इसी परम्परा से बिश्नोई पंथ जुड़ा हुआ है।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने त्रेतायुग का प्रतिनिधित्व किया था। इनके पिता त्रिशंकु नाम के राजा थे। इन्हीं त्रिशंकु ने अपनी परम्परा का धर्म छोड़कर विश्वामित्र को गुरु धारण कर लिया था। उसे सशरीर स्वर्ग जाने का लोभ था। इसलिए अपनी परम्परा के गुरु वशिष्ठ को त्याग दिया था। विश्वामित्र को गुरु बना लिया था। विश्वामित्र ने तपस्या के तेज से त्रिशंकु को ऊपर उठाया। उधर स्वर्गवासी देवताओं ने देखा कि मृत्युलोक का दुर्गन्ध वाला प्राणी आ रहा है। देवताओं ने वापिस नीचे धकेला। विश्वामित्र ने ऊपर उठाया। त्रिशंकु न ही ऊपर जा सका और न ही नीचे आ सका। बीच में ही लटक गया।

जो अपने निजधर्म को छोड़कर दूसरों के धर्म को अपनाता है, उसकी यही गति होती है। उसी त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र त्रेतायुग में अपने पिता के राज्य का अधिकारी बना। हरिश्चन्द्र ने धर्मनीति से प्रजा का पालन किया।

एक समय देव, ऋषि, दानव, मानवों की विशेष धर्मसभा हुई, जिसमें विचार रखा गया कि मानवों के लिए विशेष आचार संहिता-नियम निर्धारित किये गये हैं। उन नियमों में से एक विशेष नियम है कि सत्य बोलो। इस नियम का पालन होना अतिकठिन है या ऐसे कहें कि असम्भव है। मानव होकर इस नियम का पालन कर सके, यह कहना ही असत्य कहना है। यदि इस नियम का पालन नहीं हो सके तो, आचार संहिता से यह नियम निकाल दिया जाए। ऐसी कुछ वार्ताएँ विश्वामित्र ने बड़े ही गर्व से कही। उसी सभा में वशिष्ठजी भी बैठे हुए थे। वशिष्ठ ने खड़े होकर विश्वामित्र की बात का खण्डन करते हुए कहा- हे राजर्षि! यह बात आप न करे। आपको ऐसी बात शोभा नहीं देती। मेरा शिष्य सत्यवादी हरिश्चन्द्र है, वह इस समय अयोध्या का राजा है। वह सत्य ही बोलता है। सत्य का ही पूर्णरूपेण आचरण करता है। हरिश्चन्द्र जैसे पुण्यात्मा इस धरती पर ही निवास करते हैं, जिनकी वजह से यह धरती टिकी हुई है।

विश्वामित्र कहने लगे-यह कैसे हो सकता है कि वशिष्ठ का शिष्य हरिश्चन्द्र पूर्णतया सत्य का पालन करता है। जब तक परीक्षा में पास न हो जाये, तब तक मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। जब तक सोने को तपाकर न देखें तब तक खरे-खोटे का पता नहीं चलता। इस बात को विश्वामित्र ने भरी सभा में कहा-मैं अभी जाऊंगा और हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा करूँगा। जैसे तैसे ही सत्य से डिगाऊँगा, सोने को तपाऊँगा। अनेकों कष्ट दूँगा। कष्टों में भी सत्य को न त्यागे, तभी मैं स्वीकार करूँगा। इससे मैं सत्यवादी की महिमा को बढ़ाऊँगा। परम धर्म सत्य को हरिश्चन्द्र के द्वारा उजागर करूँगा, ऐसा विचार करते हुए विश्वामित्र सभा से प्रस्थान कर गये तथा वहाँ की सभा भी विसर्जित हो गयी।

राजा हरिश्चन्द्र अपने राज्य में रहते हुए नियम का पालन कर रहे थे। उसी समय ही एक सेवक समाचार लेकर आया। राजा ने आने का कारण पूछा। सेवक ने बतलाया कि आपके बगीचे में एक जंगली जानवर प्रवेश कर गया है। हमने उसे भगाने की बड़ी कोशिश की है। वह तो बड़ा ही भंयकर सूअर मालूम पड़ता है, निकलता ही नहीं है। सम्पूर्ण बाग का विध्वंश कर दिया है। आप शूरवीर शासक प्रजापालक हैं। उससे हमारी तथा आपके बगीचे की रक्षा कीजिए। हम आपकी शरण में हैं।

राजा हरिश्चन्द्र ने शस्त्र तैयार किया और घोड़े पर सवार होकर उस सूअर को अपनी सीमा से बाहर भगाने हेतु प्रस्थान किया। सुवर ने राजा को आते हुए देखकर वन में भागना प्रारम्भ किया। आगे सूअर-पीछे

हरिश्चन्द्र।

वह सुअर घने वन में राजा को ले गया और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गया। राजा ने देखा कि न तो वहाँ सुअर है और न ही अपने राज्य की सीमा, मार्ग तथा दिशा का ही ज्ञान है। घने वन में राजा अकेला हो गया। राज्य का कुछ पता नहीं है। किधर से आये और कहाँ जाये ? राजा स्वयं बेहाल हो गया। भूख-प्यास भी सताने लगी। उसी समय वही सुअर जो स्वयं विश्वामित्र थे, एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में सामने प्रकट हुए। वृद्धावस्था के कारण हाथ-पैर काँप रहे थे।

हरिश्चन्द्र ने देखा कि यह दुर्बल काया वाला वृद्ध ब्राह्मण अति दीन-दु:खी है। साथ में अन्य कोई सहायक नहीं है, किन्तु एक कन्या पीछे चली आ रही है। यह बेचारी कन्या इसका क्या सहयोग करेगी ?

हरिश्चन्द्र ने पूछा-हे ब्राह्मण! आप इस निर्जन वन में कहाँ से आ रहे हैं ? आपके पीछे-पीछे चलने वाली यह कन्या क्या आपकी बेटी है ? जो इस प्रकार वृद्धावस्था में आपको प्राप्त हुई है। क्या इसी वजह से ही आप दु:खी हो रहे हो ? क्या इसके माता-भाई, बन्धु आदि नहीं है ? आप ही केवल मात्र सहारे हैं।

वृद्ध ब्राह्मण ने लम्बी-लम्बी श्वासें खींचते हुए, अपने भाग्य को कोसते हुए राजा की बात को स्वीकृति प्रदान की और कहा कि- हे महाराज! मैं आप से अपने दुर्भाग्य के बारे में क्या कहूँ ? मैं कंगाल हूँ, मेरे पास धन नहीं है। इस संसार में जो कंगाल की दुर्गति होती है, उसे आप नहीं जानते। आप तो राजपुत्र हो, आप क्या जानें धनहीन व्यक्ति की दुर्दशा को। इस कन्या का विवाह लग्न तय कर दिया है। विवाह का समय आ चुका है। बिना धन के मैं कन्या दान कैसे करूँ ? यदि यह समय व्यतीत हो गया तो मेरी बेटी आजन्म कुंवारी ही रह जायेगी। हम तो इसी प्रयोजन हेतु आपके पास ही आ रहे थे। अच्छा हुआ कि आप यहीं मार्ग में मिल गये। अब आप जैसा चाहें वैसा करें, आप स्वयं ही समर्थ हैं।

राजा हरिश्चन्द्र ने कहा-हे याचक! अब जल्दी करो। मुझे भूख-प्यास लगी है। वापिस नगरी में भी जाना है। पहले मैं कन्यादान करूँगा, फिर अन्न जल ग्रहण करूँगा। इस विपत्ति काल में जो कुछ भी तुम माँगोगे, वही मैं तुम्हें दूँगा, ना नहीं कहूँगा। उसी समय ही विश्वामित्र तुरंत अपनी विद्या द्वारा वहीं पर दूल्हा बन गये तथा स्वयं ही पुरोहित बनकर, लकड़ियाँ चुनकर अग्निदेव को प्रज्ज्वलित किया और हवन करने के लिए बैठ गये। वेद मंत्र पढ़कर अग्नि की परिक्रमादिक सभी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न करवा दिए।

उस पुरोहित ने कहा-अब कन्यादान की शुभ वेला है, इस समय हे राजन्! आप हमारे यजमान हैं। कन्या दान करें तथा पुण्य का भागी बनें। हरिश्चन्द्र ने स्वाभाविक रूप से कहा- यह कन्या एवं वर दोनों जो कुछ भी माँगेगे वही मैं अवश्य ही दूँगा। आप नि:संकोच होकर माँगिये। मैं अवश्य ही आपकी भावना पूरी करूँगा। मैं स्वयं न जाने क्या दूँ ? आप लोग पता नहीं क्या चाहते हैं ? आवश्यकता के अनुसार दिया हुआ दान ही सात्विक होता है।

उसी समय दूल्हा-दूल्हन ने राजा से छल किया और सम्पूर्ण राज्य ही माँग लिया। उन्होंने कहा-जहाँ तक आपके राज्य की सीमा है, वहाँ तक राज हमें दे दीजिए और अपने वचनों को सत्य कीजिये। हरिश्चन्द्र ने हाँ कहते हुए देना स्वीकार किया और कहा-मेरे राज्य में चलो। वहीं पर मैं भी सभी कुछ दूँगा। इस समय मैं भूख-प्यास से बेहाल हूँ। मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। वहाँ पर चलने से ही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा। ऐसा कहते हुए उन सभी को अपने साथ अयोध्यानगरी में ले गये। वहाँ जाकर राजा ने अन्न जल ग्रहण किया। राजा सचेत हुए। किन्तु अब क्या हो सकता था ? वह तो स्वप्न जैसी बात हो गयी थी।

उन पुरोहित, वृद्ध ब्रह्मण तथा वर वधू ने राजा से कहा- अब राजन् देर नहीं कीजिये। अपने वचनों को

पूरा कीजिये। आप हमें अतिशीघ्र खजाने की चाबी, राजपाट सम्पूर्ण धरती, धन-धान्य है, वह सभी कुछ सौंप दीजिये अथवा अपने वचन असत्य कर दीजिये। हम ज्यादा आपकी प्रतीक्षा नहीं करेंगे। राजा ने सहर्ष राजखजाने की चाबी उनके हाथ सौंप दी और सम्पूर्ण राज्य का दान कर दिया। दान करके उनके ऋण से उऋण हो गये।

उसी समय पुरोहित ने कहा-हे राजन्! आप ही तो हमारे यजमान कन्या दानदाता हैं। इतना बड़ा दान आपके सिवाय कौन कर सकता है। आप महादानी सत्यवादी हैं। मैंने पुरोहित का कार्य किया है, किन्तु मुझे दक्षिणा नहीं मिली है। आप मुझे दक्षिणा तो अवश्य ही दोगे। क्या बिना दक्षिणा के ही पुरोहित से कार्य करवा लिया ? आपसे ऐसी आशा नहीं थी। अब तक तो ज्यादा देर नहीं हुई है। क्षमा किया जा सकता है। अब आप मुझे श्रद्धानुसार दक्षिणा दीजिये।

हरिश्चन्द्र ने कहा-हे पुरोहित्! अब तो आप इस राज खजाने से ही दक्षिणा ले लें। मेरे पास तो अब देने को कुछ भी नहीं है। पुरोहित ने कहा, हे राजन्! आप जैसे धर्मज्ञ राजा को ऐसी बात नहीं करनी चाहिऐ। जब आपका राज ही नहीं रहा, तो आपको उसमें से देने का अधिकार ही क्या है ? आपने स्वयं ही वर वधू को सम्पूर्ण राज दान कर दिया है। तो फिर दुबारा दान कैसे किया जा सकता है ? अब तो आपको अपने पास से ही दान देना होगा। आप दोगे तो हम लेंगे, अन्यथा आप झूठे हो जाओगे। आज से आपको सत्यवादी कहलवाने का कोई हक नहीं होगा। हम तो अपना गुजारा कहीं अन्यत्र कर लेंगे, किन्तु आपके लिए यह बहुत ही अपमान जनक होगा।

हे पुरोहित! मुझे यह बतलाओ कि आपको दक्षिणा के रूप में मुझे क्या देना होगा ? मैं आपकी दक्षिणा पूरी करने में समर्थ हूँ या नहीं। पुरोहित ने बतलाया कि सवा सेर सोना कम से कम आपको मुझे देना ही चाहिये। इतने सोने की मुझे आवश्यकता भी है। घबराएँ नहीं राजन्। आपने इतना बड़ा दान किया है, तो दक्षिणा भी तो उतनी ही बड़ी होनी चाहिए। बड़े दान की बड़ी ही दक्षिणा।

हरिश्चन्द्र ने कहा-आप हमारे खजाने से दक्षिणा ले लीजिये। पुरोहित ने टोकते हुए कहा-हरिश्चन्द्र! यह तुम फिर भूल कर रहे हो। अब तुम्हारा खजाना भी कहाँ रहा। यह तो तुम पहले ही दान कर चुके हो। यदि तुम्हारे पास अपनी निजी कमाई से कुछ राज-खजाने में अलग रखा है, तो उसमें से दे दो। मैं अवश्य ही स्वीकार करूँगा। अन्यथा मैं तो जाता हूँ और आप सत्यवादी नियम से भ्रष्ट हो रहे हैं। यदि नियम में बंधकर रहना है, तो सत्य का पालन करें। आप झूठ बोलने का पाप मत उठायें। आप जैसे सत्यवादी से ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

हरिश्चन्द्र ने कहा-हे पुरोहित! अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। अपना निजी तो यह शरीर ही है। आप इसे ही बेच डालिये, किन्तु झूठ बोलने के कलंक से बचाइये। मैं सत्य नहीं छोड़ूँगा। असत्य का कलंक नहीं लगाऊँगा। मेरे रग-रग में सत्य-धर्म प्रवेश कर गया है। अब मैं इसे कैसे बाहर निकालूँ ? प्राणों का बलिदान देकर भी सत्य धर्म की रक्षा करूँगा।

सत्य-धर्म के लिए अब मुझे प्रिय पुत्र रोहिताश्व तथा धर्मपत्नी तारादेवी को भी बेचना होगा। अन्यथा इतने सोने की दक्षिणा पूरी कैसे कर पाऊँगा ? मैं इस धर्म संकट में फंस गया हूँ। अपना स्वयं का ही बलिदान मैं दे सकता हूँ। दूसरों का जीवन अधिकार छीनने का मुझे किसी प्रकार का हक नहीं है। उनकी इच्छा के बिना मैं उन्हें कैसे बेच सकता हूँ। पहले उनसे पूछ तो लूँ वे क्या कहते हैं ? अपनी धर्मपत्नी तारादेवी एवं पुत्र रोहिताश्व से हरिश्चन्द्र ने कहा-मेरा राज्य दान में चला गया है। अब मैं राजा नहीं रहा। इसलिए हे

देवी! तुम रानी कैसे हो सकती हो और तुम्हारा प्रिय पुत्र राजकुमार नहीं रहा। इस समय हम सभी सामान्य प्रजा हैं। अब आप लोग मेरे से सुख की उपेक्षा न करें। मैं तुम्हें किसी प्रकार का सुख नहीं दे सका। अब तो दु:ख की घड़ी आने वाली है। आपने सुख में तो मेरा साथ दिया किन्तु अब आने वाले दु:ख में भी साथ दोगे या नहीं ?

तारादेवी ने कहा-हे पतिदेव! आप चिन्ता न करें। मैं और मेरा बेटा रोहिताश्व आपका साथ नहीं छोड़ेंगे। सुख में तो सभी साथी होते हैं। किन्तु दु:ख की घड़ी में भी साथ निभाएँ, वही सच्चे अपने होते हैं। पत्नी तो सच्चा मित्र है। दु:ख की घड़ी में अपने पति के लिए ओषधि का काम करती है। सांत्वना देती है।

हे पतिदेव! आपने सत्य पालन का बीड़ा उठाया है, तो उस सत्य-नियम से हमें वंचित क्यों रखना चाहते हैं ? इहलोक-परलोक दोनों ही हम भी आपका साथ देकर सुधार सकते हैं। हमें भी सत्यपंथ के पथिक बनाइये। यह अपना लाडला बेटा अपने से अलग नहीं हो सकता। इसकी आप तनिक भी चिंता न करें।

पुरोहित ने अतिशीघ्र आकर कहा-हरिश्चन्द्र क्या सोच रहें हैं ? आप जैसे सत्यवादी के लिए इस प्रकार से आनाकानी नहीं करनी चाहिये। तुरंत फैसला लीजिए। हाँ या ना में उत्तर दीजिए। मुझे जल्दी जाना है। किसी दूसरे यजमान को देखना है। उदरपूर्ति के लिए कुछ तो करना ही होगा। कब तक मैं आपकी प्रतीक्षा करता रहूँगा ?

हे पुरोहित! अब तुम्हीं बताओ कि मैं इस धन की व्यवस्था कहाँ से करूँ ? यह अयोध्या नगर, खजाना, राज-पाट अब तो मेरे पास कुछ भी तो नहीं है। हे राजन्! अब भी आपके पास तीनों प्राणियों का शरीर तो है, इसे ही बेच डालिये और मेरी दक्षिणा दीजिये। यहाँ पर तो बेचना नहीं हो सकेगा किन्तु काशी, जो तीनों लोकों से न्यारी है, भगवान् शिव की नगरी है। उसमें जाकर अपने को बेच डालिये और मेरी इच्छा पूरी कीजिये।

पुरोहित की बात को स्वीकार करके तीनों प्राणी अयोध्या नगरी को छोड़कर चल पड़े। मार्ग में अनेकों कष्टों को सहन करते हुए तथा विश्वामित्र द्वारा दिए गए प्रलोभनों को अस्वीकार करते हुए आगे बढ़े। कई दिनों तक पैदल चलते हुए मार्ग में अनेकों कष्ट उठाते हुए सतपंथ के पथिक कुछ दिनों पश्चात् काशी पहुँच गये। दक्षिणा के लिए पुरोहित स्वयं विश्वामित्र भी साथ ही साथ चल रहे हैं। ये सत्यवादी अवश्य ही मेरी कामनापूर्ति करेंगे ही। फिर भी देखता हूँ, कहीं न कहीं तो अवश्य ही जवाब देंगे, ना कहेंगे, अधिक कष्टों में हो सकता है, सत्य को छोड़ दें।

काशी नगरी अभी अपरिचित है। यहाँ कौन जानता है कि यह अयोध्या का राजा है ? यह अपने आप को तथा अपने परिवार को बेचने के लिए गली-गली में भटक रहा है। यह अपने आपको बेचने के लिए आया हुआ व्यक्ति क्या पता कितने रुपये माँग रहा है ? यह हमारे काम का है या नहीं। कई दिनों का भूखा प्यासा होने से दुबला दिखता है। यह दुर्बल व्यक्ति क्या कार्य कर पायेगा ? लोग भाव, मोलतोल करते हुए अनेकों शंकाएँ उठाते हैं।

मुफ्त में सेवा तो सभी चाहते हैं, किन्तु नकद स्वर्णमुद्रा देने को कोई तैयार नहीं। अच्छा सेवक सभी चाहते हैं, यदि मिल जाये तो कार्य सुचारू रूप से चले। कार्यक्षेत्र का विस्तार करे। किन्तु सच्चा व्यक्ति मिलना अतिकठिन है। हरिश्चन्द्र के लिए एक ग्राहक अवश्य ही मिला, भाव-तोल किया। सवा सेर सोना मूल्य अधिक होने से लेना अस्वीकार कर दिया। वह ग्राहक आधा ही देने को तैयार था।

हरिश्चन्द्र ने पूछा कि आप कौन हैं, मुझसे क्या कार्य करवायेंगे ? उस ग्राहक ने कहा-मैं श्मशान भूमि का

मालिक। जाति का डूम हूँ। मुर्दों का कर वसूल करके अपना जीवन निर्वाह करता हूँ। उसी आमदनी से मैं तुझे खरीद रहा हूँ और शमशान भूमि पर रखवाली करना ही कार्य विशेष होगा। गंगा किनारे आने वाले मृतकों का जो भी संस्कार करेगा, उसे बिना कर लिए अन्तिम संस्कार नहीं करने देना। गंगा किनारे मेरा घर है। वहीं से मैं तुम्हें अन्न वस्त्रादि दूँगा, श्मशान भूमि ही तुम्हारा निवास स्थान होगा। यदि यह कार्य में तुम राजी हो, तो ले लो सोने की मुद्रा और चलो मेरे साथ।

हरिश्चन्द्र ने देखा कि अन्य खरीददार ग्राहक तो यहाँ नहीं है। यह पुरोहित ज्यादा समय देना नहीं चाहता। मैं अभी बिक जाऊँ, किन्तु अब तक तो आधी दक्षिणा ही हुई है। आधी दक्षिणा की व्यवस्था अभी और करनी होगी। हरिश्चन्द्र ने कहा- हे डूमराज! थोड़ा रुकिये। मैं अभी अपने को आपके हवाले करता है। किन्तु पहले आधे धन की व्यवस्था मुझे और भी करनी है। अपनी प्राण प्रिया एवं पुत्र द्वारा जो कुछ मिलेगा वह पुरोहित को देकर उसके ऋण से उऋण हो जाऊँ।

यह तो विचित्र आदमी है। अपने को बेचकर ऋण चुका रहा है। वह भी दक्षिणा का। लोग तो कर्ज लेकर भी नट जाते हैं। वापिस नहीं लौटाते। धन्य है यह व्यक्ति! हमें इसे खरीदने के लिए मुद्रा देनी होगी, इसे खरीदकर कार्य करवाना होगा। सच्चा आदमी अच्छा होता है। कार्य करने में कोताही नहीं करता।

वह डूम कहने लगा-अब मैंने तुम्हें धन दे दिया। तू मेरा खरीदा हुआ दास है। जल्दी चल। कोई अन्य आ जायेगा, तो व्यर्थ ही भाव बढ़ा देगा। अभी चलता हूँ, ऐसा कहते हुए हरिश्चन्द्र ने आवाज लगायी- एक विपत्ति ग्रस्त व्यक्ति, जो अपने को तो बेच चुका है। अपनी पत्नी एवं बेटे को बेचना चाहता है। कोई लेने वाला हो, तो लेलो। नगद रकम चुकाओ और ले जाओ।

उसी समय ही एक पण्डित भीड़ को चीरता हुआ आया और कहने लगा-मेरी पत्नी से गृहकार्य होता नहीं है। उसे एक नौकरानी चाहिये। क्यों न थोड़ा सा धन देकर खरीद ले जाऊँ। अपनी पत्नी को प्रसन्न कर दूँ। रोज-रोज का झगड़ा समाप्त कर दूँ। हे परदेशी! अपनी भार्या को कितनी मुद्रा मे बेचेगा? अपनी भार्या को आधा सेर से कुछ ज्यादा में दे दूँगा। किन्तु एक शर्त होगी-यह मेरी भार्या पतिव्रता है, नियम के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगी। साथ में यह बच्चा भी रहेगा, यदि आपको स्वीकार है तो रकम दे दीजिए और इन्हें ले जाइये।

पण्डित ने कहा हे धर्मज्ञ! मेरे घर में मैं बूढ़ा ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी के सिवाय और कोई नहीं है। हम स्वयं धर्म के ज्ञाता हैं-हमारे घर के कार्य करने होंगे। जैसे भोजन बनाना, झाड़ू लगाना, पूजा-पाठ के लिए फूल चुनना आदि, गृहकार्य करते हुए पूजा पाठ में सहयोग प्रदान करना। बस इस कार्य हेतु हमें एक भृत्य की आवश्यकता है। मैं अभी आपकी माँग की पूर्ति करता हूँ और इसे ले जाता हूँ। हरिश्चन्द्र ने सवा सेर सोने में अपने को तथा अपनी धर्मपत्नी को बेचकर पुरोहित को सादर दक्षिणा प्रदान की तथा वहाँ से विदाई ली।

दोनों अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो गये। पुरोहित ने अपनी दक्षिणा ग्रहण करके वहाँ से विदाई ली। हरिश्चन्द्र श्मशान भूमि पर पहरा देते। काशी गंगा किनारे श्मशान भूमि में जहाँ पर मुर्दे आते हैं, रात-दिन का कुछ पता नहीं, कब कौन मरेगा? मरने वाला तो रात-दिन का हिसाब रखता ही नहीं है। मृतक को अपने घर कितनी देर रख पायेंगे। सभी को वहाँ पहुँचना होता है। केवल एक मृत्यु ही निश्चित है। हरिश्चन्द्र के लिए परीक्षा की घड़ी है। वह किस प्रकार से सत्य में स्थिर रह सकेगा। कभी न कभी तो थक जायेगा। सेवक धर्म को त्याग ही देगा। ऐसे समय की प्रतीक्षा विश्वामित्र कर रहे हैं। विश्वामित्र को कहीं भी कुछ भी सुराग नहीं मिल पा रहा है, जिससे धर्म से विमुख किया जा सके।

रानी तारा ब्राह्मण के घर सेवा करती है। रसोई बनाना, सफाई करना, बाग से पूजा के लिए फूल चुन करके लाना। जल लाना आदि कार्य कर रही है। हर प्रकार से अपने कार्य धर्म में अडिग है। अपने मालिक के प्रत्येक कार्य में प्रवीण है। तत्परता से सेवा में लगी रहती है। क्योंकि स्वेच्छा से यह धर्म स्वीकार किया है। सेवा करने में ही सुख मिलता है, तो भविष्य की कोई चिन्ता नहीं है।

विश्वामित्र से यह नहीं देखा गया। आगे अनेकों परीक्षाएँ लेने का विचार किया। एक दिन तारा जल लेने गंगाजी पहुँची थी, उसी समय हरिश्चन्द्र भी जल लेने आ गये थे। दोनों ही अधिक कष्ट सहन करने से कृशकाय हो गये थे। एक दूसरे को पहचानना भी कठिन था। हरिश्चन्द्र ने प्रार्थना की कि हे देवी! आप मुझे घड़ा उठवा दें, क्योंकि मैं दुबला हो गया हूँ। मुझमें घड़ा उठाने की भी ताकत नहीं है।

तारादेवी कहने लगी-हे पतिदेव! आप तो डूम के दास हैं, अब मेरे स्पृश्य नहीं हो। मैं एक ब्राह्मण के घर दासी हूँ। मैं घड़ा नहीं उठवा सकूँगी। मेरे मालिक ने मुझे आज्ञा दी है कि किसी से भी हमारा घड़ा का स्पर्श न होने पाये, यदि तुमने ऐसा किया तो तुम्हें कठोर दण्ड मिलेगा। इसलिए मैं घड़ा उठवाने में असमर्थ हूँ। मैं आप को एक युक्ति अवश्य ही बतला देती हूँ। आप गहरे पानी में जाइये, जिससे आपका जल से भरा हुआ घड़ा हल्का हो जायेगा और आप स्वयं ही उठा लीजिये। आप मुझे धर्म से न हटाइये। **धर्मो रक्षति रक्षितः**। हम धर्म की रक्षा करेंगे, तो धर्म भी हमारी रक्षा करेगा।

एक दिन कुँवर रोहिताश्व बगीचे में फूल तोड़ने के लिए गया था। पंडितजी ने पूजा के लिए फूल मंगवाये थे। वहाँ पर ज्यों ही रोहिताश्व ने फूल तोड़ने के लिए आगे हाथ बढ़ाया, वहीं पर स्वयं विश्वामित्र ही सर्प बन कर बैठे थे। उस सर्प ने रोहिताश्व को डस लिया। सर्प के डसते ही बालक के शरीर में विष फैल गया और अन्य बालकों के देखते ही देखते शरीर नीला पड़ गया तथा रोहिताश्व के प्राण पखेरू उड़ गये।

पंडितजी पूजा के लिए फूल लेकर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु आज तारा का बेटा लौटकर नहीं आया। दूसरे बालकों ने जाकर पण्डित तथा तारा को समाचार सुनाया। तुम्हारे पुत्र को तो सर्प ने डस लिया है। मृत शरीर वहीं पड़ा हुआ है। अब कभी भी फूल लेकर नहीं आयेगा। व्यर्थ में प्रतीक्षा न करें।

ऐसी अशुभ बात सुनकर तारा रोती, पीटती, चिल्लाती, विलाप करती हुई अपने पुत्र के मृत शरीर के पास पहुँची। उसे देखते ही व्याकुल होकर रोने लगी.........हे मेरे लाल! तुम कहाँ चले गये ? तुम ही तो मात्र एक सहारे थे। तुम्हारे पिता ने तो हमें त्याग दिया था। तुम भी मुझे नि:सहाय छोड़कर चले गये। यह बताओ पुत्र! तुमने हमें क्यों छोड़ा ? तुम्हारें पिता तो धर्मभीरू थे.........या धर्म के बन्धन में बंधे हुए थे। तुम कौनसे बन्धन में बंधे हुए थे ? अब तक तो तुम्हारी उमर ही कितनी सी है। अब तो तुम्हारे खेलने का समय है ना कि संसार से प्रस्थान करने का। मेरे लाल! तू सोया हुआ मालूम पड़ता है ? जग जाओ। उठ जाओ, मेरे बेटे! तुम्हारी दुखिया माँ तुझे पुकार रही है। प्रतिदिन की भाँति तुम्हारे साथी-मित्र खेलने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हे बेटा! मैंने कौन से पाप किये हैं, जिससे मुझे यह दुर्दिन देखने को मिला। माँ-बाप से पूर्व ही बेटा संसार से विदाई ले ले। यह तो बड़े ही दु:ख की बात है। यह असंभव संभव कैसे हुआ ? क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। यह तो कदापि नहीं हो सकता। थोड़ा सोचकर.........अभी तो उठ ही जायेगा, मुझे माँ कहकर पुकारेगा। मैं अभी अपने प्यारे पुत्र को गले से लगा लूँगी। कुछ देर प्रतीक्षा के पश्चात् भी वह नहीं उठा, तब फिर रोने लगी.......................। तू भी कैसी पगली है। क्या मरा हुआ भी कभी जिन्दा हो सकता है ? उठ। अब रोने का कुछ भी प्रयोजन नहीं है। जीव तो शरीर को छोड़कर चला गया, पीछे यह देह ही यहाँ

पड़ी है। मेरा इसमें क्या था ? जो शरीर मेरा था, वह तो अब भी मौजूद है। केवल जीव चला गया है। क्योंकि वह जीव मेरा तेरा कुछ भी नहीं था। जो था अब भी है, फिर भी रहेगा, मर भी नहीं सकता। सदा अजर-अमर अविनाशी के लिए रोना कहाँ तक उचित्त है ?

चलूँ........अपना कर्त्तव्य निभाऊँ। इस मेरे शरीर से उत्पन्न हुआ यह शरीर पड़ा हुआ है। इसकी दुर्गति हो रही है। इसे ले जाकर गंगा में प्रवाहित कर दूँ। मेरे पुत्र के शरीर की दुर्गति हो रही है। जिसको कंधा देने वाले इस अपरिचित जगह पर कोई नहीं हैं। कौन दु:खियारी दासी के बेटे को श्मशान तक ले जाने के लिए सहयोग करेगा ? ऐसी विपत्ति की घड़ी में भगवान् ही एकमात्र सहारा हैं। स्वयं ही अपने ऊपर विश्वास करूँ। ईश्वर ही मात्र अपना है। ऐसा कहते हुए मृत शरीर को कंधे पर उठाया और श्मशान भूमि पर चली।

कुल-देवता भगवान् सूर्य भी अस्ताचल हो गये हैं अन्यथा अपने कुल की दुर्गति देखकर दो आँसू तो अवश्य ही बहाते। विश्वामित्र ने देखा-यह रानी चली है बेटे का अन्तिम संस्कार करने के लिए। देखता हूँ कि किस प्रकार से अन्तिम संस्कार कर पाती है ? तारा अपने पुत्र के शरीर को कंधे पर उठाये हुए एक एक कदम आगे बढ़ी। संध्या वेला में वहाँ पर पहुँची थी। हरिश्चन्द्र पहरा दे रहे थे।

हरिश्चन्द्र आवाज लगाते हैं कि कोई भी व्यक्ति बिना कर दिए मुर्दे का संस्कार न करें। नदी में न बहाएँ। किनारे पर त्याग न करें और न ही जलायें। यहाँ का मालिक कालू स्याह है। मेरे मालिक की सख्त आज्ञा है, इसका पालन करें, अन्यथा दण्ड दिया जायेगा।

तारादेवी ने सुना कि यहाँ पर भी मृत शरीर का संस्कार करने के लिए कर चुकाना होगा। चुपके से छुपकर यदि मैं कोई अनहोनी बात करती हूँ, तो यह तो चोरी कही जाएगी। यह कार्य मेरे पतिदेव तथा हमारे कुल परिवार के लिए ही होगा। हमें अपने धर्म में अडिग रहना चाहिए। विपत्तिकाल में ही तो धर्म की परीक्षा होती है। यह आवाज देने वाला यहाँ आकर माँगे, तो मैं क्या दूँगी ? मेरे पास देने को तो कुछ नहीं है।

यहाँ पर पहरेदार तो मेरे पतिदेव ही होंगे। वे क्या मेरे से पैसे माँगेगे ? जैसा यह मेरा पुत्र है, वैसा इनका भी तो है। अपने ही पुत्र का स्वयं ही कर माँगे, यह कैसे हो सकता है ? इस प्रकार से श्मशान भूमि में बैठी हुई तारा विचार कर रही थी।

हरिश्चन्द्र, जिनका दुबला शरीर, हाथ में डण्डा लिये हुए मात्र एक धोती पहनी हुई, खबरदार कहते हुए वहाँ आ गये। हरिश्चन्द्र ने देखा-एक महिला बैठी हुई अपने भाग्य को रो रही है। पास में लाश पड़ी हुई है। कौन होगी यह अभागिन ? कौन है इसके पास ? जरा पास में जाकर पता करूँ ? बेचारी इस दुखिया की सहायता करूँ ?

हरिश्चन्द्र ने पास में जाकर पूछा-हे देवी ! तुम कौन हो ? जो इस प्रकार भयंकर दु:ख में पड़कर यहाँ इस समय भयंकर श्मशान भूमि में आयी हो। यहाँ तो रात्रि में भूत-प्रेत नृत्य करते हैं। जंगली जानवर रात्रि को आते हैं, बिखरी हुई हड्डियाँ चबाते हैं। यहाँ का दृश्य रात्रि में भयंकर हो जाता है। अंधकार का सन्नाटा छा जाता है। यहाँ तो कोई तब ही आता है, जब इनका कोई प्रियजन मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मैं तो यहाँ रात-दिन पहरा देता हूँ। मेरे मालिक का खरीदा हुआ दास हूँ। मेरा अपना कोई स्वतंत्र जीवन नहीं है। मेरे मालिक की आज्ञानुसार मुझे जीना होता है। अब तुम अपना परिचय दो, कौन हो ? यहाँ पर क्यों आयी हो ? अवश्य ही तुम्हारे पास मृतक शरीर है।

यहाँ तो रोज न जाने कितने शरीर आते हैं और भस्मी भूत होते हैं। क्या इस शरीर का कोई सगा सम्बन्धी-भाई-बन्धु जन नहीं है। जिससे तुम्हें लेकर यहाँ तक आना पड़ा। देवी ! अतिशीघ्र ही मुझे कर

चुकाओ और बालक के शरीर को गंगा में प्रवाहित करके वापिस लौट जाओ। रात्रि घनी होती जा रही है।

तारा ने पहचान लिया कि यह मेरे पति हैं। प्रकट में कहने लगी–मेरे सर्वस्व! आप अनजान व्यक्ति जैसी बातें क्यों करते हैं? मैं तो तुम्हारी प्राणवल्लभा रानी तारामती हूँ। यह मृत पड़ा हुआ शरीर और कोई नहीं है, आपका प्यारा पुत्र रोहिताश्व है। इसको संस्कार करने के लिए गंगा किनारे लेकर आयी हूँ। इसे तो काला डस गया। देखते हो, रंग नीला हो गया है। अब आपका इकलौता बेटा संसार में नहीं है। आप मुझसे कर माँग रहे हो। मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है, जो मैं आपके स्वामी का कर–धन दे सकूँ।

हे देव! जैसा मेरा पुत्र है, वैसा आपका भी तो यह पुत्र है। फिर भी आप मेरे से कर माँग रहे हैं। मेरे तो इसके कफन के लिए भी पैसे नहीं हैं। यह शरीर बिना कफन के ही है। हे देवी! मैंने माना कि तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो, और यह मेरा प्रिय पुत्र है। किन्तु इस समय मैं धर्म से बंधा हुआ हूँ। न तो मैं तेरा पति हूँ और न ही रोहिताश्व का पिता। मैं तो केवल दास मात्र हूँ। दास की स्वतंत्र विचार धारणा नहीं होती। जो मालिक का आदेश होगा, वही पालनीय होता है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता।

हे देवी! आप मुझे अपने धर्म से मत डिगाओ। मेरे मालिक का वचन है कि–किसी से बिना कर लिए छोड़ना मत। मुझे इस वचन का पालन करना है। चाहे मेरे प्राण भी चले जायें, तो परवाह नहीं है। धर्मो रक्षति रक्षित: हम धर्म की रक्षा करेंगे, तो धर्म हमारी रक्षा करेगा। इसलिए अतिशीघ्र ही कर चुकाओ और अपने पुत्र का संस्कार कर दो। मेरे पास कुछ देने को नहीं है। आप बिना कुछ लिए संस्कार करने नहीं देंगे। अब क्या होगा?

हे नाथ! आप ही हमारे धर्म की रक्षा कर सकेंगे। अब हमने तो सम्पूर्ण जीवन का भार आपके कंधे पर डाल दिया है। हे जगद् के स्वामी विष्णु! हमने अपनी ताकत को पूरी लगा दी, किन्तु विपत्ति में दिनों दिन फंसते ही गये हैं। अब तो आप ही हमारी नैया खेवणहार हो। आपके अतिरिक्त और तो कोई भी हमें सहायक दिखाई नहीं देता। सभी अपने–पराये बंधन में फंसे हुए हैं। स्वयं बंधा हुआ व्यक्ति, दूसरे के बंधन को कैसे काट सकता है? हे देव! आप ही हमारे सर्वश्रेष्ठ जीवन के आधार हैं। कृपा कीजिये? डूबती नैया को पार लंघा दीजिये।

विश्वामित्र ने देखा कि यह तारादेवी तो भगवान् विष्णु को याद कर रही है। कहीं ऐसा न हो कि भगवान् स्वयं आ जायें और इनका उद्धार कर दे तो मेरी योजना धरी की धरी रह जायेगी। अतिशीघ्र यहाँ से चलूँ और परीक्षा की अन्तिम विधि पूरी कर लूँ। ऐसा विचार करते हुए अतिशीघ्र ही काशी के राजा के पास पहुँचे और कहा–हे राजन्! तुम्हारे राज में बड़ा ही अन्याय हो रहा है। एक डायन श्मशान भूमि में बैठी हुई एक बच्चे की लाश को खा रही है, कोई भी इस अन्याय को रोकने वाला नहीं है। कितने बच्चों की माँ रोती बिलखती हैं, किन्तु यहाँ तो कोई सुनने वाला ही नहीं है। आप स्वयं चलिये, जाकर देखिये, मैं अभी देखकर आया हूँ।

राजा ने आज्ञा दी कि श्मशान भूमि का मालिक, जो वहाँ पर कर लेता है, उसे जाकर आज्ञा प्रदान करो कि उस डायन का काम तमाम कर दे। वह डायन जीवित नहीं रहनी चाहिए। यह राजाज्ञा उस डूम से जाकर कह दो। राजसेवकों ने डूमराज से राजाज्ञा कही। डूम ने तुरंत अपने दास हरिश्चन्द्र को आज्ञा दी कि....... यह मेरी आज्ञा है कि जो डायन शमशान भूमि में बैठी हुई है, उसे मार दे। अपने स्वामी की आज्ञा हरिश्चन्द्र ने सुनी और तुरंत खड्ग हाथ में लेकर तारा को मारने के लिए तैयार हो गये।

तारा ने कहा– जल्दी कीजिये! स्वामी जल्दी कीजिये! मुझ दुखियारी को मारकर अपना धर्म निभायें। मरने का मुझे कुछ भी दु:ख नहीं होगा। अपना राज, पति, पुत्र सभी खोकर अब संसार में जीना नहीं चाहती।

हे मेरे स्वामी ! मैंने तो अब सभी संसार से नाता तोड़कर, एक ही श्रीपति लक्ष्मी भगवान् विष्णु से नाता जोड़ लिया है। अब मुझे कुछ भी भय नहीं है। मैं अपने धर्म पर अडिग रही हूँ। आप भी धर्म को मत छोड़िये।

मुझे मारने से यदि धर्म बचता है, तो आप मेरे से भी धर्म की कीमत ज्यादा समझिये। यदि आपके पास धर्म मौजूद रहेगा, तो सत की बाँधी लक्ष्मी फिर मिल जायेगी। धर्म चला गया, तो सभी कुछ चला जायेगा। मुझे खुशी है कि मैंने धर्मरक्षार्थ प्राणों का बलिदान दे दिया। वे ही नर धन्य, जो धर्म की रक्षा करते हैं। जीव तो पुन: मिल जायेगा किन्तु धर्मपालन का अवसर बार-बार नहीं मिलेगा।

आप अतिशीघ्रता कीजिये। अपने धर्म का पालन कीजिये। आप कहीं मोहित न हो जाइये। मुझे इस बात का डर है कि कहीं मोहवश होकर धर्म का त्याग ही न कर दें। इस लिए मैं शीघ्रता के लिए कह रही हूँ।

जिस समय हरिश्चन्द्र ने खड्ग उठाया कि अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करूँ। विचार किया-मैं धन्य हूँ, जो मेरे धर्म की रक्षा करने में सहायक मेरी धर्मपत्नी आज मुझे स्वयं ही धर्म रक्षा का उपदेश दे रही है। यदि मेरी पत्नी, बेटा मुझे सहयोग न देते तो मैं कभी का फेल हो गया होता। धन्य हो देवी तारा ! तुमने इतने कष्ट सहन किये। मैं तुम्हें कुछ भी सुख न दे सका। मैंने अपनी पत्नी-बेटे को क्या दिया ? इस देवी ने महान् से भी महान् दु:ख झेला है। किन्तु कभी भी किसी प्रकार की शिकायत नहीं की। सभी कुछ अपने ही कर्मों का फल माना है। आज इस विषम परिस्थिति में मुझे डर था कि कहीं धर्म न छोड़ जाये। किन्तु अब मैं इस देवी की उदारता, धर्मपरायणता से प्रसन्न हो गया हूँ।

अब तो भगवान् ही इसकी रक्षा करें। मेरे वश की बात नहीं है। यह भयंकर खड्ग अब ही इसका जीवन छीन लेगा। एक की जगह दोनों मां-बेटों को मरा हुआ देखूँगा। कौन ऐसा बाप होगा, जो इस प्रकार का दृश्य देखकर जीवित रहेगा ? भले ही मुझे जीवित न रहना पड़े, किन्तु धर्म मुझे प्राणों से भी प्यारा है। पूर्णता से धर्म पालन करने का समय अब आ चुका है। परमात्मा मेरी रक्षा करें।

ऐसा विचार करते हुए हरिश्चन्द्र ने अपनी भार्या को मारने के लिए खड्ग उठाया। वार करने की तैयारी की। ज्यों ही वार करने लगे, त्यों ही जगत के पालन-पोषण कर्ता भगवान् विष्णु अकस्मात् प्रकट हुए और हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लिया।

भगवान् ने कहा-हे वत्स ! ऐसा ना करो ? यह तुम्हारी परीक्षा थी, पूर्ण हो गयी है। अब तुम दास नहीं रहे तथा तारा दासी नहीं रही। यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है तो देखो........ तुम्हारे मृतपुत्र को मैं अभी जिन्दा कर देता हूँ। ऐसा कहते हुए भगवान् ने कमण्डल से जल लेकर रोहिताश्व पर पानी छिड़का और कहा- बेटा ! खड़े हो जाओ। अब तुम्हारी निद्रा समाप्त हो चुकी है। आप तीनों ही प्राणी वापिस अपनी अयोध्या नगरी में जाओ। प्रजा आपकी प्रतीक्षा कर रही है। यह तो सभी कुछ विश्वामित्र का नाटक था। आप परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हो।

उसी समय ही वहाँ पर विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषिगण तथा देवता-मानवादि सभी उपस्थित हुए। सभी ने भगवान् के वचनों का ही समर्थन किया। विश्वामित्र ने माफी माँगी तथा कहा-हे राजन ! आप अब वापिस लौटिये ? आप जैसे सत्यवादी राजा की आवश्यकता है। मैंने आपको सत्य से डिगाने के लिए अनेकों उपाय किये, किन्तु आप सत्य पर दृढ़ रहे। मैं आज से घोषणा करता हूँ कि इस मृत्युलोक में नर-नारी भी पूर्णतया सत्य का पालन करने में समर्थ हैं। सत्य नियम शाश्वत है। इसे हटाया नहीं जा सकता। पालन किया जा सकता है। यह नियम ही सभी नियमों का मूल आधार है। ऐसे आधार को त्यागा नहीं जा सकता।

भगवान् विष्णु ने कहा-हे हरिश्चन्द्र ! मैं तुम्हारे पर बहुत ही प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने अनेकों कष्टों को सहन

करते हुए भी मेरी बनाई हुए मर्यादा को भंग नहीं किया। ऐसा भक्त ही मुझे अतिप्रिय है। ऐसे भक्तों को मैं सर्वस्व देने के लिए तैयार हूँ। हे हरिश्चन्द्र! तुम कुछ मेरे से अवश्य ही माँगो ? बिना कुछ दिए मुझे यहाँ आना अच्छा नहीं लगता।

हरिश्चन्द्र ने कहा– हे प्रभु! मुझे अपने धर्म के लिए कुछ भी नहीं चाहिये। आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं आपकी भक्ति करते हुए धर्म मर्यादा पर अडिग रह सकूँ और यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे यहाँ आने के पश्चात् मेरी प्रजा बहुत दु:खी हो गयी है, उन्हें प्रसन्न कीजिये।

हे प्रभु! पुन: आपसे प्रार्थना है कि इस प्रकार का भयंकर दु:ख किसी अन्य को मत दीजिये। वह कष्ट सहन नहीं कर पायेगा, टूट जायेगा। यदि दु:ख की अधिकता है, तो सम्पूर्ण दु:ख आप मुझे दे दीजिये। किन्तु मेरी प्रजा को नहीं। मैं आप से मिल सकूँ। जन्म मरण का बन्धन काट सकूँ। किन्तु अकेला नहीं। मेरी सात करोड़ प्रजा का भी उद्धार होवे, ऐसा वरदान दीजिए।

भगवान् बोले, हे राजन्! तुम्हारे में भक्तिभाव तो पूर्णरूपेण पहले से ही विद्यमान है। हे वत्स! इस भक्ति की वजह से ही तो तुमने सत्य का पालन करते हुए कष्ट उठाये हैं, किन्तु दु:खों की किंचित भी परवाह नहीं की। यह भाव आगे भी बना रहेगा। तुम्हारी कुल परम्परा में आने वाले सभी भक्त शूरवीर पैदा होंगे, जो यश कमायेंगे और प्रजा का पालन करेंगे।

हे भक्त! तुम स्वयं परोपकारी हो। दूसरे के दु:ख को देकर पिघल जाते हो। यही तुम्हारी महत्ता है और बनी रहेगी। यदि तुम्हें किसी प्रकार का दु:ख आयेगा तो भी तुम ज्ञानी हो, उस दु:ख को दु:ख ही नहीं समझते। ऐसा ज्ञान तुम्हारा सदा स्थिर रहेगा। इस समय तो तुम वापिस राज्य में जाओ। प्रजा का पालन करो। दुबारा तुम्हारा जन्म–मरण नहीं होगा। भगवान् के बैकुण्ठ लोक में मेरे पास ही निवास करोगे। अथवा भगवान् के पार्षद ही बन जाओगे या भगवान् की स्वरूपता ही ग्रहण कर लोगे।

इसकी तुम चिंता मत करो। मैं स्वयं ही तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम्हारी प्रजागण धीरे–धीरे सम्पूर्ण त्रेतायुग में उद्धार को प्राप्त हो जायेगी। अब तुम इस समय धर्म की स्थापना हेतु कलश की स्थापना करो। जिस–जिस को तुम मर्यादा का जल (पाहल) पिलाओगे, वे तुम्हारे अनुयायी–शिष्य हो जायेंगे। हो सकता है उन्हें–दो चार जन्म अभी और भी लेने पड़ सकते हैं। जैसी जिसकी योग्यता है वैसा ही फल मिलेगा, किन्तु मैं तुम्हें यह भरोसा दिलाता हूँ कि तुम आगे पहुँचो। तुम्हारे पीछे ये तुम्हारे अनुयायी शीघ्र ही चले आयेंगे।

राजा सदा ही अग्रगण्य होता है। **यथा राजा तथा प्रजा।** तुमने जिसको भी अपना बना लिया, जिसके भी सिर पर हाथ रख दिया वह निश्चित ही तुम्हारा हो जायेगा। ऐसा कहते हुए भगवान् विष्णु अन्तर्ध्यान हो गए। वहाँ का सम्पूर्ण दृश्य विलुप्त हो गया। भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य मानकर हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी–पुत्र सहित वापिस अयोध्या पँहुचे। शरीर पुन: हष्ट–पुष्ट हो गया। पीछे की सभी बातें विस्मृत हो गयी। मात्र एक खेल था, जो पूरा हुआ। प्रजा ने अपने राजा को पाकर स्वागत किया। हरिश्चन्द्र ने ही प्रह्लाद द्वारा स्थापित कलश की त्रेतायुग में पुन: स्थापना की।

गुरु जाम्भोजी ने बतलाया कि हरिश्चन्द्र के अनुयायी, जो सात करोड़ थे, उनका उद्धार हुआ। इस प्रकार से सत त्रेता दोनों युगों में पाँच–सात मिलाकर 12 करोड़ का उद्धार हुआ। ये अद्‌भुत बातें, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं, गुरु जाम्भोजी ने बतलायी हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर

वील्हाजी ने पूछा–हे गुरुदेव! आपके द्वारा हमने प्रह्लाद पंथ एवं त्रेतायुग में हरिश्चन्द्र द्वारा स्थापित पंथ की वार्ता श्रवण की। आगे अब हम द्वापर युग में पंथ स्थापना की बातें सुनना चाहते हैं। भगवान् की निर्मल चरित्र गाथाएँ उत्तरोत्तर जिज्ञासा को अपने मुख से अमृतमय वचन सुनाकर शाँत कीजिये?

नाथोजी उवाच–हे शिष्य! मैं जो तुम्हें बतलाता हूँ, ये बाते मैंने सद्गुरु भगवान् जाम्भोजी से साक्षात् श्रवण की थी। वहीं बातें मैं तुझे बतला रहा हूँ। सुनो! द्वापर युग में चन्द्रवंशी राजाओं में महात्मा युधिष्ठिर बहुत ही प्रसिद्ध हुए। ये पाँच भाई पाण्डु के पुत्र थे। इनकी माता यशस्वी देवी कुन्ती थी। सबसे बड़े, युधिष्ठिर, उनसे छोटे भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव थे। तीन पुत्र कुन्ती के तथा दो पुत्र माद्री के थे। बचपन में ही इनके पिता का देहान्त हो गया था। माता कुन्ती ने ही पाल-पोष कर बड़ा किया था। इसलिए इन्हें कुन्तीपुत्र भी कहते हैं। जो पालन-पोषण कर, अच्छे संस्कार डाले, वह माँ उनके लिए सर्वस्व ही है।

दूसरे भाई दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र थे। गांधारी उनकी माता थी। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। अन्य भाई दु:शासन आदि एक सौ थे। भाइयों में राज बँटवारे को लेकर राग-द्वेष होना स्वाभाविक ही था। उनके दादा भीष्मजी ने आधा-आधा राज्य बंटवारा करके दे दिया। वे चाहते थे कि आपस में भाई-भाई में खींचातान न हो, शांति बनी रहे।

क्योंकि धृतराष्ट्र राज्य के अधिकारी थे, किन्तु वे तो अंधे थे। भीष्मजी की आज्ञा एवं सहायता से हस्तिनापुर पर राज्य करते थे। उनका बेटा दुर्योधन बड़ा हो गया। उसे उन्होंने युवराज नियुक्त कर दिया। भीष्मजी ने पाण्डवों का भला चाहते हुए, उन्हें राज्य का कुछ भाग खाण्डव वन दे दिया। वहाँ पर पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नगरी बसाई। महात्मा युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। राजसूय यज्ञ किया। भगवान् कृष्ण जिनके मित्र थे, उनकी कृपा से बहुत सुंदर नगर बसाया था।

एक समय महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ महोत्सव किया। जिसमें सभी राजा, प्रजा, ऋषि, देवता आदि को आमंत्रित किया। साथ ही हस्तिनापुर के शासक भाई दुर्योधन को भी बुलाया। दुर्योधन ने यज्ञ समाप्ति पर नगर की शोभा देखी थी। तो आश्चर्य चकित रह गया। जहाँ जल था। वहाँ थल दिखाई दे रहा था और थल की जगह जल दिखाई दे रहा था। एक जगह तो घूमते हुए जल को थल मानकर पानी में गिर पड़े थे। दुर्योधन तुरंत खड़ा हो गया। सोचा कि किसी ने देख तो नहीं लिया है? किन्तु द्रौपदी तथा भीमसेन ने देख लिया था और दोनों हँस पड़े थे। उनके हँसने का मतलब दुर्योधन समझ गया था। यह हँसी कह रही थी कि अंधे का अंधा जन्मा है। उस समय बोले कुछ भी नहीं, किन्तु उस हँसी ने सब कुछ कह दिया। दुर्योधन आग बबूला हो गया और सीधा वहाँ से चल पड़ा। एक तो दुर्योधन वैसे ही द्वेष से भर गया था, उनकी सौम्यनगरी को देखकर। ऊपर से द्रौपदी तथा भीमसेन की हँसी ने अग्नि में घी का काम किया। वह अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जाकर कहने लगा-मुझे आपने क्या दिया है मात्र खण्डहर? पाण्डवों ने कितनी सुन्दर राजधानी बनायी है। उन्होंने कितना सुन्दर यज्ञ महोत्सव किया। क्या ऐसा सुन्दर उत्सव हम नहीं कर सकते? अवश्य ही कर सकते हैं बेटा! ऐसा कहते हुए धृतराष्ट्र ने आज्ञा प्रदान कर दी। दुर्योधन ने पाण्डवों से बदला लेने के लिए यज्ञ महोत्सव प्रारम्भ कर दिया तथा पाण्डवों को निमंत्रण देकर बुला लिया। सरल स्वभाव पाण्डव दुर्योधन की चालाकी, ईर्ष्या को समझ नहीं पाये और हस्तिनापुर पहुँच गये। दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से कहा-हे

पिताजी ! मैंने युधिष्ठिर से कई बार जुआ खेलने के लिए कहा है, किन्तु वह खेलने के लिए तैयार ही नहीं है। यदि आप आज्ञा दें, तो अवश्य ही खेलेगा। तब मेरा कार्य सिद्ध हो जाएगा। आप अवश्य ही आदेश दीजिए। आप की बात को टाल नहीं सकता। बड़ों की आज्ञा मानना अपना धर्म समझता है। वह धर्म भीरू अपना धर्म नहीं छोड़ेगा। आप मेरे पिता हैं, मेरा कार्य अपनाने में सहायक होंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा- बेटा युधिष्ठिर ! अवश्य ही मनोरंजन कर लो। भाई-भाई आपस में बैठोगे तो प्रेमभाव बढ़ेगा, कटुता मिटेगी। युधिष्ठिर ने अपने ताऊ की बात स्वीकार करके जुआ खेला और जुए में सब कुछ हार गए। राज गया, पाट गया। अंत में अपनी प्रिया भार्या द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। स्वयं हारे हुए जुआरी द्रौपदी को भी हार गये। जुआ तो सभी कुछ समाप्त कर देता है। किन्तु खिलाड़ी जब खेलने बैठ जाते हैं, तो आगे पीछे कुछ भी नहीं सोचते। इसी दोष की वजह से पाण्डव हार गये। उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

द्रौपदी को भरी सभा में दु:शासन ले आया और उसे दासी कहकर के अपमान किया। चीरहरण करने के लिए साड़ी का पल्ला पकड़ कर खींचा गया, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं वस्त्र बनकर के द्रौपदी की लाज रखी। वहाँ पर उपस्थित भीष्म, द्रोण आदि कुछ भी नहीं बोल सके। सभी दुर्योधन के वशीभूत हो चुके थे। जिसका कोई रक्षक नहीं है, उसका भगवान् ही रक्षक है।

पाण्डवों को 12 वर्ष का वनवास तथा 13 वाँ वर्ष अज्ञात वास में रहने के लिए मजबूर किया गया। बनवास काल में पाण्डवों ने अधिकतर समय काम्यक वन तथा द्वैतवन में ही व्यतीत किया। यह वन जांगल देश में हस्तिनापुर तथा इन्द्रप्रस्थ से पश्चिम की ओर बताया है। यह वही जांगल देश है, जिसमें जाम्भोजी महाराज ने समराथल पर आसन लगाया था। इस समय का यह जांगलू उस समय जांगल देश के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय का काम्यक वन इस समय जाम्भोलाव नाम से प्रसिद्ध है। उस समय का द्वेत वन इस समय दियातरा नाम से कहा जाता है।

उस समय इस वन में बड़े बड़े तालाब जल से भरे रहते थे। घना वन था। इसलिए वर्षा बहुत होती थी। वर्षा होती थी तो घना वन था। इस प्रकार धरती का संतुलन था।

पाण्डवों ने यहाँ जाम्भोलव पर रहकर तपस्या की थी तथा ऋषियों के सहयोग से बड़े-बड़े यज्ञ किए थे। धौम्य ऋषि ने यहाँ का माहात्म्य बतलाया था। इस पुण्यभूमि में यज्ञ करने से तुम्हारा खोया हुआ राज्य पुन: प्राप्त कर सकोगे। पुन: प्रतिष्ठा, शक्ति तथा यश की प्राप्ति कर सकोगे। उन्हीं ऋषियों के आज्ञानुसार ही पाण्डवों ने यहाँ यज्ञ करके अपने को यश-कीर्ति से मण्डित किया। इसलिए तो गुरु जम्भेश्वरजी ने इस भूमि को पवित्र बताया था। यहाँ पर तालाब खुदवाकर तीर्थ प्रकट किया था।

बनवास का अधिकतर समय पाण्डवों ने यहीं व्यतीत किया था। खोई हुई शक्ति पुन: अर्जित की थी। यहीं से अर्जुन दिव्य शस्त्रों की प्राप्ति हेतु इन्द्रलोक तक गया था और दिव्यशस्त्र प्राप्त कर सका था। यहीं पर रहकर जयद्रथ आदि कौरवों को पराजित किया था।

इसी वन में रहकर अनेक ऋषियों से भेंट की तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था। अनेकानेक राक्षसों का विनाश भी यहीं रहकर के किया था। यहीं से पाण्डव लोग तीर्थ यात्रा में निकले थे। वनवास काल में तीर्थयात्रा अवश्य ही कर लेनी चाहिए। सर्वप्रथम यहीं से ही पुष्कर जाने का वर्णन है। पुष्कर से आगे अन्य तीर्थों में भ्रमण करते हुए गंगा यमुना आदि तीर्थों में स्नान किया और अन्त में गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे थे। जहाँ पर भीम की हनुमानजी से भेंट हुई थी। यहीं पर महाभारत का युद्ध होने का संकेत हनुमानजी ने दिया

था। भीम के निवेदन करने पर कृष्ण-अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान रहने का वचन दिया था। इसलिए कृष्णार्जुन के रथ को कपिध्वज कहा है।

हे वील्ह ! मैं तुम्हें वनवास काल की दो घटनाएँ सुनाता हूँ-ये घटनाएँ युधिष्ठिर के धर्म को दृढ़ करती हैं। जब पाण्डव लोग वनवास का समय ऋषियों के साथ व्यतीत कर रहे थे, तब पाण्डवों की प्रसन्नता दुर्योधन से देखी नहीं गयी। ईर्ष्यावश पाण्डवों को दु:ख कैसे हो, दिन-रात यही सोचता रहता था। नई-नई योजनाएँ बनाता रहता था, किन्तु सफल नहीं हो पा रहा था।

एक दिन दुर्योधन के राज्य हस्तिनापुर में बड़े तपस्वी,क्रोधी दुर्वासा मुनि अपने 10 हजार शिष्यों को लेकर आ गये। दुर्योधन मुनि आये हैं, ऐसा जानकर अपने कुटुम्ब के सहित आगे बढ़कर दुर्वासा का स्वागत किया तथा भोजन के लिए निवेदन किया। दुर्वासा ने दुर्योधन की अतिथि सेवा से प्रभावित होकर भोजन करना स्वीकार किया तथा अपने शिष्यों सहित प्रेम से भोजन किया।

दुर्वासा जब प्रस्थान करने लगे, तब दुर्योधन ने प्रार्थना करते हुए कहा-हे मुने ! आप कुछ दिनों तक मेरे यहाँ ठहरिये ? मुझ सेवक को सेवा करने का अवसर प्रदान कीजिये ? दुर्वासा भी सेवाभाव जानकर वहीं रुक गये और दुर्योधन की परीक्षा लेने लगे। मुनि दुर्वासा बड़े ही विचित्र स्वभाव के थे। कभी कहते कि मुझे अभी भूख लगी है, तुरंत भोजन चाहिए। जब कभी भोजन तैयार हो, तो कहे कि अब मुझे भूख नहीं है। हर बार दुर्योधन की अतिथि सेवा की परीक्षा लेते, किन्तु दुर्योधन आलस्य त्यागकर दिन-रात सेवा में तल्लीन रहता। अन्त में दुर्वासा दुर्योधन पर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्हें कोई वर माँगने का आदेश दिया।

दुर्योधन ने कहा-हे मुनि ! यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हो तो ऐसा कीजिये......... कि जिस प्रकार आप दस हजार शिष्यों सहित मेरे अतिथि बने हैं, उसी प्रकार से मेरा बड़ा भाई युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वन में रहता है, आप उनके भी अतिथि बनिये। जब द्रौपदी अन्य सभी को भोजन करा चुकी हो तथा स्वयं भी भोजन कर चुकी हो, तभी आप जाइयेगा। जिस प्रकार से मेरे यहाँ आप समय असमय का विचार किए बिना तृप्त हुए हैं, ठीक उसी प्रकार से मेरे भाई को भी तृप्त कीजिए।

दुर्वासा मुनि ने दुर्योधन की बात को स्वीकार किया और कहा- ऐसा ही होगा। ऐसा कहते हुए वहाँ से चल पड़े। उस समय वहाँ पर उपस्थित दु:शासन, कर्ण, शकुनि आदि ने खुशी मनाई कि अब तो समझो कि अपना कार्य हो ही गया है। मानो कि पाण्डव मुनि के क्रोध से जलकर शीघ्र ही भष्म हो जाएँगे।

जब पाण्डव ऋषियों सहित भोजन कर चुके थे। द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकी थी। पाण्डव विश्राम कर रहे थे। ऐसे दोपहर के समय में दुर्वासा अपनी शिष्य मण्डली सहित युधिष्ठिर की कुटिया पर पहुँचे। युधिष्ठिर ने देखा कि मुनि लोग आये हैं। सामने जाकर उनका स्वागत किया। बैठने के लिए आसन दिया। मुनि से पूछा हे मुनि ! मुझे ऐसा लगता है कि आप बहुत दूर से चलकर आये हैं। थके हुए मालूम पड़ते हो। पहले थकान मिटाइये। तब तक मैं आपके लिए भोजन बनवाता हूँ। कृपा करके भोजन निमंत्रण अवश्य ही स्वीकार कीजिये।

दुर्वासा कहने लगे-हे धर्मात्मा युधिष्ठिर ! आपने ठीक ही कहा है-हम बहुत ही दूर से चलकर आए हैं। भूख भी बड़ी जोर से लगी है, हम सभी आज आपके यहाँ भोजन करेंगे, किन्तु विलम्ब न हो। अति शीघ्र ही भोजन तैयार करवा दीजिये। तब तक हम लोग नदी में स्नान,संध्या आदि नित्यकर्म करके शीघ्र ही आ रहे हैं। ऐसा कहते हुए मुनि लोग स्नान-संध्या के लिए चल पड़े। युधिष्ठिर कुटिया के अन्दर पहुँचे और द्रौपदी से कहने लगे- हे द्रुपद सुता ! अभी-अभी दुर्वासा अपने 10 हजार शिष्यों सहित आये हैं, मैंने उनको भोजन का

निमंत्रण दे दिया है। अति शीघ्र ही उनके लिए भोजन तैयार करो, अभी जल्दी ही आने वाले हैं।

द्रौपदी ने दुर्वासा का नाम सुना............. आश्चर्यचकित होकर देखने लगी। आप क्या कह रहे हैं ? क्या स्वयं दुर्वासा मुनि आ गये हैं ? दस हजार शिष्यों के सहित ? आपने भोजन के लिए कह भी दिया है ? हे मेरे भगवान् ! अब क्या होगा ? भोजन कहाँ से बनाऊँ ? इस समय तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। जब वन से वनफल, शाकपत्ती आयेगी, तभी कुछ बनेगा। तब तक दुर्वासा प्रतीक्षा करेगा नहीं। निमंत्रण दिया हुआ ऋषि, वह भी दुर्वासा ? माफ नहीं करेगा। आज तो मुनि के क्रोध की आग में जलकर भस्म हो जायेंगे।

युधिष्ठिर कहने लगे। द्रौपदी क्या सोचती हो ? कुछ करो, अन्यथा दुर्वासा की क्रोधरूपी अग्नि से बच नहीं पाओगे। सभी सपने धरे के धरे रह जायेंगे। यह दुर्योधन की ही करामात है। द्रौपदी कहने लगी–इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं क्या खिलाऊँ ? धर्मराज ने कहा–द्रौपदी ! वो तुम्हारी सूर्यदेव द्वारा दी हुई बटलोई कहाँ है ? उसमें बनाया हुआ भोजन अखूट होता है, उसी में से खिला दे सभी को।

हे नाथ ! अब मैं क्या करूँ ? मैं भोजन कर चुकी हूँ, यदि मैं भोजन न करती तो अवश्य ही दुर्वासा को मण्डली सहित भोजन करवा सकती थी। किन्तु अब क्या हो सकता है ? अब तो मरना ही पड़ेगा।

हे द्वारिका के नाथ ! श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, अब तो आप ही हमारे उद्धारक हैं। आपके सिवा और कोई भी हमारे सहायक नहीं हैं। आप ही ने तो कौरवों की भरी सभा में मेरी रक्षा की थी। वही कृष्णा (द्रौपदी) आपकी बहन, मैं पुकार रही हूँ। अतिशीघ्र ही आ जाओ मेरे नाथ ! पापी दुर्योधन ने ही तो दुर्वासा को यहाँ पर भेजा है। उसकी करतूत आज सफल हो जाएगी। हम लोग दुर्वासा की क्रोधाग्नि को सहन नहीं कर पायेंगे। इसी प्रकार से द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारा तो भगवान् अतिशीघ्र ही प्रकट हुए।

द्रौपदी से कहने लगे–बहिन ! तुमने मुझे क्यों बुलाया है ? द्रौपदी अपना दु:ख रोने लगी.... भगवान् ने कहा– द्रौपदी ! इस प्रकार का रोना–धोना छोड़कर पहले मुझे भोजन करवादे, मुझे भूख लगी है, इसके बाद मैं तुझसे बात करूँगा। भाई आया है, किन्तु तुम कैसी बहिन हो जो भोजन पानी कुछ भी नहीं पूछ रही हो ?

द्रौपदी कहने लगी– हे कृष्ण ! आज न जाने सभी को क्या हो गया, जो भूख ही भूख लग रही है। दुर्वासा को भी, आपको भी। इस भूख की निवृत्ति के लिए ही आपको बुलाया है और आप स्वयं ही अन्न की माँग कर रहे हैं ? अब मैं कहाँ से खिलाऊँ ? भगवान ने कहा– द्रौपदी ! तेरे पास बहुत कुछ है। वह किसी के पास नहीं है। वह तुम्हारी बटलोई कहाँ है ? उसमें कुछ होगा। वह लाकर मुझे दे दो। द्रौपदी ने वह बटलोई लाकर भगवान् के हाथों में दे दी और कहा कि देखो ! कृष्ण ! यह खाली है, इसमें कुछ भी नहीं है, जो तुम भोजन कर सको।

कृष्ण ने अन्दर देखा और एक पत्ता चिपका हुआ हाथ से निकालकर ले आये और द्रौपदी के देखते ही देखते मुख में रख लिया तथा चबाकर निगल गये। स्वयं भगवान् विष्णु सृष्टि के पालन पोषण कर्ता एक पत्ता, जो द्रौपदी के प्रेमरस भीना खाकर डकार ले ली। एक भगवान् के तृप्त होते ही सम्पूर्ण सृष्टि तृप्त हो गयी। दुर्वासा तथा उनके शिष्यों की कितनी सी औकात है ? **गुरु आप संतोषी अवरा पोखी.......।**

बहुत देर हुई, दुर्वासा आये नहीं, ऐसा जानकर युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा कि मुनियों को शीघ्र ही बुला लावो। सहदेव अपने बड़े भाई की आज्ञा मानकरके अतिशीघ्र ही चला और वहाँ जाकर देखा, वहाँ पर न तो दुर्वासा ही है और न ही उनके शिष्य हैं। जिधर से आये थे, उधर ही वापिस जाने के पैरों के निशान दिखाई दे रहे थे।

दुर्वासा अपने शिष्यों सहित बहुत देर तक स्नान करते रहे क्योंकि आज युधिष्ठिर के यहाँ निमंत्रण है। इसलिए देर तक स्नान करोगे तो भूख अच्छी लगेगी, भोजन बहुत ही प्रियकर-रूचिकर लगेगा। दुर्योधन की भाँति पाण्डव भी अनेक प्रकार के स्वादिष्ट, सुपाच्य भोजन बनायेंगे। भूख अच्छी लगेगी तो खूब डटकर खायेंगे।

अधिक देर तक जल में खड़े रहने से सभी के पेट फूल गये, पेट में तो एक ग्रास की भी जगह नहीं बची थी। भोजन की रुचि समाप्त हो गयी थी। अधिक भोजन तो क्या कहें? पेट तो पहले से ही फटने लगा था। **भूख नहीं अन्न जीमत कोण।**

सभी शिष्य एकत्रित होकर कहने लगे कि इस समय तो भोजन की इच्छा कतई नहीं है। यदि पाण्डवों के यहाँ भोजन करने जायेंगे तो भीमसेन स्वयं तो अधिक भोजी (**वृकोदर**) हैं ही और दूसरों को भी अपनी रुचि के अनुसार भोजन अधिक ही खिलाता है। हमसे तो एक ग्रास भी नहीं खाया जावेगा। किन्तु अब क्या करें? चलो गुरुजी के पास चलकर निवेदन करते हैं। सभी एकत्रित होकर दुर्वासा के पास पहुँचे और निवेदन किया। हे गुरुदेव! आज तो हम सभी भोजन नहीं करेंगे। न जाने क्या हो गया है? हमारा पेट फटने जा रहा है। एक ग्रास लेने की इच्छा भी नहीं है।

दुर्वासा कहने लगे-यही हालत मेरी भी है। किन्तु युधिष्ठिर महाराज का निमंत्रण है, उसका क्या होगा? भीम रुष्ट हो जाएगा और यहाँ आयेगा, बुलाने के लिए, तब मुश्किल में पड़ जायेंगे। चलो! शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से चल पड़ते हैं। ऐसा कहते हुए सभी वहाँ से उल्टी दिशा में प्रस्थान कर गये। जिस पर भगवान् की अनुकम्पा हो जाए, उनका तो बिगड़ा हुआ कार्य ही सुधर जावे, अनहोनी भी होनी हो जावे, यही तो कृष्ण चरित्र है।

हे मेरे जिज्ञासु! अब दूसरी घटना जो पाण्डवों के काल में घटित हुई वह मेरे से श्रवण कर! बारह वर्ष के वनवास का समाप्ति काल था। उसी समय पाँचों पाण्डव, द्रौपदी एवं ऋषियों के साथ एक वन से दूसरे वन में भटक रहे थे। तेरहवें वर्ष, अज्ञातवास को कहीं छुपकर बिताने की चिंता में थे।

उसी समय एक ब्राह्मण-ब्रह्मर्षि भागता हुआ पाण्डवों के पास आया। कहने लगा-आप पाँचों भाई वीर हो। मैं एक भारी विपत्ति में फंस गया हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये? युधिष्ठिर ने कहा-कहिये ऋषिवर! हम आपकी क्या सेवा करें?

उस ऋषि ने कहा-मैं नित्यप्रति यज्ञ करता हूँ। मेरा यज्ञ करने का साधन अरणी एक हरिण सींगों में फंसाकर ले भागा है। वह तो अभी यहीं से होकर गया है। वह देखिये अभी भागा जा रहा है। वह मेरी अरणी वापिस लाकर दीजिये। जिससे मेरा यज्ञकार्य लोप न हो। इस अरणी के द्वारा ही मैं अग्नि प्रकट करके नित्य यज्ञ करता हूँ। मेरा नित्य नियम भंग न हो, ऐसा कार्य आप कीजिए।

पाँचो भाई शस्त्र उठाकर उस हरिण के पीछे चल पड़े। आगे घने वन में जाकर वह हरिण तो लोप हो गया, कहीं दिखाई नहीं दिया। एक वृक्ष की छाया में पाँचों भाई बैठ गये। युधिष्ठिर ने कहा- वह हरिण तो न जाने कहाँ गया, दिखाई नहीं देता। हमें भी बहुत प्यास लगी है। कहीं जल मिल जाये तो पीकर प्यास बुझायें और आगे बढ़ें। धर्मराज ने नकुल से कहा-भइया! पेड़ पर चढ़कर देखो, कहीं जल दिखाई देता है तो जाओ! हमारे लिए जल ले आओ तथा अतिशीघ्र ही लौट आओ। नकुल ने पेड़ पर चढ़कर देखा तो थोड़ी दूर पर हरे भरे घने वृक्ष दिखाई दिये, जो जल होने की सूचना दे रहे थे। सारस, हंस आदि पक्षी उड़ते हुए देखकर नकुल ने कहा-भाई साहब! यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर जल अवश्य ही है। मैं अभी जाता हूँ। आपके लिए जल लेकर

वापिस आता हूँ। तब तक आप यहीं मेरी प्रतीक्षा कीजिए। ऐसा कहता हुआ नकुल तेजी से चला और शीघ्र ही तालाब पर पँहुचकर निर्मल जल का दर्शन किया।

नकुल को प्यास लगी थी, पहले मैं जल पी लूँ पीछे अपने भाइयों के लिए ले जाऊँ। नकुल ने ज्यों ही जल में प्रवेश किया, त्यों ही वृक्ष के पीछे से आवाज आयी–नकुल! सावधान! पहले मेरे प्रश्नों का जवाब दे। फिर जल पीना। अन्यथा तुम प्राणहीन हो जाओगे। मेरा इस सरोवर पर पहले से ही अधिकार है। नकुल ने कहा–तुम मुझे रोकने वाले कौन हो? मेरे सामने आओ।

नकुल को बड़ी प्यास लगी थी, उस बात की परवाह नहीं की। सोचा, पहले जल पी लूँ, फिर प्रश्नों का जवाब दूँ। ज्यों ही जल पीने को प्रवेश किया, जल को स्पर्श किया, त्यों ही जल से बाहर भूमि पर गिर पड़े, गिरते ही नकुल अचेत हो गये। बहुत देर हो गयी, नकुल लौटकर नहीं आया। युधिष्ठिर ने अपने भाई सहदेव से कहा–भाई! तुम जाओ! अपने भाई नकुल को ले आओ तथा जल भी ले लाओ। अब तक नकुल आया नहीं, क्या बात हुई? अतिशीघ्रता से आना, कहीं अपने भाई नकुल की तरह ही देरी मत कर देना। हम आपकी प्रतीक्षा में हैं।

सहदेव अतिशीघ्रता से जल लेने चला और कहा–मैं अभी गया और अभी लौटकर आया। सहदेव ने जाकर तालाब के जल को देखा और अतिप्रसन्न हुआ, किन्तु अपने भाई नकुल की ऐसी स्थिति देखकर चिंतित भी हुआ। क्या हुआ है इसे जो इस प्रकार से अचेत पड़ा है? किसी शस्त्र के निशान तो हैं नहीं, अच्छा, जो भी होगा, फिर निपट लूँगा। पहले जल तो पी लूँ?

ज्यों ही जल पीने के लिए जल में प्रवेश किया त्यों ही आवाज आयी...... सहदेव सावधान! जलपान नहीं करना? पहले मेरे प्रश्नों का जवाब दो, फिर जल पान करो? अन्यथा तुम्हारी भी वही दशा होगी जो तुम्हारे भाई नकुल की हुई है। सहदेव ने कहा–तुम मुझे रोकने वाले कौन हो? पहले मेरे सामने आओ। मुझे प्यास लगी है। मैं पहले जल पीऊँगा, फिर मैं तुम्हारे प्रश्नों का जवाब दूँगा। सहदेव ने ज्यों ही जल पीने की कोशिश की, त्यों ही अचेत होकर गिर पड़ा।

युधिष्ठिर ने अपने भाई अर्जुन से कहा–हे वीर! तुम्हारे भाई जल लेने के लिए गए थे, किन्तु अब तक लौटकर नहीं आये। तुम जाओ। अपने भाइयों को ले आओ तथा जल भी ले आओ। अपने भाई की आज्ञा शिरोधार्य करके अर्जुन गाण्डीव धनुष लेकर चला। किन्तु वहाँ जाकर क्या देखता है कि उनके दोनों भाई अचेत पड़े हैं। यह कार्य किसने किया? अर्जुन ने धनुष की टंकार की और विचार किया कि पहले जल पी लूँ, फिर उसे देखूँगा, जिसने मेरे भाइयों की यह गति की है।

अर्जुन ज्यों ही जल पीने लगा, त्यों ही आकाशवाणी हुई, हे अर्जुन! ऐसा जल पीने का साहस मत करना। नहीं तो तेरी भी वही गति हो जाएगी, जो तेरे दो भाइयों की हुई है। अर्जुन ने उस वाणी को नजरअंदाज किया तथा जल पीने की कोशिश की। जल पी नहीं सका। वहीं पर अचेत होकर गिर पड़ा।

बहुत देर हो गयी, अब तक लौट कर नहीं आया क्या बात है? अपने भाई को चिंतित देखकर भीम कहने लगा–भाई! अब तो मैं जाता हूँ। अपने भाइयों को ले आता हूँ तथा जल भी। भीम बड़े ही गर्व से चला। वहाँ जाकर देखा तो तीनों भाई अचेत पड़े हुए हैं। अपने भाइयों को उठाने की कोशिश की, किन्तु कोई नहीं उठा। इधर कोई व्यक्ति भी नहीं दिखाई देता, इनका किसी के साथ युद्ध हुआ है? ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। अभी पहले मैं जलपान कर लूँ, फिर इन्हीं के बारे में विचार करूँगा। प्यास के मारे बोला भी नहीं जा रहा है। गला सूख गया है। भीम ने ज्योंही जल पीने के लिए तालाब में प्रवेश किया, आवाज आयी....

भीमसेन सावधान! पहले जलपान नहीं करना, मेरे सवालों का जवाब देना है ? अन्यथा वही गति तेरी हो जाएगी, जो तुम्हारे 3 भाइयों की हुई है। भीम ने उनके वचनों की परवाह नहीं की। ज्यों ही जल पीने लगा, अभी तो गले में पहुँचा भी नहीं था कि वहीं पर जल के किनारे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

चारों भाई अब तक लौटकर नहीं आये हैं क्या बात है ? मैं स्वयं चलूँ। कुछ अनहोनी अवश्य ही हो गयी है। नहीं तो मेरे चारों भाई वीर हैं। उनका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। युद्ध के मैदान में तो चाहे स्वयं इन्द्र-महादेव ही क्यों न आ जायें, उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अब तो मैं अकेला रह गया हूँ। मेरे भाइयों के बिना मेरा जीवन व्यर्थ ही है। चलूँ, देखूँ, क्या हो रहा है ? ऐसा विचार करते हुए स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर चल पड़े।

धर्मराज ने वहाँ तालाब पर जाकर देखा कि चारों भाई मृतक की भाँति पड़े हुए हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ पर भी दुर्योधन पहुँच गया है। हो सकता है, कहीं दुर्योधन ने जल में जहर तो नहीं मिला दिया है ? यदि जहरयुक्त जल पीते तो इनका रंग नीला पड़ जाता, ये तो अचेत पड़े हुए हैं। शरीर की स्थिति तो ज्यों की त्यों है। इनके शरीर पर घाव भी नहीं हुआ है। अत: युद्ध की तो सम्भावना ही नहीं है।

प्यास बहुत ज्यादा लगी है। पहले जल पीकर प्यास बुझाऊँ। फिर विचार करूँगा कि इन्हें क्या हुआ है ? इनका इलाज क्या हो सकता है ? युधिष्ठिर ने ज्यों ही जल पीने की कोशिश की त्यों ही पूर्ववत आकाशवाणी हुई......... हे धर्मराज युधिष्ठिर! पहले मेरी बात सुनो ? फिर जल पीना! मेरा यह स्वच्छ सरोवर है, इसका जल तुम्हें पीने का कोई अधिकार नहीं है। तुम धर्म की महत्ता जानते हो, इसलिए मैं तुम्हें कह रहा हूँ कि अनधिकार चेष्टा मत करो। यदि करोगे तो तुम्हारी वही गति हो जाएगी, जो तुम्हारे चारों भाइयों की हुई है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पीओ।

धर्मराज बोले, हे बाणी के बोलने वाले! जो तुम कहोगे, वही मैं करूँगा। जो तुम्हारी वस्तु केवल तुम्हारे लिए निश्चित है, उसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है। तुम मेरे सामने तो आओ। मैं तुम्हारे से वार्ता करना चाहता हूँ। किन्तु बिना सम्मुख हुए वार्ता कैसे हो सकती है ? तुम यह बतालाअे कि तुम मुझसे वार्ता पूछने वाले कौन हो ? क्या कोई देवता,राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, मानव आदि में से कोई भी हो, जो भी हो, मेरे सामने तो आओ।

उसने कहा-मैं यहीं इन्हीं वृक्षों पर रहने वाला यक्ष हूँ। तुम्हारे भाइयों की दुर्गति भी मेरी वजह से ही हुई है। उन्होंने मेरी बात की अवहेलना की थी। दूसरे के अधिकार की वस्तु पर जबरदस्ती की है।

यक्ष ने प्रकट होकर इस प्रकार से युधिष्ठिर से प्रश्न पूछे। यक्ष ने पूछा- **सूर्य को उदित कौन करता है ? उसके चारों और कौन चलते हैं ? उसे अस्त कौन करता है ? और वह किसमें प्रतिष्ठित है ?**

युधिष्ठिर बोले- **ब्रह्म सूर्य को उदित करता है। देवता उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।** इत्यादि अनेकों प्रश्न यक्ष ने पूछे और इनका समुचित उत्तर युधिष्ठिर ने दिया।

युधिष्ठिर के उत्तर ज्ञानवर्द्धक थे। उनको सुनकर यक्ष बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहने लगा- हे युधिष्ठिर! तुम्हारे चारों भाइयों में से किसी एक को तुम जिंदा कर लो, यह वरदान मैं तुझे देता हूँ।

युधिष्ठिर बोले- हे यक्ष! यह जो श्याम वर्ण, अरुण नयन, सुविशाल शाल वृक्ष के समान ऊँचा और चौड़ी छाती वाला महा बाहु नकुल है, यही जीवित हो जाय।

यक्ष ने कहा- राजन्! जिसमें दस हजार हाथियों के समान बल है, उस भीम को छोड़कर तुम नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो ? तथा जिसके बाहुबल का पाण्डवों को पूरा भरोसा है उस अर्जुन को छोड़कर नकुल

को जिन्दा करने की इच्छा क्यों है ?

युधिष्ठिर ने कहा– यदि धर्म का नाश किया जाय तो वह नष्ट हुआ धर्म ही कर्ता को नष्ट कर देता है और यदि उसकी रक्षा की जाय तो वही कर्ता की भी रक्षा कर लेता है। इसी से मैं धर्म का त्याग नहीं करता। मेरा विचार है कि वस्तुत: सबके प्रति समान भाव रखना परम धर्म है। लोग मेरे विषय में ऐसा ही समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा है।

मेरे पिता की कुन्ती और माद्री दो भार्याएँ थी। वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहे, ऐसा मेरा विचार है। मेरे लिए जैसी कुन्ती है, वैसी माद्री भी है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों माताओं के प्रति समान भाव ही रखना चाहता हूँ। इसलिए नकुल ही जीवित हो जाय।

यक्ष ने कहा–भरतश्रेष्ठ ! तुमने अर्थ और काम से भी समता का विशेष आदर किया है। इसलिए तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जाय। ऐसा यक्ष के कहते ही चारों भाई पुन: जीवित हो गये। एक क्षण में ही उनकी भूख–प्यास समाप्त हो गयी।

युधिष्ठर ने पूछा–हे भगवन्! आप कौन हैं ? कोई देवश्रेष्ठ हैं ? आप यक्ष ही हैं, ऐसा तो मुझे मालूम नहीं पड़ता ? क्योंकि मेरे सभी भाई बलवान हैं, बुद्धिमान हैं। आप मात्र युद्ध में तो इन्हें मार नहीं सकते। ये मरे हुए जैसे अवश्य ही थे, किन्तु अब तो बिल्कुल स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए हैं। ऐसा लगता है कि अभी गहरी नींद से सोकर उठे हैं। आप क्या हमारे सुहृद हैं या हमारे पिता तुल्य हमारे रक्षक हैं ?

यक्ष ने कहा–धर्मराज ! मैं तो तुम्हारा पिता धर्म ही हूँ। मैं तुम्हें देखनके लिए आया हूँ। यश,सत्य,दान,शौच, मृदुता, लज्जा, अचंचलता, दान,तप और ब्रह्मचर्य ये सभी मेरे शरीर है तथा अंहिसा, समता, शांति, तप, शौच और अमत्सर इन्हें तुम मेरा मार्ग समझो। तुम मुझे सदा ही प्रिय हो। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारी शम,दम,उपरति,तितिक्षा और समाधान इन पाँच साधनों पर प्रीति है तथा तुमने भूख–प्यास, शोक, मोह और जरा–मृत्यु इन छ: दोषों को जीत लिया है। हे पुत्र ! तुम्हारा मंगल हो। मैं धर्म हूँ और तुम्हारा व्यवहार जानने के लिए ही आया हूँ। निष्पाप राजन् ! तुम्हारी समदृष्टि के कारण मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ। तुम अभीष्ट वर माँग लो ? जो मेरे भक्त हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती।

युधिष्ठिर ने कहा–हे भगवन् ! पहला वर तो यही माँगता हूँ कि जिस ब्राह्मण की अरणी सहित मन्थन काष्ठ को मृग लेकर भाग गया था, उसके अग्नि होम का लोप न हो जाय। यक्ष ने कहा–राजन् ! उस ब्राह्मण के अरणी सहित मन्थन काष्ठ को तो तुम्हारी परीक्षा के लिए मैं ही मृग रूप में लेकर भाग गया था। यह मैं तुम्हें देता हूँ। तुम कोई दूसरा वरदान और माँग लो।

युधिष्ठिर बोले–हम बारह वर्षों तक वन में रहे,अब तेरहवाँ वर्ष आ लगा है। अत: ऐसा वर दीजिए कि इसमें हमें कोई पहचान न सके। धर्मराज बोले–हे राजन् ! यह वर मैं देता हूँ। तुम लोग इस पृथ्वी पर इसी रूप में विचरोगे तो भी तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा। किन्तु आप लोग अपनी सुविधानुसार जैसा चाहे वैसा रूप बना सकते हो। आप, मैं, जो चाहे, जैसा चाहे, वैसा रूप बना सकते हैं।

हे राजन् ! इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई तीसरा वरदान भी माँग लो। मैं तुम्हें सहर्ष दूँगा। युधिष्ठिर बोले– हे भगवन् ! आप स्वयं मेरे बारे में मेरे से अधिक ज्ञाता है। मेरी धर्म में निष्ठा सदा बनी रहे। किसी प्रकार से स्वार्थ में पड़कर मैं धर्म को न छोड़ूँ। मुझ में कभी दुर्गुण न आ जाये। मैं कभी लोभ–मोह और क्रोध के वशीभूत न हो जाऊँ तथा सदा दान,तप और सत्य में प्रतिष्ठ रह सकूँ। ऐसी आपकी कृपा मेरे ऊपर सदैव बनी रहे। धर्म ने तथास्तु कहते हुए धर्मराज की बात का समर्थन ही किया। स्वयं धर्म ही यक्ष रूपधारी ऐसा

कहते हुए वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गए। पाण्डव वापिस आश्रम में आ गये। इस प्रकार से पाण्डवों ने अपने धर्म का निर्वाह किया।

दूसरे दिन ही पाण्डवों ने सभी यति तपस्वी, ऋषि-मुनियों को हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा- अब हम आपसे बिछुड़कर अज्ञातवास को जायेंगे। आप लोग हमें क्षमा करें। हम आप लोगों की सेवा नहीं कर सकेंगे। ऐसा कहते हुए पाचों पाण्डव- द्रौपदी, धौम्य ऋषि के साथ राजा विराट के वहाँ जाकर तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवास पूरा करने की योजना बनायी। उन सभी ने पहले तो अपने शस्त्र एक शमी (खेजड़ी) वृक्ष पर बाँध दिये और पाँचों भाई तथा द्रौपदी ने धर्म के बताए हुए नियमानुसार वेश बदल कर राजा विराट के यहाँ पर एक वर्ष व्यतीत किया।

पाण्डवों का वनवास काल पूर्ण हुआ। भगवान् कृष्ण दूत बनकर कौरवों की सभा में जा पहुँचे। उन्होंने धर्म के अनुसार पाण्डवों के लिए उनके हक की माँग की किन्तु दुर्योधन ने कृष्ण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उस सभा में दूत कृष्ण ने कहा-यदि आप आधा राज नहीं देते तो उन्हें पाँच गाँव ही दे दीजिये, पाण्डव शांति चाहते हैं। दुर्योधन ने यह प्रस्ताव भी ठुकरा दिया।

भगवान् ने कहा-दुर्योधन! तू ही बतलादे क्या देगा? दुर्योधन ने कहा-सुई की नोक टिके, इतनी जगह भी नहीं दूँगा। यदि युद्ध होगा, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ। दुर्योधन ने तो दूत बनकर गये कृष्ण को भी बाँधने का प्रयत्न किया। वह कब शांति चाहता था? भगवान् कैसे बंध सकते हैं? भक्तों के बंधन में तो भले ही आ जाये, किन्तु दुर्योधन जैसे अंहकारी के बंधन को स्वीकार नहीं करेंगे।

भगवान् कृष्ण ने पाण्डवों को जाकर के दुर्योधन की करतूत सुनायी और बताया कि युद्ध अवश्यंभावी है। भगवान् ऐसा कहकर द्वारिका चले गये। कौरव तथा पाण्डवों ने सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। इस उद्योग में दुर्योधन भगवान् कृष्ण के पास द्वारिका जा पहुँचा सैनिक सहायता के लिए। पीछे-पीछे अर्जुन भी पहुँच गया। अर्जुन ने देखा कि भगवान् सोये हुए हैं। किन्तु दुर्योधन मेरे से पूर्व ही आकर सिर की तरफ बैठ गया। भगवान् उठकर देखते हैं तो पहले अर्जुन दिखाई दिया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का स्वागत किया। तब दुर्योधन कहने लगा-हे भगवन्! पहले मैं आया था। मेरा स्वागत होना चाहिए था। भले ही तुम पहले आये हो, किन्तु मैंने पहले देखा अर्जुन को है। इसलिए प्रथम स्वागत अर्जुन का है। पीछे तुम्हारा भी है। कहिये! अपने आने का प्रयोजन? दुर्योधन ने कहा-आप हमें युद्ध में सहायता प्रदान कीजिए, इसलिए मेरा आना हुआ है। भगवान् ने कहा-अर्जुन! मैं दोनों का बंटवारा कर देता हूँ। एक तरफ तो मेरी नारायणी सेना रहेगी, दूसरी तरफ मैं अकेला रहूँगा। किन्तु मैं शस्त्र धारण नहीं करूँगा। दुर्योधन ने कहा-हे कृष्ण! आप तो मुझे नारायणी सेना ही दे दीजिये! दुर्योधन तो सेना लेकर चला गया।

तब भगवान् ने अर्जुन से कहा-हे अर्जुन! तुम चुपचाप क्यों बैठ रहे? दुर्योधन ने बाजी मार ली, तुम कुछ बोले भी नहीं? मैंने तो तुम्हें पहले मौका दिया था। तू अर्जुन क्या चाहता हैं? हे कृष्ण! आप स्वयं ही मेरे को दे दीजिये। मैंने तो अभी कहा था कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। मुझे शस्त्र रहित से तुम क्या करोगे? हम आपको अपना सारथी बनायेंगे और अपने जीवन का सम्पूर्ण भार आपको सौंप देंगे। हम निश्चिंत होकर युद्ध करेंगे। यदि हार होगी तो आपकी, और जीत होगी तो आपकी।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में दोनों ओर से सेना एकत्रित हो गयी। शंख नगाड़े बज चुके थे। अर्जुन ने सारथी कृष्ण से कहा-हे कृष्ण! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिये। मैं देख लूँ कि मुझे किसके साथ युद्ध करना है। सारथी कृष्ण ने महारथी अर्जुन की आज्ञा मानी और दोनों सेनाओं के बीच में रथ खड़ा कर

दिया और बताया कि–हे अर्जुन! ये तुम्हारे दादा, गुरु, मामा, चाचा, भाई–बन्धु आदि खड़े हैं। इनको देख और युद्ध के लिए तैयार हो जा। अभी शंख बज चुका है। अर्जुन ने अपने प्रियजनों को देखा और मोहग्रस्त हो गया।

कहने लगा– हे कृष्ण! मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं अपने ही जनों को मारकर जीना भी नहीं चाहता, न ही राज करना चाहता। वनवासी होकर अपना गुजारा भिक्षा से कर लूँगा। ऐसी विकट परिस्थिति में भगवान् ने अर्जुन को गीता सुनाई और अर्जुन के मोह को भंग किया तथा युद्ध के लिए पुन: तैयार किया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सभी वीर मारे गये। अन्त में केवल पाँच पाण्डव, सात्यकि, कृष्ण ये सात तो पाण्डव पक्ष से युद्ध भूमि से लौटकर वापिस आये। कौरव पक्ष की तरफ से कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये तीन वीर ही बच पाये।

पाण्डवों ने युद्ध पश्चात् राज्य किया। वह राज उन्हें सुख नहीं दे सका। खून की नदियाँ बहाकर उनमें स्नान करने जैसा राज्य पाण्डवों को अच्छा नहीं लगा। अपने प्रपौत्र अभिमन्यु के बेटे परीक्षित को राज देकर पाँच पाण्डव एवं द्रौपदी हिमालय की ओर चले, इनका अंतिम यहीं मुकाम हो गया।

एक दिन युधिष्ठिर ने द्रौपदी सहित अपने भाइयों को बुलाकर कहा– अब अन्तिम काल आ गया है, अब हमें यहाँ से प्रस्थान करना चाहिये। किसी भी राजा को अपने राज सिंहासन पर बैठे–बैठे नहीं मरना चाहिए। भाइयो! काल की गति बड़ी विचित्र है। हमारे कुल परिवार में ऐसा कोई राजा नहीं हुआ जो घर में खटिया पर पड़ा हुआ मरा हो। **कौड़ निनाणवे राजा भोगी, गुरु के आखर कारण जोगी। माया राणी राज तजीलो, गुरु भेटीलो जोग सझीलो, पिण्डा देख न झुरणा।** अब हमें भी वन की तरफ प्रस्थान कर देना चाहिए।

युधिष्ठिर की बात का सभी ने समर्थन किया और कहा, ऐसा ही होगा। पाँचों पाण्डव सहित द्रौपदी ने पूर्व वनवास की भाँति पुन: वल्कल वस्त्र धारण किये और नगरी से विदाई ले ली। नगर के लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से विदाई दी और वापिस नगरी में लौट आये। नगरी से बाहर निकलकर पाँचों पाण्डव प्रथम तो दक्षिण दिशा में चले। समुद्र किनारे तक की यात्रा की।

वहाँ अग्निदेव ने अर्जुन से कहा– हे अर्जुन! मैं वही अग्नि हूँ, सप्त जिह्वा वाली, जो मैंने खाण्डव वन को जलाया था। अब जो तुम्हारे पास जो यह गाण्डीव धनुष है, इसे तुम पास मत रखो। मुझे वापिस लौटा दो। मैंने ही तुम्हें प्रदान किया था। अर्जुन तथा अन्य सभी भाइयों ने अपने अपने शस्त्र जल में समर्पित कर दिये। वरुण देवता को गाण्डीव धनुष वापिस सौंप दिया।

पाण्डव लोग अन्तिम तीर्थ यात्रा करते हुए दक्षिण से पश्चिम की ओर बढ़े तथा वहाँ से हिमालय में प्रवेश किया। पाण्डव लोग मार्ग में आगे बढ़ते ही जा रहे थे। पाँच पाण्डव, सती द्रौपदी तथा पीछे एक कुत्ता भी आ रहा था। यह न जाने कहाँ से पीछे लग गया? किन्तु यह तो हस्तिनापुर से पीछे–पीछे चला आ रहा है। सभी नगरवासी पीछे रह गये, किन्तु यह कुत्ता पीछा नहीं छोड़ रहा था। यह तो प्रत्येक कार्य को बड़ी ही सावधानी से निरीक्षण करता है। यह देखकर पाण्डवों को आश्चर्य होता था, किन्तु पाण्डव आगे बढ़ते ही जा रहे थे।

वेदव्यासजी ने पाण्डवों को बतलाया था कि आप लोग हिमालय में जाओ, तो वहाँ केदारनाथ में भगवान् शिव तथा बद्रीनाथ में भगवान् विष्णु के दर्शन अन्त समय में होना आवश्यक है। आप लोगों ने युद्ध भूमि में अनेक लोगों का वध किया है। वहाँ दिव्यदेवों के दर्शन से आपको शान्ति मिल सकेगी। पूज्य वेदव्यासजी

की आज्ञा को शिरोधार्य करके पाण्डव लोगों ने प्रथम हरिद्वार से हिमालय में प्रवेश किया। ऋषिकेश होते हुए पाण्डव लोग हिमालय की दिव्य छटा निहारते हुए गुप्त काशी पहुँचे। वहाँ की ऐसी प्रसिद्धि है कि शिवजी वहाँ गुप्त हो गये। इसलिए उस स्थान का नाम गुप्त काशी पड़ा। पाण्डव लोग धुन के पक्के थे। उन्हें शिव का दर्शन करना है तो करना ही है, ऐसा विचार करके आगे बढ़े।

उच्च हिमालय शिखर वर्तमान में केदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर पाण्डव लोग पहुँचे किन्तु वहाँ पर भी शिव दर्शन दुर्लभ हो गये। पाण्डवों ने निराश होकर भी लक्ष्य का परित्याग नहीं किया। युधिष्ठिर ने भाई भीम से कहा-भीम ! तुम ऐसा करो कि इधर हिमालय में भैंसे हरी-हरी घास चर रही है, इनके साथ एक भैंसा घास चर रहा है। तुम इन भैंसों को इधर से उधर निकालो, मुझे लगता है कि यहीं कहीं इन भैसों में शिवजी भैंसा बन करके विचरण कर रहे हो ? हम पापीजनों को दर्शन देना नहीं चाहते, किन्तु हम लोग दर्शन किये बिना आगे नहीं बढ़ सकते ?

नकुल सहदेव से कहा- भाई भीम तो पर्वत के दोनों तरफ पैर रखकर खड़े हो जायेंगे और तुम लोग इन भैंसों को भीम के पैरों के नीचे से निकालो ? इनमें जो शिव होगा वह भीम के पैरों के नीचे से नहीं निकलेगा। यही हमारी परीक्षा तथा पहचान होगी। युधिष्ठिर की युक्ति काम आयी। जैसा धर्मराज ने कहा था, वैसा ही किया। जो शिव भैंसे के रूप में था वह पीछे रुक गया। आगे नहीं बढ़ा। दूसरी भैंसे तो भीम के पैरों के नीचे से निकल गयी। वहीं पर पाण्डवों ने पैर पकड़ लिये उस शिव ने भैंसे के रूप में नीचे धरती में अपना सिर गड़ा दिया। पीछे का भाग वहीं पर रह गया। इसी का दर्शन इस समय केदारनाथ में हो रहा है। पीछे पूँछ के भाग को केदार बोलते हैं। यहीं केदार दर्शन, मन्दिर में इस समय विद्यमान है।

भैंसे की थुम्भी तुंगनाथ में विद्यमान है। थुम्भी को ही तुंग बोलते हैं। यह तुंगनाथ बद्री-केदार के बीच में बहुत ही ऊँची पहाड़ की चोटी है। जहाँ पर तुंग दर्शनीय है। आगे का मुँह का भाग नेपाल के काठमाण्डू में दर्शनीय है। इस प्रकार से तीनों जगहों पर पाण्डवों ने दर्शन किया और आगे बढ़े।

अन्तिम यात्रा में भगवान् विष्णु के दर्शन करने चाहिये। यहाँ से थोड़ी दूर ही भगवान् नर-नारायण बद्री के नीचे विराजमान हैं। यह पवित्र स्थान भगवान् का धाम है। इस धाम के दर्शन की इच्छा से पाण्डव लोग पहुँचे। जहाँ पर भगवान् स्वयं ही नर नारायण के रूप में विराजमान हुए। ऐसे दिव्य स्थान का दर्शन कर सभी प्रकार की अभिलाषा पूरी करेगा। अन्त समय में यह दर्शन मुक्ति प्रदान करेगा। बद्रीनाथ के दर्शन करके पाण्डव लोग आगे बढ़े।

अलकनन्दा नदी के किनारे-किनारे जा रहे थे। आगे चारों तरफ बर्फ तथा पहाड़ आ गये। कहीं भी रास्ता दिखाई नहीं दिया। वहाँ से पश्चिम की तरफ चले, किन्तु आगे सरस्वती नदी का उद्‌गम स्थान आ गया। नदी को पार कैसे किया जावे ? बहुत ऊँचे पर्वतों के बीच में से बहुत ही गहराई में नदी बहती है। आगे जाने का कोई मार्ग न पाकर भीम ने एक बड़ी भारी शिला उस नदी पर रखकर पुल बनाया और उस पुल से पाँचों पाण्डव पार हो गये। अब भी वह पुल विद्यमान है, जिसे भीम पुल कहते हैं। इस समय यह पुल बद्रीनाथ से थोड़ी दूरी पर विद्यमान है।

अलकनन्दा के किनारे-किनारे पाण्डव आगे बढ़े। वहाँ से आगे वसुन्धरा को देखा, जो बहुत ही ऊंचाई से गिरने वाली जल की धारा है। वहीं से अपने को जल कण बिन्दुओं से पवित्र करते हुए आगे बढ़े। पाण्डवों ने आगे स्वर्गारोहण किया। अलकापुरी से अलकनन्दा का उद्‌गम है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों केवल बर्फ ही बर्फ रह गयी, उस बर्फ पर चलना साधारण मानव के वश की बात नहीं है।

पाण्डवों का शरीर ठण्डा होकर शून्य होने लगा तथा एक-एक करके गिरने लगे। शरीरों को त्यागने लगे। सर्वप्रथम द्रौपदी ठण्ड से शून्य होकर गिर पड़ी। पाण्डव थोड़ी देर के लिए रुक गये। भीम ने पूछा- हे धर्मराज! यह कैसे हुआ? द्रौपदी ने अपना साथ छोड़ दिया। हम तो सशरीर स्वर्ग में जा रहे थे किन्तु द्रौपदी के साथ ऐसा क्यों हुआ? हमारा साथ क्यों नहीं निभाया?

युधिष्ठिर बोले- हे भीम! हम लोग आगे बढ़ें। द्रौपदी की चिंता मत करो। यह सशरीर तो स्वर्ग में नहीं जा सकी, किन्तु इसकी जीवात्मा हम से पूर्व ही पहुँच चुकी है। भइया! यह द्रौपदी घर की लक्ष्मी थी। इसको तो सभी के प्रति समभाव रखना चाहिये था, किन्तु यह अर्जुन के प्रति ज्यादा ही मोहग्रस्त थी। अर्जुन को महत्त्व ज्यादा देती थी। बस इस एक दोष के कारण हमारा साथ नहीं निभा सकी। हम लोग आगे बढ़ें।

ऐसा कहते हुए युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। कुछ आगे बढ़े ही थे कि बर्फ में ठण्डा होकर सहदेव गिर पड़ा। सहदेव को गिरा हुआ देखकर भीम ने फिर पूछा: भइया! थोड़ा रुककर यह तो बतलाओ कि यह सहदेव सदा ही हमारी सेवा में रहता था, कभी भी इसने अपनों से बड़ों की बात को अस्वीकार नहीं किया। आज सहदेव की यह गति कैसे हो गयी?

युधिष्ठिर ने कहा भाई भीम! आगे बढ़ो! इसकी चिंता तुम मत करो। तुम्हारे इस भाई की दुर्गति नहीं होगी। यह इस पाँच तत्त्व के शरीर को छोड़ चुका है। इसका जीव स्वर्ग में पहुँच चुका है। इसे तो सशरीर स्वर्ग में जाना था, परंतु इसे यह अहंकार था कि मेरे बराबर और कोई विद्वान् नहीं है। इसी गर्व की वजह से ही इसकी यह हालत हुई है। अपने आगे बढ़ो।

ऐसा कहते हुए युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। कुछ दूरी तक आगे चलने पर नकुल भी गिर पड़ा। भीम ने पूछा-भइया! यह नकुल भी अपनी आज्ञा पर चलता था। संसार में सुन्दरता में तो इसकी बराबरी करने वाला कोई नहीं था। सदा धर्म का पालन करने वाला यह अपना प्रिय भाई नकुल क्यों गिर पड़ा? इसने अपना साथ छोड़ दिया? जरा रुकिये? मुझे यह बताते जाइये।

युधिष्ठिर ने कहा-भाई भीम! यद्यपि सर्वगुण सम्पन्न यह तुम्हारा भाई नकुल था। किन्तु इसमें भी एक ही दोष है कि वह अपने को सभी से सुन्दर समझता था। इसी एक अहंकार की वजह से यह सशरीर स्वर्ग में नहीं जा सका, किन्तु जीवात्मा द्वारा तो अपने से पूर्व ही पहुँच चुका है। आप लोग आगे बढ़ें। जिन्होंने शरीर त्याग दिया है, उनकी चिंता न करें।

आगे-आगे युधिष्ठिर चल रहे हैं- पीछे-पीछे भीम तथा भीम के पीछे गाण्डिव धनुष धारी अर्जुन तथा सभी से पीछे एक कुत्ता चल रहा है। भीम ने पुन: रोका और कहा भाई युधिष्ठिर! यह अपना प्रिय भाई अर्जुन, जो विश्वप्रसिद्ध धनुषधारी था, यह तो बड़ा ही सरल, सौम्य, शुद्ध पवित्रात्मा था। यह तो भगवान् कृष्ण का प्रिय सखा था, जिसके बल पर ही तो हमने सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली थी। वह भाई अर्जुन तो गिर पड़ा है। अपना साथ छोड़ दिया है। आप कृपा करके इसके बारे में भी बतला दीजिये? ऐसा क्यों हुआ? इसे तो सशरीर स्वर्ग में जाना चाहिये था?

युधिष्ठिर बोले-भइया सुनो! यह भाई अर्जुन तो अप्रतिम वीर था, किन्तु फिर भी दुनिया में बड़ा-बड़ी है। अर्जुन के पास जो पौरुष था, वह उसका स्वयं का नहीं था। वह तो भगवान् कृष्ण का ही दिया हुआ था। किन्तु अर्जुन अज्ञानतावश अपना ही मानता था। पराई वस्तु लेकर उसे अपना मान लेना, उस पर व्यर्थ का अहंकार करना यही दोष अर्जुन में था। इसी कारण से सशरीर अर्जुन स्वर्ग में नहीं जा सका। यह तो अशरीरी होकर शीघ्र ही पहुँच जायेगा। अपने को अर्जुन के बारे में या अन्य किसी के बारे में चिंता नहीं करनी

चाहिये। सभी अपने-अपने कर्मों का ही फल प्राप्त करते हैं। इस अन्तिम निर्णय में किसी का कोई वश नहीं चलता है।

भीम जैसा बलवान् भी बर्फ के आगे शिथिल होने लगा। पैर लड़खड़ाने लगे, बेहोशी को प्राप्त होकर स्वयं भीम भी थोड़ी दूरी पर गिर पड़ा। भीम ने पीछे से आवाज लगायी-भइया! धर्मराज! मेरी भी एक बात सुनते जाओ? मैं भी अपने प्राणों को त्यागने को तैयार हूँ। मेरे में भी कोई दोष हो, तो बताते जाइये। मैं क्यों आपका साथ छोड़ रहा हूँ? युधिष्ठिर ने कहा- भाई भीम! तुम्हारे में भी एक ही दोष था कि तुम अपने को बहुत बड़ा बलवान मानते हो। जिस कारण से तुम यहीं रह गए। आगे नहीं बढ़ सके। गर्व ही मानव को ले डूबता है। यह अहंकार ही मनुष्य को आगे बढ़ने में बाधा खड़ी करता है। तुम इस दोष को जीवनभर नहीं समझ पाये, इसलिए तुम शरीर छोड़कर स्वर्ग पहुँच जाओ।

अब तो अकेले धर्मराज ही आगे बढे। सभी भाइयों ने तथा धर्मपत्नी ने साथ छोड़ दिया, किन्तु वह कुत्ता अब भी पीछे-पीछे चल रहा है। धर्मराज अब तक थोड़ी दूर आगे बढे ही थे कि सामने स्वयं देवराज इन्द्र ही अपना रथ लेकर खड़े हैं। देवराज ने युधिष्ठिर का स्वागत किया। बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, यहाँ तक आने के लिए।

इन्द्र ने कहा-धर्मराज! मैं स्वयं स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र आपके लिए रथ लेकर आया हूँ। आप अति शीघ्र बैठिए और चलिए। मेरे साथ आपके बंधुजन हैं और आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे बंधुजन तो भौतिक शरीर को त्याग करके गये हैं, परन्तु आप सशरीर चलिए। वहाँ पर तुम्हारे बंधुजन तुम से मिलेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा-अच्छी बात है। मैं अवश्य ही चलूँगा, किन्तु मेरे साथ तो मेरा भक्त कुत्ता है। इसे भी साथ ले चलूँगा। मेरे साथ इसे भी चलने की आज्ञा प्रदान कीजिए। इन्द्र ने कहा-हे धर्मराज! केवल आप ही स्वर्ग में जाने के अधिकारी हैं, क्योंकि आप में ही केवल मेरी तरह ऐश्वर्य,पूर्णलक्ष्मी, सिद्धि की प्राप्ति हुई है। इस कुत्ते में नहीं है, तो यह कैसे जा सकता है? इस कुत्ते को तो अपने रथ पर नहीं बैठाऊँगा। आपके लिए ही मैं आया हूँ। इस कुत्ते को त्यागने में भी कोई दोष नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा-भगवन्! आर्य पुरुष से अधार्मिक, निम्न श्रेणी का कार्य होना कठिन है। मुझे ऐसी श्री-लक्ष्मी आदि की प्राप्ति भले ही न हो, जिसके लिए मेरी शरणागत आये हुए को परित्याग करना पड़े।

इन्द्र ने कहा-हे धर्मराज! कुत्ता रखने वालों के लिए स्वर्ग लोक में कोई स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने तथा कुवा-बावड़ी आदि बनाने का जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नाम के राक्षस हर लेते है। इसीलिए सोच विचार करके कार्य करो। इस कुत्ते को छोड़ दो। ऐसा करने में कोई निर्दयता नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा-ऐसा मेरा सदा का ही व्रत है कि जो असहाय हो, भक्त हो, जो डरा हुआ हो, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है, ऐसा कहते हुए आर्त्त भाव से शरण में आया हो, अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो, अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे पुरुष को मैं कभी नहीं त्याग सकता।

इन्द्र ने कहा-हे वीरवर! मनुष्य जो कुछ दान, स्वाध्याय अथवा हवन आदि पुण्य कर्म करता है, उस पर यदि कुत्ते की दृष्टि पड़ जाए तो उसके फल को क्रोधवश नामके राक्षस हर ले जाते हैं। इसीलिए इस कुत्ते का त्याग कर दो। इसी से ही तुम्हें देव लोक की प्राप्ति होगी। तुमने भाइयों तथा प्रिय पत्नी का परित्याग करके अपने पुण्य कर्मो के फल स्वरूप देव लोक को प्राप्त किया है। फिर इस कुत्ते को क्यों नहीं छोड़ देते? सभी कुछ छोड़ कर भी इस कुत्ते के मोह में फंस गए।

युधिष्ठिर ने कहा-हे भगवन्! इस संसार में जो प्राण त्याग कर चुका है, उसके साथ मेल-मिलाप कैसा?

वे मेरे भाई तो शरीर छोड़ गए हैं। जब तक जीवित थे, तब तक मैंने अपनी धर्म पत्नी व भाइयों का साथ नहीं छोड़ा था। मरे हुए को जीवित करना मेरे वश की बात नहीं है। किन्तु हे इन्द्र! शरण में आये हुए को भय देना, स्त्री का वध करना, ऋषि-मुनि, भक्तों से धन लूटना, और मित्रों के साथ द्रोह करना ये चार अधर्म और भक्त का त्याग दूसरी ओर हो, तो मेरी समझ में यह अकेला ही उन चारों के बराबर है।

इस प्रकार से इन्द्र ने युधिष्ठिर को अनेक युक्तियों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु युधिष्ठिर अपने धर्म से विचलित नहीं हुए। स्वयं धर्मराज ही कुत्ते के रूप में थे। जो वहीं प्रकट हो गए और कुत्ता लोप हो गया। धर्मराज ने युधिष्ठिर का धर्मयुक्त आचरण देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और कहने लगे-हे राजेन्द्र !तुमने अपनी सदाचार बुद्धि एवं सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति होने वाली दया के कारण अपने पिता का नाम उज्ज्वल किया है।

बेटा! एक बार पहले मैंने द्वैतवन में भी परीक्षा ली थी। जबकि तुम्हारे सभी भाई पानी लाने के लिए गए थे तथा वहीं मर गये थे। उस समय तुमने कुन्ती एवं माद्री दोनों माताओं में समानता की इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को छोड़कर केवल नकुल को जीवित रखना चाहा था।

इस समय भी **कुत्ता मेरा भक्त है।** ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्र के रथ का परित्याग कर दिया। अत: स्वर्गलोक में तुम्हारी समता करने वाला कोई नहीं है। इसलिए तुम्हें अपने इसी शरीर से अक्षय लोक की प्राप्ति हुई है। तुम परम उत्तम गति को पा गये हो। ऐसा कहते हुए धर्म, इन्द्र, मरुद्गण,अश्विनीकुमार, देवता एवं ऋषियों ने युधिष्ठिर को रथ में बिठाया और वे सभी अपने-अपने विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्गलोक को चले गये।

इन्द्र के रथ पर बैठे हुए राजा युधिष्ठिर अपने तेज से पृथ्वी एवं आकाश को देदीप्यमान करते हुए बड़ी तेजी से ऊपर की ओर जाने लगे। उस समय सकल लोकों का वृत्तान्त जानने वाले कुशल वक्ता देवर्षि नारदजी ने देवमण्डल में उपस्थित होकर उच्चस्वर में कहा-जितने राजर्षि स्वर्ग में आये हैं, वे सभी यहाँ उपस्थित हैं, किन्तु कुरुराज युधिष्ठिर अपने सुयश से सभी की कीर्ति को आच्छादित करके विराजमान हो रहे हैं। अपने यश, तेज और सदाचार रूप सम्पत्ति से तीनो लोकों को आवृत करके अपने भौतिक शरीर से स्वर्ग लोक में आने का सौभाग्य पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के सिवा और किसी राजा को भी प्राप्त हुआ है, ऐसा मैंने कभी नहीं सुना है।

हे युधिष्ठिर! पृथ्वी पर रहते हुए तुमने नक्षत्र एवं ताराओं के रूप में जितने तेज देखे हैं, वे सभी ही ये देवताओं के हजारों लोक हैं। इनकी ओर देखो। नारदजी की बात को श्रवण करके युधिष्ठिर ने कहा-मेरे भाइयों को भला या बुरा जो भी स्थान प्राप्त हुआ है, उसी को मैं भी पाना चाहता हूँ। इसके सिवाय दूसरे लोकों में जाने की मेरी इच्छा नहीं है।

इनके ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र ने कहा- महाराज! तुम अपने शुभ कर्मों द्वारा प्राप्त इस स्वर्गलोक में निवास करो। मनुष्य लोक के मोहपाश में बंधे हुए, अब तक क्यों खिंचे चले आ रहे हो ? तुम्हें जो उत्तम लोक की प्राप्ति हुई है, यह दूसरे मनुष्य के लिए दुर्लभ है। तुम्हारे भाइयों को ऐसा स्थान प्राप्त नहीं है। अब तक मनुष्य लोक की भावना तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ रही है। यह स्वर्ग लोक है, इन स्वर्गवासी देव ऋषियों और सिद्धों की ओर तो दृष्टि डालो।

देवराज इन्द्र की इस प्रकार की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर ने इस प्रकार से कहा-अपने भाइयों एवं सत्वगुण सम्पन्ना देवी द्रौपदी के बिना मैं एक क्षण भी रहना नहीं चाहता। वह चाहे स्वर्ग हो या अन्य लोक ?

मेरे भाई एवं सभी मेरे बन्धुओं ने मेरे लिए युद्ध भूमि में हँसते हुए प्राणों का त्याग किया है। वे चाहे पक्ष के हों चाहे विपक्ष के हों। इस समय तो मेरा शत्रु मुझे कोई नहीं दिखता। जिन्होंने मेरे लिए सर्वस्व अर्पण कर दिया है उन्हें मैं इस समय कैसे भूल सकता हूँ? सुख या दु:ख, नरक या स्वर्ग हम सभी मिलकर ही भोगेंगे। मैं अकेला सुख भोगने की तो कल्पना ही नहीं कर सकता।

धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग में जाने के बाद देखा कि दुर्योधन स्वर्गीय शोभा से सम्पन्न हो देवता एवं साध्यगणों के साथ एक दिव्य सिंहासन पर बैठकर सूर्य के समान देदीप्यमान हो रहा है। उसका ऐसा ऐश्वर्य देखकर युधिष्ठिर सहसा वापिस लौट पड़े और कहने लगे–हे देवताओ! जिसके कारण हमने अपने मित्र एवं बन्धुओं का युद्धभूमि में संहार कर डाला था, तथा जिसकी प्रेरणा से निरंतर धर्म का आचरण करने वाली हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी को भरी सभा में गुरुजनों के सामने घसीटा गया, ऐसे दुर्योधन के साथ में मैं स्वर्गलोक में नहीं रहना चाहता। ऐसी युधिष्ठिर की विरोधयुक्त बातें सुनकर नारदजी हँस पड़े और बोले– हे धर्मराज! स्वर्ग में आने पर मृत्यु लोक का बैर विरोध नहीं होता। अत: तुम्हें दुर्योधन के सम्बन्ध में ऐसी बात कदापि नहीं कहनी चाहिये। स्वर्ग लोक में जितने श्रेष्ठ राजा रहते हैं तथा देवता भी राजा दुर्योधन का विशेष सम्मान करते हैं।

यह सत्य है। उसने तुम्हें सदा ही कष्ट पहुँचाया है। फिर भी इस वीर ने युद्धभूमि में लड़ते हुए प्राणों का परित्याग किया है। अत: इसके द्वारा आप लोगों को जो भी क्लेश प्राप्त हुआ है, उसे आप भूल जाओ और इनके साथ न्यायपूर्वक मिलो। ध्यान रखो, यह स्वर्ग लोक है। यहाँ आने पर पहले का वैर नहीं रहता।

नारदजी के ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिर ने कहा– हे ब्रह्मन्! जो महान व्रतधारी,महात्मा,सत्यप्रतिज्ञ,विश्व विख्यात वीर और सत्यवादी थे, उन मेरे भाइयों को कौन से लोक प्राप्त हुए हैं? उन्हें मैं देखना चाहता हूँ। सत्य पर दृढ़ रहने वाले कुन्ती पुत्र महात्मा कर्ण को,धृष्टद्युम्न को,सात्यकि को तथा अन्य वीरों को मुझे देखने की इच्छा है। इनके अतिरिक्त और भी अन्य राजा, क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध में मारे गये हैं, वे सभी कहाँ है? उनका तो यहाँ पर दर्शन भी नहीं हो रहा है।

इस प्रकार से युधिष्ठिर ने देवताओं से कहा–हे देवगणो! क्या? ये सभी मेरे बन्धुगण इसी लोक को प्राप्त हुए हैं? यदि वे यहीं पर ही हैं, तो मैं भी यहीं रहूँगा अन्यथा एक क्षण भी मुझे यहाँ रहने का अधिकार नहीं है और यदि वे यहाँ पर नहीं आये तो उनके बिना मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ? क्योंकि युद्ध के पश्चात् जब मैं अपने मृत सम्बन्धियों को जलांजलि दे रहा था, उसी समय मेरी माता कुन्ती ने कहा कि–बेटा! कर्ण को भी जलांजलि दे देना।

माता की यह बात सुनकर जब मुझे यह पता चला कि कर्ण भी मेरा भाई था, तब से मुझे उनके लिए बहुत दु:ख होता है। यह सोच कर तो मैं और भी पश्चात्ताप करता हूँ कि महामना कर्ण के दोनों चरणों को माता कुन्ती के चरणों के समान देखकर भी मैं उनका अनुगामी क्यों नहीं हो गया था? यदि कर्ण हमारे साथ होते, तो हम इन्द्र को भी युद्ध में परास्त कर देते। वे सूर्यनन्दन कर्ण इस समय जहाँ कहीं भी हों, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ।

अपने प्राणों से भी प्यारे भीमसेन, अर्जुन,नकुल सहदेव तथा धर्मपरायणा द्रौपदी को देखना चाहता हूँ। यहाँ रहने में मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। यह मैं आप लोगों को सच्ची बात बता रहा हूँ। हमारे जो वृद्ध गुरुजन थे। भीष्म,द्रोण,मामा शल्य, ये सभी तो समर्थ वीर क्षत्रियधर्म के मेरूदण्ड थे। उनके बारे में भी जानना चाहता हूँ। वे हमारे पूजनीय वृद्धजन न जाने कहाँ होंगे? भाइयों से अलग रहकर मुझे स्वर्ग से भी क्या

लाभ ? जहाँ मेरे भाई हैं, वहीं स्वर्ग है। मैं इस लोक को स्वर्ग नहीं मानता।

देवताओं ने कहा- हे राजन्! यदि उन लोगों में तुम्हारी श्रद्धा है, तो चलो विलम्ब न करो। हम लोग देवराज इन्द्र की आज्ञा से हर तरह से तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं। ऐसा कहते देवताओं ने अपने दूतों को आज्ञा दी कि इन महाराज युधिष्ठिर को अपने सगे सम्बन्धियों के दर्शन कराओ। तत्पश्चात् युधिष्ठिर उन दूतों के साथ साथ आगे बढ़े, जहाँ उनके भाई भीमसेन आदि थे। आगे-आगे देवदूत चल रहे थे, पीछे-पीछे युधिष्ठिर। वह देवदूत उनको ऐसे दुर्गन्धयुक्त मार्ग में ले गया, जहाँ से पापी लोग ही उधर को जाते हैं। वहाँ सभी ओर घोर अंधकार छाया हुआ था। चारों ओर से दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध आ रही थी। इधर-उधर सड़े हुए मुर्दे दिखाई दे रहे थे। जहाँ-तहाँ बाल और हड्डियाँ पड़ी हुई थी। लोहे सदृश चोंच वाले गिद्ध मण्डरा रहे थे। सुई के समान चुभते हुए मुख वाले पर्वताकार प्रेत सभी ओर घूम रहे थे। उन प्रेतों के शरीर से रुधिर बह रहा था। किसी के बाहु, उरू,पेट और हाथ पैर कट गये थे। बड़ा ही भयानक दृश्य वहाँ का था। धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर बहुत चिन्तित होकर उस मार्ग के बीच में से होकर निकले। उन्होनें देखा- वहाँ खोलते पानी से भरी हुई एक नदी बहती है जिसके पार जाना बहुत ही कठिन है। दूसरी ओर तीखे पतों से परिपूर्ण असिपत्र नामक वन है। कहीं गरम-गरम बालू बिछी है। कहीं तपाये हुए लोहे की बड़ी-बड़ी चट्टाने हैं। सब और लोहे के घड़ों में तेल उबल रहा है। जहाँ तहाँ पैने काँटों से भरे हुए सेमल वृक्ष हैं। जिनको हाथ से छूना भी कठिन है। इन सभी के अतिरिक्त पापियों को यहाँ पर अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं।

उन पर भी युधिष्ठिर की दृष्टि पड़ी। वहाँ की दुर्गन्धी से तंग आकर युधिष्ठिर ने देवताओं से कहा- हे देव! ऐसे मार्ग पर मेरे को अभी कितनी दूर और चलना है ? तथा मेरे भ्राता कहाँ हैं ? धर्मराज की यह बात सुनकर देवदूत वापिस लौट पड़ा और बोला, बस। यहीं तक आपको आना था महाराज! देवताओं ने मुझ से कहा था कि जब युधिष्ठिर थक जाये तो उन्हें वापिस लौटा लाना। अत: अब मैं आपको वापिस ले चलता हूँ क्योंकि अब आपको आगे चलना ही नहीं है। लगता है आप थक गये हैं, तो मेरे साथ आइये।

युधिष्ठिर उस बदबू से विकल हो रहे थे। इसलिए घबराकर वापिस लौटने का ही निश्चय किया। वे ज्यों ही उस स्थान से लौटने लगे, त्यों ही उनके कानों में चारों से दु:खी जीवों की यह दयनीय पुकार सुनाई पड़ी।

हे धर्म नन्दन! आप हम लोगों पर कृपा करके थोड़ी देर यहीं ठहर जाईये। आपके आते ही परम पवित्र हवा चलने लगी है, इससे हमें बड़ा सुख मिला है। हे कुन्तीनन्दन! आज बहुत दिनों के बाद आपका दर्शन पाकर बड़ा आनन्द मिल रहा है। अत: क्षणभर और ठहर जाइये। आपके रहने से यहाँ की यातना हमें कष्ट नहीं पहुँचाती।

इस प्रकार से वहाँ कष्ट पाने वाले दु:खी जीवों के भांति-भांति के दीन वचनों को सुनकर युधिष्ठिर को बड़ी दया आयी। उनके मुँह से सहसा ओह निकल पड़ा। इन बेचारों को बड़ा कष्ट है। यों कहकर के वे वहीं ठहर गये। फिर पूर्ववत दु:खी जीवों का आर्त्तनाद सुनाई देने लगा। किन्तु वे पहचान नहीं सके कि ये किनके वचन हैं।

जब किसी तरह उनका परिचय समझ में नहीं आया, तो युधिष्ठिर ने उन दु:खी जीवों को सम्बोधित करके पूछा- आप लोग कौन हैं ? और यहाँ किसलिए रहते हैं ? उनके इस प्रकार पूछने पर चारों ओर से आवाज आने लगी- मैं कर्ण हूँ, मैं भीमसेन हूँ, मैं अर्जुन हूँ,मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं द्रौपदी और हम लोग द्रौपदी के पुत्र, इस प्रकार अपने-अपने नाम बताकर सब लोग विलाप करने लगे। यह सुनकर राजा युधिष्ठिर विचार करने लगे........ दैव का यह कैसा विधान है ? मेरे महात्मा भाई भीमसेन आदि कर्ण, द्रौपदी

के पुत्र तथा स्वयं द्रौपदी ने भी ऐसा कौनसा पाप किया था, जिसके कारण इन्हे यहाँ दुर्गन्धपूर्ण भयानक स्थान में रहना पड़ रहा है ? ये सभी पुण्यात्मा थे। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इन्होनें कोई पाप नहीं किया था। फिर किस कर्म का फल है, जो ये लोग नरक में पड़े हुए हैं ?

मेरे भाई सम्पूर्ण धर्म के ज्ञाता, शूरवीर, सत्यवादी तथा शास्त्र के अनुकूल चलने वाले थे। उन्होंने क्षत्रिय धर्म पर रहकर बड़े-बड़े यज्ञ किए और बहुत सी दक्षिणाएँ दी हैं। फिर भी ऐसी दुर्गति क्यों हुई है ? मैं इस समय सोता हूँ, या जागता हूँ ? मुझे चेता है या नहीं ? कहीं ये मेरे चित्त का विकार और भ्रम तो नहीं है ?

इस प्रकार से सोच विचार करते हुए राजा युधिष्ठिर ने देवदूत से कहा-तुम जिसके दूत हो, उसके पास लौट जाओ। मैं वहाँ नहीं चलूँगा। अपने मालिकों से जाकर कहना-युधिष्ठिर वहीं रहेंगे, मेरे यहाँ रहने से मेरे भाई बन्धुओं को सुख मिलता है। युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर देवदूत देवराज इन्द्र के पास चला गया। युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा वहीं जाकर इन्द्र से निवेदन कर दिया।

हे शिष्य! धर्मराज युधिष्ठिर को उस स्थान में खड़े हुए एक मुहूर्त भी नही बीतने पाया था कि इन्द्र आदि देवता वहाँ आ पहुँचे। साक्षात् धर्म भी शरीर धारण करके युधिष्ठिर से मिलने के लिए आये। उन तेजस्वी देवताओं के आने से वहाँ का सम्पूर्ण अंधकार मालिन्य दूर हो गया। पापियों की यातना का दृश्य कहीं दिखाई नहीं दिया। फिर से शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी।

इन्द्र सहित मरुद्गण, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, रुद्र, आदित्य तथा अन्य स्वर्गवासी देवता, सिद्धों और महर्षियों के साथ एकत्रित हुए। उस समय सांत्वना देते हुए इन्द्र ने कहा- महाबाहो! अब तक जो हुआ सो हुआ, अब इससे आगे कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। आओ, हमारे साथ चलो। तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है। साथ ही अक्षय लोकों की प्राप्ति हुई है। तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है, इसके लिए क्रोध नहीं करना।

मनुष्य अपने जीवन में शुभ और अशुभ दो प्रकार के कर्मों की राशि एकत्रित करता है। जो पहले शुभ कर्मों का फल भोगता है, उसे पीछे नरक भोगना पड़ता है। और जो पहले ही नरक का कष्ट भोग लेता है, वह पीछे स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है। जिसके पाप कर्म अधिक हैं और पुण्य कर्म थोड़े हैं, वह पहले स्वर्ग सुख को भोगता है तथा जिसके पुण्य अधिक, पापकर्म थोड़े हैं, वह पहले नरक का कष्ट भोगता है पीछे स्वर्गीय सुखों को भोगता है। इसी नियम के अनुसार तुम्हारी भलाई सोचकर ही मैंने तुम्हें नरक दर्शन करवाया। तुमने अश्वत्थामा की मृत्यु की बात कहकर छल से द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया। इसलिए तुम्हें भी छल से नरक दिखलाया। तुम्हारे पक्ष के जितने भी राजा युद्ध में मारे गये हैं, वे सभी स्वर्गलोक में पहुँच गए हैं।

महान् धुरंधर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण भी, जिनके लिए तुम सदा दु:खी रहते हो, वह कर्ण उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे दूसरे भाई तथा अन्य तुम्हारे पक्ष के राजा भी अपने-अपने योग्य स्थानों को प्राप्त हुए हैं। उन सभी को चलकर देखो और अपनी मानसिक चिंता को त्यागकर मेरे साथ विहार करो। अपने किए हुए पुण्य, कर्म, दान, तप के फल भोगो। राजसूय यज्ञ द्वारा जीते हुए समृद्धिशाली लोकों को स्वीकार करो।

युधिष्ठिर! तुम्हें प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक राजा हरिश्चन्द्र के लोकों की भांति सब राजाओं के लोकों से ऊपर हैं। उन्हीं में तुम विचरण करो। जहाँ राजऋषि मान्धाता, राजा भागीरथ और दुष्यंतकुमार भरत गये हैं। उन्हीं लोकों में निवास करके तुम भी दिव्य सुख का उपभोग करो। महाराज! वह देखो! त्रिभुवन को पवित्र करने वाली देवनदी मन्दाकिनी सामने ही दिखाई दे रही है। उसके पवित्र जल में स्नान करके तुम दिव्य-

लोक में जा सकोगे। यहाँ गोता लगाते ही तुम्हारा मानव स्वभाव दूर हो जाएगा। तुम्हारे मन के शोक-संताप, ग्लानि और वैर आदि सभी मिट जाएँगे।

देवराज की बात समाप्त होने पर शरीर धारण करके अए हुए साक्षात् धर्म ने कहा-बेटा! तुम्हारा धर्म विषयक अनुराग, सत्य भाषण, क्षमा और इन्द्रिय संयम आदि गुणों के कारण मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। यह मेरे द्वारा तीसरी परीक्षा हुई है। किसी भी युक्ति से कोई तुम्हें अपने स्वभाव से विचलित नहीं कर सकता। द्वैतवन में अरणीकाष्ठ का अपहरण करने के पश्चात् यक्ष के रूप में मैंने ही तुम से प्रश्न पूछे थे। वह तुम्हारी पहली परीक्षा थी। उसमें तुम भली भांति उत्तीर्ण हो गए थे। फिर द्रौपदी सहित तुम्हारे सभी भाइयों की मृत्यु हो जाने पर कुत्ते का रूप धारण करके तुम्हारी दूसरी बार परीक्षा ली थी, उसमें भी तुम्हें सफलता मिली थी।

यह तुम्हारी परीक्षा का तीसरा अवसर था, किन्तु इस बार तुम अपने सुख की परवाह न करके भाईयों के हित के लिए नरक में रहना चाहते थे। अत: तुम हर तरह से शुद्ध प्रमाणित हुए। तुम में पाप का नाम भी नहीं है। इसलिए स्वर्ग का सुख भोगो। तुम्हारे भाई नरक के योग्य नहीं है। तुमने जो उनको नरक भोगते हुए देखा है, वह देवराज इन्द्र द्वारा प्रकट की हुई माया थी। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और सत्यवादी शूरवीर कर्ण इनमें से कोई भी नरक में जाने के योग्य नहीं है।

भरत श्रेष्ठ! आओ अब मेरे साथ चलकर त्रिलोक गामिनी गंगाजी का दर्शन करो। धर्म के इस प्रकार कहने पर राजर्षि युधिष्ठिर ने धर्म तथा समस्त स्वर्गवासी देवताओं के साथ जाकर मुनिजन वन्दित परम पावन देवी गंगाजी में स्नान किया। स्नान करते ही उन्होनें मानव शरीर का त्याग करके दिव्य देह धारण कर लिया। उनके हृदय का शोक-संताप और वैरभाव जाता रहा।

तत्पश्चात् वे देवताओं से घिरकर महर्षियों से स्तुति सुनते हुए धर्म के साथ-साथ उस स्थान को गये, जहाँ उनके भाई, पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक निवास कर रहे थे।

वील्हा उवाच: हे सद्गुरु देव! मैंने आपके श्रीमुख से भक्त प्रह्लाद, सत्यवादी हरिश्चन्द्र एवं धर्मराज युधिष्ठिर के बारे में विस्तार से कथा सुनी। किन्तु उपरोक्त ये सभी बातें, जो आपने कहा था कि पाँच करोड़ का उद्धार प्रह्लाद के साथ सतयुग में हुआ था। सात करोड़ का उद्धार हरिश्चन्द्र के साथ त्रेतायुग में हुआ तथा नौ करोड़ का उद्धार द्वापरयुग में युधिष्ठिर के साथ हुआ। अन्य शास्त्रों में तो ये बातें सुनने में नहीं आती ? ये बातें आप ही कहते हैं या अन्य शास्त्र भी इनका वर्णन करते हैं। कृपा करके स्पष्ट कीजिए।

नाथोजी ने कहा: हे वील्ह! यह तुम्हारी बात ठीक है कि अन्य शास्त्रों में इन महापुरुषों की कथा विस्तार से आयी है, किन्तु पाँच,सात,नव करोड़ की बात नहीं होगी। जो बात शास्त्रों में नहीं कही गयी है वे ही बातें बताने के लिए विष्णु जाम्भोजी के रूप में अवतरित हुए थे। जो कुछ पहले कहा जा चुका था, पुन: कहने की क्या आवश्यकता थी ?

जाम्भोजी ने कहा है- **शास्त्रे पुस्तd लिखणा न जाई, मेरा शब्द खोजो ज्यूं शब्दे शब्द समाई।** यही गुरु जम्भेश्वरजी की विशेषता थी। जो न कही हो किन्तु कहना आवश्यक है, ऐसी गूढ़ रहस्य की बातें कहना ही वेद कथन है। इसलिए तो शब्दवाणी को पाँचवाँ वेद कहा जाता है। जो बात पहले कही जा चुकी है, दुबारा उसे कहना वेद नहीं है। वह तो नकल है।

गुरु जाम्भोजी ने किसी की नकल नहीं की है। जो भी कहा है, वह सत्य आँखों देखी बात कही है। अन्य विद्वान् लोग सुनी-सुनायी या वेद शास्त्रों की बातें पढ़कर आगे बखान करते हैं। जिन्होंने आँखों द्वारा नहीं

देखा, वह स्वयं प्रमाण नहीं है। वह पर प्रमाण है। किन्तु जिन्होंने स्वयं देखा है, परखा है, अनुभव किया है और कथन किया है, वह स्वयं प्रमाण है। जाम्भोजी स्वयं प्रमाण हैं।

उन्होंने कहा है- **रावण सो कोई राव न देख्यो, हनुमत सो कोई पायक न देख्यो, सीत सरीखी तिरिया न देखी।** यहाँ देखने की बात है। अन्यत्र सुनने की बात है।

वील्हा उवाचः सतयुग में भगवान् विष्णु ने नृसिंह के रूप में अवतार लिया। त्रेता में राम रूप में अवतार लिया तथा द्वापर में स्वयं कृष्ण रूप में अवतार लेकर आये। इसी बात को जाम्भोजी ने कहा है। किन्तु मुझे संशय इस बात का हो रहा है कि जाम्भोजी ने पाँच,सात,नव करोड़ के उद्धार तथा कलश स्थापना की बात क्रमशः प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र एवं युधिष्ठिर से क्यों जोड़ी ? इन अवतार पुरुषों से जोड़नी चाहिए थी ? ये अवतार ही तो अपने-अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

नाथोजी उवाचः हे विद्वन्! प्रथम बात तो यह है कि जाम्भोजी ने तो जैसी घटना घटित हुई थी, उसी का ही विवरण दिया है। ऐसा क्यों हुआ ? इसके बारे में तो भगवान् स्वयं ही जान सकते हैं, फिर भी मैं अपनी समझ के अनुसार तुम्हें बताने का प्रयास करूँगा। ध्यानपूर्वक सुनो! कोई भी कार्य संसार में भगवान् अपने हाथों से नहीं करते, जो कुछ भी उन्हें करना होता है, तो किसी को निमित्त अवश्य ही बनाते हैं।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन को भगवान् ने निमित्त बनाया था। त्रेतायुग में भी भगवान राम ने रावण को मारने के लिए लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान को निमित्त बनाया था। सतयुग में भी राक्षसों को मारने के लिए प्रह्लाद को निमित्त बनाया था। संसार के राजा उस समय प्रह्लाद,हरिश्चन्द्र एवं युधिष्ठिर ही थे। **यथा राजा तथा प्रजा** जैसा राजा होता है वैसी प्रजा भी होती है। राजा का ही प्रजा अनुकरण करती है। प्रजा के लिए राजा ही भगवान् होता है। भगवान् स्वयं यश के भागी नहीं बनते, अपने प्रिय भक्तों को ही यश प्रदान करते हैं। **गुणिया म्हारा सुगणा चेला, म्हें सुगणा का दासूं। यः मद् भक्तः से मे प्रियः** भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त मुझे बहुत ही प्यारा है। मैं ऐसे भक्तों का दास हूँ। क्योंकि वे मेरे भक्त मेरे दास है। भक्तों के लिए मेरे लिए अदेय कुछ भी नहीं है। मैं उनको देता हूँ। वे मेरे लिए सभी कुछ समर्पित कर देते हैं। उनके योग एवं क्षेम का मैं वहन करता हूँ।

हे वील्हा! इसलिए तो भगवान् स्वयं कलश की स्थापना करते हुए भी स्वयं अकर्ता बन जाते हैं। और अपने भक्तों को कलश स्थापना का महत्वपूर्ण कार्य सौंप देते हैं। इन तीन युगों के प्रतिनिधि ये राजा हुए हैं। इन्होनें अनेकों कष्टों को सहन करते हुए भी धर्म की मर्यादा नहीं छोड़ी। इन्हें परीक्षा की अग्नि में तपाकर शुद्ध कनक बनाया है। इनमें किंचित भी खोट रहने की संभावना नहीं है। ऐसे लोग ही धर्म की मर्यादा बाँध सकते हैं। सद्‌गुरु ने कहा भी है- **पहले किरिया आप कमाईये तो औरां ने फरमाईये।**

वील्हा उवाचः हे गुरुदेव! आपने मुझे यह बतलाया है कि 33 करोड़ लोग प्रह्लाद के समय सतयुग में थे, उन में से पाँच करोड़ तो प्रह्लाद को गुरु मानकर पार उतर गये अर्थात् मुक्ति को प्राप्त हो गये। बाकी बचे हुए आगे तीन युगों में पार हो जायेंगे, किन्तु यह कैसे पता चला कि आने वाले तीन युगों में जो पार उतर जायेंगे, ये वे ही जीव हैं जो प्रह्लाद के अनुगामी थे ? वे तो और भी हो सकते हैं। उनका पता लगाना भी तो टेढ़ी खीर है।

नाथोजी बोलेः अपने लिए तो अवश्य ही जीवों की जाति पहचानना कठिन है, किन्तु परमात्मा के लिए तो सामान्य सी बात है। जिस प्रकार से बहुत सी गायों में से हम अपनी गाय पहचान लेते हैं, उसी प्रकार से असंख्य जीवों में अपने जीव हैं, उन्हें पहचानना है। वे ही संस्कारी जीव पार उतर गये हैं। श्री देवजी ने कहा

भी है- **क्रोड़ तेतीसूं बाड़े दीन्ही, तिन की जात पिछाणी।** मैंने उनकी जाति को पहचान लिया है। जाति अर्थात् स्वभाव से पहचान की जा सकती है। परमात्मा सर्वज्ञ हैं। सभी जीवों की जाति जानते हैं। हम लोग अल्पज्ञ हैं, इसलिए शंका होनी स्वाभाविक ही है।

ये सभी अपनी-अपनी साधना पर ही निर्भर करता है। जो ज्यादा भक्ति भाव में ओत-प्रोत थे। अब किनारे लग ही चुके थे। उन्हें तो मात्र एक अन्तिम धक्का लगना था। वे कूदने के लिए तैयार ही थे। उनकी तो सतयुग में परमात्मा की महाज्योति से जीव की अल्प ज्योति मिल गयी। किन्तु अब तक कुछ कच्चे थे, पकने में कुछ समय लगेगा। उन्हें पुनः त्रेता द्वापर तथा कलयुग में जन्म लेना पड़ा। उन्हें सचेत करते हुए बतलाया था कि तुम प्रह्लाद पंथी हो। तुम्हारा मार्ग ही दूसरा है। तुम्हें तो पुनः सागर में प्रवेश करना है। अब तुम्हारा समय आ गया है। इस प्रकार से जाग्रत करके उन्हें पार उतार दिया।

वील्हा उवाच : आपने जो कलश स्थापना के बारे में कुछ कहा है, मैं ठीक प्रकार से कलश स्थापना के महत्व को जानना चाहता हूँ। इसमें कुछ कहने योग्य कुछ गुह्य ज्ञान हो तो आप मुझे अवश्य ही बतलाने का कष्ट करें ? कुछ ऐसी बातें है जो बिना जाने तृप्ति नहीं होती ?

नाथोजी उवाच: वैसे तो ऊपर से देखने से तो कुछ भी विशेष दिखलाई नहीं पड़ता, जल से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा ही तो है। किन्तु इसमें बहुत कुछ गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है। दरअसल में तो यह कलश ही सृष्टि का रूप है। इसी कलश में जल भरा हुआ है। पृथ्वी भी भीतर-बाहर जल से ओतप्रोत है। जल से ही सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है। जल में भगवान् विष्णु शरीर धारी सर्वप्रथम प्रकट होते हैं। उन्हीं विष्णु की नाभि से कमल प्रकट होता है। कमल से सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा प्रकट होते हैं। तीन गुणों की सम्पूर्ण सृष्टि है। ये तीन गुण सत्व, रज तथा तम हैं। इन्हीं तीन गुणों के प्रतीक तीन देवता हैं। सत्व पालन पोषण कर्ता विष्णु, रज रचयिता ब्रह्मा और तम सहांर कर्त्ता शिव।

गंगा यमुना और सरस्वती नदियाँ भी जल रूप में ही हैं। तेतीस करोड़ देवता भी जल में ही देवत्व रूप से विराजमान हैं। वही जल कलश में भरा जाता है। इन्हीं देवताओं का आह्वान किया जाता है। तब वह जल देवरूप हो जाता है। उसी अभिमंत्रित जल को पाहल कहा जाता है। जो भी पाहल ग्रहण करता है, वह मानो देवता को ही ग्रहण कर रहा है। ये देवता हमें शक्ति प्रदान करते हैं। हमें सद्गुणों से सम्पन्न बना देते हैं। हम स्वयं देव ही बन जाते हैं। जल की विशेषता है कि वह दूसरों के गुणों को ग्रहण करता है। वह कलश में स्थित जल कोरे मिट्टी के घड़े से पृथ्वी का गुण सुगन्धी ग्रहण करता है। काठ की माला जल में घुमाई जाती है। वह जल काष्ठ के मनकों से भगवान् के नाम का स्मरण ग्रहण करता है। तांबे के पैसों से तांबे का गुण तथा तत्कालीन की सभ्यता को ग्रहण करता है। **ऋषि थाप्या गति ऊधरे** कलश की स्थापना करने वाले ऋषि प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर आदि जैसे पवित्र आत्मा से उनके अन्दर स्थित भक्ति, सत्य, धर्म को जल ग्रहण करता है। पास में ही परमात्मा की ज्योति जलती है, हवन होता है। उस हवन की तेजस्विता, उष्णता तथा प्रकाश जल ग्रहण करता है। इसी प्रकार से सृष्टि के सभी गुणों को जल ग्रहण करता है। जिसको भी इस प्रकार का अभिमंत्रित जल दिया जायेगा, पाहल पान करने वाला हाथ में जल लेकर संकल्प करता है कि मैं सभी दुर्गुणों का त्याग करूँगा। सद्गुणों से सम्पन्न होऊँगा। ऐसे संकल्पवान पुरुष के लिए पान किया हुआ पाहल सद्गुणों से परिपूर्ण कर देता है। संसार में जीने की युक्ति प्रदान करता है और मृत्यु पर मुक्ति प्रदान करता है।

जल देवता है। जल ही जीवन है। वह जल कलश यानि सृष्टि से भरा हुआ है। उस जल को अभिमंत्रित

किया गया है। अन्दर शुभ भावना से अमृतमय बनाया गया है। इस प्रकार के अमृतमय जल का पान करते हुए, जाम्भोजी महाराज कहते हैं कि 21 करोड़ पार पहुँच गए हैं। उन्हीं प्रह्लादपंथी जीव जो 12 करोड़, यहाँ मरुभूमि में जन्म लेकर आ गये हैं। उनको भी पाहल पिलाकर उनकी सद्गति करनी है।

यह सतपंथ जो प्रह्लाद के समय में स्थापित हुआ था, वह तीन युगों को पार करता हुआ अब कलयुग में अटक गया है, उस भूले हुए पंथ की उन प्रह्लाद पंथियों को याद दिलानी है। उन्हें इस संसार सागर से पार कर देना है। वैसे तो लोग बहुत ही लम्बा मार्ग तय कर आये हैं। किन्तु उन्हें अपने मार्ग का ख्याल नहीं है। अब तो उन्हें दूसरे की ही जरूरत है। अंगुलि द्वारा संकेत की ही जरूरत है। वे शीघ्र ही जग जायेंगे। जिन्हें अभी सोना है, वह तो सोयेगा ही। वे लोग इधर इस मार्ग में नहीं आयेंगे। क्योंकि उन्हें अब कोई जन्म और भी लेने पड़ेंगे। कहा भी है- **जुग जागो जुग जाग पिराणी, कांय जागंता सोवो।**

दूसरा अध्याय

वील्हा उवाचः हे गुरुदेव! मेरा अहो भाग्य है जो संसार सागर में भटका हुआ आपके श्री चरणों में आ गया। आपने मुझे उस पवित्र पंथ का पथिक बनाया। मैंने यह जाना है कि यह पंथ नया नहीं है, इस पंथ के पथिक तो तेतीस करोड़ रहे हैं। अधिक क्या कहूँ? इस पंथ को सतयुग में प्रह्लाद ने प्रारम्भ किया था। त्रेता में इस पंथ को हरिश्चन्द्र ने पवित्र किया तथा द्वापर में तो श्रीकृष्ण के परमप्रिय भक्त युधिष्ठिर ने सत्यधर्म से इस पंथ को आगे बढ़ाया।

इस समय मेरा सौभाग्य है कि मैं इस पंथ का पंथिक बना। कलयुग में श्री गुरु जाम्भोजी महाराज ने यह पंथ प्रकट किया। अन्य संत महापुरुषों को पता ही नहीं था। क्योंकि बहुत समय व्यतीत हो जाने पर किसी पंथ (मार्ग) में घास, पत्थर, काँटे आदि आ जाते हैं। यह पंथ अन्य वस्तुओं से ढ़क जाता है। कैसे पता चले कि यहाँ से यह मार्ग बैकुण्ठधाम को जाता है। कलयुग में तो सर्वप्रथम जाम्भोजी ने ही इस पंथ को उजागर किया है। यह बात निश्चित ही है।

आप कृपा करके यह बतलाएँ कि यह पंथ जाम्भोजी ने किस प्रकार से प्रगट किया? सत,त्रेता,द्वापर युग में तो स्वयं भगवान् ने दुष्टों का विनाश किया। किन्तु अबकी बार तो जाम्भोजी ने किसी को मारा नहीं। किन्तु बिना मारे कैसे तारा?

जाम्भोजी के जन्म,कर्म तथा दिव्य चमत्कारों के बारे में विस्तार से जानना चाहता हूँ? उनकी दिव्य लीलाएँ जो उन्होंने मूढ़ लोगों को सचेत करने के लिए की है, उनके बारे में मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूँ। हे गुरुदेव! मैंने आपसे जो कुछ भी पूछा है या नहीं भी पूछा है, किन्तु आप उचित्त समझते हैं, तो बतलाने की कृपा कीजिये। आपने अति निकटता से श्रीदेव को देखा है तथा कानों से शब्द श्रवण किया है। उनके बारे में विस्तार से बतलाइये। आपके सिवाय और कोई भी इस समय नहीं दिखता, जो प्रमाणिकता से बता सके।

यदि ऐसा कोई ग्रन्थ लिखित रूप से विद्यमान हो तो मुझे पढ़ाने की कृपा करें? अन्यथा आप तो स्वयं शास्त्र रूप ही हो। आपके मुखारविन्द से जो कुछ भी निकलता है, वह मेरे लिए ब्रह्मवाक्य ही है। मैं आप से जो भी श्रवण करूँगा उसे अतिशीघ्र ही लिपिबद्ध कर दूँगा। इस समय तो शब्द विद्या आपके कण्ठस्थ है किन्तु भविष्य में ऐसा होना असम्भव है। जम्भेश्वरजी की दिव्य वाणी तथा उनके जीवन चरित्र को मैं आपकी कृपा से छन्दोबद्ध करने की चेष्टा करूँगा। इस पवित्र पंथ को आगे बढ़ाऊँगा, जिससे जन-जन का कल्याण हो।

जाम्भोजी के अवतार होने में क्या कारण होगा? क्योंकि बिना कारण के तो कार्य नहीं होता। स्वयं भगवान् विष्णु नाना प्रकार से शरीर धारण करके, कोई कर्म विशेष करके अपनी लीला समेट लेते हैं। इस बार भी विष्णु अवतार के कुछ कार्य विशेष हैं, तो बतलाने की कृपा करें। शास्त्रों में नव अवतार ही प्रसिद्ध हैं। दसवाँ अवतार तो कल्कि होगा, परंतु जाम्भोजी तो विष्णु के अवतार थे, इस अवतार का प्रयोजन क्या था?

नाथाजी उवाचः हे जिज्ञासु! तुमने बहुत सी बातें पूछी हैं। ये सभी बातें आत्मा-परमात्मा से सम्बन्ध रखती हैं। मैं तुम्हें क्रमशः सभी बातें विस्तार से बतलाऊँगा। अधिकारी शिष्य मिलजाने पर गुरु कुछ भी छिपाकर नहीं रखते।

अवतार के निमित्त कारण

हे शिष्य! वैसे तो अवतार के कई अर्थ हो सकते हैं, किन्तु मुख्यतया प्रकट होना है। देवता का भूमि पर पदार्पण, नया दर्शन, विकास इत्यादि। भगवान् विष्णु के 10 अवतार प्रसिद्ध हैं। मच्छ,कच्छ,वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम-कृष्ण, बुद्ध एवं दसवाँ कल्कि होगा। इसी बात को स्वयं जाम्भोजी ने शब्द वाणी में भी कहा है- **नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूं।** जब-जब धर्म की हानि होती है और पाप बढ़ जाता हैं, तब-तब भगवान् विष्णु जन्म लेते हैं। उसे ही अवतार कहा जाता है। यहाँ पृथ्वी पर पुन: धर्म की स्थापना करते हैं। साधु (सज्जन) पुरुषों की रक्षा एवं दुष्टों का विनाश करते हैं। यह कार्य युगों-युगों, में जब कभी भी ऐसी परिस्थिति आती है, तभी अवतार लेते हैं।

द्वापर में भगवान् कृष्ण ने अलौकिक कार्य किए। कलयुग के आगमन से पूर्व ही अपनी लीला समेट ली। कृष्ण के पश्चात् सदा से उपेक्षित मरुभूमि में कोई ऐसी क्रान्ति न हो सकी, जिससे धर्म का उत्थान हो सके। यहाँ के निवासी सदा ही उपेक्षित रहे। अन्य अवतार, महापुरुष कहीं-कहीं अन्य देशों में ही प्रचार करते रहे। इस समय धर्म का प्रचार करके लोगों को सचेत करने की महत्ती आवश्यकता थी।

लोग धर्म, कर्म, पवित्रता, शौच, स्नान, सत्य, प्रिय-भाषण इत्यादि नहीं जानते थे। अज्ञानान्धकार में डूबे हुए थे। नित्य लड़ाई-झगड़ा, व्यर्थ का वाद-विवाद, चोरी-निन्दा, झूठ आदि का कुछ भी ध्यान नहीं था। वैदिक धर्म लुप्त हो गया था। किन्तु कल्पित देवी देवताओं की भरमार थी। देवताओं के नाम से पूजा-पाठ में जीव हिंसा से भी परहेज नहीं था। जीवों पर दया नहीं थी। खाद्य-अखाद्य भोजन का निर्णय नहीं था। जीवन को बर्बाद करने वाले नशे अत्यधिक प्रचलित थे। जीवन जीने की कला नहीं जानते थे। जीवन में मायूसी छाई हुई थी। जीने का कुछ भी लाभ मालूम नहीं पड़ता था। ऐसी अवस्था उस समय पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में लोगों की हो चुकी थी।

इस प्रकार के अज्ञानान्धकार में लिप्त लोगों को कौन उबारे? अन्य संत महापुरुष तो इस कंटीले, कंकरीले, कठोर देश से दूर ही रहना पसन्द करते थे। जहाँ पीने के लिए जल भी सुलभ न हो। ऐसे देश से भला कौन प्रीति करेगा? भगवान् नृसिंह ने प्रह्लाद को वचन दिया था कि मैं तुम्हारे बिछड़े हुए जीवों का उद्धार करूँगा। पाँच करोड़ सतयुग में पार हो चुके, सात करोड़ त्रेतायुग में, नव करोड़ द्वापरयुग में पार उतर गये। किन्तु बारह करोड़ तो अवशिष्ट थे। उन्हें कौन पार करेगा? भगवान् विष्णु स्वयं ही जाम्भोजी के रूप में अवतार लेकर आये। यही मुख्य निमित्त कारण होगा।

भगवान् को अपने भक्त प्रिय होते हैं। उन्हें उबारने के लिए, धर्मरूपी नौका लेकर संसार में उतर आते हैँ। जहाँ कहीं पर भी छुपे हुए हैं, वहीं खोज कर लेते हैं। **म्हे खोजी थापण होजी नाहीं, खोज लहां धुर खोजूं।** जीव चाहे कितने ही नये-नये शरीर धारण कर ले, किन्तु वह स्वयं ज्यों का त्यों रहता है। जीव में कुछ भी अन्तर नहीं आता है। नये-नये शरीरों में अन्तर अवश्य ही आता है। इसलिए जाम्भोजी महाराज ने उन जीवों को पहचाना था। उनमें जो प्रह्लाद पंथी थे, उन्हें पार किया। भगवान् के अवतार होने का यह भी कारण होगा।

भगवान् कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ था। जन्म के तुरंत बाद पिता वसुदेव ने देवकी की आज्ञा से ही अंधेरी रात्रि में यमुनाजी के पार गोकुल गाँव में पहुँचा दिया था।

गोकुल में नन्दजी पिता कहलाये तथा यशोदा माता बनी। सम्पूर्ण बाल्यावस्था गोकुल में ही यशोदा की गोद में खेलते हुए व्यतीत कर दी। कृष्ण-बलराम जब बड़े हुए तब उन्हें बुलाने के लिए कंस राजा का भेजा हुआ अक्रूर आ गया। अक्रूर ने ब्रजवासियों को संदेश सुनाते हुए कहा- आप लोग सालाना कर कंस को चुकता करने चलो। कृष्ण-बलराम को भी उनके मामा ने धनुष यज्ञ देखने को बुलाया है। प्रातःकाल ही चलना है।

कंस का सन्देशा सुनकर ब्रजवासी जन नन्द आदि गोप अपने अपने छकड़ों में सामान भरकर मथुरा को रवाना हुए। अक्रूर ने कृष्ण बलराम को कंस के रथ पर बिठाया और गोप ग्वाल, यशोदा के देखते ही देखते रथ को मथुरा की तरफ चला दिया। आगे-आगे अक्रूर कृष्ण-बलराम को लिए हुए जा रहे थे। पीछे-पीछे ग्वाल-बाल नन्द आदि जा रहे थे। धनुष यज्ञ का तो बहाना था। कृष्ण बलराम को मामा कंस किसी उपाय से मरवाना चाहता था। कुवलियापीड हाथी द्वारा या शल, तोशल, मुष्टिक, चाणूर आदि पहलवानों द्वारा मरवाने की योजना थी। किन्तु भगवान् की माया से सभी कार्य उलट-पुलट हो गए। स्वयं कृष्ण बलराम ने उस हाथी और उन पहलवानों को मारकर अपने मामा कंस को भी मारने में देर नहीं की।

दुष्ट राजा कंस को मारकर भगवान् ने देव-दानव एवं मानवों का भला ही किया। देवताओं ने जय-जयकार की। आकाश से पुष्प बरसाये। कंस को मारकर सर्वप्रथम कृष्ण अपने माता पिता देवकी-वसुदेव के पास बन्दीगृह में पहुँचे। उनके बन्धन छुड़ाये और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। किन्तु आश्चर्यचकित वे दोनों भगवान् को सामने देखकर कुछ भी नहीं बोल सके।

ये तो भगवान् हैं, हमारा बेटा कहाँ है ? पुत्र सुख से हम वंचित रहे हैं। इतने बड़े भगवान् का कैसे लाड़ प्यार करें ? कैसे गोदी में बिठायें ? हमारा तो जीवन ही व्यर्थ हो गया। ऐसा कहते हुए एक दृष्टि से देखते ही रह गये। पलकें झपकने का क्रम ही भूल गयी। भगवान् कृष्ण ने देखा कि माता-पिता मुझसे प्रेम नहीं कर रहे हैं। इन्हें ज्ञान हो गया है। मोह से निवृत्त हो गये हैं। बालक सुख से वंचित हो रहे हैं। क्यों न इन्हें अपनी माया से मोहित करूँ, जिससे मुझे भगवान् न मानकर साधारण बालक मानकर मुझे लाड-प्यार दें।

ऐसा मानकर भगवान् ने उन ज्ञानी माता-पिता के भी माया का पर्दा डाल दिया, जिससे उन्हें वहीं भगवान् छोटे नन्हें बच्चे दिखाई देने लगे। माँ का प्यार उमड़ पड़ा। स्तनों में दूध की धारा बहने लगी। गद्‌गद् वाणी से माता अपने बच्चे को दुलारने लगी।

कृष्ण ने कहा-हे मात! आपने मेरी वजह से बहुत ही दुःख उठाया है। कितने वर्षों तक आपको जेल में रहना पड़ा। मैं भी परवश था। आपके पास आ नहीं सका। असली जन्म दाता तो आप ही हैं। मैं भी अपनी जननी से दूर रहा, कुछ भी सेवा नहीं कर सका। मेरा यह दुर्भाग्य ही है। जो मुझे दुलार-प्यार, दूध-मक्खन आदि माँ के हाथ से मिलना चाहिये था उससे मैं वंचित रहा हूँ। असली माँ की तो बात ही कुछ और है।

अब तक जो कुछ भी हुआ है। हे मेरे जनक! आप भूल जाइये। आगे के लिए फिर कभी आपको इस प्रकार से अकेले छोड़कर नहीं जाऊँगा। सदा ही आपकी सेवा में तत्पर रहूँगा। अब मुझे आप क्षमा कर

दीजिये। मैं आपका ही बेटा हूँ। आपके ही पास रहूँगा। निश्चित हो जाइये। भगवान् के ऐसा कहने पर वसुदेव-देवकी ने बिछड़े हुए अपने लाला को गले से लगा लिया। आँखों में आँसुओं की झड़ी लग गयी।

देवकी ने कहा-बेटा! मैंने तो तुम्हें जन्म लेते ही त्याग दिया था। मैं क्या करती ? मैं लाचार थी। तुम्हारे नाम मात्र के मामा कंस से भयभीत थी। तुम्हारे जन्म से पूर्व तुम्हारे भाइयों को कंस ने मेरी आँखों के सामने पटक-पटक कर मार दिये थे। तुम हमारी अंतिम आठवीं संतान हो। मैंने तो तुम्हारी भलाई सोची थी कि कहीं इस सुन्दर सलोने कृष्णवर्ण के बालक को दुष्ट कंस वही गति न कर दे, जो पहले की थी। इसलिए हे कृष्ण! मैंने तुझे रातों-रात गोकुल गाँव में नंद-यशोदा के यहाँ पहुँचा दिया। इसी का फल आज तुम प्राप्त हुए हो। अन्यथा माँ अपने नवजात शिशु को कहीं भी अपने से अलग नहीं होने देती। बेटा! इस बात का तुम बुरा मत मानना। कहीं ऐसा न हो कि अपने जन्म की बात सुनकर तू हमें छोड़कर चला जाये। अब तक तो तुम्हारी प्रतीक्षा में समय व्यतीत कर दिया कि बेटा एक दिन अवश्य ही आयेगा। कंस को मारेगा और आकर हमें माताजी-पिताजी कहकर पुकारेगा। इसी प्रतीक्षा में हमने इतने दिन कारावास में व्यतीत कर दिए। किन्तु अब आगे तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। इस प्रकार से माया का पर्दा छा जाने से माँ-बाप अपनी संतान को प्राप्त करके प्रसन्नचित हो गए।

माता-पिता को मुक्त करके कृष्ण बाग में गये, जहाँ नन्दजी तथा अन्य साथी रुके हुए थे। कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब कृष्ण आयेगा, तभी साथ में लेकर ब्रज में जायेंगे। कँस को मारने का समाचार ब्रजवासियों को सुनायेंगे। खुशियाँ मनायेंगे, ऐसी वार्ता चल रही थी कि कृष्ण तो पहुँच ही गये।

सभी कहने लगे देखो: वह हमारा प्यारा कन्हैया आ गया है। कल तो इसने धनुष यज्ञ में चमत्कार ही कर दिया। भरी सभा के देखते ही देखते पलक झपकने के साथ ही उस बलवान राजा कंस को राजसिंहासन से नीचे घसीट लिया और मार गिराया।

सभी एक स्वर में कहने लगे- कन्हैया अतिशीघ्रता करो वापिस भी तो चलना है। यह प्रिय समाचार अपने प्रियजनों को भी तो सुनाना है। खुशियाँ मनानी हैं। भगवान् बोले-हे मेरे प्रिय बन्धुओ! तथा मेरे पूज्य पिताश्री! अब मैं इस समय वापिस ब्रजभूमि में नहीं जाऊँगा, किन्तु मैं वचन देता हूँ कि फिर कभी आऊँगा। मैं अवश्य ही आऊँगा, किन्तु कब आऊँगा, यह अभी नहीं कह सकता। यहाँ कार्य अधिक है। समय थोड़ा है। हो सकता है, यह जन्म ही व्यतीत हो जाये।

मेरे पूज्य पिताजी एवं माता यशोदा का शरीर ही न रहे। इस शरीर को तो जाना निश्चित ही है। आप लोग बड़े-बूढ़े भी यहाँ से प्रयाण कर जायें तो मैं फिर किसके पास आऊँगा। फिर भी मैं वचन देता हूँ, आऊँगा जरूर। यदि यह जीवन न रहे तो भी घबराने की आवश्यकता नहीं है। दूसरा जन्म भी तो मिल जायेगा। तुम्हारी मुझसे मिलने की आशा, तुम्हें दूसरा जन्म देगी। उस जन्म में नहीं आ सकूँगा, तो दूसरे जन्म में अवश्य ही आऊँगा।

हे पिताजी! आपकी तथा यशोदा की आयु बहुत ही कम रह गयी है। आप स्वर्ग में प्रस्थान करोगे, तब तक मुझे यहाँ कार्य की फुर्सत ही नहीं है। अब आगे मुझे जरासंध, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि कितने ही राक्षस और मारने हैं। इस धरती का भार उतारने के लिए ही मेरा यहाँ आगमन हुआ है। इसलिए जब तुम्हारा दूसरा जन्म होगा, तभी मैं तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा, क्योंकि पुत्र के प्रेमवश आप रहेंगे। आपका शरीर इसी

भावना से छूटेगा, तब तो आपका जन्म होना अवश्यभावी है।

मैं भी आपको वचन देता हूँ, तो मुझे भी आपका पुत्र बनकर आना आवश्यक है। पीपासर व्रज भूमि है। उसी व्रजभूमि में आगामी युग में आप स्वयं नन्द ही लोहटजी के नाम से जन्म लोगे और यशोदा स्वयं उनकी पत्नी हांसादेवी के नाम से प्रसिद्ध होगी। मैं स्वयं आपके जन्म लेकर आऊँगा। आपकी इच्छा पूरी करूँगा। आप लोग अभी जाइये। ब्रजवासी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हे पिताश्री ! आप जाकर माता यशोदा को मेरा सन्देशा कह देना कि आऊँगा जरूर, किन्तु कब के बारे में मत पूछें। प्रतीक्षा का फल मीठा होता है। भगवान् का स्मरण बना रहे। **अन्त मति सो गति। अन्त काले च मामैव स्मरणमुक्तवा कलेवरंम्।** अन्त समय में जिसका भी स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग करेगा, वही गति यानि जन्म होगा। तुम्हारा यह जन्म तथा दूसरा जन्म भी सफल हो जाएगा। स्वयं श्रीकृष्ण ही जाम्भोजी के रूप में अवतार लेकर आये थे। यह भी एक निमित्त कारण था। नन्दजी स्वयं हंस रूप में है। किन्तु लोहट के रूप में जन्म हुआ। एक ही आशा घर कर गयी कि स्वयं भगवान् ही पुत्र के रूप में आ जाये। इसी आशा में लोहटजी को कोई सन्तान नहीं हुई थी। अन्य जीव का तो जन्म ही नहीं होगा, क्योंकि आशा भगवान् की लगी है। भगवान् आयेंगे, किन्तु तपस्या करनी पड़ेगी तथा प्रतीक्षा भी करनी पड़ेगी।

इसी ऊहा-पोह में लोहट एवं हांसा की आयु ने वृद्धावस्था को प्राप्त कर लिया। दिल में तो सदा भावना बनी रही कि कुछ न कुछ होगा अवश्य ही, किन्तु आयु को देखते हुए आशा निराशा में बदलती जाती। इस प्रकार से लोहट-हांसा पीपासर में रहते। गाँव में सामान्य ठाकुर, पंवार वश में उत्पन्न हुए थे। कृषि तथा गो-पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। सदा नियमों का पालन करते हुए सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे। घर में अन्न, धन, लक्ष्मी सभी कुछ था, किन्तु एक कमी थी कि वंश परम्परा को आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं था। हांसा की गोद खाली थी। सभी सुख होते हुए भी महिला बिना संतान के अपना जन्म व्यर्थ ही मानती है। स्त्री-पुरुष किसके लिए जिएँ यदि संतान नहीं हो तो।

सभी ग्रामवासियों के दिन अच्छी तरह व्यतीत हो रहे थे। गायें आदि जंगल से चर करके आती थी। अमृत तुल्य दूध देती थी। घरों में घी, दूध, दही आदि के भण्डार भरे रहते थे। कोई भी पशु-पक्षी आदि भूखा नहीं था। सभी आनन्द मंगल में थे। समय पर वर्षा हो जाती थी। सुखी जीवन के लिए बस यही चाहिये था। इससे ज्यादा माँग भी नहीं थी। जो भी परमात्मा प्रसन्न होकर दे देता, उसमें ही संतोष सुख का अनुभव करना उनका जीवन हो गया था। अधिक लोभ ही काम, क्रोध को बढ़ावा देता है। काम से क्रोध और क्रोध ही विनाश का कारण बनता है। ऐसी परिस्थिति उस गाँव की नहीं थी। जिस गाँव पीपासर के ग्रामपति ठाकुर लोहट थे। वे स्वयं ही संतोषी, भगवान् के प्रिय भक्त थे। यथा राजा तथा प्रजा, जैसा राजा वैसी प्रजा।

समय सदा एक रस नहीं रहता। सुख के पीछे दु:ख भी आता है तथा दु:ख के पीछे सुख भी आता है। **दुखिया है जो सुखिया होयसी, करसी राज गहीरूं।** बिना दु:ख के सुख का पता नहीं चलता। सुख के लिए दु:ख का आना भी जरूरी है। यही पीपासर वासियों के लिए एक दु:ख का हल्का झटका लगा।

विक्रम सम्वत् 1507 में पीपासर ग्राम के आसपास अकाल पड़ा। क्योंकि वर्षा नहीं हुई। अन्न की तो कमी नहीं थी, क्योंकि लोग प्राय: दो तीन साल के लिए अन्न कोठियों में भरकर रख लेते। कुछ पता नहीं आगे क्या होगा ? अन्न तो हम हमारे खेतों का ही जीमेंगे, जल अपने ही कुवें का पीयेंगे। वायु तथा सूर्य तो

सदा हमारे देश का ही उपलब्ध है। अन्न-जल ही हमारे संस्कारों का जनक है। इसलिए घर-घर अन्न के कोठार भरे थे, किन्तु गायों के लिए घास की कमी पीपासर के आसपास आ गयी थी।

हम सभी पूर्ण भोजन करके सोयेंगे। हमारे प्राणों से भी प्रिय, हमारे जीवन के आधार पशु आदि भूखे रहेंगे, तो हमें नींद कैसे आयेगी? ऐसा विचार करके ग्रामीण लोग ग्रामपति ठाकुर लोहटजी के पास गये और अपना दुःख सुनाने लगे। लोगों ने कहा-हे ठाकुर! हम आपके पास आये हैं, यह केवल गाँव की ही बात नहीं है, आपकी गायों की स्थिति अच्छी नहीं है। आजकल खेत-जंगलों में गायों के चरने के लिए कुछ भी नहीं है। हमारी गायें जंगल से भूखी आती हैं। ये हमारे पशुधन हमारी तरफ अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखते हैं। हमसे यह सहन नहीं होता। जैसा भी हो इन मूक पशुओं के लिए कुछ तो करना ही पड़ेगा। अब तक तो जैसे-तैसे वन में ही उन गायों ने गुजारा किया है। किन्तु अब आगे गुजारा होना असम्भव है। वर्षा का समय तो अभी काफी दूर है, पूरी सर्दी तथा गर्मी पार करनी है। लोहटजी ने कहा-आप लोग ही बतलाइये कि मैं क्या करूँ? यथाशक्ति मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ। भाइयो! आप लोगों में यह भूल है। हम लोग अपने भोजन के लिए अन्न एकत्रित कर लेते हैं, किन्तु उन निरीह प्राणियों के लिए घास तृण आदि एकत्रित नहीं करते। वर्षा का क्या पता है? आगे से ऐसी भूल नहीं करेंगे। घास इकट्ठा करके रखेंगे, ताकि विपत्ति में काम आये।

ग्रामीण लोग कहने लगे-हे ठाकुरजी! ये बातें तो आगे की हैं। वर्तमान में हमें क्या करना चाहिए? जिससे हमारा पशुधन भूख मरकर समाप्त न हो जाय। क्या करें और क्या न करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। इस प्रकार से विचार में डूबे हुए लोगों को सांत्वना देने के लिए एक बटाऊ-पथिक उसी समय ही आकर सभा में बैठा। उसे पथिक जानकर आदर सत्कार किया, अन्न-जल की मनुहार की तथा पथिक से पूछा कि हे पथिक! आप इस समय कहाँ से आ रहे हैं? क्या कहीं मार्ग में तुमने गायों को घास चरते हुए देखा है? कहीं घास की अधिकता है? यदि कहीं देखा है, तो बतलाने की कृपा करें।

तुमने यहाँ पीपासर में तो देखा ही होगा कि यहाँ आस-पास कहीं घास नहीं है। हमारी गायों की हालत खराब है, हम सभी ग्रामवासी यहाँ से गोवळवास हेतु प्रस्थान करना चाहते हैं। कुछ दिनों तक गोवळवास में रहेंगे। विपत्ति का समय बितायेंगे। जब अच्छी वर्षा होगी, तो वापिस लौट आयेंगे। वैसे तो स्वकीय जन्म भूमि छूटना अच्छा नहीं लगता है। कहा भी है-

यद्यपि लंका स्वर्णमयी, तदपति लक्ष्मण मे न रोचते,
जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।

बटाऊ ने कहा- आप लोग मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो! मैं आप लोगों के लिए हित की बात कहता हूँ। अभी-अभी मैं द्रोणपुर, छापर आदि स्थानों को देखता हुआ आया हूँ। मैं भी उसी देश का रहने वाला हूँ। हमारे यहाँ तो इस वर्ष अच्छी वर्षा हुई थी। लोगों ने खेतों से अन्न उठा लिया है तथा घास भी बहुत है। ये तुम्हारे गाँव की कितनी सी गाये हैं। सारे संसार की गायें आ जाये तो भी घास समाप्त होने वाली नहीं है। पीने के लिए तालाब जल से भरे हुए हैं। जल कभी कम नहीं होगा। आप लोग विपत्ति के समय यहाँ से चलिए, अपनी गायों को लेकर पहुँच जाइये। इसमें ही आपका हित है।

ऐसा कहते हुए वह बटाऊ सभी से आज्ञा लेकर वहाँ से रवाना हुआ। लोहटजी ने उस बटाऊ की बात का समर्थन किया और कहा- ऐसा ही करो। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें। वहाँ तो हमारे छोटे

भाई पूल्होजी रहते हैं। उनके यहाँ पर भी अपना ही है और दूसेरे लोग छापर द्रोणपुर में अपने ही भाई-बन्धु रहते हैं। किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा तथा साथ ही रहूँगा। मुझे तुम लोग इतना आदर देते हो, तो मेरा भी आपकी सेवा तथा सुख-दु:ख में साथ निभाने का कर्त्तव्य बनता है। अभी शीघ्र ही चलो। देरी न करो। अपने-अपने छकड़ों पर आवश्यक सामान भर लो तथा गायों को आगे करके कल प्रात:काल ही चलना है। बड़े-बूढ़ों को तथा बच्चों को गाँव में ही रहने दो। बाकी सभी चलते हैं गोवळवास को।

हे भाइयो! यह संसार भी गोवळवास ही है। इसे सत्य मानकर सदा-सदा के लिए रहने की कोशिश मत करो। एक दिन तो आज की भाँति यहाँ से भी रवाना होना ही पड़ेगा। यह तो छोटा प्रयाण है। कल महाप्रयाण होगा। सदा सुखी वही रहता है, जो हमेशा जाने के लिए तैयार रहता है।

प्रात:काल की शुभ वेला में गायों का समूह ऐसे चला, जिस प्रकार से गंगा-यमुना की धारा बह रही हो। साँझ के समय दस कोस का मार्ग तय करके दुगोली पहुँचे। वहाँ पर गऊओं को जल पिलाया। प्रात:काल वहाँ से चलकर भरनावां होते हुए सायं समय लाडनूं पहुँचे। वहाँ पर पूल्होजी पंवार रहते थे उनसे मिलन हुआ। तीसरी मंजिल शाम को छापर पहुँचे। रात्रि में छापर निवास किया और प्रात:काल द्रोणपुर में जाकर डेरा लगाया। वहाँ के ठाकुर को यह पता चला कि पीपासर के ग्रामपति ठाकुर लोहटजी पंवार आये हैं। तो उन्हें ससम्मान गाँव की सीमा में बसाया। गायों को चरने के लिए एक तरफ की सींव बतला दी। जल पीने के लिए एक तालाब सौंप दिया। लोहटजी के साथ सभी ग्रामवासी अति आनन्दित हुए।

नित्य प्रति लोहटजी अपने साथियों के साथ गऊओं को चराने के लिए जाते थे। इस प्रकार से सर्दी का मौसम चला गया तथा गर्मी का मौसम प्रारम्भ हो गया था। गायें रात्रि में चरने के लिए जाती थी। ग्वाले रात्रि में भी गायों के साथ होते। कही ऐसा न हो कि वन्यजीव भेड़िया आदि हिंसक जानवर गायों को नुकसान पहुँचा दे और अपना भोजन बना ले। कहीं ऐसा न हो कि कोई पशु खो जाये। उनको संभालकर साथ में रखना होता है। चोरी-डकैती का भय भी सदा बना रहता है। सभी ग्वाले तो रोज एक साथ तो नहीं जाते थे, किन्तु बारी-बारी से दो-चार ग्वाले गायें चराने जाते थे। कभी-कभी लोहटजी की भी बारी आती थी, उन्हें गोपाल बनकर वन में जाना पड़ता था। बड़े हुए तो क्या हुआ, मर्यादा का पालन पहले तो बड़े को ही करना होता है। यदि बड़े ही नियम का उल्लंघन करेंगे तो छोटे लोग तो उन्हीं का अनुसरण करेंगे, नियम को तोड़ा करेंगे।

यद्यदाचरति श्रेष्ठ:, तत्तदेवेतरो जन: ।। गीता ३:२१ ।।
स यत् प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते

प्रथम वर्षा तो चैत्र में हो गयी थी, जिससे हरियाली हो गयी थी। तालाबों में जल भर गया था। गायें हरी-हरी घास चरकर आनन्दित हो रही थी। दूसरी वर्षा भी समय पर अक्षय तृतीया को हुई थी, जो खेत जोतने का उपयुक्त समय था। नववर्ष प्रारम्भ हो गया था। इस वर्ष भगवान् बड़े ही प्रसन्न थे। लगातार समय पर वर्षा हो गयी थी। किसान हर्ष से फूले न समाते थे। अपने-अपने हल, ऊँट तथा बैलों को लेकर खेत जोतने को जा रहे थे।

लोहटजी भी गायें चराते हुए सबकी खुशी में अपनी खुशी प्रकट कर रहे थे। इसी प्रकार एक दिन वर्षा

हुई। उस दिन गऊओं को चराने की बारी लोहटजी की थी। रात्रि में अंधेरा था। अमावस्या के आसपास के दिन थे। लोहटजी अंधेरी रात को पार करके ब्रह्ममुहूर्त में गायें जंगल से लेकर वापिस अपने स्थान की ओर आ रहे थे।

स्नान-संध्या की वेला है। अतिशीघ्र वापिस पहुँचना है। नियम का पालन करना है। कहीं सूर्योदय हो जायेगा, तो नियम भंग हो जायेगा। स्नान सूर्योदय से पूर्व हो जाये, तो संध्या सूर्योदय के साथ की जा सकती है।

गायें भी शीघ्रता के साथ अपने-अपने बछड़ों के पास पहुँच जाना चाहती हैं। रात्रि में भरपेट घास खाया है तथा दूध स्तनों में उतर आया है। अपने बछड़ों को दूध पिलाना चाहती हैं। लोहटजी गायों के साथ ही द्रोणपुर के निकट पहुँच चुके हैं। शीघ्र ही अपने स्थान को पहुँच जायेंगे।

द्रोणपुर का जोधा जाट भी जल्दी में था। रात्रि में ही छकड़े पर बीज हल आदि खेती का सामान लादकर खड़ा कर दिया था, क्योंकि सुबह जल्दी ही घर से रवाना हो जाना था। तब तक सभी लोग सोते रहेंगे। पशु पक्षी,मानव,दानव आदि कोई सामने मिलेगा नहीं। तब तक अपने खेत में जाकर हल जोड़ दूँगा। यदि देर हो जायेगी, तो कोई अपशकुन हो जाएगा। अपशकुन हो जाने पर खेती करना व्यर्थ हो जायेगा। एक भी दाना नहीं होगा। भयंकर दुष्काल पड़ेगा, ऐसा विचार करते हुए जोधा अपने घर से बाहर निकला ही था कि सामने पीपासर के ग्रामपति ठाकुर लोहटजी पंवार मिल गये। उन्हें देखते ही जोधा दुमना हो गया। आगे जाऊँ या पीछे? ऐसा विचार करते हुए वहीं खड़ा हो गया। न आगे जा सका और न ही पीछे मुड़ सका। कहा भी है-

गाड़ी जोड़ी गाँव सूँ, सुणे सुगन निरधार।
निकसतई सामा मिल्यां, लोहटजी पंवार।
देखत ही दुमनो भयो, बोल्यो बचन करुर।
दाणो एक न होयसी, पड़सी काल जरूर।।

लोहटजी ने सम्बोधित करते हुए कहा-भाई! क्या बात है? रुक क्यों गये? आगे बढ़ो। तुम्हारे खेतों में अच्छी वर्षा हुई है। बाजरी बोने का समय अनुकूल है। जोधा कहने लगा-मैं क्या कहूँ, किसे दोष दूँ? जिन अपशकुनों से बचना चाहता था, वही हुआ, जो मैं नहीं चाहता था। तुम्हारे जैसे संतानहीन का दर्शन आज मुझे इस पवित्रवेला में हुआ है। तुम यह मानों कि आज मेरे घर तो बिजली ही गिर गयी। ऐसा कहते हुए जोधा वापिस अपने घर की ओर मुड़ गया। लोहटजी को एक झटका लगा। सोये हुए थे, जग गये। मेरा मुँह देखने से अकाल पड़ जाता है। अन्न,धन, धान्य नहीं होता, सभी जीव मेरी वजह से दु:खी होंगे। ऐसा यह जोधा कह रहा है। यदि ऐसी ही बात है, तो मेरा जीना किस काम का? यह जीवन जीकर भी मुझे क्या मिलेगा? केवल अपयश, अपमान के अतिरिक्त जिन्दगी में क्या रखा है? मैं तो विष की घूँट पी जाऊँगा, किन्तु मेरी वजह से अकाल पड़े और अन्नादि न हो तो सभी जीव दु:खी होवें, यह मैं कदापि नहीं चाहता। इसलिए अब एक क्षण भी मुझे जीने का अधिकार नहीं है।

ऐसा विचार करते हुए लोहटजी भी वापिस मुड़ गये। अब तो वापिस लौटकर गोवळवास में जाना नहीं है। ऐसा विचार करते हुए जंगल की तरफ चल पड़े। बालक-ग्वाल मिल गये। उन्हें समझाते हुए कहने लगे-हे साथियो! अब मैं तो वापिस जंगल की राह पकड़ रहा हूँ। आप लोग वापिस अपने-अपने निवास

स्थानों पर जाइये। हमारे पशुधन को भी मैं आज से आप के ही सुपुर्द करता हूँ। सभी को राजी-खुशी का समाचार देना। तुम्हारा-मेरा साथ बस यहीं तक का था। अब आगे तुम्हारा और मेरा भगवान् ही मालिक है। **देह या पातयामि, कार्य या साधयामि।** या तो कार्य ही पूरा करूँगा या शरीर ही छोड़ दूँगा। तीसरा कोई विकल्प नहीं है।

गर्मी का मौसम था। लोहटजी भंयकर गहरे वन में जाकर ध्यानावस्थित हो गये। परमात्मा भगवान् विष्णु जगत के पालन-पोषणकर्त्ता हैं। वही बचायेंगे या मारेंगे। तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। बचायेंगे तो इच्छा पूरी करेंगे, अन्यथा अपने ही पास बुलायेंगे। वह भी स्वीकार है। बिना अन्न-जल के मानव रहित वन में लोहटजी ने तपस्या प्रारम्भ की। मन प्राणों को जीत करके एकटक दृष्टि से भगवान् में ध्यान लगाकर बैठे हुए मूर्तिमान स्वयं शिव ही मालूम पड़ते थे। बिना अन्न-जल के प्राणों को कैसे धारण करेंगे ? ये कोई शिव सदृश योगी तो हैं नहीं। एक साधारण किसान ही तो हैं। इन्होंने कोई योग साधना का अभ्यास तो किया नहीं है, किन्तु श्रद्धाभाव बलवान है। इसी के सहारे तपस्या में संलग्न हुए हैं।

गोवळवास में हांसादेवी अपने पति के आने की प्रतीक्षा कर रही है। नित्यप्रति की भांति स्नान संध्या का समय हो चुका है। अब तक लौटकर नहीं आये हैं। गउएँ तो अपने-अपने बछड़ों को दूध पिलाने के लिए आ गयी हैं। आज मेरे प्राणप्रिय पतिदेव नहीं आये। बाहर जाकर देखूँ तो शायद अतिशीघ्र ही आते होंगे। लोहट तो आते दिखाई नहीं दिये, किन्तु एक बालक ने आकर धीरे से कहा-हे दादी! आज हमारे दादाजी तो वन में तपस्या करने चले गये हैं। हम लोग भी पीछे-पीछे जा रहे थे, किन्तु हमें वापिस लौटा दिया। वे आज नहीं आयेंगे।

दादीजी! ये बछड़े एवं गायें आपकी तरफ एकटक दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी आँखों में झाँककर देखो ? सभी कुछ शून्य (उदासीनता) दिखाई दे रही है। केवल तुम्हारे ही स्वामी तुम्हें छोड़कर नहीं गये हैं। वे तो हमारे सभी ग्रामवासियों के छोटे-बड़ों के मित्र थे। हमें तथा इन गायों को भी दु:ख हो रहा है। ये बेचारे मूक प्राणी स्पष्ट शब्दों में तो बोलकर कुछ कह नहीं सकते, किन्तु रम्भा-रम्भा कर कुछ जरूर कह रहे हैं।

हे दादीजी! आप चिंता न करें। अतिशीघ्र ही परमात्मा विष्णु के दर्शन करके वापिस लौट आयेंगे। ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। हांसा ने पूछा। हे बालकों! उन्हें क्या हुआ ? क्यों वन में चले गये ? कहीं ऐसा न हो कि मैं अपने पीहर-मायके में रह रही हूँ। किसी ने गाँव का दामाद मानकर के कुछ कटुवचन या हंसी-ठिठोली तो न कर दी है। जिससे रूठकर वन में चले गये। यह गाँव ही छोड़ दिया। कहीं ऐसा तो न हुआ हो कि आप लोगों ने ही अपने वृद्ध दादा का कोई वचन अस्वीकार कर दिया हो ? तुम लोगों से रूठ गये हों, अथवा मैं आलसी ठहरी उनकी सेवा में कुछ कमी आ गयी हो। पति को परमेश्वर मानना चाहिए किन्तु मैंने यहाँ पीहर में बैठकर कुछ लापरवाही कर दी है। ऐसा क्या कुछ हुआ, सो बतलाओ।

ग्वाल बालों ने कहा- हे ठकुरानी! न तो हमने कोई दोष दिया है और न ही आपने ही कुछ कहा है। इस गाँव का जोधा जाट प्रथम बार खेत में हलोतिया करने जा रहा था। कुदरती कुछ ऐसा संयोग हुआ। जो होनहार हो, उसे टाला नहीं जा सकता। लोहटजी उनको सामने मिल गये। जोधा शकुनों पर विचार रखता था। लोहटजी एक तो गाँव के ठाकुर, दूसरे दामाद और तीसरे निपुत्र, ये सभी योग-सुयोग एक साथ मिल गये। जोधा इसे अपशकुन मानकर वापिस घर लौट गया और हमारे दादाजी भी यहाँ पर न आकर वन में वापिस

लौट गये। अब न जाने कहाँ गये हैं ? अपनी धुन के पक्के हैं। हमारे दादाजी कार्य पूर्ण होने से पहले लौटकर नहीं आयेंगे।

दादीजी! आप भी भगवान् को ही याद करो। अब तो वही इस संकट से उबारेंगे। लोहटजी तपस्या में तल्लीन हो गये। लेकिन अन्न-जल के बिना प्राण ज्यादा दिन तो नहीं टिक सकते, किन्तु लोहटजी पर तो भगवान् की अपार कृपा है। उन्हें जीवित रखना है। प्राण ही तो भोजन करते हैं। प्राणों की गति अवरुद्ध हो जाये तो भोजन कौन करे ? अब तो प्राण बाह्य वस्तु को छोड़कर अन्तर का अमृत रस पान करने लगे हैं। उसी के प्रभाव से योगी लोग युगों-युगों तक जीते हैं। लोहटजी भी बिना अन्न-जल के जीना सीख गये हैं।

प्राकृतिक प्रकोप भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जिनका प्राण, मन, आत्मस्थ हो जाये। सूक्ष्म रूप से भगवान् स्वयं लोहटजी में प्रवेश कर गये। उनके अंग-अंग से ज्योति बाहर छिटकने लगी। अब तो स्वयं तेजस्वी-तपस्वी बन गये थे। क्यों न होगा। जिनके पुत्र रूप में स्वयं भगवान् विष्णु स्वयं आने के लिए राजी हैं। लोहटजी ने बहुत से दिन समाधिस्थ होकर व्यतीत किए। उन्हें समय का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। न ही सुख-दु:ख का अनुभव हुआ।

देवताओं को यज्ञ की आहुति मिलती रहे तो देवता प्रसन्न होते हैं। देवताओं के लिए मृत्युलोक से आने वाली यज्ञाहुति बन्द हो गयी थी। पुन: प्रारम्भ करवाने हेतु एकत्रित होकर भगवान् शिव, ब्रह्मा के पास पंहुचे और विनती करने लगे- हे प्रजापति! इस समय लोहट जो स्वयं तपस्या करने बैठे हैं। आर्त भक्त है। इनके दु:ख की तरफ ध्यान दीजिये ?

शिव ब्रह्मा ने कहा-हे देवताओ! आप हम सभी मिलकर हमारे ही देवाधिदेव पालन-पोषण कर्त्ता भगवान् विष्णु के पास चलते हैं। ब्रह्माजी ने कहा-उनकी तपस्या का समाधान पुत्र की प्राप्ति ही है। वह मेरे पास सामर्थ्य नहीं है। मैं उन्हें कुछ दे सकूँ तथा तपस्या से निवृत्त कर सकूँ।

अब हम सभी लोग भगवान् विष्णु के पास ही चलते हैं। हमारी समस्या एवं लोहट की तपस्या का समाधान एक ही है। ऐसा कहते हुए सभी देवता भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और विनती करते हुए इस प्रकार से कहा-हे देवाधिदेव! लोहटजी पंवार द्रोणपुर में पुत्र प्राप्ति हेतु तपस्या में तल्लीन हैं। यह समय सर्वथा अनुकूल है। आप ही हमारे कष्ट एवं लोहटजी की व्यथा दूर कीजिये। हम सभी देवता मिलकर के कुछ भी नहीं कर सकते, किन्तु आप अवतार लेने में क्षमता रखते हैं। पूर्ण अवतारों की भांति इस समय हमारी विपत्ति दूर कीजिये।

मृत्युलोक में यज्ञादि बंद हो चुके हैं। जो सुगन्धी सर्वत्र होनी चाहिये थी, उसका लोप ही हो गया है। पुन: प्रारम्भ करवाइये ? उसके बिना हम देवता दुर्बल हो रहे हैं। राक्षसों की ताकत बढ़ती जा रही है। दैवीय शक्ति का ह्रास एवं आसुरी शक्ति का बढ़ावा रोकिये। बेचारा मानव दोनों संस्कृतियों के बीच में पिसा जा रहा है।

यह कार्य आप स्वयं अवतार लेकर ही कर सकते हो।

इसलिए हे देव! आप अवतार लीजिये। ये वही लोहट नन्दरायजी हैं तथा हांसादेवीजी स्वयं आपकी माता यशोदाजी हैं। और वही पीपासर ब्रजभूमि है। आपने वचन दिए थे। उन्हें पूरा करने का अवसर आ गया है। यदि समय रहते आपने देरी कर दी, तो पीछे पछताना ही पड़ेगा। क्योंकि लोहट एवं हांसा की देह नहीं रहेगी, तो फिर आप जन्म कहाँ लेंगे? आपके वचनों का क्या होगा? लोहट के भाग्य में संतान नहीं है। आयु भी पार कर गये हैं। अब प्राकृतिक उपायों से तो संतान होनी असम्भव है। बिना कुछ प्राप्त किए लोहटजी वहाँ से उठेंगे नहीं। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि **देहं या पांतयामि, कार्य या साधयामि।**

भगवान् विष्णु ने देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा- आप लोग वापिस अपने-अपने स्थान को लौट जाइये। मैं स्वयं ही इस बात से परिचित हूँ। मैं अभी जाता हूँ और लोहट को सचेत करता हूँ। उन्हें माता-पिता के रूप में स्वीकार कर लेता हूँ तथा अपने वचनों को निभाता हूँ। **आयो बारा काजै, बारा मैं सूं एक घटे तो सुचेलो गुरु लाजे। अनेक :i रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे**। जो एक से अनेक रूपों में अपने आप को परिवर्तित करने में सक्ष्म है वह विष्णु लोहटजी की तपोस्थली पर साधु के वेश में जा पहुँचे।

अलख जगाई, सत्य विष्णु की बाड़ी कहते हुए। यह विष्णु की सृष्टि ही सत्य है। सदा हरी-भरी फूलती-फलती रहे। यह बाग सदा ही सुगन्ध देता रहे। हे लोहट! उठ जाओ। योगी तुम्हारे द्वार पर खड़ा भिक्षा माँग रहा है। गृहस्थ के धर्म को निभाओ, लोहट! लोहटजी ने आँखें खोली, कानों में सुमधुर योगी की ध्वनि की झंकार सुनी। आँखों से दिव्य दर्शन हुए। लोहट ने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखा था। ऐसा योगी-यति तो कभी देखा भी नहीं था, बिल्कुल अपरिचित, असामान्य।

लोहट ने हाथ जोड़कर योगी को प्रणाम किया और कहने लगे-हे महाराज! मेरा अहोभाग्य है कि इस जनशून्य देश में आपका दर्शन हुआ है। मैं कृतार्थ हुआ। किन्तु साथ ही मेरा दुर्भाग्य भी है कि इस समय मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ हूँ। यदि आपको भिक्षा प्राप्त करनी है तो हमारे परिवार के लोग द्रोणपुर में गोवळवास का समय व्यतीत कर रहे हैं। उनके वहाँ जाइये। आपको भिक्षा अवश्य ही मिलेगी। मैं तो स्वयं ही कई दिनों से निराहारी हूँ।

हे लोहट! मिथ्या भाषण मत करो! पीछे देखो, एक बछडी खड़ी है। इसका दूध दूहकर मुझे पिला दो। मैं अतिशीघ्र ही चला जाऊँगा। तुम्हारी तपस्या में विघ्न नहीं डालूँगा।

हे योगी महाराज! आप क्या कहते हैं? यह बछिया तो मैं यहाँ प्रथम बार ही देख रहा हूँ। यह भी आश्चर्य ही है तथा आप भी अचम्भा ही हैं। इस बिना ब्याही बछडी के दूध कहाँ से आयेगा? आप माँग भी विचित्र ही कर रहे हैं।

हे लोहट! आप उठिये! तथा यह मेरा कमण्डल लीजिये। इसका दूध निकालिये। मुझे पान कराइये।

मेरी बात पर विश्वास कीजिये, तभी तुम्हारी यह तपस्या सफल होगी। योगी के वचनों पर विश्वास करके लोहटजी उठे। योगी का कमण्डल ग्रहण किया। बच्छी के पीठ पर हाथ फेरा और दुहने बैठ गये। तत्काल ही स्तनों में दूध उतर आया। दूध तो स्नेह से उतरता है। वह स्नेह प्रकृति से परमात्मा का हुआ। ईश्वर के आशीर्वाद से बच्छी के दूध उतर आया। कमण्डल भर गया, लाकर योगी को दिया और कहा- हे भगवन्! अब दुग्धपान कीजिये।

योगी ने लोहट से कहा-इस दूध को तुम पी लो। यह ईश्वरीय प्रसाद है। यह तुम्हारी तपस्या का फल है। इसको पान कर लोगे, तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। लोहटजी ने प्रेम से परमात्मा का प्रसाद पीने के लिए होठों पर लगाया था। प्रसाद का प्रेमरस हृदय में प्रवेश कर गया। उसी समय ही भगवान् वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। आकाशवाणी ही सुनाई दी कि अब तुम तपस्या से निवृत्त हो जाओ। वापिस अपने घर चले जाओ। मैं तुम्हारे पुत्र रूप में नये वर्ष में आऊँगा।

जब तुम्हारे गाँव-वन में पुनः वर्षा होगी, हरियाली का साम्राज्य हो जायेगा, खेतों में नया अन्न-फलादि मिलने लग जायेगा, तब मैं आऊँगा। तुम उठो। घर जाओ। अपना कार्य करो।

लोहट एक दृष्टि से देखते रह गये। यह तो एक चमत्कार हुआ है। ईश्वर की जैसी इच्छा है। मेरे घर पर स्वयं भगवान् ही आयेंगे। क्या यही भगवान् जिन्होंने अभी-अभी दर्शन दिये थे। ये तो भगवा वस्त्रधारी योगी थे। अच्छा है। जो भी जैसे भी, आयेंगे तो अवश्य ही।

आगे से लोग मुझे निपूता कहकर तो नहीं पुकारेंगे। मेरा मुँह देखने से अकाल तो नहीं पड़ेगा। मैं अकाल पड़ने में निमित्त कारण बनूँ और संसार में जीवित रहूँ, यह कैसे हो सकता है? ऐसा विचार करते हुए लोहटजी उठ खड़े हुए और घर की तरफ चल पड़े। अपनी धर्मपत्नी को यह समाचार सुनाने की शीघ्रता हो रही है। अपने साथियों को भी तपस्या का वृतान्त और वरदान की बात बतानी है। इसीलिए अतिशीघ्रता से जा रहे हैं।

माता हांसा अपनी सखियों के बीच में बैठी विलाप कर रही है। हांसा कहने लगी-हे सजनी! मेरे दुःख की कथा तुम श्रवण करो। मैं अपनी बात किससे कहूँ? यह ब्रह्माजी ही, हम से तो टेढ़ा है। यदि एक ही पुत्र दे देते, तो क्या उनके कमी आ जाती? राजा सागर को तो सुना है, साठ हजार पुत्र दिये थे। मेरी कोख में एक पुत्र भी नहीं दिया। यदि मेरे पुत्र हो जाता वह चाहे साधु ही हो जाता, घर नहीं बसाता, तो कम से कम आज मेरी यह दशा नहीं होती। मेरे पतिदेव मरने के लिए अनशन पर बैठे हैं। उनके बिना यह देह कैसे रहेगी? पति तो प्राण होते हैं। वही नहीं हैं, तो फिर यह शरीर मेरा जीवित कैसे रहेगा? आज मुझे कई दिन हो गये रोते-रोते। नींद-भूखादि मुझे छोड़कर चले गये हैं। अब मेरा जीना भी क्यों हो रहा है, यह कुछ भी पता नहीं है?

सखियाँ कहने लगीं- हे देवी! आप चिन्ता न करें। आप तथा आपके पति बिना अन्न जल के भी अब

तक जीवित हैं, तो आपको जिलाने वाला कोई और ही है। वह शक्तिदाता आपसे कुछ कार्य लेना चाहता है। अन्यथा तो आप दोनों के प्राण कभी के प्रयाण कर जाते। ईश्वर के हाथ लम्बे हैं। वह न जाने, कब क्या करेगा ? कुछ पता नहीं है। अनहोनी को भी होनी कर दे। असंभव को भी संभव कर दे।

हे देवी ! हमारा तो यह कहना है कि विकट परिस्थितियों में भी भगवान् को न भूलें। वह सभी का योग क्षेम वहन करने वाला है। सदा समय एकरस नहीं रहता। परिवर्तनशील है। हमें तो ऐसा ही लगता है कि सभी कुछ ठीक ही होगा। आप पुन: सामान्य जीवन जियेंगे। तुम्हारे पूज्यपति तपस्या करके अतिशीघ्र ही लौट आयेंगे। थोड़े दिनों की ही तो बात है, धैर्य धारण करो।

जब हांसा कह रही थी कि **साधु ही पुत्र हमारे होते, तो मम पति प्राणन किम खोते।** उसी समय वही योगी लोहटजी को शुभवचन कह करके तुरंत हांसा के सामने उपस्थित हो गया। आवाज लगायी- **सत विष्णु की बाड़ी।** हे देवी ! तुम्हारा बगीचा हरा-भरा रहे। उत्तरोतर उन्नति को प्राप्त होवे। तुम्हारा वंश आगे बढ़े।

हांसा बोली-हे महाराज ! आपके वचन सत्य हों। किन्तु सत्य होने में मुझे संदेह है, क्योंकि यही तो नहीं हो रहा है। जो हम चाहते हैं, वही होगा कैसे ? आप भी हमें यही आशीर्वाद दे रहे हैं।

योगी बोले-हे माते ! आप चिंता न करें। तुम्हारे अवश्य ही पुत्र होगा किन्तु होगा साधु ही। तुम्हारा अन्तिम वचन ही प्रमाण है। ऐसा कहते हुए भिक्षा प्राप्त करके वहाँ से ओझल हो गये। हांसा ने पीछे से देखा। किन्तु न तो आते हुए दिखाई दिये और न ही जाते हुए। हांसा देखती ही रह गयी। साधु ही हमारे पुत्र होगा, ऐसा क्यों कहा ? ये योगी बाबा ही स्वयं पुत्र रूप में आयेंगे ? कब आयेंगे, तब तक पता नहीं हम जिंदा रहे या न रहें।

विचार किया हांसा ने, यह कोई साधारण योगी तो नहीं है। क्या स्वयं शिव या विष्णु ही तो नहीं आये हैं। वे अवतारधारी विष्णु ही पुत्र रूप में आ सकते हैं। अन्य कोई संसारी जीव तो मेरे गर्भ से कैसे आ सकता है ? क्योंकि शरीर तो अब वृद्ध हो गया है। गर्भ धारण करने की शक्ति भी तो नहीं है। क्या होगा ? कैसे होगा ? यह समाचार मैं अपने पति तक कैसे पहुँचाऊँ। उन्हें तपस्या से निवृत्त भी कैसे करूँ ? उनकी तपस्या सफल हुई है। यह समाचार भी उन्हें कौन कहेगा ?

हांसा अपने विचारों के उहापोह में डूबती इतराती हुई खुशी में मग्न थी कि लोहटजी घर पर आ गये। दोनो दम्पति प्रेम से मिले। लोहटजी ने अपनी तपस्या तथा पुत्र प्राप्ति के वरदान की बात बतलाई। हांसा ने कहा - हे पतिदेव ! वही योगी मुझसे भी भिक्षा माँगने आया था। मैं भिक्षा देने लगी तब मेरी पुत्र प्राप्ति की इच्छा जानकर मुझे भी वरदान दिया है। अब तो भगवान् ही मालिक हैं। क्या होगा, वही जाने।

पीपासर में अच्छी वर्षा हुई है। धन-धान्य, तृणादिक से धरती आच्छादित हो गयी है। इन्द्र देवता प्रसन्न हो गये हैं। ऐसा समाचार उन गोवलवासी लोहट एवं अन्य साथियों ने सुना और तुरंत ही वापिस पीपासर की

ओर प्रस्थान कर गये। वापिस अपनी मातृभूमि में गोपाल गो आदि पहुँच गये। गोवलवास का समय पूरा किया और वापिस अपने घर आ गये।

सभी लोग यथावत अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो गये। लोहटजी का अपार धन्यवाद करने लगे। सभी ने कहा, हमारे ग्रामपति ठाकुर साहब बहुत ही अच्छे हैं। इनकी वजह से हमने अकाल का समय अच्छी तरह से व्यतीत किया है। ये तो साक्षात् देवता ही हैं। गोवलवास में हमारे साथ ही सुख-दुःख में रहे। हालांकि इनका तो वहीं ससुराल भी था। ये चाहते तो हमें अकेले छोड़कर, स्वयं दामाद बनकर रह सकते थे। किन्तु ये शरणागत की रक्षा करने के धर्म को अच्छी प्रकार से जानते हैं। इनके ससुराल वालों ने इनसे बारबार आग्रह किया, तो भी हमें छोड़कर नहीं गये।

अपने देश में अच्छी वर्षा होने में भी तो हमारे ठाकुर साहब की तपस्या का ही फल है। अबकी बार तो भगवान् हमारे पर कुछ ज्यादा ही प्रसन्न हैं। ऐसा लगता है कि भगवान् स्वयं ही इन घास, धान, पेड़ पौधों के रूप में प्रकट हो रहे हैं। कुछ लगता है कि क्या होगा? प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर असंभव भी संभव होने जा रहा है। सम्पूर्ण प्रकृति आनन्द-विभोर हो रही है। इस वर्ष भाइयो! प्रकृतिरूपी स्त्री का पति परमेश्वर से मिलन हो गया है। किन्तु पूर्व वर्षों में तो ऐसा नहीं था। प्रकृति अपने पुरुष चेतन के अभाव में उदासीन रहती थी। आप देखिये! जहाँ देखो, वहाँ प्रकृति पूर्णतया खिली हुई है। अपने यौवन पर पूर्णता को प्राप्त हो रही है।

हांसा कहने लगी-हे पतिदेव! मैं क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जाता। किन्तु कुछ कहे बिना रहा भी नहीं जाता। मेरी इस अवस्था को देखती हूँ, तो निराशा ही होती है। जब योगी के वचनों पर विश्वास करती हूँ, तो पुत्र होने की आशा जगती है। मेरे शरीर में कुछ गर्भ जैसा मालूम पड़ता है। लेकिन हिलता-डुलता सा तो मालूम नहीं पड़ता। यदि गर्भ में बच्चा हो तो भार होना चाहिये। किन्तु वह तो बिल्कुल ही निर्भार है उस अवस्था का बखान कैसे करें? जो कोई सुनेगा वही हँसी उड़ायेगा। वे जाने क्या कहेंगे? लोगों के लिए तो जितने मुँह, उतनी ही बातें होगी। लोहटजी कहने लगे हे देवी! चुप ही रहना ठीक है, समय व्यतीत हो जाने पर वृक्ष के फल फूल नहीं लगते। कहा भी है-

सम्बन्धी जन जो सुने, हंस ही कर ही pवाब।
वृद्ध भये तै वृक्ष के, फूलहू फल नहीं आव।।
वचन सुने अवधूत के, लगी पुत्र की आस।
सत्य जान मन हरष है, वृद्ध करि होय उदास।।

विष्णु-अवतार-जाम्भोजी

योगी अवधूत के वचनों पर विश्वास से हांसादेवी को सदा आशा लगी थी कि स्वयं भगवान् मेरे घर पर आयेंगे। मैं उनका मेरे लाल के रूप में दर्शन करूँगी। वह सुखद अनुभूति का समय शीघ्र ही आ गया है। इस समय तो भगवान् ने कृष्ण रूप में अवतार लिया था, तथा इसी को ही नवीन समय कहा था। कुछ नया होने जा रहा है। वही विष्णु ही अनेकों अवतारों के रूप में स्वयं लीला करते हैं। इस बार भी कुछ अनोखी लीला होने जा रही है।

हे देवाधिदेव! आप अवश्य ही प्रगट होइये! आप तो स्वयं समर्थ हैं। आपको किसी गर्भ में आने की आवश्यकता नहीं है। अपनी प्रकृति को अपने वश में करके स्वयं जैसा चाहें, वैसा रूप प्रकट कर लेते हैं। आप कोई सामान्य जीव तो हैं नहीं, जो नौ मास माँ के गर्भ में रहें। आप स्वयं अजन्मा होते हुए भी जन्म लेते हैं। सभी मृत प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी जन्म स्वीकार करके सांसारिक सम्बन्ध पिता-पुत्रादिक बना लेते हैं। ऐसा पूर्व में कई बार हुआ है। वही सम्बन्ध इस बार पुनः स्वेच्छा से स्वीकार करेंगे मुझे ऐसा ही आभास हो रहा है। हे प्रभु! अब समय तो आ चुका है। अपने वचनों को याद कीजिये। मैं आपकी दासी आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

लोहटजी नित्यप्रति की भांति नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिए ब्रह्ममुहूर्त में उठे। भगवान् का स्मरण करते हुए कुएँ पर जाकर स्नान किया। आज रात्रि में तो भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव था। अर्द्धरात्रि तक तो भगवान् के जागरण में लोहटजी सम्मिलित थे। पीपासर गाँव में भगवान् के जन्म की खुशियाँ मनाई जा रही थी। द्वापर में भगवान् विष्णु स्वयं कृष्ण रूप में आये थे। उनकी सुगन्धी अब तक फैल रही थी। अब कलयुग चल रहा है। लोग अचेत हो रहे हैं। उन्हें सचेत करने के लिए भगवान् के मंदिर में उत्सव-जागरण का कार्यक्रम लोहटजी ने किया था। गाँव के लोगों ने आज रात्रि में तल्लीन होकर संकीर्तन किया है। हमारे ठाकुर साहब के भी तो संतान होगी। वे ही कृष्ण पुनः आयेंगे। हमारा सपना साकार करेंगे।

लोहटजी ने सूर्योदय से पूर्व ही स्नान करके मंदिर के कपाट खोले थे कि संध्या वंदन करूँगा। उसी समय ही दिव्य ज्योति का भव्य दर्शन हुआ। लोहटजी की आँखें चकाचौंध हो गयी, स्पष्ट कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हृदय में पुत्र की आशा थी। इसीलिए लोहट ने उस ज्योति में भी पुत्र का ही दर्शन किया। **जांकी रही भावना जैसी, प्रभू मूरत देखी तिन तैसी।।**

लोहट हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे- धन्य है मेरा भाग्य जो आज प्रभु ने स्वयं मुझे ज्योतिस्वरूप में दर्शन दिये। अब तक तो केवल आपकी महिमा ही सुनता था। किन्तु आज मैं अपनी आँखों से आपके स्वरूप का दर्शन कर रहा हूँ। इस शुभ वेला में आपका दर्शन निष्फल नहीं जायेगा। मेरी जो इच्छा है, वह आज भलीभांति पूर्ण हो जायेगी। हे देवाधिदेव! हांसा की गोद खाली है। मैं निःसंतान हूँ। निपूते का मेरा कलंक धो डालिये। आप स्वयं ही पुत्ररूप में हो जाइये। हम दोनो दम्पत्ति आपको पुत्र रूप में देखना चाहते हैं। हमें आप बालक बनकर सुख प्रदान करो। बालक तो प्रत्यक्ष रूपेण भगवान् का स्वरूप ही होता है। हम आपको गोदी में उठा सकें। आपकी बाललीला देखकर कृतार्थ हो सकें। ऐसी कृपा कीजिये प्रभु! जिससे सभी प्रकार से हमारा हित होवे।

लोहट भगवान् की प्रार्थना में मग्न थे। उसी समय ही दासी ने आकर बधाई माँगी। आपके पुत्र हुआ है।

ठाकुर साहब ! बहुत-बहुत बधाई हो। लोहट ने आँखें खोली तो दासी हाथ जोड़ खड़ी पुत्ररत्न प्राप्ति की बधाई माँग रही है। वह ज्योति प्रकाश अग्निस्वरूप विष्णु वहाँ से लोप हो गये। लोहट ने यह आश्चर्य देखा।

क्या करूँ, क्या कहूँ इससे ? क्या यह सत्य है ? यह मैंने जो देखा है, वह सत्य है या यह जो दासी कह रही है वह सत्य है। क्या मैं यह स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। नित्यप्रति जो मेरी भावना थी क्या वह सत्य हो गयी ? लोहट ने दासी को बहुत-बहुत बधाइयाँ दी और उसे वापिस लौटाया।

पीपासर में यह बात फैल गयी कि हांसा के उदर से एक दिव्य बालक जन्मा है। असंभव का संभव हुआ है। वृद्धावस्था में जब मौसम भी नहीं था, तब भी फल लगा है। वह अनहोनी तो कृष्ण चरित्र के बिना असंभव है। चलो, देखते हैं, क्या सत्य है ? बिना देखे भाई लोगों को विश्वास नहीं होता है। सम्पूर्ण ग्रामवासी लोहट के द्वार एकत्रित हुए। ढ़ोल नगाड़े आदि अनेकों यन्त्र वाद्य बाजे बजने लगे। नृत्य गान होने लगा। लोहट ने पुत्र प्राप्ति की खुशी में बहुत सा धन धान्य दान दिया। भाट आदि गाने बजाने वाले प्रसन्नतापूर्वक जय जयकार करते हुए वापिस लौटने लगे।

पुरोहित ने आकर तिथि, वार, नक्षत्र देखा और निर्णय किया कि इस बालक का जन्म भगवान् कृष्ण के जन्म की तिथि में हुआ है। यह बालक भी कृष्ण की तरह ही गुणवान, बुद्धिमान-सम्पूर्ण लोक में सर्वमान्य होगा। आज भादवे महिने की कृष्ण पक्ष की अष्टमी है। वार सोमवार कृतिका नक्षत्र है। विक्रम सम्वत् 1508 इस समय चल रहा है। इन्हीं मुहूर्त से यह पता चलता है कि यह बालक कुल तारक होगा।

पुरोहित ने आगे कहा-हे लोहट ! आप लोग शक्ति अम्बा के कुल परंपरा से उपासक रहे हैं। यह बालक भी तुम्हारी शक्ति का स्वामी है इसलिए इसका नाम भी अम्बा+ईश्वर भी कहा जाये तो उचित ही होगा। सदा ही अम्बा ईश्वर की जय हो। हम तो वहीं भावना रखते हैं। इसलिए इस बालक का नाम जयाम्बेश्वर कहेंगे यदि उच्चारण की दृष्टि से यह नाम लंबा होता है तो इसे जम्भेश्वर रख देते हैं और भी छोटा करना चाहते हैं तो जाम्भाजी नाम रहेगा।

यह बालक जम्भ दैत्य का विनाश करने वाला स्वयं विष्णु है इसलिए सर्वथा अपरिचित नाम जम्भ-दैत्य-पाप विनाशक। इसे जाम्भा नाम से कहना ठीक होगा। यह बालक एक अचम्भे के रूप में प्रगट हुआ है इसलिए अचम्भा ही जाम्भा होगा। देवता लोग भी इसे मस्तिष्क झुकाते हैं इसलिए जम्भेश्वर कहेंगे।

देवताओं ने देखा कि हमारे स्वामी भगवान् विष्णु ने अबकी बार एक साधारण से गाँव पीपासर में अवतार लिया है। लोहट हांसा तथा ग्रामीण लोगों को कृतार्थ किया है। हमें भी चलकर दर्शन करना चाहिये। इस नवीन रूप को, जो अब तक देखा नहीं गया है। गाँव तो बहुत ही छोटा है। ग्रामीणवासियों को हमारे जाने से दुविधा होगी। कहीं डर न जायें, वे कहीं उन विष्णु को साक्षात् भगवान् ही न मानले। अन्यथा उन्हें अपनापन, बालक स्नेह से वंचित न होना पड़े।

अपने लोग सम्भराथल पर ही चलते हैं। वहां शून्य एकात में दर्शन होंगे, तो अच्छा रहेगा हमारे स्वामी हमें कृतार्थ करने के लिए वहीं पर आ जायेंगे। सभी देवताओं ने सम्भराथल पर आकर ज्योति का प्रकाश किया। भगवान् से दर्शन देने की प्रार्थना की तथा मन्द पड़े हुए अपने तेज की वृद्धि की कामना की।

उन देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् थोड़ी देर के लिए पीपासर से सम्भराथल पर आये। देवताओं की स्तुति स्वीकार की तथा उन्हें आश्वासन दिया कि अब शीघ्र ही वापिस लौट जाओ। मैं शीघ्र ही अपना कार्य पूरा करके वापिस लौट आऊँगा।

हे देवताओं ! पच्यासी वर्ष तुम्हारे लिए एक क्षण जैसा है किन्तु इन मनुष्यों के लिए तो काफी समय है। इतने समय में अपना कार्य पूरा करके शीघ्र आ जाऊँगा।

हांसा ने जाकर चुपके से लोहट से कहा-ये राग-रंग, गाजे-बाजे बंद करवा दीजिये। अब तो वह नवजात बालक नहीं है। किस खुशी में ये गाने-बजाने हो रहे हैं। लोहटजी ने हांसा के कथनानुसार गाने-बजाने वालों को वापिस लौटा दिया। रंग में भंग पड़ गया।

क्या हुआ देवी ? बालक कहाँ गया ? अभी तो था, किन्तु थोड़ी सी देर ही तो हुई है ! क्या इतना ही दर्शन देना था ? अभी तो कुछ हुआ भी नहीं। मंगलाचार, लोकाचार तथा कुलाचार भी नहीं हुआ। मैं ठीक तरह से देख भी नहीं पाया। क्या केवल इतना ही कार्य था कि मैं निपूता न कहलाऊँ। ऐसे कैसे हो सकता है ? क्या कोई बिलाव उठाकर ले गया हो। क्या कोई डायन-राक्षसी ही कहीं बालक को ले गयी। क्या यह भी हो सकता है कि बालक कहीं पलने से नीचे गिर गया हो, जाकर देखे तो सही।

लोहटजी दुःखी होकर सूतिका गृह में पहुँचे, जाकर देखा तो बालक सोया हुआ है। हांसा को कहने लगे-क्या तुम अंधी हो गयी हो ? तुम्हें इतना बड़ा बालक भी सोया हुआ दिखता नहीं है। हांसा ने देखा तो आश्चर्यचकित हो गयी। मेरा लाल तो सोया हुआ है। माता ने प्रेमविभोर होकर गले से लगा लिया। स्तनों से दूध की धारा बह चली। फिर से गाना-बजाना, राग-रंग प्रारम्भ हो गया।

भाव और अभाव दोनों ही जोड़े हैं। एक रहेगा तो दूसरा भी रहेगा। इसी प्रकार सुख दुःख का भी साथ रहना अनिवार्य है। भाव से सुख, अभाव से दुःख होगा ही। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उतार-चढ़ाव, सर्दी-गर्मी ये जीवन के शाश्वत सत्य हैं। इसी बात को बताने के लिए जाम्भोजी महाराज थोड़ी देर के लिए छिप गये थे तथा तत्क्षण प्रगट भी हो गये। आने वाले दुःख को स्वीकार करके जीवन जीने की कला को गुरु महाराज ने अपनी प्रथम बाल लीला से दर्शाया है। यह जीवन की सर्वोपरि अवस्था है। इससे सभी को गुजरना होता है, यही शिक्षा प्रदान की है।

लोहटजी कहने लगे हे देवी ! ये तो साक्षात् विष्णु ही हमारे घर पर अपने वचनों को पूरा करने के लिए आये हैं। योगी के वचनों से ही हमें आभास होता है। ये भगवान् नित्य प्रति नये-नये चरित्रों से अनेकों प्रकार की शिक्षा हमें प्रदान करेंगे। हमारा जन्म-मरण प्रवाह अब समझो कि समाप्त हो गया। हमें अपनी औकात बताने के लिए ही तो पधारे हैं। केवल हमें ही नहीं, इस मरुभूमि में बिखरे हुए जीवों का कल्याण करेंगे। हम लोग तो इन्हें भगवान् ही मानकर स्तुति करें।

वील्हा ने पूछा- हे गुरुदेव ! आपने मुझे जाम्भोजी के जन्म की कथा सुनाई तथा जन्म लेने के कारण तथा प्रकार से भली भांति अवगत करवाया। अब आगे की जीवन चरित्र कथा जानना चाहता हूँ। आप के श्रीमुख से ज्ञान श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

नाथोजी ने कहा- हे शिष्य ! जाम्भोजी महाराज के जीवन चरित्र को चार विभागों में विभक्त किया जाता है। यथा-

वरस सात संसार, बाल लीला निरहारी।
बरस पांच बावीस, पाल ऐता दिन चारी।।
ग्यारे और चालीस, सबद कथिया अविनाशी।
बाल गुवाल गुरुज्ञान,मास तीन वर्ष पिच्यासी।।

बाल-लीला

जाम्भोजी ने सात वर्ष तक बाल लीलााएँ की थीं। बाल्यकाल जीवन का प्रथम सोपान है। बाल्यवस्था से ही यदि संस्कार अच्छे दिये जायेंगे तो संस्कार जीवनपर्यन्त साथ रहेंगे। किस प्रकार से बाल्य-जीवन व्यतीत करना चाहिये। ये भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षाएँ जाम्भोजी ने अपने जीवन से देने की महत्ती कृपा की है।

हे गुरुदेव! जाम्भोजी द्वारा दी गयी बाल्य लीला की शिक्षाओं के बारे में मैं पूर्णतया अनभिज्ञ हूँ। आप मुझे पृथक्-पृथक् समझाने की कृपा करें। मैं भी तो अभी बाल्यावस्था को पार नहीं कर पाया हूँ। वैसे तो ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो सभी बालक ही हैं। जिन्होंने सम्पूर्ण वेद,शास्त्र,दर्शन, पुराण आदि पढ़ लिये हैं, किन्तु गुरु जाम्भोजी के बारे में कुछ नहीं जाना है, वह ज्ञानी की दृष्टि में तो बालक ही है। आयु चाहे कितनी ही पार कर जाये। जाम्भोजी ने कहा भी है-

घणा दिना का बड़ा न होयबा, बड़ा न लंघिबा पारूं।
उत्तम कुली का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।

नाथोजी उवाच:- हे शिष्य! जब पीपासर के ठाकुर लोहटजी को वृद्धावस्था में सन्तान की प्राप्ति हुई हो तो खुशी का ठिकाना न रहा। लोगों को आश्चर्य हुआ कि इस वृद्धावस्था में तो बालक का जन्म होना असंभव ही है। जितने लोग, उतनी ही बातें हुई। कुछ समझदार लोगों ने कहा कि- यह असंभव नहीं पूर्णतया संभव है। क्योंकि त्रेता में अयोध्या के राजा दशरथ के भी तो चार संतानें वृद्धावस्था में ही हुई थीं। लोहटजी की तरह उनके भी संतान नहीं थी। किसी ऋषि के शुभ आशीर्वाद से यज्ञ द्वारा चार सन्तानें हुई? वे जगत्प्रसिद्ध भगवान् राम,लक्ष्मण,भरत,शत्रुघ्न कहलाये।

सामान्य रूप से जन्म लेना, मरना यह तो प्राकृतिक रूप से चलता ही रहता है। जब कुछ अनहोनी होती है, तो उसमें अवश्य ही कुछ अप्राकृतिक, कुछ ईश्वरीय होता है। हे भाइयों! आप चिंता न करें। हमारे राजा साहब के पुत्र हुआ है तो अवश्य ही कोई चमत्कार ही होगा। हमारे गाँव का तो सौभाग्य ही है जो ऐसा अचंभा ही हुआ। हम लोग भी चलते हैं, खुशी में सम्मिलित होते हैं। इसी बहाने से उस अद्भुत बालक का दर्शन भी संभव हो सकेगा। हे मित्रो! यह समय हमारे घर पर बैठकर केवल बातें करने का नहीं है। गाँव-गाँव, घर-घर से लोग छोटे-बड़े, सभी लोहटजी के घर एकत्रित होकर खुशी मना रहे हैं। खुशी तो स्वयं प्रकट होगी, क्योंकि भगवान् कृष्ण-विष्णु स्वयं ही अवतार लेकर पीपासर नगरी में पधारे हैं।

भगवान् तो स्वयं आनन्द स्वरूप हैं। यह आनन्द पीपासर तथा जीव रूप से सभी शरीरों में भी तो विराजमान हो रहा है। उस अन्दर बैठे हुए सत्चित आनन्द की झलक मिली है। तभी तो आनन्द का उत्सव हो रहा है। जब वह अन्दर बैठा हुआ ही गायब हो जाता है, तो यह देह मृत हो जाती है। उसका तो राम ही निकल गया, तो पीछे क्या रह गया? मृत शरीर को ढ़ोने के अलावा कुछ भी नहीं होता।

लोहट एवं हांसा देवी को भी आज खुशी का, आनन्द का पार नहीं है। आगन्तुकों को बधाइयाँ बाँट रहे हैं। मानों सभी कुछ लुटाने को तैयार हैं। किन्तु एक को छोड़कर। यह नया शिशु आया है, यह तो हमारे जीवन का आधार है। इसके अलावा सभी कुछ धन-दौलत, गायें आदि देने के लिए प्रस्तुत हैं। भगवान् ही आ गये हैं, तो अन्य धन-दौलत की क्या आवश्यकता है? जब तक भगवान् की प्राप्ति नहीं थी तभी तक ये

वस्तुएं प्रिय लगती थी। दूसरों को अपनी प्रिय वस्तु कैसे दी जा सकती है किन्तु अब परमप्रिय भगवान् का पदार्पण हो चुका है। उनके सामने अन्य वस्तुएँ नगण्य हो चुकी हैं। जिनका कुछ भी महत्व नहीं है, वे वस्तुएँ दी जा सकती हैं। इसीलिए लोहटजी दोनों हाथों से लुटा रहे हैं।

बधाइयाँ ग्रहण करने वाले नट,भाट,ब्राह्मण,नाई आदि बड़े प्रेम से ग्रहण कर रहे हैं। उन्हें आज तो थोड़ा ही मिला है, तो भी संतोष हो रहा है। अन्य दिनों में तो संतोष नहीं होता था। जितना भी अधिक दिया जाता था, उतनी ही तृष्णा,इच्छा,वासना ज्यादा बढ़ जाती थी।

आज तो वे लोग संसार की वस्तु ग्रहण नहीं कर रहे हैं। ये वस्तुएँ धनादिक तो मात्र बहाना है। ये लोग तो उस परमपिता परमात्मा को ही ग्रहण कर रहे हैं। जब वह परमात्मा ही आत्मा से मिलन करता है, तभी आत्मा भी सत्‌चित् आनन्द को प्राप्त हो जाती है। आत्मा के सोये हुए भाव जागृत हो जाते हैं। क्यों न संतोष होगा ? यदि परमात्मा की प्राप्ति किसी वस्तु के बहाने से हो रही है। जहाँ स्वयं भगवान् आये हैं, वहाँ तृष्णा, दु:ख,द्वन्द्व का क्या काम ?

ग्राम की वृद्धा तथा युवतियाँ भी लोहट के आँगन में गीत गा रही हैं। लोहट का लाला अजर-अमर रहें, यशस्वी होवे, लोहट के कुल को आगे बढ़ाये, ये सभी शुभकामना करती हुई, आशीर्वाद प्रदान कर रही थीं।

हांसादेवी भी भगवान् से प्रार्थना कर रही थीं। हे देवाधिदेव ! आपने मुझ पर बड़ी कृपा करी है, जो मुझे इस अवस्था में इतना सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ है। यदि आपकी इतनी अपार कृपा नहीं होती, तो आज मुझे यह शुभ दिन देखने को नहीं मिलता। मेरे पति कभी प्राण त्याग देते। उनके बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती थी। आपको बार-बार नमन है।

यह तो निश्चित ही है कि वन में एक योगी ने हमें आशीर्वाद दिया था। उनकी कृपा से ही आज हमारा घर रोशनी से जगमगा रहा है। अन्यथा तो अंधेरा ही था। हे मेरे परमेश्वर ! यहाँ तक तो खुशी प्रगट कर दी है, किन्तु मुझे संदेह हो रहा है, भविष्य के बारे में। मैंने अभी-अभी जन्मघूंटी पिलाने की कोशिश की है। किन्तु यह तो पीता ही नहीं है। बिना कुछ ग्रहण किये यह बालक कैसे जीवन धारण करेगा ? इस बात का तो अब तक किसी को भी पता नहीं है।

वैसे तो मैं जानती हूँ कि यह बालक तो वही योगी है, जो स्वयं हमें तपस्या से निवृत्त कर आया है। योगी लोग तो ऐसा सुनते हैं कि समाधि ले लेते हैं। बिना अन्न-जल, श्वांस के भी युगों-युगों तक जीते हैं। किन्तु यह नवजात मेरा छोटा सा बेटा कैसे जियेगा ? पहले की बात और है अब तो यह शिशु है। घूंटी पिलाने की कोशिश करती हूँ, किन्तु यह तो पीता ही नहीं है। क्या मेरे में कुछ दोष है ? मैं तो एक माँ हूँ, और कुछ भी नहीं। माँ का तो मन प्रसन्न तभी होता है, जब बेटा कुछ खाए-कुछ पीये।

कहीं यह स्वयं जगत का पालन-पोषणकर्त्ता भगवान् विष्णु तो नहीं आ गया ? मैं इसे क्या खिलाऊँ-पिलाऊं ? वह तो सम्पूर्ण जगत को खिलाने-पिलाने वाला है। मैं भी कितनी अज्ञानी हूँ। उस विष्णु की माँ बन बैठी हूँ। जो सभी की चिंता करते हैं। मैं उसकी चिंता करने लगी।

मुझे भी अहंकार आ गया है। भक्तिभाव चला गया है। क्या भगवान् कभी अहंकारी से कुछ ग्रहण करते हैं ? मुझे तो 'मैं' भाव को त्याग करके, प्रेम से कुछ समर्पण करना होगा। तभी कुछ भगवान् ग्रहण कर सकते हैं।

हो सकता है कि पतिदेव ने मुझे अभी-अभी अंधली कहा है। क्या मैं सचमुच अंधी तो नहीं हो गयी हूँ। घूंटी पिलाने का प्रयत्न करती हूँ किन्तु ठीक से मुख में पिला नहीं पा रही हूँ। मुझे तो कुछ दिनों से सचमुच

ही दिखाई कम देने लग गया है। इस समय तो मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गयी हूँ। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। क्या करूँ क्या न करूँ? क्यों न ग्राम की वृद्ध महिला को बुला लूँ। वह दाई का कार्य करती है। उन्हें मालूम है कि नवजात शिशु को प्रथम घूँटी किस प्रकार पिलाई जाती है? मैं तो सर्वथा अनुभव हीन हूँ, मुझे क्या पता? मेरे तो यह प्रथम तथा अन्तिम एकमात्र संतान हुई है। मैं भी अज्ञतावश असंभव कार्य को करने में प्रवृत्त हुई हूँ। यदि कोई कार्य स्वयं न कर सके, तो दूसरों से पूछ लेना चाहिए। दूसरों से करवाने में क्या शर्म की बात है?

अच्छा, तो मैं अभी बाहर बैठी हुई महिला गीत गा रही हैं, उन्हें अन्दर बुलाती हूँ। यह घूँटी का कार्य उन्हें सौंप देती हूँ। हांसा देवी की आज्ञा स्वीकार करके नवजात शिशु का दर्शन करने अनेकों महिलाएँ सूतिका गृह में प्रवेश कर गयीं।

आपस में कहने लगीं-हे सखी! अच्छा है तुम्हारा बेटा तो कितना सुन्दर सलौना दिव्य रूप, ये तो साक्षात् कन्हैया ही तुम्हारा बेटा बनकर आ गया है। हम तो सुन्दर रूप को देखकर बलैया लेती है। जुग-जुग जियो हांसा के लाल। कितना अच्छा होता यह पहले ही आ जाता। न जाने आने में इतनी देरी क्यों की? अब तक जवान हो जाता। लोहट-हांसा दादा-दादी हो जाते। कौन जाने भगवान् की लीला के बारे में, न जाने वे क्या करना चाहते हैं? कौन जाने कि यही ठीक के लिए हुआ है।

हमें आगे-पीछे से क्या लेना? जो वर्तमान में सुख मिल रहा है, उससे हम वंचित क्यों होवें? जितना चाहे उतना लूट लें। यही ठीक रहेगा। अन्यथा तो आगे-पीछे के चक्कर में यह वर्तमान ही चला जायेगा। हांसा बोली-हे सखियो! मेरी व्यथा भी सुनो! यह बालक तो जैसा आपने कहा है, कन्हैया ही अवतार लेकर आ गया है। ऐसा मुझे भी आभास होता है। किन्तु यह बालक तो कुछ भी खाता-पीता नहीं है। इसने तो अब तक जन्म घूंटी भी नहीं ली है। अब तुम्हीं बतलाओ कि यह बालक जीवन किस प्रकार धारण करेगा?

सखियाँ कहने लगी-हे देवी! यदि ऐसी बात है तो तुम हमें पहले बतलाती। हम बड़ी-बूढ़ी यहाँ एकत्रित हैं। घूंटी देने में कुशल हैं। अभी पिलाएँ देती हैं। लाओ बालघूंटी। हांसा ने बालघूंटी उस वृद्धा के हाथ सौंप दी तथा धैर्य धारण कर लिया। अब ये सखियां अवश्य ही पिला देगी। यह तो मेरी ही भूल थी, जो मैंने इन्हें पहले नहीं बुलाया।

एक वृद्धा ने घूंटी हाथ में ली और बड़े ही अहम्भाव से जाम्भोजी को पिलाने लगी और कहने लगीन्- जब मैं जीवित नही रहूँगी, तो इस गाँव की साख मिट्टी में मिल जायेगी। किन्तु क्या देखती है सीधा मुख पर हाथ नहीं जा रहा है। कभी तो नाक पर जा टिकता है। तो कभी थोडी पर जा टिकता है। कभी ललाट से जा टकराता है। दूसरी देवी पास में खड़ी देखते हुए हँस रही है। कहने लगी-हे माता! तुम हट जाओ। तुम्हें अब पता नहीं चला कि वृद्धावस्था आ गयी है। हाथ काँपने लगे हैं। तुम्हें दिखलाई भी कम ही देता है, तुम्हें मुख का तो पता ही नहीं है। तुम तो कभी थोडी पर, कभी नाक पर या कभी ललाट पर हाथ फेर रही हो, वहाँ मुख कहाँ है अब तो अपनी चौधर छोड़ दो। भगवान् का भजन करो। तुम्हारे वश की बात नहीं है। रुक जाओ मैं पिलाती हूँ।

दूसरी सखी ने घूंटी का कटोरा हाथ में लिया और देखा कि कहीं मैं भी उसी तरह हंसी का पात्र न बन जाऊँ। ध्यान से देखा तो हजारों मुख दिखाई देने लगे। कौन-कौन से मुख में घूंटी दी जाये। **सहस्त्र शीर्षा पुरुषा** जो हजारों मुख वाले भगवान् हैं, उन्हें कैसे एक मुख से तृप्त किया जा सकता है? भगवान् को आहुति

देना है, तो हजारों-लाखों मुखों में भोजन का ग्रास देवें। तभी भगवान् के पास पहुँचता है। केवल मंदिर में भोग लगाने से कार्य नहीं चलेगा। भगवान् तो विराट् स्वरूप हैं। सभी के शरीरों में विद्यमान हैं। सभी को तृप्त करते हैं। शरीरधारी जीवों का अन्न-जलादि से तृप्त करें तथा देवताओं को यज्ञ द्वारा तृप्त करें। यही शिक्षा जाम्भोजी ने, जीवन घूंटी न लेकर जन समाज को प्रदान की थी। किन्तु पीपासर की नारियाँ तो यही समझ रही थी कि हम इस बालक को घूंटी देंगी।

पास खड़ी हुई नारियाँ भी अपना-अपना कौशल दिखाने लगी, किन्तु कोई सफल नहीं हो सकी। भगवान् ने संकेत दिया कि आप लोग भगवान् के बंदों को, देवताओं को, जो तुम्हें वायु, जल, आकाश,तेज आदि प्रदान करते हैं, उन्हें आहुति दो, तभी भगवान् प्रसन्न होंगे। तुम्हारा दिया हुआ सहर्ष स्वीकार करेंगे। किन्तु ग्रामीण इस बात को समझ नहीं पाये। सभी नारियाँ हार करके वापिस अपने घरों को लौट आयी।

आज के आँखों देखे आश्चर्य को एक-दूसरे से कहने लगीं-भले ही लोहटजी को वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त हुआ है, किन्तु यह बालक तो अपने बालकों जैसा साधारण बालक नहीं है। इसके शरीर में जो ज्योति छिटक रही है। देखा तुमने। हे सखी! तुमने देखा, उस घर में दीपक भी नहीं था, तो भी प्रकाश हो रहा था। वहाँ तो कुछ बात ही दूसरी है। हम तो अपने घर लौट आयी, किन्तु वह बालक तो हमारे हृदय में बस गया है। बाहर निकालने की, उसे भूलने की कोशिश कर रही हूँ किन्तु वह तो भूला ही नहीं जा सकता। उसे देखकर तो हमें सुध-बुध ही न रही। घर-परिवार सभी कुछ ही विस्मृत हो गया।

हे सखी! उसमें कुछ न कुछ तो जादू अवश्य है। क्यों न होगा? वह स्वयं तो कृष्ण कन्हैया ही यशोदा का लाल, हांसा का लाल बनकर आया है। ये बिचारी गोपियाँ जिन्हें लोग दोष लगाते हैं? दुनियां के लोग क्या जाने, उनकी दशा को। **'घायल की गति घायल ही जाने जे कोई घायल होई।'** आज हमें पता चला है कि वे गोपियाँ कृष्ण के विरह में क्यों तड़पती थीं?

चलो! घर का कार्य भी तो करना है। केवल गोपियाँ बनने से तो पेट की भूख नहीं मिटेगी। मन की भूख तो देवदर्शन से मिट जायेगी, किन्तु पेट की भूख तो अन्न का भोजन करने से मिटेगी। कल भी जायेंगी। कन्हैया का दर्शन करके जीवन का लाभ उठायेंगी।

कैलाश पर्वत पर तपस्या में लीन भगवान् शिव से पार्वती ने कहा- हे देव! समाधि खोलिये! जिस भगवान् विष्णु की आप उपासना करते हैं। वे आपके आराध्य देव निराकार होते हुए भी साकार रूप धारण करने में कुशल हैं। उन्होनें अबकी बार फिर से नया चरित्र (खेल) रचा है। आप जाकर देख तो आओ। पूर्व अवतारों के अवसर पर तो आप अतिशीघ्र दर्शनार्थ जाया करते थे। अबकी बार उदासीनता क्यों?

हे देवी! अभी जाता हूँ। मुझे पता है। मैंने समाधि में ही सभी कुछ जान लिया है। अब जो तू कहती है, तो मुझे अवश्य ही जाना है। यह तो तूने मेरे मन की ही बात कह दी।

संध्या वेला में सभी नारियां अपने-अपने घरों को चली गयी थीं। उन्हें बहुत सा घर का कार्य करना था। गायों को दुहना, भोजन बनाना, संध्या वंदन करना आदि। ऐसे अवसर पर हांसा अकेली घर में थी। बालक के बारे में सोच रही थी। यह कैसे जीवन धारण करेगा? इसने तो दुग्धादि कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। इस बालक के तो भगवान् ही मालिक हैं। वे ही बचायें तो ही बच सकता है।

उसी समय घर में एक योगी ने प्रवेश किया। हांसा ने देखा-हाथ में डमरू, जटाजूट धारी, माला जपता है वह दिगम्बर वेशधारी। हांसा ने सामने जाकर स्वागत किया। आइये महाराज! आइये! हम आपकी क्या

सेवा करें ? भोजन दुग्धादि ग्रहण करके हमें कृतार्थ करें। हम गृहस्थ हैं। आप हमें अपना धर्म निभाने का सुअवसर प्रदान करें।

आप कौन हैं ? आप कहीं स्वयं भगवान् विष्णु, ब्रह्मा या शिव तो मेरे घर पर योगी के रूप में नहीं आ गये हैं ? यदि ऐसा है, तो आज बड़ी धन्य भागी हूँ। मैं आज कृतार्थ हो गयी हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। **भगवान् शिव बोले-ऐसा ही है! तेरे घर पर तो इस समय तीनों देवता आ गये हैं। यह जो तुम्हारा बालक है, वह तो साक्षात् सृष्टि का पालन-पोषणकर्त्ता भगवान् विष्णु है। इस समय तुम्हारे पतिदेव लोहटजी तो ब्रह्मा के रूप में हैं और तुम्हारे सामने खड़ा मैं स्वयं शिव कल्याणकारी हूँ।** इन तीनों को हे देवी! तू प्रत्यक्ष देख! हे ब्रह्माणी! तुम तो स्वयं मायास्वरूपा हो। भगवान् विष्णु स्वयं कुछ नहीं करते। वे तो वेमाता-ब्रह्मा से जैसा चाहते हैं, वैसा कार्य करवा लेते हैं।

पूर्व में बहुत बार भी भगवान् ने ऐसे ही नये-नये असंभव अनहोने रूप धारण किये थे। जैसे नृसिंह, वराह, कच्छ, वामन इत्यादि। मैं तो स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि भगवान् न जाने कैसे-कैसे विचित्र अवतार लेते हैं। अच्छा है! इस बार तो तुम्हें अपनी माता स्वीकार किया है। मैं देखता हूँ तुम्हारे लाला को कि ये तो मानव रूप में ही हैं। यह तुम्हारा बेटा तो सुन्दरता में तो राम-कृष्ण से भी अधिक है। यह मरुदेश कुछ विचित्र था, किन्तु अब तो वृन्दावन-अयोध्या बन गया है।

यह स्वाभाविक ही है कि नवजात शिशु कुछ खाये-पीये नहीं, तो माता-पिता परिजनों को चिंता होगी ही। घर में सभी कुछ पदार्थ विद्यमान हो किन्तु भूख ही न लगे तो फिर सभी पदार्थ व्यर्थ है। इसलिए हे देवी! तुम्हें भी अच्छा नहीं लगता, बिना दुग्धपान किये, बच्चे का रहना। मेरा बेटा अधिक दूध-मक्खन खाये, जल्दी बड़ा हो जाये।

मैं तुझे बतला देता हूँ कि यह साधारण बालक नहीं है। अभी द्वापर में कृष्ण ही थे। वे ही तुम्हारे आये हैं। उस समय ब्रजभूमि में गायें चराते हुए माँ यशोदा तथा अन्य गोपियों के प्रेम की अधिकता के कारण दूध, मक्खन, दही, मलाई आदि पदार्थ कुछ ज्यादा ही जीम लिये थे, अब तक तो वही नहीं पच पाये हैं। उस समय ज्यादा जीम लेने से इस समय व्रत करना पड़ेगा। यह तो प्रकृति का नियम है कि, पहले ज्यादा खा जाओ, तो फिर खाना-पीना बंद। उपवास करो। और क्या इलाज है ? यही कह रहे हैं क्योंकि इस जन्म में ये भोजन-पान नहीं करेगे। निराहारी रहेंगे। इस बात को तुम सत्य जानो। हांसा हाथ जोड़े खड़ी योगी की बात सुनती रही, बीच में कुछ भी नहीं बोली।

हांसा कहने लगी-क्या मेरा बेटा कभी भोजनपान नहीं करेगा ? यदि ऐसा है तो जीवनधारण कैसे करेगा ? हे योगी! मैं यह जानना चाहती हूँ कि इस कलयुग में अन्नमय प्राण है, तो बिना अन्न-जल के कैसे जियेगा ?

हे देवी! आप चिन्ता न करें, ये तो सभी जगत के आधार हैं। **म्हापण को आधारूं** हमारा तथा इनका जीने का क्या आधार हो सकता है ? क्योंकि हम ही तो सम्पूर्ण सृष्टि के आधार हैं। हम तो परलोक के शरीरधारी हैं। हमें जो शरीर प्राप्त है, यह इस लोक का नहीं है। इस शरीर को जीवित रखने के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। हमारे यहाँ तो जीवन का आधार अमृत है। उस अमृत का हम देवता पान करते हैं। उसी के प्रभाव से युगों-युगों तक जीते हैं। ये जो तुम्हारे पुत्ररूप में आये हैं ये अलौकिक है। इनका भोजन, रहन-सहन, कार्य-कलाप, जन्म-कर्म सभी कुछ दिव्य विचित्रता से भरे हुए हैं।

हे देवी! आपने वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त किया है। आपको मोह कुछ ज्यादा ही है। मोह को छोड़कर ज्ञान

की दृष्टि से देखिये तो आपको असलियत का पता चल जायेगा। ये स्वयं भगवान् विष्णु ही तुम्हारे आये हैं। बारह करोड़ प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीवों को पार उतारने के लिए। जब इनका कार्य हो जायेगा, तो एक क्षण भी नहीं ठहरेंगे। आप लोग इन्हें समझ नहीं पा रहे हैं। क्योंकि भगवान् की माया बड़ी बलवान है। भले ही आप लोग पुत्र रूप में देखिये, वह तो तुम्हारे पुत्ररूप में रहने को राजी हैं। वे तो सभी प्रकार से राजी हैं। जैसा आप चाहें वैसा सम्बन्ध जोड़ें। भगवान् तो स्वयं कहते हैं कि हम जगत के माता-पिता, दादा-परदादा, पुत्र-पुत्री, सखा आदि रूप में विद्यमान हैं।

ऐसा कहते हुए योगी अदृश्य हो गये। न जाने किधर गये ? हांसा पीछे देखने लगी, किन्तु कहाँ से आये ? कहाँ गये ? कुछ पता नहीं। पीछे पछताने लगी। मैं कैसी अज्ञानी, मूढ़ हूँ ? स्वयं शिव भगवान् मेरे घर पर आये। उनकी बातें ही बातों में उलझी रही। कुछ खाने पीने भिक्षा देने की भी सुध नहीं रही। उन्होंने तो बहुत प्रकार की भोजन की बातें ही बतलाई थी। क्या करूँ मैं तो अपने लाला की चिंता में ही रही।

हांसा ने यह समाचार लोहटजी को सुनाया। तब लोहटजी ने पैरों के निशान देखे कि कौन आया था ? यह कैसी बातें कर रही है ? यहाँ तो किसी के पैरों के निशान नहीं है। मैं कैसे मान लूँ कि कोई योगीपुरुष आया था।

संत वचन सुन हरष अति, भई पुत्र की जान।
कछु प्रसन्न कछु चिंत मन, हरि माया बलिवान।।

माता हांसा ने अपने प्रिय पुत्र को पीढ़े पर सुला दिया और आप स्वयं चारपाई पर सो गयी। प्रेम की अधिकता होने से माँ स्वयं पास में ही सोयी थी। कहीं बालक को कछु हो न जाय। माँ नींद में भी बालक की रक्षा करती है, सचेत रहती है। न जाने कुछ क्या हो जाय ? माँ को नींद कम ही आती है। फिर भी नींद तो अपना प्रभाव अवश्य ही जमायेगी। सावधान रहते-रहते नींद की एक झपकी माता हांसा को आ गयी।

सत्वगुण सम्बन्ध होने से तो शांति रहती है। रजोगुण आने से कुछ करने की वासना जाग्रत होती है। उत्पादन शीलता आती है। तब नींद उड़ जाती है और तमोगुण का साम्राज्य होते ही नींद, आलस्य, प्रमाद छा जाता है। माता हांसा भी तमोगुण से आवृत्त हो गयी, जिससे नींद की झपकी आ गयी।

थोड़ी देर के पश्चात् जग गयी और स्वाभाविक रूप से अपने प्राणप्रिय पुत्र को देखने के लिए हाथ पीढ़े पर गया। आश्चर्य ! हाथ से बालक का स्पर्श नहीं हो रहा है। पीढ़ा खाली है। क्या हो गया मेरे लाल को ? कौन ले गया ? उठकर देखा तो सचमुच में ही बालक पीढ़े पर नहीं है। कहीं नीचे तो नहीं गिर गया है ? पहले की तरह घर में प्रकाश भी तो नहीं है। अंधेरे में कुछ भी तो नहीं दिखता। क्या करूं ? प्रकाश के लिए दीपक जलाऊँ। हांसा ने दीपक जलाकर देखा। घर में कहीं भी दिखाई नहीं दिया।

तुरंत लोहटजी को जगाया। उठिये ! बालक को तो कोई ले गया है। घर में नहीं है। मैंने तो पीढ़े पर सुलाया था, किन्तु अब तो वहाँ पर नहीं है। क्या पता कोई कुत्ता, भेड़िया उठाकर ले गया हो। लोहटजी झटपट क्रोधित होकर उठे और कहने लगे- मैं अभी देखता हूँ कौन कहाँ से ले गया तथा किधर गया है ? अभी मैं पैरों के निशान देखता हूँ जहाँ भी जिधर भी गया है, मैं पीछा करके पकड़ूँगा। लोहटजी बड़े चिन्तित हुए कहाँ देखूँ क्या करूँ ? लोहटजी कहने लगे क्या तुमने किसी को घर में आते जाते देखा है जो आरोप लगा रही है कि कोई स्यावज बालक को ले गया। हांसा बोली-मैंने देखा तो नहीं, क्योंकि मैं तो नींद में थी। कैसे देखती ? किन्तु जागने पर देख रही हूँ कि मेरा बालक नहीं है। लोहटजी ने विचार किया कि-कहीं स्वप्न तो नहीं आ रहा है ? कहीं मोह की आधिकता में इसकी बुद्धि भ्रमित तो नहीं हो रही है ? चलूँ मैं स्वयं चलकर

देखूं। लोहटजी ने घर में जाकर देखा तो बालक पीढ़े पर सोया हुआ है।

लोहटजी कहने लगे-अये! अंधली! इधर आकर देख। यह तेरा प्यारा लाल सोया हुआ है। तू कहती है कि कोई ले गया, आगे ऐसी व्यर्थ की बातें न किया कर। हांसा कहने लगी-हे पतिदेव! आप मुझे अंधली क्यों कहते हैं, आप स्वयं ही आकर देखिये! मैंने बालक को पीढ़े पर पूर्व मुख करके सुलाया था। किन्तु अब पश्चिम की तरफ मुख हो गया है। इतना यह छोटा सा बालक कैसे पूर्व से पश्चिम की तरफ हो गया? अवश्य ही कहीं गया है, या कोई ले गया है। इस समय वापिस सो गया है, या कोई सुला गया है। मैं आप से सत्य कहती हूँ कि थोड़ी देर पहले यह बालक पीढ़े पर नहीं था।भगवान् ही जाने इस बालक के बारे में तो। न जाने क्या-क्या आश्चर्यजनक लीला है? परमात्मा की अपार कृपा से यह अलौकिक बालक हमें प्राप्त हुआ है।

वील्हा उवाच:- हे गुरुदेव! अभी-अभी आपने कहा कि जाम्भोजी थोड़ी देर के लिए लुप्त हो गये। हांसा को भी दिखाई नहीं दिये। बहुत परेशान हुई तथा लोहटजी पिता हैं, उनको उसी स्थान पर दर्शन हुए। यह क्या लीला है? थोड़ी देर के लिए कहाँ चले गये थे तथा इस लीला से क्या शिक्षा देना चाहते हैं? कृपा करके बतलायें।

नाथोजी उवाच:- हे शिष्य! असली बात तो भगवान् ही जाने, क्या पता, वो क्या करना चाहते हैं, किन्तु मानव तो अनुमान ही लगा सकते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि स्वयं जाम्भोजी विष्णु ही हैं। विष्णु की अर्द्धांगिनी (भार्या) लक्ष्मी हैं। पूर्व अवतारों में विष्णु-लक्ष्मी साथ रहे। जैसे सीताराम, रुक्मणि-कृष्ण आदि। इस बार तो भगवान् लक्ष्मी को पीछे ही छोड़ आये। साथ में आने की अनुमति प्रदान नहीं की थी।

स्वयं जाम्भोजी ने कहा है कि त्रेतायुग में सीता मेरे साथ थी **रा?गो सीता हनुमत पाखो, कौन बंधावत धीरूं।।** द्वापर में रूक्मणी साथ थी- **आतर पातर राही रुखमणी, मेल्हा मन्दिर भोयो।** इस कलयुग में तो मैं अकेला हूँ- **रहा छड़ा सी जोयो।** इस समय तो अवधूत के रूप में ही रहूँगा। तभी मेरा कार्य पूर्ण हो सकेगा। लक्ष्मी को साथ नहीं लाये। यही कारण था।

भगवान् विष्णु कहाँ गये? कुछ दिनों से लक्ष्मी को सेवा का अवसर प्रदान नहीं कर रहे हैं। कहीं राजा बलि के बंधन की तरह स्वयं ही कहीं बंधन को स्वीकार तो नहीं कर लिया है? मैं जाकर देखूँ ऐसा विचार करते हुए लक्ष्मीजी, जब सम्भराथल पहुँची। लक्ष्मी ने भगवान् को विश्वभर के स्थान पर ही ढूँढ़ा। क्योंकि भगवान् विष्णु का यही पुरातन स्थान है। भगवान् विष्णु पीपासर में लोहट के घर पालने में सो रहे हैं।

कहीं लक्ष्मी यहीं पर आकर अपना आसन जमा लेगी, तब तो कार्य में बाधा उत्पन्न होगी। ऐसा विचार करके स्वयं विष्णु ही लक्ष्मी से मिलने के लिए सम्भराथल पर पहुँच गये। पीछे हांसादेवी की आँखें खुल गयी। देखा, हमारे प्राणप्यारे कहाँ गये? कहीं लक्ष्मी मोहवश हमसे छीन न ले। जिस प्रकार से बलि से भगवान् को छीना था।

भगवान् ने लक्ष्मी को समझाया कि हे देवी! इस समय यहाँ तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। कुछ दिनों के लिए मैं यहाँ अवधूत योगी बन करके इस देश में विचरण करूँगा। अपना कार्य पूर्ण करके शीघ्र ही वापिस चला जाऊँगा। तब तक के लिए क्षमा करो। अब तुम वापिस प्रस्थान करो। मैं भी वापिस जाता हूँ। ऐसा दिव्य चरित्र भगवान् ने दिखाया था।

हांसा ने तो पूर्व परम्परा के अनुसार अपने बेटे का मुख पूर्व की ओर करके सुलाया था, किन्तु जाम्भोजी कहते हैं कि **अइयालो अपरम्पर बाणी** हम तो तुम्हारी प्रचलित परम्परा से ऊपर उठकर वार्ता करते हैं। पूर्व

दिशा में तो पहले भी अवतार हो चुके हैं, अब पश्चिम की बारी है। यह जांगळ देश सदा से उपेक्षित ही रहा है। यहाँ न तो संतों की वाणी है न ही कोकिल कूजती है और न ही वेद वाणी। न ही यज्ञादिक शुभकर्म ही यहाँ दिखाई देते हैं। ऐसे देश में मैं आया हूँ। यही संकेत दिया है। इसलिए तो पूर्व से पश्चिम मुख करके लेटे हैं।

मरुभूमि में चारों ओर अमावस्या ही थी। अज्ञान-अंधकार का ही साम्राज्य था। उस रात्रि के घने अंधकार में एक किरण प्रगट हुई थी। जिस प्रकार से अमावस्या के पश्चात् चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ता है और पूर्णिमा को पूर्ण सोलह कला से सम्पन्न हो जाता है। उसी प्रकार हांसा कुमार की कला भी दिनोंदिन बढ़ने लगी। प्रतिदिन कुछ नया इतिहास-चरित्र देखने को मिलता था। ग्रामवासी क्या समझें? भगवान् की माया से आश्चर्य चकित हो जाते थे। कहते थे कि, है तो कोई अचम्भा ही।

वील्हा उवाचः- हे गुरुदेव! अभी-अभी आपने कहा कि भगवान् जाम्भोजी चन्द्रकला की तरह बढ़ने लगे, समय आने पर पूर्णमासी बन जायेंगे। सम्पूर्ण सोलह कलाओं से युक्त हो जायेंगे। यह बात भी ठीक है। किन्तु मुझे यह संदेह है कि जो बढ़ते हुए पूर्ण हो जायेंगे, वे पूर्ण होने के पश्चात् क्षय को भी प्राप्त होंगे। जैसे चन्द्रमा पूर्णमासी के बाद घटना प्रारम्भ हो जाता है। अमावस्या को बिल्कुल निश्तेज, अस्तित्वहीन हो जाता है। ऐसे ही यदि विष्णु अवतार जाम्भोजी हो जायेंगे, तो फिर सामान्य जन व उनमें क्या अन्तर होगा?

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! जैसा तुमने कहा है, सामान्य मानव की तो यही गति है। प्रथम विकास, उसके बाद स्थिर और अन्त में विनाश। किन्तु भगवान् विष्णु में यह बात नहीं है। प्रथम विकास, द्वितीय स्थिरता ही रहती है। उनका विनाश नहीं होता। **'जिंहि का किसा बिनाणी'** उसका विनाश कैसा? इसलिए तो भगवान् तथा उनके अवतार कभी वृद्ध नहीं होते। सदा बाल्यावस्था में यति रहते हैं। **दया धर्म थापले, निज बाला ब्रह्मचारी। बालै निरंजन गौरख जती।** सदा ही बाल्यावस्था में रहने वाले गोरक्षक यति। **स तु सर्वेषाम् गुरु कालेन अनवच्छेदात्।** वह तो सभी का गुरु है। जो काल से परे है। अर्थात् काल उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। ऐसे भगवान् अपने शरीर को उतरोत्तर उन्नति को प्राप्त करवा रहे थे।

लोहटजी की एक बहन थी तांतू। वह ननेऊ में विवाहित थी। भाई के पुत्ररत्न हुआ है। बहन को अत्यंत प्रसन्नता हुई। आज मैं भुआ हो गई हूँ। मेरे भतीजा हुआ है। उसे देखने के लिए पीपासर जाऊँगी। वह समय की प्रतीक्षा कर रही थी। वह शुभ समय आ गया। साथ में अपने पतिदेव तथा सेवकों को लेकर तांतू पीपासर पहुँची। लोहट हांसा को समाचार मिला कि बहन आ रही है। उन्होंने बहन-बहनोई की आगवानी की। सत्कार करने के बाद कुशल समाचार पूछा- भोजन-जल से तृप्त किया।

तांतू बोली- भैय्या एवं भाभीजी! यह तो तुम्हारा बड़ा ही सौभाग्य है, जो इस अवस्था में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है। मुझे भी बहुत दिनों से भतीजे का दर्शन करने की लालसा थी। आज मैंने दर्शन किये हैं। मैं तो कृतार्थ हो गयी। मैंने तो जन्म लेने का फल प्राप्त कर लिया है।

भैय्याजी! मैं अपने भतीजे के लिए छोटी सी भेंट-कुर्ता, टोपी, कुछ आभूषण आदि ले आयी हूँ, मैं अपने ही हाथ से पहनाना चाहती हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो पहना दूँ। लोहटजी बोले-हे बहन! ये भी कोई पूछने की बात है! भुआ के हाथ के बनाये हुए, प्रेमरस में भीगे हुए, दिव्य वस्त्र, अलंकार, मेरा बेटा पहनेगा, तो उसे किसी प्रकार की दृष्टिदोष, भूत-प्रेत आदि चेड़े नहीं लगेंगे। तुम्हारा तो यह आशीर्वाद ही होगा, जिसको पाकर हम तथा यह नन्हा तुम्हारा भतीजा कृतकृत्य हो जाएगा। अवश्य ही पहना दो।

चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। कुछ सहारा दूँगा। वैसे तो बहुत ही हल्का है। गोद में उठाने में कुछ भी भार मालूम नहीं पड़ता, किन्तु हे बहन! जैसे हम वृद्ध हैं, वैसे तुम भी तो वृद्धावस्था को प्राप्त हो गयी हो। ऐसा कहते हुए दोनों भाई-बहन ने भवन में प्रवेश किया जहाँ श्रीदेव पलने में लेटे हुए विचारमग्न थे। पीछे बीते हुए काल को देख रहे थे। कहाँ अयोध्या, कहाँ दवारिका और कहाँ इस समय का यह पीपासर।

विखा पड़ंता पड़ता आया, पुरुष पूरा पूरूं।
जे रिण राहे सूर गहीजै, तो सूरस सूरा सूरूं।

वचनों को निभाने के लिए ये संयोग-वियोग, सुख-दु:ख तो चलते ही रहेंगे। जो व्यक्ति इन द्वन्द्वों की परवाह नहीं करता है, वही पूरा पुरुष है। युद्धभूमि में जाकर शूरवीरता दिखलाए वही तो शूरवीर कहलाता है। अन्यथा तो चारपाई पर पड़ा-पड़ा डींग हाँकता रहे, वह काहे का शूरवीर है? ऐसे ही कुछ विचारमग्न होकर जाम्भोजी एकटक दृष्टि से देख रहे थे। लोहट तांतू ने इसी रूप में देखा था। भुआ ने पास जाकर कपड़े पहनाने के लिए बालक को गोदी में लेने लगी, किन्तु उन्हें तो हिला भी नहीं सकी। उठाकर गोदी में लेना तो असंभव ही था। तांतू ने सोचा, क्या बात है? क्या मैं इतनी बलहीन हो गयी हूँ, जो इस छोटे से बालक को नहीं उठा सकी। अभी तो मैं गाय दुहती हूँ, रोटी बनाती हूँ, जल से भरे हुए बड़े-बड़े घड़े उठा लेती हूँ, आज मुझे क्या हो गया? क्या यह बालक इतना वजनदार हो गया? अभी तो भैय्या ने कहा था कि बहुत ही हल्का है।

तांतू कहने लगी- भैय्याजी! आप लोग बार-बार यही कहते हो कि हमारा बेटा अन्न, दूध, जलादि कुछ भी ग्रहण नहीं करता। तुम लोग झूठ क्यों बोलते हो? तुम्हें झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती है? यह तुम्हारा बालक तो मेरे से हिलता भी नहीं है। उसे उठाना तो दूर की बात है। मुझे देखो! मैं कोई इतनी दुबली-बलहीना तो नहीं हूँ, जो इसे उठा नहीं सकूँ। इसमें तो बहुत भार है।

लोहट कहने लगे- हे बहन! तू दूर हट जा। मैं अभी उठा लेता हूँ। मैं रोज ही गोदी में लेकर घूमता हूँ। बिल्कुल ही वजन नहीं है। ऐसा कहते हुए लोहट ने बालक को उठाने की कोशिश की, किन्तु वह भी हिला-डुला नहीं सके। बहुत जोर लगाया, थककर पसीने से लथपथ हो गये। थककर बैठ गये। यह क्या हो गया? मेरे लाला को जो इतना वजन? मुझे अपने आप पर भरोसा नहीं हो रहा है। क्या मैं वही हूँ, जो पहले था? क्या हो गया मुझे और मेरे बेटे को? क्या बात हुई? क्या चूक हो गयी मुझसे, जो मैं अपनी गोदी खाली देख रहा हूँ? मेरा बेटा आज मुझसे रूठ गया है। मेरे पास आना नहीं चाहता।

हे बेटा! यह तुम्हारी भुआ तो पहली बार ही आई है, इसकी तरफ तो ध्यान दो। इस प्रकार से प्रयास रत दोनों भाई-बहन को देखा, तो हांसा भी आ गई और कहने लगी-इस छोटी सी बात के लिए इतने चिंतित क्यों हो रहे हो? मैं अभी गोदी में ले लेती हूँ। हे ननदजी! आप अपने उपहार भेंट कर देना। ऐसा कहते हुए हांसा अपने प्रिय लाला को उठाने लगी, किन्तु क्या देखती है कि वह तो भारी वजनदार हो गया। उठाना तो दूर की बात हिला भी नहीं सकी। हांसा ने अपनी ताकत का अपमान समझा, फिर से ताकत लगायी किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। हांसा भी हारकर दूर जाकर बैठ गयी। तीनों के कुछ भी समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है।

उसी समय ही खेल खिलाने वाली दासी आयी और उसने सभी के देखते ही देखते लोहट लाला को गोदी में उठा लिया। वे इतने हल्के रूई के समान हो गये। सभी ताली बजाकर हंसने लगे। खुशियाँ प्रकट

करने लगे। कहने लगे-हमारे में ही कहीं भूल हुई है। यह बालक तो वास्तव में बहुत ही हल्का है। तांतू बोली-आपकी बात सत्य है। इसका शरीर तो पवन, तेज सदृश निर्भार ही है।

वील्हा उवाचः-हे सतगुरु! जाम्भोजी महाराज ने ऐसा क्यों किया? जैसा आपने कहा कि भारी (बोझवान) बन गये। माता,पिता,भुआ को ऐसा चरित्र दिखाने का क्या प्रयोजन था? कृपया समझाइये।

नाथोजी उवाचः-हे शिष्य! भगवान् की लीला अपार है। साधारण प्राणी कैसे उनकी लीला का पार पा सकते हैं? फिर भी मैं कहता हूँ। श्रवण करो! भगवान् यह कहना चाहते हैं कि हे शरीरधारियो! तुम अहंकार ना करो। यही तुम्हें डुबा देगा। जैसा कि मैं भुआ हूँ, मेरा ही इस पर अधिकार है। मैं ही इसे उठाऊँगी। मैं ही इसका पालन-पोषण करूँगी। मैं ही इसकी सर्वस्व हूँ। यदि मैं न होऊँ, तो इसका जीना असंभव है। मैं ही इसका लाड-प्यार, दुलार करूँ। मुझे ही ये प्राप्त हो। दूसरों को न हो। यह जो मैं पना है, यह खतरनाक है। दूसरे पर जबरदस्ती हावी हो जाता है। भगवान् ने देखा कि ये माता-पिता भुआदि तो अहंकार में इतने डूब गये हैं, इन्हे कैसे उबारें? केवल मात्र इतने का ही मेरे ऊपर आधिपत्य हो, यह असहनीय है। भगवान् ने बताया कि मैं तो ईश्वर हूँ। सभी का ही हूँ। सभी मेरे हैं। मैं सभी का हूँ। मैं तो कुछ भी भेदभाव नहीं देखता। किन्तु ये लोग भेदभाव की दृष्टि को मजबूत कर रहे हैं। इसे गिराना चाहिये। इनको बता देना चाहिये कि मैं तो सभी का हूँ। किन्तु जो मेरे दास हैं, उनका मैं विशेष प्रिय हूँ। वह चाहे छोटा हो चाहे बड़ा हो, गरीब हो, चाहे धनवान हो।

गुणिया म्हारा सुगणा चेला, म्हे सुगणा का दासूं।
सुगणा होयसी सुरगे जायसी, नुगरा रह्या निरासूं।।

वह दासी थी। क्योंकि उसमें दास भाव था। वह पूर्णतया समर्पित थी। किसी प्रकार का अहं नहीं था। यह भगवान् जानते हैं। जब दासी पास में आयी तो भगवान् स्वयं ही दास के पास चले गये। दास यदि एक कदम भगवान् की तरफ बढ़ाते हैं, तो भगवान् दस कदम बढ़ा देते हैं। यही तो उनकी प्रतिज्ञा है। किन्तु जो अहंभाव लेकर भगवान् की प्राप्ति की कोशिश करता है, तो वह भगवान् के पास ही नहीं पहुँच पाता। यही शिक्षा देना भगवान् का अभिप्राय है।

वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु जब शयन करते हैं, तो क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर सोते हैं। लक्ष्मीजी भगवान् के पैर दबाती हैं। भगवान् को तो केवल शेष नाग की शय्या से ही संतोष करना पड़ता है। किन्तु यहाँ मृत्युलोक में तो स्वयं भगवान्जी हिंडोलने में हींड रहे हैं। यहाँ मृत्युलोक की कुछ विशेषता तो अवश्य ही है। वहाँ तो लक्ष्मी पैर दबाती है किन्तु यहाँ तो सभी पीपासर वासी ही नहीं पशु,पक्षी आदि भी सेवा करने के लिए लालायित है। एक पलक सेवा का अवसर मिल जाये तो धन्य-धन्य हो जाये।

जिनको वायु देवता झूला झुला रहे हैं। सूर्य देवता प्रकाश रूप से स्वयं प्रकाश ग्रहण कर रहे हैँ। सौम्य शांत भाव से उदित होकर सभी जनों को जीवन प्रदान करा रहे हैं। यह धरती माता भी अपने ऊपर चरणों को देखकर धन्य हो गयी। सम्पूर्ण औषधियाँ फल फूल सुगन्धी से भर गयी। बादल आकर पर्जन्य करते हैं। जल ही जीवन है, सभी के जीवन को उन्नतिशील बनाते हैं। आकाश शब्द को ग्रहण करके उसका विस्तार करते हैं। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ बरस रही है।

लोहटजी के घर में भी भगवान् आये हैं, तो गायें दूध अधिक देने लग गयी हैं। पहले जो बर्तन थे, वे छोटे पड़ गये हैं। बछ़डों को भरपेट दूध पिलाया जाता है, तब भी बर्तनों में नहीं समाता। हांसादेवी घर में अकेली

ही तो है। उन्हें ही तो घर का सम्पूर्ण कार्य करना होता है। कभी दही बिलौती हैं। साथ ही साथ दूध भी गर्म हो रहा होता है। कभी गायें दुहने का समय, तो कभी भोजन बनाने का समय। अभी नन्हा तो पालने में झूल रहा है।

लोहटजी वृद्ध हो गये हैं। तो भी उन्हें गायें चराना अच्छा लगता है। वे अपना कार्य नहीं छोड़ सकते। एक दिन लोहट का लाला हिंडोलने में हींड रहा था। उधर हारे (चूल्हा) में दूध चढ़ा दिया था। दूध गर्म हो रहा था। घर में तो केवल एक माता हांसा ही थी, वह भी किसी कार्यवश घर से बाहर गयी हुई थी। दूसरा घर में कोई भी नहीं था। स्वाभाविक रूप से चूल्हे में आँच तेज हो गयी थी और दूध गर्म होकर उफनने लगा। उसे अब कौन बचायेगा? दूध की हंडिया खाली हो जायेगी। लोहट-हांसा दु:खी होंगे। क्योंकि माता को पूत से भी दूध प्यारा होता है। दूध को बचाने के लिए पूत की उपेक्षा की जाती है। भगवान् ने हिंडोलने में सोये हुए देखा कि यह तो ठीक नहीं हो रहा है।

द्वापर युग बीते को अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं। उस समय भगवान् ने अपनी माता यशोदा को देखा था कि वह दही बिलो रही थी। कन्हैया गोद में बैठकर दूध पी रहे थे। उधर दूध उफनने लग गया। माता यशोदा ने कन्हैया को गोदी से नीचे उतारकर, झटिति दूध बचाने भाग पड़ी थी। जाम्भोजी उस माता को भूले नहीं थे। कहीं यह माता हांसा भी वैसा ही व्यवहार न करे कि देखो ऐसा मेरा पुत्र जो उफनते हुए दूध को देखता ही रहा। उसे बचा ही नहीं सका। उस समय तो कन्हैया माता के चले जाने पर बहुत क्रोधित हुए थे और डंडा मारकर दही की मटकी फोड़ दी थी। यशोदा ने बड़ा भाारी दु:ख मनाया था और कन्हैया यानि अपने ही बेटे को बाँध दिया था। कहीं अबकी बार भी मुझे न बाँध दे, उस माता यशोदा का बंधा हुआ तो मैं इस समय जन्म लेकर आया हूँ। अबकी बार यह माता हांसा मुझे बाँध देगी तो मुझे फिर से जन्म लेकर आना पड़ेगा। क्योंकि यह तथा वह दोनों एक ही हैं।

मैं कहीं फिर से बन्धन में न पड़ जाऊँ। ऐसा विचार करके हिंडोलने से नीचे उतर करके उफनते हुए दूध का ढ़क्कन उतार दिया तथा बड़े भारी बर्तन को चूल्हे से नीचे रख दिया। दूध को बचा दिया और माता के आने से पूर्व ही वापिस पलने में जाकर लेट गये।

भगवान् ने बतलाया कि ध्यान रखो! दुनिया में दु:ख की आँच लगेगी। उस आँच के बिना तो तुम पक्के नहीं हो सकते। तुम्हें पकने के लिए आँच की आवश्यकता है। यह भी ध्यान रखो। आँच उतनी अधिक भी न हो जाये, जिससे तुम्हारे में उफान आ जाये। धैर्य छूट जाये। आपे से बाहर हो जाये। ऐसा कुछ न करो, जिससे यह दूध का बर्तन ही खाली हो जाये। सभी कुछ काम, क्रोध,मैं लुटा दो। यदि आँच आ भी जाये, तो सावधान रहो। कहीं इस क्रोध रूपी आंच की भी जरूरत है। इसके बिना भी कार्य नहीं चलेगा। किन्तु सीमित मात्रा में ही ठीक होता है। जितनी आवश्यकता हो उतना ही श्रेयस्कर है।

यद्यपि मानव अवश है। ऐसा संयोग आ ही जाये, जब पानी नाक तक पहुँच जाये। तब डूबने से अवश्य ही बचाव करे। उस आँच को तो हम समाप्त नहीं कर सकते। हम स्वयं ही कारण नहीं है तो कोई और भी कारण हो सकते हैं। इसीलिए जाम्भोजी ने कहा है- **जे कोई आवे हो हो करता, आपज हुइये पाणी।** हम स्वयं अपना बचाव कर सकते हैं, अपने दूध को स्वयं बचा सकते हैं। दुनिया के काम, क्रोध, ईर्ष्या को मिटा नहीं सकते।

माता हांसा अपना कार्य करके आयी तो क्या देखती है-दूध की कढ़ावणी आग से नीचे रखी पड़ी है,

बेटा तो हिंडोलने में हींड रहा है। चूल्हे में कुछ उफना है। आग पर दूध गिरा है। दूध की सुगन्धी आ रही है। यह कार्य किसने किया ? बाहर से न तो कोई आया और न ही कोई गया हैं। किसी के भी आने-जाने के पैरों के निशान नहीं हैं।

यह मेरा लाला तो बहुत ही छोटा है। इससे तो यह कार्य होना असंभव है। अभी तो पैरों से चलना ही नहीं सीखा है। हांसा ने हारे और पालने के बीच में जाकर पैरों के निशान देखे। ये तो पैरों के नन्हे-नन्हे चिन्ह मेरे ही लाला के हैं। इसने ही यह कार्य किया है। माता के मन में खुशी छा गयी। हांसा ने तुरंत तसला लेकर पैरों के निशान ढ़क दिये। आज शाम जब पतिदेव आयेंगे, तब दिखलाऊँगी। मुझे रोज-रोज अंधली कहते हैं। मेरी इन आश्चर्यजनक बातों पर विश्वास ही नहीं करते।

शाम को जब लोहटजी घर पर आये, तब उन्हें ले जाकर चरण चिन्ह बतलाये और कहा आज बहुत बड़ा कार्य मेरे लाला ने किया है। आपको विश्वास ही नहीं होता था। अब आप इन कुं कुं चरणों को देखिये और मेरी बात पर विश्वास कीजिये। फिर से मुझे अंधली मत कहना। लोहटजी ने आश्चर्ययुक्त होकर देखा और हांसा की बात को सत्य माना।

लोहटजी पीछे की एक-एक लीला का स्मरण करने लगे। जब जंगल में योगी ने दर्शन दिया था। उसने पुत्र होने का वरदान दिया था। वे सभी बातें स्मरण करने लगे। हे देवी ! अवश्य ही यह हमारे यहाँ द्वापर युग का कृष्ण कन्हैया आया है। किन्तु हम तो इन्हें अपने पुत्र भाव से ही स्मरण करते हैं। यह तो हमारी मोह-माया ही है। यदि मोह-माया से ऊपर उठकर देखें, तो हमें भी वही विष्णु कृष्ण कन्हैया का दर्शन होगा। जो भी हो, जैसा भी हो। हम तो कृतार्थ हो गये। इनकी कृपा से आज पीपासर में उत्सव हो रहा है। सभी मानव,पशु,पक्षी,पेड़-पौधे,कीट-पतंग आदि प्रसन्नचित हैं। सभी में नये उत्साह का संचार हुआ है। क्यों न होगा, जहाँ जिस देश में स्वयं भगवान् आ जायें, वहाँ किस बात की कमी रह जाती है।

हे देवी ! सभी कुछ आनन्द होते हुए भी यह बालक कुछ खाता-पीता नहीं है। बिना अन्न-जल के यह जीवन धारण कैसे करेगा ? वैसे तो मैं देखता हूँ कि हमारा लाला अब तो घुटने के बल चलने वाला है। शरीर में तो तेज दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। बिना दूध पिये भी इतनी वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

हम तो भूल ही जाते हैं अभी कुछ महीने पूर्व ही तो योगी शिव बाबा आये थे। उन्होनें दर्शन करके कहा था, ये तो साक्षात् विष्णु ही हैं। ये इस मृत्युलोक का अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। फिर भी युगों-युगों तक जीवन धारण करेंगे। इनका भोजन तो अमृतपान है। ये स्वयं समर्थ हैं। दूसरो के आधार की इनको आवश्यकता नहीं है। ऐसी बात कही थी। फिर भी हम तो ठहरे मृत्युलोक के प्राणी, अन्न-जल पर जीने वाले। हमें तो संतोष ही तब होगा, जब यह हमारी तरह तीन समय भोजन करने लगे।

अब तो जाम्भो बालक घुटने के बल पर चलने लग गये थे। माता हांसा जब **'घुटरुन चलत रैन तनु मंडित'** देखती तो आनन्द मंगल को प्राप्त हो जाती हैं। माता गाय दूहती तो चलते-चलते पास में आ जाते। माता कहती बेटा दूर रहो। मैं अभी गाय दूहती हूँ, ये गायें तुम्हें मारेगी। मैं अभी-अभी आयी मेरे लाला। मेरे लाला को गोद में लूंगी, ऐसी बात सुनकर वहीं रूक जाते। मैय्या आयेगी, गोदी में लेगी, ऐसा क्यों ? मैं क्या स्वयं समर्थ नहीं हूँ ? मुझे दूसरे के आधार की आवश्यकता नहीं थी ? ऐसा एक दृष्टि से सोचते रहते, वहीं रुके हुए न आगे न पीछे।

एक समय बछड़े सभी घर की गोहर से बाहर निकल गये। चारों ओर पीपासर में बिखर गये। जिसको

जहाँ अच्छा लगा, वहीं चले गये। कुछ बछड़े अपनी माताओं का दुग्धपान करने लगे, कुछ भागने लगे। इन्हें अब कौन वापिस बुलायेगा ? एकत्रित करेगा ? घर में तो हांसा के सिवाय ओर कोई नहीं था। हांसा घर से बाहर नहीं जा सकती थी। दूसरा कोई लाने वाला नहीं था।

माता के संकट को जाम्भोजी ने पहचाना और दीवार पकड़कर खड़े हो गये। बछड़ों की तरफ देखा कि कौन कहाँ गया है ? उछल कूद कर रहा है। वहीं से हाथ का इशारा किया, तो बछड़े वापिस आते हुए हांसा ने देखा।

जिस प्रकार से भागकर गये थे, स्वयं को आजाद महसूस कर रहे थे। उसी वेग से वापिस आकर बंधन को स्वीकार करने के लिए दौड़े चले आ रहे थे। हांसा ने देखा कि ये तो आजाद बछड़े, मेरे से तो पकड़ में नहीं आते थे, किन्तु मेरे लाला की तो सैनी से ही दौड़े चले आते हैं।

उसी समय हांसा भी बछड़ों का नाम ले लेकर पुकारने लगी। आ जाओ मेरे काले, हीरे, मोती, रामा श्यामा आदि। तुम्हें तुम्हारा मालिक बुला रहा है। असलियत में तो यह मेरा होनहार बेटा ही तुम्हारा स्वामी है। हम तो दो दिन के मेहमान हैं। बछड़े वापिस घर में स्थित गोहर में प्रवेश कर गये। जाम्भोजी ने किवाड़ ढंक दिये। यह कैसी भगवान् की अद्भुत लीला है।

न जाने क्या संदेशा देना चाहते हैं ? बछड़ों से शायद यह कह रहे हों कि अब तुम्हें चराने वाला वही द्वापर युग वाला कृष्ण कन्हैया आ गया हूँ। हे बछड़ो ! अब तुम चिंता न करो। थोड़े से बड़े हो जाओ। मैं तुम्हें चराने के लिए सम्भराथल ले जाऊँगा। वहीं तुम्हारी हमारी वार्ता होगी। मेरे रहते हुए अब तुम्हें जंगल में किसी प्रकार के व्याघ्र, नाहर (भेड़िया) आदि का भय नहीं होगा।

हे बछड़ो ! तुम्हारी पूर्व मिलन की वासना पूर्ण नहीं हुई थी। मैं तुम्हें निराधार छोड़कर के मथुरा चला गया था। उसके बाद पुनः मिलन नहीं हुआ। अभी तुम्हारी वासना पूर्ण हो जायेगी। तुम लोग भी शीघ्र ही मानव शरीर धारण करके पार हो जाओगे। यह तुम्हारा अन्तिम जीवन है। अब तो तुम मेरी भाषा समझ नहीं पा रहे हो, किन्तु शीघ्र ही मनुष्य जीवन धारण करके समझ जाओगे। अपना कर्तव्य कर्म निर्धारण कर लोगे।

माता हांसा को सूचित किया कि हे माता ! अब तुम चिंता न करो। मैंने स्वयं ही तुम्हें माता-पिता स्वीकार किया है। मेरे प्रति तुम्हारी गहरी निष्ठा थी और मैं भी तुम्हारे वचनों में बंध गया था। इसलिए मैं तुम्हारा बेटा बनकर आया हूँ। हे माता ! मुझे भी कर्म बन्धन स्वीकार करने होते हैं। अपना कर्तव्य निभाने हेतु विभिन्न रूप धारण करके आना होता है। इसीलिए मैं आया हूँ। सभी लौकिक व्यवहार करूँगा। पिताजी वृद्ध हो गये हैं। बछड़े तथा गो चारण करके उनको सुख प्रदान करूँगा। उनकी चिंता हरण करूँगा। माता हांसा इन गहराइयों को क्या समझे ? किन्तु इतना तो समझ ही गयी कि मेरे लाला ने बड़ा भारी कार्य किया है। मेरे कार्य में सहयोग प्रदान किया है।

शाम को लोहटजी घर आये तब हांसा ने ये सभी व्यतीत बातें बतलाई। दोनों दम्पति बड़े ही प्रसन्न हुए। लोहटजी ने गोदी में उठाकर मुख चूम लिया और कहा- यह बालक साधारण नहीं है अवश्य ही स्वयं भगवान् ही मेरे कुल को पवित्र करने के लिए आये हैं।

अनेकानेक दिव्य लीला करते हुए जाम्भोजी दो वर्ष की आयु को पार कर गये। माता-पिता, भाई-बन्धु जन बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे-यह कैसा बालक है ? पता नहीं चलता, बिना खाये पिये कैसे जीवन धारण करता है ? अन्य बालकों से ज्यादा ही बढ़ रहा है। न जाने इसे क्या मिलता होगा ? बाहर से तो कुछ भी

आहार ग्रहण करता हुआ दिखता नहीं है। अन्दर से ही ब्रह्म रस ग्रहण करता है। जिसके प्रताप से योगी लोग युगों-युगों तक जीते हैं। यह तो कोई पूर्ण योगी ही है या इसके ऊपर किसी देवी देवताओं का प्रकोप भी हो सकता है। अभी तो यह बालक काफी बड़ा हो गया है। इसके कान बिंधवाने चाहिये। क्योंकि यह बड़ा तो होगा ही, विवाह करेंगे तो कानों में कुण्डल अवश्य ही होना चाहिये। बिना कान बिंधे तो कोई इन्हें अपनी कन्या भी देने वाला नहीं होगा। देखो भाई ! सभी प्रकार का लोकाचार तो होना आवश्यक है। लोहटजी स्वयं तो सचेत नहीं हो रहे हैं तो क्या हुआ ? हम सभी चलकर सचेत कर देते हैं। समय-समय पर सभी कुल कृत आचार होना चाहिये। यह हमारे कुल-परिवार की मर्यादा है। सभी ग्रामीण लोग लोहटजी के पास पहुँचे और पूर्व विचारित बातों से अवगत करवाया।

लोहटजी ने अपने कुल परिवार के भलाई की बात सहर्ष स्वीकार की और कान बेधने वाले को एक दिन घर पर बुलाया। कान बेधने वाले ने सुई धागा आदि हाथ में लेकर कान बींधने के लिए हाथ पकड़ा तथा दूसरे हाथ से कान पकड़कर बेधने की तैयारी की। लोहटजी ने भी कुछ सहारा दिया कि कान बिंधेगा तो शायद पीड़ा होगी, बच्चा छुड़ाकर भाग जायेगा।

कान से सुई पार करके वह धागा भी कान में डाल दिया और कान में कुर्की मोती डालकर कार्य पूर्ण कर दिया और बेधने वाला निश्चित हो गया। किन्तु क्या देखता है, तुरंत ही कुर्की मोती नीचे गिर पड़े। पास में बैठे हुए लोगों ने देखा कि कान टूट गया है। बेधने वाला ठीक से नहीं बेध सका। ऐसी अवस्था देखकर सभी भयभीत हो गये। यदि इसने कान तोड़ दिया है तो बड़ा ही अनर्थ किया है।

बेधने वाला कुछ भी समझ नहीं पाया। दूसरा कान भी बेध डाला। कुर्की मोती डाली तो वह भी नीचे गिर पड़ी। बेधने वाले ने देखा कि मेरे साथ धोखा हो गया। मैं चूक गया। ठीक से बेध नहीं सका। अभी मैं दुबारा बेध देता हूँ। ज्योंही दुबारा कान पकड़कर देखा तो कान में छेद ही नहीं है। कुछ समझ में नहीं आता। अभी-अभी मैंने छेद किसमें किये ? ये कान तो ज्यूं के त्यूं विद्यमान हैं।

जिनका शरीर पांच तत्त्वों से बना हुआ ही नहीं है, उसके हाड, मांस, मज्जा आदि कैसे बनेंगे ? केवल देव शरीर तेज प्रधान ही है। तेज में छेद कैसे हो सकता है ? छेद तो पृथ्वी प्रधान शरीर में हो सकता है। हम लोगों का शरीर पृथ्वी प्रधान है। इसलिए तो अन्न की महत्ती आवश्यकता है। उसके बिना हम जी नहीं सकते। देवता का शरीर तेज प्रधान होता है। इसलिए देवता को पुष्ट करने के लिए घृत की आवश्यकता होती है। गो घृत से हवन करते हैं। देवता उसे ग्रहण करके पुष्ट होते हैं। वे हमें जल वायु तेज आदि प्रदान करते हैं उससे हम पुष्ट होते हैं। इस प्रकार हमारा तथा देवताओं का परस्पर सम्बन्ध है। **होम हित चित प्रीत सूं होय, बास बैकुण्ठा पावो।**

वह बेचारा कान बेधने वाला साधारण व्यक्ति नहीं समझ पाया कि यह क्या हो रहा है ? मैं क्या करने जा रहा हूँ वहाँ से उठकर बिना दक्षिणा लिये ही चुपचाप अपने घर को चला गया। पास में बैठे हुए गाँव के लोग भी देखते ही रह गये, कुछ भी समझ में नहीं आया। कान क्यों नहीं बिंधे गये इसका भेद कोई नहीं जान सका।

उस अलेख को कौन लख सकता है ? केवल शुष्क बुद्धि से यदि जानने की कोशिश करेंगे तो उसे जानना असंभव है। बुद्धि के साथ ही साथ हृदय भी खुला हो, सद्भावना और प्रेम-श्रद्धा से वह जाना जाता है। **भक्त्या मामभिजानाति, यावन्यचास्मि तत्त्वतः** भक्ति भाव से ही जो तत्त्व है, उसे जाना जा सकता है। वह

जो है, जैसा है। तर्क की कसौटी पर कसा नहीं जा सकता। **'खरतर गोठि निरोतर वाचा, रहिया रुद्र समाणी।'**

आभूषण आदि तो कुछ भी धारण नहीं किया। क्योंकि भगवान् ने यह बतलाया कि यह शरीर ईश्वरीय देन है। अपूर्व है। भूतो न भविष्यति। सुन्दरता में तो कोई भी इसकी बराबरी में नहीं है। ईश्वर ने इनको खूब सजाया है। किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी है। इसे आप लोग सजाने के बहाने विकृत मत करो।

भगवान् ने कहा, हम तो वैसे ही बहुत सुन्दर हैं। ज्यादा कुछ बनावटी पना हम नहीं चाहते हैं। ये द्विधा वृत्ति ठीक नहीं है। अन्दर बाहर एक रस ही ठीक है। शरीर का बाह्य भाग तो आभूषणों द्वारा सुसज्जित कर लेंगे। किन्तु अन्तर के गुणों को प्रगट नहीं करेंगे। उनका विकास नहीं करेंगे, तो कुछ भी हासिल नहीं होगा। अन्य लोग आपके शरीर की सुन्दरता से प्रसन्न कदापि नहीं हैं। आपके सद्‌गुणों से प्रसन्न होते हैं। **मोरे मन ही मुद्रा, तन ही कंथा, जोग मार्ग सह लीयो।**

कान तो श्रवणेन्द्रिय है। इससे सत्य वचन श्रवण करो। यही इसका आभूषण है। कान बींधकर मुरकी आदि डालकर अवरोध खड़ा मत करो। केवल सुनना ही है। कान तक शब्दों को पहुँचाना ही इतिश्री नहीं है। सुनने के पश्चात् मनन, निदिध्यासन, फिर दर्शन होगा। यहाँ तक आपकी पहुँच होवे, तभी कान सार्थक है।

केवल कुण्डल डालने से कानों में सार्थकता नहीं आयेगी। स्वर्णाभूषणों के बंधन में पड़कर सत्य से मुख नहीं मोड़ो। सत्य इस बाह्य दिखावे से कहीं दूर है। इसको अतिक्रमण करके सत्य तक पहुँचा जा सकता है। ऐसी ही कुछ जीवन संजीवनी वार्ता से अपने सम्बन्धी जनों को परिचित करवाया था। वे सीधे-सादे, भोले-भाले लोग, कितना ग्रहण कर सके यह तो भगवान् ही जाने।

लोहट हांसा आपस में विचार करने लगे-अब तो अपना बेटा बड़ा हो गया है। जैसा अन्य बालक बोलते हैं, वैसे तो कुछ बोलता ही नहीं है। पता नहीं कुछ बोलता तो है किन्तु क्या बोलता है ? हमें तो उनकी बात समझ में नहीं आती। सभी लोग इनको तो गहलो-गहलो कहते हैं।

लोहटजी ने कहा-हे देवी ! तुम ज्यादा चिंता मत करो। लोगों की बात क्यों सुनती हो ? तुमने तो स्वयं ही चरित्र देखा है। इतने छोटे से बालक ने बड़े-बड़े कार्य किये हैं। हमारा बेटा तो बहुत ही बुद्धिमान है, किन्तु लोगों की दृष्टि साफ नहीं है। वे तो अपने जैसा ही देखना चाहते हैं। जैसा हम बोले, वैसा ही यह बोले। भोजन करे इत्यादि किन्तु वैसा तो हमारे पुत्र में कुछ नहीं है, इसलिये गहला कहते हैं ?

हाँसा बोली-हे पतिदेव ! मैंने सुना है कि अपने ग्राम में अपने कुलदेवता के मंदिर में भोपा-तांत्रिक आया हुआ है। वह तो बड़े-बड़े रुग्ण लोगों का रोग ठीक कर देता है। आज रात्रि में जागरण होगा। कल सुबह भूत-प्रेत बाधा वाले लोग उनके पास जा रहे हैं। अपने-अपने कष्ट दूर करवा रहे हैं। आप भी अपने बच्चे को लेकर जाइये, क्या पता किसी भूत,प्रेत, देवी,देवता का दोष होगा तो वह भोपा दूर कर देगा। बच्चा भोजन करने लगे, अन्य बच्चों की भांति मुझे माँ कहे। इस कुल का संवर्द्धन करे।

लोहटजी ने कहा-यदि तू कहती है तो मैं लेकर सुबह ही जाऊँगा। किन्तु मुझे इन पाखण्डी भोपटों पर कतई विश्वास नहीं है। मेरी समझ में तो हमारा बालक बिल्कुल ठीक है। यह तो पूर्व जन्म का कोई योगी-अवधूत है। ब्रह्मरस भोगी है। इन्हें क्या लेना-देना संसार तथा सांसारिक भोगों से ? यह तो तुम्हारी तपस्या का कोई फलोदय हुआ है, जिस वजह से तुम्हारा पुत्र बनना स्वीकार किया है। मुझे तो तपस्या के समय में योगी

का दर्शन तथा वरदान पर पूर्ण विश्वास है। उनकी वार्ता निष्फल नहीं होगी। तुम स्त्री स्वभाव के कारण जल्दी घबरा जाती हो, धैर्य को धारण करो।

प्रात:काल लोहटजी अपने लाला को अपनी अंगुलि पकड़ाकर भोपा के स्थान को ले चले। आगे भीड़ लगी थी। कई गाँवो के लोग अपना-अपना दु:ख दूर करवाने के लिए एकत्रित थे।

लोहटजी ने जाकर अपनी अर्जी पेश की और कहा कि हे भोपाजी! यह मेरा बेटा साथ में है। इसे कुछ रोग लग गया है। पता नहीं क्या हुआ है? वह दिनों दिन चन्द्रकला की तरह बढ़ रहा है, किन्तु वह कुछ भी खाता-पीता नहीं है। इसे अब तक अन्य बालकों की भांति बोलना चाहिये था, किन्तु वैसा नहीं बोलता। पता नहीं, इसके अन्दर कोई देवता ही बैठा हुआ बोल रहा है? इसे लोग गहला-गहला कहने लगे हैं। आप ठीक कर दीजिये। मैं आपको मुँहमाँगी बधाई दूँगा। जो भी उपाय करना है, वह आप अवश्य ही करें।

भोपा कुछ बोलने को तैयार था, किन्तु उससे पूर्व ही जाम्भोजी बोले- रे भोपा! आज तुमने कितने जीव मारे? इनको मारकर क्या कार्य करना चाहता है?

भोपा बोला- आज मैंने ग्यारह जीव मारे हैं। तुम्हारे गाँव पर भूत-प्रेत कुपित थे। उनको भेंट चढ़ाकर प्रसन्न किया है।

जाम्भोजी बोले- क्यों झूठ बोलते हो? तुमने तेरह जीव मारे हैं और ग्यारह बतला रहे हो।

भोपा कहने लगा- अरे बालक! तुम्हें क्या पता है? मैंने तो ग्यारह बकरियाँ मारी हैं, तेरह कदापि नहीं। ये सभी लोग मेरे साक्षी हैं।

जाम्भोजी कहने लगे- दो बकरियाँ गर्भवती थी, उन्हें भी तुमने मारा था। उनके गर्भ के दो बच्चे भी तो मर गये। जब उनकी माँ को तुमने मार दिया, तो उनके बच्चे भी तो तुम्हारी वजह से मर गये। ऐसी वार्ता सुनकर भोपा घबरा गया। लज्जित होकर कुछ भी बोल नहीं सका। अपनी भूल नजर आने लगी।

जाम्भोजी बोले- हे पिताजी! आप यहाँ से वापिस चलिये। आप इनकी पाखण्ड लीला देख रहे हैं। ये लोग जीव हत्यारे हैं। अपना पेट भरने के लिए दूसरे जीवों की हत्या करते हैं। इनके पास कुछ भी नहीं है। ऐसा कहते हुए वापिस घर चले आये।

जाम्भोजी ने तभी से देखा कि यहाँ पर कितना पाखण्ड फैला हुआ है। कितने लोग पाखण्ड करके पेट भराई करते हैं। इसे जड़ मूल से उखाड़ना होगा। भगवान् के नाम पर भूत-प्रेत, देवी-देवताओं की पूजा करके लोगों को भ्रमित करते हैं। इन्हें सत्पंथ का पथिक बनाना होगा।

एकत्रित ग्रामीण लोगों का समूह कहने लगा-चलो, अपने भी चलते हैं। जिसको हम गहला-गहला कहते थे, उन्होनें बिना देखे ही तेरह जीवों की हत्या के बारे में भोपे को बतला दिया। भोपे को निरुत्तर कर दिया। अब भाईयों! अपने यहाँ पर पाखण्ड नहीं चलेगा। किन्तु लोहट के लाला को यह पता कैसे चल गया? इस बात का तो किसी को कुछ पता नही। जैसा अपने ठाकुर साहब कहते है वैसा ही हमें करना चाहिये। हम लोग वास्तव में भूल गये, अच्छा हुआ जो आज चेत गये। आगे पुन: ऐसी भूल नहीं करेंगे। तान्त्रिक भोपों ने तेरह जीवों की हत्या कर दी। उसका भण्डाफोड़ जाम्भोजी ने कर दिया। बिना आँखों देखे, जीवों की संख्या सही बताकर उस भोपे को चमत्कृत कर दिया।

लोहटजी ने विचार किया कि अब बेटा स्याना हो गया है। हिन्दू धर्म के रीति-रिवाज के अनुसार चूड़ाकरण संस्कार कर देना चाहिये। जब बालक समझदार हो जाये, तभी यह संस्कार करवाना चाहिये। अब

तो बेटा छोटे बालक की तरह नहीं है। यह तो बड़े-बूढ़ों से भी ज्ञान में बढ़-चढ़कर है। वैसे तो संस्कार की आवश्यकता नहीं है। ये तो स्वयं ज्ञान स्वरूप ही है। स्वयं ज्योतिरूप हैं। दीपक को देखने के लिए दूसरे दीपक की आवश्यकता नहीं होती,फिर भी लोक मर्यादा का पालन तो अवश्य ही करना चाहिये।

लोहटजी ने संस्कार करवाने हेतु हरजी ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण का आदर सत्कार किया। छत्तीस प्रकार के व्यंजन बनाये। ब्राह्मण तथा कुटुम्ब परिवारजनों को खूब जिमाया। लोहटजी ने हरजी से प्रार्थना करते हुए कहा-हे भू देव! मेरा यह बेटा सभी कुछ जानता है। लोग इसे वैसे ही गहला-गहला कहते हैं। किन्तु यह तो बहुत ही ज्ञानी योगी पुरुष है। वैसे तो इनका संस्कार करना सूर्य को दीपक दिखाना है, फिर भी आप हमारे कुल-कर्म अनुसार उसका चूड़ाकरण संस्कार कर दीजिये। मंत्र जनेऊ आदि जो कुछ आपको करना है, वह कर दीजिये।

हरजी ने कहा-आप ऐसा करें कि संस्कार करने हेतु घृत, गुड़, आखा, अनाज आदि ले आइये और बालक को मेरे पास बुलाइये। मैं जनेऊ संस्कार कर देता हूँ। इसे द्विज बना देता हूँ।

हे लोहट! आपने ठीक कहा कि संस्कार अवश्य ही करवाना चाहिए। क्योंकि प्रथम जन्म दाता तो माता-पिता होते हैं। किन्तु दूसरा जन्म गुरु संस्कार के द्वारा करवाता है। जैसा पण्डितजी ने कहा, वैसा पूजा का साज समान जुटाया और जाम्भोजी को हाथ में नारियल देकर पुरोहित के पास भेजा।

हरजी पुरोहित ने ज्यों ही जाम्भोजी का हाथ पकड़ने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया, उन्हें चतुर्भुज रूप में दर्शन हुआ। पुरोहित ने अपना सौभाग्य माना कि मैं आजन्म प्रयत्न करता रहा हूँ, किन्तु भगवान् विष्णु का दर्शन नहीं हो पाया। आज मैं लोहट के बालक के रूप में विष्णु का दर्शन कर रहा हूँ। अच्छा हुआ। मैं यहाँ पर उपस्थित हूँ। अबे इन्हें शिष्य बनाना ही चाहिये। विष्णु है तो भी अच्छा हैं। मैं विष्णु का गुरु बनूँगा। क्योंकि पूर्व में भी तो वशिष्ठ ने रामजी को अपना शिष्य बनाया था। अब मुझे उन्हीं रामजी को शिष्य बनाने का पुन: अवसर मिला है। इस समय तो मैं ही वशिष्ठ हूँ यह बालक जाम्भोजी ही रामजी है।

हाथ में यज्ञोपवीत ग्रहण करके जाम्भोजी के गले में सूत का धागा डाला। हरजी देखता है कि वह जनेऊ तो नीचे गिर पड़ी। हरजी ने नीचे पड़ी हुई जनेऊ को पुन: हाथ में लिया और देखा कि गाँठ खुल गयी है इसलिये यह नीचे गिर गयी है। अब मैं दुबारा गाँठ लगाता हूँ। पुरोहित अज्ञानता में है। जो हृदय की ग्रन्थी-गांठ खोलने के लिए आया है, उसे ही गाँठ में बाँध रहा है। श्रीदेव को ऐसा स्वीकार्य नहीं होगा, किन्तु पुरोहित ने पुन: गांठ लगायी। फिर माप करके देखा तो छ: अंगुल छोटी पड़ गयी। फिर से नया धागा लाये नापकर पूरा किया गाँठ लगायी, और गले में जनेऊ डाली किन्तु क्या देखता है...... शरीर पर जनेऊ टिक ही नहीं रही है।

पुरोहित के सभी प्रयत्न विफल हो गये, प्रयत्न करने पर भी जनेऊ नहीं डाल सका। पुरोहित ने ध्यान से देखा तो शरीर में हाड, माँस आदि धरती एवं जल के तत्व नहीं है। केवल वायु, आकाश एवं तेज तत्व से निर्मित शरीर को देखा। विचार किया कि इस शरीर पर जनेऊ पहनायी नहीं जा सकती। इस पृथ्वी तत्व से बनी जनेऊ को धारण करने वाला शरीर भी तो पृथ्वी तत्त्व का ही होना चाहिए। पुरोहित चुपचाप उठकर घर की तरफ चला। उपस्थित लोग हँसने लगे। पुरोहित का अँहकार गिर गया। शिष्य बनाने आया था, किन्तु शिष्य बनकर घर की तरफ चला। उस दिन से लोहट एवं पीपासर के लोगों का ब्राह्मण के प्रति अश्रद्धा का भाव हो गया।

वील्हा ने पूछा- हे गुरुदेव! आप यह कृपा करके बतलाइये कि जाम्भोजी महाराज ने पुरोहित से जनेऊ धारण क्यों नहीं किया ? यह तो हिन्दू धर्म के मुख्य संस्कारों में आता है ! जाम्भोजी तो हिन्दू धर्म की मर्यादा के रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वयं ही मर्यादा भंग क्यों की ? इसमें अवश्य ही कुछ राज होगा।

नाथोजी बोले- हे शिष्य! सर्वप्रथम तो यह विचारणीय विषय है कि जनेऊ का क्या अर्थ है ? जनेऊ संस्कार को उपनयन कहते हैं। इसका सीधा सा यही अर्थ है कि उप-समीप,ने-अन अर्थात् आत्मा को परमात्मा के निकट लाना। जो परमात्मा से अभी दूर है उसे निकट लाया जा सकता है। किन्तु जो परमात्मा के अति निकट है या स्वयं ही परमात्मा स्वरूप है, उसे निकट लाने का कोई अर्थ नहीं है। पीसे हुए को दुबारा क्या पीसना ? साधारण व्यक्ति जो अभी परमात्मा से दूर है, उसे ही यह निकट लाने के लिए यह उपनयन संस्कार है।

जब विप्र जनेऊ धारण कर लेता है तो वह अहंकार को स्वीकार कर लेता है। मैं ब्राह्मण हूँ। अर्थात् सर्वोत्तम हूँ। इस प्रकार की भ्रान्ति को स्थान देता है। जो एक साधक के लिए प्रतिकूल है। इसे अस्वीकार करने का अर्थ है कि मैं भी इन सामान्य पुरुषों की तरह एक मानव तनधारी जीव हूँ। सभी में समता की दृष्टि का प्रचार प्रसार होगा, जिससे ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। गले में सूत का धागा डालना तो बंधन स्वीकार कर लेना है। यह जीव तो सदा मुक्त अविनाशी है। इसे बन्धन में डालने की प्रक्रिया जाम्भोजी को कतई स्वीकार नहीं है। उनका आने का प्रयोजन तो जीवों को मुक्ति प्रदान करना है। जाम्भोजी ने इस प्रक्रिया द्वारा यह बतलाया है कि अब तुम लोग जन्म-जन्मान्तरों के बन्धन से मुक्त हो जाओगे। अब तुम्हें गले में फाँसी डालने की आवश्यकता नहीं है। इतने जन्मों तक डाली गयी है। इसलिए तो तुम जन्म मरण के चक्कर में चल रहे हो। अब मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। यह तीन धागों वाली जनेऊ, तीन देवता, तीन गुणों की प्रतीक है। इसे धारण करें। किन्तु जाम्भोजी का कहना है कि तीन देवता को बाह्य मत समझो। ये तीनों तो मेरे ही स्वरूप हैं। मैं ही विष्णु स्वरूप होकर पालन-पोषण करता हूँ। ब्रह्मा रूप होकर सृष्टि की उत्पति करता हूँ और शिव रूप होकर सँहार भी करता हूँ।

हे जीवो! तुम तीनों देवता स्वरूप हो। तुम्हारे से ये भिन्न नहीं है। वे तो तुम्हारे रग- रग में समाये हुए हैं। इसलिए तो तुम लोग जब सत्त्व गुण सम्पन्न होते हो तो विष्णु बन जाते हो। पालन-पोषणकर्त्ता स्वयं शांत स्वरूप। जब रजोगुण में स्थित होते हो, तो ब्रह्मा बन जाते हो। उस समय सृष्टि के उत्पतिकर्त्ता तुम बन जाते हो तथा तमोगुण में होते हो तो शिव बन जाते हो जो स्वयं विनाशशील हो जाते हो। ये तीनों देवता तुम्हारे अन्दर ही हैं। तुम्हीं तीनों देव, तीनों गुणों से युक्त हो। यह तुम्हें समझना है। केवल बाह्य दिखावे मात्र से कुछ भी नहीं होगा।

छः अंगुल ओछी हो जाती है, इसमें भी बहुत कुछ रहस्य भरा हुआ है। हमारे यहाँ छः आस्तिक दर्शन प्रसिद्ध है वे है छः दर्शन ईश्वर, जीव एवं जगत के बारे में बताते हैँ। अंगुली द्वारा बताया कि यह तुम्हारा मार्ग है, इस मार्ग से चलिये तो पंहुच जाओगे। तुम्हारी यह जनेऊ हमारे दर्शन शास्त्रों के सामने बहुत ही छोटी पड़ जायेगी। तो कुछ भी संकेत नहीं देती है। जो स्वयं ही ढ़की रहती है। वह दूसरों की क्या मार्गदर्शक बन सकेगी ? दर्शनशास्त्र कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है। इस बात को प्रकट करने के लिए छः अंगुल जनेऊ छोटी पड़ जाती है।

पुरोहित स्वयं को ज्ञानी समझकर पीपासर के स्त्री-पुरुषों के सामने अपनी औकात बता रहा था। किन्तु

उसकी सभी क्रियाएँ असफल हो गयी थी। जिससे ज्ञान का अँहकार गिर पड़ा था। पंडित का लज्जित होना तो स्वाभाविक ही था। अपने जीवन में प्रथम बार ही इतने लोगों के सामने अपनी असफलता देख रहा था। जिसको देखकर ग्रामीण लोग हँसने लगे थे।

ये लोग यह बता रहे थे कि हे पुरोहित! अब तेरा पाखण्ड जाल यहाँ पर सफल नहीं होगा। हमें तो वह परिपूर्ण परमेश्वर मिल गया है। हमें किसी प्रकार का भय नहीं है। हम निर्भय होकर हँसते हैं। **'हरष न खोइये'** सदा खुश रहिये। हर प्रकार की परिस्थिति में हमें खुशी रहना, हमें सिखा दिया है। इसलिए हम तो सदा ही सुख-दुःख में हँसते रहते हैं।

उस दिन पीपासर के ग्रामवासियों ने ब्राह्मण को मानना छोड़ दिया। क्योंकि अब वो जान गये थे। बिना जाने केवल मानना तो अंधेरे में लट्ठ पटकना है। अब तो प्रकाश हो चुका था। अज्ञान (अंधकार) निवृत्त हो चुका था। पुरोहित तो केवल मानने की बात तक ही सीमित था। एक बार अनुभव हो जाये, तो फिर मानने का सवाल ही कहाँ उठता है ? मानने से तो जानना बेहतर है।

जाम्भोजी की लीला का रहस्य साधारण पीपासर ग्रामवासी जनों के समझ में नहीं आता था। जब नित्य नये चरित्र देखते, तो सभी को अच्छे लगते थे। संसार के कार्यकलापों से सदा ही उदासीन रहते थे। व्यावहारिक वार्ता के इच्छुक नहीं थे। जो भी बोलते थे, वह आध्यात्मिक विषयक वार्ता थी।

छोटे-छोटे पीपासर के बालक खेलने के लिए जाम्भोजी के पास आने लगे थे। उनके साथ खेलने के लिए चले जाते थे। उनके साथ घुल-मिल नहीं पाते थे। दूर बैठे हुए द्रष्टा बनकर उनको देखते रहते थे। ये बालक खेलें या मैं खेलू कोई अन्तर नहीं है। खेल को खेल की तरह ही खेलना आवश्यक है। केवल दृष्टा बनकर खेलते रहे।

यह संसार भी एक खेल ही है। भगवान् स्वयं खेल रहे हैं। किन्तु द्रष्टा (साक्षी) बनकर के। इसलिए स्वयं इस खेल में लिपायमान नहीं होते। हमें भी इसी प्रकार से लिपायमान नहीं होना है। **जल में कमलवत** निर्लेप निर्मोही,सुख-दुःख,हानि-लाभ,जीत-हार,सर्दी-गर्मी इत्यादि द्वन्द्वों में समता आ जाये, यही जीवन जीने की विधि है। यही जाम्भोजी ने बतलाई है।

अन्य बालक तो खेल खेलते थक जाते हैं। भूख-प्यास सताने लगती है तो वापिस अपने-अपने घरों को लौट आते हैं। किन्तु लोहट लाला वहीं पर बैठे एकान्त में ध्यान-समाधि में मग्न हो जाते हैं। अन्य बालक तो दूध-दही आदि में रस लेते थे। उसके प्रभाव से जीवन धारण करते थे। किन्तु जाम्भोजी के जीवन का आधार अमृत रस था। उस अमृत रस की प्राप्ति समाधि में ही हो पाती थी। उस प्रकार का नित्यप्रति का कार्यक्रम होने लगा।

जब अन्य बालक खेल समाप्त करके घर चले जाते। माता हाँसा चिन्तित होती कि अब तक मेरा बेटा आया नहीं, दूसरे बालक तो आ गये हैं, स्वयं जाती और हाथ पकड़ करके ले आती। जब तक कोई लेने नहीं जाता तब तक ही बैठे ध्यानमग्न रहते।

बालक बछड़े चराने वन में जाते थे, किन्तु पीपासर से दूर नहीं जाते थे। जाम्भोजी भी इनके साथ बछड़े चराने जाया करते थे। वहीं पर बछड़े हरी-हरी घास चरते, उछल-कूद करते, उन्हें देखकर बालक भी उत्सव मनाते, खेलते-कूदते, अनेकों प्रकार से किलोल करते हुए समय व्यतीत करते थे। सायं समय गायों के लौटने से पूर्व वापिस घर लौट आते थे।

एक दिन वन में सभी बालक एकत्रित होकर सिंह-बकरी का खेल खेलने लगे। आज उन्होंने जाम्भोजी को भी खेल में सम्मिलित कर लिया था। आज तो उमंग विशेष हो रही थी। कुछ नया ही करने का भाव बन गया था। खेलने को सहर्ष तैयार हो गये थे। बालकों ने कहा-हे जम्भेश्वर! आज आप हमारे साथ खेल खेलेंगे। यह हमें मालूम हुआ है। हम सभी सिंह-बकरी का खेल खेलेंगे। आप प्रथम सिंह बनें। हम सभी बकरी बनते हैं। हम बकरी, सिंह से बचाव हेतु प्रयास करेंगे। आप सिंह बनकर हमें खाने का प्रयास करेंगे। हमें पकड़ने का उद्योग आपका होगा, हमारा बचने का प्रयास होगा।

प्रथम हमें छुपने का अवसर दीजिए फिर आप सिंह बनकर ढूंढ़ लीजिये। बालकों की आज्ञा स्वीकार की और असली सिंह बन गये। बालकों ने देखा लोहट का लाला तो वहाँ नहीं है, किन्तु उस जगह एक सिंह प्रकट हो गया है। यह तो हमें तथा हमारे बछड़ों को खा जायेगा। देखो-देखो। कैसे जीभ लपलपा रहा है? इसकी आँखें कैसे जल रही हैं? हमारी तरफ देखकर कैसे घूर रहा है? अपने को बचाओ। स्वयं की रक्षा करो। यहाँ से भागो। किन्तु अब भागकर भी कहाँ जाओगे? अब तो हमारी रक्षा स्वयं भगवान् ही कर सकते हैं।

हे सिंह! हमने तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो तुम हमें खाने के लिए दौड़ आये? हमारे देवता! लोहट के लाल भी गये, हमें बचाओ! कहीं तुम स्वयं ही सिंह तो बनकर नहीं आये हो? हम डर के मारे काँप रहे हैं। कुछ भी नहीं सूझ रहा है कि क्या करें और क्या न करें? हमने तुम से कब कहा था कि असली सिंह बन जाओ। हम तो खेल ही तो खेल रहे थे। नकली सिंह की बात थी। हम भी तो नकली बकरी बने थे। हम कोई असली बकरी थोड़े ही है और तुम तो असली सिंह बन गये। अब हम हाथ जोड़ते हैं। आपके पैरों में पड़ते हैं। हमें बचाओ-हमारे बछड़ों का बचाओ।

हे नृसिंह! हमारी रक्षा करो, हमारी आँखों के सामने से हट जाओ। हम तुम्हारा तेज देखने में असमर्थ हैं। हे वन देवता! तुम हमारे वन से चले जाओ! यहाँ फिर कभी मत आना। यहाँ तो हम लोग खेलते हैं। हमारे बछड़े हरी-हरी घास चरते हैं। यहाँ पर तुम्हारा क्या कार्य है? इस प्रकार से सभी बच्चे व्याकुल हो उठे और कुछ-कुछ कहने लगे किन्तु देवमयी रहस्य को कोई नहीं समझ सके।

जम्भेश्वरजी ने देखा कि बच्चे खेल खेलना चाहते हैं, किन्तु ये तो सिंह रूप देखकर ही घबरा गये हैं। इन्हें निर्भय कर देना चाहिये। मैं तो यह खेल ही खेल रहा था, किन्तु ये लोग मेरे खेल को समझ नहीं पाये। अच्छा है, जब ये बच्चे कह ही रहे हैं तो गहरे वन में चले जाते हैं। मेरे यहाँ से चले जाने से ही इनका भला होगा। मुझे तो वही कार्य करना है, जिससे सभी का भला होवे। ऐसा विचार करते हुए सिंहरूपी जाम्भोजी धीरे धीरे वन की ओर चले गये। बालक पुन: प्रसन्न होकर खेल खेलने लगे, किन्तु अब तो खेल में कुछ सार नहीं था, जो खेल में रस था वह तो चला गया। अब तो हृदय केवल चर्म का थैला ही रह गया था। अन्दर जो प्राणरस जीवनी शक्ति थी वह तो चली गयी, केवल शरीर को हिलाने डुलाने से क्या प्राप्त होने वाला था। इसलिए सभी बालक खेल से निवृत्त होकर वापिस अपने-अपने घरों को चले गये। माता हाँसा का बेटा नहीं आया, अन्य बालक तो अपने-अपने घरों को लौट आये।

हांसा अन्य बालकों के पास पहुँची और उनसे पूछा-क्या बात है, मेरा लाला नहीं आया? आप लोग उन्हें अकेला कहाँ छोड़ आये? तुम्हे ऐसा तो नहीं करना चाहिये था।

बालक कहने लगे-हे माता! तुम हमें झूठा ओलाणो-आरोप मत दे। हमने नहीं छोड़ा, किन्तु वह तुम्हारा

बेटा ही हमें छोड़कर चला गया।

दूसरा बालक कहने लगा–हम तो सभी साथ में मिलकर सिंह, बकरी का खेल खेलते थे। हमने कहा कि तुम सिंह बनो, हम बकरी बनते हैं। किन्तु तुम्हारा लाडला तो हमारे देखते–देखते ही असली सिंह बन गया।

तीसरा बालक कहने लगा–हमें भी झूठा ओलाणो मत दे, जब वह वन में जा रहा था, तब हमने पीछे से हेला भी दिया कि वापिस आ जाओ। किन्तु हमारी तो बात ही नहीं सुनी।

चौथा बालक कहने लगा–मैं बताऊँ तुझे! हमने कहा था कि तुम असली सिंह क्यों बने और यदि बन गये हो तो वापिस बालक जैसे थे, वैसे बन जाओ और यदि नहीं बनते हो तो यहाँ से चले जाओ। हम डर के मारे काँप रहे हैं। हमारे कहने से ही वन में गया था।

पाँचवाँ कहने लगा–वह तो मैंने देखा कि बिना मार्ग ही उजड़ जा रहा था। अब पता नहीं कहाँ गया है ? मार्ग–मार्ग चले तो खोज की जा सकती है, किन्तु बिना मार्ग तो खोज असम्भव है।

बालकों द्वारा इस प्रकार की वार्ता श्रवण करके लोहट–हाँसा ढूंढ़ने के लिए गये, किन्तु बालक जहाँ पर खेल खेलते थे, वहाँ पर बालकों के तो पैरों के निशान थे, किन्तु जम्भेश्वरजी के कहीं पैरों के निशान नजर नहीं आये। उधर सूर्यास्त हो गया। रात्रि ने आ घेरा था। इसलिए लोहट हांसा वापिस घर लौट आये। वह रात्रि युग के समान व्यतीत हुई। प्रात:काल होते ही लोहट हाँसा ने वन में जाकर खोजबीन की, तो वह सम्भराथल पर बैठे ध्यान लगा रहे हैं। दम्पत्ति ने देखा तो अपार सुख की प्राप्ति हुई। हाथ पकड़ करके घर ले आये। पीपासर के लोग सभी देखने के लिए आये। खुशियाँ मनाई। बहुत–बहुत बधाइयाँ बाँटी। मंगल गीत गाये।

पींपासर के लोगों ने पूछा– यह जाम्भा बालक कहाँ मिला ? लोहट ने बतलाया कि थल पर बैठा था। ईश्वर के ध्यान में था। इन्हें संसार की स्मृति नहीं थी। ऐसा ध्यान तो यह लगाता ही है। कोई नयी बात नहीं हैं। किन्तु सिंह बनकर दूर वन में जाने वाली बालकों की बात पर ग्रामीणजनों ने सहसा विश्वास नहीं किया। एक मानव शरीर धारी कैसे सिंह बन सकता है ? ये बालकों की बातें क्या पता सच्च हैं या झूठ हैं ?

कोई कहने लगा कि यह तपस्वी है। कोई कहने लगा कि यह तो युगों–युगों का योगी है। कोई कहने लगा कि यह तो साक्षात् विष्णु है। कोई कहने लगा कि यह तो यशोदा का पुत्र कन्हैया ही है। अन्यथा तो यह ऐसे दिव्य चरित्र कहाँ से दिखाता ? कोई–कोई नास्तिक कहने लगा–छोड़ो इन बातों को। यह तो बावला है। इसे हमारी जैसी बुद्धि–ज्ञान प्राप्त नहीं है। जितने मुँह उतनी ही बातें होती थी।

यह क्या है ? कौन है ? इस बात को कोई जान नहीं पाया। सभी अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय कर रहे थे। यदि बालकों की बात सत्य मान ली जाय तो यह सिँह बना था, क्या प्रयोजन था, इस बात को जानने की क्षमता नहीं थी।

नाथोजी कहने लगे–हे शिष्य! भगवान् की लीला अपरम्पर है किन्तु कभी–कभी पूर्व की लीला भगवान् दोहराते हैं। सतयुग में भगवान् ने नृसिंह रूप धारण किया था, प्रह्लाद भक्त की रक्षा की थी और उनके पिता हिरण्यकश्यपु को मार गिराया था। इस समय भी भगवान् खेल ही कर रहे थे, उन बालकों को वही नृसिंह रूप दिखाया था। उन्हें यह समझाया था कि मेरे अनेक रूप हैं, मैं वही नृसिंह हूँ।

हे बालको! आप लोग प्रह्लाद पंथी हो। तुम्हें मैं लेने के लिए आया हूँ। मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा। अपने पास सत्यलोक में ले जाऊँगा। आ जाओ। मेरे पास में खेल खेलते हैं। अन्तिम जीत तो हमारी ही होगी, किन्तु

बालक तो बालक ही ठहरे। वे क्या जानें नृसिंह अवतार को, वे तो डर ही गये।

भगवान् ने बतलाया कि मैं जो भी कार्य करता हूँ, वह असली ही करता हूँ। नकली कार्य के लिए यहाँ अवकाश नहीं है। दुनिया के लोग तो दिखावा करते हैं। मैं इस दिखावे, पाखण्ड का खण्डन करने हेतु यहाँ पर आया हूँ। तुम लोग भ्रमित हो गये हो। तुम्हारा सत्य-असत्य का विवेक नष्ट हो गया है। उसकी पुन: स्थापना हेतु मैं आया हूँ। जब तुम लोगों ने कहा सिंह बनो, तो मैं सिंह बन गया था। आपने देखा होगा कि मैंने किसी को मारा नहीं, किन्तु तुम लोग भय से कम्पित हो गये। मैं तुम्हारे पापों को कम्पित करके उन्हें बाहर निकाल दूँगा। तुम्हारी हृदय की धड़कन बढ़ जायेगी। तुम्हारे पाप जगह छोड़कर भाग जायेंगे। इसीलिए तो मैंने यह विकराल रूप तुम्हें दिखलाया था, किन्तु तुम लोग समझ नहीं पा रहे हो। न भी समझो तो भी मेरे समर्पण हो जाओ।

आप लोगों ने देखा होगा कि मैं तुम्हारे समर्पित हूँ। जैसा तुमने कहा, वैसा मैंने किया। जब तुमने कहा कि सिंह बन जाओ। तब मैं सिँह बन गया और जब तुम डर गये तब तुमने कहा यहाँ से चले जाओ, तो मैं चला गया। इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है। मैं पूर्णतया तुम्हारे आधीन हूँ। **गुणिया म्हारा सुगणा चेला, म्हें सुगणा का दासूं।**

धर्म की स्थापना हेतु सिंह भी बनना पड़ेगा। बिना कठोरता ग्रहण किये पापी दुष्टजन काबू में नहीं आते हैं। उन्हें सन्मार्ग में लाने के लिए साम, दाम, दण्ड तथा भेद की नीति अपनानी होगी। इसमें कुछ कष्ट भी होगा, किन्तु उसका फल सदा ही मीठा होगा। यदि पहले ही सुख चाहता है, उसका परिणाम कड़वा ही होगा। तपस्या का फल सदा ही मधुर होता है।

खेल खेलना भी एक रोचक तथा तथ्य युक्त कर्म है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना भी खेल खेलने के लिए की है। सभी शरीरधारी अवतारों ने अपने-अपने तरीके से खेल खेला है। आदि सूत्रों से ऐसा ज्ञात होता है कि **एकाकी न रमते** अकेले से खेल नहीं खेला जाता। उसे भी एक से अनेक होना होता है। तभी खेलरूपी कार्य सम्पन्न होता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि तथा उतार चढ़ाव सुख-दु:ख सभी कुछ खेल ही है।

विशेष रूप से बाल्यावस्था तो ब्रह्म के अति निकट है। क्योंकि बाल्यावस्था में खेल-खेलने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। ब्रह्म स्वयं क्रीड़ारूप आनन्द ही है। वहीं बालक भी आनन्दस्वरूप ही होता है। इसलिए बालक स्वत: ही सभी के लिए प्रिय होता है। ब्रह्म भी सभी के लिए आनन्द स्वरूप है।

सभी पीपासरवासी जाम्भोजी के आनन्द से आनन्दित होते थे। एक बात की कमी उन्हें कष्ट भी देती थी कि यह बालक अन्य बालकों की भाँति बोलता नहीं है। पाँच समय भोजन, दुग्धाहार नहीं लेता। यदि हमारी तरह यह व्यवहार करे तो कितना अच्छा होता, हम लोग कृत्य-कृत्य हो जाते, अपना जीवन सफल कर लेते।

कुछ पता नहीं, लोहटजी समझदार होते हुए भी अपने इस प्रकार के मौनी बेटे के लिए कोई उपाय क्यों नहीं करवाते ? इस समय नागौर में एक पूरबिया पुरोहित आया हुआ है। सुना है कि देवी की आराधना करता

है। हम क्षत्रिय भी देवी के उपासक हैं। लोहटजी ने देवी की उपासना नहीं करवाई थी, इसलिए हो सकता है कि देवी माता कुपित हो गयी हो। बालक के लिए स्वयं अड़चन के रूप में खड़ी हो गयी होगी।

भाइयो! लोहट कंजूस है। कहीं रुपये खर्च न हो जाये, इसलिए कोई उपाय तंत्र-मंत्र आदि पुरोहित को बुलाकर नहीं करवाते। पुरोहित ने तो इस लोहट के लाला का नाम भी जम्भेश्वर रखा था, जो यह नाम, यथा नाम तथा गुण से युक्त है। पुरोहितजी को तो यह बालक जम्भेश्वर ही दिखाई दिया था फिर भी अम्बा कभी कभी अपने स्वामी स्वयंभू से रूठ भी जाती है।

इस बार भी हो सकता है रूठ गयी हो और बालक रूप जम्भेश्वर से कुछ अपना स्वार्थ सिद्ध करवाना चाहती हो। यदि पुरोहित अम्बा देवी को प्रसन्न करे और दोनों में समझौता हो जाये तो कुछ समय के लिए यह अम्बा का ईश्वर, यहाँ मृत्युलोक मे अम्बा से बिछुड़ कर रह सके, हमें कल्याण के मार्ग पर अग्रसर कर सके।

ग्रामीणजन कहने लगे-भाइयो सुनो! लोहट तथा हांसा तो मोह तथा प्रेमवश जम्भेश्वर को लाड-प्यार में जाम्भा कह करके पुकारते हैं उनके देखा देखी हम भी ऐसा ही कहते हैं। असल में तो वह क्या है, यह तो वही जाने।

लोहटजी ने कर्ण परम्परा से ग्रामीणजनों की यह वार्ता सुनी और हांसा से कहने लगे-हे देवी! गाँव के लोगों की बातें तो बड़ी विचित्र हैं। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ और ही कथन करता है। जितने मुख उतनी ही बातें, हम लोग क्या करें, और क्या न करें?

वैसे तो अपना लाडला बिल्कुल ठीक है, बहुत ही अच्छा है, किन्तु लोगों के कथन तथा मैं स्वयं ही अनुभव करता हूँ कि यह बालक सामान्य नहीं है। हमें कोई उपाय तो अवश्य ही करवाना चाहिये। हमारे कुल देवता हमारे पर प्रसन्न नहीं हैं, पता नहीं क्यों हमारे से विरोध बाँध रखा है?

यह बालक तो हमें वृद्धावस्था में छापर के वन में एक योगी के आशीर्वाद से प्राप्त हुआ है। वह योगी ही हमारे घर को तथा कुल को पवित्र करने के लिए आया है। मैं ऐसा मानता हूँ। मेरे पास-धन दौलत, दूध-घी, अन्न आदि के भण्डार भरे हुए हैं, यह किसलिये? यह सभी कुछ अपनी सन्तान के लिए ही तो होता है। किन्तु यह पुत्र तो कुछ खाता-पीता भी नहीं है, फिर क्या काम आयेगा? मेरा मन तो तभी प्रसन्न हो, जब यह पाँच समय भोजन करे। अन्य साधारण बालकों की भाँति जीवन यापन करे। हो सकता है कि ये हमारे देवी-देवता ही इन्हें रोक रहे हो। इसकी भूख-प्यास स्वयं पी जाते हो। न जाने मेरे बेटे पर ये लोग क्यों कुपित हो रहे हैं? मेरी तपस्या का फल इन्हें अच्छा क्यों नहीं लगता? देवता तो स्वभाव से ही ईर्ष्यालु होते हैं। मेरी सम्पत्ति, मेरा सुख, आँगन में बालक की किलकारी इनसे नहीं देखी जाती।

मैं नागौर जाता हूँ और खेमनराय पूरबिये को यहीं ले आता हूँ। उससे मंत्र पढ़वाऊँगा। देवता को प्रसन्न करवाऊँगा। देवी प्रकोप को शांत करवाऊँगा। ऐसा कहते हुए हाँसा से अनुमति लेकर प्रात:काल ही चले और साँझ होने से पूर्व ही नागौर पहुँच गये। नागौर में जाकर पूरबिये पुरोहित का पता पूछा राजपोर में स्थान

बताया।

लोहटजी ने विचार किया–राजदरबार में रुका हुआ है, तो पुरोहित तो कोई बहुत उच्चकोटि का सिद्ध होगा। लोहटजी प्रात:वेला में पुरोहित के पास पहुँचे और प्रणाम किया। पुरोहित ने आदर–सत्कार करते हुए आने का कारण पूछा। लोहटजी ने बतलाया कि हमारे एक ही पुत्र है। वह सामान्य बालकों की तरह नहीं है। वैसे तो सामान्य बालकों से भी कहीं अधिक सयाना है, किन्तु फिर भी हम आपके पास आये हैं। आप इन्हें अन्य बालकों की तरह ही कर दीजिये। मेरी तथा बालक की माँ तथा सम्पूर्ण प्रजा की यही भावना है।

हमें तो यह विचित्रता अच्छी नहीं लगती। ये लोग कहते हैं, यह बालक ऐसा क्यों है? कई–कई लोग तो ऐसा कहते हैं कि इस पर देवता का प्रकोप है। कोई देवता ही इसमें प्रवेश करता है, तभी कुछ अनहोनी बात करता है। किन्तु सच पूछो तो मेरा तो मत यह है कि यह स्वयं ही देवता है। कुछ ऐसी उच्चकोटि की ही ज्ञानवार्ता करता है। हमारे तो समझ के ही बाहर की बात है। कुछ खाना–पीना तो आवश्यक नहीं है। देवता तो अमृतपान करते हैं। उसके प्रताप से युगों–युगों तक जीते हैं। मैं तो बस इतना ही जानता हूँ। बाकी आप जानें।

हे पुरोहित! इस बारे में तो आप ही मेरे से अधिक जानते हैं। हमें क्या करना चाहिये, जिससे मेरा बालक ठीक हो जाये? खेमनराय पुरोहित ने अनुमान लगाया कि यह ग्रामपति ठाकुर है। अच्छी दक्षिणा मिलेगी, क्यों छोड़ी जाये?

पुरोहित कहने लगा– आप ठाकुर साहब चिन्ता न करें। मैं आपके बालक को बिल्कुल ठीक कर दूँगा। किन्तु दक्षिणा के रूप में दो गाय तथा सौ रुपया नगद लूँगा। तंत्र–मंत्र द्वारा देवी की आराधना करूँगा। यदि आपको स्वीकार हो तो चलूँ।

लोहटजी ने कहा– शीघ्र चलिये! आपके पास पुस्तक कपड़े आदि हैं, तो मेरी गाड़ी में रख लीजिये तथा आप स्वयं बैठिये। जो आप कहेंगे वही मैं करूँगा। आप हमारे पुरोहित हैं। हम आपके यजमान हैं। ऐसा कहते हुए पुरोहित को गाड़ी में बैठाकर, प्रात:काल चले शाम को पीपासर पहुँच गये।

पीपासर में गऊ के गोबर से घर लिपवाया। आँगन के बीच में एक चौक पुरवाया। कुम्हार के घर से चौसठ छेद वाला कलश बनवाकर मँगवाया। एक कलश जल का भरकर रखवाया। एक सौ आठ चौमुख दीपक मंगवाये इत्यादि। सभी सामान एकत्रित करवाकर, रविवार प्रात:काल ही स्वयं पुरोहित चौकी पर रेशमी गद्दी बिछाकर के बैठा तथा बालक जम्भेश्वर को धरती पर बिठाया। सभी दीपक तेल से भरवाये तथा उनमें रूई की बत्ती बनाकर चौमुखी ज्योति का प्रयत्न किया। प्रात: ही तंत्र–मंत्र–स्तोत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। दोपहर तक पढ़ते रहे। चुन–चुनकर उड़द फेंकते रहे। फूँ–फूँ की ध्वनि पुरोहित बार–बार करता रहा। सूर्य देव तपने लगा। गर्मी में पुरोहित बेहाल हो गया। कुछ अन्य कार्य करता रहा, जिससे लोहट को विश्वास हो जाये कि कुछ कार्य हो रहा है।

जाम्भोजी कुछ नहीं बोल रहे हैं। केवल पुरोहित की पाखण्ड लीला देखते हुए मंद–मंद मुस्करा रहे हैं।

ज्यों-ज्यों पुरोहित निस्तेज होता जाता है, त्यों-त्यों जाम्भोजी अधिक तेजस्वी होते जाते हैं। अपनी मंत्र विद्या असफल देखकर पुरोहित उदासीन होता जा रहा है, किन्तु अब तक मंत्र विद्या द्वारा दीपक जलाकर अन्तिम कार्य करना बाकी ही था।

पुरोहित ने कहा- अभी मैं दीपक जला लेता हूँ, फिर मैं कार्य सफल करूंगा। बिना दीपक ज्योति के देवी-देवता प्रसन्न नहीं हो रहे हैं, क्योंकि इस पर कोई देवता जबरदस्त रूठा हुआ है। ऐसा कहते हुए एकसौ आठ चौमुख दीपक उपस्थित थे। उनमें रूई तेल भरकर जलाने का प्रयत्न करने लगा। परंतु ज्यों-ज्यों जलावे, त्यों-त्यों बुझ जावे। यदि रूई, तेल, बाट, दीपक तथा वायु रहित स्थान सभी कुछ ठीक-ठाक है, किन्तु दीपक नहीं जलते, यह भी कोई आश्चर्य ही है। पुरोहित ने ऐसा आश्चर्य जीवन में प्रथम बार ही देखा था।

हाथ जोड़कर विनती करने लगा-अब तो मैं हार गया। मेरे से यह बालक ठीक नहीं होगा। देवता लोग इससे रुष्ठ हैं। उन्हें मनाने के लिए कुछ और उपाय करना पड़ेगा। ऐसा कहते हुए पुरोहित उठ खड़ा हुआ।

जाम्भोजी ने सुना कि यह पुरोहित तो कुछ अन्य उपाय की बात कर रहा है। यह सात्विक पूजा छोड़कर अवश्य ही कुछ तामसी पूजा यहाँ पर ही तुम्हारे सामने ही करेगा। पूर्व पुरोहित की भाँति यह श्मशान सेवी बकरों की बलि भी चढ़ा सकता है। यह कार्य प्रारम्भ करे, इससे पूर्व ही इसे कुछ अलौकिक चमत्कार दिखाकर के उस कार्य से निवृत्त करना चाहिये।

वहाँ से उठे। एक बालिका सूत कात रही थी। उसके पास से कच्चा धागा लिया। कुम्हार के घर से कच्चा मिट्टी का घड़ा लिया। कुएँ पर पहुँचकर धागा घड़े के बाँधकर कुएँ में लटकाया और जल निकालकर वहाँ से जल से भरा हुआ घड़ा लेकर वापिस अपने घर पहुँचे और दीपकों में जल डाला। अग्नि देवता को आज्ञा प्रदान की। चुटकी बजाई। सभी दीपक एक साथ जल उठे।

उस पुरोहित तथा एकत्रित सभी ग्रामवासियों ने देखा। सभी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जय-जयकार करते हुए कहा-जाम्भाजी बोले-हे पुरोहित! अभी आप ठहरो! तुमने कहा था यदि दीपक जल जाये तो मैं बुलवा सकता हूँ। ठीक कर सकता हूँ। अब तो यह देख, दीपक बिना तेल घी के ही जल गये हैं। ठीक कर दे। देवताओं को राजी कर दे। मेरे माता-पिता को प्रसन्न कर दे। ये सभी ग्रामवासी बाल,वृद्ध, स्त्री-पुरुष तुम्हारे मुख की तरफ देख रहे हैं, चुप क्यों बैठे हो? कुछ तो उपाय करो।

पुरोहित लज्जित होकर कहने लगा- हे देव! अब तो आप स्वयं ही बोलिये। हम तो संसार के अज्ञानी जीव है। उदरपूर्ति के लिए पाखण्ड करते हैं। यह मैं जो देख रहा हूँ यह कोई साधारण बालक का कार्य नहीं है। आप कौन हैं? क्या आप स्वयं शिव,ब्रह्मा या विष्णु इन तीनों में से कोई एक हैं? या गोरख, दतात्रेय, शुकदेव मुनि में से कोई एक है जो भी आप हैं, स्वयं ही हमें बतलाइये। जिससे हमारा संशय निवृत्त हो जाये। आपने तो हमारे देखते ही देखते-

बांभण न परचो दीखाल्यो काच करवे नीर राख्यो।। काची माटी का दीवटीया कराय। जामा जल पुरायो हुकम सू दीया जगाया। तैसे में श्री वायक कह्यौ। जम्बेश्वरजी ने प्रथम शब्द उस समय सुनाया।

प्रथम शब्द उच्चारण

सबद श्री वायक-(1)

ओ३म्-गुरु चीन्हो गुरु चीन्ह पुरोहित, गुरु मुख धर्म बखाणी।

जो गुरु हायबा सहजे शीले शब्दे नादे वेदे, तिहि गुरु का आलिंकार पिछाणी।

छव दर्शन जिंहि के रूपण थापण, संसार बरतण निजकर थरप्या,

सो गुरु प्रत्यक्ष जाणी।

जिहि के खरतर गोठ निरोतर बाचा,रहिया रुद्र समाणी।

गुरु आप संतोषी अवरा पोखी, तंत महारस वाणी।

के के अलिया बासण होत हुतासण, rkel [khj nghtा

रसूवन गोरस घीय न लीयूं, तहाँ दूध न पाणी।

गुरु ध्याईये रे ज्ञानी, तोडत मोहा, अति खुरसाणी छीजत लोहा।

पाणी छल तेरी खाल पखाला, सतगुरु तोड़े मन का साला।

सतगुरु है तो सहज पिछाणी, कृष्ण चरित्र बिन काचै करवै

रह्यो न रहसी पाणी।।1।।

उस तथाकथित ज्ञानी पुरोहित तथा सभी जनों को सम्बोधित करते हुए गुरु शब्द का सर्वप्रथम उच्चारण किया है। यह शब्द मंगल वाचक, शुभ कारक,भगवान् विष्णु का ही बोधक है। उन छः दर्शनों के द्वारा जानने योग्य गुरु परमात्मा को पहचानो। उसी से ही तुम्हारा कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा।

जिस गुरु ने संसार रूपी बर्तन (घड़ा) अपने ही हाथों से बनाया है, उस गुरु की पहचान करो। जिस गुरु परमात्मा के बारे में बड़े-बड़े विद्वानों की गोष्ठियाँ भी निरुत्तर (चुप) हो जाती है, वेद भी जिसे नेति नेति कहते हैं, उस गुरु परमात्मा को पहचानो। वह गुरु आत्मा रूप से सर्वत्र विद्यमान है। स्वयं गुरु संतोषी है तथा दूसरों का पालन-पोषण करने वाला विष्णु रूप है, उस गुरु को पहचानो।

जो ब्रह्मा रूप से सृष्टि करता है और शिव-रुद्र रूप से संहार करता है। उस गुरु को तुम पहचानो। जिस गुरु की वाणी मधुर एवं रसयुक्त है। कई-कई लोग कच्चे बर्तन की भांति पूर्णतया निर्दोष है, उन्हें गुरु रूपी

अग्नि के संयोग से पकाने के लिए, स्वयं ज्ञान रूपी दूध-जल धारण करवाने हेतु गुरु उपस्थित है, पहचानो।

सारहीन गोरस-मट्ठा जिसमें से घी रूपी तत्व निकल चुका है। ऐसे उपेक्षित समाज के लोगों में पुनः रस भरने हेतु, सतगुरु बनकर विष्णु आये हैं, उन्हें पहचानो।

रे ज्ञानी! गुरु का ध्यान कर, गुरु को पहचान, उसी से ही सम्बन्ध स्थापित कर। वह गुरु तेरे मानसिक, शारीरिक, संताप को हरण कर लेगा। तेरे मोह को तोड़ देगा, जिस प्रकार से खुरसाणी पत्थर लोहे के जंग को काट देता है।

यह तेरा शरीर ही जल से भरी हुई चमड़े की पखाल की तरह है। कभी भी छेद हो जायेगा। यह शरीर जीर्ण-शीर्ण, त्रुटित हो जायेगा। जलरूपी जीव उसमें से निकल जायेगा। सतगुरु तेरे मानसिक संशय, भ्रम, अज्ञानता, आदि शूल-कष्टों को काट देगा।

हे पुरोहित! यदि तुम्हारे सामने बेठा हुआ यह बालक सतगुरु है तो सहज में ही पहचान कर लेना, क्योंकि बिना कृष्ण चरित्र के कच्चे घड़े में न तो कभी जल ठहरा है और न ही कभी ठहरेगा। कृष्ण चरित्र से अनहोनी भी होनी हो जाती है। असंभव भी संभव हो जाता है।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे पिताजी! यह ब्राह्मण आशा लेकर आया है। यह यहाँ से धन हेतु निराशा लेकर न लौटे। गोदान तथा रुपये देकर इसकी इच्छा पूरी करो। क्योंकि यह पुरोहित अपनी आजीविका हेतु यह कार्य करता है। इसीलिए इसकी आजीविका में बाधा उत्पन्न न हो।

भगवान् तो सभी को जीविका प्रदान करते हैं। चोर,डाकू,पाखण्डी आदि सभी को भोजन मकान वस्त्रादि सुविधाएँ प्रदान करते ही हैं। आप भी इसे निराश न कीजिये।

लोहटजी ने अपने वचनानुसार दो गाय एवं सौ रुपये दक्षिणा के दिये। ब्राह्मण प्रसन्न होकर वापिस घर को लौटा। किन्तु इस घटना को कभी भूल नहीं सका। सदा-सदा के लिए अपने को बदल लिया। शुद्ध क्रिया, सात्विक भाव से हवन यज्ञादिक कार्य में प्रवृत्त हुआ। पाखण्ड क्रिया को सदा के लिये छोड़ कर सत्य धर्म में प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार से गुरु जाम्भोजी की यह बाललीला इस प्रकार से पूर्ण हुई। आगे गोचरण लीला प्रारम्भ होती है।

गो चारण लीला

वील्होजी ने पूछा-हे गुरुदेव! आपने मुझ जैसे अज्ञानान्धकार में भटके हुए शिष्य को अपनाया एवं ज्ञानकी ज्योति से मेरे जीवन को प्रकाशमय एवं उज्ज्वल बना दिया। आपके द्वारा कथन की हुई बाल-लीला का रसास्वादन मैंने किया। एक-एक लीला बड़ी ही रहस्यमयी थी। अब आगे मैं जाम्भेश्वरजी की अन्य गोचारण लीला का अमृतपान करना चाहता हूँ।

हे गुरुदेव! आप तो स्वयं प्रत्यक्षदर्शी हो। आपने तो उनके जीवन की एक-एक अलौकिक घटना देखी है। उन लीलाओं से आपने आनन्द प्राप्त किया है। आपके जीवन को मैं देखता हूँ। अमृतपान किया हुआ, आपका जीवन मुझे आनन्दित कर देता है। जब आप वचन बोलते हैं, तो मेरे कर्ण तृप्त हो जाते हैं। मेरा मन समाधिस्थ हो जाता है। आपके मधुर शब्द सुनने से मुझे आनन्द मिलता है। इसलिए आगे की कथा आप मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये? मैं जिज्ञासा करूं या न करूँ, तो भी जो कथा कहने योग्य है, वह अवश्य ही कहिये?

आप तो स्वयं सूर्य,विवस्वान,मनु,वैशम्पायन,मैत्रेय,शुकदेव,सूतजी आदि वक्ताओं की भाँति तीनों कालों की बात जानने वाले हैं। गुरु जाम्भोजी के बारे में तो अन्यत्र कहीं कुछ भी सुनने को मुझे नहीं मिला। आपके मुख से श्रवण करना चाहता हूँ। कृपया मार्गदर्शन दीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ।

नाथोजी उवाचः- वर्ष सात तक की बाल लीला पूर्ण हुई। अब तो लोहटजी के लाला बड़े हो गये। गाँव के बालकों ने कहा- चलो गायें चराने के लिए। अब तुम बड़े हो गये हो। हमारे साथ में ही चलो। हम लोग तुम्हें अकेला नहीं छोड़ेंगे, वैसे तो घने वन में भेड़िये आदि का भय रहता है, किन्तु हम साथ रहेंगे तो भयंकर हिंसक जीव जन्तुओं का सामना कर सकेंगे। अपने प्रिय पशुधन की रक्षा कर सकेंगे। ये पशु ही हमारे जीवन के आधार हैं। इन्हीं के पालण-पोषण से हमारी आजीविका चलती है। ये पशु भी बेचारे हमारे पर आधारित हैं। हम तो एक दूसरे के पूरक हैं।

लोहटजी बोले-हे बालको! आप लोग वन में गोचारण हेतु जाते हैं। मेरा बेटा भी अब सयाना हो गया है। कुछ लोग तो ऐसे ही गूंगा कहते हैं। उनको असलियत का कुछ पता नहीं है। आप लोग कल से साथ लेकर जाना। इन्हें गोचारण की शिक्षा देना है, क्योंकि अब तक तो यह गोचारण से पूर्णतया अनभिज्ञ है।

देखो बच्चो! आप लोगों के भरोसे पर मैं आपके साथ भेज रहा हूँ। कहीं वन में अकेला पड़ जाये, मार्ग भूल जाये, आप लोग इन्हें अकेला नहीं छोड़ना। सभी ग्वाल-बाल लोहटजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके, माता हाँसा को प्रणाम करके, प्रातःकाल की शुभ वेला में, गोचारण हेतु वन में प्रस्थान करते हैं।

आगे-आगे गायें चल रही थी। पीछे-पीछे ग्वाल-बाल अपनी-अपनी लकुटिया कंधे पर रखे हुए चल रहे थे। सभी ने दुपहरी के भोजन हेतु कुछ-कुछ खाद्य पदार्थ अपने-अपने पल्ले में बाँध रखे थे। जलपान के लिए जल की लोटड़ी ले रखी थी। क्योंकि भूख-प्यास की निवृत्ति भी परमावश्यक थी। बालकों ने देखा कि सभी के पास पीने का जल, भोजन हेतु भोज्य पदार्थ थे। ग्वाल बालों ने कहा- हे जाम्भाजी! आप अभी नये-नये गायें चराने हेतु आये हैं। दिन में भूख-प्यास सतायेगी, तब के लिए कुछ लेकर नहीं आये। अभी भी समय है, थोड़ी दूर ही तो आये हैं। वापिस जाकर अन्न जल ले आओ। देखो! हम तो आपको भूख लगने पर कुछ भी खाने को नहीं देंगे। फिर हमसे कुछ नहीं माँगना। जाम्भोजी ने कहा-मैं किसी से कुछ माँगता ही नहीं

हूँ। किन्तु सभी को कुछ न कुछ देता हूँ। मुझे किसी प्रकार की भूख-प्यास भी नहीं सताती। मैं तो स्वयं से ही जीता हूँ- **म्हापण को आधारूं।**

हम तो सभी के आधार हैं, किन्तु मेरा कोई आधार नहीं है। यदि इस प्रकार से आधार आधेय की परम्परा चलने लगी, तो कहीं रुकने का नाम ही नहीं लेगी। इसलिए आप लोग निश्चिंत रहिये। चलिये आगे बढ़ते हैं। आज तो अच्छी-अच्छी जगह देखनी है। यह वन तो अति सौम्य है, इसे देखना चाहिए।

पीपासर से तीन कोश तक ग्वाल-बालों के साथ गायें चराते हुए चले गये। पीपासर से चलने के पश्चात् पुनः पीछे मुड़कर नहीं देखा। आगे ही बढ़ते गये। सर्वप्रथम अनेक टीबों से घिरे हुए भयंकर वन में सम्भराथल को देखा। जो सुमेरू (कैलाश) के समान सब से ऊँचा अपनी महानता को प्रदर्शित कर रहा था। उसे देखकर ग्वाल बाल सहित जम्भेश्वरजी अति प्रसन्न हुए। सभी ने ऊपर चढ़ने की इच्छा प्रगट की।

बालक बोले-अपनी गायें तो यहाँ सुमधुर हरी-हरी घास खा रही हैं। अपने लोग ऊपर चलते हैं। वहाँ से दूर-दूर तक वन तथा गाँव साफ दिखाई देता है। इस सृष्टि के सौन्दर्य को देखने में बड़ा ही आनन्द आयेगा। ऐसा कहते हुए सभी ग्वाल-बाल एकत्रित होकर सम्भराथल की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़कर सौन्दर्य को निहारने लगे।

ग्वाल बालों ने पूछा-हे लला! इस समय तो तुम ही हम में से ज्ञानी मालूम पड़ते हो। यदि आयु में तो हम से छोटे हो तो भी क्या? ज्ञान तथा आयु का कोई विरोध नहीं है। हम तथा हमारे वृद्ध जन जो कार्य आजीवन नहीं कर सके, वे कार्य तुमने इस छोटी सी आयु में कर दिखाये। इसलिए हमें पूर्ण विश्वास है कि आप हमसे कुछ ज्यादा ही ज्ञाता (सर्वज्ञ) हो।

यह कैसा देश है? हमारा जन्म इस देश में ही क्यों हुआ है? ये रेतीले ऊँचे-ऊँचे पर्वत कैसे निर्मित हो गये? तथा यह स्थल तो सभी से ऊँचा है। इस धोरे की क्या विशेषता है? आप अन्तर्यामी हैं। सभी कुछ जानते हैं। तभी तो आज पहली बार आप हमें खींचकर ले आये हैं। आज तो हम सभी यहीं पर जी भर के खेलेंगे। गायें हमारी बड़ी ही सयानी हो गयी है। इनका (लोहट लाला का) कहना मानती हैं। फिर हमें किस बात की चिन्ता है?

जम्भेश्वर उवाचः - सुनो! यहाँ पर कभी समुद्र लहरें लेता था, जिस वजह से यहाँ ऊँचे-ऊँचे रेतीले धोरे निर्मित हो गये। जब समुद्र सूख गया था तब यहाँ पर नदियों ने अपना स्थान बनाया। पवित्र सरस्वती नदी यहीं से होकर बहती थी। बहता हुआ जल कहीं गड्ढे, तो कही ऊँची पाल बना देता है।

ये तो हजारों वर्ष पूर्व हुआ है। तभी से ये रेत के टीबे निर्मित हुए हैं। इनमें सभी से ऊँचा यह सम्भराथल तो बहुत ही पवित्र भगवान् विष्णु की पुरी है। इसे इन्द्रपुरी भी कहा गया है। यह रहस्य मैं आपको बतला रहा हूँ। इसका जैसा नाम है, तैसा गुण भी है।

सं-भर-थल इन तीनों शब्दों के योग से सम्भराथल शब्द बना है। सं का अर्थ है कि सम्यक् प्रकारेण यानि अच्छी प्रकार से। भर का अर्थ है कि भर-पोषण करने वाले भगवान् विष्णु। थल का अर्थ है कि स्थल, स्थान विशेष जहाँ पर अच्छी प्रकार से भरण पोषण करने वाले भगवान् विष्णु विराजमान होवें, वही यह स्थल सम्भराथल है।

हे बच्चों! यह बड़ा ही पवित्र धाम है, इसके नीचे भगवान विष्णु का धाम विश्वंभर नगरी है। इस कलयुग में यह बात लुप्त हो गयी थी। मैं तुम्हें ठीक-ठीक बता रहा हूँ। मैं तो अब यहीं रहूँगा। आप लोग पीपासर जा

सकते हो। नित्यप्रति गायें लेकर यहीं आ जाया करो। मैं अपने आप स्वयं गायों की रखवाली करूँगा। गायें चराऊँगा। ऐसा पूज्य माता-पिता से भी कह देना।

बालकों ने पूछा-हे जम्भेश्वर! आप तो इस लुप्त-गुप्त बात का रहस्य खोल रहे हो। किन्तु यह अवश्य ही बतलाइये कि आपने जैसा कहा कि यहाँ कभी समुद्र था, वह कैसे सूख गया? इस समय यह देश इस गति को प्राप्त कैसे हो गया?

जाम्भो उवाचः-हे ग्वालो! मैं तुम्हें अपनी निजि बातें बतलाता हूँ। जब रावण को मारने के लिए मैं ही राम के रूप में समुद्र किनारे वानर सेना सहित पहुँचा था, उस समय मुझे लंका में जाना, रावण को मारना, सीता को वापिस लाना था। उधर चौदह वर्षों का वनवास भी पूरा हो रहा था।

मैंने समुद्र से तीन दिन-रात प्रार्थना की थी। किन्तु उस सठ समुद्र ने मेरी एक भी नहीं सुनी। मुझे लंका में जाने का मार्ग नहीं दे रहा था। प्रथम तो मैं साम नीति से समझा रहा था। इसे अपने कार्य की सिद्धि के लिए निवेदन कर रहा था। किन्तु दुष्ट नीच अपनी नीचता को त्यागता नहीं है। सामने वाले शांत सत्व पुरुष की वह कमजोरी समझ लेता है। समुद्र ने ऐसा ही किया। वह तीन दिनों तक कुछ भी समाधान नहीं दे सका। शायद वह मेरी सहनशीलता, सौम्य स्वभाव को तोल करके देख रहा था। जब साम नीति से कार्य नहीं हुआ, मुझे समुद्र की तरफ से कुछ भी जवाब नहीं मिला, तो मैंने दण्ड नीति का सहारा लिया और धनुष बाण चढ़ा लिया।

हे बालको! वह बाण कोई सामान्य नहीं था। वह तो अग्निबाण ही था, जो सम्पूर्ण जल को सुखा सकता था। जल में रहने वाले जीव-जन्तु भी मर जाते। बड़ा अनोखा विप्लव हो जाता। किन्तु बाण चलाने से पूर्व ही वह समुद्र मानव का रूप धारण करके हाथ जोड़कर सामने उपस्थित हो गया। देरी के लिए क्षमायाचना करने लगा।

समुद्र ने प्रार्थना की कि आप ऐसा न करें। अन्य सभी जलीय जन्तु जलकर भस्म हो जायेंगे। आपसे बड़ा भारी अपराध हो जायेगा। मैं स्वयं ही अपने घर में पलीता लगाने वाला बन जाऊँगा। इसलिये हे नाथ! आप ऐसा न करें।

मैं आपको एक उपाय बतला देता हूँ। आपकी ही सेना में नल व नील दो वानर वृहस्पति के पुत्र बड़े भारी शिल्पी हैं। वे पुल बना सकते हैं। वे जो भी जल में डालेंगे, पत्थर, लकड़ी आदि वही तैर जायेंगे, डूबेंगे नहीं। मैं उनके द्वारा डाली हुई वस्तु को डुबो नहीं सकता। हे नाथ! यह सभी कुछ आपकी ही कृपा है। आपके पवित्र नाम के प्रताप से क्या नहीं हो सकता?

मैंने कहा-मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हो सकती। राम एक बार ही बोलता है, जो कुछ भी कहता है, वह पूरा करता है। रघुकुल की यही रीति है। हमारे कुल में जो भी पैदा होता है, उनके प्राण भले ही चले जायें किन्तु वचन भंग नहीं होते। मेरा चढ़ा हुआ बाण अब बिना चले नीचे नहीं उतरेगा। अब तुम ही बताओ कि यह बाण कहाँ छोड़ूँ?

समुद्र बोला- इस बाण को आप उत्तर की तरफ चला दीजिये। इधर ही मेरे शत्रु,तथा आपके भी शत्रु नियम भंग करने वाले राक्षस रहते हैं, जो अन्याय करके उत्तर के समुद्र में छिप जाते हैं। आपका अग्नि बाण जब चलेगा तो वहां जल ही सूख जायेगा तो वे राक्षस लोग भी आपके कोप बाण में जलकर भस्म हो जायेंगे। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

हे ग्वालो! उस विनीत भाव से खड़े हुए समुद्र की बात को सुनकर मैंने वह अग्निबाण उत्तर की तरफ चला दिया। दक्षिण दिशा रामेश्वर में स्थित होकर चलाया हुआ अग्निबाण यहीं इस देश की भूमि में गिर पड़ा था, इसीलिए समुद्र का जल सूख गया था। यहाँ की यह भूमि अग्निबाण गिरने से पवित्र हो गयी थी, क्योंकि अग्निबाण तो सभी कुछ जला डालता है। इस धरती के गुण-अवगुण सभी कुछ जल चुके थे। इसमें रहने वाले पापीजन भी जल गये थे। धरती अपने स्वरूप को प्राप्त होकर शुद्ध (निर्मला) हो गयी थी। पवित्र करने के लिए अशुभ को जलाना ही पड़ता है। यह प्राचीन देश द्रुमकुल्य नाम से प्रसिद्ध था। वज्र और अशनि के समान तेजस्वी बाण जिस स्थान में गिरा था, वह यही स्थान है। जहाँ ऊँडे गहरे जल वाले देश में हम बैठे हैं। इस देश का जल भी गहराई तक सूख गया है। इसलिए जलाभाव वाला यह देश मरुभूमि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। समुद्र की बालुका मिट्टी अब भी देखो, इन टीबों के रूप में जहाँ कहीं भी यहाँ दिखाई दे रही है।

वील्होजी ने पूछा- हे गुरुदेव! यह कार्य जाम्भोजी ने राम रूप धारण करके किया। यह कार्य तो ठीक नहीं हुआ। क्योंकि इस भूमि को दण्डित किया। इसमें भूमि का क्या दोष था? हमारा भी जन्म इसभूमि में हुआ है, पता नहीं क्यों? यह सभी कुछ अच्छाई के लिए हुआ है या बुराई के लिए?

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! भगवान ने केवल इस भूमि को दण्डित ही नहीं किया है, इसके साथ ही साथ वरदान भी दिया है। वह तुम जानो। तुम्हारा संशय निवृत्त हो जायेगा। पहला वरदान यह दिया कि यह मरुभूमि पशुओं के लिए हितकारी होगी। दूसरा-यहाँ रोग कम होंगे। तीसरा-यह भूमि फल-फूल और रसों से सम्पन्न होगी। चौथा-यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे। दूध की बहुतायत होगी। पाँचवां-यहाँ सुगन्ध छायी रहेगी। अनेक प्रकार की ओषधियाँ उत्पन्न होगी। इस प्रकार से भगवान् श्रीराम के वरदान से यह मरुभूमि प्रदेश इस तरह के बहुसंख्यक गुणों से सम्पन्न होकर सबके लिए मंगलकारी हो गया।

भगवान् कुछ हरण करते हैं, तो उसके बदले में कुछ वरदान भी तो मंगलकारी देते ही हैं, भगवान की कृपा दृष्टि कभी खाली नहीं जाती, हम तो अज्ञानी जीव हैं, बहुत ही छोटे से स्वार्थ के दायरे में जीते हैं। हमारी दृष्टि तो अल्पज्ञ हैं।

अध्यापक बालक को दण्ड देता है तो उसकी भलाई के लिए ही देता हैं, किन्तु बालक इस बात को समझ नहीं पाता है। दूरगामी परिणाम अच्छे होते हैं, किन्तु प्रारम्भ में अवश्य ही दुखदायी होते हैं। हम तो बालक की भांति ही हैं। थोड़े से दु:ख में भी रो पड़ते हैं। थोड़े से सुख में भी फूल जाते हैं। जीवन की बहुत गहराइयाँ हैं। उनसे परिचित होना आवश्यक है।

भगवान् की गोचारण लीला का कथन करते हुए, नाथोजी ने इस प्रकार से कहा-नित्यप्रति गऊवों आदि पशुओं को चराने हेतु ग्वाल-बालों के साथ जंगल में सम्भराथल तक जाया करते थे। सांय काल में सभी वापिस लौट आया करते थे। लोहट एवं हांसा अतिप्रसन्न हुआ करते थे। अपने जन्म को सफल मानते और देवी देवताओं को मनाते। अनेकों प्रकार के शुभ आशीर्वाद अपने पुत्र के लिए माँगते थे। यहकार्य नितप्रति का ही था।

एक दिन की बात कुछ सदा से भिन्न ही हुई थी। अन्य बालक तो अपने-अपने पशुधन गाय, भैस, बकरियाँ आदि लेकर साँझ के समय में वापिस पीपासर आ गये थे। किन्तु लोहट का लाला नित्यप्रति की भाँति आज लौटकर नहीं आया था। माता-पिता को चिंता सताने लगी थी, क्या बात हुई? आज आया क्यों

नहीं ? गायें तो लौटकर अन्य गायों के साथ आ गयी हैं।

हांसा ने कहा हे पतिदेव! आप जाकर अन्य घरों के बालकों को देखकर आओ ? कहीं वहीं पर तो खेल में ही न लग गया हो ? शीघ्र ही मेरे लाला को मेरी आँखों के सामने लाइये। तभी मुझे चैन पड़ेगा।

लोहटजी ने जाकर ग्वाल बालों से पूछा-क्या बात है ? जम्भेश्वर नहीं आया ? ग्वाल कहने लगे-हे राजन्! सुनो! तुम्हारा बेटा तो बावला है। हमें आप झूठा ओलाणा मत देना। हम सभी इकट्ठे ही पशु चरा रहे थे। तुम्हारे बालक ने ही हमें सम्भराथल दिखाया था। हम लोग आज उसी पर ही गायें चराते हुए बैठे थे। वहाँ की शोभा तो ठाकुर साहब! बहुत ही निराली है। हम तो घर गाँव माता-पिता सभी कुछ भूल गये थे। वहाँ पर बैठे तो बैठे ही रह गये। न जाने कब संध्या वेला हो गयी, कुछ पता ही नहीं चला।

हमारी गायें जब अपने-अपने बछड़ों को याद करके घर को चली, तभी हम भी सचेत होकर उनके पीछे-पीछे चले आये। अन्यथा तो वहीं रात हो जाती। वास्तव में वहाँ कुछ जादू ही ऐसा है कि समाधि सी लग जाती है-संसार को तो भूल ही जाते हैं।

लोहटजी ने कहा-यह बात तो बिल्कुल सच्ची है। इस बात को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। मेरे साथ भी ऐसा हुआ था। इस भय के मारे तो हम गाँव वाले वहाँ जाते ही नहीं है। कहीं गये तो मोह-माया को भूलकर सदा के लिए वहीं के होकर रह जायेंगे। अब तो हमें गृहस्थी का ख्याल रखना है।

हे बालको! यह तो बतलाओ! कि आज अभी तक मुनि नहीं आये! क्या! यह वहीं तो कहीं न रह गया हो! मैंने तो प्रतीक्षा कर ली। सभी बालकों से भी पूछा है। कहीं कुछ अब तक पता नहीं चला है। यदि तुम्हें पता है तो बतलाओ ? हांसा बहुत ही व्याकुल हो रही है। उसका दिल तो बहुत ही नाजुक है। वह वियोग सहन करने में असमर्थ है। मुझ से भी उसकी हालत देखी नहीं जाती।

ग्वाल-बाल कहने लगे-ठाकुर साहब! हम सभी एकत्रित होकर सम्भराथल पर खेल रहे थे। हमारी गायें वहीं पर ही हरी-हरी घास चर रही थी। दिनभर हम अपने आप में आनन्दित थे। जब शाम का समय होने लगा, तो हम तो वहाँ से चले आये, चलते समय हमने कहा-हे जम्भेश्वर! आप भी चलो! घर पर तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। दिन छिपने को जा रहा है। रात्रि हो जायेगी। अंधकार छा जायेगा। यहां जंगली जीव आ जायेंगे। कहीं हमें खा ही न जायें।

हे राजन्! हम आपसे सत्य कहते हैं कि आपके लाडले ने तो वहीं पर आसन लगा लिया। आँखें मूंद ली। देवली (मूर्ति) की तरह हो कर बैठ गया। न तो वह हिलता था, और न ही वह देखता था और न ही कुछ बोलता था। हमने पुन: आवाज लगायी कि चलो जम्भेश्वर! गाँव चलते हैं। किन्तु उन्होंने तो एक शब्द भी नहीं बोला। केवल इशारा किया कि आप लोग चले जाओ। हम तो यहीं रहेंगे। मेरा गाँव में कुछ भी कार्य नहीं है।

दूसरे दिन प्रात:काल लोहटजी बालकों के पास पहुँचे और कहने लगे-हे बालको! अब मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ। गायें चराने में असमर्थ हूँ। मेरी व्यथा तो सुनो! आज तो तुम ले जाओ मेरी गायों को, कल मैं किसी ओर को सम्भला दूँगा।

बालकों ने सहर्ष स्वीकार किया और गायें लेकर सम्भराथल पर जहाँ जाम्भोजी विराजमान थे वहीं पर पहुँच गये। वहीं पर प्रभु का धन प्रभु को ही सौंपते हुए कहा-तुम तो यहीं पर रह गये। रात्रि में पीपासर नहीं गये। तुम्हारे माता-पिता बहुत ही दु:खी हो गये हैं। तुम्हारे बूढ़े पिता ने कहा है कि अब मेरी गउएँ कौन

चरायेगा ? मैं तो पुत्रवान होते हुए भी अऊता ही रह गया हूँ। पुत्र कुपुत्र हो जाये तो वंश एवं धन का नाश कर देता है।

देखो ! दूसरों के पुत्र तो सचेत हैं। पशु चराते हैं। धन संग्रह करते हैं। किन्तु मेरा पुत्र तो वन में रहने लगा है। मैं कैसे विश्वास करूँ कि यह बेटा वंश को आगे बढ़ायेगा। धन संग्रह करेगा।

जाम्भेश्वरजी ने कहा–बालको ! आप आज जब साँयकाल में वापिस घर जाओ तब मेरे पूज्या माता एवं पिताजी से कह देना कि आप गऊवें चराने की चिन्ता बिल्कुल ही न करें। मैं स्वयं ही सभी प्राणियों को चराने के लिए ही यहाँ पर आया हूँ। हे बालको ! आप लोग भी निश्चिन्त होकर खेल खेलें। धन चराने संग्रह करने की मेरी बारी है। मैं अपनी बारी निभाना जानता हूँ। मेरी आज्ञा से ही ये पशु वन में घास चरते हैं। इन्हें कोई भी वन्य हिंसक जीव नहीं सतायेगा। कल प्रात:काल भी इसी प्रकार से गायों को लेकर यहाँ आ जाना।

बालकों ने लोहटजी को सभी बातें बतलायी तथा विश्वास दिलाया कि हम तो केवल निमित्त मात्र हैं। असली तो गोपालक हमारे गोपाल शिरोमणि जाम्भोजी ही हैं।

उनकी कृपा से हमारी तो सभी गायें चरती है। पहले से कहीं अधिक दूध देती हैं। बड़ी प्रसन्न रहती हैं। इन्हें कोई भेड़िया आदि वन्य पशु भी नहीं सताता। अब तो जँगल में ही मँगल हो रहा है। आप भी एक दिन हमारे साथ चलकर देखें। हमें तो चिन्ता से निवृत्त कर दिया है। किन्तु ठाकुरजी !आप बिना मतलब ही चिंतित हो रहे हैं।

ग्वाल–बाल तो गऊएँ लेकर वन में चल गये। बालकों की रस एवं रहस्य भरी बातें लोहटजी के समझ में आती थी। जब ज्ञान की बातें सुनते, तब तक तो मोह–माया का पर्दा हट जाता था। किन्तु जब संसार के कार्य व्यवहार में प्रवृत्त होते तो पुन: मोह माया का परदा पड़ जाता। थोड़ी देर की बिजली की चमक की तरह सुख–दु:ख द्वन्द्व आते–जाते रहते हैं।

लोहटजी अपने भाई–बन्धुओं के पास बैठते। वार्तालाप करते। सभी लोग अपनी–अपनी गायों, बकरियों, जमीन–जायदाद,मकान–घर,अपने पुत्र –पुत्रियों, बन्धु–बान्धवों की चर्चा करते। एक दूसरे से बढ़–चढ़कर बड़ाई करते। अपने अंहकार को पुष्ट करते। लोहटजी उनकी वार्ता सुनते और अपनी स्थिति देखते, तो चुप हो जाते। उनकी बढ़ी–चढ़ी बातें सुनकर उदास हो जाते। अपनी स्थिति का स्मरण करके प्राचीन यादगार ताजा हो जाती।

जंगल में योगी का दर्शन, पुत्र प्राप्ति का वरदान आदि स्मरण करके भाव विभोर हो जाते। आँखों में आँसुओं की धारा बह चलती। अन्य बन्धुओं ने देखा कि हमारी वार्ता सुनकर तो लोहट को रोना आता है। ये सांसारिक बातें बंद करो। अन्य कोई ज्ञान की बातें करो।

लोहटजी से पूछा– आप इतने दिलगीर क्यों हो जाते हो ? तुम्हारे पर तो प्रभु की अहैतु की कृपा बरस रही है। देखो न ! इस बुढ़ापे में तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। फिर क्यों न भगवान् की कृपा का अनुभव करते ?

लोहटजी कहने लगे–बन्धुओ ! मेरी भी व्यथा–कथा सुनो ! मेरे एक ही पुत्र हुआ है, वह भी वृद्धावस्था में, निश्चित ही यह तो कोई ईश्वर की महान कृपा का ही फल है, किन्तु यह बालक तो कुछ खाता–पीता नहीं है। इसका उपाय तो मैंने करके देख लिया। कुछ भी फल नहीं मिला। इस बालक को तुम सभी देख ही रहे हो। बिना कुछ खाये–पिए अब तक इतना बड़ा हो गया है। दिनों–दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

बिना अन्न जल के तो हम जी नहीं सकते। यह तो दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता जाता है। सूर्य सदृश तेज

उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। मेरी समझ में तो यह आता है कि इसका शरीर तेजस्वी है। यानी तेज प्रधान है। यह तो तेज को ही पी रहा है। इसलिए तो शरीर में सूर्य सदृश क्रान्ति हो रही है। यह तो साक्षात् जलती हुई ज्योति ही है। पता नहीं कैसे यह ज्योति को पी जाता है। इसलिए तो अन्न-जल की आवश्यकता ही नहीं है।

हे भाइयों! मुझे यह बतलाओ कि इस सन्तान ने मुझे क्या सुख दिया? अपने पूर्वजों द्वारा एकत्रित की हुई सम्पत्ति को आगे बढ़ाना चाहिये। किन्तु ये तो बिल्कुल ही गंवाने के लिए तत्पर हैं। पहले तो वापिस पीपासर आ जाया करता था। किन्तु अब तो वन में ही रहने लग गया है। बालकों से यह भी पता चला है कि गउएँ चराने की बात तो स्वीकार कर ली है। किन्तु घर, खेती आदि की परवाह नहीं है। ऐसी दशा में मैं क्या कर सकता हूँ। कैसे धैर्य धारण करूं? मैं यह कैसे मानूं कि मेरे कुल का दीपक सदा-सदा के लिए उन्नतिशील रहेगा। दीपक से दीपक प्रज्ज्वलित होता रहेगा।

सभी भाई बन्धु समझाने लगे-हे भाई साहब! आप तो पुत्र के मोह में मोहित हो रहे हो। आपको तो कुछ भी विवेक नहीं रहा। इसीलिए तो आप ऐसी बात बोलते हो। यह पुत्र तुम्हारा कोई साधारण बालक नहीं है। हमने तो प्रत्यक्ष लीलाएँ (आश्चर्यजनक कार्य) इनके देखे हैं, हम कैसे भूल सकते हैं? घूंटी ग्रहण न कर ना, कान न बिंधवाना, जनेऊ संस्कार न करवाना, तेरह जीव मारने वाले पुरोहित को फटकारना, पुरोहित को शब्द सुनाना। जल से दीपक प्रज्ज्वलित कर देना, कच्चे घड़े में जल ठहराना आदि ये कार्य क्या साधारण बालक द्वारा संभव हैं? या तो यह कोई पूर्णयोगी है, या स्वयं कृष्ण कन्हैया ही तुम्हारे पर कृपा करने हेतु जन्म लेकर आया है। हे भाई! जब से तुम्हारे घर तथा हमारी पीपासर की भूमि पर इस बालक का पर्दापण हुआ है। तभी से हम लोग धन्य-धन्य हो गये हैं। यहाँ तक कि जड़ योनि, वृक्ष, लता, फूलादि भी धन्य हो गये हैं। कहाँ तक कहें? वन्य हिंसक जीव भी वैरभाव भूल गये हैं। जब से जाम्भोजी पीपासर में आये हैं, तभी से अब तक किसी भी हिंसक वन्यजीव ने हमारा कोई भी नुकसान नहीं किया है। सिंह-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।

हे लोहट! तुम तो अपने को बड़ा ही सौभाग्यशाली समझो कि तुम्हारे आँगन में स्वयं द्वारिकानाथ आये हैं। यह तो तुम्हारे पूर्वजन्म की तपस्या का ही फल है। संतान की प्राप्ति या अप्राप्ति, सुपात्र या कुपात्र संतान की प्राप्ति, यह सभी पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है। कुछ लेना या देना होता है, तभी संतान की प्राप्ति होती है। यदि आपसे कुछ कर्जा माँगता है, तो आपसे सेवा धन लेकर जायेगा। आपका हिसाब-किताब पूरा करेगा और यदि आप अपनी संतान से पूर्व जन्म का दिया हुआ ऋण वापिस लेना है, तो वह आपकी सेवा करके चला जायेगा। ये सभी अपने ही कर्मों का फल है। ऐसा समझ करके हे लोहट! धैर्य धारण करो। आँखों में यदि आँसू आते हैं, तो पोंछ लो।

मरुधर के निवासियों के लिए तो गोधन ही सर्वश्रेष्ठ धन था। गो माता है, जन्म दाता माता दूध पिलाती है। किन्तु अधिक से अधिक दो चार वर्ष तक ही। किन्तु गो माता तो हमें आजन्म दूध, दही, घी आदि पिलाती है। हमारे जीवन का प्रमुख आधार तो गउएँ ही है। अन्य भी पशु उपयोगी हैं, किन्तु गऊ को माँ का दर्जा मिला हुआ है। गोचारण से जो हमें शुद्ध संस्कार मिलेंगे वे माता के होंगे। अन्य पशु भैंस, ऊँट, बकरी आदि से जो भी हमें मिलेगा, वह पशुता की ओर ले जाने वाला ही होगा।

अब तो ग्रामीणजनों एवं माता-पिता, प्रियजनों को प्रसन्न करने के लिए नित्यप्रति गऊएँ चराते हैं। पूर्व अवतार श्रीकृष्ण के समय में भी तो गोचारण ही किया था। उसी परम्परा को आगे बढ़ाया है। भारतवासियों

के लिए प्रेरणा के स्त्रोत बने हैं। वन में सभी निर्भय थे। किसी प्रकार का वन्य जीवों का उपद्रव नहीं था। पशुधन दिन दुगुना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त हो रहा था।

हे वील्हा! एक दिन ग्वाल-बालों के साथ सम्भराथल वन में गऊएँ आदि पशुधन चरा रहे थे। सभी ग्वाल-बाल उस समय सम्भराथल के सर्वोच्च शिखर पर एकत्रित हुए और कहने लगे-हम सभी मिल कर लुकमीचण का खेल खेलते हैं। एक गोपाल आँख बँद करके बैठेगा। दूसरे सभी छुपेंगे। यदि वह खोजने वाला जो आँख बँद करके बैठा था, वह अन्यों को, जो छुपे हुए हैं, उनको खोज लेगा तो वह जीत जायेगा। जिसको खोज लिया, पकड़ लिया, वही फिर अन्यों को खोजेगा। इसी प्रकार से यह खेल चलता जायेगा।

सर्वप्रथम सभी बालक जाम्भोजी के पास आये और कहने लगे-आप भी आज हमारे साथ खेल खेलने के लिए सम्मिलित हो जाइये। यह बाल्यावस्था तो खेल खेलने के लिए ही तो मिली है। यदि आप स्वयं विष्णु अवतार हैं, तो भी सभी अवतारों ने अपने-अपने तरीके से खेल खेले ही हैं। सभी बालकों ने कहा-आज तो हम आपके साथ ही खेलेंगे। क्योंकि अब हम हमारी गायें आदि पशुधन तो आपकी कृपा से निश्चित हैं। आपने स्वयं ही चराने की जिम्मेवारी ले ली है। आज तो बारी भी आपकी है। जब से आप हमारे संरक्षक हुए हैं, तब से ही हम खेल ही खेलते हैं। अन्य तो हमारा कुछ कार्य नहीं है, किन्तु आज तो आप ही हमारे साथ खेलें, तो हमें आनन्द मिलेगा।

आप मुझे किस प्रकार का खेल खिलाओगे, वैसे तो सम्पूर्ण सृष्टि ही मेरा खेल है। इसे हम तो सत्य स्वीकार नहीं करते। मात्र ईश्वर की क्रीड़ा के रूप में ही मानते हैं। यदि आज कुछ विशेष खेल खेलना है, तो आप मुझे आदेश दें कि मुझे क्या करना होगा?

बालक कहने लगे-कि आज हम आप मिलकर हमारा लोकप्रसिद्ध खेल लुकमीचण ही खेलेंगे। इससे हम आपको सर्वप्रथम आँखे बंद करके बिठायेंगे, हम सभी अदृश्य स्थानों में जाकर छुपेंगे। जब हम आपको आवाज लगायेंगे, तभी आप आकर हमें ढूँढ़ लेना। हमने सुना है कि आप अन्तर्यामी हैं। किन्तु अन्तर की तो बात ही क्या? आप हमें बाहर भी नहीं ढूंढ़ सकते। हम लोग छिपने में बड़े ही कुशल हैं। उतने आप ढूंढ़ने में नहीं है।

जाम्भोजी ने कहा- ऐसा ही होगा। जो आप लोगों की इच्छा है वहीं मैं आज करूँगा। आप लोग छिपने के लिए जाइये! मैं यहाँ आँखे बन्द किये बैठा हूँ। मैं आप लोगों को छिपते हुए नहीं देखूँगा। फिर भी ध्यान रखना, मैं ढूँढ़ ही लूँगा। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं आप लोगों को खोजने के लिए ही आया हूँ? तुम लोग इस देश में आकर छिप गये हो। मुझे तो पता था कि प्रह्लाद भक्त के बिछड़े हुए जीव किस देश में छिपे हुए हैं? इस समय तो तुम खेल कर रहे हो किन्तु मैं तुम्हें वास्तविकता की बात बतला रहा हूँ।

जाम्भोजी ने अपने दोनों हाथ आँखों पर रखकर आँखें बन्द कर ली। वृत्ति अन्तर हो गयी। बाह्य संसार से निवृत्त हो गये। बालक जहाँ भी छिपने के लिए जाते, वहीं पर जाम्भोजी आँखे बन्द किये हुए बैठे दिखाई दिये। अनेक पेड़, फोग, कंकेहड़ी, कुमठा आदि वृक्षों के पीछे छिपने की जगह ढूँढ़ने लगे। जहाँ कहीं भी जाते, वहीं पर ही आँख बन्द किये हुए बैठे दिखाई दिये।

भगवान् तो कण-कण में व्यापक हैं। उनकी विद्यमानता कभी अभाव को प्राप्त नहीं होती। बालकों को बतलाया कि आप लोग ईश्वर को किसी एक शरीरधारी या मन्दिर में ही न देखो। जहाँ पर भी देखो, वहीं पर उपस्थित हैं। आप छिपकर कोई पापकर्म करने की कोशिश मत करना। तुम छुप ही नहीं सकते। वह तो

तुम्हारी आत्मा रूप से तुम्हारे भीतर ही विराजमान है। तुम कैसे, किससे छिप सकते हो ? परेशान होकर सभी बालक एकत्रित हो गये, और आपस में कहने लगे-

यह जाम्भोजी तो रूँगट खेलता है। हम लोग जहाँ पर भी लुकने जाते हैं, वहीं पर जाकर पहले ही बैठ जाता है। अब हम लोग इनके साथ नहीं खेलेंगे। यह भी कोई खेल हुआ कि हमारे छिपने के स्थानों पर हमसे पहले ही जाकर आँखे बन्द किये हुए बैठा है। चलो इनके पास ही चलते हैं। उनसे यह रूंगट खेल खेलने की बात कहते हैं। हमारी बात अवश्य ही स्वीकार करेगा। ऐसा कहते हुए सभी बालक जाम्भोजी के पास पँहुचे और कहने लगे-हे जम्भेश्वर!

आप हम से रूँगट न खेलें। यदि आपको खेलना ही हो तो अबकी बार आप छिप जाओ, हम सभी मिलकर आपको अभी तुरंत ही ढूंढ़ लेते हैं। तभी आपकी रूँगट का पता चलेगा। हम लोग यहाँ के चप्पे-चप्पे से परिचित हैं। कहीं भी आपको छोड़ेंगे नहीं।

जाम्भोजी बोले- तब तो ऐसा ही हो ? मैं छिप जाता हूँ। आप लोग सभी मिलकर या एक एक अलग अलग रहकर के मुझे ढूँढ़ लेना। अब नियमानुसार पहले अपनी अपनी आँखे बन्द करो ? सभी अपनी-अपनी आँखें बन्द करके बैठ गये। उसी समय जाम्भोजी वहीं पर छिप गये। किसी ने कहीं आते जाते नहीं देखा। बालकों ने आँखें खोलकर सम्पूर्ण जँगल ढूँढ़ लिया किन्तु कहीं पर भी नहीं मिले। साँझ का समय हो गया। बालक अपनी-अपनी गायों को लेकर वापिस पीपासर चले आये, किन्तु जाम्भोजी का कहीं कुछ पता नहीं चला।

ग्वाल-बालों ने लोहटजी को जाकर समाचार सुनाया-हे राजन्! आज हम सभी ग्वाल-बाल आपके लाला के साथ मिलकर के अंधलघेटा खेल खेल रहे थे। पहले तो हमने उनसे आँखें बन्द करके बैठने को कहा, किन्तु हम तो जहाँ पर ही जाते, वहीं पर ही आपका लाल हमारा मित्र जाम्भोजी बैठे हुए दिखाई देते थे। जब हमने कहा कि तुम छिपो, हम सभी मिल करके खोजेंगे। तब तो वह तो ऐसा छिप गया कि कहीं उसका पता नहीं चला। न जाने कहाँ गया ? इस धरती पर तो कहीं दिखाई नहीं दिया। हम तो सम्भराथल जंगल से सदा ही परिचित हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जिसे हम नहीं जानते हो ? जहाँ पर हमने ढूंढ़ा नहीं हो। आप तो ग्रामपति ठाकुर हो। हमने आपका बच्चा खो दिया है। आप हमें क्षमा करें।

लोहटजी ने कहा- हे बालको! आप लोग निर्दोष हो। मैं अपने बेटे से अच्छी तरह से परिचित हूँ। उसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। किन्तु मैं पिता हूँ। यह मेरा ओरस है। बिना खोजे मुझे शांति कैसे होगी ? अब तो आप लोग अपने-अपने घर जाओ। प्रात:काल मैं और अन्य ग्रामवासी तुम्हारे साथ ही चलेंगे। जहाँ पर भी छिपा था, वह जगह हमें बताना। हम लोग खोजने की कोशिश करेंगे।

दूसरे दिन प्रात:काल ग्वाल-बालों को आगे करके ढूँढ़ने के लिए वन में चले। बालकों ने वह जगह बतलाई जहाँ से अन्तिम दर्शन हुए थे। उसके बाद कहीं दिखाई नहीं दिये थे। पैरों के निशान देखे, किन्तु कहीं पर भी खोज नहीं मिला, शाम को हार कर के वापिस घर लौट आये।

गाँव के लोग लोहट-हाँसा को धैर्य बंधाते। अलख की गति लखी नहीं जाती। पूर्व चरित्रों का स्मरण करते हुए उनकी अलौकिकता से अभिभूत हो जाते। पुत्र के वापिस आने की आशा जग जाती। मोहवश हो जाने पर नित्यप्रति सम्भराथल की तरफ निहारते कि अभी आया। इस प्रकार से एक महीना व्यतीत हो गया, लेकिन हाँसा का दुलारा लौटकर नहीं आया।

एक दिन ग्वाल-बाल अपने पशुधन को लेकर प्रातःकाल ही घर से निकल पड़े। नित्यप्रति की भांति सम्भराथल की ओर से प्रस्थान किया। ग्वालों ने देखा कि जाम्भोजी सम्भराथल पर बैठे ध्यान लगा रहे हैं। दौड़कर पास में गये। खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। प्रेम से गले से गला, हाथ से हाथ, पैर से पैर मिलाकर शरीर से शरीर स्पर्श करके मिले। प्रेमाश्रु बहने लगे।

ग्वाल बाल कहने लगे-हे भाई! तुम्हारे कहने से तो हम लुके थे और हमारे कहने से तुम ऐसे लुक गये कि एक माह तक तुम्हारा कहीं पता ही नहीं चला। क्या कहीं ऐसा भी छिपा जाता है? एक माह तक लगातार? हम लोग एवं तुम्हारे माता पिता, तुम्हारे बिना कितने उदास थे। किस प्रकार से तुम्हारे बिना ये दिन दुःख से काटे हैं? हमारी कोई भूल हो गयी हो तो हमें क्षमा कर देना। ऐसा खेल फिर कभी मत खेलना, जिससे हम अपने प्राण प्यारे को ही खो बैठे।

उनमें से एक बालक भागता हुआ पीपासर आया और सर्वप्रथम लोहट हाँसा से बधाई माँगी। आपका बेटा आज वापिस सम्भराथल पर विराजमान है। लोहट हांसा ने कहा- हे बालक! यह शुभ समाचार, सुनी सुनाई बात कहता है या आँखो से देखी हुई।

बालक बोला- मैं अभी अभी अपनी इन्हीं आँखों से देखकर दौड़ता हुआ, एक ही श्वास से पीपासर आया हूँ। लोहटजी ने उस बालक को बहुत-बहुत बधाइयाँ दी। एक बछड़े वाली दुधारू गाय प्रदान की। लोहट-हांसा एवं सगे सम्बन्धी दौड़कर गाँव से बाहर निकले। पहले मिलने की लालसा लिए हुए बड़े-बूढ़ों से आगे तो बच्चे भाग रहे हैं। लोहट-हांसा तो बहुत ही पीछे रह गये हैं। अब क्या किया जाय? बुढ़ापा आ गया है। भागा जाता नहीं। यदि इस समय पंख आ जाये तो उड़कर पहले पहुँचा जा सकता है।

लोगों ने देखा कि जाम्भोजी ग्वाल-बालों से घिरे हुए सम्भराथल पर बैठे हुए हैं। माता हांसा, पिता लोहटजी ने देखा, लोचन सफल किये। सूखी खेती वर्षा से पुनः हरी भरी हो जाती है। गर्मी के पश्चात् वर्षा की बौछारें भली लगती है। ठण्डक में ठिठुरते हुए को आग की तपन सुहावनी लगती है। वियोगजन्य दुःख के पश्चात् संयोग सुख अति आनन्ददायी होता है। माता हांसा ने अपने लाडले को छाती से चिपकाया, अश्रुधारा बह चली। आँसुओं के जल से अपने प्यारे पुत्र को स्नान करवाया। खुशी में नाचते-गाते ढ़ोल, बजाते हुए वापिस पीपासर नगरी में प्रवेश करवाया। पीपासर में खुशियाँ मनायी गयी, रंग गुलाल छिड़के। लोहटजी ने खुशी में विशेष पूजा-पाठ का आयोजन किया। अपने परिजनों को मिष्टान्न भोजन करवाया। दूसरा जन्म हुआ हो ऐसा ही लोहट के घर उत्सव होने लगा। सुहागिनें गीत गाने लगी। गायक वादक कलाकारों ने अपने अपने राग-रागनियों से पीपासर नगरी को गुंजायमान कर दिया। आज पींपासर नगरी इन्द्रपुरी से भी बढ़कर राग रंग महोत्सव में डूबी हुई थी।

गाँव के लोग चर्चा करने लगे कि देखो भाई! यह लोहटजी का गूंगा एक महीने तक कहाँ गया था? न जाने यह कहाँ तो बैठा, कहाँ सोया, कहाँ रहा, कुछ पता नहीं है? लेकिन लोहट एवं अपना सभी का सौभाग्य है कि वापिस आ गया। कहीं ढूँढ़ने से नहीं मिला किन्तु अपने आप आ गया। ऐसा क्यों किया? इसकी तो गति ही निराली है, भगवान् की बात भगवान् ही जाने हैं। हम तो अल्पज्ञ हैं। कहाँ उस सर्वज्ञ की गति को जान सकते हैं?

एक बात अवश्य ही मान्य है कि जब से यह बालक पीपासर में आया है, तभी से हमारे यहाँ धन, धान्य, गऊ आदि से परिपूर्ण हो गये हैं। यह तो हमारे लिए इन्द्र देवता या विष्णु से कम नहीं है। इसके आने के

पश्चात् तो हमारे यहाँ पर समय से वर्षा होती है। हमारी गायें पेट भरकर घास चरती हैं। हमारे धान के कोठे भर गये हैं। हमारी गायें भी पहले से कहीं अधिक दूध देती हैं। किसी प्रकार की आधि-व्याधि हमें नहीं सताती।

भगवान् विष्णु से बस एक ही प्रार्थना है कि यह बालक धरती पर बना रहे। यहाँ से कहीं चला न जाये। एक महीना यहाँ न रहने से हमें कितना वियोग का कष्ट सहन करना पड़ा। हे भाइयो! यह या तो कोई परम योगी है, या शिव-ब्रह्मा-विष्णु में से कोई एक है। इनकी लीला तो अपरम्पार है। पहले की भाँति अब की बार भी कहीं लोप न हो जाये। एक महीना यह बालक कहाँ रहा, इस रहस्य को तो कोई नहीं जान सका।

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! आपने अभी-अभी हमें बतलाया कि बाल्यावस्था में जम्भेश्वरजी एक महीना तक लुप्त रहे। यदि आप बताना उचित्त समझें तो बतायें कि कहाँ पर रहे? क्यों और कैसे रहे? उनका लुप्त रहने का क्या प्रयोजन था? यदि अन्य कोई कथन करने योग्य वार्ता हो तो अवश्य ही बतलावें। आपसे अधिक वक्ता इस समय कोई मुझे दिखाई नहीं देता।

नाथोजी उवाचः- एक माह तक जम्भेश्वरजी पाताल लोक में रहे। प्रह्लाद पंथी जीवों को सन्मार्ग में लाने हेतु रहे। भगवान् ने जब नृसिंह रूप धारण करके प्रह्लाद के अनुयायियों के उद्धार का वचन दिया था, उस वचन की पूर्ति हेतु वहाँ पर पहुँचे थे। कुछ तो यहाँ जम्बुद्वीप (भरतखण्ड) के बागड़ देश में जन्म लेकर आ गये थे। तथा कुछ पाताल लोक में चले गये थे। उन्हें भी सचेत करके सत्पंथ के पथिक बनाया।

कलयुग में सर्वप्रथम पंथ की स्थापना जाम्भोजी ने पाताल लोक में ही की थी। उन्हें यही पंथ बतलाया था। जाम्भोजी तो सर्वसमर्थ, अन्तर्यामी हैं। वे तो सभी के घट-घट की बात जानते हैं। बिछुड़े हुए जीवों की जाति से भी भली-भाँति परिचित हैं। **म्हे खोजी थापण होजी नाहीं, खोज लहाँ धुर खोजूं।**

कैसे गये? यह प्रश्न हम साधारण शरीरधारी उठा सकते हैं। किन्तु उनका शरीर तो तेजोमय था। सम्पूर्ण सृष्टि की ज्योति तो एक ही है। ज्योति से ज्योति मिलकर ज्योतिस्वरूप से सर्वत्र व्यापक हो सकती है। यहाँ मृत्युलोक में भी रहते हुए कभी छाया नहीं झलकती थी। ज्योति के छाया कैसे हो सकती है? वह ज्योति ही जब मानव से वार्तालाप करने आती है, तो मानव आकार धारण कर लेती है। इसके लिए अन्य चार तत्त्व आकाश, वायु, जल और पृथ्वी भी सूक्ष्म रूप से सम्मिलित हो जाते हैं। गीता में **प्रकृति स्वामधिष्ठायसम्भवाम्यात्ममायया** स्वयं ही अपनी प्रकृति को आधीन करके अनेक रूप धारण कर लेते हैं। वैसे तो देखा जाये तो हमारी ऊर्जा शक्ति भी पाताल में ही छिपी हुई है। हमारा नाभि का क्षेत्र पाताल ही है। इसका स्पर्श करके ही अपनी सोयी हुई ऊर्जा शक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। वहीं से साक्षात्कार होगा। सर्वप्रथम अपनी ही शक्ति का पाताल में सोयी हुई ऊर्जा शक्ति जब प्राणायाम द्वारा जाग्रत होगी, तभी ऊर्ध्वगमन करके सहस्रार मे पहुँचेगी। **पाताल का पाणी आकाश कूं चढ़ायले भेटले गुरु का दर्शणा।**

कुछ समय तक, एक माह तक पाताल में ही रहना होगा। तभी हम प्रह्लाद पंथ को सद्गुणी, सद्वृत्ति को जाग्रत कर सकेंगे। अन्यथा मन की चंचलता हमें विचलित कर देगी। हमारा मूल पाताल ही है। नाभि सम्पूर्ण शक्तियों का केन्द्र है। मूल में प्रवेश करके ही जम्भेश्वरजी ने अपना कार्यक्षेत्र प्रारम्भ किया था किन्तु साधारण ग्वाल-बाल अशिक्षित ग्रामीण जन इस गंभीर बात को क्या जानें? वे तो कहने लगे कि कहाँ गये? कहाँ बैठे, कहाँ सोये, कुछ पता नहीं।

बिन बादल प्रभु इमिया झुराये

एक समय श्री गुरु जम्भेश्वरजी ग्वाल बालों के साथ वन में गऊएँ चराते थे। साथ में अनेक बालक थे। गऊएँ आदि पशुधन भी आनन्द से वन में विचरण कर रहे थे। उसी समय आकाश में बादल दिखाई दिये। सभी ग्वाल बालों के देखते ही देखते वर्षा होने लगी। **खिण एक मेघ मण्डल होय वरषे।** एक ही क्षण में वर्षा होने लगी। थोड़ी देर बाद वर्षा पुन: रुक गयी। हवा का झोंका आया कि बादलों को उड़ा दिया। अभी धरती की प्यास पूर्णरूपेण शांत भी नहीं हो पायी कि बादल तो साफ हो गये। कहीं कहीं नीचे जगहों पर पानी ठहरा था, इसीलिए बालक गउवों को जल पिलाने पीपासर के कुएँ पर नहीं गये। वहीं वन में गउवें आदि पशु पानी पी चुके थे।

बालकों के परिजनों ने कुछ समय तक तो प्रतीक्षा की कि अब आयेंगे, बालक भोजन करेंगे। किन्तु जल वहीं पर उपलब्ध हो जाने से आज तो बालक भोजन करने नहीं आये? जल से प्यास तो मिट सकती है, किन्तु भूख नहीं मिटेगी।

लोग कहने लगे-हमारे बालक भी जम्भेश्वर की तरह खाना छोड़ देंगे क्या? उनकी संगति करते हैं। उनके ही पीछे-पीछे चलते हैं। यदि भूख ही नहीं लगती है, तो क्या खायेंगे? क्यों आयेंगे? हो सकता है यह संगति का ही फल है। हम ऐसा कभी नहीं होने देंगे? चलो, चलते हैं। अपने-अपने प्रिय आँखों के सितारों को वहीं वन में ही भोजन करवा के आते हैं। हम दिन-रात कमाते किसलिये हैं? केवल अपनी संतान के लिए ही तो कमाते हैं, जीते हैं। वह संतान ही यदि भोजन से परहेज करेगी, तो हमारा जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा।

ऐसा कहते हुए ग्रामवासी सभी अपने-अपने बालकों के लिए भोजन लेकर चल पड़े। लोहटजी बोले हे भाई लोगो! आज मैं भी आपके साथ वन में चलूँगा। आप लोग तो भोजन लेकर जा रहे हैं किन्तु मैं तो वैसे ही चलूँगा, क्योंकि मेरा बेटा तो भोजन करता ही नहीं है। आज अभी-अभी हमारे यहाँ वर्षा हुई है। मौसम बहुत ही सुहावना हो गया है। आज मैं स्वयं अपने लाडले को अपनी आँखो से गऊएँ चराते, घेरते, खेलते हुए देखूँगा। कानों से तो मैं अनेक प्रकार की बातें सुनता रहता हूँ। किन्तु आँखो से देखे बिना मुझे संतोष नहीं होता है। लोहटजी ने वन में जाकर देखा कि हमारा पशु धन निर्भय होकर विचरण कर रहा है। सभी हमारी गायें सकुशल हृष्ट पुष्ट हो गयी हैं। जैसी मेरी इच्छा थी, वह आज मैं अपनी आँखों से पूर्ण होता देख रहा हूँ। हमारे प्रियजन हमें भोजन करवाने हेतु आज तो वन में ही आ गये हैं। ऐसा देखकर ग्वाल-बाल सभी एकत्रित हो गये। आज तो मिश्री, माखन, दूध, मलाई लेकर आये हैं। अभी सभी मिलकर ही भोजन करेंगे, बड़ा आनन्द आयेगा। **सह नौ अवतु सह नौ भुनक्तु, सह वीर्य करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।** ऐसा उच्चारण करते हुए भोजन करना प्रारम्भ किया।

कहने लगे-हमें आज साथ-साथ भोजन करने का अवसर प्राप्त हुआ है, किन्तु एक बात तो अभी खटकती है। यदि हमारे साथ जम्भेश्वरजी भी भोजन करते तो कितना अच्छा होता, किन्तु ये तो अपने सिद्धान्त के पक्के हैं। **'गुरु आप संतोषी अवरा पोखी'** आप ही संतोषी हैं। कभी कुछ खाते ही नहीं है, किन्तु दूसरों का बहुत ध्यान रखते हैं। रोज-रोज हमें पूछते रहते हैं कि आज आप लोगों ने भोजन किया या

नहीं, यदि नहीं किया है तो मैं तुम्हारी गायें चराऊँगा, तुम घर जाकर भोजन कर आओ।

यदि कभी वन में हमें बिना समय ही भूख लग जाती है, तो न जाने कहाँ से हमें इतने अच्छे-अच्छे फल लाकर खिलाते हैं। ऐसे फल तो हमें ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते। हमने कभी देखा भी नहीं है। हे प्यारो! ये हैं अजब के मित्र! बिना भोजन के कैसे रह जाते हैं? अवश्य ही वन में मधुर-मधुर फल खाते होंगे। जिसे वजह से इनको भूख नहीं लगती। ये बाह्य फल तो खाते नहीं दिखते, अवश्य ही इनके अन्दर ही मधुर फल वाला पेड़ होगा? उसका फल खाते होंगे।

आपने देखा होगा कि कभी-कभी ये तो अपनेश्वास को रोक कर देवली की तरह बैठ जाते हैं। तब इनको देखो तो रस से भरे हुए अति आनन्दित होते हैं। हम चाहे कितना ही मधुर रसमय मनवांछित भोजन कर लें, किन्तु इनकी तृप्ति जैसी तो हमें कभी तृप्ति नहीं मिलती। हो सकता है इसी तृप्ति का अनुभव करते हुए योगी लोग समाधि में वर्षों तक बैठे रहते हैं। हम तो अधिक कुछ नहीं जानते। इनकी गति तो भाइयो! वही जाने।

चलो हम तो भोजन करते हैं। हमें तो भोजन ही जीवित रखेगा। भोजन करने से पूर्व जल तो चाहिये? किन्तु जल यहाँ पर नहीं है। बिना हाथ-पैर धोये तथा आचमन किये बिना तो भोजन हमें ये हमारे बड़े लोग खिलायेंगे नहीं। हम में से जल कौन लायेगा? हम सभी भूख के अधीन हो गये हैं। पहले तो इतनी भूख नहीं थी, किन्तु अब तो अन्न की सुगन्धी ने हमारी भूख को अनन्त गुणा कर दी है।

बालकों की समस्या का समाधान करते हुए लोहटजी बोले-आप लोग बैठ जाइये, क्योंकि आपको भूख लगी है। **'भूखे भजन न होय गोपाला'** आप लोगों से जल नहीं लाया जायेगा, क्योंकि दूर है। यह आपका सखा, मेरा बेटा, जो तुम्हारा सदा ही सहायक है, इसे तो भूख भी नहीं लगती। यह सभी के लिए जल ले आयेगा।

लोहटजी ने कहा बेटा! ये बालक भोजन कर रहे हैं, तुम कलश लेकर आओ इनके लिए स्वच्छ जल ले आओ। जाम्भोजी ने अपने पिताश्री की आज्ञा शिरोधार्य की और हाथ में कलश लेकर जल लाने के लिए चल पड़े। जहाँ भी जाते जल देखते, किन्तु घड़ा खाली लिए लौट पड़ते। आखिर में घूमते-घूमते कलश खाली ही लेकर लौट आये।

लोहटजी ने जोर देकर कहा-रे गूंगा! खाली घड़ा लेकर लौट आया, जल नहीं लाया? तुम्हारे भरोसे पर ये बालक बैठे हुए जल की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे पिताजी! आपने कहा था कि स्वच्छ जल लेकर आओ, किन्तु मैंने सभी जगह पर देख लिया है कहीं भी स्वच्छ जल नहीं है। भूमि पर पड़ा रहने से भूमि के गुण जल में प्रवेश होकर गन्दा हो गया है। यहाँ जल पीने योग्य स्वच्छ नहीं है। आपकी आज्ञा का पालन करना था, किन्तु दूषित जल बालकों को कैसे पिलाया जा सकता है?

लोहटजी बोले-गूँगा गूंगी बात करता है। जल तो इन्द्र देवता स्वच्छ ही बरसाता है, जल में तो कोई दोष नहीं होता। फिर खाली क्यों आये? यदि जल स्वच्छ प्राप्त नहीं है, तो क्या ये बालक भूखे-प्यासे ही रहेंगे। आज तो इनको भोजन जल से तृप्त करना ही होगा। यदि भूमि पर पड़ा हुआ जल स्वच्छ नहीं है, तो तुम इन्द्र देवता से साफ जल बरसाओ और इनको जल पिलाओ।

जाम्भोजी बोले-हे बालको! आप लोग थोड़ी देर के लिए खड़े हो जाओ। एक चादर ले लो। उसके चारों पल्ले पकड़ लो। नीचे कलश रख दो। अभी-अभी इन्द्र देवता वर्षा करेगा और कलश स्वच्छ जल से भर

जायेगा। आप लोग भोजन कर लेना। चार बालकों को चादर के चार पल्ले पकड़ा दिये और नीचे कलश रख दिया।

उसी समय ही आकाश में बादल मंडरा कर आये। वर्षा होने लगी। चादर पर पानी पड़ने लगा। कलश जल से भर गया। उपस्थित सभी सुहृदों ने जय अम्बेश्वर कहते हुए जय-जयकार किया। भोजन करके सायं समय में वापिस पीपासर लौट आये। आज के आश्चर्य को देखकर लोहटजी ने फिर गूंगा कहना छोड़ दिया। जिसके इन्द्र देवता वश में है, वह गूंगा कैसे हो सकता है? भगवान् ने कहा है-**तपाम्यहमहं वर्ष निगृहणाम्युत्सृजामि च** भगवान् ही तो सूर्य रूप से तपते हैं। वर्षा रूप होकर स्वयं ही बरसते हैं। ग्रहण भी स्वयं ही करते हैं तथा त्याग भी स्वयं करते हैं। सर्वसमर्थ, स्वयं ही सभी कुछ करते हैं। उनके लिए असंभव कुछ भी नहीं है।

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! मैंने सुना है कि द्वापरयुग में कृष्णावतार से इन्द्र देवता रुष्ट हो गये थे, शायद उनकी शक्ति की परीक्षा ले रहे थे। किन्तु अबकी बार तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। शीघ्र ही इन्द्र वर्षा करने में तत्पर हो गये।

नाथोजी उवाचः - हे शिष्य! प्रथम द्वापरयुग में तो कृष्ण ने गोपों से इन्द्र यज्ञ बंद करने की बात कही थी। जिससे इन्द्र का रुष्ट होना स्वाभाविक ही था। इन्द्र घनघोर वर्षा करके कृष्ण को हराना चाहते थे। किन्तु भगवान् के सामने तो इन्द्र बहुत ही बौना है। ब्रजवासी डूबने लगे तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया था। सभी ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत की गुफा में सुरक्षित रख लिया था।

इस बार तो जाम्भोजी ने यज्ञ की लुप्त परम्परा को पुनः प्रारम्भ किया था। मेघ के देवता इन्द्र बड़े ही प्रसन्न थे। इन्द्र ने देख लिया था कि मैं इनकी शक्ति परीक्षण में हार जाऊँगा। ये मेरे से कहीं ज्यादा शक्तिशाली हैं। ये तो साक्षात् विष्णु ही हैं। हम सभी देवता उन विष्णु के ही अधीन है। ये ही हमारे सर्वस्व हैं। इनकी तो शरण ग्रहण ही सुखदायी है। इसीलिए स्मरण करते हुए इन्द्र देवता शीघ्र उपस्थित हो गये और वर्षा करने लगे।

आप लोग भी यज्ञ द्वारा इन्द्र देवता की पूजा करोगे तो समयानुसार वर्षा होगी। वर्षा से हम तथा हमारे खेत-खलिहान, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सभी पुष्ट होते हैं। सभी जीवन का आनन्द लेंगे। जीवन को मुसीबत न समझकर इसे महोत्सव समझेंगे।

हे शिष्य! इस प्रकार से गउओं को चराते हुए जाम्भोजी ने अनेक चरित्र दिखलाये। एक दिन की बात है कि वन में गऊएँ चराते थे। नित्यप्रति सम्भराथल की तरफ गऊएँ चराने जाते थे, यह सदा का ही क्रम था। पीपासर के लोगों ने मिलकर निश्चय किया कि गाँव की दो दिशाओं में ही खेती करेंगे। बाकी दो दिशाओं में हमारा पशुधन विचरण करेगा। उनके निमित्त खाली छोड़ दी जायेगी। किन्तु कभी-कभी नियम व्यतिक्रम भी होता था। कभी इधर खेती तो कभी उधर खेती, ऐसा भी अपनी सुविधानुसार करते थे। एक तरफ गायें आदि खुली चरेंगी तो दूसरी तरफ हमारी खेती भी बिना रखवाली के होती रहेगी।

जिधर लोहटजी के खेत थे, उधर ही उस दिन गायें चराने के लिए जाम्भोजी व अन्य बालक गये थे। क्योंकि अब तक खेतों में बुवाई नहीं थी। हल चलाने की तैयारी कर रहे थे। समय पर अच्छी वर्षा हो गयी थी। कुछ लोग अपने-अपने खेतों में हल चला रहे थे। लोहटजी भी अपने हल बीज आदि लेकर पहुँच गये थे। लोहटजी अपने आप बुढ़ापे का अनुभव करने लगे थे। हल तो स्वयं ही चलाना चाहिए। किसी सेवक द्वारा यह बीज बोने जैसा पवित्र कार्य नहीं करवाना चाहिये। क्योंकि हमारी खेती में जो अन्न होगा वह

हमारे अपने हाथ की मेहनत का होगा। वही मधुर होगा। अपनी शुभ कमाई का भोजन करने से ही मन-बुद्धि पवित्र होते हैं। ईश्वर के बताये हुए नियमों में जुड़ जाते हैं। मानसिक सुख शांति एवं संतोष की प्राप्ति होती है। यही जीवन का सार है। केवल पेटभराई तो सभी करते हैं।

लोहटजी ने विचार किया-यदि बेटा हल चलाने लग जाये तो बाप की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। घर में बहू आ जाये तो माँ की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। किन्तु मेरा बेटा शायद ही हल चलाये ? अब वह हल चलाने के लायक तो हो गया है।

उस दिन वहीं पर ही गऊएँ चरा रहे थे। लोहटजी ने अपने ज्ञानी बेटे को बुलाया और कहने लगे- बेटा! अब तुम हल चलाने के लायक हो गये हो। अपने यहाँ अच्छी वर्षा भी हुई है। सभी किसान अपने-अपने खेतों में हल चला रहे हैं। बाजरी, मोठ, मतीरा के बीज बो रहे हैं। भगवान् की कृपा से थोड़े ही दिनों में खेती लहलहा उठेगी। किन्तु मैं अपनी तरफ देखता हूँ, तो असहाय हूँ। तुम मेरे उत्तराधिकारी हो। कुछ सोचो और मुझे चिन्तामुक्त कर दो।

हमारे घर में जब अन्न होगा, तो हम अपनी जीविका चलायेंगे। हमारे घर पर आने वाले अतिथि भी भोजन करेंगे और भी पशु, पक्षी, कीट-पतंग, न जाने कितने जीव हमारी इसी खेती से ही पलते हैं। इसीलिए तुम्हें खेती करनी चाहिये। खेती ही सबसे उत्तम कर्म है। इस उत्तम कर्म से मुख नहीं मोड़ना चाहिए।

हे बेटा! आज तुम स्वयं हल चलाना सीख जाओ। मैं तुम्हें सिखा देता हूँ। कैसे बैलों को हाँकना है। कैसे रस्सी पकड़नी है ? कैसे हल पकड़ना है ? कैसे बीज डालना है ? कितना बीज किस प्रकार से बोया जाता है ? ये सभी तुम्हें सिखला देता हूँ। ये सभी बातें तुम सीख जाओगे, तभी मुझे संतोष होगा। अपना जीवन सफल समझूँगा। वास्तव में पुत्रवान कहलाऊँगा। तुम्हारे इस कार्य से मुझे अपार खुशी होगी। जिससे तुम्हारे परिजन खुश रहे, वह कार्य तुम्हें करना चाहिये।

जाम्भोजी बोले-हे पिताजी! यदि ऐसी बात है, तो मैं आपकी प्रसन्नता के लिए अवश्य ही हल चलाऊँगा, आप देखें! अभी इसी समय ही प्रारम्भ करता हूँ। यह समय सर्वथा अनुकूल है। ऐसा कहते हुए दो बछड़े जो गायों में चर रहे थे, अब तक हल चलाये हुए नहीं थे। उनको हल में चलने का अभ्यास नहीं था। उन्हें नाम लेकर पास बुलाया और हल में जोड़ दिये। बीज हल के ऊपर बाँध दिया, ऐसा उपाय कर दिया, जिससे ज्यों-ज्यों बछड़े हल को खींचे, त्यों-त्यों अपने हिसाब से बीज स्वत: ही गिरता रहे। हल में जोड़कर बछड़ों को चला दिया। अपने आप ही तो बछड़े अनुशासित बैलों की तरह चल रहे हैं। हल भी बिना पकड़े-सहारे बिना ही चल रहा है। स्वयं जाम्भोजी एवं लोहटजी दूर बैठे देख रहे हैं।

हल चलाने का कार्य स्वत: ही हो रहा है। लोहटजी ने देखा, यह तो आश्चर्यजनक घटना है। यह न तो कभी देखा है और न ही कभी सुना है। देखते ही देखते सम्पूर्ण खेत जोत दिया। बीज बराबर डाला गया। खेती भी ठीक ढ़ंग से हो गयी। यह कैसा चमत्कार है ? शाम को वापिस घर पर आकर लोहट ने हाँसा को सभी बातें बतलाई। ग्रामवासियों ने सुना, तो इसे विष्णु की लीला ही माना। अन्यथा ऐसा होना असम्भव है।

लोहटजी को परचा दिखलाया अर्थात् उस विष्णु परमात्मा से परिचित करवाया। वह विष्णु अपनी शक्ति से असंभव को भी संभव कर देता है। इस वर्ष अपार अन्न हुआ। सम्पूर्ण भण्डार अन्न से भर गये। जहाँ पर विष्णु की लीला हो, स्वयं अपने हाथ से बीज बोया हो, वह अन्न तो अवश्य ही अखूट हो जायेगा। दुबारा फिर कभी खेती करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

जो तन,मन,धन से परोपकार की भावना रखकर के कार्यक्षेत्र में उतरता है, उसके किए हुए कार्य का

फल अखूट ही होता है। कभी किसी वस्तु की कमी नहीं पड़ती। जहाँ किसी कार्य में स्वार्थ आ जाता है, वह अधिक फलदायी होते हुए भी अल्प होता है। कभी भी वह बरकत नहीं करता। परोपकार की भावना से किया हुआ ही अनन्त गुणा होता है।

जाम्भोजी स्वयं तो भोजन करते नहीं है। उन्होंने जो खेती की यह दूसरों के हित के लिए थी। इसलिए उस खेत में होने वाला अन्न अखूट हो गया। पुन: खेती करने की आवश्यकता नहीं रही। वही अन्न भूखों को भोजन करवाने हेतु सं. 1542 में अकाल के समय में लोगों को दिया था। बिश्नोई पंथ की स्थापना की थी।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जाम्भोजी ने कहा था कि एक साहूकार मेरे पास में है अर्थात् साहूकारी ईमानदारी से खेत में उपजाया हुआ अन्न मेरे पास में है। वही अन्न मैं आपको खिलाऊँगा। जीवों को बचाऊँगा।

दूदोजी को परचा देना

जम्भेश्वरजी ग्वाल-बालों के साथ गऊ आदि पशु धन को लेकर वन सें लौट आये थे। बालक वहीं जम्भेश्वरजी के पास खेल रहे थे। क्योंकि गऊ आदि पशुओं को पानी पिलाने का कार्य जाम्भोजी के ही अधीन था। कुएँ पर पानी पीने की जगह सीमित थी। पशु धन अत्यधिक था। गाय, भैंस, बकरी, ऊँट आदि। पानी तो सभी को ही पिलाना है। सभी प्यासे हैं। किन्तु पहले कौन पियेगा? प्रतीक्षा कौन करेगा? सभी इकट्ठे तो पानी पी भी नहीं सकते। इसीलिए बारी-बारी से जल पिलाने का कार्य जाम्भोजी कर रहे थे।

जो लोग पशुपालन करते हैं, वे ही जानते हैं कि यह कार्य कितना कठिन है। न तो वहाँ पर कोई अन्य सहयोगी है और न ही पास में कोई लट्ठी-डंडा है और न ही कोई भागदौड़ हो रही है। केवल हाथ की अंगुलियों के इशारे से पशुओं को पानी पिला रहे हैं। यह पीपासर वासियों के लिए तो कुछ भी अचम्भे की बात नहीं थी। यह तो नित्यप्रति होता था। किन्तु किसी अजनबी के लिए तो अवश्य ही आश्चर्यजनक घटना ही थी। वह अजनबी भी कोई साधारण आदमी नहीं था, जोधपुर नरेश राव जोधा का पुत्र दूदा था।

पीपासर के कुएँ पर एक तरफ तम्बू लगाकर बैठा हुआ, अपने भाग्य को कोसता था। कहीं कोई सहारा भी नहीं था। न ही कहीं कोई प्रकाश दिखाई देता था। चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता था। यहाँ पीपासर में कुछ अलौकिक ज्योति का दर्शन करके अपने को धन्य भागी मान रहा था।

वि.सं. 1519 में दूदे के बड़े भाई वरसिंग ने दूदे को देसोटो दे दिया था। अपने देश राज्य से निकाल दिया था। वरसिंग और दूदा अपने पिता जोधा की आज्ञा से मेड़ते का राज-काज देखते थे। किन्तु दोनों भाइयों में आपस में नहीं बनी। बड़े भाई ने छोटे भाई को निकाल दिया था। दूदा दु:खी होकर अपने बड़े भाई बीका के पास जा रहा था। थोड़े से सिपाही साथ में तथा तम्बू घोड़ा आदि थे। और तो राजकुमार के पास कुछ भी नहीं था। यदि पास में राजपाट, भूमि, धन आदि होते तो अहंकार में अन्धा हो जाता। यहाँ पीपासर के कुएँ पर कुछ भी नहीं देख पाता।

जब भगवान् अपने भक्त को अपने बास बुलाते हैं, तो उसका धन छीन लेते हैं, ताकि अहंकार से निवृत्त हो सके, और कुछ देख सके। कुछ सुन सके। यही दूदे के साथ हुआ था। दूदे ने देखा कि ये अबोल पशु भी एक साथ बड़े प्रेम से खड़े हुए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्योंकि इनके सामने कोई देव खड़ा है। किन्तु हम मनुष्य इतनी सी मर्यादा को नहीं समझ पा रहे हैं। एक-दूसरों से झगड़ने को तैयार हैं। पहले हम, पहले हम। यह मेरा है। मेरा ही यहाँ अधिकार है। भाई-भाई आपस में झगड़ते हैं। एक-दूसरों को मारने-मरने को तैयार हो जाते हैं। यह कैसा मानव जीवन है ? इन पशुओं की तरह हम भी यदि किसी एक परम पुरुष की शरण लेते, तो झगड़ा समाप्त हो जाये। हमसे भी बड़ा कोई और है, जो हमें श्वांस देता है। भोजन, अन्न, जलादि देकर हमारा जीवन बचाता है, तो कुछ शाँति का अनुभव किया जा सकता है। अन्यथा तो हम इन पशुओं से भी गये-गुजरे हैं। इन पशुओं ने परमेश्वर का सान्निध्य प्राप्त किया है। दूदा संध्या, पूजा-पाठ करके निवृत्त हुआ और इस आश्चर्यजनक घटना को ध्यान से देखता रहा।

दूदे ने देखा कि एक बालक खेजड़ी के पेड़ के नीचे बैठा हुआ हाथ की अंगुलियों से इशारा दे रहा है। जब सात अंगुलियाँ दिखाता है, तो उन सैकड़ों पशुओं में से सात गायें ही निकलकर जाती हैं। बाकी सभी जहाँ है, वहीं खड़ी रहती हैं। दुबारा दस अंगुलियाँ दिखाता है, तो दस बकरियाँ ही जाती है, बाकी वहीं बैठी या खड़ी रहती हैं। पाँच अंगुलियाँ के इशारे से पाँच भैंसे जाती है। सभी पशु यंत्रवत खड़े रहते हैं। बारी-बारी से जल पीते हैं। वापिस आकर शीश झुकाते हैं। दूसरी तरफ तृप्त होकर खड़े हो जाते हैं। **ज्यूँ छक आई सारी।**

दूदे ने हाथ जोड़कर अपने तम्बू में बैठे ही बैठे आदेश किया। यह तो अवश्य ही हमारे ईष्ट देवता हैं। हम लोगों का इन्हें प्रणाम कहना उचित्त ही होगा। मेरे भाई ने तो मुझे निष्कासित कर ही दिया। अब मेरा सहारा कौन है ? इनके निकट जाऊँ और अपनी व्यथा कथा कह दूँ। जब ये पशु भी इनकी आज्ञा का पालन करते हैं, तो मेरा भाई बरसिंग क्यों नहीं मानेगा ? यहाँ तो मेरा कार्यसिद्ध हो जायेगा। मुझे किसी अन्य भाई की सहायता लेकर खून खराबा करने की शायद आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु यहाँ पर तो सम्पूर्ण गाँव के लोग मुझे देख रहे हैं। यहीं पर जाकर इनके चरण पकड़ लूँ और मेरा कार्य न बने तो अपमान ही होगा। ये लोग मुझ जैसे दु:खी व्यक्ति का दु:ख और भी बढ़ा देंगे। ये लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे। बिना विचारे झटिति आगे कदम न उठाये। यदि कार्य सफल न हो तो लोगों में हँसी का पात्र बन जाता है।

अभी तो यह छोटा बालक ही है। ग्रामपति लोहटजी ठाकुर का बेटा है। मैं एक राजपुत्र हूँ। आयु, विद्या, बल में मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ। यहाँ मिलना ठीक नहीं होगा। अब मैं अपना पूजा-पाठ कार्य पूरा कर लेता हूँ। यह बालक गऊवें चराने वन में जायेगा, वहाँ एकान्त में मिलूँगा और अपना दु:खड़ा सुनाऊँगा।

गायें जल पीकर जंगल में चरने हेतु चल पड़ी थी। पीछे-पीछे जाम्भोजी भी चल पड़े थे। दूदे ने देखा कि अब तो गाँव से बाहर चले गये हैं। किन्तु आँखों से ओझल नहीं हुए हैं। अभी थोड़ी दूर ओर जाने दो। मैं अपनी तुरंग बछेरी पर सवार होकर पहुँच जाऊँगा। दूदे ने किसी साथी को कुछ भी नहीं कहा और अपनी मनपसंद तेजस्वी घोड़ी पर सवार होकर उत्तर की तरफ, जिधर जाम्भोजी गये थे, उधर ही घोड़ी हाँक दी।

आगे-आगे गऊएँ, पीछे-पीछे जाम्भोजी तथा उनके पीछे राव दूदा, छेती-फासला उतना ही, जितना पीपासर से थी। न तो आँखों से ओझल हुए हैं और न ही पहुँच सके हैं। दूदे ने सोचा-आज मेरी घोड़ी दौड़ नहीं रही है। मैं पहुँच नहीं पा रहा हूँ। घोड़ी के चाबुक मारा कि जल्दी पँहुच जाऊँ। अभी पकड़ लूँ। घोड़ी, छलांग मारने लगी। वायु की भाँति तेज दौड़ने लगी। किन्तु ज्यों-ज्यों घोड़ी भागने लगी, त्यों-त्यों दूर ही दूर

श्रीदेव दिखाई देने लगे। अब तो कहीं आँखों से ओझल न हो जाये। फिर मैं कहीं का भी नहीं रहूँगा। अपने साथियों को तो छोड़ आया। मैं अकेला क्या कर सकूँगा?

वेद भी जिनके बारे में नेति-नेति कहते हैं। मैं मूर्ख-गँवार उनका अपनी शक्ति द्वारा कैसे पार पा सकता हूँ। ज्यों-ज्यों अपनी अल्प शक्ति के द्वारा उस महान् को पकड़ने का प्रयत्न करूँगा, त्यों-त्यों डूबता ही जाऊँगा। दूर ही होता चला जाऊँगा। उनकी प्राप्ति हेतु तो अहंकार को त्यागना ही होगा। समर्पण भाव से शरण ग्रहण करनी ही होगी। तभी कहीं पार पाया जा सकता है। वहाँ तक पहुँचने की योग्यता आ सकती है। अभी तो मैं उनकी कृपा का अधिकारी से ही नहीं बन पाया हूँ। अभिमान को छोड़कर ही पहुँचा जा सकता है। मेरी यह तेजस्वी घोड़ी, पसीने से तरबतर हो गयी है। मैं इसके ऊपर सवार भी अत्यंत खिन्न हो गया हूँ। इस प्रकार की सवारी से क्या लाभ, जो मंजिल तक नहीं पहुँचा सके? ऐसा विचार करके दूदा घोड़ी से नीचे उतर गया। परमात्मा से मिलना है, तो नीचे उतरना ही होगा। अपनी अहंकार-ममता को त्यागना ही होगा। यही परमात्मा के मिलन में बाधा बनती है।

दूदे ने अपने अंगोछे से दोनों हाथ बाँध लिये। हाथ जुड़े रहे। वहाँ पहुँचूँ तब तक खुल न जाये। बार-बार जोड़ना-तोड़ना ठीक नहीं है। एक बार जुड़ गये, तो फिर जुड़ ही गये। पुन: टूट न जाये। पैरों के जूते उतार दिये। नँगे पाव, घोड़ी को पीछे खींचते हुए, थोड़ी दूर ही भागे थे कि सम्भराथल पर भगवें भेष में दूदे ने जाम्भोजी के दर्शन किये।

भगवाँ भेष देखकर दूदे ने आदेश (प्रणाम) किया और अपने सिर को झुकाया। सिर की पगड़ी उतारकर सद्गुरु के चरणों में रख दी। स्वयं समर्पित हो गये। पीछे कुछ भी नहीं रखा। जो कुछ है, वह आपके ही चरणों में है। मेरा अपना कुछ भी नहीं।

पाघ मेल्हरू चरन पकरेहु, दे मन्त्र शिष कीजिये।
कृपा रावरी पाऊँ अटल पद, देख दरशन जीजिये।
देहुं भेख अलेख मो कहुँ, जगत में जस लीजिये।
पर्शेउ जम्भ नरेश फिर करि, भेख मोरा राखीजिये।

जाम्भोजी ने कहा-हे दूदा! तुम वापिस जाओ। मेड़ता के राजा बनो। प्रजा का पालन-पोषण करो। दूदा बोला-हे महाराज! मेरे बड़े भाई ने मुझे देश निकाला दे दिया है। मेरा मुँह काला करके मुझ निरपराधी को निकाला है। अब मैं कैसे वापिस जाऊँ? यदि आपकी कृपा हो तो यह असंभव कार्य भी संभव हो सकता है। अन्यथा तो मेरा अन्त होना निश्चित ही है।

जाम्भोजी ने कहा-हे दूदा! मेरी बात पर विश्वास करो। आज से तुम नरेश हो। मैंने जो कह दिया वही होगा। यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हो तो तुम यहाँ से वापिस जाओगे, तब नागौर के उत्तरी दरवाजे पर तुम्हें दो घुड़सवार मिलेंगे। वे तुम्हें वापिस बुलाने के लिए आयेंगे। वहाँ से आगे बढ़ोगे, तो मूण्डवा के तालाब की पाल पर तुम जहाँ तम्बू गाड़ोगे, वहीं तुम्हें अपार स्वर्णधन मिलेगा। रुपयों आदि के टोकणे मिलेंगे। वह तुम ले लेना। वह तुम्हारा ही धन है।

दूदा बोला-हे महाराज! मेरा भाई मुझ पर क्रोधित हुआ है, अभी भी मुझे खाने के लिए दौड़ता है, यह मैं देखता हूँ? यह कैसे सम्भव होगा?

जाम्भोजी बोले-हे दूदा! सुनो! जब से तुम वहाँ से छोड़कर आ गये हो, तभी से वह विनम्र हो गया है। यहाँ पर आने से तुम्हारा भी गर्व गलित हो गया है। तुमने अपनी अहंकार की प्रतीक पगडी समर्पित कर दी

है। यह सभी कुछ नम्रशीलता से ही सँभव हुआ है। दोनों ओर से पत्थर से पत्थर टकराता है, तभी आग प्रकट होती है। आग से जल टकराये, तो आग बुझ जाती है। रंग को देखकर, रंग बदलता है। यह सभी कुछ कृष्ण चरित्र से ही संभव हुआ है।

दूदा ने पुनः प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! आप मुझे अपने भेष का चिह्न स्मृति के रूप में भेंट दीजिये। वह तो मेरे यहाँ शान्ति-शक्ति के प्रतीक रूप में रहेगा तथा आगामी आने वाले शत्रुओं का मैं सामना कर सकूँ इस हेतु मुझे शस्त्र प्रदान कीजिये। आपकी अपार कृपा होगी, तो मैं न्यायपूर्वक राज्य करते हुए प्रजा का पालन कर सकूँ। विधर्मियों से लड़ने हेतु मुझे ऐसा सम्बल प्रदान कीजिये।

जम्भेश्वर कृपा करी, लियो भेख सिरधार।
काठ मूंठ कर्ता करी, तद सूँपी तरवार।
पलटेउ मूंठ पलक में, सकल गएउं भ्रम भाज।
खांडो भेख जूं राखहो, तब लग अवचल राज।।

जाम्भोजी महाराज ने दूदे को अपना भेष-वस्त्र दिया तथा एक केर वृक्ष की लकड़ी दी और कहा कि यह केर की लकड़ी ही तुम्हारे लिए तरवार है। जब तुम इसे कार्य हेतु प्रयोग करोगे, तो यह खाण्डा-तरवार बन जायेगा। ये दोनों वस्तुएँ जब तक रखोगे, तब तक तुम्हारा राज्य अडिग रहेगा। राव दूदा ने ये दोनों वस्तुएँ लेकर, सादर प्रणाम करते हुए, अपने को कृत-कृत्य अनुभव करते हुए वापिस मेड़ते के लिए प्रस्थान किया।

दूदा को मार्ग में दो घुड़सवार बुलाने वाले मिल गये। मूण्डवा के तालाब पर सोने के भरे हुए चरू प्राप्त हुए, जैसा श्रीदेव ने कहा, वैसा ही फल प्राप्त करके वापिस मेड़ता पहुँच गये। वहाँ पर श्री देव की प्रेरणा से बरसी ने दूदे का स्वागत किया और उन्हें राज्य सौंप दिया। राव दूदा ने बहुत समय तक राज्य किया। जम्भेश्वरजी की आज्ञा का पालन किया।

उधरण को शब्द सुनाना

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! आपके श्रीमुख से मैंने राव दूदा की विचित्र कथा सुनी। केवल मात्र शरणागति से ही दूदे को राज्य की प्राप्ति हो गयी। अब मैं आगे अनेकानेक राजकुमारों की कथा सुनना चाहता हूँ। ऐसी दिव्य कथा जिससे हमारे इष्ट देवता भगवान् विष्णु का दिव्य चरित्र उजागर हो सके। जाम्भोजी ने किन किन राजाओं को अपना शिष्य स्वीकार किया? क्योंकि राजा ही प्रजा का सर्वश्रेष्ठ अग्रगण्य होता है। यदि राजा धर्म-नियमों का आचारण करेगा तो प्रजा भी उसी का ही आचरण करेगी। **यथा राजा तथा प्रजा।**

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! मैं तुम्हें जाम्भोजी का दिव्य चरित्र सुनाता हूँ। ध्यानपूर्वक श्रवण करो। एक समय गुरु जम्भेश्वरजी ग्वाल-बालों सहित सम्भराथल पर गऊवें चरा रहे थे। बहुत से ग्वाल-बाल उनके

साथ में थे। उसी समय कुछ बालक आकर कहने लगे- हे मित्र! आपने हमारी सहायता तो अनेक बार की है। हम सभी आप पर अति प्रसन्न हैं। किन्तु इस समय कुछ डाकू लोग ऊँट-ऊँटनियों को यहाँ सम्भराथल के पास से ही हाँक कर ले जा रहे हैं। हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह धन इनका अपना नहीं है। ये लोग पराया धन चोरी करके ले जा रहे हैं। ये बेचारे मूक पशु भी इसी समय अपनी आवाज लगा रहे हैं। लगता है वे आपको ही बुला रहे हैं। अपने बंधन से छूटने की प्रार्थना आपसे कर रहे हैं।

आज आप अपना देवपना दिखलाओ और इन ऊँट-ऊँटनियों को छुड़ा दो। यदि आज आप नहीं छुड़ाओगे, तो पीछे निश्चित ही बाहरू (इनके मालिक) शस्त्र लेकर आयेंगे। इनका आपस में घोर संग्राम होगा। यह पवित्र शांत धरती खून से रंग जायेगी। आपके यहाँ पर उपस्थित रहते हुए हम लोग ऐसी भयानक घटना नहीं देखना चाहते। ये पशु भी बेचारे अपना परिचित स्थान छूट जाने से अति दुःखी हो रहे हैं। मानव की धन प्राप्ति की इच्छा कहाँ तक उचित है ? स्वयं तो आपस में लड़ते ही हैं, साथ में इन निरीह जीवों पर भी कहर ढ़हाते हैं। यह लोभ-लालसा तो कभी पूरी नहीं होने वाली है। स्वयं लड़कर मर जायेंगे, किन्तु इस अपूरणीय वासना को कभी मार नहीं सकेंगे। अपने अहं की तृप्ति हेतु इन पशुओं को दुःख देना कहाँ तक उचित है ?

जाम्भोजी बोले- हे ग्वालो! आप लोग सभी एकत्रित हो जाइये। अपनी-अपनी लकुटिया लेकर उनका पीछा कीजिये। वे डाकू लोग तुम्हारे डर से डरकर भाग जायेंगे। एकता में शक्ति होती है। उस शक्ति की तुम लोग पहचान करो। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

बालक बोले- हे देव! हमें आपकी बात पर सहसा विश्वास नहीं हो रहा है। क्योंकि हम तो अब तक बालक ही हैं। संख्या में भी कम ही हैं। हमारे पास कोई शस्त्र भी तो नहीं है तथा न ही हमने अब तक शस्त्र चलाना ही सीखा है। हमारे विपरीत इन दस्युओं की संख्या भी अधिक है। सभी शस्त्रधारी हैं। ये लोग शक्ति संपन्न शस्त्र चलाने में कुशल है। हम इनका सामना कैसे कर सकते हैं ? यदि आपकी कुछ कृपा हो जाये। कृष्ण चरित्र की झलक हममें आ जाये तो हम कुछ कर सकते हैं। अन्यथा तो यह असंभव ही है।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे ग्वालो! आप लोग मेरी बात पर विश्वास कीजिये। और जैसा मैं कहता हूँ वैसा कीजिये। बालकों ने अपने मित्र की बात पर विश्वास किया। सभी एकत्रित होकर अपनी अपनी लट्ठियाँ लेकर सांढों को छुड़ाने के लिए चल पड़े। सभी ने अपनी अपनी लट्ठियाँ उपर उठा रखी थी और सम्मिलित स्वर में जय-जयकार करते हुए, ठहर जाओ, ठहर जाओ। अभी हम आये। आप लोग हमारे जीवित रहते हुए हमारी सीमा का उल्लंघन नहीं करोगे। आज तो तुमने किसी अन्य का पशुधन चुराया है, कल हमारा भी चुराओगे। आज हम तुम लोगों को जिन्दा नहीं छोड़ेंगे। हमें आप लोग केवल बालक ही मत समझना, हम निरीह अकेले नहीं है। हमारे साथ हमारे मित्र जय अम्बेश्वर भी हैं।

डाकुओं ने देखा कि बहुत बड़ी सेना हमारे पीछे आ रही है। अब हमें जिन्दा नहीं छोड़ेगी। इस समय तो इस पशुधन को छोड़कर भागने में ही भलाई है। ऐसा एक-दूसरे से कहते हुए, बड़ी सेना के भय से भीत होकर डाकू लोग भाग गये। पशुधन निर्भय होकर विचरण करने लगा।

एक समै देवजी थलिया राज करे। रावरा वरग धावड़िये लिया। देवजी सूं सला आय निसर्‌या। देव कनै पाल रमै छा जका कह्यो- रावजी की सांढ़ी छुड़ावों तो तूं सति देव। देवजी कहे- थे गेडी कावां सगला अंसवार हुवौ। असवार हुवा। देवजी कही सगला ललकार कीवी। धावड़ियां की नजरी

कटक आयो। सांढे छोड़े, नाहठा। रैबारी सांढया लार छां तका बाहर घाती। बाहरूवे टोला चरता दीठा। गुवालियां ने कहरे मरदां सांढयां के छुड़ाई ? म्हारे साथे औ देवजी छै, ऐणी छुड़ाई। और उमराव चढयां के उतरयां। उधरण कान्हावत कर जोड़, अरज कीवी- देवजी! थांहरे पेट पूठी दीसै नही, छाया दीसै नही, आप कुण बालक छो ? श्री जाम्भाजी उवाच-

थोड़ी देर में अपनी सांढें छुड़ाने हेतु कान्हाजी का पुत्र उधरण- ऊधोजी अपनी सेना लेकर आ गये। उन्होंने देखा कि उनके सांढ़ ऊँट तो यहाँ पर ही चर रहे हैं। चलो! वहाँ पर कुछ ग्वाल-बाल खेल रहे हैं। उन्ही से पूछ लेते हैं कि हमारे पशुधन को किसने छुड़ाया या स्वयं छोड़कर भाग गये। आज हमें खून खराबे से बचा लिया है। ऐसा कहते हुए उधरण अपनी सेना सहित सम्भराथल पहुँचा। वहाँ बालकों के साथ जम्भेश्वर के दर्शन किये।

बालकों से पूछा- हमारे धन को किसने छुडवाया या स्वयं ही छोड़कर भाग गये हैं ? बालकों ने कहा- वैसे तो हम सभी लोगों ने मिलकर ही यह कार्य किया है, किन्तु हम तो केवल निमित्त मात्र ही हैं, हमारे सूत्रधार कार्य करवाने वाले हमारे देवजी ही हैं। अधिक क्या कहें,उनकी अलौकिक शक्ति से तो हमारे असंभव कार्य भी संभव हो रहे हैं। उधव अपने सैनिकों सहित जाम्भोजी के निकट आया और उन्होंने देखा- चारों तरफ मुख ही दिखाई देता है। पीठ नहीं दिखती है, न ही शरीर की छाया ही दिखती है। फिर भी बैठे हुए एक बालक दिखते हैं।

ऐसा आश्चर्यजनक दिव्य काया का स्वरूप देखकर उन्होंने पूछा- आपके तो शरीर में शारीरिक लक्षण, पीठ, छाया आदि क्यों नहीं दिखते ? गुरु जम्भेश्वरजी ने शब्द उच्चारण किया-

शब्द नं.- 2

ओ३म् मोरे छाया न माया लोही न मांसू, रक्त न धातूं, मोरे माय न बापूं।
आपण आपूं रोही न रापूं, कोपूं न कलापूं, दुख न सरापूं।
लोई अलोई त्यूंह तृलोई,ऐसा न कोई जंपा भी सोई।
जिंहि जंपे आवागवण न होई।
मोरी आद न जाणत, महीयल धूंवा बखाणत, उरध ढ़ाकलें तृसूलूं।
आद अनाद तो हम रचिलो, हमें सिरजिलों से कौण ?
म्हें जोगी के भोगी कै अल्प अहारी, ज्ञानी के ध्यानी, के निज कर्मधारी।
सोखी के पोखी, कै जल बिम्बा धारी,दया धर्म थापले निज बाला ब्रह्मचारी।।

श्री गुरुदेव ने अपने शब्द में कहा है- हे उधरण! तुम सत्य ही कहते हो। जैसा तुम कहते हो, वैसा ही मेरा स्वरूप है। क्योंकि मेरा शरीर ज्योतिप्रधान है। देवताओं का शरीर तेज प्रधान होता है। तेज के कैसी छाया, कैसी माया, कैसा रक्तधात इत्यादि। मानव शरीर पृथ्वी प्रधान होता है। उसमें ही ये सभी कुछ होता है। इसलिए तो देवता का दर्शन ज्योति में ही होता है। देवता के मुख्य शिरोमणि भगवान् विष्णु है, वही मैं स्वयं विष्णु ही हूँ।

हे उधरण! मेरे माता-पिता भी नहीं है। मैं तो स्वयं ही हूँ। मेरे से भिन्न तो कुछ भी नहीं है। मैं ही सम्पूर्ण जगत का आधार हूँ। मेरा कोई आधार नहीं है। मैं किसी पर भी कोप नहीं करता और न ही किसी को शाप ही देता हूँ, क्योंकि मुझे दु:ख ही नहीं होता, तो मैं क्यों किसी को शाप दूँगा ?

व्यक्ति अपने ही कर्मों का फल दु:ख-सुख भोगता है, किन्तु दोष दूसरों को देता है। हे उधरण! हम जप भी उसी परमात्मा विष्णु का करते हैं, जिसके जप से मानव जन्म-मृत्यु के दु:ख से छूट जाता है। मेरा आदि-अन्त कुछ भी नहीं है। वह इन आँखों से प्रत्यक्ष तो दिखाई नहीं देता, फिर भी अनुमान द्वारा जाना जा सकता है। जिस प्रकार से पर्वत पर धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान लगा लिया जाता है।

दैहिक, दैविक तथा भौतिक तीन तरह के ताप संसार में प्रसिद्ध हैं। उन तापों के उपर ढ़क्कन लगा दें, उन्हें लुप्त कर दें, तभी शान्ति हो सकेगी। आदि अनादि तो हमने ही बनाया है। हमें बनाने वाला कौन? अर्थात् हमें बनाने वाला हम से ऊपर है भी नहीं।

हम क्या हैं? कौन हैं? यह तो कहना तथा समझना कठिन ही है। क्या हम योगी हैं या भोगी हैं अथवा थोड़ा भोजन करने वाले या अधिक खाने वाले, हम ज्ञानी हैं या ध्यानी, या कर्म करने वाले, या किसी का शोषण करने वाले या पालण-पोषण करने वाले, हम जीव रूप में हैं या ईश्वर रूप में, यह भी कहना कठिन है। हे उधरण! तुम ऐसा समझो कि हम दया धर्म की स्थापना करने वाले स्वयं बाल ब्रह्मचारी हैं।

उधरण कान्हावत ने पुन: पूछा कि हे देव! आपकी आयु तो थोड़ी ही दिखती है, आप कितने वर्षों के हैं? मुझे लगता है कि आपकी आयु मुझे जो दिख रही है, इससे कहीं ज्यादा है? क्योंकि आप बातें बहुत ही ज्ञान की कर रहे हैं। अन्यथा इस छोटी सी आयु में यह ज्ञान कैसे संभव हुआ। गुरु जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-

शब्द- 4

ओ३म् जद पवन न होता, पाणी न होता, न होता धर गैणारूं।
चंद न होता सूर न होता, न होता गिंगदर तारूं।
गऊ न गोरू माया जाल न होता, न होता हेत पियारूं।
माय न बाप न बहण न भाई, साख न सैण न होता न होता पख परवारूं।
लख चौरासी जीया जूणी न होती, न होती बणी अठारा भारूं।
सप्त पताल फुंणीद न होता, न होता सागर खारूं।
अजिया सजिया जीया जूणी न होती, न होती कुड़ी भरतारूं।
अर्थ न गर्थ न गर्व न होता, न होता तेजी तुरंग तुखारूं।
हाट पटण बाजार न होता, न होता राज दवारूं।
चाव न चहण न कोह का बाण न होता, तद होता एक निरंजन शिंभु।
कै होता धन्धूकारूं, बात कदे की पूछै लोई, जुग छतीस विचारूं।
तांह परै रे अवर छतीसूं, पहला अन्त न पारूं।
म्हें तपदण होता अब पण आछे, बल बल होयसा कह कद कद का करूं विचारूं।

गुरु जम्भेश्वरजी ने शब्द द्वारा बतलाया- हे उधरण! आपने मेरी आयु के बारे में जानना चाहा। किन्तु मैं अपनी उमर कितनी बतलाऊँ? किसकी समता करूँ? जब मैं था तब ये सूर्य, चन्द्र, तारे, धरती, आसमान, गायें, हाट-बाजार, नगर-गाँव,भाई-बन्धु, 84 लाख योनियाँ, माता-पिता, सप्त पाताल, शेषनाग, सागर, अर्थ-गर्थ, अहंकार, तुरंग, राज-पाट, चहल-पहल इत्यादि इस समय जो तुम देख रहे हो, वह उस समय कुछ भी नहीं था।

सभी कुछ दृश्य-अदृश्य न होते हुए भी एक निरंजन स्वयंभू उस समय भी था। या फिर केवल धंधुकार ही था। हे उधरण! तुमने मेरी आयु कब की पूछी है? मैं छत्तीस युगों की बात बतला दूँ। उससे भी परे और

भी छतीस युगों की बात बतला दूँ। अनन्त समय व्यतीत हो गया है, किन्तु मैं ज्यों का त्यों हूँ।

हम तो उस समय भी थे, अब भी हैं, फिर आगे भी रहेंगे! हे उधरण! कब की बात बतलाऊं? पुन: उधरण ने पूछा हे देव! मैं देखता हूँ कि आपके हाथ में माला है, आप जप कर रहे हैं, यदि जप करते हैं तो यह बतलाइये कि किस देवता का? जाम्भोजी ने शब्दोच्चारण किया-

शब्द- 5

ओ३म् अइयालो अपरम्पर बाणी, म्हें जपा न जाया जीऊं।
नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूं।
जती तपी तकपीर ऋषेश्वर, कांय जपीजे तेपण जाया जीऊं।
खेचर भूचर खेत्रपाला परगट गुप्ता, कांय जपीजे तेपण जाया जीऊं।
वासग शेष गुणिंदा फुणिंदा, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।
चौषट जोगनी बावन बीरूं, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।
जपां तो एक निरालंभ शिंभु, जिंही के माई न पीऊं।
न तन रक्तूं, न तन धातूं, न तन ताव न सीऊं।
सर्व सिरजत मरत बिवरजत, तास न मूलज लेणा कीयौ।
अइयालो अपरं।र बाणी, म्हें जपा न जाया जीऊं।

हे उधरण! मैं जप करता हूँ। किन्तु तुम्हारी तरह से नही। आप लोग तो जन्मे हुए जीवों का जप करते हो। मेरी परंपरा तुम्हारे से सर्वथा ही भिन्न है। नौ अवतार मच्छ, कच्छ, वाराह,नृसिंह, वामन,परशुराम, राम-लक्ष्मण,कृष्ण,बुद्ध आदि। मेरे ही रुप हैं। मैं भी उन्हीं का रूप हूँ।

हे उधरण! मैं तो इनका ही जप करता हूँ, क्योंकि मैं स्वयं ही विष्णु स्वरूप हूँ। ये अवतार भी विष्णु ही हैं। इसीलिए मैं तो स्वयं का ही जप करता हूँ। जप का अर्थ है, स्वयं को पहचानना। जब तक स्वयं को नहीं पहचानोगे, तो कुछ भी हासिल नहीं होगा। बाहर देखने से स्वयं का भला कुछ भी नहीं होगा।

हे उधरण! आप संसार के लोग तो जन्मे हुए जीवों का जप करते हैं। जैसे कोई जती,तपी,तकपीर,ऋषि इत्यादि स्वयं जन्मे हुए, असमर्थ, शक्तिहीन, दूसरों को क्या शक्ति देंगे? कुछ अन्य भी देव कहे जाते हैं। जैसे-खेचर-खेत्रपाल, कुछ प्रकट कुछ गुप्त, वासुकी, शेष, गुणिंदा फुणिंदा फण वाले। चौसट प्रकार की योगनियाँ, बावन प्रकार के भेरूं, इत्यादि ये सभी जन्मे हुए जीव हैं, जो मरकर भूत-प्रेत योनियों में चले गये हैं। ये स्वयं दु:खी हैं। अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। इनको क्यों जपते हो?

हे उधरण! यदि तू मेरे बारे में पूछता है तो मैं तुम्हें बतलाता हूँ। हम तो एक निरालंभ, निराकार, स्वयंभू का ही जप करते हैं, जिसके न तो माता-पिता हैं। जो स्वयं ही है। अजन्मा है। न ही उसके मानव पंचभौतिक शरीर ही है, उसको न तो सर्दी-गर्मी ही लगती है और न भूख प्यास ही लगती। जो सभी का सृजनहार है, मृत्यु-बुढ़ापे से रहित है। उस मूल को खोजो। वही सभी का मूल है। हे लोगो! हमारी परम्परा तो तुम्हारे से सर्वथा भिन्न है।

पुन: उधरण ने पूछा- हे गुरुदेव! हमने सुना है कि राम,कृष्ण,शिव,विष्णु आदि भिन्न भिन्न देवता ईश्वर हैं? इनके बारे में आप हमें समझाइये? उक्त प्रश्न सुनकर गुरुदेव ने शब्दोच्चारण किया-

शब्द- 6

ओ३म् भवन भवन म्हे एका ज्योति, चुन चुन लीया रतना मोती।
म्हे खोजी थापण होजी नाही, खोज लहां धुर खोजूं।
अल्लाह अलेख अडाल अजोनी स्वयंभू, जिही का किसा विनाणी।
म्हे सरै न बैठा सीख न पूछी, निरत सुरत सब जाणी।
उतपति हिन्दू जरणा जोगी, किरिया ब्राह्मण।
दिल दरवेशा, उनमन मुल्ला, अकल मिसलमानी।

हे उधरण! सम्पूर्ण सृष्टि में परमात्मा की एक ही ज्योति है। सूर्य,चन्द्र,तारे,अग्नि आदि जितने भी प्रकाशित होते हैं, वे सभी एक ही ज्योति के विभिन्न रूप हैं। सूर्य एक है, प्रतिबिम्ब अनेक होते हैं। हमने तो परमात्मा की विभूति को चुना लिया है। अग्नि सर्वत्र व्यापक होते हुए भी लकड़ी में विशेष रूप से प्रकट होती है। उस प्रकार से हमने उस ज्योति को प्रकट रूप से अवतारों में देखा है। उसी में ही हम रमण करते हैं। हम तो यहाँ पर खोज करने के लिए आये हैं। वैसे ही व्यर्थ में हमारा आना नहीं हुआ है। हम तो उन प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीवों की खोज करेंगे। वे लोग यहीं इस देश में जन्म लेकर आये हैं। हम उनकी जात पहचानते हैं। हमें उनकी खोज करने में कुछ भी अड़चन नहीं है। उनके शरीर तो वे नहीं रहे किन्तु उनकी जीवात्मा वही ज्यों की त्यों अलाह अलेख मूल रूप में विद्यमान है। वे किसी भी योनि में जन्म लें किन्तु उनकी जाति-स्वभाव ज्यों की त्यों है। हम भी तो स्वयं अलाह अलेख अडाल अयोनी स्वयंभू हैं। हमारा तथा हमारी ही जाति वाले जीवों का विनाश कैसा? भले ही वह चाहे कितने जन्म धारण करलें, किन्तु मैं उनको पहचानता हूँ।

मैंने किसी भी पाठशाला में बैठकर शिक्षा ग्रहण नहीं की, किन्तु मैं जानता सभी कुछ हूँ। मेरे जानने का कारण भी आप लोग सुनलो-बाह्य रमण करने वाली वृत्ति को मैंने हटा करके आत्मस्थ करके सभी कुछ जान लिया है। मैं ही अकेला क्यों? आप भी जान सकते हैं। यदि मेरे कहने अनुसार चलो तो।

उत्पति से तो सभी हिन्दू-आर्यश्रेष्ठ हैं। किन्तु बाह्य जगत की हवा संस्कार से दूषित हो जाता है। फिर अपने को भिन्न-भिन्न कहता है। जिसमें जरणा, शीलता है, वही योगी है तथा जिसमें शुद्ध क्रिया आचार विचार है, वही पवित्र ब्राह्मण है। जिसमें दिल है, वही दरवेश है। शुद्ध पवित्र ह्दय वाला, जो दूसरों के दुःख से पिघलने वाला ही दरवेश है। उनमुन अर्थात् जिसने अपने मन को संसार से हटाकर परमात्मा में लगा दिया है, वही मुल्ला है। और अकल वाला ही मुसलमान है। मुहमद ने अकलहीनों को अकल प्रदान की थी।

राव जोधा को बैरीसाल नगाड़ा देना

वील्होजी ने पूछा-हे गुरुदेव! जोधपुर के राजकुमार उधरण तो शब्द श्रवण करने का अधिकारी मालूम पड़ता है तभी तो उन्हें बहुत ही गम्भीर अर्थयुक्त शब्द सुनाए। उधरण ने वापिस जोधपुर लौटकर नरेश राव जोधा को भी ये बातें-घटना सुनाई होगी। क्या? जोधा भी कभी दर्शनार्थ या सिद्धि परिचय जानने हेतु श्री देवजी के पास नहीं आया?

नाथोजी बोले– हे वील्हा! यह कैसे हो सकता है कि राव जोधा यह सभी कुछ जानने के बाद भी न आये? इससे पूर्व भी जोधा अपने बेटे दूदा को राज्य प्राप्ति का वरदान सुन चुका था। दूसरी बार अपने भतीजे उधरण के द्वारा जाम्भोजी की महिमा जान चुका था। जोधा स्वयं भी संसार के नित्यप्रति के झगड़ों से दु:खी था। ऐसी अवस्था होने पर भला कौन ऐसा अभागी होगा, जो जाम्भोजी के पास नहीं आयेगा?

जम्भेश्वरजी वन में गऊवें चराते थे। वि.सं. 1526 के लगभग किसी समय जोधा वन में आकर जाम्भोजी से भेंट की थी, अपने दु:खों को सुनाते हुए कहने लगा– हे देव! मैं आपके बारे में बहुत कुछ सुन चुका हूँ। आपने मेरे ही परिवार के भतीजे एवं पुत्र को तो कृतकृत्य कर दिया। मैं भी दु:खियारा आपके पास आया हूँ।

आप से शक्ति की भीख माँगता हूँ। क्योंकि मैंने देख लिया है कि आप जय अम्बेश्वर हो, अम्बा शक्ति या ईश्वर विष्णु-शिव हो। आप मुझे अपनी शक्ति लक्ष्मी प्रदान कीजिये, जिससे मैं राज्य की व्यवस्था ठीक से कर सकूँ। बिना लक्ष्मी के तो कुछ भी विकास नहीं कर सकता तथा शक्ति के विना न तो मैं शत्रुओं से लड़ सकता और न ही प्रजा का पालन कर सकता। चोर लुटेरों आदि अपराधी जनों को शक्ति से ही दबाया जा सकता है प्रजा की रक्षा मैं कर सकूँ, न्याय का राज्य करूँ, प्रजा सुखी होवे, ऐसा वरदान दीजिये।

जम्भेश्वर जी बोले–हे जोधा! इस समय हमारे पास यह बेरीसाल नगाड़ा रखा है। हमारे ग्वाल-बाल इसी नगाड़े को बजाकर गोचारण करते हैं। सभी ग्वाल-बाल इसी नगाड़े की ध्वनि सुनकर खेलने के लिए एकत्रित हो जाते हैं। ये लोग नगाड़ा बजाकर ही खेल खेलते हैं। गऊ आदि पशुधन यहाँ चराते हैं। यहाँ पर वन्य हिंसक जीवों का भी भय बना रहता है।

जब ये लोग नगाड़ा बजाते हैं तो वन्य हिंसक जीव भाग जाते हैं या कहीं जाकर छिप जाते हैं या गहरी नींद में सो जाते हैं। हमारे पशुओं पर हमला नहीं करते। इस अलौकिक दिव्य नगाड़े को जोधा तुम ले जाओ।

न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करो। जब तुम्हारे पर कोई अन्य राजा या शत्रु चढ़ाई करके तुम से युद्ध करने के लिए आ जाये तो तुम यह नगाड़ा बजाकर युद्ध करने के लिए सेना सहित चढ़ाई कर देना। उस समय तुम्हारे नगाड़े की आवाज सुनकर तुम्हारा शत्रु उत्साह हीन हो जायेगा। या तो हिंसक जीवों की भांति भग जायेगा या फिर तुम्हारे से युद्ध भी करे तो भी जीत तुम्हारी होगी। राज्य लक्ष्मी की उतरोत्तर वृद्धि ही होगी। तुम्हारे यहाँ खुशहाली बनी रहेगी। ऐसा कहते हुए स्वयं जाम्भोजी ने जोधा को नगाड़ा प्रदान किया। इसका नाम भी बैरी साल ही रखा गया। यथा नाम तथा गुणों से सम्पन्न भी किया गया।

जोधा जाम्भोजी द्वारा प्रदत्त नगाड़ा लेकर वापिस जोधपुर पहुँचा और अपने राज्य के विकास में लग गया। अनेक लड़ाइयों को जोधा ने अपने बाहुबल एवं जाम्भोजी के आशीर्वाद से जीता।

वील्हाजी उवाच:–हे गुरुदेव! मैंने सुना है कि यह बेरीसाल नगाड़ा वर्तमान में बीकानेर के गढ़ में सुरक्षित रखा हुआ है। वहीं पर उस नगाड़े की पूजा होती है। यह जोधपुर से बीकानेर कैसे आ गया?

नाथोजी उवाच:–हे शिष्य! इसका भी कारण अवश्य है। वि.सं. 1544 में राव जोधा अपने पुत्र बीका के पास बीकानेर आया था। अपने पुत्र द्वारा बनाया हुआ नया किला, राज-पाट को देखकर जोधा अति प्रसन्न हुआ था।

अपने बेड़े बेटे जोधा ने कहा–पहली बात तो यह है कि तुम अपने भाइयों में सभी से बड़े हो, और तुमने अपना अलग राज्य भी जम्भेश्वर की कृपा से बसा लिया है। अपने कुल परिवार के इष्टदेवता तो ये सम्भराथल वासी जम्भेश्वरजी ही है। उनको कभी भूलना मत। दूसरी बात यह है कि अपने भाइयों से जोधपुर राज्य से भाग माँगना मत। तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

यह जोधपुर भी तुम्हारी पैतृक संपत्ति अवश्य ही है। उसमें तुम्हारा हक भी है। किन्तु अपने भाइयों के लिए छोड़ देना। तीसरी बात यह है कि लाडनूं का परगना जो इस समय तुम्हारे पास है, वह भी जोधपुर का ही है। इसे वापिस जोधपुर को ही लौटा दे। ये तीन मेरी शर्ते है, इनको तुम अपने पिता के सामने स्वीकार करो।

बीका बोला- हे पिताश्री! ये तीनों शर्त्ते मुझे स्वीकार हैं, किन्तु एक अर्ज मेरी भी सुन लो। सर्वप्रथम जाम्भोजी द्वारा दिया हुआ बेरीसाल नगाड़ा मुझे प्रदान कीजिये। क्योंकि आपने तो इस नगाड़े के प्रभाव से अपने राज्य का विस्तार किया है, अब मैं भी करना चाहता हूँ। दूसरा आप मुझे स्वतंत्र राज्य के राजा की मान्यता प्रदान करे। तीसरा आपके राज्य के जो पूजनीय छत्र, राजमुकुट, चंवर, तख्त, आसन आदि मुझे प्रदान करें। यदि आप मुझे ये वस्तुएं प्रदान करेंगे, तो मैं आपकी आज्ञानुसार आपके वचन निभाऊँगा।

जोधा ने ये तीनों शर्त्तें स्वीकार की और वापिस जोधपुर को प्रस्थान किया। समय पर ये तीनों चीजें जोधा बीकानेर नहीं भेज सका, क्योंकि जोधा की आकस्मिक मृत्यु हो गयी थी। कालान्तर में बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई करके ये वस्तुएँ हासिल की थी। जिनमें बेरीसाल नगाड़ा भी एक विशेष था। बीका ने अपने राज्य की पूजनीय धरोहर मानकर अपने किले में सुरक्षित रखा। इस प्रकार से यह नगाड़ा बीकानेर राज्य की सम्पत्ति बना।

वील्होजी उवाच:- हे गुरुदेव !आपने अभी कहा था कि बेरीसाल नगाड़ा जो ग्वाल-बालों को सदा निर्भय बनाता था, वह तो जाम्भोजी ने जोधा को प्रदान कर दिया था। तब ग्वाल-बालों ने फिर कैसे निर्भय रहने का संबल प्राप्त किया? यदि अन्य कोई उपाय था तो अवश्य ही बतलाइये। जिससे हमे भगवान् के नये-नये चरित्र सुनने को मिल सकें।

नाथोजी उवाच:- हे शिष्य! मैं तुझे सुनाता हूँ। विस्तारपूर्वक श्रवण करो। एक समय जब ग्वाल-बाल गऊवें आदि पशुधन चराते हुए वन में भ्रमण कर रहे थे,उसी समय ही वन में एक सिंह दिखाई दिया। उसे देखकर बालक भयभीत होकर दौड़कर जम्भेश्वरजी के पास ही चले आये और कहने लगे- आप की कृपा से हम अब तक तो सुरक्षित थे, किन्तु आज एक भयंकर सिंह हमारे वन में प्रवेश कर गया है। अभी अभी हमने देखा है। जिसे देखकर हम डर गये हैं। ऐसा न हो कि हमारे प्रिय पशुधन को ही न खा जाये या किसी बालक को ही अपना ग्रास न बना डाले?

जब तक हमारे पास वह बैरीसाल नगाड़ा था, तब तक तो हम लोग बजाते थे, तो वह सिंह भाग जाता था। हमारे ग्वाल बालक एकत्रित होकर भगा देते थे। उसकी तो आवाज में ही ऐसा जादू था। किन्तु हे जय अम्बेश्वर! आपने तो वह दिव्य नगाड़ा जोधा को दे दिया। हमारी कुछ भी परवाह नहीं की। आप भी तो हम से ज्यादा राजा को ही महत्व देते हैं।

जाम्भोजी बोले-हे बालको! आप भयभीत न हों। जब भी वह सिंह वन में प्रवेश करे तब आप एकत्रित होकर जोर से सम्मिलित स्वर में उस सिंह को सुना करके कहना-जाम्भोजी की आण है, यदि फिर कभी हमारे इस वन में आया तो। फिर कभी वह आपके वन में नहीं आयेगा। न ही वह किसी पशु आदि की हत्या ही करेगा।

ग्वाल-बालों ने मिलकर ऐसा ही किया। तो फिर कभी उस सिंह को वन में नहीं देखा। गुरुदेव की बाँधी हुई आण (मर्यादा) हिँसक प्रकृति के सिँह ने कभी नहीं तोड़ी। हम तो मानव हैं। कैसे उनके वचन (मर्यादा) को भूल सकते हैं?

हे वील्हा! मुझे तो उनकी एक-एक बात याद है। मैं तुझे जो भी बतला रहा हूँ, वह अपने आँखों देखी, कानों सुनी हुई बातें बतला रहा हूँ। मुझे स्वयं कहने में आनन्द की प्राप्ति हो रही है। तुम्हे भी अवश्य ही होती होगी।

खीचियासर गाँव में मीठे जल का कुआँ बतलाना

जांम्भोजी पीपासर एवं सम्भराथल के बीच में तीन कोश के जंगल में ग्वाल-बालों के साथ गऊवें चराया करते थे। उसी समय ही गाँव खीचियासर, जो इसी जंगल का ही एक भाग है, उस गाँव में गर्मी के मौसम में कूएँ का जल सूख गया था। गाँव के लोग पीपासर से जल लाया करते थे। जैसा, जिसके पास जल लाने का साधन होता वैसा ही कोई ऊँट, कोई बैलगाड़ी, या कोई सिर पर घड़ा लेकर जल लाते थे। जल की समस्या गाँव वालों के लिए एक विपत्ति ही थी।

एक दिन गाँव के ठाकुर ने अपने सेवक-सेविकाओं को आदेश दिया कि पीपासर के कूएँ से जल लाया जावे। उनके साथ में गाँव के अन्य गरीब परिवार के लोग भी पीपासर कूएँ पर पानी लेने गये थे। वहाँ पर बहुत सारे लोग जल लेने के लिए एकत्रित हो गये। पीपासर के लोगों ने सभी के घड़े भरने की असमर्थता जताई क्योंकि बड़ा ही कठिन कार्य था कूएँ से जल सिंचाई करके अपने गाँव को पानी पिलाना तथा पड़ौसी के गाँव को भी।

फिर भी अपने गाँव में मेहमान आये हैं। इन्हें अपने प्यासे रहकर भी पानी पिलायेंगे। इनके घड़े जल से परिपूर्ण करेंगे। कुछ लोग तो अपने प्रभाव से जल भरने में समर्थ हो गये। कुछ बेचारे गरीब महिला-पुरुष वैसे ही खाली रह गये। गाँव वालों ने उनको मना कर दिया। अपनी असमर्थता जता दी। वे बेचारे क्या करते? पीछे अवशिष्ट मिट्टी-गारा मिला हुआ गंदा जल अपने घड़ों में भर लिया और चल पड़े। पीपासर से चलकर अपने गाँव खीचियासर पहुँचे। ठाकुर ने पूछा- शुद्ध जल लाये हो। वे कहने लगे- ठाकुर साहब! हमें कौन शुद्ध जल भरने देगा? पीछे अवशिष्ट कीचड़ था, वही भरकर ले आये हैं। ऐसा कहते हुए घड़े को नीचे उतारकर ठाकुर को दिखलाया। ठाकुर ने देखा और कहने लगे- यह तो शुद्ध पवित्र जल है। तुम लोग कैसे कह सकते हो कि इन घड़ों में कीचड़ है।

वे कहने लगे- हम तो कीचड़ ही लाये थे किन्तु न जाने यह शुद्ध जल कैसे हो गया? हे ठाकुर साहब! जब हम लोग पीपासर से जल लेकर आ रहे थे, तो हमारे सामने लोहटजी का पुत्र जय अम्बेश्वर मिल गया था। हमने तो सुना था कि वह गूंगा है। किन्तु हम से उन्होंने पूछा था कि शुद्ध जल लाये हो? हमने कहा- राजकुमार! नहीं, आपके गाँव वालों ने हमें शुद्ध जल नहीं दिया। हमारी इस बात को सुनकर उन्होंने एक सरकण्डे का तीर हमारे घड़ों से छुवाया अवश्य था और कहा था कि हमारे गाँव की अपकीर्ति न करो। जाओ, तुम्हारा यह जल शुद्ध हो जायेगा। हम लोगों ने सहसा उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। किन्तु अब हमें पूर्ण विश्वास हो गया है कि उनकी वाणी में अवश्य ही कुछ जादू है, या उनके सरकंडे के तीर में होगा।

ठाकुर ने पूछा- क्या यह लोहट का पुत्र यहीं अपने ही जंगल में गऊएँ चराता है? एक पुरुष ने कहा- मैं अभी देखकर आया हूँ। आज तो हमारे गाँव के पास ही इधर पश्चिम की तरफ टीले पर जहाँ नीम के वृक्ष उगे हुए हैं, वहीं पर बैठे हुए हैं।

ठाकुर अपने गाँव से चला–नींबड़ी टीबे पर जाकर जम्भेश्वरजी के दर्शन करते हुए चरणों में गिर पड़ा। जाम्भोजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा–उठ जाओ ठाकुर साहब! आज इधर आना कैसे हुआ?

ठाकुर बोला–हे राजकुमार! प्यास मर रहे हैं। जल बिना जीवन धारण करना कठिन है। लो अभी जल पिला देता हूँ। नहीं महाराज! अभी–अभी तो घर से जल पीकर आया हूँ। किन्तु गाँव के लोग प्यासे हैं। हमारे गाँव में जल नहीं है। हम सभी को जल पिलाओ। कहाँ जल मिलेगा, हमारी प्यास मिटेगी? स्थायी समाधान चाहते हैं।

जाम्भोजी ने वही सरकंडे का तीर दिखाते हुए फेंका और कहा–यह तीर जहाँ पर भी गिरेगा, वहीं पर ही कुआँ खोद लेना, अथाह जल मिलेगा। ठाकुर ने जाकर तीर वाले स्थान को कुएँ के लिए चुन लिया और सभी ग्रामीणों ने मिलकर कूआँ खोदा उसमें अपार जल संचय की प्राप्ति हुई।

भगवान् तो अन्तर्यामी है। उन्हें तो सभी वस्तुओं का ज्ञान है। उनसे तो कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। अपनी सर्वव्यापकता प्रगट करते हुए उन लोगों के लिए जीवन का आधार जल है, उस जल के स्रोत को पता लगवाया एवं उन्हें सद्मार्ग का अनुयायी बनाया।

भुवा ताँतू को शब्दोपदेश

लोहटजी की छोटी बहन, जो ननेऊ गाँव में विवाहित थी। एक दिन अपने भतीजे को देखने हेतु पीपासर चली आयी। जाम्भोजी उस समय गायें चराते थे। जब जाम्भोजी पलने में थे, तब पहली बार देखा था अब तो गायें चराते हुए देखना चाहती थी। लोहट–हांसा ने तांतू का स्वागत किया। बहुत दिनों के बाद बहन अपने भाई–भाभी से मिलने के लिए आयी थी। मन में बड़ा उत्साह था। अब मेरा भतीजा कुल का दीपक अपने पिता के कार्य में हाथ बँटाता है। ऐसा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। सांयकाल गायें वन से चरकर लौट रही थी। आकाश गऊवों के खुरों से उठी हुई धूल से आच्छादित था। घर पर आने की सूचना धूल से आच्छादित आकाश दे रहा था। छोटे–बड़े टोकरे टोकरियों की गम्भीर ध्वनि बजती हुई सुनाई देती थी। ऐसा लगता था कि मानो मंदिर में सायंकालीन भगवान् विष्णु की पूजा हो रही हो। सप्त स्वरों की ध्वनि गुंजायमान हो रही थी। भगवान् श्री की आरती उतारी जा रही थी। ऐसे समय में घर की महिलाएँ अपने–अपने पूजा मंदिर में दीपक जला रही थी। संध्या समय में बड़े–बूढ़े हाथ–पाँव धोकर आचमन लेकर संध्या करने बैठ गये थे। ऐसी पवित्र बेला तो भगवान् के निमित्त कार्य करने हेतु होती है।

उसी बेला में जम्भेश्वरजी गऊवों के पीछे–पीछे आज पीपासर नगरी में अपनी बुआ तांतू से मिलने आ रहे हैं। बहुत दिनों के बाद भुवाजी आयी हैं। उनसे भेंट होगी। प्रसन्नता होगी। उस प्रसन्नता से किसी को भी वंचित नहीं रखना चाहते थे। भुवाजी को देखूँगा। केवल इस शरीर से ही नहीं। पूर्व जन्म से भी। उनकी आदत, विचार से पूर्व जन्म का निर्धारण करूँगा। यह जीव तो प्रह्लाद पंथी ही है। फिर इसे भी तो वापिस अपने घर ले जाना होगा। अब समय आ गया है। इन जीवों को चेताना चाहिये।

अपने–अपने घरों में बछड़े अपनी–अपनी माँ की प्रतीक्षा में रम्भा रहे थे। उन्हें भी तो भूख लगी है। न जाने कब दूध पीने को मिलेगा? गृहिणियाँ भी अपने–अपने बेटे ग्वाल बालों के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। सुबह गये थे। दिनभर वन में भटकते रहे। इन बालकों को भूख लग गयी होगी। हालांकि दुपहरा तो साथ में दे दिया था। किन्तु बालकों को भूख बहुत ही जल्दी लग जाती है। सभी ने दूध, दही, मक्खन आदि का सुमधुर सात्विक भोजन बनाकर के तैयार किया था। वे आने की प्रतीक्षा में थी।

ग्वाल बालों सहित जाम्भोजी पीपासर में आ गये। अपने माता-पिता, वृद्धजनों को सादर प्रणाम किया। तांतू भुवा ने विशेष रूप से मिलन किया। प्रेमाश्रु की धारा बह चली। एकमात्र भाई का बेटा। वह भी वृद्धावस्था में किसी योगी महाराज के आशीर्वाद से प्राप्त हुआ है। अब तो बड़ा हो गया है। विवाह के योग्य हो चुका है। इसका विवाह कर देना चाहिये।

लोहटजी बोले-बहन! मैं तो पहले ही कह रहा हूँ, तथा तुम्हारी भाभी भी कह रही है। घर में बहू देखना चाहती हैं। **माँय जाणे मेरे बहुटल आवै, बाजै बिरध बधाई।** माता तो स्वभाव से ही चाहती है कि मेरे घर पर बहू आवे। बधाइयाँ बाँटी जाय। महोत्सव किया जाय। किन्तु यह तुम्हारा भतीजा विवाह के लिए तैयार ही नहीं है। तुम भी समझाकर देख लो। यदि मान जाये तो अच्छा है। हम तो अभी करने को तैयार हैं।

बहन! हमारे शरीर का क्या पता? कब यह छूट जाये। नदी के किनारे वाले रूँख का क्या पता? कब बाढ़ आवे और कब गिर जाये? तांतू कहने लगी-हे जम्भेश्वर! हम सभी परिजन, मित्र, ग्रामवासी, यही चाहते हैं कि तुम विवाह कर लो। जिससे तुम्हारा वंश आगे बढ़ सके। अन्यथा तो यह वंश परम्परा ही लुप्त हो जायेगी। दुनिया से सदा के लिए नाम उठ जायेगा।

जम्भेश्वर बोले-हे भुवाजी! आपने सत्य ही कहा है कि हम सभी लोग चाहते हैं। किन्तु किस लिये? क्या वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए? मेरी बात सुनो! दो प्रकार से वंश परम्परा चलती है। एक नाद से, दूसरी बिन्द से। मैं तो पहली परम्परा आगे बढ़ाने के लिए यहाँ आया हूँ। दूसरी परम्परा तो पिता से आगे बढ़ती है। पहली परम्परा गुरु से आगे बढ़ती है।

न तो मेरा कोई पिता है, न ही कोई माता है, मैं तो स्वयंभू हूँ। जब मेरे ही कोई नहीं हैं, तो मैं किसका पिता बनूं? मैं यहाँ संसार में गुरु परम्परा जो नाद शब्द परम्परा है, उसे आगे बढ़ाने हेतु आया हूँ। हमारे गुरु परम्परा में आदि प्रह्लाद गुरु हैं। उन्होनें अपने शिष्यों को शब्द दिया था। वही शब्द त्रेतायुग में अपनी प्रजा को हरिश्चन्द्र ने दिया था। वही शब्द पुनः द्वापर में युधिष्ठिर ने दिया था। वही शब्द इस समय आपको देने के लिए मैं आया हूँ। तुम लोग वही प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीव हो। प्रह्लाद ही तुम्हारे गुरु पिता है। हम सभी उनकी संताने हैं। उन्हें स्मरण करो। पंथ को आगे बढ़ाओ। हे भुवाजी! मैं ठीक कह रहा हूँ। संसार में नामकीर्ति उसकी ही स्थिर रही है, जो नाद परम्परा से शब्द लेकर संसार में आगे बढ़ा है। अपना कल्याण किया है। ध्रुव,प्रह्लाद,हरिश्चन्द्र,युधिष्ठिर आदि। केवल माता-पिता के रज, वीर्य से उत्पन्न होने से कोई अमर नहीं हो जाता। इस संसार में कितने राजा हो गये जिन्होंने गुरु की शरण ग्रहण करके शब्द नहीं लिया, उनका संसार से नामोनिशान मिट गया।

कवण न हुवा, कवण न होयसी, कवण रह्या संसारूं।
अनेक अनेक चलंता दीठा, कलि का माणस कौन विचारूं।
जो चित होता, सो चित नाहीं, भल खोटा संसारूं।

तांतू बोली-हे भतीजे! मैं तो अब तक तुम्हें सामान्य बालक ही समझती थी। तुमने तो बहुत सी ऐसी बातें कह दी हैं। मैं तो इन बातों का कुछ भी अर्थ नहीं समझती हूँ। तुमने तो न जाने कब कब की बातें बतलाई हैं। तुम क्या इन प्रह्लाद आदि के बारे में जानते हो? तुमने क्या इनको कभी देखा है? इस मरुभूमि में बसने वाले जीवों के बारे में भी क्या तुम जानते हो? क्या यही प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीव हैं?

यदि ये सभी बातें जानते हो तो मैं कुछ भी नहीं कह सकती। किन्तु मैं तो स्वयं अपने आप के बारे में भी नहीं जानती हूँ कि मैं कौन हूँ? ये दूसरे लोग कौन है? इस जन्म की सभी बातें तो मुझे स्मरण ही नहीं है।

तो पूर्व जन्म की बातें स्मरण कैसे रहेगी ? क्या ? तुम बता सकते हो कि मेरा यह जन्म तथा पूर्व जन्म क्या था ? मैं कौन थी ? यहाँ पर ही मेरा जन्म क्यों हुआ ?

मेरी संतान एक भी नहीं बची है। वे क्यों मर गयी हैं ? मुझे सुख-दुःख के झूले में बार-बार क्यों झूलना पड़ा ? प्रथम संतान की प्राप्ति, फिर समाप्ति। मेरा क्या पाप था, जिससे दुःख हुआ ? और मेरा पुण्य भी क्या था, जिसे मुझे कुछ ही क्षणों में सुख भी हुआ था। मैं अपने बारे में क्या बतलाऊं बेटा ? मेरे से बढ़कर दुखिया इस संसार में कोई नहीं है।,

जाम्भोजी बोले-हे बुआजी ! मैं तुम्हें पूर्वजन्म की बात बतलाता हूँ। सुनो ! इस जन्म से पूर्व में तू नाहरी (भेड़िया) थी। अनेक जीवों को मारकर खाया करती थी। उसमें तुम्हारा क्या दोष था ? वह तो तुम्हारा भोजन ही था। भोजन करके संतोष करना चाहिये। व्यर्थ में जीवों की हत्या नहीं करनी चाहिये। किन्तु तुम्हारे में कभी संतोष नहीं था। व्यर्थ में जीवों को मारना तुम्हारी आदत बन गयी थी। जब देखा, तभी निरपराध जीवों को मार दिया करती थी। कभी तुमने दया नहीं दिखाई।

एक समय की बात है कि एक गाय वन में अकेली रह गयी, क्योंकि वह शीघ्र बच्चा देने वाली थी। वन में ही ब्याह गयी। उसके पास अभी-अभी जन्मा छोटा बच्चा था या वह अकेली गाय ही थी और उसका रक्षक कोई नहीं था। उसी समय ही तू बहुत खूखार हो रही थी। जिसे भी देखा, उसे मारना तेरा धर्म था। किन्तु उस दिन तो नयी प्रसूता गाय एवं उसके बच्चे को देखेकर, तेरे में भी मातृभाव उमड़ आया। वह भी एक बच्चे की माता थी। उसे उस बच्चे से कितना दुलार था ? उस समय यदि तू चाहती, तो उस बच्चे तथा उस बच्चे की माँ को मार सकती थी। उस समय उन्हें छुड़ाने वाला कोई नहीं था। यदि तुम चाहती तो केवल बच्चे को मार देती तो उसकी माँ तड़पती-रोती रह जाती। उसके ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता। यदि तू चाहती तो उस बच्चे की माँ को मार देती, तो वह बच्चा बिना माँ के तड़प-तड़प कर मर जाता। यह खेल तू कर सकती थी। किन्तु उस दिन तो न जाने तेरे अन्दर कहाँ से मातृभाव उमड़ पड़ा ? न तो तुमने माँ को ही मारा, न ही तुमने बच्चे को ही मारा, बल्कि अन्य वन्यजीवों से उनकी रक्षा ही की थी। वही शुभ घड़ी, शुभ दिन था, जिस पुण्य से तुम्हें मानव शरीर मिला है।

जो तुम्हें दुःख देखना पड़ा है। तुम्हारे पुत्र मर गये, नहीं बच पाये। माँ के सामने उसकी संतान मर जाये, इससे तो बढ़कर दुःख माँ को अन्य हो ही नहीं सकता। ये वेही जीव थे, जिसको तुमने दुःख दिया था। वे ही तुम्हें इस मनुष्य शरीर में दुःख देने के लिए अपना हिसाब-किताब पूरा करने के लिए आये थे और अपना ऋण चुकता करके चले गये हैं। मनुष्य अपने कर्मो का ही फल सुख-दुःख भोगता है। उसे इस बात का पता नहीं है, इसलिए दोष दूसरों को देता है।

अपने पूर्व जन्मों का वृतान्त सुनकर तांतू घबरा गयी। क्या ? मैं नाहरी थी ? ओह ? इतनी हिंसक ! कैसा विधि ये तेरा विधान है ? पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ कर्म कभी मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते। उन्हें तो भोगने से ही पीछा छूटता है। हे बुआ ! तुमने उस दिन मातृभाव जगाया था। उसी दिन से तुमने जीव हत्या करनी छोड़ दी। क्या ? माता भी किसी को मारती है ? कदापि नहीं। जो जीवों की हत्या करते हैं, उनका दिल कठोर पत्थर जैसा होता है। वह पर दुःख से पिघलने वाला, मक्खन जैसा हृदय नहीं होता।

हे बुआ ! तुमने अहिंसा भाव को धारण कर लिया। तू भी एक माता बन गयी। जीवों के पालन-पोषण का भाव तुम्हारे अन्दर जाग्रत हो गया। जीव हत्या करनी छोड़ दी। भोजन का त्याग करके तुमने उस दूषित शरीर को त्याग दिया। **अन्त काy। च मामैव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्** अन्त समय में मातृभाव से विभोर

होकर शरीर का परित्याग किया। जिससे इस जन्म में तुम्हें माता का ही शरीर मिला तथा उच्चकुल में जन्म हुआ है अब इसे सफल करने के लिए हे बुआजी प्रयत्नशील हो जाओ।

यह मानव शरीर तो संसार सागर से पार उतरने की नौका है। तांतू ने ये सभी बातें श्रवण करके, अपनी स्थिति के बारे में ज्ञान प्राप्त करके सचेत हुई और कहने लगी- **गयी सो गयी, अब राख रही को।** समय व्यतीत हो गया सो हो गया वह तो वापिस लौटकर आयेगा नहीं। हे जम्भेश्वर! अब मुझे क्या करना चाहिये ? यह बतलाओ। जिससे मेरा कल्याण हो जाये। बार-बार जन्म मृत्यु के चक्कर में न आना पड़े। मानव भूलकर जाता है, किन्तु उससे कैसे पार पहुँचा जा सके, ऐसी विधि बतलाओ जिससे थोड़े समय में ही अपना जीवन संभाल सकूं ? बुआ तांतू की प्रार्थना सुनकर जाम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया-

नवण संध्या

ओ३म् विसन विसन तूं भणिरे प्राणी, साधा भगतां ऊधरणो।
देवला सह दानूं दास्यब दानूं, मदसु दानों महमहणौं।
चेतो चित जाणी सारंग पांणी, नादे वेदे निज रहणौं।
आदि विसन वाराहां, दाढ़ा पति धर उधरणौं।
लिछमी नारायण निहचल, थाणौं थिर रहणौ।
निमोह निपाप निरंजण सांमी, भणि गोपालूं त्रिभुवन तारूं।
भणता गुणता पाप खयौ।
तिह तूठे मोख मुगति ज लाभै, अवचल राजूं खापर खानूं खै गुवणौं।
चीतै दीठे मिरघ तरासै, तीर पुल्ये गुण बाण हयौ।
तपति बुझे धारा हरि बूठै, यों विसन जपंता पाप खयौं।
ज्यों भूख को पालन अन्न अहारूं, विष को पालन गुरड़ दवारूं।
काहीं काहीं पंखरेवा सींचाण तरासै, विसन जपंता पाप विणासै।
विसनु ही मन विसनु भणियों, विसनु ही मन विसनुं रहीयौ।
इकवीस करोड़ वैकुण्ठ पहोंता, साचै सतगुरु को मंत्र कहियो।।

हे भुवा! नित्यप्रति संध्या वेला में इस मंत्र का उच्चारण कर। इस विष्णु मंत्र का जप करने से साधु भक्त संसार सागर से पार उतर गये। तू भी दुःखों से छूट जायेगी।

विष्णु परमात्मा हैं, जो देवों का भी देव है। सूर्य चन्द्र तारा आदि में जो तुम्हें ज्योति दिखाई देती है, वह विष्णु की ही है। देवता को तो परमात्मा अपनी शक्ति प्रदान करते हैं कि दानवों से उनकी अनीति से प्राप्त शक्ति का हरण करके उन्हें निस्तेज कर देते हैं। भगवान् विष्णु ही शारंग धनुष लेकर दुष्टों का विनाश करते हैं। वही विष्णु ही नाद वेद रूप में हैं।

सर्वप्रथम विष्णु ने ही तो वाराह रूप धारण करके धरती को अपनी दाढ़ों पर रखकर जल से डूबी हुई का उद्धार किया था, तथा हिरणाक्ष को मारा था। वेद ब्रह्माजी को दिया था। भगवान् विष्णु ही लक्ष्मी, ऐश्वर्य, धन-धान्य के पति हैं। वही नारायण नाम से जाने जाते हैं। भगवान् विष्णु का धाम वैकुण्ठ है। जो सदा ही स्थिर है। वहाँ किसी प्रकार से काल का चारा नहीं है।

वह भगवान् स्वयं निर्मोही होते हुए भी सभी जीवों पर अहैतुकी कृपा करते हैं। स्वयं भगवान् निष्पापी हैं, किन्तु जो पापी भी उनकी शरण में आ जाते हैं, उन्हें वे अपना लेते हैं। स्वयं तो भगवान् माया रहित हैं

किन्तु अपनी माया से ही सम्पूर्ण सृष्टि के रचयिता हैं। उस गोपालक भगवान् विष्णु का भजन करें। जो तीनों लोकों को तारने वाले हैं। उनका भजन करने से पापों का नाश हो जाता है।

जिनके प्रसन्न हो जाने से संसारिक भोग पदार्थ प्राप्त होते हैं तथा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति भी सहज में ही हो जाती है। अविचल (सदा स्थिर रहने वाले) राज्य की प्राप्ति उनकी भक्ति से ही संभव है। जिस प्रकार से चीत्ते को देखकर मृग भयभीत होकर भाग जाता है। बाघ को देखकर या उसकी दहाड़ सुनकर गऊ भाग जाती है, भयभीत हो जाती हैं। उसी प्रकार से विष्णु का भजन करने से पाप भाग जाते हैं।

जिस प्रकार से तीर पर चढ़ा हुआ बाण अपने लक्ष्य को जाकर बेध देता है। ठीक उसी प्रकार से विष्णु का जप भी अपने लक्ष्य (पापों) को बेध देता है, नष्ट कर देता है। जिस प्रकार से गर्मी की शांति वर्षा से होती है, ठीक उसी प्रकार से संसार के दु:खों की निवृत्ति भी विष्णु का जप करने से हो जाती है। जिस प्रकार से अन्न का भोजन करने से भूख की निवृत्ति होती है, विष की निवृत्ति गरुड़ से होती है। कुछ छोटे-छोटे पक्षी सीचांण (बाज) के देखकर भयभीत होकर भाग जाते हैं। उसी प्रकार से विष्णु का भजन करने से पापों का विनाश हो जाता है।

हे तांतू! विष्णु ही विष्णु मन तथा जबान से कहो और हर समय विष्णु में ही लवलीन रहो। उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, प्रत्येक क्षण में विष्णु को मत भूलो। उस विष्णु का जप करते हुए हे भुवा! इक्कीस करोड़ बैकुण्ठ पहुँच गये हैं।

पाँच करोड़ सतयुग में प्रह्लाद के साथ, सात करोड़ त्रेतायुग में राजा हरिश्चन्द्र के साथ तथा नव करोड़ द्वापरयुग में धर्मराज युधिष्ठिर के साथ। अब इस समय बारह करोड़ जो प्रह्लाद पंथी जीव, इसी मरुदेश में छिपे हुए हैं। उनको पार उतारने के लिए मैं यहाँ पर आया हूँ। उन्हीं जीवों में तुम भी एक जीव हो। हे बुआजी! मैं तुम्हारी जाति तथा उन सभी जीवों की जाति (स्वभाव) जानता हूँ।

तांतू ने उक्त शब्द सुना तथा कहने लगी- हे देव! आपने जो यह संध्या वेला का मंत्र बताया है, यह तो बड़ा है। मुझे तो इस आयु में यह याद होना कठिन है। कोई छोटा सा मंत्र बतला दे, ताकि मैं जप कर सकूँ।

जाम्भोजी ने शब्द बतलाया- हे तांतू! यदि तुमसे इतने बड़े मंत्र का जप नहीं होता तो मैं तुम्हें संक्षेप में सुनाता हूँ। केवल **विष्णु-विष्णु** इस महामंत्र का जप तूं किया कर। इसी से ही तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। यही गागर में सागर है।

लोहट-हांसा को अन्तिम उपदेश

वील्होजी ने पूछा-हे गुरुदेव! आपके श्रीमुख से गुरु जाम्भोजी द्वारा गायें चराने की कथा मैंने सुनी, कब तक गऊवें चराते रहे? लोहट हाँसा की आयु भी तब तक अन्त को प्राप्त हो गयी होगी। उन्होंने कब शरीर का परित्याग किया? तथा श्री जम्भेश्वरजी कब तक अपने कर्तव्य का निर्वाह करते रहे। उन्होंने गृहत्याग एवं संन्यास कब ग्रहण किया एवं किसको अपना गुरु बनाया? ये सभी बाते मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूँ, कृपया विस्तारपूर्वक बतलायें।

नाथोजी उवाच:-हे शिष्य! काल की गति बड़ी विचित्र है। यह तो किसी पर भी दयाभाव नहीं करता है। वह अन्तिम समय तो सभी के लिए आना निश्चित है। अन्य कार्यों का तो कुछ पता नहीं है। शायद हो, या

न भी हो, किन्तु काल का तो आना अवश्य ही है। लोहटजी एवं हांसा दोनों ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे। अथवर्वेद में ऋषियों ने सूर्यदेव से प्रार्थना की है कि-

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।
बुध्येम शरदः शतम्, रोहेम शरदः शतम्।
पूषेम शरदः शतम्, भवेम शरदः शतम्।
भूयेम शरदः शतम्, भूयसी शरदः शतात्।

लोहट हांसा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके थे। सौ वर्ष तक देख चुके थे। सौ वर्ष तक जीवन जी लिया था। सौ वर्ष तक बुद्धिमान बने रहे थे। अन्त समय तक बुद्धि सुचारू रूप से कार्य कर रही थी। सौ वर्ष तक ओजवान, तेजवान बने रहे थे। सौ वर्ष तक भोजनादिक आहार सुचारू रूप से उपभोग करते रहे थे। सौ वर्ष तक कीर्तिमान बने रहे थे। जीने की ताकत अस्तित्व सम्यक प्रकारेण सौ वर्ष तक उपस्थित था। जीवन की सम्पूर्ण लालसा पूरी हो चुकी थी। अब तो आगे के घर में जाने की तैयारी में थे।

स्वयं जाम्भोजी भी अपना कार्य करने में उद्यत थे। अब समय आ चुका था, जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। गोचारण कार्य पूर्ण हो चुका था। माता-पिता की सेवा का कार्य भी अब पूर्ण था। विवाह से पूर्व ही बेटा, माता-पिता की सेवा में संलग्न रहता है। विवाह के पश्चात् तो उसका सम्पूर्ण ध्यान-शक्ति अपने बच्चों के पालण-पोषण में ही व्यतीत हो जाती है। माता-पिता की तरफ देखने का अवसर कम ही मिलता है। यह तो सभी प्राकृतिक ही है। पानी तो सदा नीचे की ओर ही बहता है। ऊपर चढ़ाने के लिए ता प्रयत्न करना पड़ेगा।

एक दिन मृत्यु से पूर्व लोहट ने अपने बेटे को पास बुलाया और कहने लगे-हे बेटा! मैं तो अब इस संसार को छोड़कर जा रहा हूँ। मेरे वियोग में तुम्हारी माता भी अपना जीवन धारण नहीं कर सकेगी। वैसे ही, अब तो हमारे दोनों का समय आ ही गया है। यहाँ से प्रस्थान करना ही होगा। हमें किसी बात का भी भय नहीं है। इहलोक तो हमारा सुधर ही गया है। तो हम समझते हैं कि हमारा परलोक भी सुधरा हुआ है। फिर हमें किस बात की चिंता है? तुम्हारे जैसे योगी अवधूत स्वयं स्वयंभू ही हमारे पुत्र हो। पुत्र तो सभी नरकों (दु:खों) से त्राण दिला देता है। वही तो पुत्र नाम का अधिकारी होता है। ये सभी पुत्र के गुण तुम्हारे में विद्यमान हैं।

बेटा! हमने इस संसार में आकर कभी किसी को हानि नहीं पहुँचाई है। सदा ही परोपकार के कार्य में लगे रहे। जो भी धन संग्रह किया है, वह हमने नीति पूर्वक किया है। कभी भी अंहकार को पास में नहीं फ टकने दिया। जो कुछ है, वह सभी कुछ ईश्वर का ही है। हमारा कुछ भी नहीं है। इसलिये इस वियोग की अवस्था में हमें कुछ भी दु:ख नहीं है। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि तुम भी इस सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकोगे। यह प्रजा की सम्पत्ति है। इसे प्रजा के लिये ही खर्च करें, तो ही अच्छा होगा। हमने तो अपना हिसाब-किताब चूकत कर लिया है। इस समय तो हमें आगे का मार्ग दिख रहा है। हमारे जाने के पश्चात् तुम क्या करोगे? कैसे रहोगे? यह हम जानना चाहते हैं। हमने तो कुल परंपरा वृद्धि हेतु विवाह का प्रस्ताव किया था, किन्तु तुमने स्वीकार नहीं किया। न जाने क्या-क्या तर्क दिये थे? तुम्हारे विचारो के सामने हमें भी चुप होना पडा था ।

बेटा! एक योगी अवधूत के आशीर्वाद से तुम्हारा जन्म हुआ था। तुम कौन हो? क्या हो? हम लोग अब तक ठीक से समझ नहीं पाये हैं। क्योंकि हम तो पुत्र के मोह में मोहित ही थे। अब तक मृत्यु-जीवन के बीच में झूल रहे हैं, जब पूर्व की स्मृति आती है, तो तुम्हारी एक-एक लीला को स्मरण करके आनन्द विभोर हो

जाते हैं । ऐसी विचित्र लीला सामान्य बालक में कहाँ है ? मुझे ऐसा लगता हैकि तुम स्वयं कन्हैया ही हो, जो मेरे जैसे अभागी के यहाँ पुत्र बनना स्वीकार किया। इसमें भी कुछ अवश्य ही राज होगा।

हमारे देश की प्रजा बडी भोली-भाली सीधी-सादी है। इन्हें अब तक धर्म-कर्म का ज्ञान नहीं है। ये लोग अनेक प्रकार के व्यसनों में डूबे हुए हैं। धन तो खर्च करते हैं, किन्तु युक्ति बिना किया हुआ खर्च व्यर्थ में चला जाता है। जिस प्रकार से कालर (ऊसर) भूमि में बोया हुआ बीज। इन्हें कुछ ज्ञान, घ्यान, शुभ कर्म, युक्ति से जीने की कला सिखाते रहना।

हम ग्राम पति ठाकुर हैं। हमारा तो यह कर्तव्य बनता है। इन लोगों का और कोई सहारा भी नहीं है। मात्र ये लोग मेरी तरफ ही देखते हैं। मैं ही इनकी हर प्रकार की विपत्ति में सहायक था। अब ये लोग मेरे बिना बे सहारा न हो जाये। हर प्रकार से सुख-दु:ख में इनका सहयोगी बने रहना। यही मेरी अन्तिम इच्छा है, तथा उपदेश भी।

अब आगे मेरी जो भी गति होगी, वह तो भगवान् जाने। यदि ज्ञान की दृष्टि से देखता हूँ तो तुम भी भगवान् ही हो। अन्यथा ऐसे दिव्य चमत्कार कैसे हो सकते थे। ऐसी ही कुछ बातें कहते हुए लोहट जी मौन हो गये। श्री गुरु जम्भेश्वर जी बोले-हे पिता श्री ! पंच भौतिक शरीर तो एक दिन अवश्य ही जायेगा, चाहे राजा हो चाहे रंक।

अनेक अनेक चलंता दीठा,कलि का माणस कौन विचारूं ।
जो चित होता सो चित नाहीं,भल खोटा संसारूं ।
'' जबरारे तैं जग डांडिलों,देह न जीति जाणों '' ।

मैं भी पंच भौतिक शरीर में बंधा हुआ स्वयं ईश्वर हूँ। किन्तु मैं तो अपनी माया द्वारा स्वेच्छा से बंधा हुआ हूँ। किन्तु जीव तो परवश होकर बंध गया है। अपने कर्मानुसार कर्म फल, सुख-दु:ख भोगने हेतु यहाँ संसार में जन्म लेता है। जो जन्म लेगा, वह मरेगा भी अवश्य ही। मरेगा क्या ? केवल पंच भूत आकाश, वायु, तेज, जल और धरणी ये पाँचों ही शरीर की रचना में उपस्थित रहते हैं। ये ही मृत्यु समय अपने अपने तत्व में विलीन हो जाते हैं। वह जीव तो अजर-अमर (अविनाशी) है। न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है।

हे पिता श्री ! आपका जीवन निर्मल है। यह शरीर रूपी वस्त्र उतार दीजिये। यदि चाहो, तो नया वस्त्र नया शरीर धारण कर लीजिये। या जीव का ईश्वर से मिलान कर दीजिये। सदा-सदा के लिये जन्म, मरण, जरा, व्याधि, सुख, दु:ख आदि का क्लेश मिट जायेगा। जबसे मेरे ऊपर आप अपना वरद हस्त रखते आये हैं, तभी से आपके इस पुण्य पुंज हाथ से मैं भी कृतार्थ हो गया हूँ, इसलिये मैं कहता हूँ कि यह आपका अन्तिम जन्म ही है। आपके आने का जो उद्देश्य था, वह पूर्ण हो चुका है। इस बात को पिताजी आप नहीं जानते मैं जानता हूँ।

यह रहस्य की बारी है। मैं आपको बतलाता हूँ। आपका मेरा पूर्व जन्म का भी सम्बन्ध था और आगे चलकर भी आप अशरीरी हो जाओगे, तो भी बना रहेगा। हे पिताजी ! पूर्व जन्म में आप तो नन्दजी थे और माता हाँसा यशोदा थी। उस जन्म मैं कृष्ण था। आपके मन में एक टीस सदा ही बनी हुई थी कि कृष्ण ने जन्म हमारे यहाँ नहीं लिया, वसुदेव-देवकी के यहाँ लिया है।

यह दु:ख और भी बढ गया, जब मैने कंस को मार दिया। उग्रसेन को राज तिलक दे दिया, और मैं जब मथुरा में आये हुए आप नन्दजी के पास मिलने के लिये गया। मैं उन्हें मथुरा से विदाई देने के लिये गया था किन्तु स्वयं ही फंस गया, उस बंधन से अब तक नहीं निकल सका हूँ। जब मैने कहा-पिताजी ! आप वापिस

वृंदावन में लोट जाइये आपकी वहाँ पर प्रतिक्षा हो रही है, तब उन्होने कहा था कि हम तुम्हे छोडकर अकेले वापिस नहीं जायेंगे। तब मैंने आपसे कहा था कि आप चलो,मैं आऊँगा। अभी मुझे कुछ कार्य करने हैं। मैं आऊँगा, यही मेरा वचन आपने पकङ लिया। अन्त समय तक यही रटन लगाते रहे, मेरा कन्हैया आयेगा, किन्तु मैं नहीं जा सका।

नन्द-यशोदा संसार छोडकर चले गये। उनका ही यह दूसरा जन्म, पिता श्री आप हैं। पुत्र से मिलने की वासना आप इस जन्म में भी लेकर आये हैं। जीवन भर यही वासना आपके अन्दर बनी रही। उस वचन को पूरा करने के लिये मुझे यहाँ आना पङा, क्योंकि मैं आपकी वृद्धावस्था में ही आया था। ताकि आपके पुत्र की इच्छा पूर्ण कर दूँ, तथा आपको यहाँ से विदाई भी दे दूँ। पिता की इच्छा रहती है कि अन्त समय में मेरा पुत्र मेरे सामने रहे। उनके कन्धों पर बैठ कर मेरी शव यात्रा निकले। क्योंकि उसी कन्धे पर तो कभी पुत्र को बैठाया था। आज पिता भी उसी कंधे पर बैठकर चले। मैं यह इच्छा नन्दजी की पूरी नहीं कर सका था। इस बार पूरी करके ही अन्य कार्य में लगूँगा, जो मेरे लिए निश्चित है।

प्रेम पाश भी ऐसा ही बन्धन है। जो भगवान् को भी बेटा बनने के लिए भी बाध्य कर देता है। मैं इसलिए तुम्हारा बेटा बनकर आया और आपकी सेवा कर सका। पिता-पुत्र से जो भी अपेक्षा करता है, वह सम्पूर्ण तो पूरी नहीं हो पाती, किन्तु फिर भी मेरा आपकी सेवा करने के लिए पीपासर में रहना हुआ, अन्यथा तो मेरा यहाँ पर कुछ भी तो काम नहीं था। आपकी जो भी सम्पत्ति है वह मै आपके आदेशानुसार शुभ कार्य में ही खर्च करूँगा। इसलिये आप निश्चित रहे।

मैंने विवाह नहीं किया। आपके कुल की वृद्धि करने में मैं सफल नहीं हुआ। किन्तु मैं ऐसा धर्म पंथ चलाऊँगा जो सदा-सदा के लिये आपके कुल को अमर कर देगा। केवल विन्द से जो कुल परम्परा चलती है, वह स्थाई एवं यशस्वी नहीं हो पाती। न जाने कितने लोग इस कुल परम्परा में आये और चले गये ? किसी का भी इस समय नामोनिशान तक नहीं है। धर्म की परम्परा स्थाई होती है। और सम्पूर्ण कुल को तारने वाली होती है।

अब अन्त समय में सभी प्रकार की कामनाओं से मन को हटा कर के केवल एक आत्मा परमात्मा में ही स्थिर करो। ओम् विष्णु कहते हुए इस नश्वर शरीर का पिताजी त्याग कर दो। अन्त समय में जो भी भावना रहेगी, वही दूसरे जन्म का कारण बन जाएगी। यह समय बहुमूल्य है। इसे ऐसे ही व्यर्थ में बर्बाद न होने दें।

अपने बेटे की ज्ञान युक्त वार्ता श्रवण करके लोहट जी ने संवत1540 की चैत्र सुदी नवमी को इस पंच भौतिक शरीर का त्याग ओ३म् का उच्चारण करते हुए कर दिया। जैसा साँप कंचुकी को छोङ देता है,जैसे पुराना वस्त्र उतार करके नया वस्त्र धारण कर लेते हैं, पाँच भूतों में प्रधान भूत धरती है। इसलिये इस पार्थिव शरीर की अन्तिम क्रिया धरती में ही विलीन कर दी। ठीक पाँच माह बाद भादवे माह की पूर्णिमा को हाँसा देवी ने भी अपने शरीर का परित्याग कर दिया। जहाँ पर पति देव पहुँचे थे, वही उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए पत्नी हाँसा भी पहुँच गई।

जाम्भोजी ने अपने पिता के कथनानुसार ही गृह सम्पति का परित्याग कर दिया। अभाव ग्रस्तों को अनाज देना है। इसके लिये प्रतीक्षा करते हुए, स्थाथी रूप से सम्भराथल पर ही रहने लगे।

तीसरा अध्याय

जाम्भा गोरख गुरु अपारा

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव ! सम्भराथल पर विराजमान होकर जम्भेश्वरजी ने गुरु पदवी धारण कर ली और भगवीं टोपी-चोला पहन लिया। बिश्नोई पंथ की स्थापना श्रीदेव ने यहीं पर की थी। यह बात तो बहुत ही प्रसिद्ध है तथा मुझे ज्ञात भी है। किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि जाम्भोजी स्वयं समर्थ होते हुए भी अन्य किसी अवधूत योगी को गुरु धारण किया या नहीं ? यदि किसी को भी गुरु धारण नहीं किया तब गुरु धारण करने की परंपरा का लोप कैसे कर सकते हैं ? वे स्वयं राम-कृष्ण के साक्षात् अवतार थे। मर्यादा पुरुषोतम कैसे मर्यादा तोङ सकते हैं ? जब स्वयं ही गुरु धारण नहीं करेंगे, तो दूसरों को कैसे कह सकते है ? ''पहले क्रिया आप कमाइये,तो ओरां ने फरमाइये।''

यह तो निश्चित ही है कि जाम्भोजी ने भगवां वस्त्र धारण किया था। ''भगवीं टोपी सम्भराथल आयो'' उन्होंने स्वयं ही कहा है। हमारी परंपरा रही है कि गुरु मंत्र एवं भगवां वस्त्र किसी सद्गुरु से ही धारण किया जाता है ।

हे गुरु देव ! आपने यह नहीं बतलाया कि जाम्भोजी के गुरु कौन थे ? किससे वस्त्र और मंत्र लिया था। ऐसे महान् योगी स्वयंभू, जो जाम्भोजी के गुरु बनने की क्षमता रखते हैं, उनके बारे में जानना चाहता हूँ। किस गुरु की परंपरा एवं सिद्धान्त को जम्भेश्वर जी ने आदर दिया था।

नाथोजी उवाच -हे शिष्य ! आपने यह बात ठीक पूछी है। मैं अपनी समझ एवं ज्ञानानुसार तुझे बतलाने का प्रयास करूँगा। वैसे तो घायल की गति घायल ही जाने,जे कोई घायल होई। उनकी गति तो वही जान सकता है, हम जानने में असमर्थ हैं। यह गुप्त बात है शिष्य ! जम्भेश्वर जी की सम्भराथल पर ही किसी योगी से भेंट हुई। वह योगी अवधूत कौन था ? ठीक से उसके बारे में जानने में मैं समर्थ नहीं हो सका। किन्तु हमारा यह विश्वास है कि वे तो गोरख यति ही थे। हालांकि गोरख यति उनसे कई सौ वर्ष पूर्व हुए थे, फिर भी अवधूत योगी की माया बड़ी ही विचित्र होती है। उन सिद्ध पुरुषों के बारे में ठीक से कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे कौन थे, कब हुए ?

हे शिष्य ! मैं भी सदा उनके साथ रहने वाला इस वार्ता के बारे में पूछ नहीं सका तथा न ही किसी अन्य भक्त ने मेरे सामने यह प्रश्न पूछा। मैं तो सदा ही अपने गुरु देव से ही संतुष्ट था। कभी पीछे जाने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं हुई। पता नहीं, क्या कुछ जादू था जो दृष्टि एकाग्र हो जाती थी। इधर-उधर की बातें अन्दर से जाग्रत ही नहीं होती थी। मैं तुम्हें इस विषय में प्रत्यक्ष श्रवण की बात तो नहीं बता सकूँगा, किन्तु तुम्हें अपने अनुभव की बात अवश्य ही बता रहा हूँ। जाम्भोजी ने स्वयं ही कहा है-

मेरे गुरु जो दीन्ही शिक्षा,सर्व अलिंगण फेरी दीक्षा ।
जाण अजाण Cहीया जब-जब,सर्व अलिंगण मेटे तब-तब ।।

इससे यह पता चलता है कि जाम्भोजी ने अपने गुरु का स्पष्ट संकेत दिया है। वह गुरु उस गोरख से बढ कर कोई नहीं हो सकता था। अवश्य ही गोरख यति कई सौ वर्ष पूर्व हुए थे, किन्तु योगी लोग तो सदा ही योगी बने रहते हैं।

जाम्भोजी ने कहा है-**जुगां जुगां को जोगी आयो,बैठो आसन धारी।** मैं तो युगों युगो का योगी हूँ। यहाँ

सम्मराथल पर आसन लगाकर बैठा हूँ।'' **जोगी सो तो जुग जुग जोगी अब भी जोगी सोई।**'' योगी होगा तो युगों-युगों तक योगी ही रहेगा। अब भी योगी ही है।

तथा अन्यत्र भी गोरख यति के बारे में कहा है-

तउवा जाग जु गोरख जाग्या,निरह निरंजन निरह निरालंब ।

जुग छतीसो एके आसन बैठा बरत्या,अवर भी अवधू जागत जागूं ।।

इस संसार में अनेक योगी जाग्रत हुए हैं किन्तु जितने जाग्रत पुरुष गोरख हुए, उतना कोई नहीं हुआ। गोरख यति, जो स्वयं निरह निराकार निरंजन निराधार भगवान् विष्णु स्वयंभू हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उनके देखते ही देखते व्यतीत हो गई, किन्तु वो नहीं सोये। उनके सोने का अर्थ है कि सम्पूर्ण सृष्टि का ही प्रलय हो जाना। छत्तीस युगों से वे गोरख जाग रहे हैं। उनके अतिरिक्त तो कुछ ही अवधूत जाग्रत हुए हैं, किन्तु उनकी बराबरी कोई नहीं कर सका है ।

जितने भी संत मत के अवधूत हुए हैं, गोरख सभी के शिखर पर हैं। सभी ने ही गोरख के ही सिद्धान्त को ग्रहण किया है। ऐसे गोरख यति को गुरु रूप में जम्भेश्वर जी ने स्वीकार किया है, तो कोई आश्चर्य नहीं है। कई वर्षं पूर्व की बात तो सामान्य जनों की बात है, वे गोरख तो अजर-अमर, अविनाशी हैं। सभी ऋषि सूत्रकार इस बात का समर्थन कर रहे हैं। यथा-योग शास्त्र में स्पष्ट लिखा है-

अपरि निर्मित वर्तिनः परिनिर्मित वश वर्तिनश्चेति सर्व्रे संकल्पसिद्धाः अणिमाद्यैश्वर्योपपनाः कल्पायुषोः औपपादिक देहा।। अर्थात् योगी अपनी इच्छा से शरीर धारण कर लेते हैं। वे सत्य संकल्प होते हैं। जैसा चाहे वैसा रूप बना लेते हैं। माता-पिता के संयोग के बिना ही अपने संकल्प से जैसा चाहें, वैसा रूप धारण करने में समर्थ हैं, क्योंकि उनके पास अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ होती हैं। वे अपनी दिव्य देही धारण करके जन साधारण के साथ सम्पर्क - वार्तालाप कर सके, ऐसे ही थे गोरख योगी। वे अपनी सिद्धि से मृत्यु को भी जीत लेते हैं। सौ दो सौ वर्षों की तो बात ही क्या है ? ब्रह्माजी की आयु के बराबर जीवन जी सकते हैं।

वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद ने लिखा है - **सन्त्ययोनिजाः** अर्थात् अयोनिजा बिना गर्भ से उत्पन्न हुए भी योगी शरीर धारण करते हैं। कपिल देव ने सांख्य में लिखा है -**ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज सांकल्पिकं सांसिद्धकं चति न नियमाः** अर्थात् ऊष्मज,अण्डज,जरायुज,उद्भिज,सांकल्पिक,जो योगी अपने संकल्प मात्र से देह रच लेते हैं। और सांसिद्धिक ये छः प्रकार की सृष्टि होती है ।

इस प्रकार हमने देखा कि प्राचीन ऋषियों ने योगी के लिये, सिद्ध पुरुषों के लिये किसी भी प्रकार का प्राकृतिक बंधन नहीं बनाया है। इस दृष्टि से देखा जाये तो कई सौ वर्ष पूर्व में गोरख यति होते हुए भी सम्भराथल पर जाम्भोजी से भेंट करने हेतु आये थे। स्वयं जाम्भोजी ने गोरख जी को गुरु की पदवी से विभूषित किया है। जाम्भा गोरख गुरु अपारा ''गोरख को अपने तथा स्वयं से ही उच्च पद पर आसीन किया है।

अन्यत्र शब्दों में भी कहा है-**गोरख लो गोपाल लो** गोरख की गोपाल-कृष्ण से तुलना की है। आप चाहे गोरख को ग्रहण करो,अपनाओ अथवा गोपाल कृष्ण को अपनाओ। ये दोनों ही ग्रहण करने योग्य हैं।

जम्भेश्वरजी ने गोरख को आदिनाथ पद से विभूषित किया है। आधुनिक नाथ जो गोरख के नाम से पाखण्ड करते हैं , वे कतई स्वीकार्य नहीं हैं।'' **गोरख हटडी धोके , तेपण रह्या इवाणी।**'' गोरख के धूणे पर जाकर धोक लगााने से तुम गोरख नहीं बन जाओगे। कहा भी है - **गोरख दीठा सिद्ध न होयबा, पोह**

उतरिबा पारूं। गोरख के दर्शन मात्र से तुम सिद्ध नहीं हो सकते। गोरख द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलोगे, तो सिद्धि को प्राप्त हो सकते हो। अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकोगे।

कलश पूजा में स्वयं जम्भदेव जी कहतें हैं-**थरपना थापी बाले निरंजन गोरख जती** सर्वप्रथम कलश की स्थापना करने वाले तो सृष्टि के आदि में, सदा बाल्य अवस्था में रहने वाले गोरख यति ही थे। जो निरंजन, माया रहित, निराकार विष्णु ही थे। ऐसे विष्णु ही गोरख यति रूप में जाम्भोजी के गुरु थे। उन्होंने ही सम्भराथल पर जम्भेश्वर जी को भगवां वस्त्र प्रदान करके निवृत्ति मार्ग में चलने की प्रेरणा देते हुए लोक मंगल का कार्य करने का सिद्धान्त प्रदान किया था। जाम्भोजी ने उसी सिद्धान्त के अनुरूप ही आगे का कार्य निर्धारित किया था। गोरख एवं जम्भेश्वर की वाणी में बहुत ही साम्यता है। जैसे गोरख जी का एक पद-

बसती न सून्यं सून्यं न बसती , अगम अगोचर ऐसा ।
गगन शिखर महि बालक बोले , ताका नाम धरहुगे कैसा ।
हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यान , अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियान।
हंसै खेलै न करे मन भंग , ते निहचल सदा नाथ के संग ।
अहनिसि मन ले उनमन रहै , गम की छाडी अगम की कहै।
छाडेः आशा रहै निरास , कहै बह्मा हूं ताको दास ।
अरधै जाता उरधै धरै , काम दग्ध जे जोगी करै ।
तजे अलिंगन काटै माया , ताका विसनु पखालै पाया ।
मरो वै जोगी मरो , मरो मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ , जिस मरणी गोरख मरि दीठा ।।

सम्पूर्ण जम्भेश्वरजी के सिद्धान्त शब्द का मूल यही शब्द दृष्टि गोचर होता है। अन्य शब्दों में भी इसी प्रकार की साम्यता देखने को मिलती है। यहाँ पर उदाहरणार्थ यह शब्द सुनाया गया है। जैसे-अगम, अगोचर, गगन, अहनिस, निहचल, उनमुन, गम, अगम, आशा, निरासा, अरधै, उरधै, अल्यगन, विसनु, पांव पखाले इत्यादि शब्द जम्भेश्वरजी की वाणी में यत्र तत्र सर्वत्र प्रयोग हुए है। तथा मरो वे इत्यादि सिद्धान्त तो ज्यों के त्यों शब्दों में आया है। यथा -

जीवत मरो रे जीवत मरो , जाँ जीवन की विध जाणी ।
जे कोई आवै हो हो करता , आप जै हुइये पाणी ।।

इन शब्दों की साम्यता से तो यही दृष्टि गोचर होता है कि शब्द सिद्धान्त आदि दोनों सद्गुरुओं के एक ही थे। इसलिये तो नाथ पंथ से भ्रष्ट, केवल नाम मात्र के योगी जनों को जाम्भोजी ने शब्दों द्वारा फटकार सुनाई है। इस गोरख के पवित्र पंथ को कुछ अनधिकारी लोगों ने दूषित करने की कोशिश की थी। सद्गुरु जाम्भोजी ने उसे पुन: शुद्ध करने की कोशिश की थी।

हे शिष्य! जाम्भोजी महाराज जब सम्भराथल पर विराजमान थे, उस समय मैं भी वहीं था तथा अन्य बहुत से लोग वहाँ पर उपस्थित थे। जब हमने अपनी आँखों से देखा था कि वहाँ पर गुरु शिरोमणि गोरख एवं उनके शिष्य गोपीचन्द और भरथरी ये तीनों सम्भराथल पर आये थे। हमने अपनी आँखों से देखा था किन्तु पहचान नहीं सके थे। उस समय गुरु देव ने गोपीचन्द और भरथरी को लक्ष्य करके यह शब्द भी सुनाया था-

सुण गुणवंता सुण बुधवंता , मेरी उत्पति आदि लुहारूं।
भाठी अंदर लोह तपीलो , तंतक सोना घडेः कसारूं ।

मेरी मनसा अहरण नाद हथोडो , शशीयर सार तपीलो ।
पवन अधारी खालूं , जेथे गुरु का शब्द मानीलो ।
लंघिबा भवजल पारूं।
आसण छोडि सुखासण बैठो , जुग जुग जीवै जम्भ लुहारूँ ।।

गोपीचन्द-भरथरी की यहाँ पर बहुत बडाई की है तथा अपना परिचय भी इस शब्द द्वारा दिया है। कहा है कि-मैं तो आदि सृष्टि रचयिता, कुम्हार की भांति जगत की रचना करता हूँ।

हे गोपीचन्द-भरथरी! यदि आप लोग गुरु का शब्द मान लो, तो भवसागर से पार उतर जाओगे। इस शब्द को श्रवण करके वे लोग वहाँ से अदृश्य हो गये थे। उन्होंने कुछ बिना बोले इशारे से भी बाते की थी, हम तो नहीं समझ पाये कि वार्ता हो रही थी। उनके चले जाने के पश्चात् हमने गुरु देव से पूछा कि ये महानुभाव योगी कौन थे ?

गुरु देव ने बतलाया था कि ये तो गुरु शिरोमणि गोरख यति और गोपीचन्द-भरथरी थे।अपने दोनों शिष्यों को साथ लेकर यहाँ पर आये थे। हमारी अपनी निजी वार्तालाप थी। तुम लोग नहीं समझ पाओगे।

हमने कहा हे गुरु देव! आपने हमें पहले नहीं बतलाया यदि बतलाते तो हम दर्शन अवश्य ही करते। अभी हमने दर्शन तो किया, किन्तु अज्ञानतावश पहचान नहीं सके थे। हे गुरु देव! क्या ये अब भी जिंदे है, कहाँ रहते है ? क्या करते हैं ? अभी भी यदि हमें दर्शन हो सके तो हम कृत कार्य हो जायेंगे। अपने जीवन को सफल कर लेंगे।

गुरु देव ने कहा हे शिष्यो! अब तो वे बहुत दूर चले गये हैं। उनकी काया अब तक अजर-अमर है। अपनी इच्छानुसार भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु अब वो थक गये हैं , नाक-नाक आ गये हैं। यही इशारा उन्होने नाक के हाथ लगाकर किया था।

शिष्यों ने पूछा-हे गुरु देव! जब वे नाक-नाक आ गये तो आपने क्या जवाब दिया था ? कृपया बतलाने का कष्ट करें ? जाम्भोजी बोले हे शिष्यो! मैंने यही कहा था आपने ही तो इस इस जिह्वा से अजर अमरता माँगी थी। पहले इसको वश में करते, फिर माँगते, क्या माँगना है ? अब तो इस जीवन को जैसै तैसै जीओ। अब क्या हो सकता है , जो होना था वो हो गया ।

हे गुरु देव! लम्बी आयु तथा अमरता से वे योगी क्यों ऊब गये थे ? हम तो सभी लोग दीर्घ आयु चाहतें हैं। हे शिष्यो! अधिक आयु भी दु:खदायी है। दूर के ढोल बहुत ही सुहावने लगतें हैं। एक ही तरह का जीवन सदा एक ही रहन-सहन, सदा ऊबाऊँ होता है, क्योंकि मानव स्वभाव से ही सदा नया चाहता है। यही प्रकृति का नियम है। यदि इस नियम के विरुद्ध चलेंगे तो अवश्य ही उपद्रव होगा।

दुनिया बडी विचित्र है। जिस प्रकार से भी आप जियेंगे तो भी दुनिया वाले टीका टिप्पणी करेंगे ही। फिर भी-**ज्यों ज्यों दुनिया करे खुवारी, त्यूं त्यूं किरिया पूरी।** दुनिया निन्दा करे, कुछ भी कहे फिर भी अपनी किरिया (कर्म धर्म) से न हटे, अपना धर्म पूर्णतया निभाये। तभी संसार में अपना कार्यक्रम चल सकता है। अन्यथा तो भटक ही जायेगा गोपीचन्द-भरथरी जैसे योगी भी दुनिया से तंग आ गये, तो साधारण जनों की तो बात ही क्या है ?

हे शिष्य वील्हा! इस समय जितने भी संत-पंथ चल रहे हैं, कोई भी संत सिद्धि को प्राप्त हो रहा है, जो भी हुआ है, वे सभी गोरख यति के ऋणी हैं। सभी का मूल गोरख ही है। संसार के लिये गोरख की बहुत बडी देन है। भक्ति ज्ञान, योग की ऐसी संगम त्रिवेणी गोरख ने प्रवाहित की है उसी में ही सभी परवर्ति संत सिद्ध

स्नान कर रहे हैं, और आगे भी करते रहेंगे। मेरी समझ में यदि ऐसे गोरखयति भगवान् विष्णु-शिव स्वरूप को जम्भेश्वरजी गुरु भाव से मानते हैं तो इसमें कोई अनहोनी या आपति नहीं है। किन्तु वर्तमान में नाथ सम्प्रदाय गोरख को अपना गुरु कहते है। किन्तु वैसा आचरण करते नहीं हैं इसलिये उन्होंने नाथजी को दूषित कर दिया है, जाम्भोजी ने सम्प्रदाय का खण्डन किया है। गोरखनाथजी की तो बहुत प्रशंसा की है।

iYgkth dk Loxl fn[kkuk

विल्होजी उवाच-हे गुरु देव! गोरखयति को अपना गुरु भाव स्वीकार करने तथा उनसे भगवीं टोपी ग्रहण करने के पश्चात् जम्भेश्वरजी ने पंथ स्थापना हेतु क्या-क्या उपाय किये। किस प्रकार से उनके परिवार के सदस्यों ने अपना समर्थन दिया। क्योकि वे तो लोहट जी पंवार कुल में जन्म लेकर भगवां वस्त्र पहन कर साधु वेश में रहने लगे थे। यह सभी कुछ उनके कुल परिवार के लोगो को तो असह्य ही होगा। अन्य भी भगवान् की विचित्र लीला आपके दृष्टि गोचर होती हो तो अवश्य ही बतलाने की कृपा करें। भगवान् की लीला तो जितनी श्रवण की जाये उतनी ही कम है।

नाथोजी उवाच-हे शिष्य वील्हा! जब जम्भेश्वरजी अपने पिता द्वारा अर्जित की हुई धन सम्पति को त्यागकर के सम्भराथल पर ही स्थाई रूप से निवास करने लग गये थे। वहीं पर ही योग ध्यान द्वारा समाधिस्थ रहने लग गये थे। उस समय उनके पास आने वाले अधिक नहीं थे एक दूसरे से चर्चा सुनते और परिचय करते तो केवल इतना ही कि आज-कल लोहट जी का पुत्र जाम्भोजी पीपासर छोडकर सम्भराथल पर ही रहने लगे हैं। विवाह तो उन्होंने किया ही नहीं है । अब तो साधु बन गये हैं। न जाने वहाँ पर ही क्या करते रहते हैं, गाँव में तो कभी आते ही नहीं हैं। कोई ग्वाल बाल पाल चराने वाले यदा कदा उनके पास चले भी आते थे, उनसे प्रेम भाव भी रखते थे। किन्तु उनकी गति तो बडी विचित्र है समझ में आती नहीं है। एक दिन लोहटजी के छोटे भ्राता लाडनूं निवासी पूल्होजी पींपासर आये। उन्होंने बडे भाई एवं भाभी के बारे में जानकारी ली तो मालुम हुआ कि वे तो स्वर्ग सिधार गये। अपने भाई के वियोग में दो आँसू बहाये । उनको सद्गति मिले ऐसी ईश्वर से प्रार्थना की। पूल्होजी ने पूछा-लोहट का यशस्वी बेटा मेरा भतीजा जम्भेश्वर कहाँ है? गाँव के लोगों ने बतलाया महाराज! जम्भेश्वर तो आज कल सम्भराथल पर रहने लग गयें हैं। पींपासर आना जाना छोड दिया है। पहले तो हमारे दीनानाथ लोहटजी एवं हाँसा देवी हमें छोडकर स्वर्ग सिधार गये। हमने धैर्य धारण किया था कि चलो कोई बात नहीं उनका पुत्र हमें सुख प्रदान करेगा किन्तु वो भी हमें निराधार छोडकर जंगल में ही रहने लग गये हैं और भगवां वस्त्र धारण कर लिया है। अब वो हमारे अकेले ही देवता नहीं रहे, उन्होंने तो अपना जीवन सार्वजनिक कर लिया है। अब तो वे सभी के हैं, सभी उनके हैं। बीच में मोह माया का जाल था वह तोड दिया। इसलिये तो उनकी गायें, धन-दोलत, जमीन जायदाद आदि सभी कुछ सार्वजनिक हो गई है। अब तो उसमें हमारा सभी का हक बराबर है। यह देखो पूल्होजी! यह सारा धन जाम्भाणा हो गया है। इनके पशुओं के जाम्भाणा चिन्ह लगा दिया है। उनकी जमीन गोचर भूमि हो गई है। उनका घर धर्मशाला बन गया है और जो कुछ भी था वह सभी कुछ सभी के लिए है। पूल्होजी कहने लगे-हे पीपासर वासियों! यह कैसे हो सकता है? यह तो हमारे कुल के मर्यादा की बात है हमारे कुल में जन्मा व्यक्ति साधु होकर भिक्षा मांगे यह कैसे हो सकता है? इस प्रकार से तो हमारी कुल परम्परा ही समाप्त हो

जायेगी। मेरे बडे भाई साहब के स्वर्गवासी हो जाने पर ही ऐसा हुआ है यदि वे आज जीवित होते तो ऐसी नौबत नहीं आती।

मैं आज ही जाता हूँ और अपने कुल दीपक को समझा बूझा कर ले आता हूँ और संसार के कार्य में प्रवृत कर देता हूँ। ऐसा कहते हुए पूल्होजी जम्भेश्वर के पास सम्भराथल पर पहुँचे। वहाँ जाकर ''जय अम्बा शक्ति'' कहते हुए वहाँ पर बैठ गये।

मैं आपका सम्बन्धी तुम्हारा चाचा तुम से कुछ बात पूछने आया हूँ। मेरी तरफ थोडा ध्यान दो, आपका भेद जानना चाहता हूँ आप कौन पुरुष है ? यहाँ पर क्यों बैठे हैं ? किसलिए आपका संसार में आना हुआ है ? आखिर आपका यहाँ पर बैठने का प्रयोजन क्या है ?

आपने इस अवस्था में भगवां वस्त्र धारण कर लिया है। यह अवस्था सन्यास की नहीं है ? इस समय तो तुम्हें गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए। यदि आप में कुछ सिद्धि या देवता के गुण है तो प्रगट रूप से दिखाइये। जिससे मैं तथा मेरे अन्य साथी आपको पहचान सके। यदि आप मुझे कोई विचित्र परचा-चमत्कार दिखाओगे तो में साक्षी बन जाऊँगा, लोगो को हकिकत बताऊँगा आपका कार्य सुलभ हो जाएगा। मैं वैसे तो आपसे बडा भी हूँ किन्तु कुछ अद्भुत प्रचा प्राप्त करने के लिये आपके पास आया हूँ इसलिए मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ ।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे चाचाजी ! सावधान हो जाओ ! विचार करो, सतगुरु के वचन सत्य होते हैं । मैंने सतयुग में भक्त प्रह्लाद को वचन दिया था कि मैं स्वयं तुम्हारे मित्र अनुयायियों को जो तेतीस करोड है उनका उद्धार करूँगा। पाँच करोड तो सतयुग में ही प्रहलाद के साथ पार उतार दिये, जन्म मरण के चक्कर से छुडा दिये। सात करोड, त्रेता युग में हरिश्चन्द्र के साथ तथा नौ करोड द्वापुर युग में राजा युधिष्ठिर के साथ स्वर्ग में पहुँचा दिये। अब कलयुग में बारह करोडके लिए आया हूँ , उन्हे भी स्वर्ग में पहुँचाउँगा। ये वचन मेरे दिये हुए है उन्हे पूरा करने के लिए मैं आया हुआ हूँ।

इस समय मैं धर्म रूपी विमान लेकर आया हूँ इस विमान पर मैं प्रह्लाद पंथी जीवों को बैठाकर ले जाऊँगा। इक्कीस करोड पूर्व से बचे हुए है बारह करोड का उनसे मिलन हो जाएगा तो आनन्द होगा। जभी हमारा कार्य पूर्ण होगा, तभी मैं यहाँ से प्रस्थान कर जाऊँगा, एक क्षण भी नहीं ठहरूंगा ।

वैसे तो मैं अलख निरंजन निराकार ब्रह्म हूँ किन्तु जब मैं भी एक से अनेक होने की इच्छा होती है तो '' एकाकी न रमते '' अकेले से खेल नहीं खेले जाते तो एक से अनेक हो जाते हैं। एक से अनेक होने के लिए मैं स्वयं माया पति अपनी माया को वश में करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में हो जाता हूँ। क्योंकि सृष्टि के उत्पति कर्ता ब्रह्मा, पालन कर्ता विष्णु , और संहार कर्ता महेश हो जाता हूँ। वही विष्णु पालन-पोषण कर्ता होने से जब भी प्रक्रति में विकृति-उलट-पलट अत्याचार-अन्याय होने लग जाते है तो मैं ही राम-कृष्ण आदि नौ अवतारों के रूप में आता हूँ इस समय भी मैं वही विष्णु इस उपरोक्त कार्य हेतु आया हूँ।

पूल्होजी उवाच-हे जम्भेश्वर ! आपकी बात ठीक तो मैं जभी मानूँगा जब आप मुझे इस शरीर से स्वर्ग दिखा दे अन्यथा केवल कथन मात्र से मैं हमारे ये लोग भले ही प्रहलाद पंथी ही क्यों न हो , एक भी आपकी बात मानने को तैयार नहीं होंगे।

जाम्भोजी उवाच-मैं आपको स्वर्ग तो इस शरीर से अवश्य दिखाता किन्तु स्वर्ग का कुछ आकर्षण ही ऐसा है कि एक बार वहाँ पहुँच जाने पर फिर वहीं का हो जाता है, वापिस आने का नाम ही नहीं लेता है। यदि आप भी वहीं का ही होकर रह गये तो फिर यहाँ आकर कौन कहेगा कि स्वर्ग भी सत्य है, जम्भेश्वर के वचन

भी सत्य है। हे चाचाजी ! मेरी समस्या तो ज्यों की त्यों बनी रहेगी। वैसे नियम है कि अनधिकारी को स्वर्ग नहीं दिखाना चाहिये।

अब से पूर्व तो राजा हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने भी आपकी तरह ही स्वर्ग देखने की जिद की थी अपनी परंपरा के गुरु वशिष्ठ को छोङकर गुरु विश्वामित्र को अपना गुरु बना लिया था। जिस वजह से त्रिशंकु विश्वामित्र के प्रयत्न से न तो स्वर्ग में जा सका और न ही वापिस धरती पर आ सका बीच में ही लटक गया। वही दशा कहीं चाचाजी तुम्हारी न हो जाय। जो निज स्व धर्म को छोडकर परधर्म की तरफ देखता है उनकी यही गति होती है। केवल एक धर्मराज युधिष्ठिर को छोडकर अब तक कोई भी इस पंचभौतिक शरीर से स्वर्ग में नहीं गया है क्योंकि युधिष्ठिर तो पूर्ण धर्मात्मा थे धर्म के पालक थे। उसी तरह आप भी सत्य धर्म के प्रति प्रतिष्ठित हो जाओगे तो अवश्य ही स्वर्ग पहुँच जाओगे। अन्यथा अनाधिकार चेष्ठा करोगे तो बीच में ही लटक जाओगे।

पूल्होजी उवाच-जैसा आप कहते हो वैसा ही होगा। मैं सत्य शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं आपके कथनानुसार ही चलूँगा। मैं वहाँ पर सदा के लिए रहने के लिए आपसे प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ। केवल देखने की बात है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि स्वर्ग देखकर वापिस लौट आऊँगा। यदि सच्चा शिष्य गुरु को मिल जाये तो गुरु शिष्य पर विश्वास कर लेता है ।

जम्भेश्वरजी ने कहा-अच्छा तो तुम अपना हाथ मुझे दो और अपनी आँखें बंद कर लो। मैं तुम्हें स्वर्ग में ले चलता हूँ।

दोहा

मनस्या सास विवाण करि, सतगुरु पुल्ह बइठ ।
कीसन चीलत पुंहता सुरग, अजब अचम्भो दीठ । ।

सद्गुरु जाम्भोजी ने मनसा स्वकीय इच्छा से ही श्वासों का विमान बनाया और श्वास के विमान पर पूल्होजी को बिठाया। हमारा श्वांस और हमारा मन-संकल्प-विकल्प इनका गहरा सम्बन्ध है। यदि श्वास की गति का निरोध करते है तो चंचल मन स्वत: ही शांत हो जाता है, तो श्वांसो की गति स्वत: ही धीमी पङ जाती है। एक दूसरे का गहरा सम्बन्ध है, खिंचाव है।

जब पूल्होजी से संकल्प करवाया कि मैं तुम्हे स्वर्ग दिखाता हूँ, तब उनकी श्वांस की गति रोकने के लिए कहा-जब श्वांस की गति रुक गई एक क्षण के लिए तब चंचल मन शांत होकर आत्मा में लीन हो गया, वहाँ आत्मस्थ मन आत्मा के ही सत् चित् आनन्द रूप का अनुभव करने लगा। यही समाधि की अवस्था है।

जम्भेश्वरजी ने उन्हें कुछ क्षणों के लिये समाधि में स्थित कर दिया था, क्योंकि जब मन समाधि में उतारा था, तो स्वर्ग देखने का संकल्प लेकर उतरा था इसलिए स्वर्ग को देख रहा था। स्वर्ग की जैसी कल्पना थी। वह वहाँ पर स्थिर मन से देख रही थी। स्वर्ग की कल्पना तो अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही होती है। सभी का स्वर्ग सुख भिन्न-भिन्न ही होगा क्योंकि रुचि भिन्न-भिन्न ही होती है ।

इस प्रकार से पूल्होजी को स्वर्ग दिखलाया। कुछ ही क्षणों में सुख भोगने के पश्चात् श्री देवजी ने कहा-अब आप वापिस चलिये। अब तो बस इतना ही पर्याप्त होगा । पूल्होजी कहने लगे-अब तक तो मेरा मन भरा नहीं है, जब सुख से भूख मिट जाएगी तभी चलूँगा। कभी भूख मिटती है ? चाचाजी ! असम्भव है ? चलिये, इतना ही देख लिया अब संतोष कीजिये। आपने चाचाजी वचन दिये थे वापिस शीघ्र आने का, विचार कीजिये और चलिये।

पूल्होजी कहने लगे-मैंने वचन तो दिये थे, किन्तु आप तो अपने हमारे हैं। मेरे वचनों को माफ कर दीजिये। मैं आपसे विनती करता हूँ। मेरा मन वापिस जाने को तैयार नहीं है। अच्छा तो ठीक है-ऐसा कहते हुए जम्भेश्वरजी ने कहा-मैं तुम्हे आगे और सुन्दर स्थानों पर ले चलता हूँ। यहाँ पर तो केवल कर्मो का भोग ही है। वह भी समय पर भोगने से मिट जाता है। मैं तुम्हे वह परम पद दिलाऊँगा, जो कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है। सदा एक रस रहने वाला है। जाम्भोजी ने थोडी झलक नरक की भी दिखलाई तो पूल्होजी तुरन्त वापिस मृत्यु लोक में आने को राजी हो गये।

कहने लगे-इससे तो हमारा मृत्यु लोक ही अच्छा है, जहाँ पर समभाव है। न तो ऐसा स्वर्ग ही है और न ही ऐसा भयंकर नरक ही है। पूल्होजी वापिस मृत्यु लोक में आकर सभी से कहने लगे-हे भाइयो! जैसा जम्भेश्वर जी कहते हैं, वह सत्य है। मैं अपनी आँखों से स्वर्ग और नरक देखकर आया हूँ। पूल्होजी ने वापिस आकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान करने की घोषणा कर दी। अपनी दो कन्याओं का विवाह सुपात्र वर को ढूँढ कर के कर दिया। कन्यादान में अपनी बहुत सारी सम्पत्ति प्रदान कर दी। स्वयं अपने आप रणसीसर जाकर जंगल में ध्यान-भजन-समाधि में लीन रहने लगे। अपने जीवन को सुगन्धमय बनाया तथा अन्य लोगों के लिये भी प्रेरणा के स्रोत बने। अन्त समय तक वही रणसीसर में रह कर शरीर का त्याग किया। वही जंगल में उनके नाम से साथरी की स्थापना हुई है। प्रह्लाद पन्थी जीवों में एक पूल्होजी भी थे। जाम्भोजी महाराज का उदे्श्य भी यही था। ''सोध्या जीव सुजीव''

यह सभी कुछ गुरुदेव की कृपा से ही सम्पन्न हुआ था। जाम्भोजी ने जो कुछ भी अद्भुत परचा दिखाया था, वह सभी कुछ कृष्ण चरित्र से ही सम्भव होना बताया है। यह भी कृष्ण चरित्र का ही प्रमाण था। जो एक बार भी अपनी आँखों से देख लेता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। फिर कभी भूलता नहीं है। पूल्होजी ने वर्ग के सौन्दर्य को अपनी आँखों से देखा था। इसलिये वापिस आने पर भी कभी भी वह अद्भुत दृश्य पूल्होजी भूल नहीं सके थे। दिन-रात हरि का स्मरण करते हुए अपने जीवन को सफल बना लिया। पूल्होजी आये थे, अपने भतीजे को समझाने के लिये, किन्तु स्वयं ही समझ गये। अपने जीवन का मार्ग बदल दिया। अज्ञानान्धकार दूर हो गया। ज्ञान का प्रकाश हो गया। जीवन के अन्तिम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त हो गये।

बिश्नोई पंथ की स्थापना

नाथोजी अपने प्रिय सुयोग्य शिष्य वील्होजी के प्रति इस प्रकार कहने लगे-हे शिष्य! पूल्होजी के स्वर्ग दर्शन के पश्चात् जम्भेश्वर जी सम्भराथल पर ही विराजमान रहने लगे थे। संसार में अवतार लेकर आये हुए बहुत समय व्यतीत हो गया था। उस समय वि. सं. 1542 प्रारंभ हो गया था सिद्धेश्वर जी ने चौतीस वर्ष व्यतीत कर दिये थे, किन्तु प्रह्लाद पन्थी जीवों के उद्धार का प्रमुख कार्य करना तो बाकी ही पडा था सम्भराथल पर बैठे हुए विचार मग्न रहते। समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। समय से ही अधूरे कार्य पूर्ण हो जाया

करते हैं। समय से पूर्व बहुत सारे कार्य पूर्ण नहीं हो पाते हैं।

मरुभूमि में उस समय महा अकाल पड़ा। इस देश में वर्षा की तो वैसे ही कमी रहती है। इस वर्ष तो लोगों अक्षय तृतीया से ही आकाश की तरफ देखना प्रारम्भ कर दिया था कि कहीं पर बादल आते हुए दिखाई देते हैं क्या? ज्यों समय आगे गुजरता गया त्यों-त्यों प्रतीक्षा अधिक से अधिकतर होती जाती थी। इस प्रकार से प्रतीक्षा करते हुए ,शून्य में देखते हुए लोगों ने ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण,भादवा तथा आसोज भी व्यतीत कर दिया, किन्तु कहीं भी आकाश से जल की एक भी बूँद नहीं टपकी।

सम्पूर्ण मण्डल में भारी अकाल पड़ा। इस दौरान न तो कहीं बिजली चमकी और नही कहीं गर्जना सुनाई दी। सम्पूर्ण दुनिया में त्राहि-त्राहि होने लगी। दुर्भिक्ष पड़ जाने से दुनिया भूख मरने लगी। कई-कई जीव गरीबी के कारण बहुत दु:खी हो गये थे। भूख का दु:ख कब तक सहन किया जा सकता है ? कहीं से भी अन्न मिलने की सम्भावना नहीं दिख रही थी। जब तक अन्न कोठे में था, तब तक तो जैसे-तैसे समय को व्यतीत किया जा सकता था, लेकिन अन्न का ज्यों ही अभाव आ जाता हैं, कोठे खाली दिखते हैं तो यह पेट भी दुगुना भूखा हो जाता है। ऐसा ही चारों ओर हाहाकार मच गया था।

भूख से मरेंगे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । कुछ लोगों के पास थोडा कुछ गुजारे लायक था तो भी वे छिपाकर बैठ गये थे । इस समय तो भूखा रह लेंगे, लेकिन आगे तो काम आयेगा । अज्ञानी कृपण लोग अन्न पास में होते हुए भी भूख मरने को तैयार थे ।

गाय आदि पशु भी तो अकाल की दशा में भूख के कगार पर पहुँच चुके थे। उनके मालिक स्वयं ही भूखे रहेंगे, तो उन निरीह पशुओं को कौन खिलायेगा? फिर वन में विचरण करने वाले जीव तो कहीं कुछ न कुछ अपनी जिवारी के लिये हासिल कर ही रहे थे, क्योंकि पशु स्वभावत: संग्रह नहीं करता है। वह तो वर्तमान में जीता है। आज ठीक है। यह समय ठीक है। वैसी कल की चिन्ता नहीं है। कल के लिये न तो संग्रह करेगा और न ही कल के लिये जियेगा। इसलिए मनुष्य की अपेक्षा पशु सुखी है। किन्तु मानव इस सिद्धान्त के विपरीत है। आज में नहीं जीना कल के लिये आज जी रहा है। परन्तु कल का कुछ भी पता नहीं है। इसलिये मानव पशु से ज्यादा दु:खी है।

कल क्या होगा, आज तो ठीक ही है। इस प्रकार से सौ वर्षों के लिये पहले से ही जुगाड़ कर लेने की कोशिश में जीता है। यही दु:ख का कारण भी है। कुछ लोगों के पास तो आज के लिये भी खाने को कुछ नहीं था। कल की आशा क्या करे। अन्य कुछ लोगों ने अन्न का संग्रह कर लिया था। कल के लिये भी आज भूखे रह लेंगे, किन्तु कल से पेट भरकर खायेंगे। यह अव्यवस्था चारों ओर फैल गयी थी। उन्हें लूट-पाट का खतरा भी सता रहा था। भूखा आदमी क्या नहीं कर सकता है? इस प्रकार से इस मरुदेश में रह कर जीना तो कठिन था।

कुछ गाँवों के लोग एकत्रित हुए और विचार करने लगे-भाइयों! क्या करें कैसे जियेंगे? यहाँ पर रहने से तो भूखे मर जायेंगे। हमने सुना है कि यहाँ से बहुत दूर मालवा देश है, वहाँ पर प्रत्येक वर्ष अच्छी वर्षा होती है। कभी अकाल नहीं पडता है। यदि हम लोग जीने के लिये यह अपनी मातृभूमि-देश छोडकर मालवा चले जायेंगे तो कैसा रहेगा? हम जानते है कि अपनी मातृभूमि छोडना कष्टदायी है, किन्तु प्राणों की रक्षा करने का भी तो अपना प्रथम कर्तव्य है , वैसे तो श्री रामजी ने कहा भी है।

यद्यपि स्वर्णमयी लंका , न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्म भूमिश्च , स्वर्गादपि गरीयसी ।।

कुछ गाँवों के लोगों ने एक समूह बना कर अपने-अपने छकडों, ऊँटों पर सामान लाद कर के समूह रूप से गायों आदि पशुओं को आगे करके रवाना हुए। वे लोग सम्भराथल के नीचे के मार्ग से होकर जा रहे थे।

जाम्भोजी ने सम्भराथल के ऊपर से देखा कि इतना बडा समूह जा रहा है। यह देश छोडकर, इस प्रकार से तो यह सम्पूर्ण देश ही खाली हो जायेगा। मैं तो देख रहा हूँ कि ये तो सभी प्रह्लाद पंथी जीव हैं। इन्हें तो चेताना है। ये ही यहाँ से चले जायेंगे तो फिर मेरा यहाँ इस देश में आना इतने वर्षों तक यहाँ पर रहना क्या होगा ? ये लोग थोडी सी विपत्ति आने से ही व्याकुल हो गये है। आगे मैं देख रहा हूँ। यहाँ के निवासियों के लिये सुनहरा अवसर है। इनको रोकना चाहिये। ऐसा विचार करते हुए श्री देवजी सम्भराथल से नीचे उतरे और उनके मार्ग को रोककर खडे हो गये। और उनसे कहा-भाई लोगो ! ठहर जाओ ! आगे मत बढो। मैं तुम्हारी सहायता करने आया हूँ। मैं जानता हूँ। तुम भूखे हो और **भूखे भजन न होय गोपाला, लेलो अपनी कंठी माला।**

लोगों ने कहा-महाराज ! आप हमें क्यों रोक रहे हो ? यहाँ आप देख नहीं रहे हो, भयंकर अकाल पड गया है। हम लोग मालवे जा रहे हैं। आपके पास देने को कुछ है क्या ? जो हम लोगों की भूख मिटा सके ? आप तो स्वयं ही हमारे गृहस्थी के आधार पर जीवन जीते हैं। हमारे घर से ही आपको अन्न मिलता है। आप कहाँ से इन सभी को खिलाओगे ? हम आपको जानते हैं। खास शिव भण्डारी बिना यहाँ अन्न की पूर्ति होना असम्भव ही है।

सिद्धेश्वरजी ने कहा-हे लोगो ! आप ऐसी छोटी बातें मत करो। मेरे पास सब कुछ है। तुम यहाँ से चले जाओगे, तो क्या अकाल समाप्त हो जायेगा ? क्या इस समस्या का समाधान हो सकेगा ? यदि हो जाता है, तो आप भले ही चले जाओ। क्या आप लोग बता सकते हो कि तुम्हारे इस देश में अकाल क्यों पडा ?

हे महाराज ! हमें तो इस बात का ठीक से पता नहीं है किन्तु सुनते हैं कि हमारा कोई पाप है, जिस वजह से इन्द्र देवता हमसे रूठे हैं। वर्षा नहीं होती है। अकाल पडता है। देवजी ने पूछा-यह बतलाओगे क्या ? कि कोनसा पाप है जिससे इन्द्र देवता रुष्ठ हो जाते हैं ? तथा वर्षा नहीं होती है। यह कहना कठिन है महाराज ! आप ही बतलायें तो ठीक होगा। सिद्धेश्वरजी ने बतलाया कि सुनो-तुम लोगों ने वृक्ष काट लिये हैं। इस धरती को नंगा कर दिया है। ये वृक्ष ही वर्षा लाते हैं। ये वृक्ष ही तुम्हारे जीवन का आधार हैं। तुमने अपने मूल का ही छेदन कर दिया है। तो अब कैसे फूलोगे फलोगे ?

जहाँ पर भी हरियाली होगी, वहीं पर वर्षा होगी, तथा जहाँ पर भी वर्षा होगी वहाँ पर हरियाली होगी। ये एक दूसरे के पुरक हैं। किन्तु मानव ने इस प्रकृति में विकृति पैदा कर दी है। जो ठीक प्रकार से एक दूसरे के सहयोगी बन कर के खुशहाली लाते थे, वे अब विकृत हो गये हैं। एक-दूसरे से रूठ गये हैं। यह सभी कुछ कार्य तो तुमने ही किया। यही तुम्हारा पाप है। जहाँ पर वन होगा, वहीं पर मानव, पशु-पक्षी आदि बहुतायत से होंगे। सुखी जीवन व्यतीत करेंगे।

दरखत जब अपनी श्वांस छोडता है, तो उसे पशु-पक्षी, मानव आदि ग्रहण करके पुष्ट होते हैं। तथा मानव पशु पक्षी आदि अपनी श्वांस छोडते हैं, उसे पीकर वृक्ष पुष्ट होते हैं। इस प्रकार से एक दूसरे का गहरा सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा जीवित नहीं रह सकता। इसलिये तुम लोगों ने हरे वृक्ष काटकर बहुत बडा अपराध किया है, इसी पाप का फल तुम लोग भोग रहे हो।

दूसरा कारण यज्ञ भी है जहाँ पर यज्ञ होगा वहाँ पर इन्द्र वर्षा करेगा। तुम लोगों ने यज्ञ की जगह तम्बाकु, चरस, अफीम, गांजा आदि के धुएँ से पर्यावरण को दूषित किया है। देवता यज्ञ में उठी हुई यज्ञ धूम की

पवित्र सुगन्धी ग्रहण करते हैं, वे तुम्हें वर्षा के द्वारा तृप्त करते हैं। परस्पर जो देवता व मानव का पवित्र भाव था, वह यज्ञ न करके तुमने तोड़ दिया है। इसे पुनः स्थापित करो, तभी तुम्हारे यहाँ पर वर्षा होगी। कभी अकाल नहीं पडेगा। यही तुम्हारा दूसरा सबसे बडा पाप है। इससे वर्षा नहीं हो रही है।

उपस्थित जन समूह ने कहा-महाराज! आपने जो ज्ञान की बाते बतलाई हैं, ये हमें अच्छी लगी है। किन्तु भूख तो अभी लगी है। इसका कोई तुरन्त इलाज है तो अभी बतलाओ? कब वृक्ष लगेगें व कब वर्षा होगी? कब हमारे खेत निपजेंगे? कब हमारी भूख मिटेगी? इस समय यज्ञ करने के लिये भी हमारे पास कुछ नहीं है। यज्ञ भी तो समय-समय पर किया हुआ फलदायी होता है। अब तो वर्षा का मौसम भी चला गया है। ये कार्य भी तो समय पर करने के हैं। इस समय तुरन्त कोई इलाज बताओ, जिससे हमारी क्षुधा की निवृत्ति हो सके।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे भक्तो! आप इस समय चिन्ता न करें, मेरे पास अन्न का ढेर है। मैं आपको भर पेट भोजन दूँगा। ये तुम्हारे पशुधन भी यहाँ पर भूखे नहीं रहेंगे, इन्हें घास-जल आदि मिलेगा। यह सम्भराथल जंगल सभी को सब कुछ देगा। यदि आप लोगों को विश्वास नहीं हो रहा है तो मेरे साथ सम्भराथल पर चलो, मैं तुम्हे अन्न की ढेरी दिखाता हूँ। ऐसा कहते हुए उन लोगों को सम्भराथल पर ले गये और सात अन्नों की सात अलग-अलग ढेरियाँ दिखाई और कहा कि जिसको जितना अन्न चाहिए, यहाँ आकर उतना अन्न ले जाइये। किसी को भी भूख से मरने की नौबत नहीं आने दी जायेगी।

लोगों ने जाकर अन्न की ढेरी तो अवश्य देखी, किन्तु वे तो छोटी-छोटी ही थी। आपस में काना फूसी होने लगी-इतने लोगों के लिये ये ढेरियाँ ज्यादा दिन नहीं चलेंगी। इन बाबा लोगों का क्या भरोसा, न जाने कब यहाँ से उठकर चल पडे? हमें पता भी नहीं चलेगा। तब हम क्या करेंगे? आगे के रहेंगे न पीछे के। वैसे ये बाबाजी झूठ तो नही बोलते हैं तथा इनको झूठ बोलकर हमसे लेना भी क्या है? किन्तु अन्न लेने से पहेले ये बातें स्पष्ट कर लेनी चाहिये।

जम्भदेवजी से उपस्थित उन लोगों ने पूछा-हे महाराज! हमें इन छोटी-छोटी ढेरीयों को देखकर तो सहसा विश्वास तो नहीं हो रहा है। इधर जनता को देखते हैं तो बहुत ही ज्यादा है। अन्न बहुत ही कम है। क्या सभी लोगों के लिये प्रयाप्त होगा? नया अन्न खेतों में निपजने में तो बहुत ही देरी है। जब तक हमारे खेतो में नया अन्न निपजेगा, तब तक दोगे या बीच में ही गुरु देव ने कहा-आप लोग निश्चित रहो, मेरे पास एक बहुत बडा साहूकार है वह देगा। उससे बढकर दुनिया में साहूकार कोई नहीं है। ये तुम्हे छोटी-छोटी ढिगलियाँ दीख रही हैं, किन्तु यह अखूट है। ज्यों-ज्यों आप ले जायेंगे, त्यों-त्यों ये बढती जायेंगी। ज्यों ही ज्यादा ले जाओगे, त्यों ही ज्यादा बढेंगी।

मैं तुम्हारे सामने सच कहता हूँ कि आप लोग मेरे कहने अनुसार चलोगे, तो तुम्हें एक दो वर्ष नहीं सदा-सदा के लिये अन्न देता रहूँगा। तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूँ। मैं ही तो सृष्टि का कर्ता वह साहूकार हूँ तथा पालन-पोषण कर्ता स्वयं विष्णू हूँ। तुम्हारे उद्धार हेतु यहाँ पर आया हूँ। अब तुम लोग अपने जीवन का भार मेरे उपर छोडकर निश्चित हो जाओ। अपने-अपने गाँवों को वापिस लौट जाओ। जो भी आपके साथ यहाँ पर नहीं आये हैं। उन्हें भी यह शुभ समाचार दे देना।

इस समय तो आप लोग अन्न-जल द्वारा भूख-प्यास मिटाओ। जब तुम लोग तृप्त हो जाओगे तो मैं तुम्हें कुछ अन्य ज्ञान ध्यान की बाते बताऊँगा। नित्य प्रति यहाँ से अन्न ले जाया करो। ऐसा कहते हुए उन लोगों को तो वापस लौटा दिया।

कुछ ही लोग यहाँ पर चलकर आये हैं, किन्तु अन्य गाँवों की स्थिति भी अच्छी नहीं है। वहाँ जाकर भी देखना चाहिये कि किस प्रकार से लोग अपना जीवन यापन कर रहे हैं। धर्म-कर्म के बारे में लोगों का क्या ख्याल है ? ऐसा विचार करके श्री जम्भदेवजी सम्भराथल से थोडी दूरी पर ही स्थित बापेऊ गाँव पहुँचे।

गाँव में प्रवेश किया तब गाँव के बारे में जानकारी मिली। गाँव के बाहर ही भेङ-बकरी की खाले पेडो पर सूख रही थी। लगता है यह जानवर अकाल की वजह से नहीं मरे हैं। इन्हें मारा गया है। इसलिये इस गाँव के लोगों के माँसाहारी होने में कोई संदेह नहीं है। गाँव के अन्दर प्रवेश किया तो देखा कि लोग आ जा रहे हैं। कई लोग तो सामने से आकर निकल जाते, लेकिन उन लोगों ने नवण प्रणाम या आदेश आदि कुछ भी नहीं किया। नमन प्रणाम के गुणों से ये लोग परिचित भी नहीं थे।

कुछ लोग आपस में बातें कर रहे थे। एक दूसरे से जाम्भोजी का परिचय पूछ रहे थे। जिसकी जैसी समझ है, वैसा ही बतला रहे थे, कोई कह रहा था कि यह तो पीपासर के ठाकुर लोहटजी के पुत्र हैं। कोई कहता था कि यह तो गूँगे हैं, किसी ने कहा कि यह तो आजकल पीपासर छोडकर सम्भराथल पर रहने लग गये है। जितने लोग उतनी बातें, परन्तु कोई भी पास में आकर यहाँ आने का कारण नहीं पूछते थे।

बापेऊ गाँव में खिलेरी, यादव, भाटी इत्यादि किसान लोग सीधे-साधे अपनी खेती करके आजीविका चलाने वाले रहते थे। उन्हें ज्ञान से कुछ भी लेना देना नहीं था। अब तक उनके गाँव में सत्य का मार्ग बताने वाला तो कोई नहीं आया था। उन्हें क्या दोष दिया जाये ? उन लोगों का खान-पान भी भ्रष्ट ही था। दया-दान के बारे में वे लोग कुछ भी नहीं जानते थे। भेङ-बकरी आदि को मारकर खा जाया करते थे। जीवों पर दया करना वे लोग कुछ भी नहीं जानते थे।

वे लोग सुबह जल्दी स्नान करने के बारे में भी पूर्ण रूप से अनभिज्ञ थे। देवी-देवता के नाम भूत-प्रेत, भेरूं भोमिया की पूजा करते थे। इन्हें अपने कुल का देवता बतलाते थे। विष्णु के नाम का सार नहीं जानते थे। वे लोग भ्रम की सांकल में बंधे हुए थे। इनका भ्रम टूटे तो दु:खों से छूटे। अपनी कमाई का धन कुपात्रों को देकर नष्ट कर देते थे। जाम्भोजी ने कहा-आप इस समय चिन्ता न करें। मेरे पास अन्न का ढेर है। मैं आपको भर पेट भोजन दूँगा। ये तुम्हारे पशुधन भी यहाँ पर भूखे नहीं रहेगे। इन्हें घास जल आदि मिलेगा। यह सम्भराथल जंगल सभी को सब कुछ देगा।

यदि आप लोगों को विश्वास नही हो रहा है तो मेरे साथ सम्भराथल पर चलो। मैं तुम्हे अन्न की ढेरी दिखाता हूँ। ऐसा कहते हुए उन लोगों को सम्भराथल पर ले गये और सात अन्नों की सात अलग-अलग ढेरियाँ दिखाई और कहा कि जिसको जितना अन्न चाहिए, यहाँ आकर उतना अन्न ले जाइये। किसी को भी भूख से मरने की नौबत नहीं आने दी जायेगी।

सत्य झूठ का कुछ भी पता नहीं था। कपट कुलोभ से पाप के वशीभूत हो जाते थे। कभी कोई भी कष्ट आता तो भोपा भरडा से पूछते कि हमारे दु:खों का कारण एवं निवृत्ति का उपाय बताओ। वे उन्हें उल्टे मार्ग में डाल देते। उन्हीं से धन तो ले लेते और पाप के मंझ में डालकर डुबो देते। ऐसी दशा जाम्भोजी ने देखी थी। गुरुजी ने विचार किया कि ये लोग तो ऊर्जावान, शक्तिमान है, किन्तु इनकी शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। कुछ स्वार्थी लोग इन्हे अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु सतपंथ से दूर ले जा रहे हैं। देखो ये लोग तो प्रह्लाद पंथी जीव हैं। लेकिन ये लोग इस समय कुसंगति से दूषित हो गये हैं। इन्हे सद्मार्ग का पथिक बनाना है। उन जीवों का कोई कर्म उदय हो गया था,जिससे उनकी नगरी में स्वयं विष्णू आये है। अन्यथा मुनि लोग जन्मों-जन्मों तक प्रयत्न करते रहते हैं, फिर भी इस प्रकार से आकर सम्भालते नहीं हैं। डूबते हुए को बचाने आये हैं। अवश्य

ही कुछ नया कार्य होने जा रहा है। पाप और भूख मिटाने के लिए नगरी में स्वयं देवता ही आये हैं।

नर-नारी सन्मुख आते, किन्तु नमन करना भी नहीं जानते। बिना प्रेम के ही आकर बैठ जाते। जो प्रेम उत्साह होना चाहिये था, वह नहीं था। जैसा कि कोई संत महापुरुष नगरी में आया है, तो उनसे कुछ ज्ञान की बात पूछना चाहिये। किन्तु ये लोग धर्म-कर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। बिना जाने पूछे भी क्या? कुछ है समझ में ही नहीं आती थी।

वे लोग तो जाम्भोजी को अभी भी गूँगा ही मानते थे। पूर्व जन्म का पाप अब भी उन्हे सद्मार्ग का पथिक बनने से रोक रहा था। लोगों ने विचार किया कि हम भाटी खिलेरी हैं। ये तो हमारे ही नाती-धेवते हैं, क्योंकि इनकी माँ तो हमारे ही कुल की है। हम अपने भानजे से क्या पूछे? हम तो इनसे कुछ अधिक ही जानते हैं। ये तो हमारे घर के ही योगी है। कोई दूसरे गाँव परिवार के होते तो सिद्ध होते। हम उनके पाँव पूजते।

जब उन गाँव के लोगों ने कोई सुपथ की बात नहीं पूछी तो देवजी ने स्वयं ही बात चलाई कि हे गाँव के लोगो! बुजुर्गो एवं मेरे साथियो! " रहस्यौ का जास्यौ जीवारा" आप लोगों को मालूम ही है कि भयंकर दुर्भिक्ष पङ गया है। यहीं रहोगे या कहीं अन्यत्र जाओगे? अपने जीवन जीने हेतु क्या करोगे?

लोगों ने कहा-हे महाराज! महा भूख आ गई है। यह तो सुबह खाते हैं, तो शाम को लग जाती है। रात्रि को खाकर सोते हैं, तो सुबह को लग जाती है। यहाँ पर रहने में डर लगता है। एक टुकडा भी यहाँ पर खाने को नहीं मिलेगा। हम ही क्यों? सारी दुनिया ही इस भंयकर अकाल में भयभीत हो गई हैं। बिना अन्न के तो किसी से भी नहीं रहा जाता है। समय पर भूख तो अन्न की माँग करती है।

लोग कहने लगे-अन्न के बिना तो साधु-संत, सिद्ध-देव भी नहीं रह सकते। उन्हें भी समय पर अन्न चाहिये। हम तो धान की ही कोठी हैं। अन्न के बिना तो लोग तो भूखो मर कर, मर जायेंगे। हम तो महाराज मरना नहीं चाहते हैं। जीना चाहते हैं।

जम्भदेव जी बोले-आप लोग बिना जाने, सोचे-समझे इस प्रकार की बातें न कहें, अन्न जल के अभाव में कौन मर गये? उनकी संख्या बतलाओगे? पालण-पोषण कर्ता भगवान् विष्णु सभी को देते हैं। किसी को भी भूख प्यास से नहीं मरने देते। जब सर्व पालक सभी को रोजी-रोटी देता है, तब आप लोग कैसे कह सकते हैं कि भूख से मर गये। ये जितने भी पशु-पक्षी, कीट-पतंग, छोटे-बडे सभी का पालन पोषण करने वाले वही हैं, फिर आप क्यों ऐसा बोलते हैं?

आप लोग यह बतलाइये कि आपके इस गाँव के लिये नित्य प्रति कितना अन्न चाहिये। लोग कहने लगे,महाराज! सवा मन अन्न यदि इस गाँव को मिलता रहे तो हमारे यहाँ से कोई भी यह गाँव छोडकर नहीं जायेगा । देवजी ने कहा - आप लोग कोई भी मालवे मत जाओ । यदि तुम्हारा विचार यहीं रहने का है तो मेरे पास एक साहूकार है, वह तुम्हें अन्न देगा। जिसको जितना चाहिये उतना देगा। सवा मन से कहीं ज्यादा चाहिये तो भी देगा। अन्न देकर मोल भी नहीं माँगेगा।

ग्रामीण जनों ने पूछा कि महाराज! आपके पास साहूकार ऐसा कौन है, जो इतने लोगों को मुफ्त में अन्न देगा? साहूकार तो देगा। लेकिन वे तो ब्याज सहित वापिस माँगेगा, तब हम कहाँ से देंगे? तथा हमें आपका भी विश्वास कम ही हो रहा है। क्या पता बाबाजी का? आप उठकर चल देंगे, तो हमें पीछे आपका साहूकार कैसे देगा? हम तो कहीं मंझधार में डूब जायेंगे। न तो इधर के रहेंगे और न ही उधर के रहेंगे। त्रिशंकु की भांति बीच में ही लटक जायेंगे।

जम्भ यति ने कहा-आप लोग मेरी बात पर विश्वास करो। मेरे पास जो साहूकार है, वह कोई सामान्य

साहूकार नहीं है, जैसा कि तुम समझते हो। वह तो जगत का पालन कर्ता स्वयं विष्णु ही है। वही विष्णु इस संसार में सब जगह व्याप्त है तथा इस संसार का पालन-पोषण भी वही करते हैं तथा वह प्रभु तुम्हारे शरीर में विद्यमान रहता है। तभी तुम जीवन जीते हो ।

यदि इन्द्र देवता तुम्हारे पर रूठ गये तो क्या हुआ, देवताओं के भी देवता विष्णु तुम्हारे पर प्रसन्न हैं। वह तो तुम्हें देगा कि इतना देगा जो तुम्हारे पास कमी नहीं पडेगी । मेरी एक बात और भी सुनो । आप लोग चारो दिशाओं में ढिंढोरा पिटवा दीजिये। कोई भी अन्न के अभाव में भूखा न रहे। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी सकुशल रहे। सभी की पूर्ति वह विष्णु ही करेगा। आप लोग कल से ही अन्न लाना प्रारम्भ कर दो।

जन समूह ने कहा-हे देवजी! आप हमें अन्न देंगे,इसके एवज में हमें क्या करना होगा? यदि आपकी कोई शर्त हो तो हमें बतला दीजिये,क्योंकि जो भी वायदे होने हैं, वे पूर्व ही सभी के सामने ही हो जाये अन्यथा आगे जाकर कोई न कोई झगडा खडा हो जायेगा।

जम्भदेवजी ने कहा-सुनो! मैं भी अपनी बात तुम्हें बता देता हूँ। यदि आप राजी हो तो करना अन्यथा हम तो वापिस चले जाते हैं सम्भराथल, आप चले जाये मालवे। प्रथम तो तुम्हे नित्य प्रति स्नान करना चाहिये। वह भी प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व ही। बाद स्नान तो कोई स्नान नहीं है । दूसरा नियम यह कि मैं आपको जब अन्न दूँगा तो आप किसी जीव की हत्या नहीं करोगे। तीसरा नियम यह होगा कि किसी भी प्रकार के नशे से दूर रहोगे। इन धुआँ धकङ माँस-मदिरा से दूर रहोगे। यदि ये नियम धारण करोगे तो मैं तुम्हे अन्न दूँगा, अन्यथा मैं कुपात्रों को दान नहीं देता। इन लक्षणों से जो युक्त है, वह मेरी दृष्टि में सुपात्र है।

कुपात्र कूं दान जु दियों,जाणै रैण अंधेरी चोर जु लियो ।
चोर जु लेकर भा[kj चढियो,कह जिवडा तै कैने दीयों ।

लोगों ने कहा-महाराज! यह स्नान का नियम तो ऐसा कोई जरूरी नियम नहीं है। करे तो ठीक न करे तो ऐसा कोई नुकसान नहीं है। इस समय कार्तिक का महीना प्रारम्भ होने जा रहा है। सर्दी चमक गयी है। पूरे चार-पाँच महीने भयंकर सर्दी पडेगी। सर्दी में स्नान करना कठिन होगा। हम तो मर ही जायेंगे। हमने तो कभी स्नान किया भी नहीं है। अब कैसे हो सकेगा? यदि हम ठण्डे जल में स्नान करते हुए ठण्डे हो गये तो फिर यह तुम्हारा अन्न कौन खायेगा ?

हे दीनानाथ! हमने तो सुना और देखा है कि हमारी तो यह परंपरा रही है कि स्नान तो तीन ही प्रमुख है,पहला स्नान तो जब बालक जन्म लेता है तो दाई करवा देती है। दूसरा स्नान विवाह पर होता है। उस समय नाई करवा देता है,तीसरा स्नान अन्तिम स्नान है वह भाई करवा देता है। इनसे अतिरिक्त न तो कोई हमने देखा है न कोई हमने सुना है। और न ही कोई परंपरा आवश्यक है। हे देवजी! आप यह कहतें है कि धूंआ धकङ छोडें और यज्ञ करें,क्या फर्क पडता है धुँआ तो धुँआ ही होता है। चाहे वे यज्ञ का हो या तम्बाकू का हो? जीवों की हत्या करना तो क्षत्रियों का काम है, इसे कैसे परित्याग करें ?

जम्भेश्वरजी ने कहा-पहले आप लोग सम्भराथल से अन्न लाकर भोजन करें। बाद में मैं आप लोगों को अमृत पाहल पिलाऊँगा। जिससे आप लोगों का अन्तःकरण शुद्ध होगा। तभी तुम्हारे अन्दर शुद्ध भाव जन्म लेगा। तुम्हें इन दुर्व्यसनों से घृणा होगी। तभी स्वतः ही दुर्गुण छूटेंगे। उनकी जगह सद्गुणों का वास होगा। इसलिये आप लोग कार्तिक लगते ही अष्टमी के दिन आ जाना। वहाँ पर मैं तुम्हे अच्छी-अच्छी बातें बतलाऊँगा। पवित्र पाहल देकर बिश्नोई पन्थ की स्थापना करूँगा। आप लोग इस बात की सूचना सभी गाँवों में पहुँचा दें। अभी तो मैं चलता हूँ आप लोगों में से कोई एक आदमी मेरे साथ अन्न लाने के लिये चले तथा

अन्न लाकर सभी लोगों को अन्न जिमाये। आप लोग मेरी बात पर विश्वास करोगे तो मैं तुम लोगों को देवता बना दूँगा। सभी प्रकार के दु:खों से सदा-सदा के लिये छुटकारा दिला दूँगा। ऐसा कहते हुए सिद्धेश्वरजी सम्भराथल पर विराजमान हुए ।

सम्भराथल पर कुछ लोग तो अपने स्वार्थ हेतु तथा कुछ लोग परमार्थ हेतु आना जाना प्रारंभ हो गया था। कार्तिक बदि अष्ठमी के दिन सवा प्रहर दिन चढे पंथ स्थापना का सुयोग था। इसलिये सैंकडों लोगों को जहाँ-तहाँ गाँवों नगरों में भेजे। उन लोगों को यह कहकर भेजा कि सम्भराथल पर स्वयं जम्भेश्वर जी बिश्नोई पंथ की स्थापना कर रहे हैं। आप लोग अष्टमी के दिन अवश्य आयें। जैसे आपको सुविधा हो, वैसे आप लोग पहुँचे। वहाँ पर अन्न धन्न,लक्ष्मी तथा रूप व गुण और मुक्ति प्राप्त होगी। जिसको जो चाहिये, वह मिलेगा। वहाँ पर इन वस्तुओं का भण्डार भरा हुआ है। जो भी वस्तु आप लोगों को चाहिये, वह जम्भद्वार पर हाजिर होकर प्राप्त करे ।

'' अन्न धन ज्ञान भक्ति अरू मोखा,मोपे राजे पाँचू Fkkका ।
इन चीजूं का भरिया भणMkरा,चाहो सो आवो जम्भ द्वारा ।। ''

जाम्भेजी की आज्ञा शिरोधार्य करके उस समय अनेक गाँवों के सभी प्रकार के लोग आये। उनमें ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य तीन वर्णो के लोग बहुतायत से थे। जिन-जिन गाँवों के लोग वहाँ पर आये थे और बिश्नोई पंथ का अनुगमन किया था। उनकी गौत्र तो वही रह गयी थी। उन्होने तो केवल पंथ-धर्म स्वीकार किया था। जिन-जिन गौत्रों के लोग वहाँ पर एकत्रित हुए थे, उनकी गौत्र इस प्रकार थी-

अत्री,अखीवड़ अवतार, अडोल, अग्रवाल, अडीग, अभीर, अहीर, आंजणा, आमरा, आंवरा, आयस, इहराम, ईडग, ईसराम, ईयार, ईसरवाल, उत्कल, उदाणी, गोदारा, ए`चरा, ऐरण, कडवासरा, कर्णेटा, करीर, कबीरा, कलवाणिया, कसवां, काकड़ कालीराणा, कासणियां, कासिल, किंकर, किरपण, कुपासिया, कूहाड़ कूकणा, केरू, खदाह, खडहड़ खाती, खावा, खासा, खिलेरी, खीचड़ खारा, खेरा, खोखर, खोथ, गरुड़ गर्ग, गाट, गावाल, गीला, गुजेला, गुरेसर, गुरु , गोड़ गोदारा, (खरिंगिया, सोनगरा, धोलिया, बन्नड़ उदाणी) गोभिल, गोयत, गोयल, गोरा, चंदेल, चांगड़ (सुथार) चाहर, चोटिया, चौहान, जंवर, जटराणा, जांणी, जांगू, जाखड़ जाजूदा, जागी, जीवावल, झांग, झांस, झांझणा, झासला, झूरिया, झोदकण, झोरड़ टांडी, टाडा, टुहिया, (टुसिया) टोकसिया, डागर, डारा, डूडी, डेलू, ढांढणियां, ढढरवाल, ढाका, ढूकिया, (डहूकिया) तंवर, तगा, तरड़ तायल, तांडी, तांडा, ताला, तुंदल, तेतरवाल, तोला, थलवट, थालोड़ थोरी, दइया, दडक, दिलोइया, दूगेसर, देहड़ू देवडा, दोतड़ धत्तरवाल, धामा, धायल, धारणियां, नाथ, नाडा नाई, निरवाण, नैण, पंवार, पडिहार, पठान, पडियाल, परवाल, पारस, पटोदिया, (सुथार) पालडिया, पुरवार, पुहिया, पूनिया, पेदडा, पोकरण, पोटलिया, पाटोदिया, बजाज, बछियाल, बडोदा, बटेसर, बरड़ बल्डकिया, बरदायी, बाबल, बावरा, बासणियां, बिडंग, बिच्छू, बिलादरू, बुरडक, बूडिया, बेरवाल, बोला, भूवांल, भट्ट भलूडिया, भीलूमियां, भूवांल, भारद्वाज,़ भांभू, भाखर, भाडेरा, भादू, भूट्टा, भेजावत, मंडा, मतवाला, मल्लाहा, माहेश्वरी, महिया, मांझू, माचरा(माजरा), मातवी, माल, मालीवाल, मूंड, मूंढ, मंडा, मेवरा, मेटला, मोगा, मोहिल, रसा, राठौड़ रायल, रावत, राव, राहड़ रूबावल, रेवाड़ रोज, रोहज, ललेसर, लटियाल, लांम्बा, लुहार, लेघा, लेधा, लोल, लोहमरोड़ वडियार, वागोतर, वटेसर, वाना (विडाऱ), वणियाल, वरा, विडासरा, विलोणियां, विलाला, वरयाल, वात्सल्य, वदिता, संन्यासी, सराक, सहू, सरावक, सारस्वत, सांई, सांखला, सांवक, सारण, सिघल, सियाक, सिंवर खिंया, सिरडक, सिरडिया, सीगड़ सींवर, सीलक, सीवल, श्रीमाली, सिंहल,

सिसोदिया, सुथार, सुनार, सेवदा, सेनूडिया, सोढा, हरड्ड हाडा, हूमडा, हूडा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि। इन उपरोक्त गौत्र के बिश्नोई बने थे। तथा आगे भी यह क्रम जारी था।

वील्होजी उवाच-हे गुरु देव! आपके कथनानुसार विभिन्न गोत्र (जातियों) के लोग कार्तिक मास की अष्टमी से आना प्रारंम्भ हुए थे,इतने लोगों के लिये भोजन जल आदि का प्रबन्ध भी तो श्री सिद्धेश्वरजी ने कृष्ण चरित्र से ही किया होगा। ऐसा मैं समझता हूँ।आगे मैं यह जानना चाहता हूँ कि श्री देवजी के पास ऐसा कौनसा मंत्र तथा तरीका था, जिससे सभी को एक ही पंथ पर चलने के लिये मजबूर कर दिया । अन्यथा इस देश के लोग सर्वथा अज्ञानी (विमूढ) थे। किसी की बात को मानने के लिये ही तैयार नहीं थे।

नाथोजी उवाच-हे शिष्य! जब सर्वत्र यह खुश खबरी फैल गई कि सम्भराथल पर जाम्भोजी महाराज अन्न-धन्न, लक्ष्मी, रूप, गुण और स्वर्ग, मुक्ति के दाता हैं, तो लोग कुछ तो दु:खी थे। इसलिये दु:ख दूर करने के लिये आये थे,तथा कुछ भूखे थे, उन्हे भूख मिटानी थी। तथा कुछ लोग स्वर्ग-मुक्ति-प्राप्ति हेतु भी आये थे। तथा कुछ थोडे़से लोग ज्ञान श्रवणार्थ आत्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु भी यहाँ पर आये थे। निष्प्रयोजन तो कोई यहाँ पर क्यों आता?

सर्वप्रथम श्री देवजी ने सम्भराथल पर कार्तिक वदी अष्टमी को विशाल यज्ञ का आयोजन किया था,क्योंकि अकाल पडा हुआ था। वातावरण दूषित हो चुका था। देवता नाराज थे। उन्हें आहुति प्रदान करनी थी। लोगों को यज्ञ के लिये प्रेरित करना था। यज्ञ के पास एक मिट्टी का कलश रखा गया था। उसमें शुद्ध जल भर कर के रखा गया था। उसके नीचे बाजरा भर के रखा गया था। जो सभी के लिये खाद्य पदार्थ था। यह कलश पूर्वोत्तर कोण में रखा गया था, क्योंकि उस जल में वरुण देवता का आह्वान किया गया था। **ओम् जदू वासरूपम्** ''इत्यादि गोत्राचार द्वारा।

अग्नि प्रज्वलित करके विभिन्न देवताओं को मंत्रों द्वारा, अग्नि में स्वाहा कहते हुए आहुति प्रदान की थी। यज्ञ का कार्य सम्पन हो जाने पर श्री देवजी ने वहाँ उपस्थित जन समूह में से अपने ही शरीर सम्बन्धी चाचा पूल्होजी को पास बुलाया था। क्योंकि चाचा पूल्होजी कुछ दिन पूर्व स्वर्ग देख चुके थे। उस समय भी धन सम्पत्ति का दान करके संसार के मोह से निवृत्त हो चुके थे। वानप्रस्थ बन कर के अपने जीवन को साधना में ही व्यतीत कर रहे थे। उनसे बढकर वहाँ उस समय और कोई पवित्र आदमी नहीं था। पूल्होजी ज्ञान वृद्ध-वयोवृद्ध तथा सदाचारी साधक थे ।

उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कलश पर रखा,हाथ में बाजरी एवं उस युग की प्रतीक मुद्रा-ताँबे का टका तथा ईश्वर स्मरणी माला को रखा,ये तीनों ब्रह्मा विष्णु महेश के प्रतीक है। श्री जम्भेश्वरजी ने सभी के लिये सभी से अनुमती लेकर कलश पूजा मंत्र का उच्चारण किया,वह इस प्रकार से है-

कलश पूजा मन्त्र

ओम् अकल रूप मनसा उपराजी, तामां पांच तत्त्व होय राजी ।
आकाश वायु तेज जल धरणी, तामां सकल सृष्टि की करणी ।
ता समर्थ का सु.kk विचार, सप्त दीप नव खण्ड प्रमाण ।
पांच तत्त्व मिल इण्ड उपायो, विग्kस्यों इण्ड धरणी ठहरायों ।
b.M e/; ty mitk;k] ty ek fo’.k :i miukA
rk fo’.k dk ukHk dey foxlkuk] rkek cek cht BgjkukA
ता ब्रह्मा की उत्पति होई, भाने घडे; संवारे सोई ।
कुलाल कर्म करत है सोई, पृथिवी ले पाके तक होई ।
आदि कुम्भ जहाँ उत्पन्नों, सदा कुम्भ प्रवर्तते ।
कुम्भ की पूजा जे नर करते, तेज काया भोखण्डते ।
अलील रूप निरंजनो ,जाके न थे माता न थे पिता ।
न थे कुटुम्ब सहोदरम्k, जे करे ताकि सेवा, ताका पाप दोष क्ष्यों जायन्ते ।
आदि कुम्भ कमल की घडी, अनादि पुरुष ले आगे धरी ।
बैठा ब्रह्मा बैठा इन्द्र, बैठा सकल रवि अरु चन्द ।
बैठा ईश्वर दो कर जोड़, बैठा सुर तैतीसा करोड़।
बैठी गंगा यमुना सरस्वती, थरपना थापी बाल निरंजन गोरख जति ।
सत्रह लाख अठाइस हजार, सतयुग प्रमाण ।
सतयुग के पहरे में सुवर्ण को घाट, सुवर्ण को पाट, सुवर्ण को कलश ।
सुवर्ण को टको, पांच करोड़्या के मुखी गुरु प्रह्लाद जी ने कलश थाप्यो ।
वै कलश जो धर्म हुआ सो इस कलश हुइयो ।
बारह लाख छियानवे हजार त्रेतायुग प्रमाण ।
त्रेता युग के पहरे में रूपे को घाट, रूपे को पाट, रूपे को कलश ,
सुवर्ण को टको, सात करोडया के मुखी राजा हरिश्चन्द्र तारादे रोहितास ,
कलश थाप्यो वै कलश जो धर्म हुआ सो इस कलश हुइयो ।
आठ लाख चौसठ हजार द्वापर युग प्रमाण ।
द्वापर के पहरे में तांबे को घाट, तांबे को पाट, तांबे को कलश,
रूपे को टको, नव करोड़्या के मुखी राजा युधिष्ठर कुन्ती माता द्रौपदी,
पाँच पांडव मिल कलश थाप्यो, वै कलश जो धर्म हुआ, सो इस कलश हुइयो ।
चार लाख बतीस हजार कलयुग प्रमाण ।
कलयुग के पहरे में माटी को घाट, माटी को पाट, माटी को कलश ,
तांबा को टको, अनन्त करोड़्या के मुखी गुरु जम्भेश्वरजी ने कलश थाप्यो।
वै कलश जो धर्म हुआ, सो इस कलश हुइयो।

ओम् विष्णु तत्सत ब्रह्मणे नमः ।।

कलश क्या है ? सम्पूर्ण सृष्टि ही गोल-गोल कलश रूप ही है। कलश में जल भरा है। इस सृष्टि में भी जल भरा है। यह कलश पृथ्वी से बना है। पृथ्वी ही हमें सभी कुछ देती है। धरती माता है। आकाश पिता है। जल जीवन है। अग्नि ओज व तेज है। वायु हमारा श्वास है इस कलश को आदि विष्णु गोरख ने ही निर्मित करके सृष्टि के आदि में ही स्थापित किया था।

उस समय वहाँ पर तैतीस करोङ देवी-देवता, गंगा, यमुना व सरस्वती आदि देवता विराजमान थे। उन्हें यह शिक्षा दी थी कि संसार में रहो, तो जल की तरह निर्मल रहो। अन्यथा तुम्हारा जीवन नरक समान हो जायेगा। उन्हीं आदि विष्णु से प्रेरणा लेकर सतयुग में सर्वप्रथम प्रह्लाद जी ने कलश की स्थापना की थी। जिससे पाँच करोङ जीवों का उद्धार हुआ था। त्रेता युग में राजा हरिश्चन्द्र ने कलश की स्थापना की थी, जिससे सात करोङ जीवों का उद्धार हुआ था। तथा द्वापर युग में धर्मराज युधिष्ठिर ने इसी कलश की स्थापना की थी, जिससे नौ करोङ जीवों का उद्धार हुआ था। तथा द्वापर युग में धर्मराज युधिष्ठिर ने इसी कलश की स्थापना की थी, जिससे नौ करोङ जीवों का उद्धार हुआ था।

यहाँ पर श्री जम्भेश्वरजी कहतें हैं कि मैं उन्हीं परम्पराओं को निभाते हुए यहाँ सम्भराथल पर भगवीं टोपी पहन कर आया हूँ। उसी कलश की स्थापना करता हूँ। जिससे बारह करोङ में घुमते हुए मंत्र पढ़ा था जीवों का उद्धार होगा। इस मंत्र द्वारा जल देवता में इन सभी ऋषियों का आह्वान किया है, जो धर्म के पालक थे। उनका धर्म ही यहाँ पर कलश में निवेश करवाया है। वै कलश धर्म हुआ वो इस कलश हुइयो।

ऐसा कहते हुए उसी मर्यादा को बार-बार दोहराया है। श्री सिद्धेश्वरजी ने इसमें ग्यान-ध्यान की भावना भरी है। जल में गुण होता है कि स्पर्श कर्ता की भावना गुणों को ग्रहण कर लेता है। स्पर्श कर्ता जैसा होगा, वैसा ही जल हो जायेगा। यहाँ पर स्वयं विष्णू भगवान् ने ही कलश की स्थापना करके जल को अमृत बनाया है। इसमें सहयोगी थे स्वर्ग दृष्टा पूल्होजी।

कलश पूजा के पश्चात् पाहल किया था, पाहल करते समय केवल अकेले ही श्री देवजी ने माला जल में घुमाते हुए निम्नलिखित मंत्र पढा -

पाहल मंत्र

ओं नमो स्वामी सुभ करतार निरतार,
भवतार धर्मधार पूर्व एक vkeकार।
साधु नांव दरसणे सनमुखे पाप नासणे।
जनम फिरंता को मिलै, संतोषी सfp;kj।
अi.kk सुवारथ न करै, पर पिंड पोषणहार।
पर पिंड pk'k.kgkj जीवत मरै, पावै मोख दवार।
एह स पाहळ भाइयो, साधे लीवी विचारि।
एह स पाहळ भाइयो, थूळे मेल्ही हारि।

एह स पाहळ भाइयो, ऋषि सिधा d काज।
एह स पाहल भाइयो, उधरियौ पहराज।
तेतीस कोड़ि देवां कुळी, लाधो पाहळ बंद।
एह स पाहळ भाइयो, उधरियौ हरिचन्द।
पाहळ लीवी dUrh ekrk, होती करणी सार।
साधु एहा भेंटियै, लाभै मोख मुकति दीदार।
आवो पांचों पांडवां, गुर की पाहळ ल्योह।
पाहळ सार न जांणही, अैसां पाहळ न द्योह।
पाहळ गति गंगा तणी, जे करि जांण कोय।
पाप सरीरां झड़ि पड़, पुन बहोता होय।
नेम तळाई नेम जळ, नेम का जीमो पाहळ।
कायम राजा आइयौ, बैठो पांव पखाळ।
रिष थाप्यां गति उधरै, दैतां दिये pkgळ।
वन वन चंदण न अगरण,
सर सर कंवळ न फूल।
एकाएकी होय जपो, ज्यूं भाजै भरम भूल।
अठसठि तीरथ कांय फिरो, न इण पाहळ संतूल।
गोवल गोवल को को धवल lc lrk nkrkj।
आसति है तिहुं लोक मैं, सब बसतां दातार।
fo'.k uke सदा जीमो, पाहळ एह विचारि।
सतगुर बोलै भाइयो, संत सिधा सुचियार।
मछ की पाहळ, कछ की पाहळ, वराह की पाहळ,
नारिसिंघ की पाहळ, बावंन की पाहळ,
परसराम की पाहळ, राम लछमण की पाहळ,
कान्ह की पाहळ, बुध की पाहळ,
निकलंक की पाहळ, जाम्भोजी की पाहळ।

जाम्भोजी ने पाहल मंत्र पढा था। पाहल का अर्थ होता है पाल अर्थात् बाढ आती हो तो जल से बचाव के लिये पाल बांध लेनी चाहिये। यदि किसी भी प्रकार से धर्म मर्यादा भंग होती हो तो पुन उसे जोडने के लिये पाहल बनाकर ग्रहण करके पुन: जोडने का संकल्प लेना चाहिये। जब जब भी धर्म मर्यादा टूटी है तो उसको प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र युधिष्ठिर आदि महापुरुषों ने पुन: जोडा है। सभी को जोडने के लिये पाहल ही अमृत जल था। यह पाहल संत सिद्ध भक्तों हेतु किया जाता रहा है। इसी पाहल के प्रभाव से कई संत सिद्ध इस संसार सागर से पार हो गये। इसी पाहल के प्रभाव से ही शरीरों के पाप झङ जाते हैं। बहुत सा पुण्य होता है।

नियम से ही सम्पूर्ण सृष्टि चलती है। बिना नियम के तो इस संसार के कोई भी जीव-जन्तु, तारे, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, वायु जल आदि नहीं जी सकते। यदि ये नियम को तोङ दे तो सभी जगह उथल पुथल मच जायेगी। यह पाहल ही नियम में बांधने वाला है। क्योंकि इसमें सभी देवतागण विराजमान रहतें हैं।

कोई सिद्ध पुरुष या कोई सिद्ध संत यदि इस पाहल को ग्रहण करें तो पाहल ग्रहण करनें वालों की गति हो सकती है। उनका उद्धार सम्भव है । अन्यथा तो जल पाहल कर्ता के दुर्गुणों को भी अपने में समाहित कर लेगा। लाभ की जगह हानि होने की भी संभावना प्रबल हो जायेगी । ऐसे सुपात्र सर्वत्र प्राप्त नहीं होते। प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता। प्रत्येक तालाब में कमल का फूल नहीं खिलता ।

आप लोग अपने उद्धार हेतु अडसठ तीर्थों में क्यों भटकते हो ? यहाँ घर बैठे ही पाहल आपका उद्धार कर देगा। पाहल की गति तो गंगा के समान पवित्र कर देने वाली है। अन्यत्र भटकने से तो क्या लाभ ? घर आयी हुई गंगा को छोडकर कहाँ-कहाँ भटकोगे।

सतगुरु ने कहा है-हे सिद्धो ! हे पवित्र संत आत्माओ ! आप लोग अपने अंदर झाँक करके तो देखो। तुम क्या हो ? तथा अपने को क्या समझ बैठे हो ? '' **जागो जोवो जोत न खोवो, छल जायसी संसारू** ''

इस प्रकार से भगवान् विष्णु ने मत्स्य रूप धारण करके तथा कछुवे का रूप धारण करके जो मर्यादा बाँधी थी वही मर्यादा इस समय पाहल से बाँधी जायेगी। भगवान् ने वराह, नृसिंह, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतार धारण करके जो मर्यादा बाँधी थी, वही मर्यादा सतगुरु जी कहते हैं कि मैं बाँधने के लिये आया हूँ।

इस प्रकार से कलश की स्थापना करके श्री देवजी ने पाहल बनाकर सभी के हाथ में अमृत जल देकर संकल्प करवाया। उस समय पवित्र परमात्मा की ज्योति जल रही थी। ज्योति स्वरूप भगवान् विष्णु वहाँ पर उपस्थित थे। '' **यज्ञो वै विष्णु** '' स्वयं सतगुरु रूप में स्वयं सिद्धेश्वर जी विराजमान थे। समाज के अग्रगण्य पूल्होजी वहाँ पर उपस्थित थे। तथा सभी अपने अपने कुल के शिरोमणि अग्रगण्य जन उपस्थित थे।

जल देवता को हाथ में देकर संकल्प करवाया था। उनसे कहा गया कि आज तक जो भी हमने भूल की है, अब आगे हम जल देवता, अग्नि देवता, सूर्य देवता, वायु देवता, पृथ्वी देवता, तथा समाज के अग्रगण्य जनों के सामने हम सद्गुरु देव को वचन देते हैं कि आगे पुन: मानवता के धर्म बिश्नोई पन्थ के अनुगामी रहेंगे। हम तो चलेंगे ही तथा हमारे परिवार कुटुम्बियों को भी प्रेरित करेंगे। इस प्रकार से संकल्प करके बिश्नोई पंथ प्रारम्भ हुआ। श्री गुरु जम्भेश्वर जी ने जल हाथ में देकर संकल्प करवाकर के पुन: उन्हे उनतीस नियमों की संहिता बतलायी, जो इस प्रकार से है-

उनतीस नियम

तीस दिन सुतक , पांच ऋतुवन्ती न्यारो ।
सेरा करो स्नान , शील संतोष सुचि प्यारो ।
द्विकाल संध्या करो , सांझ आरती गुण गावो ।
होम हित चित प्रीत सूं होय , बास बैंकुण्ठा पावो ।
पाणी बाणी ईंधणी , दूध इतना लीजै छाण ।
क्षमा दया हिरदे धरो , गुरु बतायो जांण ।
चोरी निन्दा झूठ बरजियो , वाद न करणो कोय ।
अमावस्या को वृत राखणो ; भजन विष्णु बतायो जोय ।
जीव दया पालणी , रूंख लीलो नहीं घावै ।

अजर जरे जीवत मरै, वै वास स्वर्ग ही पावै ।
करै रसोई हाथ सूं, आन सूं पलो न लावै ।
अमर रखावै ठाट, बैल बधिया न करावै ।
अमल तम्बाखूं भांग, मद्य माँस सूँ दूर ही भागे ।
लील न लावै अंग, देखते दूर ही त्यागै ।

दोहा

उणतीस धर्म की आखड़ी, हिरदे धरियो जोय।
जाम्भेजी कृपा करी, नाम विश्नोई होय।

ये उनतीस नियम प्रत्येक आये हुए जिज्ञासु को दिये। और कहा कि आप लोग इन बीस और नौ नियमों का पालन करने वाले हो गये हो। इसलिये आपको आज से बिश्नोई नाम से कहा जायेगा, तथा आज से आप लोग कल्पित देवताओं की पूजा त्याग कर के केवल एक विष्णु की ही उपासना-अराधना करोगे।

विष्णु के उपासक वैष्णव होते हैं। इसलिये आप लोग वैष्णव हैं। वैष्णव होने से आपको बिश्नोई ही कहा जायेगा। आप लोग नित्य प्रति सुबह जल्दी उठकर स्नान करोगे। इसलिये अन्य लोग आपको स्नानी भी कहेंगे तथा आप लोग साधु के शिष्य हैं, इसलिये आपको मोडा भी कहेंगे। क्योकि जिन्होने मोह को ढाह लिया है, पटक दिया है, मोह से मुक्त हो गये है, इसलिये मोडा भी कहे तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। साधु को मोडा नाम से ही कहा जाता है। मोडा के शिष्य भी मोडा ही होंगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कोई भी नाम होता है वह सार्थक होता है। यह नाम संज्ञा आपके लिये प्रयुक्त होगी। आप लोग इन नामों की सार्थकता बनाये रखें। कहीं ऐसा न हो कि चकाचौंध में आप लोग आप अपने नाम कर्म की महत्ता को भूल ही न जाये। आप लोगों के लिये जैसा नाम दिया गया है वैसा गुण भी अमृत पाहल पान से भरा गया है।

आज से आप लोग साधु जैसा जीवन यापन करते हुए अपना जीवन यापन करते हुए जीवन को सार्थक करेंगे। आप लोग गृहस्थी होते हुए भी ऋषि जैसा आपका उच्च कोटि का जीवन होगा। इन नियमों का पालन करते हुए इह लोक एवं पर लोक दोनों ही आपका उज्ज्वल होगा। जीया ने जुगति और मुवा ने मुक्ति दोनों आपके हाथ में होंगे।

जिस प्रकार से सम्पूर्ण वेदों का सार ओम है, उसी प्रकार से सम्पूर्ण वेद शास्त्रों का सार रूप ये उनतीस नियम हैं। ये नियम हमें आचार संहिता सिखलातें हैं। ''आचारो ही प्रथमो धर्मों'' आचार विचार ही प्रथम सर्वोत्तम धर्म है। जैसे सर्वप्रथम धर्म तीस दिन सूतक है। बच्चा जन्म लेता है तो माँ और बच्चे दोनों को ही तीस दिनों तक ग्रहकार्य से अलग रखें। उन्हें शुद्ध होने के लिये तीस दिन का समय चाहिये। समय व्यतीत होने से ही अपवित्र से पवित्र हुआ जा सकता है। तीस दिन पूर्ण होने पर घर को साफ करके हवन-पाहल देकर के पवित्र किया जा सकता है। तीस दिन पूर्ण हो जाने पर घर को साफ करके हवन-पाहल देकर माँ और बच्चे दोनों को ही पवित्र किया जाता है। यह प्रथम संस्कार है। इस संस्कार से बिश्नोई बनाया जाता है। पैदा होते ही बिश्नोई नहीं होता। **जन्मना शुद्रो जायते संस्कारात् द्विज उच्यते**। जन्म से तो शुद्र ही पैदा होता है किंतु संस्कार से दूसरा जन्म होता है।

एक माह तक माँ विश्राम करेगी, अच्छा पौष्टिक भोजन करेगी, तो माँ और बच्चा दोनों ही स्वस्थ होगें, बच्चे को माँ अपना दूध पिला सकेगी, बच्चा पुष्ट होगा, उसकी नींव मजबूत होगी, वह बडा होकर स्वस्थ बुद्धि शक्ति सम्पन्न होगा। उसे किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, हानि नहीं उठानी पडेगी। माँ

अपना दूध पिलायेगी। उसे प्यार देगी। अपना संस्कार देगी बादमें वह आगे चलकर योग्य व्यक्ति, माता-पिता का भक्त, व देश भक्त बनेगा ।

दूसरा नियम इस नियम से जुडा हुआ है कि महिलाओं को प्राकृतिक रूप से मासिक धर्म होता है, उससे रजस्राव होकर शुद्ध होती है तथा पुन: गर्भ धारण करने के योग्य होती है। यह हर एक माह बाद पाँच दिनों तक चलता है। ऐसी अवस्था में वह अपवित्र होती है। इस समय वह रसोई बनाने, खिलाने आदि कार्यों के योग्य नहीं होती है। ऐसी अवस्था में घर के कार्य पूजा-पाठ, हवन, मंदिर आदि से दूर रहना चाहिये।

रजस्वला अवस्था में स्त्री एकान्त में निवास करे। किसी पर पुरुष का चिन्तन न करे। किसी अन्य कुपात्र का दर्शन न करे। अन्यथा आगे आने वाली सन्तान विकृत पैदा हो जायेगी। अन्यथा वही कुपात्र ही जन्म ले लेगा, या अंग हीन, कुवर्ण, कुचील तथा अरूपवान संतान पैदा हो सकती है। ये दिन ही संतान उत्पति के मूल हैं।

आप लोग जैसा चाहे वैसी संतान की प्राप्ति कर सकतें हैं। इस दूसरे नियम पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। इस नियम का पालन न करने से ही वर्णशंकर सन्तान पैदा हो जाती है। यही संतान आगे चलकर अपने कुल परिवार की मर्यादा भंग करने में कारण बनती है। सम्पूर्ण कुल परिवार को ही नरक में ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। माता-पिता भाई बन्धु की कोई भी बात उसे स्वीकार नहीं होती है।

इसलिये महिलाओं के लिये ये नियम विशेष पालनीय हैं। वे ही समाज की नैया को पार ले जा सकती हैं। पुरुषों के सहयोग की भी महती आवश्यकता है। एक चक्र से गाडी नहीं चलती है। इसके लिये दोनों ही चक्र स्वस्थ होने चाहिये।

तीसरा नियम यह है कि प्रात: काल: की शुभ वेला में शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर स्नान करें। इस एक नियम के प्रभाव से ही अन्य सभी नियम खिंचे चले आयेंगे। यदि प्रात: काल सूर्योदय से पूर्व आप स्नान करते हैं, तो संध्या, सूर्य देवता की वन्दना हवन, तथा अन्य सभी सात्विक कार्य स्वत: ही सम्पन्न हो जायेंगे। अन्यथा एक नियम टूटने से दूसरे सभी परमार्थ के कार्य संपन्न नहीं हो पायेंगे।

रात्रि में सोया हुआ व्यक्ति मृत तुल्य हो जाता है। सुबह उठकर पुन: जीवन शक्ति संचार हेतु प्रथम जल स्पर्श ही जीवन दायक है। शरीर में होने वाली अनेक प्रकार की बीमारियों से स्नान द्वारा त्राण पाया जा सकता है। अधिक क्या कहें, स्नान करने का नियम धारण करने पर ही सत्यता का अनुभव होता है। बिना कुछ किये तो केवल कहने-सुनने से उसका कुछ भी तत्त्व नहीं मिलेगा। ये तीन नियम शरीर मन सम्बन्धी व्यावहारिक दिशा निर्देश देने वाले हैं। प्रथम आचार बताने वाले है।

चौथा नियम शील है। शील वृत्त है। शील नियम है। संसार को मर्यादित करने वाला एक नियम शील ही है। जिससे यह संसार ठीक से चलता है। ये हमारे देवता, सूर्य, चन्द्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र, वायु पृथ्वी, अग्नि सभी शील से ही बंधे हुए हैं। गृहस्थ परिवार भी शील की ही मर्यादा में ही बंधा हुआ है। किसके साथ कैसा व्यवहार हो । माँ, बहन, बेटा, बेटी, भाई बन्धु, मित्र आदि सभी एक शील के बन्धन में बंधे हुए हैं। जिस दिन जहाँ पर भी शील धर्म टूटा है, वहीं पर समाज में उपद्रव हुआ है। जीवन नरक बन गया है। भगवान् ने हमें संसार में भेजा है, शील देकर भेजा है।

कार्यशाला में कोई औषधि का निर्माण होता है तो शील लगती है। वह शील हमें यह बतलाती है कि जैसी बनी है, ठीक वैसी ही आपके पास आ गई है। उसी प्रकार से जैसे हम शीलवान होकर संसार में आये हैं, उसी प्रकार से शीलवन्त बने हुए वापिस लौट चले। जिन कर्मो को लेकर आये थे उसी धर्म से युक्त रह

कर संसार से प्रयाण कर जायें। यहाँ पर भ्रष्ट होकर, कुछ खोकर वापिस न लौटें। यह शील धर्म बतलाया।

शील-चरित्र, यही शील धारण करना होगा। तभी सच्चे अर्थो में मानव बन सकेंगे। इसलिये हम इस महत्वपूर्ण शील धर्म से मुँह न मोडें। जीने की विधि को समझें। आत्मसात् करें ।

पाँचवाँ नियम संतोष है। शील व्रत से ही संतोष आता है। यह एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी हैं। कहा है- ''संतोषादनुत्तमं सुख लाभः'' अर्थात् संतोष से ही अपूर्व सुख आनन्द का अनुभव होता है। यदि सुख चाहते हैं। तो वह संतोष में ही मिलेगा। अन्यत्र सुख की प्राप्ति असम्भव है। संतोष का विलोम लोभ होता है। लोभ ही सभी दु:खों का मूल कारण है। जीवन में चाहे किसी पक्ष को देखो, जहाँ पर भी संतोष है, वहीं पर स्वर्ग-सुख है। जहाँ लोभ है, वहीं पर नरक है। ये सभी अनुभव करने की बातें हैं। आप लोग रोज अपने जीवन में इन्ही बातों का अनुभव करते हैं। किन्तु फिर भी सचेत नहीं हो पाते। अज्ञानता के वशीभूत हो जाते हैं।

'किं कर्तव्य विमूढ' हो कर जीवन को एक शाप समझते हैं। किन्तु यह मनुष्य जीवन एक वरदान है। इस ईश्वरीय देन मानव जीवन को समझें और सफल बनायें। श्री देवजी द्वारा दिये हुए नियमों की और विशेष ध्यान दें।

छठा नियम:-शुचि प्यारो है । पवित्रता से हमें प्यार होवे, न कि गन्दगी से। प्रथम स्नान से शरीर की शुद्धि, यह तो हमारी बाह्य शुद्धि ,कपडों की शुद्धि, घर की शुद्धि आदि। यह शुद्धियाँ तो जल मिट्टी आदि से सम्भव है किन्तु इनके अतिरिक्त भी हमारे मन, बुद्धि, अहंकार इन्द्रियाँ आदि की भी शुद्धि परम आवश्यक है । इनकी शुद्धि भगवान् के जप, कर्म,यज्ञ आदि द्वारा ही सम्भव है।

जो लोग स्वभाव से ही अपवित्र रहतें हैं। जिनके वस्त्र, घर आदि पवित्र नहीं हैं। जिनका जल, भोजन, वायु आदि भी पवित्र (शुद्ध) नहीं हैं। उनके पास में भी नहीं बैठना चाहिये। उनसे मित्रता आदि भी व्यवहार नहीं बढाना चाहिये। क्योंकि सर्वत्र संगति का गुण दोष प्रभावित करते हैं। जिनके यहाँ पर पवित्रता, शुचिता, सौम्यता, सद्गुण, आदि उत्तम गुण विद्यमान हैं, उनसे प्रेम करना चाहिये। क्योकि उनसे सभी कुछ सीखा जाता है। भगवान् विष्णु ही ''पवित्राणां पवित्रम्'' यो मंगलानाम् च मंगलम्'' दैवतानां दैवतम् यो भूतानामव्यय पिता उसी की ही संगति करनी चाहिये।

सातवाँ नियम दोनों समय संध्या करनी चाहिये। संध्या का अर्थ है दिन रात्रि की संधि वेला अर्थात् सूर्योदय-सूर्य अस्त समय, संध्या वेला है। अन्य सांसारिक कार्य हेतु नहीं है। यदि ईश्वर का स्मरण न करके अन्य सांसारिक कार्य इस वेला में करता है, जिस समय जो कार्य करना हो, उसी समय वही कार्य करें।

परमात्मा ने सभी कार्यों के लिये अलग-अलग समय निश्चित किया है। उसका उलंघन न करें। क्योंकि सभी समय किसी न किसी कार्य हेतु बंटा हुआ है। जैसे स्नान, संध्या, हवन, भोजन, अन्य कार्य, शाम को पुन: संध्या स्वध्याय, आरती शयन आदि। नियत समय पर कार्य करने से ही उस कार्य का सुविधापूर्वक समय पर फल मिलता है। समय आने पर ही फल पकता है। बीच में तोङ दिया जायेगा तो वह रसमय नहीं हो सकेगा। अपना गुण धर्म प्रकट नहीं कर सकेगा। संध्या वेला प्रात: काल में शौच स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् विष्णु का जप करना चाहिये। ततपश्चात् सूर्योदय हो जाने पर हवन करना चाहिये। इस प्रकार से शाम को भी सूर्यास्त होने के साथ ही संध्या वेला में ईश्वरीय कार्य करना चाहिये ।

आपने देखा होगा कि संध्या वेला में स्म्पूर्ण सृष्टि की हल चल थोडी देर के लिये रुक जाती है। सम्पूर्ण पेङ-पौधे, पशु-पक्षी, वायु-तेज, आदि ये सभी एक क्षण के लिये अपने जन्म दाता, पालन पोषण कर्ता का

स्मरण करते हैं। अन्य सभी क्रियाएँ शांत कर देतें हैं। उसी प्रकार मानव को भी करना चाहिये। यही संध्या का महत्व है ।

आठवाँ नियम-साँझ आरती गुण गावो। साँय जब रात्रि हो जाये। शयन की तैयारी हो जाये तब थोडी देर के लिये उस दयालु, कृपालु ईश्वर को धन्यवाद अवश्य ही प्रदान करो दिन भर के किये हुए कार्यो को स्मरण करो। कोई भूल-चूक हो गई तो क्षमा याचना माँगो। आर्त भाव से परमात्मा की प्रार्थना करना ही आरती है। कुछ इधर की कुछ उधर की निंदा करके समय को बर्बाद न करो। समय मिलने पर ईश्वर के ही गुणगान करो।

रात्रि समय में नित्य प्रति सत्संग (जागरण) करो। जागरण में ईश्वर की महिमा का बखान, साखी शब्दों द्वारा करो। इससे मन को खुराक मिलेगी। आपका मन स्वस्थ होगा। बुद्धि ज्ञानी होगी। आपका जीवन सुखमय होगा। युक्ति-मुक्ति दोनों आपके हाथ में होंगी ।

नौवाँ नियम-होम हित चित प्रीति सूँ होय, वास वैकुण्ठा पावो। नित्य प्रति हवन करें। किस विधि-विधान से करें ? इसका समाधान भी दिया है-हित चित तथा प्रीत से करें। हवन कर्ता-सर्व हिताय करे, चित लगाकर एकाग्र मन से करे, तथा प्रेम भाव से करे। यही विधि और विधान है। इससे बढकर और कोई विधि-विधान नहीं है।

यज्ञ का फल क्या होगा ? वास वैकुण्ठा पावो , वैकुण्ठ अर्थात् भगवान् के परम धाम को। जहाँ जाने के बाद पुन: वापिस संसार के जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता।'' यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परं मम '' शास्त्रों में चार प्रकार के पदार्थों का विवरण आता है। धर्म, अर्थ, काम , और मोक्ष यज्ञ से इन चार प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति होती है। सर्वप्रथम धर्म होगा, धर्म से धन की प्राप्ति होगी और धन से इच्छित वस्तु की प्राप्ति की जा सकती है। जब इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो जाये तो अन्तिम चतुर्थ पदार्थ मोक्ष ही परम पदार्थ है, ये पदार्थ हवन करने से प्राप्त होते हैं।

सर्व प्रथम यज्ञ कर्ता अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये गोत्राचार का उच्चारण करे। उसके पश्चात् देवताओं को स्वाहा कह कर के आहुति प्रदान करे। हम देवताओं को आहुति द्वारा घृतादिक पदार्थ प्रदान करें। देवता हमें वर्षा द्वारा इन हवनीय पदार्थों की प्राप्ति करवायें। हमारा तथा देवताओं का परस्पर भाव सम्बन्ध जुडेगा। एक दूसरे के प्रति सहयोगी बनेंगे। इसके लिये एक मात्र यज्ञ ही साधन है। यदि हम देवताओं के आहुति दिये बिना स्वयं ही पकाते व खाते हैं तो हम पाप को ही खाते हैं। यज्ञ से अवशिष्ट को अर्थात् यज्ञ कर्म करने के पश्चात् जो भी हमारे पास बच जाता है उसका भोजन करते हैं तो वह अमृत तुल्य है।

अन्न से सभी भूत प्राणी जीते हैं। वृद्धि को प्राप्त होते हैं तथा अन्न वर्षा जल से होता है, तथा वर्षा यज्ञ करने से होती है। इसलिये यज्ञ कर्म अवश्य ही करें। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने मानव के साथ ही यज्ञ की भी रचना की थी, और बतलाया था कि हे मानवो ! आप लोग अपनी अभि वद्धि हेतु यज्ञ अवश्य ही करो। यह यज्ञ कामधेनु की तरह इच्छित फल देने वाला है। यही बात श्री देवजी ने उनतीस नियमों तथा शब्दों में कही है।

ज्योति में ही परमात्मा का दर्शन होता है। जब चाहें तब परमात्मा का दर्शन करें। शब्द पढे। परमात्मा से सीधी वार्तालाप भी करे। कहा है-यज्ञो वै विष्णु:'' अर्थात् यज्ञ ही विष्णु है'' स्वर्ग कामो यजेत्'' अर्थात् स्वर्ग सुख की इच्छा वाला यज्ञ करे।

दसवाँ नियम-पाणी बाणी ईधणी, दूध इतना लीजे छाण। अर्थात् जल, दुध तथा ईधन व लकडी आदि

जलाने वाली लकडी छाण कर लेना चाहिये। जल को वस्त्र द्वारा छान कर के पीना चाहिये। तथा दूध को भी वस्त्र द्वारा छान कर के लेना चाहिये। लकडी को जलाने से पूर्व झाडकर अर्थात् अच्छी प्रकार से देख कर प्रयोग में लेना चाहिये। हो सकता है कि उसमें कीट पतंग आदि जीव हो सकतें हैं। आपके द्वारा अग्नि में ईधन के साथ ही डाल दिये जायेंगे तो जल कर भस्म हो जायेंगे। और जब जीव जल कर मर जायेंगे तो आप को पाप लगेगा ही। थोडी सी सावधानी से बहुत बडे पाप से बचा जा सकता है।

जल में तो जीव होतें हैं, यदि बिना छाने जल पान करोगे तो जीवों को उदरस्थ कर लेंगें, जिससे जीवों की हत्या तो होगी ही। साथ में आपके स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक रहेंगे। जीव हत्या भी तो आपके द्वारा होगी। जीवों की हत्या न करें। जल के जीव जल में ही वापिस छोड दें। अपने तो केवल जल ही पीना है न कि जीवों को।

गाय-भैंस के स्तनों से दूध दुहते हैं, दूध दुहते समय हो सकता है कि उनका कोई रोम दूध में गिर सकता है। आप बिना छाने दूध के साथ रोम भी पी सकते हैं। वह आपके पेट में जायेगा। वहाँ पेट में वह क्या फायदा देगा ? धार्मिक दृष्टि तथा शरीर के स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक ही होगा। इसलिये कहा गया है कि जल व दूध छानकर पीना चाहिये। ईधन को साफ करके ही प्रयोग में लाना चाहिये ।

ग्यारवाँ नियम-वाणी को भी छानकर के बोलना चाहिये। जल-दूध तो वस्त्र के द्वारा छाने जा सकते हैं किन्तु वाणी को किससे छानें ? वाणी को छानने के लिये आपको बुद्धि से विचार करके बोलना चाहिये। बुद्धि रूपी वस्त्र ही छानने का साधन होगा। केवल सत्य बोलना ही प्रयाप्त नहीं है सत्य के साथ-साथ प्रिय भी बोलना आवश्यक है। ''सत्यम ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'' सत्य तो अवश्य ही बोलें, किन्तु सत्य के साथ मीठा-प्रिय भी बोलें। जो सभी को प्रिय लगे ऐसा वचन बोले। '' सुवचन बोल सदा सुहलाली।'' अच्छे, प्रिय, मीठे वचन बोलेंगे तो सदा खुशहाली बनी रहेगी।

प्रिय बोलने वाले के लिये कहीं विदेश नहीं होता। क: प्रदेश प्रियवादिनाम्। '' वाणी में बहुत भारी शक्ति निहित होती है। वह चाहे तो सभी को अपना मित्र बना ले। चाहे तो सभी को अपना शत्रु भी बनाले। अनेक प्रदूषणो में शब्द भी एक प्रकार का प्रदूषण फैलाता है। उत्तेजना फैलाता है। वह शब्द शान्ति का प्रसार भी करता है। शब्द संगीत मय भी हो जाता है, तो परमात्मा से साक्षात्कार करवा देता है। वही शब्द जब गाली युक्त, कठोर होता है तो परमात्मा से दूर हटा देता है। इसलिये सद्गुरु देव ने उनतीस नियमों में से एक नियम मधुर प्रिय शब्द बोलने की आज्ञा दी है।

बारहवाँ नियम-क्षमा दया हिरदे धरो, गुरु बतायो जाण। क्षमा और दया ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विरोधी नहीं है। प्रथम दया भाव होगी तो क्षमा का भाव पैदा होगा। दया भाव तो तभी होगा जब सर्व जन सुखाय व सर्व जन हिताय की भावना होगी। जब मन में परोपकार की भावना पैदा होगी तो तभी दया होगी। या ऐसे कहें कि दया भाव पैदा होगा, तो परोपकार उत्पन्न होगा । यह सभी कुछ तभी होगा जब हम परमात्मा के अति निकट होंगे। संसार से हमारी विरक्ति होगी। संसार में पदार्थ हमारे इतने मूल्यवान नहीं हैं, जितने आत्मा परमात्मा के प्राप्ति की लालसा । कहा भी है-

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम् । परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीडनम् । ।

अर्थात् अपने से कम शक्ति वाला हो, उसने आपका नुकसान कर दिया है। आपका अपराध किया है। उसको आप दण्ड दे सकते हैं। किन्तु आपने अपने क्रोध को वशीभूत करके उसको क्षमा कर दिया है। यही क्षमा भाव है। आप के पास अपने से बलिष्ठ को दण्ड देने का सामर्थ्य नहीं है, तो आप दण्ड नहीं दे सकते।

किन्तु दण्ड देने की भावना तो है, तो आप उसे क्षमा नहीं कर सकते। अन्य किसी दूसरे के दु:ख से द्रवित होकर उसकी हर सम्भव सहायता करने का बीडा उठाया है, तो आप परम दयालु है। पराई पीडा को अपनी ही पीडा मानकर उसको दूर करने के लिये प्रयत्नशील होना ही दया भाव है ।

इसी दया भाव से ही भगवान् विष्णु विभिन्न अवतार लेते हैं और दु:खी जनों की रक्षा करते हैं । दया भाव होगा, जब जीवों की रक्षा होगी। दया-क्षमा भाव परम पवित्र भाव है । इसे विकसित करें। जीवन का आनन्द प्राप्त करें। जीवन में हमेशा अच्छे कर्मों को ही अपनायें, तभी यह जीवन सफल होगा।

तेहरवाँ नियम-चोरी निन्दा झूठ बरजियो, अर्थात् चोरी नहीं करनी चाहिये। यह एक नियम है, दूसरे का धनादिक नहीं चुराना चाहिये। कोई व्यक्ति अपने तथा अपने परिवार हेतु धन कमाता है। अन्य कोई दूसरा उसके धन को चुरा लेता है। हडप कर अपने लिये उपभोग करता है। कमाता कोई और है खाता कोई अन्य ही है। जिसका धन हरण हो जाता है उसके दु:ख का पार नहीं होता। असहनीय दु:ख देने वाला कभी भी सुखी नहीं हो सकता। किसी को किसी भी प्रकार से दु:ख देना पाप है। इसलिये यह पाप कर्म न करें।

चोर की न तो समाज में प्रतिष्ठा है, इसलिये यह लोक तो बिगङ ही गया। तथा न ही परलोक में सुख शांति है। इसलिये दोनों लोकों से ही हाथ धो बैठता है। पराये धन की आशा छोडकर अपनी कमाई पर ही विश्वास करें, उसमें ही सुख है ।

चोरी भी कई तरह की होती है। वह चाहे धन, जमीन, स्त्री, पशु हो अन्य वचनादिक की भी चोरी होती है। सभी प्रकार की चोरी सदा ही वर्जनीय है। समाज में चोरी जारी करके व्यवस्था में अव्यवस्था फैलाना है। मर्यादा को भंग करना ही पाप है। ऐसा पाप न करें।

चौदहवाँ नियम-निंदा नहीं करनी चाहिये। कोई भी व्यक्ति दूसरों की निन्दा करने में रस क्यों लेता है? कुछ कारण तो अवश्य ही होने चाहिये। क्योंकि स्वयं में जब अवगुण बहुतायत से हो, तो व्यक्ति अपने अवगुण छिपाने के लिये दूसरों के अवगुणों का ही मात्र बखान करता है। इससे उसके स्वयं के अवगुण तो समाप्त नहीं हो जाते, किन्तु थोडी देर के लिये उसे शान्ति तो अवश्य ही अनुभव होती है। इसमें ही वह रस लेता है।

दूसरों की निन्दा करने में ही वह लगा रहता है। दूसरों की निन्दा करते समय स्वयं के अवगुण तो समाप्त नहीं होते हैं किन्तु दूसरों के अवगुण तो अवश्य ही आ जातें हैं । अपने स्वयं के पहले से विद्यमान तथा अन्य के अवगुण मिलकर अभिवृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। कौन कैसा है? इससे कुछ भी मतलब नहीं है । हम कैसे हैं? यह हम देखें तो निन्दा भाव लुप्त हो जायेगा ।

मनुष्य की दृष्टि बाह्य है , अन्तर को नहीं देखती । यदि स्वयं को देखने लग जाये तो अवगुणों का भण्डार अन्दर मिलेगा । सभी शास्त्र वेदों में तथा सन्तों ने पराई निन्दा करने वालों को अधम बताया है इससे स्वयं की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। सदा के लिये एक स्वभाव ही बन जाता है । निज उन्नति का मार्ग ही भूल जाता है। इसलिये सदा उन्नति शील व्यक्ति को दूसरे की निन्दा करने के चक्कर में पडकर अपने ही पेर पर कुल्हाडी नहीं मारनी चाहिये । इस दोष से सदा ही सावधान रहना चाहिये ।

पन्द्रहवाँ नियम-झूठ नहीं बोलना चाहिये । सत्य बोलने के समान तो कोई तप नहीं हैं । झुठ बोलने के बराबर कोई भयंकर पाप ही नहीं है । जिसके ह्रदय में सच्चाई है, उसके ह्रदय में हरि आप ही विराजमान होते हैं। यही तो तपस्या का फल है। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये लोग झूठ बोलकर अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं। उससे दूसरों को चाहे कितना ही नुकसान हो, उसकी वो लोग परवाह नहीं करते हैं ।

झूठे व्यक्ति की बात पर कोई विश्वास नहीं करता और बिना विश्वास के लोक व्यवहार नहीं चलता । झूठ बोलकर तो कोई दूसरों को धोखा दिया जा सकता है, लेकिन सत्य पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सभी धर्मों का मूल है। सत्य से पवन चलता है। अग्नि तपती है। सूर्योदय होता है। सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है , सत्य से ही सृष्टि का सम्पूर्ण व्यवहार चलता है , '' सत्यमेव जयते नानृतम '' सदा सत्य से ही विजय होती है । सत्यं वद , सत्य बोले व धर्म का आचरण करे।

सत्य क्या है ? असत्य क्या है ? इसकी मीमांसा कठिन है। कहीं सत्य भी असत्य हो जाता तथा कहीं असत्य भी सत्य हो जाता है। सत्य एवं असत्य का परिणाम देखकर ही निर्णय किया जा सकता है। केवल शब्द बोलने मात्र से सत्य असत्य का निर्णय नहीं किया जा सकता।

उदाहरणार्थ-जैसे कि आपके शब्द बोलने से यदि बहुत बड़ा अनर्थ हो, तो वह आपका सत्य शब्द सत्य नहीं कहलायेगा। क्योंकि उसका फल पापयुक्त है। और यदि आपके असत्य बोलने से यदि किसी के प्राण बच जाते हो, तो वह असत्य भी सत्य हो जाता है। इसलिए सत्य-असत्य का निर्णय उसके फल को देखकर ही किया जाता है। श्री देवजी ने उनतीस नियमों में सत्य बोलने का नियम दिया है। यह नियम सभी के लिए पालनीय है।

सोलहवाँ नियमः- व्यर्थ का विवाद नहीं करना चाहिए। किसी तत्त्व को जानने के लिए आपस में बैठकर वार्तालाप करना तो वाद कहलाता है। यदि सार्थक विवाद हो। जिसमें उत्तेजना नहीं आये तो वह ठीक ही होगा। किन्तु जहाँ पर केवल खण्डन करने की प्रवृत्ति हो जाये। प्रत्येक बात को काटा जाये, वह चाहे ठीक हो चाहे अठीक हो, ऐसी प्रवृत्ति विवाद को जन्म देती है। विवाद हमें कहीं नहीं पहुँचाता। केवल स्व अहंकार की पुष्टि करता है।

श्री देवजी ने कहा- **वाद विवादे दाणू खीणा,** वाद विवाद करके राक्षस मारे गये। **वाद विवाद फिटाकर प्राणी, छाडो मनहट मन का भाणो।** हे प्राणी !व्यर्थ का विवाद करना छोड़ दे। तुम्हें जो अच्छा लगता है। इसलिए तुम उस बात को दूसरों से मनवाने के लिए प्रयत्नशील हो जाते हो। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो बात तुम्हें अच्छी लगे, वह सभी को अच्छी लगे। व्यर्थ का विवाद करके स्वयं के अहंकार को पुष्ट न करें। कहा भी है-

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

दुष्ट प्रकृति वाले के पास यदि विद्या आ जाये तो वह उससे विवाद करेगा और सज्जन आदमी के पास विद्या आ जाये तो उससे ज्ञान देगा। इसी प्रकार से धन एवं ताकत का भी सदुपयोग करता है। व्यर्थ के विवाद से बचें, समय का सदुपयोग करें, व्यर्थ का विवाद अनेक प्रकार के झगड़े झंझट पैदा करता है, परमात्मा से दूर ले जाता है। अहंकार की अभिवृद्धि करता है। जीवन की सुख सौम्यता को पलीता लगाता है। सत्य से दूर करके मानव को पशुवत बना देता है। इसलिए व्यर्थ के विवाद में न पड़ें। जहाँ पर विवाद बढ़ता हो, वहाँ पर शांत रहें। वचनों का आदान-प्रदान विवाद को अनंत गुणा बढ़ावा देता है।

सत्रहवाँ नियम- अमावस्या को व्रत राखणों-अमावस्या को व्रत करना चाहिये। अर्थात निराहार रह कर उपासना करनी चाहिये। व्रत-उपवास,उप-समीपे,आवास-निवास रहना चाहिये अर्थात किसके समीप में ? समीप में रहने योग्य तो एक ही हैं, जो अपना है। अपनी आत्मा है अन्य से तो दूर ही रहे। वह परमात्मा सत्य है। सत्य की ही हम संगति करें।

व्रत केवल अमावस्या का ही करना चाहिये। अमावस्या एवं पूर्णमासी दो महान् पर्व हैं। पूर्णमासी को चन्द्र पूर्ण होता है। उस दिन तो व्रत नहीं करना चाहिये। क्योंकि पूर्ण चन्द्र हमें पूर्णता देता है। हमारा चन्द्रमा से गहरा सम्बन्ध है। चन्द्र हमें ज्योति,प्रकाश,ओजस्विता प्रदान करता है। जितने भी पुष्प, फल, अन्न, धन आदि सभी चन्द्रमा से अमृत लेकर अमृत मय बनते हैं,फूलते-फलते हैं। वही फल धानादिक से हम ग्रहण करते हैं, उससे ही हम जीते हैं। चन्द्रमा हमारी जीवन दायिनी शक्ति है। उसे पूर्णमासी को पूर्णता से ग्रहण करें।

अमावस्या के दिन एवं रात्रि में वह जीवनदायनी शक्ति बिना चन्द्रमा के हमें प्राप्त नहीं होती। उस समय यदि हम अन्न खाते हैं तो बिल्कुल निस्तेज, मरे हुए अन्न को खाते हैं। उससे हम रुग्ण हो सकते हैं। जीवन शक्ति उसमें कदापि नहीं होती। इस खाने से तो अच्छा है कि व्रत ही रखें। कम से कम जीवन की विपरीतता से तो बचेंगे।

अमावस्या के दिन व्रत करे। व्रत का अर्थ होता है कि संकल्प करे। अर्थात् आज मैं अमावस्या को भोजन नहीं करूँगा। यह आपका किया हुआ संकल्प आपकी आत्मा को बल देगा। शरीर एवं वासनाएँ भले ही दुर्बल हो जायें, किन्तु आत्मा की ताकत महत्वपूर्ण है। उसे ही अमावस्या का व्रत करके बढावे। आज तो यह छोटा सा संकल्प किया था, वह पूर्ण हुआ। कल हम इससे भी महान् संकल्प लेकर कार्य पूर्ण करने में सफल हो सकेंगे।

शरीर एवं मन की शुद्धि के लिए अमावस्या का व्रत रखना चाहिये। एक महीने में अमावस्या आती है। महीने में एक दिन व्रत का निश्चित किया है। वह अमावस्या पर्व ही श्रेष्ठ है। क्योंकि हम लोग भूख लगे या न लगे, समय पर भोजन करने में नहीं चूकते। वह अपच भोजन शरीर में विकार पैदा करता है। जिस वजह से अनेकानेक बीमारियाँ जकड़ लेती हैं। इसलिए भी अमावस्या का व्रत बतलाया है।

अमावस्या के दिन अन्य सांसारिक कार्य न करके कवेल आत्म उन्नति हेतु एवं परमात्मा के निमित्त ही कार्य करना चाहिये। यदि अमावस्यादि पर्वों में भी **पालंग सेज निहाल बिछायो** तो होने वाली संतान कुपात्र, दुष्ट या विकलाँग पैदा हो जायेगी। उस दिन तो केवल हवन, जप, तप एवं शुद्ध क्रियाएँ ही करनी चाहिये।

अमावस्या की रात्रि भूत-प्रेतों की होती है। उस रात्रि में राक्षस, प्रेतादिक बलवान हो जाते हैं। उसी दिन यदि हमने उन दुष्टात्माओं को पुष्ट करने वाले कार्य किये, तो वे हमें आकृष्ट कर लेंगे। हमारे अपने साथी बन जाये हमें हर प्रकार से कष्ट देंगे। उस दिन यदि हमने परमात्मा का स्मरण, यज्ञ, सत्संग, आदि देवताओं के कार्य किये, तो हमारे ऊपर उन राक्षसों का जोर नहीं चलेगा। हम देवताओं की तरफ बढ़ेंगे। परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करेंगे।

अठाहरवाँ नियमः- भजन विष्णु बतायो जोय। श्री जाम्भेश्वरजी कहते हैं कि विष्णु भगवान् का भजन करना चाहिये। शब्दों में अनेक बार विष्णु भजन की ही महिमा बतलाई है। भजन अर्थात्-भज, सेवा, सेवा करे, वह भी भगवान् विष्णु की ही करे। गीता में भी कहा है- **आदित्यानामहं विष्णु** देवताओं में विष्णु देवता भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मैं हूँ।

श्री देवजी ने अन्यत्र भी कहा है- **ओम् विष्णु सोहं विष्णु, तत्त्व स्वरूपी तारक विष्णु।** ओम् नाम से परमात्मा कहा जाता है, वह विष्णु ही है। वह आत्मा रूप परमात्मा भी विष्णु ही है। तत्त्व रूप विष्णु ही है। सभी को तारने वाले, साकार रूप भी विष्णु ही कहे जाते हैं। विष्णु की ही सेवा करे। किन्तु विष्णु की सेवा किस प्रकार से करे, वे तो सम्पूर्ण सृष्टि के पालनपोषण कर्त्ता हैं। उन्हें तो किसी प्रकार की सेवा की

आवश्यकता नहीं है। किन्तु विष्णु की संतान जितने जीवधारी हैं, उनकी सेवा करे। यही विष्णु की सच्ची सेवा है। जीवन परमार्थ हेतु होना, यही विष्णु की सेवा है। यज्ञ द्वारा उपासना करना, सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय ही विष्णु की सेवा भजन है।

जितने भी अवतार होते हैं, वे सभी विष्णु के होते हैं। सभी अवतारों का भजन स्मरण एक साथ नहीं हो सकेगा। किन्तु एक विष्णु की उपासना करने से सभी की उपासना भजन हो जायेगा। तीन देव प्रसिद्ध हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश। किन्तु एक विष्णु ही व्यापक रूप से सर्वत्र अवस्थित हैं। वही विष्णु जब सृष्टि का कर्त्ता होता है तो ब्रह्मा रूप से अभिहित होता है और सहांरकर्त्ता होता है, तो शिव रूप से प्रसिद्ध होता है और पालन पोषण कर्त्ता होता है, तो विष्णु रूप से रहता है।

इस समय हमें न तो उत्पत्ति की आवश्यकता है। वह तो पहले से ही बहुत हो चुकी है। और न ही संहार की ही आवश्यकता है, क्योंकि समय आने पर यह कार्य तो स्वत: ही हो जायेगा। हमें तो केवल पालन-पोषण की आवश्यकता है, जिससे सुखमय जीवन व्यतीत हो सके। इसके लिए विष्णु की ही शरण में जाना चाहिये। विष्णु की अर्द्धांग्नि लक्ष्मी हैं। लक्ष्मी का अर्थ धन-दौलत है। वह देने वाला विष्णु ही है क्योंकि लक्ष्मी उनके पास में ही है। उन्हें छोड़कर अलग नहीं जाती। लक्ष्मी की प्राप्ति हेतु विष्णु का भजन करे, यही समझदारी की बात है।

उनीसवाँ नियम:- जीव दया पालणी। जीवों पर दयाभाव रखें। उनका पालन पोषण करें। न कि उन्हें बेवजह मारें या सतायें। कहा है-**भवन-भवन म्हे एका जोति।** सर्वत्र उस एक परमात्मा की ही ज्योति है।

ये जितने भी जीव हैं, ये ईश्वर के ही अंश हैं। **पिता अहं पुत्रस्य** भगवान् कहते हैं कि मैं ही जगत का पिता हूँ। सम्पूर्ण संसार ही मेरा पुत्र है। **बीजमहं सर्वभूतानाम्।** सभी भूत प्राणियों का भगवान् ही बीज है। बीज का ही वृक्ष रूप से सारा संसार विस्तार है।

उस भगवान् के रूप को नष्ट करने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। किसी भी जीव को मारना या उसे सताना, महा घोर अन्याय है। एक जीव दूसरे जीव को मारेगा या सतायेगा तो उन जीवों के कर्म उन्हें ही तो भोगने पड़ेंगे। **जीवो जीवस्य भोजनम्** जीव ही जीव का भोजन है। एके जीव दूसरे जीव को खा जाता है। ये सभी जीवों के आपस के बदले हैं। आपस का वैरभाव सदा से चलता रहता है।

यह मानव जीवन मिला है। इसमें रहकर सूझबूझ से वैरभाव निवृत्त किया जा सकता है। **ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि, भस्मसात् कुरुते अर्जुन।** ज्ञानरूपी अग्नि सभी कर्मों को जला देती है। ज्ञान की प्राप्ति मानव शरीर से ही हो सकती है। अन्य योनियों में असम्भव है। इसलिए मानव को चाहिये कि सभी जीवों की रक्षा करें, उन्हें न ही सतायें और न ही मारें।

बीसवाँ नियम: रूँख लीलो नहीं घावे। हरा वृक्ष नहीं काटना चाहिये। हरे वृक्ष में जीव होता है, इसलिए तो वह फूलता फलता है। वृद्धि एवं अवृद्धि को प्राप्त होता है। अन्य जीवों की भाँति हरे वृक्ष में भी चेतनता है। काटने पर सूख जाता है। जल की प्राप्ति होने पर प्रफुल्लित भी हो जाता है।

हरा वृक्ष महान् परोपकारी है। वह परमार्थ हेतु छाया, फल-फूल, लकड़ी, देता है, इसके साथ ही साथ सभी जीव धारियों को श्वाँस भी प्रदान करता है। दूसरे जीव-जन्तुओं द्वारा छोड़ा गया श्वांस वृक्ष स्वयं पी जाता है और अपना छोड़ा हुआ श्वांस मानवादि को देता है, उससे सभी जीते हैं। यह परस्पर सहयोग की भावना से प्रकृति में संतुलन बनाये रखता है। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

हरे वृक्ष वर्षा को खींचकर के ले आते हैं। जहाँ पर भी हरे वृक्ष होंगे, वहीं पर ही वर्षा प्रचुर मात्रा में

होगी। जहाँ पर भी वृक्षों का अभाव होग, वहाँ पर स्वाभाविक रूप से वर्षा का अभाव होगा। अकाल पड़ेगा। इसलिए वृक्ष लगाना चाहिये।

हे वील्हा! इस मरुभूमि में अन्य वृक्ष तो होना कठिन है। यहाँ तो खेजड़ी वृक्ष ही आसानी से हो सकती है। देखो! वन में चारों तरफ खेजड़ी ही खेजड़ी दीख रही हैं। दूसरे वृक्ष तो हो सकता है। फसलों को नुकसान पहुँचाये। किन्तु यह खेजड़ी तो सर्वगुण सम्पन्न होने से फसल को अनन्त गुणा बढ़ा देती है। इस देश में तो यही वृक्षों का राजा है। ये तो तुलसी सदृश पूजनीया है। कम वर्षा में भी यह पनपने वाली तुलसी इस देश के लिए तो सर्वथा उपयुक्त है।

इसका आश्चर्य तो देखो, वर्षा को खींचकर के ले आती है। किन्तु वर्षा के ऊपर का जल जो फसल के काम आता है, उसको नहीं पीती। उस जल को नीचे धरती में जाने से रोकती है और नमी बनाये रखती है तथा अपने से छोटे को जल पिलाती है। स्वयं तो अपनी प्यास पाताल के जल से बुझाती है। इसकी जड़ें पाताल को चली गयी है। वहाँ से जल को खींचकर के ले आती है। स्वयं भी जल पीती है और अपने आश्रितों को भी पिलाती है। फसल आदि अपने से छोटों पौधों को वृद्धि में सहयोग प्रदान करती है।

इस खेजड़ी के पत्ते, फल, सांगरी आदि भी बहुत ही उपयोगी हैं। गाय, ऊँट आदि पशु बड़े ही चाव से खाते हैं। यह बड़ा ही पौष्टिक आहार है तथा इसका फल सांगरी मनुष्यों के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसकी बहुत ही स्वादिष्ट एवं सर्वरोग नाशक सब्जी बनती है। ताजी या सुखाकर भी कार्य में लाई जा सकती है। इसलिए श्रीदेवजी ने हरे वृक्षों की रक्षा करने का नियम दिया। न तो स्वयं ही काटें और न ही दूसरों को काटने दें। **सिर साँटे रूँख रहे तो भी सस्तो जाण।**

इक्कीसवाँ नियमः- अजर जरे। **अजर जरे जीवत मरे तो वास स्वर्ग ही पावै।** जरणा रखे। काम, क्रोध, लोभ,मोह,ईर्ष्या आदि जो सदैव जलाने वाले हैं। इन्हें जला डालें। कभी हमें वासना, कभी हमें क्रोध, कभी मोह, लोभ, ईर्ष्यादि हमारी दुर्गति करते रहते हैं। इनसे सावधान रहें। इनके हम दृष्टा साक्षी बन जायें। जब भी इनका आक्रमण हमारे ऊपर होवें, तभी हम जग जायें। सचेत हो जायें, तो हम अपने को बचाकर रख सकते हैं। इनके आक्रमण से हम बेहोश हो जाते हैं। ये अपना प्रभाव डाल देते हैं।

हम शरीरधारी आत्मा अपने परमात्मा से विलग ही बने रहते हैं। अपने मूलस्वरूप की झलक हमें नहीं मिल पाती। जो हमारा बीज है, बुनियाद है, उससे हम लोग दूर हट गये हैं। इस समय भटक चुके हैं। ईश्वर एवं जीव से मिलन नहीं हो पा रहा है। इसमें मुख्य बाधा केवल अहंकार ही है। हमारे बीच की खाई बन चुका है। अति निकट होने पर भी अति दूर करने में अहंकार ही कारण है। जिस समय अहंकार की निवृत्ति हो जायेगी। उसी दिन **जीवत मरो** की बात सार्थक हो जायेगी। हम अपने स्वरूप में स्थित हो जायेंगे। उसी दिन आनन्द की बधाईयाँ बँटेगी। अपने प्रियतम से मिलन हो सकेगा। जम्भेश्वर जी ने कहा भी है-

जीवत मरो रे जीवत मरो, जां जीवन की विधि जाणी।
जे कोई आवे हो हो करता, आपज हुइये पाणी।

यही बात यति गोरख भी कहते हैं-

मरौ वै जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरख मरि दीठा।

जीवत मरो। अहंकार को छोड़ो तो जीवन की विधि जान सकोगे। यदि कोई तुम्हे मारने के लिए आग बबूला क्रोध में भरकर आता है, तो आप जल के समान शीतल हो जाइये। जल से आग स्वयं ही बुझ

जायेगी। इस प्रकार से मर कर देखो। यही मरना कितना मीठा है ? कितना आनन्द से भरा हुआ है ? यह कहा नहीं जा सकता। स्वयं यदि अपने आप नहीं मर सकते, क्योंकि स्वयं का मरने का अनुभव नहीं है तो गोरख यति, जाम्भा यति से मरना सीखो। उन्होंने स्वयं मरकर के देखा है। तभी तो वहे कह रहे हैं कि आप भी हमारे तरह आनन्द से पूर्ण होइये। यही आनन्द ही जीवन का स्वर्ग है। यह आनन्द ही जीवन जीने की कला है। यही जीने की विधि है।

गुरु के समीप रहकर यही उत्तम विधि सीखी जाती है। अन्यथा तो इस संसार में दुःख भटकन के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यही भटकन ही नरक है, परमात्मा की प्राप्ति ही स्वर्ग है। स्वर्ग एवं नरक के बीच में अहंकार विद्यमान है, अहंकार से निवृत्ति तो परमात्मा की अपार कृपा से ही हो सकती है।

बाईसवाँ नियमः- करे रसाई हाथ सों, आन सू पला न लावे। रसोई अर्थात् भोजन अपने हाथ से ही बनावे। दूसरों से पला अर्थात् सम्पर्क न करें। यहाँ पर हाथ से अर्थात् अपने ही जैसे संस्कारित जनों द्वारा बनाया हुआ भोजन करे, जिसका संस्कार नहीं हुआ है, जो नियम पालन नहीं करता है, वह असंरुकारित है। उसके द्वारा बनाया हुआ भोजन न करे।

जो लोग बिश्नोई पन्थ में सम्मिलित हो गये हैं। जिन्होंने पाहल ग्रहण कर ली है। उनतीस नियम अपना लिये हैं। उसके ही हाथ का भोजन करो। जो लोग आपके जैसे अर्थात् संस्कारयुक्त नहीं हैं वह **आन** हैं अर्थात् आपसे भिन्न दूसरी जाति के हैं। उनका बनाया हुआ भोजन अपवित्र है। वह न करे, क्योंकि हो सकता है उन्होनें भोजन में अभक्ष्य कुछ बनाया हो। जो आपको भ्रष्ट कर सकता है। अभी अभी नये ही बिश्नोई पंथ के पथिक बने हैं। यदि इस समय इन्हें खाने-पीने की छूट दे दी जायेगी, तो अभक्ष्य पदार्थ खा सकते हैं। खाने-पीने से हमारी बुद्धि और मन बनता है। मन और बुद्धि ही इस जीवन को चलाते हैं। मार्ग तय करते हैं। ये अपवित्र हो जायेंगे तो हम इस मार्ग से भटक जायेंगे। जैसे के तैसे बने रहेंगे। जब मार्ग पर ही नहीं चलेंगे तो पहुँचेगे कैसे। मार्ग का अनुसरण ही नहीं करेंगे, तो मार्ग बताना ही व्यर्थ हो जायेगा।

भोजन में शुद्धता एवं पवित्रता होनी चाहिये। अन्यथा शरीर की भूख तो हो सकता है भोजन मिटा दे, किन्तु बुद्धि-शक्ति से यह शरीर वंचित रह जायेगा। अनेकों व्याधियाँ आकर घेर लेगी। शरीर रुग्ण हो जायेगा। मन एवं बुद्धि भी विचिलत हो जायेगी। ऐसे दुःख भरे शरीर में यह आत्मा रहना नहीं चाहेगी। यहाँ से प्रस्थान कर जायेगी। हम एक सौ वर्ष जीने की कल्पना नहीं कर सकते। असमय में ही मृत्यु का ग्रास बन जाएगा।

आचारो ही प्रथमो धर्मः। आचार-विचार युक्त जीवन ही पहला धर्म है। **आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः** आचार-विचार से हीन मानव को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आचार-विचार, खाना पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना आदि सभी कुछ आचार ही है इनमें पवित्रता होनी चाहिये। यह सभी कुछ स्वयं ही करणीय है। स्वयं ही देख, सोच समझकर जल भोजन ग्रहण करें।

विशेष रूप से तो यह नियम तभी निभ सकता है, जब सभी कार्य स्वयं ही हाथ से ही करें। इसलिए श्री देवजी ने हाथ से ही भोजन बनाने का नियम बताया। स्वयं ही कार्य करके,बना करके भोजन करता है, तो उसको महान संतुष्टि होती है। अपने ही अनुकूल भोजन बनता है। दूसरों के द्वारा बनाया हुआ भोजन अपने अनुकूल नहीं होता है। आत्मा की संतुष्टि प्रदान करने वाला नहीं होता है। भोजन बनाने वाले की भावना भी बहुत कुछ कार्य करती है। यदि वह क्रोध, काम, लोभ, मोह अवस्था में भोजन बनायेगा, तो खाने वालों को भी वही दोष जकड़ लेगा।

भोजन बनाने वाले की भावना भी भोजन में निहित होती है। इसलिए सभी से अच्छा तो यही है कि भोजन या तो स्वयं ही बनावें अथवा अपने ही सदृश लोगों द्वारा बनाया हुआ करें।

तेईसवाँ नियमः- अमर रखावे ठाट। अमर रखावे ठाट-अधिकतर किसान वर्ग के लोग बिश्नोई पन्थ में सम्मिलित हुए थे, किसानों मे ंभी ज्यादातर जाट वर्ग ही बिश्नोई बने थे। वे लोग भेड़-बकरी पालते थे। यही उनकी आजीविका थी। उस समय में तो ये लोग अधिक संख्या में बिश्नोई हो गये थे। उनका धंधा भेड़-बकरी पालन ही था। इस धंधे में जीव हत्या होती थी, बकरे आदि कसाइयों को बेचे जाते थे। कसाई लोग बकरों को काट डालते थे।

भेड़-बकरियों के साथ अधिक नर रखे नहीं जा सकते थे। इस समस्या के समाधान हेतु श्री जम्भेश्वरजी ने कहा-आप लोग सभी बकरों का एक ठाट बना दो, कसाइयों के हाथ मत दो। मतलब यह था कि किसी प्रकार से जीव हत्या न तो करो और न ही करने दो। धीरे-धीरे आप लोग बकरियाँ पालनी छोड़ दो। जो अन्य लोग पालन करे, तो वही जाने। आप लोग अब अहिंसक बन गये हैं। भेड़ बकरियों के स्थान पर अब आगे गऊ पालन करो। धीरे धीरे आपका इनसे पीछा छूट जायेगा। इसलिए जाम्भोजी महाराज ने बिश्नोइयों को भेड़ बकरी पालन के लिए मना किया है। जिस कार्य को करने से जीव हत्या हो, ऐसा कार्य कदापि नहीं करना चाहिये।

मुख्य रूप से इस नियम का प्रयोजन जीवरक्षा ही है तथा अभक्ष्य भोजन का त्याग करना भी है। यदि किसी को भेड़पालन करना है तो यह नियम भी अवश्य ही पालनीय है। यदि स्वत: ही भेड़ बकरी पालन नहीं करता है, तो उसके लिए यह नियम लागू नहीं होगा। क्योंकि वह इस नियम का पालन करता ही है। इस नियम का मुख्य उद्देश्य तो बिश्नोई को भेड़-बकरी पालन से निवृत्त करना है। इसलिए इस समय यह नियम सार्थक है।

चौबीसवाँ नियमः- बैल बधिया न करावे। बैलों को नपुसंक न बनावें। बिश्नोई स्वयं यह कार्य न करे तथा न ही करवावें। यह तो सर्वमान्य है कि बिना नपुसंक करवाये बैल हल आदि नहीं चलते हैं तो हलगाड़ी आदि चलाने के लिए ही ऐसा किया जाता है। किन्तु इस क्रूर कार्य को करने और करवाने में बिश्नोई सहयोग न दे, अन्य कोई करे तो करने ना दें।

यदि कृषि कार्य हेतु बैल चाहिये, तो उसके लिए खरीदा जा सकता है। अपनी गाय का बछड़ा बेचा जा सकता है। इससे स्वयं इस क्रूर कार्य से बचा जा सकता है। यह नियम भी जीव दया पालणी से सम्बन्धित है। दया ही धर्म का मूल है। जब मूल बीज भी धर्म के अन्दर नहीं होगा, तो क्या फूलेगा ? क्या फलेगा ? दया हीन कर्म करने से दया का लोप हो जाता है फिर कभी दया का अंकुर फूट नहीं पाता।

जाम्भोजी महाराज ने कहा है कि **दया धर्म थापले निज बाला ब्रह्मचारी।** मैं दया धर्म की स्थापना करने वाला बाल ब्रह्मचारी हूँ।

पच्चीसवाँ नियमः- अमल,तमाखू,भांग,मद्य,माँस सूं दूर ही भागे। अमल- अफीम नहीं खाना चाहिये। अफीम भयंकर नशा है। यह शरीर मन, बुद्धि को अपने वश में कर लेता है। ऐसी अवस्था में इससे छुटकारा पाना कठिन है। इसलिए पहले से ही नियम बना लेना चाहिये, मैं खाऊँगा ही नहीं। यह नियम प्रतिज्ञा की रक्षा करता है।

अफीम शरीर की ताकत को समाप्त कर देती है, बीमारियों से लड़ने की शरीर में ताकत नहीं रहती है। धन-परिवार शरीर से यह बर्बाद कर देती है। ज्यों ज्यों नशा बढ़ता जायेगा त्यों-त्यों मानव उसके वशीभूत

होता जायेगा।

अफीम आदि का नशा करने वाला जीते जी मुर्दे के समान हो जायेगा। अन्य नशीली वस्तुओं मे यह अफीम शिरोमणि नशा हैं और नशा ही मौत की निशानी है। यदि किसी को अपने जीवन को जल्दी बर्बाद करना हो तो इसे अपना लें। देखने में तो अच्छा लगता है, किन्तु घुण की तरह जीवन को खा जाता है।

छब्बीसवाँ नियम-तम्बाकू- जीवन में सुख शाँति चाहनें वाले के लिए चाहिये कि वह तम्बाकू का सेवन किसी भी प्रकार से न करे। इस तम्बाकू ने मनुष्य समाज पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। वह चाहे अग्नि के संयोग से धुएं के रूप में अन्दर आकर, बाहर जाकर अपना राज्य स्थापित करती है, वह चाहे सूंघकर चाहे खाकर कैसे भी हो यह चारों तरफ से मनुष्य को घेरकर मुर्दा बना देती है। इसलिए तम्बाकू का सेवन वर्जनीय है।

तम्बाकू का सेवन करने वाला यज्ञ में आहुति देने का अधिकारी नहीं है। तम्बाकू खाने, पीने, सूँघने वाले के हाथ से दी हुई आहुति देवता भी ग्रहण नहीं करते। उनके द्वारा किए हुए सभी धार्मिक कार्य जैसे हवन-पूजा,पाठ,दान,दक्षिणा आदि व्यर्थ हो जाते हैं। उनका कोई फल नहीं होता है, जैसे ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज। इन सभी बातों पर विचार करने से ऐसा ही परिणाम आता है कि तम्बाकू का सेवन नहीं करना चाहिये।

सत्ताईसवां नियमः- भांग भक्षण नहीं करना चाहिये। भाँग एक प्रकार का विष है जो धीरे-धीरे मन बुद्धि को पागल कर देता है। थोड़ी देर के लिए भाँग का नशा जीवन की वास्तविकता से दूर हटा देता है किन्तु जीवन की बीमारी, दु:खों का स्थाई ईलाज नहीं है। किसी भी व्यसन में पड़ा हुआ मानव अपने आप को खोता है। जीवन के कष्टों से थोड़ी देर के लिए दूर भागना चाहता है किन्तु यह कोई स्थाई ईलाज नहीं है। वे दु:ख तो कर्मों के अनुसार पीछे ही लगे रहते हैं। दु:ख मिटाने के चक्र में दु:ख को आमंत्रण देकर बुला लेता है।

नशा अनजाने में ही संगति से सीखा जाता है। फिर वह नशा काँटे की तरह चुभता रहता है। अपने में जकड़ लेता है। साँप छछून्दर की गति हो जाती है। नशा आजीवन अपना दास बना लेता है। मानव की मानवता आजादी छिन जाती है। अपने अन्दर पाप को बैठने की जगह प्रदान करता है। गोरख यति भी यही कहते हैं-

भाँग भखत ध्यान ज्ञान खोवत, यम दरबार ते प्राण रोवत।

भाँग खाने से ज्ञान ध्यान खो जाते हैं। आगे यम के दरबार में अवश्य ही पहुँचेगा। तब हिसाब किताब होगा तो तुम्हारा यह जीव रोयेगा। इसको कौन बचायेगा। जाम्भा यति ने भी कहा है-

आगे सुरपति लेखो मांगे, कह जीवड़ा के करण कमायो।
थरहर काँपे जीवड़ो डोले, उत माई पीव कोई न बोले।

अट्ठाईसवाँ नियमः- माँस-मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये। जिसने शराब का सेवन कर लिया उसे सभी पाप कर लिये, कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा। इसलिए यहाँ पर मद्य और माँस दोनों एक साथ ही रखें है। बुद्धि ही तो भक्ष्य एवं अभक्ष्य का निर्णय करती है। दारू से बुद्धि ही विचलित हो गयी तो फिर कौन निर्णय करेगा ? क्या खाना चाहिये और क्या नहीं खाना चाहिये ? मनुष्य अपने अन्दर कितनी बातें छिपाकर रख लेता है, जो कहने और करने योग्य नहीं होती हैं। समाज में जीने के लिए कुछ मर्यादा होती है। उन मर्यादाओं का त्याग करने से व्यवस्था बिगड़ती है। उपद्रव मच जाता है। शराबी व्यक्ति इन दोनों ही बातों का उल्लंघन करता

है। न तो वह किसी प्रकार की मर्यादा को समझता है और न ही कुछ छिपाने योग्य को छिपा पाता है। इसलिए शराब सदा ही वर्जनीय है। माँस सेवन नहीं करना चाहिये यह तो जीव दया पालनी नियम से भली-भाँति ज्ञात हो चुका है।

श्री जम्भेश्वरजी ने ये नियम एक-एक करके अलग-अलग गिनाये हैं। केवल इतना ही कह देते हैं कि सभी प्रकार की नशों वाली वस्तुएँ त्याज्य हैं। यह संभव था, किन्तु एक-एक गिनाने से, बार-बार दोहराने से नियम पालन करने में दृढ़ता आती है। इशारे द्वारा अलग-अलग बतलाने से इनका महत्व बढ़ जाता है।

उनतीसवाँ नियमः- लील न लावे अंग, देखते दूर ही त्यागे। नीले रंग का वस्त्र धारण न करें। हमारा शरीर प्रकृति से बना हुआ है, प्राकृतिक ही हम सेवन करें वही हमारे लिए ठीक तथा अनुकूल भी है।

मानव प्रकृति में विकृति पैदा करके नील का निर्माण करता है। उससे शरीर को लड़ना पड़ता है। उस लड़ाई में हमारी शक्ति व्यर्थ में व्यय होती है। हमारी प्रकृति के प्रतिकूल विष होता है। विष हमारे शरीर को मार देता है। वह विष नील रंग का होता है।

शिवजी ने विषपान किया था, जिससे कंठ नीला हो गया। हम लोग नीले वस्त्र धारण करेंगे, तो हमारी गति भी अच्छी नहीं होगी। शिवजी ने तो विष को पचा लिया था किन्तु हम पचा नहीं पायेंगे। पूर्णरूपेण यदि नहीं मरेंगे तो भी मरे हुए जैसे तो अवश्य ही हो जायेंगे। जीवन में कुछ भी सार नहीं होगा। जीवन के सुख से रहित हो जायेगा।

बाल्मीकि रामायण में कथा आती है कि त्रिशंकु को वशिष्ठ के पुत्रों ने शाप दिया-कि तुम चाण्डाल हो जाओ। राजा चाण्डाल हो गया-

अथ रात्र्यां व्यतीतायां, राजा चण्डालतां गतः।
नील वस्त्रो नील पुरुषो, ध्वस्त मूर्धजः।
चित्य माल्यांग रागश्च, आ; सा भरणो अभवत्।

त्रिशंकु राजा चाण्डाल हो गया। उसके वस्त्र नीले रंग के हो गये। सिर नीचे झुक गया। आभूषण लोहे के हो गये। रंग काला एवं कद ठिगना हो गया। यह नील रंग चाण्डालता को प्राप्त करवाता है। अनेक शास्त्रों ने नील वर्जित किया है। नीला वस्त्र पहन करके यज्ञ में आहुति देने पर देवता ग्रहण नहीं करते। दान-पुण्य किया हुआ सफल नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रकार से नीला वस्त्र वर्जित है। नीला वस्त्र सूर्य की गर्मी को आकर्षित करता है। शरीर में जलन पैदा कर देता है। अनेकों प्रकार की बीमारियां होने का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए इस देश में रहने वालों को नीला वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये।

नीला वस्त्र राक्षसी पहनावा है। जैसा हमारा बाह्य परिवेश होगा, वैसी ही हमारी आन्तरिक वृत्तियाँ कार्य करेगी। नीला वस्त्र पहनने से राक्षसी वृत्ति जाग्रत होगी, तो पाप कर्म करने में सुविधा होगी। इसलिए इस प्रकार के लोग नीला वस्त्र ही पहनना पसंद करते हैं। देवी वृत्ति वाले नीला वस्त्र पहनना पसंद नहीं करते हैं, क्योंकि देवभाव उनमें रहता है। वे लोग वैसा वस्त्र सफेद, पीला, भगवां आदि पसन्द करते हैं। उन्हीं से उनकी वृत्ति विकास को प्राप्त होती है। इसलिए शुभ कार्य करने वालों के लिए नीला वस्त्र नहीं पहनना चाहिए।

भक्त समाज का अपना एक अलग पहनावा है। रहन-सहन, व्यवहार आदि विचित्र ही होता है। अलग

से पहचान हेतु श्री गुरुदेव ने बिश्नोई भक्त समाज से कहा कि आप लोग नीले रंग के वस्त्र न पहनें क्योंकि आपकी वृत्ति दैवी है। कहीं राक्षसी वृत्ति पुनः नहीं बन जाये। प्रकृति के साथ जीओ, तुम्हारा जीवन सुखमय होगा।

जीआ ने युक्ति और मुवा ने मुक्ति देने वाले ये उनतीस नियम श्रीदेव जाम्भोजी ने अपने मुख से बतलाये हैं। इन्हीं नियमों की वजह से यह बिश्नोई पंथ चला। ये नियम सदा एक रस रहने वाले स्थायी है। युगों-युगों से चलते आये हैं और आगे भी चलते रहेंगे। इस प्रकार से नियम बतलाकर बिश्नोई पंथ की स्थापना की।

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! आपके श्रीमुख द्वारा बिश्नोई पंथ स्थापना की वार्ता सुनी। उनतीस नियमों को भी ध्यानपूर्वक श्रवण करके हृदय में धारण किया। यह पंथ है, जो भी इस पंथ-मार्ग में चलेगा, वही पहुँच जायेगा। किन्तु अब आगे अन्य भी कुछ श्रवण करने योग्य है, जो आप मुझे अवगत करवायें, आपकी महत्ती कृपा होगी।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! श्री सिद्धेश्वरजी ने उनतीस नियमों के अतिरिक्त भी बहुत से शब्द सुनाये हैं। उन शब्दों को मैं तुम्हें धीरे-धीरे बतलाऊँगा। जब बालक जन्म लेता है और तीस दिन के पश्चात् सूतक निकालते समय जाम्भोजी महाराज द्वारा नियुक्त किये गये थापन (पुरोहित)द्वारा घर में हवन किया जाता है। हवन के पश्चात् कलश पूजा एवं पाहल किया जाता है। पाहल उस बच्चे एवं माँ के लिए सूतक निकालने के लिए किया जाता है। पाहल मंत्र कलश पूजा मंत्र तो मैंने तुम्हें पहले ही बतला दी है। पाहल द्वारा बालक को बिश्नोई बनाया जाता है। जन्म से बिश्नोई नहीं होता है। संस्कार द्वारा बनाया जाता है। कहा भी है-

जन्मना शुद्रो अजायत, संस्कारात् द्विज उच्यते। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। संस्कार से द्विज यानि दूसरा जन्म होता है। दूसरे जन्म हेतु श्रीदेवजी ने मंत्र का उच्चारण किया है उस मंत्र द्वारा पाहल जल अभिमंत्रित करके बालक को तीन बार पिलाया जाता है। तीन बार ही मंत्र का उच्चारण किया जाता है। वह मंत्र इस प्रकार से हैं-

बालक मंत्र

ओ३म् शब्द गुरु देव निरंजन, ता इच्छा से भये अंजन।
पांच तत में जोत प्रसनु, हरि दिल मिल्या हुकम विष्णु।
हरि के हाथ पिता के पिष्ट, विष्णु माया उपजी सिष्ट।
सप्त धात को उपज्यो पिण्ड, नौ दस मास बालो रह्यो अघोर कुण्ड।
अरध मुख ता उरध चरण हुतास, हरि कृपा से भया खलास।
जल से न्हाया त्याग्या मल, विष्णु नाम सदा निरमल।
विष्णु मंत्र कान जल छुवा, गुरु फुरमाण बिश्नोई हुवा।

बालक को इस मंत्र द्वारा क्या दिया जा रहा है, यह विचारणीय है। जल के साथ यह मंत्र पिलाया जाता है। जिसका भाव इस प्रकार से है-हे बालक! ओम् शब्द ही गुरुदेव निरंजन परमात्मा है। ओम् शब्द ही सृष्टि के पालन-पोषण उत्त्पति एवं संहारकर्त्ता विष्णु है। उसकी इच्छा से ही हे बालक! तुम्हारी उत्त्पति हुई है। तुम्हें यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है।

वह विष्णु ज्योतिस्वरूप से पाँच तत्त्वों में विद्यमान है। उन्हीं पाँच तत्त्वों से तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है।

हरि कृपा एवं आज्ञा से ही जन्म होता है। वही तुम्हारा पिता है। उसे भूल मत जाना। यही तुम्हारा मूल एवं बीज है। जब तुम गर्भवास में थे, तभी तुम्हारा ऊपर हरि का हाथ था। वहाँ पर भी तुम्हारी भोजनादि से रक्षा की थी। तुम्हारे शरीर तो तुम्हारे लौकिक माता पिता से मिला है। किन्तु अन्य सभी कारण वही तुम्हारा परमात्मा विष्णु है।

केवल तुम्हीं अकेले सृष्टि में जन्मे हो, ऐसा भी नहीं है। यह सम्पूर्ण सृष्टि ही विष्णु की माया से उत्पन्न हुई है। यह तुम्हारा शरीर तो सप्त धातुओं से उत्पन्न हुआ है। सप्त धातु जैसे-त्वचा, रक्त, माँस, मेदा, मज्जा, अस्थि और वीर्य। इन्हीं सभी को मिलाकर एक शरीर बना है। ये भी पाँच तत्त्वों के ही रूप हैं।

नौ-दस महीनों तक बालक गर्भवास में रहा था। गर्भवास का दु:ख अघोर नर्क की भांति अति दु:खदायी है। हे बालक! ऐसा उपाय करना ताकि पुन: इस अघोर कुण्ड में आना न पड़े। गर्भवास में था, तब तो नीचे मुख, चरण ऊपर थे। उल्टा लटका हुआ था। हरि की कृपा से ही बाहर आया है। जन्म लिया है।

इस समय तुम्हें तीस दिन हो चुके हैं। तुमने स्नान कर लिया है। मल को त्याग चुके हो। यह तुम्हें विष्णु का नाम कानों से सुनाया जा रहा है। जल-पाहल एवं मंत्र तुम्हें पवित्र कर देगा। सदा-सदा के लिए तुम्हें जन्म-मरण से छुटकारा दिला देगा। इस विष्णु मंत्र द्वारा कानों को जल से छुवा दिया है। गुरुदेव निरंजण द्वारा कहा हुआ यह मंत्र तुम्हें बिश्नोई बना देगा, अर्थात् जन्म मरण के चक्कर से छुड़वा देगा। अब तुम्हें फिर से जन्म इस प्रकार से नहीं लेना पड़ेगा।

नवजात शिशु को यह मंत्र सुनाया जाता है। जल पाहल दिया जाता है। अभी तो वह बिल्कुल शुद्ध पवित्र ब्रह्मस्वरूप ही है। जो भी संस्कार अन्दर डाला जायेगा, वह स्वत: ही ग्रहण होगा। बालक ज्यों-ज्यों बढ़ता जायेगा, त्यों-त्यों अनेकों प्रकार की व्याधियों से भरता जायेगा। इसलिए यह प्रथम संस्कार इसी प्रकार से करणीय है।

नाथोजी उवाच:-हे शिष्य! इस बालक मंत्र के पश्चात् जब बालक समझदार हो जाता है। लगभग दस-बारह वर्षों का, तब उसे सुगरा मंत्र सुनाया जाता है। इसे सुगरा संस्कार कहते हैं। अनादि काल से ही गुरु धारण करने की परम्परा चली आयी है। राम-कृष्ण अवतारी पुरुषों ने भी गुरु धारण किया था। स्वयं जाम्भोजी ने संभवत: गोरख यति को गुरु माना हो, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि वे स्वयं ही गोरख का नाम बड़े ही आदर से लेते हैं-**जुग छतीसूं एके आसन बैठा बरत्या।** छत्तीस युग एक आसन पर बैठे व्यतीत हो गये।

गुरु बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। प्रथम शब्द में ही श्री देवजी ने गुरु की महिमा बतलाई है। गुरु से श्रद्धावान ही ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। इसलिए सुगरा संस्कार करवाया जाता है। बालक को गुरु मंत्र दिया जाता है। साथ ही साथ हवन पाहल भी किया जाता है। गुरु भी कैसा हो, यह भी बतलाया है-

जो स्वयं मोह माया के कीचड़ में फंसा हुआ है, वह भला क्या शिष्य को पार उतारेगा? गुरु स्वयं ज्ञानी, ध्यानी, यति हो, तब उसका दिया हुआ मंत्र सफल होता है। कहा भी है- **जिंहि जोगी की सेवा कीजे, तूठो भवजल पार लंघावे।** इसलिए श्री देवजी ने विरक्त यति साधु को ही गुरु मंत्र देने का अधिकार दिया है। दिया जाने वाला गुरुमंत्र इस प्रकार से है-

गुरु दीक्षा मंत्र (सुगरा मंत्र)

ओ३म् शब्द गुरु सुरत चेला, पाँच तत्त्व में रहे अकेला।
सहजे जोगी शून्य में बास, पाँच तत्त्व में लियो प्रकास।
ना मेरे माई ना मेरे बाप, अलख निरंजन आपही आप।
गंगा यमुना बहे सjस्वती, कोई कोई न्हावे बिरला जती।
तारक मंत्र पार गिराe, गुरु बतायो निश्चय नाम।
जे कोई सुमिरै उतरे पार, बहुरि न आवे मैली धार।

यह गुरु मंत्र जब साधु-गुरु सुनाता है तो बालक समझ की तरफ तेजी से बढ़ता है। उसके मन में अनेक जिज्ञासाएँ खड़ी होती है। जो भी उसे दिया जायेगा, वह उसका अमर धन होगा। ऐसी अवस्था में उसे यह सुगरा मंत्र ही देना चाहिये। इस मंत्र के अन्दर बहुत कुछ समाया हुआ है। यह केवल मंत्र ही नहीं है, उच्च कोटि की साधना भी है। जो सहज में ही की जा सकती है। इस मंत्र के बारे में थोड़ा विचार कर लेना चाहिये।

ओम् शब्द ही गुरु है। सुरति ही चेला है। यही गुरु और चेले का शाश्वत सम्बन्ध है। ओम् ईश्वर का नाम है। वह ईश्वर ही गुरु हैं और सुरति अर्थात् जीवात्मा ही चेला है। यह जीवात्मा चेला तभी है, जब ओम् शब्द से सम्बन्ध स्थापित कर ले। उसे एक क्षण भी भूले नहीं। अन्यथा गुरु कहीं, चेला कही। कोई अर्थ नहीं है। न ही वह चेला बन सका है। इससे आगे मंत्र में कहा है कि-

तुम इन पाँच तत्त्वों से भिन्न अकेले हो। क्योंकि तुम्हारा सम्बन्ध तो ओम् गुरु से है। पाँच तत्त्वों का सम्बन्ध तो केवल शरीर से ही है। यदि इस प्रकार का सम्बन्ध गुरु से जोड़ लिया जाय तो तुम सहज ही में योगी हो। किसी प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। संसार में रहते हुए भी तुम्हारी वृत्ति सुरति शून्य में ही रहेगी। वह शून्य ही ओम् की ध्वनि है। वही गुरु है, उन्हीं में तुम सदा रमण करोगे।

पाँच तत्त्वों में तुम्हारा ही प्रकाश विद्यमान है। तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो। ब्रह्म का ही अचेतन पाँच तत्त्वों में चेतनता रूपी प्रकाश है। न तो इस आत्मा के माता हैं और न ही पिता हैं। केवल शरीर के तो अवश्य ही माता-पिता हैं। आत्मा अलख निरंजन स्वयं अपने आप में ही स्थित है। न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। अलख निरंजन निर्लेप, अगोचर ब्रह्म रूप है। ऐसा ही इसे समझें।

इसी मानव शरीर में ही गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों पवित्र नदियाँ बहती हैं। किन्तु उनमें स्नान कोई बिरला यति ही करता है। **मनुष्याणां सहेषु** हजारों मनुष्यों में कोई एक। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् समाधि अवस्था में जो आनन्द की प्राप्ति होती है, वह त्रिवेणी में स्नान है। तुम्हारा तिलक लगाने का स्थान त्रिकुटि कहा जाता है। इसी त्रिकुटि में ही तीनों का संगम होता है। त्रिकुटि में ध्यान करने से ज्योति आनन्द एवं ज्ञान इन तीनों की प्राप्ति होती है। वही योगी का लक्ष्य है। हे बालक! तुम्हें भी वही आनन्द ज्ञान एवं तेज की प्राप्ति करनी है। हे शिष्य! यह मंत्र तारक है। संसार सागर से पार उतारने वाला है। गुरु ने निश्चय करके बतलाया है। इसका श्रद्धा एवं विश्वास से स्मरण एवं साधना कर ले। जे कोई भी स्मरण करेगा, वह संसार सागर से पार उतर जायेगा। उस परम पद को प्राप्त कर लेगा। जहाँ से वापिस लौटकर नहीं आयेगा। इस प्रकार से यह सुगरा मंत्र गुरुदेव ने सुनाया है।

तीसरा मंत्र-संन्यास मंत्र है। जब कोई संन्यस्त होना चाहता है, तब यह मंत्र सुनाया जाता है। गुरु महाराज ने कहा है-

कोड़ निनाणवे राजा भोगी, गुरु के आखर कारण जोगी

माया राणी राज तजीलो, गुरु भेटीलो जोग सझीलो।

एक या दो नहीं, जब से सृष्टि रची गयी है, तभी से ही निनाणवे करोड़ राजा योगी हो गये। संन्यास धारण करके माया राणी राज को त्याग दिया। वन में तपस्या करके शरीर को सुखा दिया। शरीर की कुछ भी परवाह न करते हुए अपने कार्य में संलग्न रहे।

चार अवस्था में मानव जीवन को बांटा है। प्रथम अवस्था ब्रह्मचारी, जो पच्चीस वर्ष तक की है। उसके पश्चात् पचास वर्ष तक गृहस्थ आश्रम है। तीसरा वानप्रस्थ आश्रम पचहतर वर्ष तक का है और चौथी अवस्था सन्यास सौ वर्ष तक की है। इसलिए सन्यास लेकर के परोपकार कार्य एवं साधना में संलग्न होना चाहिये। स्वयं यतीश्वर ने संन्यास धारण किया था तथा अपने शिष्यों को संन्यास में दीक्षित किया था। उन दीक्षित शिष्यों में हे वील्हा! मैं भी एक हूँ। जो तुम्हें दीक्षित करके इस पंथ को आगे बढ़ाया है। तुम्हें भी इस परम्परा को आगे बढ़ाना है तथा इस गुरु मंत्र को देकर सन्यास में दीक्षित कर लेना है।

साधु (गुरु) दीक्षा मंत्र

ओ३म् शब्द सोहं आप, अन्तर जपै अजप्या जाप।

सत्य शब्द ले लंघे घाट, बहुरि न Vावे योनी वाट।

परसे विष्णु अमृत रस पीवै, जरा न व्यापे, युग युग जीवै।

विष्णु मंत्र है प्राणाधार, जो कोई जपै सो उतरे पार।

ओ३म् विष्णु सोहं विष्णु, तत स्वरूपी तारक विष्णु।

गुरु जब किसी नये व्यक्ति को साधु दीक्षा देता है, भगवाँ वस्त्र धारण करवाता है, तो यह उपर्युक्त मंत्र सुनाता है। ऐसी ही परम्परा श्री गुरु देवजी ने बतलायी है। हवन पाहल के साथ ही साथ यह मंत्र सुनाकर उसे साधना में रत होने के लिए तैयार करता है। मंत्र एवं साधना दोनों ही इस मंत्र में विद्यमान हैं। इसलिए यह विचारणीय है कि क्या साधना हमारे साधु विरक्त समाज को दी है।

ओम् शब्द ही आत्मा है। जो यह ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ। ऐसा ही स्मरण जप करें। उसी का ही साक्षात्कार करें। जिसका साक्षात्कार किया जावेगा, वह मैं ही हूँ। इसलिए अपने स्वरूप में स्थित होना ही अन्तिम लक्ष्य एवं साधना है। बाह्य दिखावा न करें। केवल अजप्या जाप, श्वांसों ही श्वांस स्वत: ही स्मरण चलता रहे। किसी भी क्षण उसे भूलें नहीं। यही परम साधना, ध्यान एवं पूजा है। यही साधना यति, साधु, संन्यासी के लिए बतलायी है।

सत्य शब्द ओम् ही है। इसे ही लेकर संसार सागर से पार उतर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। सत्य शब्द लेकर संसार सागर से पार उतर जाने का अर्थ है कि बार बार माँ के गर्भ में नहीं आना पड़ेगा। सदा-सदा के लिए मुक्त हो जायेगा। विष्णु का दर्शन स्पर्श इस मन्त्र द्वारा करे। इसी मार्ग को पकड़कर विष्णु का साक्षात्कार करें। जो आपकी आत्मा रूप से विद्यमान है।

जब आपको विष्णु का दर्शन स्पर्श हो जायेगा, तो उस अद्भुत अमृत रस की प्राप्ति होगी जो अब तक

आपने नहीं चखा है। उस महान् आनन्द की प्राप्ति होगी। संसार में कहीं भी किसी भी विषय में वह आनन्द दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार से अमृत की प्राप्ति हो जाने से आपको बुढ़ापा नहीं अयेगा और न ही आप मृत्यु को प्राप्त हो सकोगे। कहा भी है-

कलियुग दोय बड़ा राजिन्दर, गोपीचन्द भरथरियो जीवनै।

ऐसे लोग अमृत का पान करके अमर हो गये। यह विष्णु मंत्र ही प्राणों का आधार है। हमारे प्राण चलते हैं। हमारा जीवन सुचारू रूप से उन्हीं विष्णु की कृपा से ही चलता है। जो भी जप करेगा वह संसार सागर से पार उतर जायेगा। ओम् ही विष्णु है, विष्णु ही ओम् है। इनमें कुछ भी भेद नहीं है। मैं भी विष्णु हूँ। आप भी विष्णु हैं। यह आत्मा जिसे मैं नाम से कहा जाता है, वह विष्णु ही है। इस संसार में जो भी तत्त्व है वह विष्णु ही है। अन्य सभी कुछ तो मिथ्या ही है।

इस संसार में शरीर धारी जीव को संसार सागर से पार उतारने वाले भी विष्णु ही हैं। इसलिए जप विष्णु का करें। शरण विष्णु की ग्रहण करें। क्योंकि विष्णु सभी की आत्मा हैं। ओम् की ध्वनि उच्चारण करें, वह भी विष्णु ही है। इस प्रकार की शब्द साधना साधु को दी जाती है।

कथा गूगलिये की

नाथोजी ने अपने प्रिय शिष्य वील्होजी को बिश्नोई पन्थ स्थापना की कथा सुनाते हुए आगे पुनः कहा-हे शिष्य! मैंने जो तुम्हें बापेऊ गाँव की कथा सुनायी थी, उसी गाँव की कुछ विशेष बातें जो कहने से रह गयी हैं, वह तुम्हें बतलाता हूँ-

बापेऊ गाँव के लोगों ने मिलकर विचार किया कि हमें जीवन धारण करना है, तो जाम्भोजी की बात माननी होगी। वे परोपकारी, सुखकारी, त्यागी, संत महापुरुष हैं। हमारे गाँव तक चलकर आये हैं, तो उनकी यह निश्चित ही करुणा की भावना है अन्यथा उन्हें यहाँ क्यों आना होता? इनकी शरण में जाने से हमारे सभी दुःख कट जायेंगे।

कुछ लोग आश्चर्य कर रहे थे। उन्हें झटिति विश्वास नहीं हो रहा था। यह कैसे हो सकता है कि दुनिया को भोजन देगा। यह लोहटजी का बेटा तो भोलाभाला है। इन्हें अब तक पता नहीं है कि दुनिया बहुत बड़ी है। ऐसे ही लोगों को भ्रमित कर रहा है। खास भण्डारी विष्णु बिना क्या कोई सभी को अन्न खिला सकता है। सम्पूर्ण दुनिया अन्न की तरफ देख रही है। पार पड़े तब ही जाने, क्या सत्य है?

सतगुरु ने हंसकर कहा- आप चिन्ता न करें। मेरे पास सभी का पालन पोषणकर्त्ता विष्णु है। जब धरती पर वर्षा हो जायेगी, तो गायें पेट भर घास चरेंगी। बहुत दूध-दही-घी होगा। तथा तुम्हारे खेतों में बाजरी, मोठ, मतीरा, काकड़िया, तिल आदि धान फल फूल होंगे, तब तक मैं आपको दूँगा।

गुरु के वचन सत्य हैं। ऐसा विश्वास मानकर बापेऊ गाँव के लोगों ने गाँव की तरफ से पूरबे को तैयार किया। तुम ऊँट लेकर जाओ तथा ऊँट पर छाटी अढ़ाई मन की लेकर देवजी के साथ ही सम्भराथल पर पहुँच जाओ। इकान्तरे से, एक दिन छोड़कर दूसरे दिन। अढ़ाई मन की छाटी भरकर ले आओ (आज का तोल दो क्विन्टल होता है)

पूरबा ऊँट लेकर देवजी के साथ ही सम्भराथल पर पहुँचा। वहाँ उन्होंने बहुत बड़ी अन्न की ढ़ेरी देखी। उसमें से बाजरी की छाटी (बोरी) भर करके पूरबे ने ऊँट पर लादी और वापिस अपने गाँव लौट आया और गाँव के लोगों को बाँटकर दे दिया। बिना तोले नापे पूरा अढ़ाई मन अन्न बराबर बंट गया।

बापेऊ गाँव के लोगों ने पूरबे से पूछा-पूरबा! बतलाओ तुमने क्या देखा? पूरबा बोला-मैं तो यहाँ से चलकर देवजी के पास गया था। वहीं पर मैंने अन्न की बहुत बड़ी ढ़ेरी देखी थी, उसी ढ़ेरी में से मैं छाटी भरकर ले आया हूँ। यह मेरी छाटी लगभग अढ़ाई मन की है, इसको मैंने भर ली। वहाँ से और बहुत सारे लोग ले जा रहे थे। वहाँ पर कोई भी ताकड़ियों से तोल नहीं रहा था और न ही कोई माप था। ऐसा कुछ भी नहीं देखा। वहाँ तो जम्भेश्वर जी के वचनों से ही तुलता है। घर पर लाकर बाँटने से भी पूरा ही बंटता है। अब अन्न आ गया है। गाँव के लोगों की भूख समाप्त हो गयी है। आप लोग चिन्ता मत करो। मैं इकान्तरे एक दिन छोड़कर दूसरे दिन जाऊँगा। इसी प्रकार से छाटी छालकर के ले आऊँगा। सतगुरु ने ढ़िगली (ढ़ेर) बता दी है। कितने भी लोग ले जाये किन्तु कम नहीं पड़ता और समाप्त होने का तो सवाल ही नहीं है। देवजी ने हमारे पर दया की है। जो ऐसे सतगुरु अपने देश गाँव में भेजे हैं जो हमारे तो साक्षात् विष्णु ही है। हे भाईयों! अपने लोगों ने गुरु के वचन स्वीकार किये हैं, उनके पंथ में सम्मिलित हुए हैं। अब तो उनको ही अपनी चिंता है। यदि उस दिन उनके वचन नहीं मानते, तो यहाँ से उठकर चले जाते। हमारी दुर्गति होती। बतलाओ तो सही उनके सिवाय हमारा रक्षक और कौन है?

इस प्रकार से कार्तिक माह व्यतीत होते ही सर्दी का मौसम आ गया। पूरी सर्दी भी जाम्भेजी द्वारा दी हुई बाजरी का भोजन करते हुए व्यतीत कर दी। आगे गर्मी का मौसम आने की तैयारी कर रहा था। ये दो महीने गर्मी के भी व्यतीत हो जायेंगे। अति निकट ही आषाढ़ का महीना आयेगा। भगवान् की कृपा से हमारे देश में भी वर्षा आयेगी। गायों के लिए हरा-हरा चारा होगा। हम लोग भी अपने अपने खेतों में हल चलायेंगे। बहुत ही अन्न उपजेगा।

तब तक खाली बैठे क्या करें? गाँव के लोग एकत्रित हुए और कहने लगे-हे भाइयो! जाम्भोजी महाराज हमें अन्न देकर हमारा भरण-पोषण करते हैं किन्तु अपने को भी खाली नहीं रहना चाहिये। कुछ न कुछ धन्धा अवश्य ही करना चाहिये। आगे श्रावण का महीना आ रहा है। खेती के लिए बीज चाहिये। पास में कुछ रुपये पैसा हो तो गृहस्थ परिवार में काम आते हैं। अपने लोग सिन्ध में अपने अपने ऊँट लेकर चलते हैं। वहाँ से गेहूँ लायेंगे। कुछ अपने कार्य हेतु उपयोग में लेंगे तो कुछ व्यापार करके लाभ कमायेंगे। इस प्रस्ताव का सभी ने अनुमोदन किया।

जिनके पास अपने चार-पाँच ऊँट थे, वे तो लेकर तैयार थे। किन्तु खिलेरी गोत्र के कुछ लोग चिन्ता में पड़ गये क्योंकि घर में तो कुल दो ही ऊँट है। एक तो घर पर घर के कार्य हेतु रहना चाहिये। केवल एक ऊँट लेकर इतनी दूर जाने में कुछ भी लाभ नहीं था। अन्य तो इस समय में कोई भी देने को तैयार नहीं था। कौन देगा? सभी तो अपना-अपना कार्य करना चाहते हैं।

खिलेरियों ने पूरब से कहा-हे पूरबा! आज तुम देवजी के पास जाओ तो उनसे एक ऊँट माँगकर ले

आना साथ ही साथ गेहूँ खरीदने के लिए रुपये भी ले आना। तुम्हें पता ही है हम लोग सिन्ध देश में जा रहे हैं। जिन्होंने प्रदेश जाने से हमको रोका है। अब तक अन्न दिया है। वह एक ऊँट भी दे देंगे।

पूरबे ने सतगुरु के पास जाकर गाँव के लोगों की बात सुनाई और कहा हे देवजी! यदि आप इस समय उनकी माँग पूरी नहीं करोगे, तो ये हमारे लोग बहुत ही ठग हैं। वापिस मुड़ जायेंगे। आपको पीठ दिखा देंगे। इतने दिनों तक आपका अन्न खा-पी कर भी आपकी बात, आपका पंथ छोड़ देंगे। स्वीकार नहीं करेंगे।

हे देव! आपने तो अन्न दिया। उपकार किया, किन्तु यह कार्य हमारा कर दोगे तो हमारा कार्य बन जायेगा। हम सदा-सदा के लिए आपके हो जायेंगे।

देवजी ने कहा-हे पूरबा! आज तो तुम वापिस अपने गाँव चले जाओ। कल वहीं पर ही रहोगे। परसों जब आओगे, तब अपने गाँव से गूगल लेकर आना। पूरबा ने सतगुरु की बात स्वीकार करके अपने घर पर गया और सभी को अन्न बाँटा।

लोगों ने पूछा-पूरबा! देवजी ने क्या कहा ? क्या वो ऊँट एवं रूपये देंगे ? क्या तुमने पूछा ? उन्होंने क्या क्या कहा ? सभी समाचार बतलाओ। वे हमें कुछ देगे क्या, हमारा कार्य सफल होगा ? पूरबा हंसकर कहने लगा-सतगुरु के साथ आपकी वार्ता करने से बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब आपका कार्य बन ही गया समझो। उन्होनें गूगल एवं घी मंगवाया है। अब की बार मैं लेकर जाऊँगा। फिर देखते हैं कि क्या होता है। दूसरे दिन पूरबा सतगुरु के पास गया और गूगल घृत सतगुरु के हाथ में दिया।

देवजी सदा वन में ही रहते हैं। हरे वृक्ष की तो टहनी भी नहीं तोड़ते हैं। सूखा वृक्ष वहाँ कोई था ही नहीं। जब से सम्भराथल जंगल में आये हैं, वृक्ष सभी हरे-भरे हो गये हैं। शून्य में हरि ने हाथ फैलाया तो अग्नि आ गयी।

पूरबे ने देखा-सतगुरु ने यज्ञ किया। यज्ञ में गूगल घृत की आहुति प्रदान की। आकाश मार्ग से एक ऊँट आता हुआ पूरबे ने देखा। वह ऊँट सम्भराथल पर आकर बैठ गया था। बैठा-बैठा जुगाली कर रहा था। अन्यत्र अनेकों ऊँट बैठे जुगाली कर रहे थे। ये ऊँट तो ऊँटनी के जन्मे हुए तो नहीं हैं, क्योंकि इनके शरीर से गूगल की महकार आ रही है। यह तो निश्चित ही कृष्ण चरित्र से गूगल का ही ऊँट है। पूरबे ने ऐसी विचित्र लीला देखी और जय जयकार करने लगा।

हे सतगुरु! हम तो आपकी ही शरण में हैं। सतगुरु ने पूरबे को अनेक थलों पर बैठै हुए ऊँट दिखाये और कहा-जो तुम्हें अच्छा लगे, वही पकड़ लो। पूरबे ने उनमें से एक ऊँट जो अति सुन्दर, मजबूत, ताकतवर था, उसे पकड़ लिया। वह ऊँट बड़ा ही गुणी था। ऐसा ऊँट तो अब तक किसी ऊँटनी के जन्मा भी नहीं था। उसका रंग भी गूगल वर्ण का था, आँखें कज्जली थी। चलने में सभी से आगे था। जिस देव ने बिना ही ऊँटनी के ऊँट पैदा किया है, यह तो कोई मानव चरित्र तो हो ही नहीं सकता।

देवजी ने कहा-हे पूरबा! यह ऊँट तू अपने घर लेजा और किसी को कुछ चाहिये वही मिलेगा। पूरबा ने कहा-हे देवजी! हमें ऊँट तो मिल गया, किन्तु अब हमारे पास ऊँट पर काठी-पलाण एवं छाटी नहीं है। वह भी आप ही दे देवें तो अन्यत्र कहीं याचना न करनी पड़े। सतगुरु पूर्ण दाता हैं। सभी कुछ पूरबे को दे दिया। पूरबा लेकर अपने गाँव लौट चला।

चलते समय सतगुरु ने कहा-हे पूरबा! जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाये तो इसको वापिस लौटा जाना। इस ऊँट को देखकर मन में लोभ मत करना। यह गूगल से निर्मित है, सदा तुम्हारे पास रहने योग्य नहीं है।

पूरबा अपने गाँव गया। लोगों ने देखा पूरबा सतगुरु से विचित्र ऊँट, छाटी, पिलाण और रुपये भी लेकर

आ गया है। लोगों ने कहा-चलो अब तो कार्य हो गया है। ऐसा कहते हुए सिन्ध देश में कणक लाने के लिए सैकड़ों ऊँट लेकर चल पड़े।

हे वील्हा! श्री जम्भेश्वरजी ने अपने लोगों को गूगलिया ऊँट प्रदान किया तब वहाँ से चल पड़े, प्रथम मंजिल पर डेरा लगाया। सांढ़ (ऊँटनी) ऊँट मिलकर कतार चली। एक योजन दूर तक गूगल की महकार आती थी। उन ऊँटों में गूगलिया ही सिरदार था। जहाँ भी जिस गाँव-नगर से गुजरते वहाँ के लोग गूगलिये को देखने आते। वहाँ पर कोई भी हवन नहीं करता था फिर भी गूगलिये ऊँट की महकार उन्हें खींचकर ले आती थी।

गूगलिया गुणवान ऊँट था। दर्शनीय था। उस ऊँट से व्यापार करने चले थे। व्यापार में किसी प्रकार की हानि होने का तो संदेह ही नहीं था। न ही उस ऊँट को कोई चोर ही ले जा सकता था, क्योंकि पास में आने से अंधा हो जाता था। इस प्रकार से वह जमात गूगलिये को लेकर सिंध देश पहुँच गयी। वहाँ पर सूंघे भाव से कणक खरीदी और अपने-अपने ऊँटों पर लाद करके वापिस अपने बागड़ देश के लिए जमात चल पड़ी।

गूगलिया सभी से आगे चलता। उसे मार्ग बताने की भी आवश्यकता नहीं होती थी। स्वयं ही मार्ग पकड़कर बागड़ देश के बापेऊ गाँव में अन्य सभी काफिले को लेकर कुछ ही दिनों में वापिस आ गया। सभी लोगों ने गूगलिये को देखकर आश्चर्य किया। कहने लगे-यह तो स्वयं जाम्भोजी के ही स्वरूप हैं। उनका ही बनाया हुआ गुणवान है। अब इसे चरा पिला करके सम्भराथल पहुँचा दो। उनका वचन पूरा करो। पूरबे ने रास निकाल करके सम्भराथल की तरफ गूगलिये को रवाना कर दिया। उस दिन के बाद कभी किसी ने भी गूगलिये को नहीं देखा।

सिन्ध देश से कणक ले आये। वह तो गुरुदेव की कृपा से अखूट ही थी तथा सम्भराथल से लाने का कार्यक्रम ज्यों का त्यों चलता रहा। आषाढ़ का महीना आ गया। भगवान् की कृपा से वर्षा हुई। गऊ आदि पशुओं के लिए भुरट, बेकर, सेवण, गंठिया आदि हरा घास हो गया। लोगों ने अपने अपने खेतों में बाजरी, मोठ, तिल आदि बीज बोये। दो महीने बाद भादवे में अनाज पककर घरों में आना प्रारम्भ हो गया तो भी अढ़ाई मन सम्भराथल से लाते रहे। इन्द्र ने वर्षा करी और हरियाली छा गयी। सभी लोग एकत्रित हुए और कहने लगे-

चलो अब श्री देवजी के पास सम्भराथल चलते हैं। उनसे हमने अन्न-धन आदि सभी कुछ लिया है। उनकी कृपा से यह दुष्काल निवृत्त हुआ है। अब आगे के लिए हमें क्या करना है, जिससे इस प्रकार से पुनः मोहताज न होना पड़े?

सम्भराथल पर गुरुदेव के पास जाकर उन लोगों ने बिश्नोई पंथ के उन्नतीस नियम पालन करने का संकल्प हाथ में जल-पाहल लेकर किया और विधिवत बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हुए। युक्ति मुक्ति का मार्ग पकड़ा।

इस प्रकार से बिश्नोई पंथ प्रारम्भ हुआ। यह पन्थ सिद्धांत पर टिका हुआ है। जिसने भी इन सिद्धांत नियमों को अपनाया, वह सत्पंथ का अनुगामी बना। वह चाहे किसी भी देश, जाति का हो। जो भी सुजीव था, उन्हें ही इस पंथ से लगाव हुआ था। बाकी तो पास में ही खड़े देखते रहे।

घट ऊँधे बरसत बहु मेहा, नीर थयो पण ठालूं। घट को उल्टा किये बैठे रहे, वर्षा तो खूब हुई पर घड़ा खाली रह गया। आगे भी यह पंथ उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहा। वह किस प्रकार से? कौन कौन से लोग इस पंथ के सम्पर्क में आये। यह वार्ता आगे उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती रहेगी।

चौथा अध्याय

महमंद तथा लूणकरण को सदुपदेश

वील्होजी उवाचः-हे गुरुदेव! बिश्नोई पंथ स्थापना की कथा आपसे मैंने ध्यानपूर्वक श्रवण की। अब आगे मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस बिश्नोई पंथ रूपी बहती हुई पवित्र गंगा में किन-किन लोगों ने स्नान किया और कौन कौन संसार सागर से पार उतर गये? क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि यह पंथ तो संसार सागर से पार उतारने की नौका ही है।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! जिस समय सम्भराथल पर बिश्नोई पन्थ की स्थापना हुई थी, उस समय बीकानेर,जोधपुर, मेड़ता,चित्तौड़, जैसलमेर आदि राज तो सभी हिन्दुओं के थे, किन्तु नागौर,अजमेर एवं दिल्ली में मुसलमान राजाओं का राज था। नागौर का सूबेदार महमद खाँ था, जो दिल्ली के बादशाह के अधीन था। वह वहाँ से कर उगाही करके दिल्ली भेजता था। अन्य हिन्दु राजाओं से भी मेलजोल रखता था। सभी अपने-अपने धर्म में रहकर प्रसन्नचित्त थे। आपस में किसी प्रकार का वैर विरोध नहीं था। किसी भी प्रकार से धर्म में दखलांदाजी नहीं थी।

एक समय महमद अपने काजी को साथ लेकर बीकानेर राज में राजकुमार लूणकरण के पास गया। वहाँ पर जाम्भोजी के बारे में चर्चा चली। तब लूणकरण कहने लगा कि मैं तो जाम्भोजी महाराज की बात ही स्वीकार करता हूँ। उन्हें अपना देव-पीर-गुरु मानता हूँ। प्रथम उनसे पूछकर ही फिर कोई कार्य करता हूँ। अपना कार्य पूरा करके काजी वहाँ से रवाना हुआ। मार्ग में सम्भराथल पड़ता है। काजी ने जाम्भोजी से मिलने का विचार किया। क्योंकि लूणकरण से महिमा सुन रखी थी। काजी सम्भराथल पर जम्भेश्वर जी के पास पहुँचा। श्रीहरि हरी-भरी कंकेहड़ी के नीचे विराजमान थे। वही उनका मण्डप मठ था। कहा भी है-**हरि कंकेहड़ी मण्डप मेड़ी, जहां हमारा बासा।**

काजी बोला-हे साधो! आप हमारे देश नागौर एवं बीकानेर की सीमा पर बैठकर क्यों ठगते हो? क्यों मोहित करने के लिए मायाजाल फैलाया है?

जम्भेश्वरजी कहने लगे-मेरी बात सुनो! मैं अवश्य ही लोगों को मोहित करके ठगता हूँ। किन्तु इन लोगों से मैं क्या ठगता हूँ? इनके पास जो वस्तु होगी, वही मैं ठग सकता हूँ। इस समय तो इन लोगों के पास काम,क्रोध,लोभ,मोह,ईर्ष्या,अन्याय,निन्दा,कुकर्म इत्यादि धन बहुत ही मात्रा में है। इन लोगों ने पोटली बाँध रखी है। मैं शब्द रूपी नगाड़ा बजा करके इनसे यह धन लूटता हूँ।

इसलिए हे काजी! यदि कोई मेरे से मिलने के लिए आयेगा, तो वह अवश्य ही कंगाल हो जायेगा। ऐसा वचन श्री देवजी से काजी ने श्रवण किया। वह तथ्य को समझ तो गया किन्तु अनमना होकर वहाँ से चला गया। नागौर में महमद के पास जाकर सम्भराथल के स्वामी की बात बतलायी। कुछ महिमा का भी बखान किया। महमद ने बात को स्वीकार किया और कभी मिलने की प्रतीक्षा करने लगा।

एक समय महमद खाँ नागौर से चलकर पीपासर आया। पीपासर कुएँ के निकट तम्बू तनवायें। एक तम्बू में हाथी को बाँधकर अन्य तम्बुओं में कुछ अन्य वस्तुओं को छोड़कर सम्भराथल पर जम्भेश्वर जी से मिलने के लिए चला। वैसे तो हाथी को तम्बू में नहीं बाँधा जाता। किन्तु बादशाह की अपनी समझ कौन क्या कहे? पीपासर से चला। पीपासर एवं सम्भराथल के बीच में जंगल आया। बादशाह कुछ दिव्य चमत्कार

देखने की लालसा से आगे बढ़ रहा था कि मार्ग में सम्भराथल के निकट ही एक काला हरिण महमद खाँ को दिखलाई दिया। हरिण अति तेजस्वी सुन्दर था। ईश्वर की बनायी हुई कृति का एक जीता जागता सौन्दर्य था। उसे देखकर महमद का मन पलटा खा गया। कहाँ तो देव दर्शन हेतु जाता था किन्तु मार्ग में ही हरिण को मारने की इच्छा बलवती हो गयी। रसना के विषय ने व्याकुल कर दिया। आगे नहीं बढ़ पाया।

तुरन्त महमद ने हरिण को मारने के लिए उपाय प्रारम्भ कर दिया। अन्य अपने सेवकों को साथ लेकर हरिण पर पीछे भागकर तलवार से वार किया। तलवार हाथ से छूटकर हरिण के लग गयी। महमद ने देखा कि शिकार हो गया है। अब मैं पास में जाता हूँ और आगे अपना कार्य करूँगा।

ज्यों ही आगे बढ़ा तो देखा कि वहाँ पर हरिण नहीं था। काला कपड़ा पहने हुए मौलवी बैठा था। महमद घबरा गया। अहो! ये तो हमारे मौलवी हैं। मैंने मौलवी पर प्रहार कर दिया। हाय! मैंने अनर्थ कर दिया। पुन: कुछ कदम आगे बढ़ा, तो न तो वहाँ पर मौलवी था और न ही हरिण। वहाँ तो सम्भराथल पर जाम्भोजी विराजमान थे।

यह क्या दृश्य महमद को दिखलाया था। इससे उसे क्या कहना चाहते थे? यह तो भगवान् ही जाने, किन्तु महमद खाँ समझ गया। यह तो इनकी ही माया है। ये तो माया के अधिपति अम्बा-ईश्वर हैं। जय अम्बेश्वर जय अम्बेश्वर मैं आपकी शरण में हूँ। आपने मुझे इस पाप से बचा लिया। न जाने आपने वह हरिण एवं मौलवी कहाँ गायब कर दिया और आप यहाँ विराजमान हो गये? क्या आप ही सभी कुछ हैं, हरिण मौलवी आदि।

सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता धर्ता स्वयं ईश्वर आप ही हैं? आप ही क्या सर्वज्ञ ईश्वर हैं? घट-घट में व्यापक स्वयं आप ही हैं? सभी के अन्तर्यामी भी आप ही हैं? क्या मुझे ऐसे ही भ्रम तो नहीं हो रहा है? मुझे भी क्या आपने अपनी मायाजाल में तो नहीं डाल दिया है? जिससे मैं यह स्वप्न देख रहा हूँ या सत्य देख रहा हूँ।

यदि आप दूर की वस्तु का दर्शन कर लेते हैं, तो कृपा करके यह बतलाइये कि तम्बू में क्या है? यदि आप देव है, अन्तर्यामी है तो अवश्य सत्य बतलाओगे? अन्यथा मैं आपको केवल मायावी, तान्त्रिक, पाखण्डी ही मानूँगा।

श्री जम्भेश्वर जी ने कहा-हे महमद! तुम्हारे तम्बू में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त जो तुम जानना चाहता है, वह तो एक भेड़ का बच्चा तुम्हारे तम्बू में खड़ा हुआ कुछ बोल रहा है। हे महाराज! आप क्या कहते हैं? आपको कुछ दिखाई कम ही देता है क्या? इतने बड़े हाथी को भेड़ का बच्चा बतला रहे हैं? तब तो आपकी बात विश्वास करने योग्य कैसे हो सकती है?

हे महमद! मैंने तो जो कह दिया वही होगा। हम तो एक ही बार बोलते हैं। जो कुछ कहते हैं, वही होता है। **म्हे भूल न भाख्या थूलूं।** हम कभी भूलकर भी व्यर्थ की झूठी बात नहीं बोलते। यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है, तो जाकर देखकर आओ।

महमद खाँ तुरंत घोड़े पर सवार होकर चला। अभी देखकर आता हूँ। जाम्भोजी को झूठा सिद्ध कर देता हूँ। मैं सच्चा हो जाऊँगा। पीपासर में जाकर तम्बू में प्रवेश कर देखता है कि उसमें तो सचमुच ही भेड़ का बच्चा खड़ा था। उसे देखकर महमद के पैरों तले धरती नीचे धंसने लगी। अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं दिया। दौड़कर सम्भराथल पर आया और क्षमायाचना करते हुए कहने लगा-

महाराज! मैं तो अज्ञानी जीव हूँ। अब मेरे पर कृपा कीजिये, मेरा सवा लाख का हाथी था। वह तो अब सवा आने का हो गया। जैसा आपने कहा वैसा ही हो गया है। अब तो पुन: जैसा था वैसा ही कर दीजिये।

मैं सदा सदा के लिए आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। गुरुदेव ने कहा-जो व्यक्ति अहंकार करता है, उसकी यही गति होती है। उसे हाथी भी भेड़ की तरह दिखता है। स्वयं आप ही जीना चाहता है, अन्य जीवों का तो अस्तित्व मिटा देना चाहता है। अपने सामने किसी को कुछ भी नहीं समझता है। ईश्वर की सत्ता भी उसे मान्य नहीं है। इसलिए हे महमद! अब तो अहंकार को छोड़कर जीवों पर दया भाव करे। जीया ने युक्ति और मुवां ने मुक्ति का मार्ग पकड़।

वापिस पीपासर चला जा। जब सत्य धर्म पर चलने का संकल्प करेगा तो वह भेड़ का बच्चा पुन: हाथी बन जायेगा। ईश्वर में भक्ति, विश्वास में सदा सुख शांति संतोष आता है। तब भेड़ अर्थात् अल्पमात्रा भी बहुत अधिक हो जाता है। किन्तु लोभी, कामी को तो हाथी भी भेड़ ही दिखाई देता है। महमद अपने नियमों पर चलने लगा। सतगुरु से सीख ले ली और उनका शिष्य बन गया।

बीकानेर का राजकुमार लूणकरण एक समय भ्रमण करने हेतु सम्भराथल पर आया। श्री देवजी के दर्शन करके पीपासर होते हुए नागौर पहुँचा। वहाँ पर महमद खाँ सूबेदार से भेंटवार्ता हुई। महमद खाँ ने जो घटना घटी थी, उसके बारे में लूणकरण को विस्तार से बतलाया और कहा कि हमारे देश में ऐसे अवलिया पीर आये हैं, मैं तो उनकी ही बात मानता हूँ। उन्हें ही पीर मानता हूँ। वे तो हमारे साक्षात् अल्ला ईश्वर ही हैं, जो इस रूप में आये हैं।

लूणकरण कहने लगा-इसमें तुम्हारे पीर कैसे हो गये? ये तो हमारे हिन्दुओं के देवता हैं। तुम्हारा कुछ भी सीर नहीं है। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि हमारे पीर हैं? राजकुमार कहने लगा-ये तो हमारे हिन्दुओं के देवता हैं जैसे-स्नान, संध्या, होम, विष्णु का जप, रजस्वला धर्म, सूतक, अन्न का भोजन, मद, आमख से दूर रहना बतलाते हैं। इसलिए हमारे हिन्दुओं के देवता हैं।

महमदं खां कहने लगा-आप लोग हिन्दू हैं, इसीलिए हो सकता है आपको हिन्दुओं के नियम बतलाते होंगे। किन्तु हमें भी तो हमारे नियम बतलाते हैं-जैसे कलमा पढ़ना, एक ईश्वर अल्ला को याद करना, जीव हत्या का त्याग करना, जीवों पर दया करना, नमाज पढ़ना इत्यादि हमारे नियम भी हमें बतलाते हैं। इसलिए तो हम समझते हैं कि हमारे मुसलमानों के पीर हैं।

इस प्रकार से दोनों में विवाद होने लगा। न जाने किसके देवता हैं या पीर हैं? दोनों ही विवादी अपनी बात पर अड़े रहे। कोई भी हार मानने को तैयार नहीं था। जाम्भोजी क्या हैं, किस समुदाय या धर्म से सम्बन्ध रखते हैं, इसका पता लगाना चाहिये, दोनों का विवाद समाप्त करना चाहिये।

इस विचार ने लूणकरण ने पुरोहित को सम्भराथल पर देवजी के पास भेजा और महमंद ने काजी को श्रीदेवजी के पास भेजा। उनसे कहा-तुम दोनों जाओ और जाम्भोजी से पूछकर आओ कि किसके देवता या पीर हैं, वे स्वय क्या हैं।

जम्भेश्वरजी सम्भराथल पर विराजमान थे। बहुत से साथरिया-सत्संगी पास में ज्ञान श्रवणार्थ उपस्थित थे। श्री देवजी ने कहा- दो विवादी आ रहे हैं। एक तो पुरोहित है, दूसरा काजी है। इन्हें सादर यहाँ मेरे पास बुला लाओ। इन्हें अपनी अज्ञानता की हठधर्मिता परेशान कर रही है, इन्हें शाँत करूँगा। वैसे तो वाद विवाद नहीं करना चाहिये। कहा भी है-**वाद विवाद फिटाकर प्राणी, छाडो मनहट मन का भाणो।**

सर्वप्रथम श्रीदेवजी ने पुरोहित को बुलाया। पुरोहित ने कहा- हे देवजी! आप सत्य सत्य बतलाना कि आप हिन्दुओं के देवता हैं या मुसलमानों के। आपका सिद्धांत उपदेश किसलिये? स्वयं आप किसके पक्षपाती हैं? श्री देवजी ने कहा-मुझे आप हिन्दू मत कहो, मैं मुसलमान भी नहीं हूँ। जिसका कर्म शुद्ध

पवित्र है, उसी का ही मैं हूँ।और मेरा भी वही शिष्य है। केवल जाति का भार ढ़ोने से बड़ा नहीं हो जाता है।

उत्तम कुली का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।

अन्दर बैठी हुई जीवात्मा न तो कोई हिन्दू है और न ही कोई मुसलमान ही है। यह शरीर जिस जाति में जन्मा है, उसकी जाति संस्कार वैसे कर दिये जाते हैं। गुरुदेव ने कहा–यह शरीर तो मेरा अजन्मा है। मैं तो संसार की जन्म प्रक्रिया से अलग हूँ। केवल हिन्दू या मुसलमान होने से कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होगा। ऐसा कहते हुए श्रीदेवजी ने यह शब्द सुनाया–

शब्द–7

ओ३म्- हिन्दू होय के हरि क्यूं ना जंप्यो, कांय दहदिस दिल पसरायो।
सोम अमावस, आदितवारी, कांय काटी बन रायों।
गहण गहंते, बहण बहंतै, निर्जल ग्यारस मूल बहंते।
कांयरे मुरखा तै पालंग सेज निहाल बिछाई।
जा दिन तेरे होम न जाप न तप न किरिया, जान के भागी कपिला गाई।
कूड़ तणों जे करतब कीयो, नातैं लाव न सायों।
भूला प्राणी आल बखाणी, न जंप्यो सुर रायो।
छंदे कहाँ तो बहुता भावै, खरतर को पतियायों।
हिव की बेला हिय न जाग्यो, शंक रह्यो कदरायों।
ठाढी बेला ठार न जाग्यो, ताती बेला तायों।
बिम्बै बैला विष्णु न जंप्यो, ताछै का चीन्हों कछु कमायों।
अति आलस भोला वै भूला, न चीन्हों सुररायो।
पारब्रह्म की सुध न जाणी, तो नागे जोग न पायो।
परशुराम के अर्थ न मूवा, ताकी निश्चै सरी न कायों।

इस शब्द द्वारा हिन्दु का मुख्य कर्तव्य क्या है ? यह बतलाया है। जो इस शब्द के अनुसार जीवनयापन करता है। वही असल में हिन्दु कहलाने का हकदार है। केवल हिन्दु के घर जन्म लेने मात्र से हिन्दु नहीं हो जाता।

यह शब्द सुनाकर श्री देवजी ने पुरोहित से कहा–हे पुरोहित! तुम हिन्दु हो, तुम्हारे घर में कोई तुम्हारे जाति वाला भाई तुम्हारे प्रिय मेहमान आ जाये, तो उसकी तुम सेवा करोगे ही। रात्रि में वह तुम्हारे घर से चोरी करके निकल जाये, आप लोग उसे पकड़ने के लिए पीछे जाओ तथा मौके पर पकड़ भी लो, उसी समय ही तुम्हारा कोई विधर्मी भी वहीं पर मिल जाये तो यह बतलाओ कि आप लोग दण्ड उस चोर को दोगे या निरपराध इस विधर्मी मुसलमान को दोगे ? यह मुझे विचार करके बतलाओ।

पुरोहित ने कहा–हे देवजी! इसमें जाति–सम्प्रदाय का कोई कारण नहीं है। जो चोरी करेगा, वही पकड़ा जायेगा, वही दण्डित किया जायेगा। चाहे अपने प्रिय धर्म का ही क्यों न हो।

श्री देवजी ने कहा–हे पुरोहित यह न्याय तुमने अपने आप ही कर दिया है। मैं तो उसका ही हूँ जो

न्याययुक्त सच्चे मानव धर्म मे विश्वास करता है। **साचा सूं पतियायो।** जो सच्चे हैं, वे ही मुझे प्रिय हैं। मैं किसी जाति पाति या धर्म के बन्धन में बंधा हुआ नहीं हूँ। मैं सभी कुछ हूँ, या कुछ भी नही हूँ, मेरे बारे में कुछ भी निश्चय करना कठिन है। हे पुरोहित! आप हिन्दु होकर हरि का जाप करो। हिन्दु के नियमों से नाता जोड़ो। जो मैं कहता हूँ, इन्हीं नियमों पर चलोगे तो आप लोग मेरे हैं। मैं आपका हूँ। केवल दिखावे मात्र से कुछ भी होने वाला नहीं है। ऐसा कहते हुए पुरोहित को दूर बिठाया और काजी को पास में बुलाया और काजी के प्रति शब्द सुनाया–

शब्द–8

ओ३म्– सुणरे काजी सुणरे मुल्ला, सुणरे बकर कसाई।
fd.kjh Fkjih Nkyh jkslks] fd.kjh xkMj xkbZ
सूल चुभीजे करक दुहेली, तो हे हे जायो जीव न घाई।
थे तुरकी छुरकी भिस्ती दावो, खायबा खाज अखाजूं।
चर फिर आवे सहज दुहावै, जिसका खीर हलाली।
जिसके गले करद क्यूं सारो, थे पढ़ सुण रहिया खाली।

काजी कहने लगा–हे पीरजी! हमारे किए हुए कर्म हमारे लिए लागू नहीं होते, क्योंकि हम लोग नमाज पढ़ लेते हैं। इससे हमारे सभी पाप कर्म धुल जाते हैं। श्री देवजी ने कहा–जैसा काजी ने जवाब दिया, वैसा ही शब्द जाम्भोजी ने सुनाया–

शब्द–9

ओ३म्–दिल साबत हज काबो नेड़े, क्या उलबंग पुकारो।
भाई नाऊं बलद पियारो, ताकै गले करद क्यूं सारो।
बिन चीन्हे खुदाय बिबरजत, केहा मुसलमानों।
काफर मुकर होयकर राह गुमायो, जोय–2 गाफल करे धिंगाणों।
ज्यूं थे पच्छिम दिशा उलबंग पुकारो, भल जे यों चीन्हों रहमाणों।
तो रुह चलंते पिण्ड पड़ंतै, आवै भिस्त विमाणों।
चढ़ चढ़ भींते मड़ी मसीते, क्या उलबंग पुकारो।
काहे काजे गऊ विणासो, तो करीम गऊ क्यूं चारी।
काहीं लीयों दूधूं दहियूं, काहीं लीयों घीयूं महियूं।
काहीं लीयों हाडूं मांसूं, काही लीयूं रक्तूं रूहियूं।
सुणरे काजी सुणरे मुल्ला, यामै कोण भया मुरदारूं।
जीवां ऊपर जोर करीजे, अंतकाल होयसी भारूं।

इस प्रकार के शब्द को श्रवण करके काजी पुनः कहने लगा– हे पीरजी! हम लोग जब जीवों को मारते हैं, तब बिसमिल्ला का नाम लेकर जीवों को हलाल करते हैं। यही हमारा धर्म है। इससे हमें किसी भी प्रकार

से पाप नहीं लगता। इस पर श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया–

शब्द-10

ओ३म्- बिसमिल्ला रहमान रहीम, जिंहिं के सदकै भीना भीन।
तो भेटीलो रहमान रहीम, करीम काया दिल करणी।
कलमा करतब कोल कुरांणो, दिल खोजो दरबेस भईलो।
तइया मुसलमाणों। पीरां पूरषां जमी मुसल्लां, कर्तब लेक सलामों।
हम दिल लिल्ला तुम दिल लिल्ला, रहम करे रहमाणों।
इतने मिसले चालो मीयां, तो पावो भिस्त इमाणों।

काजी कहने लगा–हे पीरजी! हम इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। हमारा सबसे बड़ा तीर्थ काबा है। हम वहाँ जाकर हज कर आते हैं। इससे हमारे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जाम्भोजी ने काजी के प्रति पुन: शब्द सुनाया–

शब्द-11

ओ३म्-दिल साबत हजकाबो नेड़े, क्या उलबंग पुकारो।
सीने सरवर करो बदंगी, हक्क निवाज गुजारो।
इंहि हेड़े हरदिन की रोजी, तो इसही रोजी सारो।
आप खुदाय बंद लेखो मांगे, रे बिनही गुन्हे जीव क्यूं मारो।
थे तक जाणो तक पीड़ न जाणों, बिन परचैं बाद निवाज गुजारों।
चर फिर आवे सहज दुहावे, जिसका खीर हलाली।
तिसके गले करद क्यूं सारो, थे पढ़ सुण रहिया खाली।
थे चढ़ चढ़ भींते मड़ी मसीते, क्या उलबंग पुकारो।
कारण खोटा करतब हीणा, थारी खाली पड़ी निवाजूं।
किहिं ओजूं तुम धोवो आप, किहिं ओजूं तुम खण्डा पाप।
किहिं ओजूं तुम धरो धियान, किहिं ओजूं चीन्हो रहमान।
रे मुल्ला मन मांहि मसीत नमाज गुजारिये, सुणतां ना क्या खरे पुकारिये।
अलख न लखियो, खलक पिछाण्यो, चांम कटे क्या हुइयों।
हक्क हलाल पिछाण्यों नाहीं, तो निश्चै गाफल दौरे दीयों।

फिर से काजी कहने लगा– हे देवजी! यह तो नमाज पढ़ना, काबै में जाकर हज कर आना, बिसमिल्ला का नाम लेना, यह तो मुहमंद पीरजी ने स्वयं ही फरमाया था। जैसा आप फरमाते हैं वैसा हमारे आदि पीरजी ने भी फरमाया है। हम तो उनके कहने के अनुसार ही जीवन जीते हैं। उनके बताए हुए धर्म पर ही चलते हैं। श्री जाम्भदेवजी ने शब्द सुनाया–

शब्द-12

ओ३म्- महमंद महमंद ना कर काजी, महमंद का तो विषम विचारूं।
महमद हाथ करद जो होती, लोहे घड़ी न सारूं।
महमद साथ पयंबर सीधा, एक लख असी हजारूं।
महमद मरद हलाली होता, तुम ही भए मुरदारूं।

हे काजी! महमंद का नाम लेकर अपने पापों पर पर्दा डालने की कोशिश मत कर। महमंद तो हक की कमाई की बात करते थे, किन्तु तुम लोग मुर्दा खाने वाले हो। तुम्हारे कार्यक्रम एवं विचारों से मुहमंद का विचार भिन्न था।

तुम लोग लोहे की करद लेकर जीवों को काटते हो, किन्तु महमद के हाथ में ज्ञान की खड्ग थी। उससे अज्ञानियों के पाप काटते थे। महमद के साथ तो एक लाख अस्सी हजार पैकम्बर पार उतर गये।

किसी भी पक्षपात में धर्म निहित नहीं होता। धर्म की गहराइयों को जानने के लिए तो स्वकीय सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठकर ही जाना जा सकता है। महमद खाँ ने मुस्लिम धर्म की कट्टरता छोड़ दी और लूणकरण ने हिन्दू धर्म की कट्टरता को त्यागकर मध्यमार्ग बिश्नोई पन्थ को स्वीकार किया। जब कभी सेवा में उपस्थित होने लगा। अपने जीवन को सफल बनाने का मार्ग पकड़ा तथा दूसरों के लिए भी प्रेरणा के स्त्रोत बने।

शोभाराम के प्रति शब्दोपदेश

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! सम्भराथल पर आसीन होकर श्री देवजी ने क्या-क्या कार्य किये? किन-किन लोगों को उपदेश दिये? यदि आप कहने में समर्थ हो और कथन करने योग्य कोई वार्ता हो तो अवश्य ही कहिये। भगवान् की लीला श्रवण करने से भगवान् के प्रति भक्ति का भाव उदय होता है। भक्ति से बढ़कर अन्य कुछ भी प्राप्त करने योग्य नहीं है।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! भगवान् ने सम्भराथल पर विराजमान होकर अनेकानेक पापी एवं मूर्खजनों का उद्धार किया। उनमें से कुछ जनों के बारे में मैं तुम्हें बतलाऊँगा, ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

जब बिश्नोई पंथ की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु इतना प्रचार-प्रसार अब तक नहीं हो पाया था। उस समय की बात है एक बिश्नोई कार्यवश केलणसर गाँव पहुँचा। रात्रि में विश्राम एवं भोजन हेतु वह शोभाराम सारण (जाट) के घर पर पहुँच गया। जिस समय वह बिश्नोई शोभाराम के घर पहुँचा, तो वह घर पर नहीं था। बिश्नोई ने जाकर बाहर झोंपड़े में आसन लगा लिया।

घर के अन्दर से शोभाराम की पत्नी आयी। उसने देखा कि घर में कोई अतिथि आया है। इसे भोजन पानी के लिए पूछना चाहिये। घर में आया हुआ तिथि तो देवता सदृश होता है। यदि उसको जल-अन्न एवं मधुर वचनों से संतुष्ट नहीं किया जावे, तो वह घर को जला देता है। घर की लक्ष्मी चली जाती है।

शोभा की नारी बोली- हे अतिथि! इस समय आप जल लो। संध्यादिक अपने नित्यकर्म से निवृत्त हो जाओ और थूली (दलिया) खिचड़ी तैयार है, खालो। मैं अभी लाकर देती हूँ।

बिश्नोई ने कहा–अशुद्ध वचन मत बोलो। यह जो तुमने कहा कि खालो, यह अशुद्ध वचन है। जैसा तुम्हारा वचन अशुद्ध है, वैसा ही तुम्हारा पकाया हुआ अन्न एवं जल है। मैं ग्रहण नहीं करूँगा। **जैसा पीवै पाणी वैसी बौले वाणी।**

यदि तुम्हें भोजन करवाना है, तो तुम ऐसा करो कि एक तो तुम मुझे डोरी–रस्सी तथा तांबे का घड़ा–बाल्टी दे दो। मैं कुएँ से जल स्वय ले आऊँगा तथा सूखा आटा दे दो। रसोई अपने हाथ से बनाऊँगा। अशुद्ध भोजन मैं नहीं करता। जब बिश्नोई अपनी बात कह रहा था, तभी शोभा भी आ गया और अपनी धर्मपत्नी से वार्ता सुनी तो कहने लगा–

हे भाई ! तुम कौन हो ? जो मेरे आगे चतुराई करते हो ? मुझ से अधिक यहाँ पर शुद्ध–पवित्र कौन होगा ? यदि खाना है तो दलिया खा ले जो पका रखा है, नहीं तो किसी और के घर चला जा। तब बिश्नोई कहने लगा–तू भी अशुद्ध जाटणी जैसा ही है। शोभा कहने लगा– मैं तो अशुद्ध ही हूँ, किन्तु तू शुद्ध कहाँ से आया ? तू कोई ब्राह्मण प्रणधारी है क्या ? जो काशी से चारों वेद पढ़कर आया। देखने में तो मेरे जैसा अनपढ़ ही दिखता है।

बिश्नोई बोला– हे शोभा ! हम तो गुरु धर्म को मानते हैं। ब्राह्मण, जाट आदि हमारे लिए तो सभी समान ही हैं। यदि काशी से चारों वेद पढ़कर आया हुआ पण्डित भी आचार–विचार हीन है, तो हमारे लिए आचारहीन जाट जैसा ही है।

शोभा बोला– मैं देखता हूँ कि किस मोडे–साधु ने भरमाया है। इसलिए मेरे सामने आचार–विचार की बात करता है। मैं उस मोडिये को भी देख लूँगा कि कैसे लोगों को भ्रमित करता है। मेरे यहाँ तो सभी लोग आकर हाथ फैलाते हैं। बड़े–बड़े राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेठ, सूफी, चारों वर्णों के लोग हमसे ही प्राप्त करते हैं। अब तक किसी ने भी मुझे आचार–विहीन नहीं कहा। किन्तु यह मोडा हमको नीच बताता है। मेरी निन्दा करता है। देखने में यह अर्द्धसाधु मालूम पड़ता है। पूर्ण यदि होता तो ऐसी बात नहीं करता।

बिश्नोई कहने लगा–हे भाई ! क्यों व्यर्थ की बकवास करते हो। यह शब्द की लड़ाई लड़ने से कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि कुछ सेवा करनी है, सुभ्यागत के महत्व को जानता है, तो मुझे जल लाने हेतु शुद्ध बर्तन दो और आटा दे दो। मैं भोजन बनाकर भोजन कर लूँ।

जाट कहने लगा– **भावैं तो दलियों उठ खावहूँ, निं तो और घरां उठ जावहूँ।** बिश्नोई उठकर बाहर जाने लगा। शोभा ने रोका इस प्रकार से जाओ मत। यहीं ठहरो। जो तुम्हें चाहिये सोई मिलेगा। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें सिखाया है। मैं उन्हीं से जाकर झगड़ा करूँगा। उन्हीं से जाकर पूछूँगा।

बिश्नोई को डोरी दी, तांबेड़ा दिया, कुण्ड से जल भरकर के ले आया। सूखा आटा ही लिया। गऊ बैठक में जाकर भूमि को शुद्ध करके चूल्हा बना करके, बर्तन साफ करके रसोई बनाई। रूखा–सूखा भोजन किया। गो ग्रास निकालकर गो को दिया। भगवान् के अर्पण करके भोजन को अमृत तुल्य मानकरके किया। शोभा ने देखा और कहा–

मैंने बड़े–बड़े यति, ब्राह्मण, साधु संन्यासी देखे हैं, किन्तु ऐसा पाखण्ड नहीं देखा। रात्रि को बैठकर जप करते हुए और **सहजे सोवण पोहका जागण,** प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान ध्यान करके बिश्नोई रवाना होने लगा और कहने लगा भाई ! मेरे पर कृपा रखना। मैंने आपको कष्ट दिया, उसके लिए क्षमा करना। अब मुझे आगे का रास्ता बतला दो।

शोभा कहने लगा–मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगा। तुम्हारे गुरु से जाकर बहुत ही झगड़ा करूँगा। ऐसा कहते

हुए शोभा साथ में ही चल पड़ा। सम्भराथल पर जम्भेश्वर जी के दर्शन किये। शोभा ने देखा कि जम्भेश्वर जी संत सभा में विराजमान हैं। शोभाराम ने आकर इस प्रकार से कहा–

हे सतगुरु! हमें बतलाओ! कि आप क्यों लोगों को भ्रमित करते हैं? पाखण्ड क्यों सिखलाते हैं? इस समय तो आप स्वतंत्र हो, किन्तु जन्म दुबारा भी तो लेना पड़ेगा। उस जन्म में इस जन्म के किए हुए कर्म-फल दु:ख भोगना पड़ेगा। इस प्रकार से पाखण्ड करोगे तो संसार सागर से पार नहीं उतर सकोगे, नरक में दु:ख भोगना पड़ेगा।

जाम्भाजी ने कहा–हे शोभा! धर्म कीजिये! धर्म करने हेतु ही यह मानव शरीर मिला है। तू मेरी चिन्ता छोड़। अपनी चिन्ता कर! तू कहाँ जा रहा है? धर्म से बहुत ही दूर जा रहा है। शोभा बोला– धर्म क्या होता है? मैं दान-पुण्य बहुत ही करता हूँ। यही तो धर्म होगा। आप हमें क्या समझाओगे? मैं तो पहले से ही ज्ञानी हूँ। हम लोग दान पुण्य बहुत ही करते हैं। किन्तु किसको करें। यह जानना आवश्यक नहीं है।

हम लोग तो भोपा-भरड़ा, देवी-देवता के निमित्त दान बहुत देते हैं। हम लोग जप भी करते हैं। देवी देवताओं का नाम जपते हैं। पूजा-पाठ भैरू, देवी, भूत-प्रेतादिक की करते हैं। यदि आप परमेश्वर के जाप की बात कहें, तो कोई आवश्यक नहीं है। जो परमेश्वर का जप करता है, वह भी ऐसा ही है और जो नहीं करता है वह भी ऐसा ही है। करने वाले या न करने वाले में कुछ भी फर्क नहीं है। परमेश्वर का ही जप क्यों करे? वह कुछ देता हुआ तो दिखता नहीं है। जम्भेश्वरजी कहने लगे-हे मूढ़ (जड़) जाट! मेरी बात सुना मैं तेरे को भेद बताऊँगा। विष्णु परमेश्वर का जप करने से क्या फल है और भूत प्रेत आदि का जप करने से क्या फल है? ऐसा कहते हुए शब्द सुनाया–

शब्द-13

ओ३म्-कांय रे मुरखा तैं जन्म गुमायों। भुंय भारी ले भारूं।।
जा दिन तेरे होम नै जापनै तपनै किरिया, गुरु न चीन्हो पंथ न पायो।
अहल गई जमवारूं। ताती बेला ताव न जाग्यों, ठाढी बेला ठारूं।
बिंबै बैला विष्णु न जंप्यो, तातें बहुत भई कसवारूं।।
अहनिश आव घटंती जावै, तेरे श्वास सबी कसवारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते नर कुबरण कालूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो,ते नगरे कीर कहारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते कांध सहे दु:ख भारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो,ते घणतण करे अहारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ताको लोही मांस विकारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो,गावै गाडर सहरे सूवर जन्म 2 अवतारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ओडा के घर पोहण होयसी पीठ सहे दु:ख भारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो,राने वासो मोनी वैसे ढूके सूर सवारूं
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते अचल उठावत भारूं।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो,ते न उतरिबा पारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते नर दौरे घुप अंधारूं।
तांते तंत न मंत न जड़ी न बूंटी, ऊंडी पड़ी पहारूं।
विष्णु न दोष किसो रे प्राणी,तेरी करणी का उपकारूं।

मूरख कह देवजी! थार पोथी पतड़ो दीस नहीं थारो वेद कहो वेद को भेद कहो– जाम्भोजी श्रीवायक कहे–

शब्द–14

ओe•मोरा उपख्यान वेदूं, कणतत भेदूं, शास्त्रे पुस्तके
लिखणा न जाई। मेरा शब्द खोजो, ज्यूं शब्दे शब्द समाई।
हिरणा दोह क्यूं हिरण हतीलूं,कृष्ण चरित्र बिन क्यूं बाघ बिडारत गाई।
सुनही सुनहां का जाया, मुरदा बघेरी बघेरा न होयबा।
कृष्ण चरित्र बिन सीचाण कबही न सुजीऊ।
खर का शब्द न मधुरी वाणी,कृष्ण चरित्र बिन श्वान न कबही गहीरूं।
मुंडी का जाया मुंडा न होयबा,कृष्ण चरित बिन रीछा कबही न सुजीऊं।
बिल्ली की इन्द्री संतोष न होयबा, कृष्ण चरित्र बिन काफरा न होयबा लीलूं।
मुरगी का जाया मोरा न होयबा,कृष्ण चरित्र बिन भाकला न होयबा चीरूं।
दंत बिवाई जन्म न आई,कृष्ण चरित्र बिन लोहे पड़े न काठ की सूलूं।
नींबड़िये नारेल न होयबा,कृष्ण चरित्र बिन छिलरे न होयबा हीरूं।
तूंबण नागर बेल न होयबा, कृष्ण चरित्र बिन बांवली न केली केलूं।
गऊ का जाया खगा न होयबा, कृष्ण चरित्र बिन दया न पालत भीलूं।

सूरी का जाया हस्ती न होयबा, कृष्ण चरित्र बिन ओछा कबहीं न पूरूं।
कागण का जाया कोकला न होयबा, कृष्ण चरित्र बिन बुगली न जनिबा हंसू।
ज्ञानी के हृदय प्रमोद आवत अज्ञानी लागत डासूँ।

मुरख कहे म्हे तो भोपा नु भरड़ा नु सांसी कंजर, डूम कलावंत ने घणो ही खवावां था। जाम्भोजी श्रीवायक कहे–

शब्द–15

ओ३e सुरमां लेणा झीणा शब्दूं, म्हे भूल न भाख्या थूलूं।
सो पति बिरखा सींच प्राणी,जिहिं का मींठा मूल समूलूं।
पाते भूला मूल न खोजो, सींचो कांय कुमूलूं।

विष्णु विष्णु भण अजर जरीजे,यह जीवन का मूलूं।
खोज प्राणी ऐसा बिनाणी, केवल ज्ञानी, ज्ञान गहीरूं।
जिंहि के गुणैं न लाभत छेहूँ।
गुरु गेवर गरबा शीतल नीरूं, मेवा ही अति मेऊं।
हिरदे मुक्ता कमल संतोषी, टेवा ही अति टेऊं।
चड़कर बोहिता भवजल पार लंघावै, सो गुरु खेवट खेवा खेहूँ।

मुरेख पूछ्या, जाम्भाजी कह्या–जमाती सुण्या।

एक पुरबिया कह–जाम्भाजी! छत्री तर्‌या, ऋषि तापस तर्‌या, वैस तरया, शूद्र तर्‌या, सुण्यां नहीं। जाम्भोजी कह–जाति कुल कारण को नहीं, तर्‌या करणी सूं, भजन सूं तर्‌या, जाम्भोजी श्री वायक कह–

मूर्ख ने पूछा–जाम्भोजी ने जवाब दिया और जमात ने सुना–एक पूर्व देश का व्यक्ति कहने लगा–जाम्भाजी! क्षत्रिय तपस्या ज्ञान द्वारा पार उतर गये। ऋषि तपस्वी संसार सागर से पार उतरे हैं। वैश्य भी पार उतर सकते हैं किन्तु शूद्र संसार सागर से पार उतर जाये, यह तो सुना नहीं। जाम्भोजी ने कहा–ज्ञान, तपस्या, भक्ति करने में जाति कुल कारण नहीं है। जो शुभ कर्म करेगा, वही तिरेगा। शूद्र क्रिया से पार तिरेगा, भगवान् का भजन करने से पार उतरेगा। इस प्रकार कहते हुए जाम्भोजी ने शब्द सुनाया–

शब्द–16

ओ३म् लोहे हूँता कंचन घड़ियो, घड़ियो ठाम सुठाऊं।
जाटा हूँता पात करी लूँ,यह कृष्ण चरित परिवाणों।
बेड़ी काठ संजोगे मिलिया,खेवट खेवा खेहूँ।
लोहा नीर किसी विध तरिबा, उत्तम संग सनेहूँ।
बिन किरिया रथ वैसेंला, ज्यूं काठ संगीणीं लोहा नीर तरीलूँ।
नांगड़ भांगड़ भूला महियल, जीव हते मड़ खाईलो।

शब्द भावार्थ– जाम्भोजी ने बतलाया कि लोहे को मैंने कंचन बनाया है। ये अज्ञानी पुरुष लोहे जैसे ही थे, मैंने उन्हें ज्ञान की अग्नि में तपाकर सोना बना दिया है तथा सोने का आभूषण भी बनाया है। ये मानवता के भूषण बन गये हैं।

संगति से सभी कुछ सम्भव है। यह सभी कुछ कृष्ण चरित्र से ही संभव हुआ है। जिस प्रकार से लकड़ी का संयोग होने से लोहा भी जल से पार उतर जाता है। लकड़ी की नाव पर रखा हुआ लोहा जल में नहीं डूबता। उसी प्रकार से गुरुदेव कहते हैं कि मेरी संगति करने से ये लोग शुद्ध (पवित्र) हो गये हैं।

केवल ज्ञान सुनने मात्र से भी कुछ नहीं होता। वह तो स्वप्न सदृश ही होता है। ज्ञान को क्रिया में लाने से ही ये लोग उत्तम हो गये हैं। बिना क्रिया रथ बैठ जायेगा। आप लोग ज्ञानरूपी नौका में बैठ जाईये। बाकी तो गुरुदेव कहते हैं, मैं केवट रूप में तुम्हें पार ले जाऊँगा।

ये कुछ लोग नंगे रहने वाले, भांग खाने पीने वाले, क्या जाने कि ज्ञान क्या होता है? कुछ राजा लोग भी अहंकार में भूले हुए हैं। जीवों को मारकर मुरदा खाते हैं। उनके पास सत्संगति कहाँ है।

जाट परच पाय लागौ, पाछेला पापां की पछतावों करण लागौ। सतगुरु की वाचा पूरी हुई। इस प्रकार से

शोभाराम ने शब्द सुने। उनके हृदय की भ्रान्ति मिट गयी। सतगुरु के चरणों में प्रणाम किया। बिश्नोई बनने हेतु सतगुरु से पाहल लेकर सारण गोत्र का बिश्नोई बना। इस प्रकार से बिश्नोई पन्थ उत्तरोतर वृद्धि को प्राप्त होता रहा-

जाटों के प्रति शब्दोपदेश

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! मुण्डे मुण्डे मति र्भिन्ना। जितने संसार में लोग हैं। उतनी ही बुद्धि भिन्न-भिन्न हैं। न जाने कौन कौन लोग श्रीदेवजी के पास आते होंगे और नाना प्रकार के प्रश्न पूछते होंगे ? कुछ सवाल तो संसार के पदार्थों तक ही सीमित होते हैं तथा कुछ सवाल आत्मा-परमात्मा के बारे में होते हैँ। उस समय चारों तरफ जाट समाज का ही बाहुल्य था। ये लोग अज्ञानी थे। ये भी बड़ी ही विचित्र प्रकृति के लोग हैं। उन्होनें क्या-क्या बातें पूछी ? मैं आपसे विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! जब श्रीदेव यतीश्वर सम्भराथल पर विराजमान थे, तो उनके पास सभी जाति के लोगों के अलावा जाट लोग अधिक मात्रा में आते थे। वे लोग ज्ञान-ध्यान की बातें तो नहीं जानते थे, किन्तु व्यर्थ का सवाल अवश्य ही खड़ा करते थे।

श्री योगेश्वरजी उन्हें योग-ज्ञान-ध्यान की बातें अपनी भाषा में समझाते थे। जो भी पूछा गया उसका उतर ज्ञानवर्द्धक ही देते थे। कभी भी रोष उत्पन्न नहीं करते थे। बड़े ही स्वाभाविकता से हंसते हुए सटीक जवाब दिया करते थे।

ऐसे ही एक समय में एक जाटों की जमात बिश्नोइयों से विवाद करने लगी। वे लोग कहने लगे- जाम्भोजी भी स्त्री रखते हैं। वे क्या हम से कम हैं। जैसे हम लोग वैसे ही जाम्भोजी। बिश्नोई कहने लगे हमने तो कभी नहीं देखी और न ही कभी सुनी। वे तो निराहारी निराकार हैं। स्वयं ब्रह्मस्वरूप हैं। उनकी दृष्टि में तो स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं है।

जाटों की जमात ने बिश्नोइयों की बात मानी नहीं। विवाद करते हुए जम्भेश्वरजी के पास सम्भराथल ही पहुँच गये। देवजी से बिश्नोइयों ने पूछा- हे देव! ये जाट लोग क्या कहते हैं ? क्या आप स्त्री रखते हैं ?

श्रीदेवजी ने कहा- सुनो! मैं जो स्त्री रखता हूँ वह बड़ी ही विचित्र है। वह आपके पास भी है। किन्तु तुम्हारे पास जो स्त्री है, वह तुम्हारी सत्चरित्रा मधुरा नहीं है, इसे सोम्या बनाओ।

जाट कहने लगे-हे देवजी! हम लोग समझ नहीं पाये। आप क्या कहना चाहते हैं ? क्या हमारे से आपके पास की स्त्री अच्छी है ? श्रीदेवजी ने कहा- सुनो! मैं कैसी स्त्री रखता हूँ। मेरे पास मेरी **सहजे सुन्दर लोतर वाणी**। सहज में ही सुन्दर मधुर वाणी ही मेरी स्त्री है। आपके पास जो वाणी है वह मधुर नहीं है। इसलिए आप लोग दुःखी हैं। संसार में आपकी महत्ता नहीं है। आप निंदा के पात्र बनते हैं। इसलिए इसे मधुर बनाइये। ऐसी वाणी रूपी स्त्री मन को ज्ञानी बना देती है। हे लोगों! स्त्री-पुरुष में भेद ही कहाँ है ? ज्ञान के लिए तो भेद नहीं है। वही श्वांस, त्वचा, वही जीवात्मा, सभी एक ही है। तो फिर उत्तम मध्यम क्यों देखते हैं। मैं स्वयं क्या हूँ ? स्त्री या पुरुष ? यह तो कहना कठिन है। न तो मैं आत्मा रूप से पुरुष हूँ और न ही मैं नारी।

स्त्री-पुरुष होना तो शरीर तक ही सीमित है। मैं तो आत्मा-परमात्मा हूँ। तुम लोग शरीर के धर्मों में कैद होकर ऐसी बात करते हो। ऐसा कहते हुए शब्द सुनाया-

एक सम बिश्नोइयां ने जाट पूछ जाम्भजी के लुगाई छ: बिश्नोई कह काई नहीं, निराहीरी निरंजण छ: जाट कह- हूँ जाम्भेजी ने पूछस्यों, जाट बिश्नोई झगड़ता झगड़ता जाम्भाजी के जुरे आया जाम्भोजी श्री वायक कह-

शब्द-17

ओ३म् मोरै सहजे सुन्दर लोतर वाणी, ऐसो भयो मन ज्ञानी।
तइया सासूँ,तइया मासूँ,रक्तूं रुहीयूं,खीरू नीरूं,ज्यूं कर देखूं।
ज्ञान अंदेसूँ,भूला प्राणी कहे सो करणो।
अइ अमाणो, तत समाणो, अइया लो म्हे पुरुष न लेणा नारी।
सोदत सागर सो सुभ्यागत,भवन भवन भिखियारी।
भीखी लो भिखियारी लो, जे आदि परमतन्त लाधो।।
जांके बाद बिराम विरासों सांसो, ताने कौन कहसी साल्हिया साधो।

जाट कह मुन जांभजी जीपाया था, बिश्नोई कह म्हे जाम्भाजी, सहजे सुन्दरी कदे दीठी नहीं, थहे जाणां नहीं।

बिश्नोई लोग कहने लगे-जाम्भोजी ने जो शब्द में सहज सुन्दर कहा है। वह स्त्री तो हमने न देखी न कभी सुनी है। तुम लोग बिना सोचे समझे अपनी जीत कैसे कहते हो। स्त्री जाम्भोजी ने सहज सुन्दर वाणी के लिए कहा है। इस प्रकार के विवाद को समाप्त करने के लिए पुन: श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-18

ओ३म् जां कुछ 2 जां कछू न जांणी, ना कुछ 2 तां कुछ जांणी।
ना कुछ 2 अकथ कहाणी, ना कुछ 2 अमृत वांणी।
ज्ञानी सो तो ज्ञानी रोवत, पढ़िया रोवत गाहे।
केल करन्ता मोरी मोरा रोवत, जोय 2 पगां दिखाही।
उरध खेणी मन उनमन रोवत, मुरखा रोवत धाहीं।
मरणत माघ संघारत खेती, के के अवतारी रोवत राही।
जड़िया बूंटी जै जग जीवै, तो बेदा क्यूं मर जाही।
खोज पिरांणी ऐसा बिनाणी, नुगरा खोजत नाहीं।
जां कुछ होता ना कुछ होयसी, बल कुछ होयसी ताही।

ये लोग जानने का अहंकार करते हैं। उनका अहंकार करना व्यर्थ ही है। जो कुछ जानने का दम्भ भरता है, वह कुछ भी नहीं जानता। कितना क्या जानेगा ? ज्ञान भण्डार अपार है। पार नहीं पाया जा सकता। तथा जो यह कहता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता वह जानने के लिए प्रयत्नशील होगा, तो अवश्य ही कुछ जानेगा।

अपने को ज्ञानी, पढ़े-लिखे हुए योगी, भक्त, वैद्य, कृषक, गृहस्थ आदि कहते हैं। फिर भी उनका रोना तो मिटा ही नहीं है। तो फिर जीवन की कला विधि से परिचित नहीं हुए हैं। ऐसी दशा में अपने को सर्वज्ञ

कहना तो अज्ञानता के सिवाय और कुछ भी नहीं है। नुगरा भाव छोड़कर सुगरा बनो, तभी कुछ जान सकोगे।

हे प्राणी! ऐसी दिव्य खोज करो, जिससे संसार सागर से पार उतर जाये। नुगरे लोग नहीं खोज सकते। जो कुछ होता था, अब वह नहीं हैं और अब जो नहीं है वह भी आगे हो जायेग। होना या न होना यह तो ईश्वर के ही अधीन है।

जाम्भाजी थे किता जगा रैमूं थौ कित थे थोउं नहीं।

पुनः पूछा- हे देवजी! आप कहाँ-कहाँ रहते हो और कहाँ नहीं रहते? आपसे मिलन कहाँ होगा? कहाँ नहीं होगा? यह हमें बतलाओ। ताकि हम आपको ढूँढ़ सकें? जम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-19

ओ३म् रुप अरुप रमू पिण्डे ब्रह्मण्डे, घट घट अघट रहायो।

अनन्त जुगां मैं अमर भणीजूं, ना मेरे पिता न मायों।

ना मेरे माया न छाया, रूप न रेखा, बाहर भीतर अगम अलेखा।

लेखा एक निरंजन लेसी, जहाँ चीन्हों तहां पायो।

अड़सठ तीर्थ हिरदा भीतर, कोई कोई गुरु मुख बिरला न्हायों।

श्री योगेश्वरजी ने कहा-मैं रूपवान् अरूपवान, मैं रमण करता हूँ। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तथा इस शरीर में भी। घट घट अघट में भी बाहर-भीतर सर्वत्र-निरंतर जहाँ भी स्मरण करोगे, वहीं मैं हाजिर हूँ।

अनन्त युगों में भी अमर कहा जाता हूँ। मेरे माता-पिता कोई नहीं है। मैं तो अजन्मा हूँ। न ही मेरे में यह माया एवं माया की छाया यह जगत ही है। मैं निराकार रूप से हूँ। शरीर का रूप भले ही कुछ भी हो, किन्तु मैं परमात्मा रूप से रह रहा हूँ। मेरे रूप-रेखा कुछ भी नहीं है। अड़सठ प्रकार के तीर्थ ह्रदय में विद्यमान हैं किन्तु उनमें स्नान कोई कोई गुरुमुखी बिरला ही करता है।

जाम्भाजी! अगत्य सुगति को विचार करो-

हे जम्भेश्वरजी! आप हमें संसार सागर से पार उतारने हेतु बात करो। हमारी दुर्गति किस प्रकार से हुई है तथा गति परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार से होगी? ऐसा साधन बतलाइये जिससे दुर्गति को पार कर सके। श्री जम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-20

ओ३म् जां जां दया न मया, तां तां बिकरम कयां।

जां जां आव न बैसूं, तां तां सुरग न जैसूं।

जां जां जीव न जोती, तां ता मोख न मुक्ति।

जां जां दया न धर्मूं, तां तां बिकरम कर्मूं।

जां जां पाले न शीलूं, तां तां कर्म कुचीलूं।

जां जां खोज्या न मूलूं, तां तां प्रत्यक्ष थूलूं।

जां जां भेद्या न भेदूं, तो सुरगे किसी उमेदूं।

जां जां घमण्डे स घमण्डू, ताके ताव न छायों, सूते सास नसायों।

जिसके हृदय में दया नहीं है, वहाँ प्रेम भी नहीं होगा। जहाँ प्रेम नहीं होगा, वहाँ पापकर्म होगा। जहाँ पर आए हुए अतिथि को आओ जी बैठो पीओ पानी नहीं होगा, वहाँ स्वर्ग नहीं है। वहाँ कलह से घर भर जायेगा। जहाँ पर भी प्रत्येक शरीर धारी में परमात्मा की ज्योति के दर्शन नहीं होगा, वहाँ मुक्ति नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति के अन्दर दयाभाव नहीं है, वहाँ धर्म नहीं होगा। जहाँ धर्म नहीं होगा, वहाँ पापकर्म होगा। जहाँ पाप भावना होगी, वहाँ शीलव्रत का पालन नहीं होगा। जहाँ शील नहीं होगी, वहाँ कुकर्म होगा। जहाँ कुकर्म होगा, वहाँ मूल की खोज कैसे होगी ? जहाँ मूल विष्णु की उपासना नहीं होगी। वहाँ स्थूल में ही भटकना होगा। जहाँ स्थूल सांसारिक पदार्थों में ही रमण होगा।

वहाँ भेद-विवेक नहीं होगा। जहाँ विवेक नहीं होगा, वहाँ पर स्वर्ग की आशा करनी व्यर्थ है। जहाँ स्वर्ग सुख नहीं है, वहाँ संसार के पदार्थों से अहंकार ही होगा। अहंकार ईश्वर से दूर हटा देता है। न तो स्वयं के अहंकार से प्रकृति बदल सकता है। धूप-छाया ये सभी प्रकृति के ही रूप हैं। ऐसा न स्वीकार करके स्वयं को प्रकृति के ऊपर आरोपित करेगा तो सोये हुए के ही श्वांस निकल जायेंगे। इस प्रकार से जाट लोग धर्म ज्ञान और देवजी से परिचित हुए। उनकी महिमा को समझा और अपने परिवार सहित बिश्नोई पन्थ में सम्मिलित हुए। जगदीश को जान करके चालीस घरों के लोग बिश्नोई बने। जो पूनिया, सारण आदि गोत्र के थे।

चारणी को शब्दोपदेश

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! इस संसार में सार वस्तु क्या है ? और असार क्या है ? ऐसी बातें बतलाइये, जिससे दूध का दूध और पानी का पानी हो जाय।

नाथोजी उवाचः- सार-असार सम्बन्धी शब्द श्री योगेश्वर ने चारणी को बतलाया था। वही कथा एवं शब्द में तुम्हें बतलाता हूँ। हे शिष्य! मैंने शब्द इन्हीं कानों से सुना है और चारणी तथा श्रीदेवजी को वार्तालाप को मैंने हृदयांगम किया है।

श्री जम्भेश्वरजी के द्वारे पर एक चारणी आयी थी। उसने अपने गले का चांदी का हार उतार करके श्री देवजी के चरणों में चढ़ाया था। किन्तु जम्भेश्वरजी ने वह हार लिया नहीं। देवजी ने कहा-हे चारणी! यह हार मेरे कौन पहनेगा ? न तो मेरे बेटा है और न ही बहू है। इसलिए इस हार को तुम वापिस ले लो। ऐसा कहते ही चारणी ने हार वापिस ले लिया।

चारणी कहने लगी-हे देवजी! आपके तो चेले भक्त बहुत हैं। स्वयं भी तो आप दाता हैं। मुझे एक ऊँट दिलवा दीजिये। श्री देवजी ने पूछा-हे चारणी! तू ऊँट से क्या करेगी ? हे देव! ऊँट पर सवार होकर आपके नाम का प्रचार करूँगी।

पूछा कितनी दूर तक ? चारणी कहने लगी-देवजी के दीवाण्य एक चारणी आयी आय बाललो रूपे को चाडयो चाडि, अरज वमण लागी। जाम्भाजी एक मोने ऊंट द्यो हुं, थाहरो जस करस्यूं, थाहरों नाव करस्यूं, थान प्रकट करेस्यों, देवजी कह कीति एक दूरी प्रगटा करिष्य, चमणी कह बाहड़मेर, कोटड़, चीतौड़,

सांगानेर, मेड़ते, नागौर,मंडोवर,जैसलमेर नव कोटि मारवाड़े, मांह नांव करस्यो।। जाम्भोजी श्रीवायक कहे–
बाडमेर आदि नगरों एवं गाँवों में आपके यश का विस्तार करूँगी, ढ़ोल भी बजाऊँगी। मुझे एक ऊँट दिलवा दो, तो आपको बड़पण मिलेगा। अन्यथा आपका यश नहीं फैलेगा। दुनिया के लोग कहेंगे कि चारणी देवजी के पास गयी थी, किन्तु खाली हाथ लौट आयी। श्री जम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया–

शब्द–21

ओ३म्– जिहिं के सार असारू,पार अपारूं, थाघ अथाघूं।
उमग्या समाघूं, ते सरवर कित नीरूं।
बाजा लो भल बाजालो, बाजा दोय गहीरूं।
एकण बाजैं नीर बरसै, दूजै महीं बिरोलत खीरूं।।
जिहिं के सार असारूं, पार अपारूं, थाघ अथाघूं।
उमग्या समाघूं, गहर गंभीरूं, गगन पयाले, बाजत नादूं।
माणक पायो फेर लुकायो, नहीं लखायो।
दुनियां राती बाद बिवादूं, बाद विवादे दांणूं खीणां।
ज्यूं पहूपे खीणां, भंवरी भंवरा, भावै जाण म जाण।
पिराणी जौले का रिप जंवरा।।
भेर बाजातो एक जोजनो, अथवा तो दोय जोजनो।
मेघ बाजातो पंच जोजनो,अथवा तो दश जोजनो।
सोई उतम लेरे प्राणी, जुगां जुगांणी सत करि जाणी।
गुरु का शब्द ज्यूं बोलो झीणी बांणी, जिहिं का दूरां हुते
दूर सुणीजै सो शब्द गुणा कारूं, गुणा सारूं, बले अपारूं

हे चारणी! जिसको तू सार समझती है। ढ़ोल बजाना, दूसरे की चापलूसी करना, यह सार नहीं है। तू सोचती है कि मैं इससे पार हो जाऊँगी, यह संभव नहीं है। तूं यह समझती है कि मैंने जीवन का थाघ प्राप्त कर लिया है। जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति इतनी ही है तो तू भूल में है। कूप मण्डूक मत बन, इससे भिन्न भी जीवन है। जो आनन्द का भण्डार है। उसे प्राप्त करने की कोशिश कर। इस संसार में कितना सा सुख है? अत्यल्प है। यह भी सार नहीं है।

हे चारणी! तुमने बाजा बजाने की बात कही है। बाजे तो दो ही दुनिया में प्रसिद्ध हैं। एक बाजा हमारे यहाँ बजता है, गर्जना होती है, तो वर्षा होती है। दूसरा बाजा भी बजता है, तब दही में से मक्खन निकलता है और यह बाजा तो तब भी बजा था, जब समुद्र मंथन किया था, उससे अमृत निकला था।

हे चारणी! तुम्हारा यह कौनसा बाजा है? यह ढ़ोल ही तुम्हारा बाजा है। यह तो बिल्कुल ही थोथा है। ये तुम्हारे दूर के ही ढ़ोल सुहावने हैं। किन्तु इसमें कुछ भी सार नहीं है। नाद ध्वनि भी एक बाजा है। वह स्वत: ही बजता है। उसको सुनने से भी समाधि की प्राप्ति होती है। अपार सुख की प्राप्ति होती है। ऐसा बाजा तथा गाना ही श्रेष्ठ है।

हे चारणी! तुम्हें यह मानव शरीर मिला है। यह माणिक है, सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु यह हाथ से निकल जायेगा। समय रहते हुए इसकी पहचान कर ले। दुनिया तत्त्व की खोज तो नहीं करती। व्यर्थ में वाद-विवाद में उलझ करके अपने समय एवं जीवन को बर्बाद कर देती है। वाद-विवाद करते हुए तो राक्षस मारे गये। जिस प्रकार से फूलों पर बैठे भंवरे।

हे चारणी! भेरी-नगाड़ा आदि बाजे तो ज्यादा दूर तक सुनाई नहीं देते। ज्यादा महत्व वाले नहीं हैं। हमारे तो अलौकिक बाजे तो बहुत ही दूर तक सुनाई देते हैं। बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सुखदायी हैं। इन्हीं बाजों से नाता जोड़ ले, सांसारिक बाजों से नाता तोड़ ले।

हे चारणी! तुम्हें सद्गुरु के शब्द सुनने चाहिये। ये बड़े ही गुणकारी हैं। सद्गुरु की वाणी झीणी है, तत्त्व को बताने वाली है। जिसके बल का कोई आरपार नहीं है। इस प्रकार के शब्द को श्रवण करके चारणी बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हो गयी। उसी के साथ ही उसका सम्पूर्ण परिवार ही बिश्नोई मत में प्रविष्ट हो गया।

वरसी को शब्दोपदेश

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! यह पंचभौतिक शरीर तो दृष्ट है, किन्तु इसमें रहने वाला जीव तो अदृष्ट ही हैं। ये दोनों भिन्न भिन्न होते हुए भी अभिन्न से दिखते हैं। शरीर का क्या स्वरूप है ? एवं जीव का क्या स्वरूप है ? शरीर में जीव प्रवेश होने का क्या विज्ञान है ? एवं जन्म तथा माता पिता का क्या किसके साथ सम्बन्ध है। बतलाने की कृपा करें।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! इस सवाल के जवाब हेतु हमें श्रीदेव जम्भेश्वर की शरण में जाना होगा। वरसी वणियाल को गुरुजी ने शब्द सुनाया था, उसके बारे में मैं तुझे बतलाऊँगा।

एक समय वरसी वैणहाल देवजी कह जुरै आयो। देवजी सुं अरज कीवी, झाभाजी जेस ंधक भरी या क पूत हुवों। माटी का म्रघ कर तीरां सुं मार, आक का पानां का बकरा कर मार। ओ कुण जीव थ, देवजी कह्यों ओ चांदिय थोरी को जीव थ, ग्रहण मां थोरी न दांन दीनुं ज्यों थौरी आय जल्म लीयों। आप कीवा लसी खुम लार गयो तलाब की एक भाल्य मांटी काढ़ी,गायां के आगी काम आयों। इब काठ के संग्य लोह ज्यों तरयसी। जाम्भोजी श्री वायक कह-

गाँव जाँगलू का वरसी बेणीवाल गोत्र का बिश्नोई एक बार सम्भराथल पर श्रीदेवजी के निकट आया और कहने लगा-हे गुरुदेव! आपने तो कहा था कि तुम्हारी सात पीढ़ी का उद्धार होगा। किन्तु मेरे एक पुत्र हुआ है, वह कुपात्र (जीव हत्यारा) है। ज्यों-ज्यों समझ पकड़ता है, त्यों-त्यों उसके लक्षण शिकारी के प्रकट हो रहे हैं। वह मिट्टी के मृग बनाकर के उन्हें तीर से मारता है और आक के पत्ते का बकरा बना करके उन्हें भी मारता है। यह कौन कैसा जीव है ? जो मेरे घर में आ गया ? यदि ऐसा जीव मेरा बेटा बनकर आया है तो फिर मेरी सात पीढ़ियों का उद्धार कैसे होगा ?

श्रीदेवजी बोले-हे बरसी! अब मैंने तेरे को खेराज से वर देकर वरसी बना दिया है। मेरा वर झूठा नहीं

होगा। अवश्य ही सात पीढ़ियों का उद्धार होगा। जिस प्रकार से काठ के संग लोहा भी पार उतर जाता है, उसी प्रकार से यह तेरा बेटा भी सत्संगति से पार उतर जायेगा। यह जीव पूर्व जन्म में चांदियो थोरी था, ग्रहण में थोरी को दान दिया था, वही थोरी तुम्हारे घर में आया है। ग्रहण समय में जब तुम्हारी स्त्री दान दे रही थी, उस समय रजस्वला अवस्था में थी। इसकी दृष्टि तुम्हारी स्त्री पर पड़ गयी और यह वासना के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया था। **अन्त मति सो गति।**

अन्तकाल में वह तुम्हारे घर की वासना सहित मरा था, इसलिए जन्म तुम्हारे घर में हो गया। पूर्व जन्म के इसके संस्कार शिकार खेलने के ही हैं। इस जन्म में भी, यह वही पूर्व जन्म के संस्कार दोहरा रहा है। धीरे-धीरे पूर्व जन्म के संस्कार लुप्त हो जायेंगे। यहाँ पर सत्संगति से नये संस्कार उदय हो जायेंगे। तब वह पूर्व जन्म को भूल जायेगा।

वरसी कहने लगे-हे गुरुदेव! यदि वह शिकारी था। मेरे पुण्यवान श्रीमान् पवित्र घर में इस कुपात्र का जन्म क्यों हुआ? इसे नरक में पड़ना चाहिये था। चौरासी लाख जीया योनि भोगनी चाहिये थी?

श्री जम्भेश्वरजी ने बतलाया-अवश्य ही यह जीव पापी था। इसे दु:खदायी नरक में गिरना चाहिये था। किन्तु कभी पापीजन भी कोई शुभ कार्य कर लेता है। इस चांदिये ने तालाब से मिट्टी निकाली थी। उससे उसको पुण्य हुआ तथा दूसरा कार्य इसने बहुत ही पुण्य बढ़ाने वाला किया था। वह गऊवों की रक्षा करते हुए बलिदान हो गया था। इसने अपने प्राणों के रहते हुए जीवो की रक्षा की थी। हत्यारों से गऊवों को त्राण दिलाया था। इस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारे जैसे शुचि श्रीमान् के घर में जन्म लिया है।

इस प्रकार कहते हुए श्री जम्भेश्वर ने उस बालक के सिर पर हाथ फेरा ओ कहा-यह तो स्याणा ही है। तुम इसे घर ले जाओ। जाम्भोजी के वरद हस्त का आशीर्वाद प्राप्त करके वह बालक स्याणा-ज्ञानी हो गया। उसका नाम भी स्याणा ही रख दिया।

हे शिष्य! वरसी के पुत्र स्याणों इस समय विद्यमान है। तुम गाँव जाँगलू जाकर दर्शन कर सकते हो। यह सभी कुछ कृष्ण चरित्र से ही संभव हुआ है। **यह कृष्ण चरित परिवाणों।** इस सम्बन्ध में श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-22

ओ३म्- लो लो रे राजिंदर रायों, बाजै बाव सुवायों।
आभै अमी झुरायो, कालर करसण कीयों।
नैपे कछु ना कीयों।
अइया उत्तम खेती, को को इमृत रायो,
को को दाख दिखायो,को को ईख उपायो।
को को नींब निबोली, को को ढ़ाक ढ़कोली।
को को तूषण तूंबण बेली, को को आक अकायों।
को को कछु कमायों,ताका मूल कुमूलूं।
डाल, कुडालूं, ताका पात कुपातूं।
ताका फल बीज कुबीजूं, तो नीरे दोष किसायो।

क्यूं क्यूं भए भागे ऊंणा, क्यूं क्यूं कर्म बिहूँणा।
को को चिड़ी चमेड़ी,को को उल्लू आयों।
ताके ज्ञान न जोति, मोक्ष न मुक्ति।
यांके कर्म इसायों, तो नीरे दौष किसायों।

मेघाधिपति देवराज इन्द्र ही बादलों के रूप में वर्षा करते हैं। वर्षा से अन्न होता है। अन्न से रजवीर्य बनता है। उसमें ही सूक्ष्म जीव विद्यमान रहता है। तब सृष्टि की उत्पत्ति होती है। सुखेती में समय पर बोया हुआ बीज फूलता फलता है। तत्त्व भूमि में बोया हुआ व्यर्थ ही चला जाता है। जैसा बीज होगा वैसा ही पौधा होगा। बीज में ही कणतत्व है। वही जीव भी बीज है। शरीर के उत्पन्न करने में तो माता-पिता हेतु हैं। किन्तु बीज रूप जीव सदा ही सनातन है। वह न तो कभी मरता है और न ही जन्मलेता है। जब जलरूपी बीज शरीर के गर्भ में प्रवेश होता है, तभी जीवधारी शरीर माँ के गर्भ में वृद्धि को प्राप्त होता है। अन्यथा जलरूपी वीर्य व्यर्थ में ही चला जाता है।

यदि ईख का बीज है तो ईख ही उत्पन्न होगी। ठीक इसी प्रकार से माता-पिता तो केवल शरीरदाता हैं। बीज उत्पन्न करने वाला नहीं है। हे वरसी! इसमें तुम्हारा तो केवल जल ही है। शरीर के ही तुम माता पिता हो। इस जीव के माता पिता नहीं हो। जीव के कर्म ही ऐसे हैं, तो माता पिता का क्या दोष है ? माता पिता केवल अपने ही सदृश शरीर की आकृति प्रदान करते हैं। जीव रूप बीज से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। यह जीव तो अपने ही कर्मानुसार अनेकानेक योनियाँ धारण करता है। कर्म फल सुख-दुःख भोगता है। बार-बार जन्म लेता है और मरता है।

विष्णु भक्तों का बलिदान

नाथोजी ने कहा-हे शिष्य! सम्भराथल पर शिष्य मण्डली सहित श्री जाम्भोजी महाराज विराजमान थे। उस दिन सभी लोग मौन बैठे हुए थे। कहीं किसी के मन में कोई शंका, संशय नहीं था। एकाएक श्री देवजी हर्षित हुए, मंद-मंद मुस्कराने लगे। अप्रयोजन ही उस दिन कुछ विचित्रता साथरियों ने देखी थी। हम लोगों से पूछे बिना नहीं रहा गया। बिना पूछे कुछ भी प्राप्त होने वाला भी नहीं था। इसलिए मैंने पूछा-

हे देव! आज आप बिना प्रयोजन ही बड़ी प्रसन्नता प्राप्त कर रहे हो। यदि आपकी मुस्कान का कोई विशेष प्रयोजन हो तो बतलाने की कृपा करें। बिना कारण के तो कुछ कार्य होने वाला नहीं है।

श्रीदेवजी ने कहा-हे नाथा! आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह मेरी अपनी आंतरिक नहीं है। यह तो बाह्य कारणों से हो रही है। मैं देख रहा हूँ, मेरे प्रिय शिष्यों ने आज बहुत ही बहादुरी का कार्य करके धर्म की रक्षा की है।

विष्णु भक्त बिसनोई रहै गुणावती माहीं, जात्य का तेली, रावल एक पलो दिता, रावले दोय मांग्या एक दिता, दोय द्यो, रावले भीड़ घाती। एक पले उपरे उठारसै आदमी सीझ्या। श्री विसनजी इलोल आयो,

सबद बोल्यों, खवां चमकण लाग्या, श्री वायक कहे-

विष्णु भक्त गुणावती में निवास करते हैं, वे तेली जाति के लोग हैं। उनका व्यापार धंधा तेल निकालना एवं बेचना है। हे शिष्य! कार्य कोई भी बुरा या अच्छा नहीं होता। वे लोग विष्णु धर्म का आचरण करते हैं इसलिए वे भी तुम्हारी तरह ही वैष्णव अर्थात् बिश्नोई ही है। मैंने उनको पवित्र किया है। वे परमभक्त हैं।

उनके यहाँ पर कोई राजा शिकार करके लाया था। उनसे तेल माँग रहा था, उन भक्तों ने तेल नहीं दिया। वे नहीं चाहते कि अपने हाथ से निकाले हुए तेल में कोई मुरदा पकाया जावे। राजा को शिकार करने के लिए प्रोत्साहित किया जावे। यदि हम इसका विरोध नहीं करेंगे, तो जीव हत्या नहीं रुकेगी। इसके लिए तो प्राणों का बलिदान भी दिया जावे तो धर्म का मार्ग है। **धर्मो रक्षति रक्षितः** हम धर्म की रक्षा करेंगे, तो धर्म हमारी रक्षा करेगा।

इस प्रकार से विचार करते हुए उन लोगों ने जीव हत्यारे को तेल नहीं दिया। उस शिकारी ने उन विष्णु भक्तों को भी अन्य जीवों की भाँति काट डाला। उन धर्मप्रेमियों ने हँसते हुए प्राणों का बलिदान दे दिया। किन्तु धर्म की रक्षा की। इसलिए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। एक नियम धर्म की रक्षा हेतु ये धर्म के दीवाने लोग, एक हजार आठ सौ बलिदान हो गये। उन जीवों के तो भाग्य खुल ही गये।

ये जीव तो इस पंचभौतिक शरीर को त्याग करके रतन सदृश दिव्य काया लेकर बैकुण्ठ धाम को पहुँच गये हैं। उन लोगों की बदौलत ही धर्म की रक्षा हुई है। स्वयं बलिदान देकर दूसरे जीवों की रक्षा की है। इन लोगों ने सदा-सदा के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है। ये लोग साधु (ज्ञानी) पुरुष हैं। ज्ञानी पुरुषों के लिए मृत्यु का भय नहीं रहता।अज्ञानी जन ही मृत्यु से भयभीत रहते हैं।

उन लोगों ने विष्णु का स्मरण करते हुए धर्मार्थ प्राण त्यागे हैं। इसलिए इनकी कभी दुर्गति नहीं होती। अन्त समय में जो मति होगी, वही तो गति होगी। और अन्त समय में गति भी वही होगी, जो आजीवन रही है। यदि जीवनपर्यन्त नमन भाव से, क्षमा भाव से, और जरणा से जीवन बिताया है, तो उनकी सद्गति ही होगी। यह तुम्हारी काया बाह्य तो स्थूल है, जो पंचभूतों की रचना है। इसके अन्दर भी एक सूक्ष्म काया भी है। जैसी अन्दर की सूक्ष्म काया होगी, वैसा ही प्रतिबिम्ब बाह्य काया में होगा। यह स्थूल शरीर तो यहीं पर ही रह जाता है। किन्तु सूक्ष्म काया अपना कर्म-संस्कार लेकर यहाँ से प्रयाण करती है। इसलिए इन सज्जन पुरुषों ने हँसते हुए प्राणों का बलिदान दिया है। ये लोग जीत गये हैं। जीवन को सफल बना लिया है। मैं इनके कार्य से अतिप्रसन्न हूँ। ऐसा कहते हुए श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द- 23

ओ३e साल्हिया हुआ मरण भय भागा, गाफिल मरणै घणा डरै।
सतगुरु मिलियो सतपंथ बतायो, भ्रान्त चुकाई, मरणे बहु उपकार करै।
रतन काया सोभंति लाभै, पार गिरांये जीव तिरे।
पार गिराये सनेही करणी,जंपो विष्णु न दोय दिल करणी।
जंपो विष्णु न निन्दा करणी,मांडो कांध विष्णु के सरणै।
अतरा बाल करो जे साचा,तो पार गिराय गुरु की बाचा।।
रवणां ठवणां चवरां भवणां, ताहि परे रै रतन काया छै,लाभे किसे बिचारे।

जे नविये नवणी, खविये खवणी, जरिये जरणी।

करिये करणी, तो सीख हुवां घर जाईये। jru dk;k lkp dh <kyh x# i.lkn doy Kku

धर्म अचारे शील संजमे, सतगुरु तूठे पाईये।

जोगी की सिद्धि के सम्बन्ध में शब्द

बिश्नोई गंगा पार का ढोसी आय डेरो लीय एक नागो जोगी, एक सिला उपरे बठो, आप हाल ज्यों सीला हाल, बिसनोइयाँ आय जांभाजी ने अरज की,वडा भोली कह विरोटियो मुसाणियो थ, मनख जमवारो उही गुव थ। जाम्भोजी श्री वायक कह–

नाथोजी कहने लगे–हे शिष्य! एक समय गंगापार से बिश्नोइयों की जमात श्रीदेवजी के दर्शन करने के लिए सम्भराथल पर आयी। उन्होंने मार्ग में विश्राम हेतु ढोसी की पहाड़ी पर डेरा डाला। वहाँ पर उन्होंने एक योगी को देखा था। उसके बारे में देवजी से इस प्रकार से पूछने लगे–हे गुरुदेव! हम लोग जब आपके पास आ रहे थे, वहाँ मार्ग में ढोसी की पहाड़ी पर हमने आसन लगाया था। वहीं पर हमने एक आश्चर्य देखा था। आप तो अन्तर्यामी हैं। अन्दर की बात जानते हो। वहाँ पर वह योगी पहाड़ी पर बैठा था। वह पहाड़ को भी हिला देता था। उसमें क्या करामात थी ? क्या वह सचमुच में ही आपकी ही तरह कोई पहुँचा हुआ योगी है या पाखण्डी है। श्री देवजी ने बतलाया–वह नागा जो आपने देखा है वह विरोटिया है। श्मशान भूमि में बैठकर भूत-प्रेतों की पूजा करता है। इसी पाखण्ड से ही अपनी सिद्धि दिखाता है। वह सिला ऊपर बैठा हुआ स्वयं आप हिलता है, तो सिला भी साथ में हिलती है। ऐसी युक्ति उसने बना रखी है। इसने तो अपना जीवन व्यर्थ में ही खो दिया है। योग संन्यास के नाम पर मात्र दिखावा एवं छलकपट के सिवा कुछ भी नहीं है। दुनिया बहुत भोलीभाली है। उसके पाखण्ड जाल में फंस जाती है। आप लोग देखकर के ही आ गये। उसके जाल में नहीं फंसे। यही बड़ी बात है। कुछ लोग आसन पर बैठते हैं। ध्यान समाधि का बहाना करते हैं। किन्तु अन्दर झूठ कपट से भरे रहते हैं। तथा कुछ अन्य वास्तव में सच्चे योगी होते हैं। बुगलों की टोली में कोई कोई हंस भी होता है। सभी त्याज्य भी नहीं हैं, तो सभी ग्राह्य भी नहीं हैं। जो लोग सत्य मार्ग पर चलते हैं, वे लोग ही इस कच्ची काया को छोड़कर बैकुण्ठ की प्राप्ति करते हैं। उस परम पद को प्राप्त करते हैं। जहाँ से वापिस मृत्युलोक को आना नहीं होता। ऐसा कहते हुए शब्द सुनाया–

शब्द–24

ओ३म्–आसण बैसण कूड़ कपट्टण, कोई 2 चीन्हत बोजू वाटे।
बोजू वाटे, जे नर भया, कांची काया छोड़ कैलाशे गया।।

सिकन्दर शील हकीकत जाग्यो

वील्होजी उवाचः-हे गुरुदेव! मैंने सुना है कि श्री जम्भदेवजी ने दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी को शील एवं हक की कमाई का उपदेश दिया था। उसे शुद्ध पवित्र बना दिया था। वह किस प्रकार से? कृपा करके बतलाने का कष्ट करें।

नाथोजी उवाचः-हे शिष्य! एक समय गंगा पार के बिश्नोइयों की जमात सम्भराथल पर श्रीदेवजी के दर्शनार्थ आ रही थी। चलते-चलते उन्होंने अपना आसन यमुना के किनारे दिल्ली में लगाया। वहाँ पर जमात के लोगो ने प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में पवित्र यमुना में स्नान किया और सूर्योदय की वेला में हवन करने हेतु बैठे थे।

सभी ने मिलकर सस्वर शब्दों का उच्चारण किया। जिसकी मधुर ध्वनि दिल्लीवासियों ने सुनी। वेद वाणी सदृश कर्णप्रिय ध्वनि को श्रवण करके दिल्ली के लोग स्वतः ही खिंचते चले आये। दिल्ली निवासियों ने यह प्रथम बार ही सुना था। उन श्रोताओं में हासम और कासम नाम के दो दर्जी भी थे। जो बादशाह के कपड़े सीलने वाले थे। वे भी चले आये। बड़े ही प्रेमभाव व ध्यान से उन्होंने ध्वनि श्रवण की। जब हवन पूर्ण हो गया, तब उन्होंने पूछा-

हे महात्माओं! आप लोग कहाँ से आये और कहाँ को जा रहे हो? आपकी वाणी बहुत ही सुमधुर है। हम भी आपकी तरह ही गाना चाहते हैं तथा हवन ज्योति का दर्शन चाहते हैं। कृपा करके बतलाओ। इसके लिए हमें क्या करना होगा?

जमात के लोगों ने बतलाया- हम लोग गंगापार से आये हैं और आगे बागड़ देश सम्भराथल पर जहाँ साक्षात् विष्णु ने ही अवतार लिया है, वहाँ पर दर्शन, स्पर्श एवं शब्द श्रवणार्थ जा रहे हैं। वहीं पर जीयां ने युक्ति मुवां ने मुक्ति की प्राप्ति होती है। हासम-कासम ने कहाँ-यदि ऐसी बात हैं तो हम भी आपके साथ चलेंगे। किन्तु हम तो मुसलमान हैं। आपके अवतारी विष्णु हिन्दुओं के देवता हैं। हमें भी आपकी तरह अपनायेंगे क्या?

बिश्नोइयों ने कहा-उनके यहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जो उनके नियमों पर चलता है, वही उनको प्रिय है। जाति-पाति, छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं है। आप लोग हमारे साथ चलें। श्रीदेवजी का दर्शन करके जीवन का लाभ उठायें। ऐसा कहते हुए हासम कासम ने भी उन जमात के साथ बागड़ देश के लिए प्रस्थान किया।

कुछ दिनों के पश्चात् सम्भराथल पर पहुँचे और श्रीदेवजी के दर्शन किये। जैसा जमाती लोगों ने बखान किया था, वैसा ही हासम कासम ने अपनी आँखों से देखा। श्री देवजी से उपदेश लेकर कुछ दिनों पश्चात् हासम-कासम मण्डली के साथ वापिस दिल्ली लौट आये और अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। रोजी रोटी हेतु कपड़े सिलते और विष्णु का जप करते। उनतीस नियमों का पालन भली-भांति करते। धीरे-धीरे यह बात बादशाह के पास पहुँच गयी। किसी व्यक्ति ने बादशाह के पास जाकर बतलाया कि तुम्हारे राज्य में दो दर्जी हिन्दुओं की जमात की संगति से काफिर हो गये। उन्हें दण्डित करना चाहिये। अन्यथा देखादेखी अन्य लोग भी बिगड़ जायेंगे। समय रहते यदि बीमारी का ईलाज न किया जावे तो फिर काबू में आना मुश्किल है।

सिकन्दर बादशाह ने आदेश दिया कि उन दोनों को मेरे सामने राजदरबार में हाजिर किया जावे। मैं स्वयं

उन्हें देखूँगा। किस प्रकार से इन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिया है ? हासम-कासम को सिकन्दर के सामने दूसरे दिन हाजिर किया गया।

बादशाह ने पूछा-आप कैसे धर्म परिवर्तन करके विधर्मी हो गये हो ? हासम-कासम ने बतलाया-हे राजन्! हम तो विधर्मी नहीं हुए हैं, किन्तु असलियत में तो धर्मी ही अभी हुए हैं। अब तक तो केवल धर्म का बाह्य रूप ही पकड़े हुए थे। अभी हमने धर्म के तत्त्व को जाना है। मानव मात्र के लिए कोई धर्म भिन्न नहीं होता। मानवता का तो हे राजन्! एक ही धर्म होता है। यही धर्म हमने अपनाया है।

इसी धर्म को ग्रहण करने के लिए हम लोग बागड़ देश सम्भराथल गये थे। वहाँ पर तो साक्षात् ईश्वर (अल्ला) ही विराजमान हैं। अच्छा हुआ जमाती लोगों की संगति से हमें भी परम लाभ हुआ है। हे बादशाह! यदि आप भी अपना भला चाहते हैं, तो केवल ईश्वर की ही शरण ग्रहण करो। वह ईश्वर-अल्ला दो हो ही नहीं सकते। एक ही है। हमें भी पहले भ्रम था। किन्तु वहाँ पर जाने से हमारा भ्रम: स्वत: ही मिट गया। उनकी ओजस्वी, ज्ञानभरी वाणी में ही कुछ ऐसा जादू है, जो तुरंत परिवर्तन कर देती है। उनका दर्शन तो सूर्य सदृश तेजस्वी हैं, जो हमारे पापों को जला डालता है।

हासम-कासम द्वारा ऐसी वार्ता श्रवण करके बादशाह ने आदेश दिया कि इन दोनों को काल कोठरी (जेल) में डाल दो। खाने के लिए माँसाहार-गौ माँस डाल दिया जावे। यदि न खायें तो भूखे ही मरने दिया जावे। मैं देखूँगा। इनका गुरु छुड़ाता है कि नहीं। यदि छुड़ाने आयेगा तो दर्शन करूँगा और परीक्षा भी। यदि इन्हें छुड़ाने नहीं आयेगा तो अपने को करुणानिधि कैसे कह सकते हैं ? ये अन्दर पड़े हुए मर जायेंगे। अन्य कोई इनके मार्ग का अनुसरण नहीं करेगा। हासम-कासम जेल में पड़े हुए हरि से पुकार करने लगे-हे जगत पालक विष्णु! हमने सम्पूर्ण दुनिया का सहारा छोडकर केवल आपका सहारा लिया है। क्या हम यहाँ इसी तरह ही आपके रहते हुए मर जायेंगे ? यदि आपका स्मरण करते हुए मर भी गये तो कोई हानि नहीं है, क्योंकि जो परमात्मा का स्मरण करता हुआ, अन्त समय में प्रस्थान करता है, वह उन्हीं को प्राप्त होता है। यदि आपने हमें मरने नहीं दिया, जीवित बचा लिया तो भी जियेंगे और भगवान् से अनन्य प्रेम जुड़ जायेगा। जियेंगे तो युक्तिपूर्वक, मरेंगे तो मोक्षलाभ। दोनों हाथों में लड्डू है।

इस प्रकार से प्रार्थना करते हुए हासम-कासम काल कोठरी में पड़े हुए भगवान् को धन्यवाद दे रहे थे। उन्होनें कोई शिकायत नहीं की। जिस भी प्रकार से वह रखे, उसी प्रकार से रहने के लिये राजी थे। इस प्रकार से जो भी प्रत्येक परिस्थितियों में रहना स्वीकार करले तो उन्हें किसी भी प्रकार से दु:ख नहीं दिया जा सकता। हासम-कासम प्रसन्नचित थे।

बादशाह ने देखा कि इन्हें किसी प्रकार से दु:खित नहीं किया जा सकता। ये तो वास्तव में भक्त हैं। किन्तु इन्हें छोड़ा भी नहीं जा सकता, क्योंकि भगवान् के भक्तों को कष्ट दिया जावे तो भगवान् स्वयं आते हैं। इस निमित्त दर्शनलाभ भी होगा। कुछ वार्तालाप भी होगी। इससे अच्छा अवसर मिलना असंभव ही है। ऐसा विचार करते हुए बादशाह समय की प्रतीक्षा करने लगा।

दीनबन्धु, दीनानाथ, भक्तवत्सल भगवान् ने अपने भक्तों की ध्वनि सुनी और सिकन्दर को सचेत करने के लिए अपने शिष्य रणधीर को साथ लेकर दिल्ली की तरफ रवाना हुए। स्वयं तो अपने सिद्धि बल से स्वयं ही बिना सवारी ही जा सकते थे, किन्तु अपने प्रिय शिष्य को दिल्ली दरबार का दर्शन करवाना था, इसलिए अपने मनसा रूपी ऊँट पर बैठकर चले थे।

दिल्ली राजदरबार में रात्रि के समय आकाश मार्ग से ऊँट उतरा। जिस पर दो सवार थे। जब राजदरबार में

ऊँट को बिठाया, तो ऊँट के बोलने की आवाज आयी। बादशाह झट जग गया। देखा कि यहाँ राजदरबार में ऊँट कहाँ से आ गया ? क्या किसी ने दरवाजे खोल दिये ? जिसने भी यह कृत्य किया है, उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा।

बादशाह निद्रा से उठा था। अभी कुछ धुन्धला ही दिख रहा था। भगवान् श्री जाम्भोजी ज्योतिस्वरूप से प्रकाशमान थे। सम्पूर्ण महल में दिव्य प्रकाश फैल गया था। किन्तु जाम्भोजी एवं सिकन्दर के बीच जल की धारा खिंच गयी थी। उन्हें स्पष्ट दिखलाई नहीं दिया कि यह क्या हो रहा है ? इतना तेज बादशाह सहन नहीं कर सकता था। इसलिए ही जल की धारा खिंच गयी थी। मंद-मंद ज्योति का दर्शन सिकन्दर ने किया।

सिकन्दर ने पूछा-हे ज्योतिपुरुष ! तुम यहाँ कैसे आये ? कौन हो, जो मुझे आश्चर्यचकित कर रहे हो ? जाम्भोजी ने कहा-मैं इन दोनों साधुओं को छुड़ाने के लिए आया हूँ। मैं कौन हूँ, यह जानना तेरे लिए असंभव है। बड़े-बड़े ज्ञानी,योगी भी जिनके बारे में ठीक से नहीं जान सकते, उनके बारे में तू क्या पूछता है ? बादशाह चरणों में गिर पड़ा। दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। प्रार्थना करने लगा-

हे देव ! मैं तो अज्ञानी हूँ। राजकाज में उलझा हुआ, मैं आपको कैसे जान सकता हूँ। यदि आप स्वयं ही कृपा करें और बता दें, तो ही मेरे जैसे प्राणी जान सकते हैं। आपने स्वयं ही मेरे महल में आने की कृपा की है। हासम-कासम भी धन्यवादी है, जो आपके शिष्य बने हैं। मैं भी आपके बताए हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन को कृतार्थ करूँगा। हे देव ! मुझे कुछ ज्ञान ध्यान का मार्ग बतलाइये। श्री जम्भेश्वरजी ने कहा-

हे बादशाह ! यदि तुम्हें जीवन का सुख लाभ प्राप्त करना है तो सर्वप्रथम हासम-कासम को मुक्त कर दे, तू बादशाह है। तेरा प्रथम कर्त्तव्य बनता है कि हक की कमाई पर विश्वास कर। शील व्रत का पालन कर। राजकाज में रहकर भी जनता से जो कर के रूप में लेता है, उसमें तुम्हारा कुछ भी हक नहीं है। जनता का धन जनता की भलाई हेतु खर्च करना तुम्हारा कर्तव्य है।

सिकन्दर बोला-हे देव ! यदि कर द्वारा प्राप्त धन में से अपने लिये खर्च नहीं करूँगा तो भूखा मर जाऊँगा। मेरे पास अन्य कोई साधन नहीं है। मैं अन्य कुछ उपाय भी नहीं जानता हूँ।

जम्भेश्वरजी ने कहा-मैं तुम्हें वस्त्र देता हूँ। इस वस्त्र की तुम टोपियाँ बनाकर बेचते रहना। यह वस्त्र अखूट है। इससे जो भी कमाई हो जाये, वही तुम्हारी आजीविका का साधन बनेगी। इस प्रकार से सिकन्दर को उपदेश देकर वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। आकाश मार्ग से जाते हुए सिकन्दर ने ज्योति ही देखी, सम्पूर्ण महल एवं दिल्ली नगर प्रकाशित हो रहा था।

प्रात:काल राजदरबार में सिकन्दर आसीन हुआ। अन्य उमराव-मंत्री लोग एकत्रित हुए। सिकन्दर की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। रात्रि की दिव्य घटना को भूल नहीं पा रहा था। आज मंत्रियों ने बादशाह को देखा था, जो पूर्व दिनों की तरह नहीं था।

रणधीरजी के हाथ की छड़ी जो राजमहल में छूट गयी थी, उसे सभी के सामने दिखाते हुए उनसे पूछा-क्या आप लोग जानते हैं कि यह छड़ी किस वृक्ष की है तथा किस देश की है ? कहाँ से आयी है और कौन लाया है ? उस समय उपस्थित जन समूह में से कोई भी नहीं बता सका। सभी आश्चर्यचकित नेत्रों से बादशाह को निहारने लगे।

बादशाह ने कहा-आप लोग मेरी आज्ञा से हासम-कासम को यहाँ पर हाजिर करो। उनकी बेड़ी काट दीजिये। उन्हीं की कृपा से मैं आज कृत-कृत्य हुआ हूँ। हासम-कासम जेलखाने से छूटकर राजा के सामने हाजिर हुए।

बादशाह ने पूछा–हे हासम–कासम! क्या तुम जानते हो कि यह जो मेरे हाथ में छड़ी है, यह कहाँ से आयी है और किसकी है? यदि ठीक से बतला दोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। हासम–कासम बोले–हे राजन्! यह छड़ी तो फोगवृक्ष की है। जहाँ पर श्री जाम्भोजी विराजमान होते हैं। उस बागड़देश में यह वृक्ष बहुतायत से होता है। जब हम बागड़ देश में गये थे, वहाँ पर हमने दर्शन किये हैं। यह तो तुम्हारा सौभाग्य ही है जो तुम्हें इस पवित्र वृक्ष की एक ही टहनी का दर्शन हुआ है। इसको यहाँ तक लाने वाले के दर्शन से भी तुम कृतार्थ हुए हो। हमने भी दिव्य ज्योति का प्रकाश हृदयस्थ किया है। उन्हीं के प्रताप से हे राजन्! हमारी बेड़ियाँ खुल गयी हैं। आप भी अपनी कैद काट डालिये। यह सुनहरा अवसर आपके हाथ से निकल जायेगा। बादशाह ने हासम–कासम को अपना गुरु मान लिया और उन्हें सादर क्षमायाचना करते हुए मुक्त कर दिया। हासम–कासम के सामने गौ माँस रखा था। उस माँस की पुन: जीवित गऊ बन करके जेल से बाहर चली गयी। बादशाह आश्चर्यचकित होकर देखता ही रह गया।

बादशाह नित्यप्रति टोपियाँ सीलता और बाजार में बेचकर अपनी आजीविका चलाता। अपनी कमाई का अन्न लाता और स्वयं पीसता और पकाता। पराया अन्न लेना छोड़ दिया। राजा के इस नियम से तंग आकर बहुत सी रानियाँ तो राजा को छोड़कर चली गयी। एक ही उनके पास में सेवा में रह गयी थी। वह भी इस प्रकार की कठिन सेवा से परेशान हो चुकी थी। एक दिन वह भी अपने पिता के घर चली गयी और कहने लगी–

हे पिताजी! अब मेरे से भी पति के साथ कठोर परिश्रम नहीं होता। मेरे ये कोमल हाथ देखिये! मैंने कभी इन हाथों से कार्य नहीं किया है। किन्तु इस समय मुझे आटा पीसना, भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, सफाई करना, कपड़े धोना इत्यादि कितने कार्य करने पड़ते हैं। मैं कार्य करने की कतई आदी नहीं हूँ। मेरे हाथ फट गये हैं। मैं बेहाल हूँ। किसी प्रकार से मेरे पति को समझाइये। अन्यथा मैं उनके पास नहीं रह सकती।

उस बेगम के पिता ने एक रात्रि में बादशाह को मारने के लिए शयनकक्ष में प्रवेश किया। वहाँ देखता है कि बादशाह के तो हाथ पाँव पहले से ही अलग पड़े हैं। ऐसा देखकर वापिस लौट आया और मारने की इच्छा छोड़ दी। उसने प्रात:काल देखा कि बादशाह तो राजदरबार में उपस्थित हैं। वही बादशाह रात्रि में मर चुका था, किन्तु दिन में जीवित था। क्या जाने भगवान् की लीला को, जो पहले ही मर चुका है। स्वयं के अहंकार को त्याग दिया है, एक की ही शरण में हो चुका है। उसे मारने वाला दुनियां में कोई नहीं है। अपनी बेटी से कहने लगा–

हे बेटी! तूं बादशाह की सेवा कर। यह तो कोई पैगम्बर ही है। जैसा मैंने देखा है वैसा तो कोई साधारण आदमी हो ही नहीं सकता है। वह तो तुम्हारा पति परमेश्वर ही है। तुम तो इनकी सेवा से ही पार हो जाओगी।

बादशाह अपने इष्टदेव जम्भेश्वर की महिमा का बखान करता। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की आलोचना करता था। सभी उमराव चुप रह जाते कोई बादशाह की बात का प्रत्युत्तर नहीं देता था। बादशाह के तो असली रंग चढ़ गया था।

एक समय बादशाह रुग्ण हो गया। उस दिन टोपी नहीं बना सका। हक की कमाई होती तो भोजन करे। बेहक का भोजन नहीं करता था। बादशाह भूखा रहे। प्रजा भोजन करे यह कैसे हो सकता था। सभी मंत्रीगण एकत्रित हुए, उन्होंने कहा–

हे राजन्! आप आज्ञा दो तो आपकी नगरी में जिसके पास हक की कमाई का अन्न है, वहाँ से लाया जाये

और आप भोजन करें। बादशाह की आज्ञा पाकर नगरी में खोजा गया। एक बुढ़िया जो सूत कात रही थी, उसके पास जाकर निवेदन किया कि तुम्हारा अन्न हक्क का होगा तो आप राजा को देवे,राजा तुम्हें मुद्रा देंगे और भोजन करेंगे। बुढ़िया ने हक की कमाई का अन्न देना स्वीकार तो किया किन्तु कहने लगी-

जैसा राजा चाहता है वैसा तो अन्न मेरा नहीं है। क्योंकि जिन रुपयों से यह अन्न खरीदा गया है, वे रुपये सूत कात कर बेच कर लायी थी। किन्तु उस दिन मेरे दीपक का तेल समाप्त हो गया था। उसी समय ही पड़ौसी की मसाल जल रही थी। उसके प्रकाश से मैंने सूत काता था। उसी सूत के रुपयों का यह अन्न है, जो मैं दे रही हूँ। आप चाहे तो ले जा सकते हैं। मंत्रियों ने वह बुढ़िया का अन्न लाकर बादशाह को दिया किन्तु बादशाह ने नहीं लिया।

भगवान् नाम का एक ब्राह्मण सिकन्दर के राजदरबार में आया। बादशाह ने पूछा-हिन्दू धर्म बड़ा या मुसलमान ? भगवान् ब्राह्मण ने कहा-जो ईश्वर को याद करे और ईमान पर दृढ़ रहे, वही बड़ा है। धर्म कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। तब बादशाह ने कहा कि- तुम मुसलमान हो जाओ। जब सभी धर्म बड़े हैं, तो मुसलमान होने में क्या हर्जा है। ब्राह्मण बोला-यदि मेरे तीन प्रश्नों का उतर मिल जाये, तो मैं हो सकता हूँ। बादशाह ने काजी को बुलाया और कहा-आप इन ब्राह्मण के प्रश्नों का उतर दें और इन्हें मुसलमान बनायें। काजी ब्राह्मण को अपने घर ले गया। उनके प्रश्नों का तो उत्तर नहीं दे सका, किन्तु ब्राह्मण की हत्या कर दी। बादशाह के पास न तो काजी ही लौटकर आया और न ही ब्राह्मण।

एक दिन भगवान् ब्राह्मण का लड़का भागबली सिकन्दर के दरबार में आया और अर्ज करने लगा- हे बादशाह ! न तो मेरे पिता ही अब तक लौटकर आये हैं और न ही उन तीन प्रश्नों का उत्तर ही अब तक हमें मिला है। तुम्हारे काजियों ने मेरे पिता की हत्या कर दी है। आप न्यायकारी हैं, हमारा न्याय करें।

बादशाह ने काजियों को बुलाया और भागबली की बात की सच्चाई जाननी चाही। काजियों ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। तब बादशाह ने फटकार सुनायी। धर्मविरुद्ध आचरण करने के लिए दण्डित किया।

बादशाह ने कहा-हे भागबली ! तुम्हारे पिता की हत्या इन काजियों ने की है। इसका दण्ड तो मैं इनको दूँगा ही, किन्तु तुम्हारे प्रश्नों का जवाब तो अर्न्तयामी श्री जाम्भोजी ही दे सकते हैं। तुम्हें उन्हीं के पास ही जाना होगा। यदि तुम्हें जाम्भोजी पर सहसा विश्वास नहीं हो रहा है तो मैं तुम्हारे साथ अन्य लोगों को भेजूँगा और एक करोड़ रुपयों का दिव्य रत्न सात पर्दों में बंद करके राजकीय मुहर लगा दूँगा।

जाम्भोजी सभी कुछ बिना खोले वस्तु एवं उसका मोल बतला देंगे। तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर तुम्हें मिल जायेगा। उसी समय ही सैफन खाँ कजलिये ने भी अपनी शंका दूर करने के लिए जाम्भोजी के पास जाने की इच्छा प्रगट की तथा राजदरबार में एक शाह-सेठ भी अपना न्याय करवाने हेतु उपस्थित हुआ।

शाह कहने लगा-हे बादशाह ! मेरे साथ एक बनिया है। उसे मैं आपके पास लेकर आया हूँ। इस बनिये ने मेरे से धन लिया था, किन्तु अब दे नहीं रहा है। आप कृपा करके मेरा धन वापिस दिला दीजिये।

बनिया कहने लगा-हे राजन्! मैंने इससे धन लिया था, किन्तु वह तो तुरंत ही चोर ले गया। मेरे कार्य में आया ही नहीं। मैं कहाँ से इसे धन वापिस लौटाऊँ। मेरे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है। चोर इसका ही धन चुरा ले गया, मैं क्या करूँ, आप ही फैसला कीजिये।

बादशाह ने कहा-आप लोग सभी सम्भराथल ही जाइये। वहीं सभी समस्याओं का समाधान संभव है। ऐसा कहते हुए वह सहू, बनिया, भागबली और सैफन खां सभी मिलकर सम्भराथल चले गये। जाम्भोजी ने बिना गठड़ी खोले ही रत्न का मोल तथा वस्तु का नाम बतलाया। राजा की मोहर ज्यों की त्यों बनी रही। वह एक करोड़

का रत्न भी निकाल लिया और उसी जगह पर दो करोड़ का दूसरा रत्न एवं नारियल वापिस अन्दर रख दिया।

सभी की शंका का समाधान किया। वे लोग वापिस मोहर लगी हुई पोटली लेकर आये, बादशाह के सामने रखी। बादशाह ने देखा कि हमारी वस्तु तो जाम्भोजी ने भेंटस्वरूप स्वीकार कर ली और हमें आशीर्वाद रूप में दुगुना प्रसाद भेजा है। यह जीवन तो स्वीकार किया है और परलोक भी मेरा बन गया है। इस प्रकार से **जम्बूदीप ऐसो चर आयो, इसकन्दर चेतायो, मान्यो शील हकीकत जाग्यो, हक की रोजी ध्यायो।** काजी को ज्ञान बताया– काजी ने आकर सिकन्दर को बतलाया कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही आपके पीर पैकेम्बर है। मैंने देखा है कि उनको भूख प्यास, नींद आदि षट्उर्मियाँ नहीं सताती। उनके शरीर में छाया, माया, पाँव के निशान आदि अन्य लोगों की भाँति नहीं हैं। मैंने देखा कि अन्तर्यामी है। दूसरे के मन की बात जानते हैं। उनकी शक्ति का कोई थाघ नहीं है। ये तो सच्चे गुरु हैं। सच्चा पंथ ही बतलाते हैं।

भागबली को भी उत्तर देकर शांत किया है। उन्होनें भागबली को बतलाया था कि जो तुमने पूर्व जन्म में किया था, वही इसी जन्म में प्राप्त कर रहे हो और जो इस जन्म में प्राप्त करोगे, वह विष्णु के नाम जप से अनन्त गुणा बढ़ जायेगा। कर्जा और वैर कभी मिटता नहीं है। आगे से आगे बढ़ता जाता है। तन, मन, वचन, कर्मणा से किसी के प्रति बुरी भावना नहीं करोगे। किसी का अनिष्ट भी नहीं चाहोगे, तो जीवन में युक्तिपूर्वक जीओगे और मरने पर मुक्ति की प्राप्ति होगी।

मन में ईश्वर का नाम और परोपकार करो। वचन सत्य बोले, वह साधु जन भवसागर से पार उतर जाता है। हिन्दू-मुसलमान का ईश्वर-अल्ला तो एक ही है। व्यर्थ के विवाद में पड़कर दोनों ही अपने को बर्बाद न करें। इस प्रकार से सिकन्दर को ज्ञान देकर मुक्ति को पहुँचाया।

महमंद खां के प्रति शब्दोपदेश

वील्होजी उवाच:-हे गुरुदेव! सिकन्दर ने अद्भुत परचा प्राप्त किया, यह मैंने सुना। क्या सिकन्दर जाम्भोजी का शिष्य बन गया था? उन्होंने क्या अपना पुश्तैनी धर्म त्यागकर हिन्दू धर्म अपना लिया था? यदि ऐसा हुआ होगा तो उनके अन्य परिजन एवं काजी मुल्लाओं ने क्या प्रतिक्रिया की थी? ये सभी बातें मैं जानना चाहता हूँ।

नाथोजी उवाच:-सिकन्दर बादशाह ने केवल जाम्भोजी से उपदेश ही लिया था। वह मानवता का उपदेश था। किसी सम्प्रदाय की तरफ झुकने का कोई प्रयोजन भी नहीं था। इसलिए सिकन्दर बादशाह पाहल ग्रहण करके बिश्नोई समाज में सम्मिलित नहीं हुआ था। कवेल शिष्य तक ही सीमित था। सिकन्दर ने अपने परिजनों एवे काजी मुल्लाओं से सम्पर्क नहीं तोड़ा था। सिकन्दर ने मुसलमान धर्म की कट्टरता त्याग दी थी तथा हिन्दू धर्म की कट्टरता से भी परहेज किया था। उसने मध्यमार्ग अपनाया था। वह मार्ग जाम्भोजी महाराज ने दिया था।

वह जीवन की युक्ति बताने वाला और मुक्ति प्रदान करने वाला था। सिकन्दर ने इसलिए ही तो प्रभावित होकर जाम्बा मस्जिद की स्थापना की थी। वह पुण्य की घड़ी सदा स्मरण बनी रहे। वहाँ पर बैठकर प्रार्थना कर सके। ऐसी मस्जिद एकान्त, दूर, सौम्य स्थान में निर्माण करवायी थी। जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों आ सकें। अपने ईश्वर की प्रार्थना कर सकें। इस समय यह यादगार में जामा मस्जिद विद्यमान है। आगे

भी खड़ी पवित्र संदेश देती रहेगी। हिन्दु-मुसलमान के प्रेमभाव, भाईचारे की यह पवित्र मिसाल के रूप में सदा-सदा के लिए संदेश देती रहेगी।

सभी का ईश्वर तो एक ही है। नामरूप भिन्न हो सकते हैं। किन्तु मूल सभी का एक ही है। पंडे,पुरोहित,काजी,मुल्ला आदि अपनी-अपनी ढ़पली अलग अलग बजाते हैं। साधारण जनता को भ्रमित करके अपना स्वार्थ सिद्ध करने में ही धर्म की रक्षा समझते हैं। एक-दूसरे में भ्रांति पैदा करके आपस में वैमनस्य फैलाते हैं। ऐसे लोगों से सावधान रहने की आवश्यकता है। हे वील्हा-जब काजी-मुल्लाओं ने सुना कि सिकन्दर बादशाह हिन्दू हो गया है। उन्होंने सम्भराथल पर विराजमान जम्भेश्वरजी से हिन्दू धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब तो उनकी ही बात मानता है, हमारी शिक्षा स्वीकार नहीं करता है। उन्होंने सिकन्दर को धर्ममार्ग से हटाने की पुरजौर कोशिश की, किन्तु सिकन्दर के तो रंग चढ़ चुका था।

कुछ काजी मुल्ला नागौर के सूबेदार महमंद खाँ के पास आये और कहने लगे-हम तो हैरान हो गये हैं। बादशाह ने हिन्दू धर्म अपना लिया है। आप उनके प्रतिष्ठित सूबेदार हो। उन्हें वापिस अपने पंथ में कैसे लायें, कोई उपाय बतलाओ।

महमंद कहने लगा-बादशाह से पूर्व तो इस मत-धर्म को मैं भी अपना चुका हूँ। मैं स्वयं ही इस पंथ का अनुगामी एवं जाम्भोजी का शिष्य हूँ। मैं कैसे बादशाह को निवृत्त कर सकता हूँ। मैं तो यह कहता हूँ कि यह मत बहुत ही अच्छा है। जो आपस में प्रेम भाईचारा सिखाता है। आप लोग चले जाइये। इसके बारे में मेरे से कुछ भी नहीं कहना। आप लोग धर्म के मर्म को नहीं जानते।

काजियों ने महमंद से कहा-आप लोग मुसलमान हैं। अपने धर्म को त्याग करके काफिर हो रहे हो। यह अल्ला-खुदा को मंजूर नहीं है। आपसे खुदा रूठ जायेगा। आपको भारी विपत्ति उठानी होगी। अपनी परम्परा से प्राप्त धर्म मत त्यागिये। हमारे कहने से एक बार पुन: विचार कीजिये। जाम्भोजी के पास जाइये। वे तो हमारे मजहब के शत्रु हैं। हिन्दुओं के पक्षपाती हैं। पाखण्डी है। लोगों को बहकाते हैं।

आप तो बादशाह के सूबेदार सर्वसमर्थ हैं। आप तो उनसे कहीं ज्यादा महान हैं। आपके पास तो हाथी-घोड़ा, राज-पाट सभी कुछ हैं। उनके पास तो ये वस्तुएँ कुछ भी नहीं हैं। केवल जंगल में एक कंकेहड़ी के वृक्ष के नीचे बैठे हैं।

काजियों की बात सुनकर महमंद का अहंकार जग गया। वह बहुत से हाथी-घोड़ा आदि सवारी के साधन एवं अपने लाव-लश्कर को साथ लेकर पूरे अहंकार में भर, अंधा होकर सम्भराथल पर पहुँचा। उनके पास जाकर पूछा-हे पीरजी! हमें कर्त्तव्य-कर्म बतलाइये। हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये।? हम राजा हैं। पक्के इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। आपने हमें भ्रम में डाल दिया है और हम क्या करें और क्या न करें, कुछ भी दिखाई नहीं देता।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे राजन्! तू राजा के मद में असलियत को मत भूल। यह तुम्हारा लाव लश्कर केवल तुम्हें अहंकार के वशीभूत कर देगा। तू अज्ञानता में अंधा हो जायेगा। तेरी विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी। जिस वस्तु, राज्य, हाथी घोड़ा आदि का अहंकार करता है यह तो ओस के पानी की तरह ही है। इससे प्यास मिटने वाली नहीं है। कोहरे के बादल तभी तक स्थिर हैं जब तक कि हवा न चले। हवा चलते ही, सूर्य की किरणें पड़ते ही धुंवर की वर्षा एवं बादल उड़ जायेंगे। ऐसी ही दुर्गति उस धन-दौलत की होगी।

असार वस्तु को ज्यादा बहुमूल्य न समझ। एक दिन तेरा यह जीव हंस उड़ जायेगा। तब तू कुछ भी नहीं रहेगा। तेरा भी कुछ नहीं रहेगा। जिस शरीर का तू अहंकार करता है। यह शरीर तेरा प्राण निकल जाने पर

विधवा हो जायेगा। इसके प्राणपति प्रयाण कर जायेंगे। तभी तेरा कोई भी साथ नहीं देगा। इसलिए इस अहंकार के पर्दे को फाड़कर शुद्ध बुद्धि द्वारा देख। तभी तुम्हें असलियत का पता चलेगा। तू किसी दूसरे के बहकावे में आकर अपने जीवन को कौड़ी के बदले में मत नष्ट कर। इस प्रकार से मुहमंद को श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-25

ओ३म् राज न भूलीलो राजेन्द्र, दुनी न बंधै मेरूं।
पवणा झोंले बीखर जैला, धुंवर तणा जै लोरूं।
वोलस आभै तणा लह लोरूं, आडा डम्बर केती बार बिलम्बण
यो संसार अनेहूँ।
भूला प्राणी विष्णु न जंप्यो, मरण विसारो केहूँ।
म्हां देखता देव दाणूं सुरनर खीणा, जंबू मंझे राचिन रहिबा थेहूँ।
नदिये नीर न छीलर पांणी, धूंवर तणा जे मेहूँ।
हंस उड़ाणो पंथ विलंब्यो, आसा सास निरास भई लो।
ताछे होयसीं रंड निरंडी देहूँ,
पवणा झोले बीखर जैला गैण विलंबी खेहूँ।

वैरागी महंत की स्थूलता सम्बन्ध में शब्द

नाथोजी उवाचः-हे शिष्य! एक समय सम्भराथल पर श्री परमेश्वरजी विराजमान थे। जहाँ हरी-भरी कंकेहड़ी के वृक्षों की छाया में प्राकृत सौन्दर्य को अपलक नेत्रों से निहार रहे थे। पास में बैठे हुए साथरी जन जो सदा ही साथ में रहते थे। उन्होंने वैरागी-वैष्णव संतों की जमात को सम्भराथल के पास से ही होकर जाते हुए देखा। कुछ पूछने की इच्छा से श्रीदेवजी से प्रार्थना करने लगे-

हे देव! हम लोग देख रहे हैं। किन्तु आप उन्हें नहीं देख रहे। आप नीचे की ओर देखिये-वैष्णव साधुओं की जमात जा रही है। इस जमात का महंत अतिपुष्ट स्थूल शरीर धारी है। महंत देखने में कितना अच्छा लगता है। वास्तव में यह तो महंत बनने योग्य ही था। हे देव! हम आपको देखते हैं, तो आप हमारे सभी के महंत होते हुए भी पुष्ट क्यों नहीं हैं? इतने दुबले-पतले हो। यह हमें तो अच्छा नहीं लगता। श्री देवजी ने शब्द सुनाते हुए कहा-

अधिक भोजन करने में कुछ भी गुण नहीं है। इससे शरीर स्थूल हो जायेगा। आगे-पीछे मांस का भार झूलेगा। व्यर्थ ही शरीर का भार उठाना है। आप लोग शरीर को मत देखो। अंदर बैठी हुई आत्मा का साक्षात्कार करो। शरीर छोटा-बड़ा,दुबला-पतला होने से आत्मा कोई छोटी-बड़ी नहीं हो जाती। तुम आत्मस्वरूप हो। न कि शरीर रूप हो। अपनी औकात को पहचानो।

कोई ज्यादा आयु ले लेने से बड़ा नहीं हो जाता। ज्यादा बड़ा हो जाने से संसार के दु:खों से छूटकर पार नहीं चला जायेगा। कोई उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से उत्तम नहीं हो जाता है। उत्तम (महान) तो

व्यक्ति कर्मों से बनता है।

यदि कोई गोरख यति का दर्शन करले तो गोरख यति नहीं बन सकता। गोरख ने जिस मार्ग का अनुसरण करके सिद्धि की प्राप्ति की है, वही मार्ग अपनाएँ। हे लोगो! इस समय कलयुग चल रहा है। अनेक प्रकार के कलाबाज आयेंगे। भ्रान्ति फैलायेंगे। सदा ही सचेत रहें। किसी के बहकावे में नहीं आवे। मैंने तुम्हें सतपंथ बताया है। तुम्हारी भ्रान्ति मिटा दी है। जो भी मैं कहता हूँ यह सभी वेदग्रन्थों के उद्गार है। इस प्रकार से शब्द सुनाया-

शब्द-26

ओ३म् घणतण जीम्या को गुण नाही, मल भरिया भण्डारूं।
आगे पीछे माटी झूलै, भूला बहैज भारूं।
घणा दिना का बड़ा न कहिबा, बड़ा न लंघिबा पारूं।
उत्तम कुली का उत्तम न होयबा,कारण किरिया सारूं।
गोरख दीठां सिद्ध न होयबा, पोह उतरबा पारूं
कलजुग बरते चेतो लोई, चेतो चेतण हारूं।
सतगुरु मिलियो सतपंथ बतायो, भ्रान्त चुकाई, बिद गाराते उदगा गारूं।

जीव का देह में प्रवेश तथा स्वरूप विज्ञान

वील्होजी उवाचः-हे गुरुदेव! जीव देह में प्रवेश होता है, तब जीव-शरीर का सम्बन्ध कब होता है? क्या प्रथम शरीर की उत्पति होती है? पश्चात् जीव का प्रवेश होता है। या प्रथम जीव की उपस्थिति होती है, पश्चात् शरीर की उत्पति एवं विकास होता है? इस सम्बन्ध में अनेकानेक मत मतान्तर हैं। श्रीदेवजी इस सम्बन्ध में क्या कहते थे? यदि आपको ज्ञात हो तो बतलाने का कष्ट करें। इस समय में आपसे बढ़कर और कोई श्रोता या वक्ता इस समय प्रत्यक्षदर्शी नहीं है।

नाथोजी उवाचः-हे शिष्य! श्रीदेवजी ने अपने जीवनकाल में अनेक शब्द कहे। उन शब्दों द्वारा एवं प्रसंगों से अनेक विषयों का विस्तृत ज्ञान होता है। जैसा तुमने यह प्रश्न पूछा है, वैसा प्रश्न एक समय महमंद खां नागौरी एवं शेख मनोहर ने भी पूछा था। श्री देवजी ने इस सम्बन्ध में जो शब्द सुनाया था, वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ तथा उन्होंने जो वार्ता की, वह भी तुम्हें बतलाता हूँ। ध्यानपूर्वक श्रवण करो-

महमंद खांन कह पीरजी जीव किस दवार पठ है देवजी कह तुम्हार वेद कतब मो क्या है वेद कतेब मा नासिका की वाट पठ है देवजी कह इंड मां जीव पठा से किस विध पठा है सेख मनुवर कह हम पारसी बौहत पढ़े है हम कूं कुरान की बात कहो। जाम्भाजी श्रीवायक कह-

महमंद खां जाम्भोजी का शिष्य बन गया था। एक समय किसी कार्यवश महमंद शेख मनोहर के पास गया था। महमंद ने कहा हमारे तो गुरु पीर श्री जाम्भोजी हैं। हम तो उनकी ही बात मानते हैं। महमंद खां ने श्रीदेवजी द्वारा सुनाया हुआ शब्द भी सुनाया और कहा-

हे शेख! कोप करने की आवश्यकता नहीं है। आप धैर्य धारण करके मेरे साथ चलो। वहीं पर जाने से ही तुम्हारा क्रोध शान्त होगा। मैं भी तुम्हारी तरह कोप करके गया था, किन्तु वहाँ जाने से अहंकार से निवृत्त

होकर ठण्डा हो गया था।

शेख ने चर्चा करने के लिए सम्भराथल पर चलने की ठान ली। समय पर महमंद को साथ लेकर सम्भराथल पर श्रीदेवजी के पास आया। शेख मनोहर देवजी से पूछने लगा-हे पीरजी! आप यह बतलाइये कि शरीर में जीव उत्पन्न होता है, इसका क्या विचार है। क्या प्रथम शरीर या जीव?

देवजी ने कहा-हे शेख! तुम्हें किताबों पर विश्वास है। तुमने कुरान पढ़ी है। वेद शास्त्र भी पढ़े होंगे। उनमें क्या लिखा है? शेख कहने लगा-कुरान-पुराण में तो यही लिखा है कि नासिका के दरवाजे से जीव शरीर में प्रवेश करता है। श्रीजी ने कहा-तो यह बतलाओ कि अण्डे के तो नासिक होती ही नहीं है। उसमें जीव कहाँ से प्रवेश करेगा? शेख कहने लगा-यह तो हमें मालूम नहीं है। आप ही बतलावें। ईश्वर की आज्ञा से ही जीव आता है और चला भी जाता है। इसके बारे में आप ही प्रमाण हैं।

श्रीदेवजी ने बतलाया-आप लोगों ने वेद कुरान शास्त्र पोथा पढ़े हैं, किन्तु पढ़-लिख कर भी खाली ही रह गये। केवल कथन करने से ही ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती हे। प्रथम श्रवण-मनन, फिर निदिध्यासन पश्चात् दर्शन अनुभव होता है। आप लोग तो केवल श्रवण तक ही सीमित हो गये हैं। जीव किस दिशा से आता है और किस दिशा को चला जाता है? इस बात को माता-पिता नहीं जानते। प्रथम जीव फिर शरीर की उत्पत्ति होती है। बिना जीव के शरीर की वृद्धि कैसे हो सकेगी। बिना जीव के शरीर तो मुर्दा है। जीव रूप चेतनता होने से ही शरीर जीवित रहता है, विकास को प्राप्त होता है, शरीर के मध्य ही जीव रहता है, जीव से ही शरीर की उत्पति एवं विकास होता है। जिस प्रकार से कांसी के बर्तन में ध्वनि रहती है, बजाने से प्रगट हो जाती है, अन्यथा अन्दर छिपी रहती है। उसी प्रकार से शरीर के कण-कण में जीव विद्यमान है। कहीं-कहीं विशेष रूप से आवश्यकता पड़ने पर प्रकट होता है।

कभी वह जीव आँखों द्वारा देखता है। कानों द्वारा सुनता है। बुद्धि द्वारा विचार करता है। मन द्वारा संकल्प-विकल्प करता है। नासिका द्वारा सूंघता है। त्वचा द्वारा स्पर्श करता है। इस प्रकार से वह चेतन जीव प्रत्यक्ष होता है। एक क्षण में ही जीव शरीर में रहकर अनेक क्रियाएँ करता है। दूसरे क्षण में मन के साथ मिलकर बहिर्गमन कर जाता है। संकल्प विकल्पवान हो जाता है। यह सभी कुछ ज्ञान,ध्यान,नाद,वेद से जाना जाता है।

जो सत्य मार्ग का अन्वेषण कर लेता है। तत्त्व की प्राप्ति तो वही करता है। वैसे तो संसार में बड़े-बड़े दानी हुए हैं- कर्ण,दधीचि जैसे किन्तु उन्होंने भी उतना ही प्राप्त किया जितना दिया था। तत्त्वज्ञान तो इन सभी से ही विलक्षण है। व्यर्थ की बातों में न उलझकर तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिये। श्रीदेवजी ने अपने मुख से शब्द सुनाया-

शब्द-27

ओ३म् पढ कागल वेदूं शास्त्र शब्दूं, पढ़ सुन रहिया कछु न लहिया।
नुगरा उमग्या काठ पखाणे, कागल पोथा ना कुछ थोथा।
ना कुछ गाया गीऊं।
किण दिश आवै किण दिश जावे, माई लखे न पीऊं।
इंडे मध्ये पिंड उपन्ना, पिंडा मध्ये बिंब उपन्ना।
किण दिश पैठा जीऊं, इंडा मध्ये जीव उपन्ना।

सुणरे काजी सुणरे मुल्लां, पीर ऋषीश्वर रेमसबासी।
तीरथ वासी, किण घट पैठा जीऊं।
कंसा शब्दे कंस लुकाई, बाहर गई न रीऊं।
क्षिण आवै क्षिण बाहर जावै, रुतकर बरसत सीऊं।
सोवन लंक मंदोदर काजै, जोय जोय भेद विभीषण दीयों।
तेल लीयो खल चोपै जोगी, तिहिं को मोल थोड़ेरो कीयो।
ज्ञाने ध्याने नादे वेदे जे नर लेणा, तत भी ताही लीयो।
करण दधीचि सिंवर बलराजा, हुई का फल लीयों।
तारा दे रोहितास हरिचन्द, काया दशबन्ध दीयों।
विष्णु अजंप्या जनम अकारथ, आके डोडा खीपे फलीयो।
काफर बिवरजत रुहीयूं।
सेतूं भातूं बहुरंग लेणा, सब रंग लेणा रुहीयूं।
नाना रे बहुरंग न राचै, काली ऊंन कुजीऊं।
पाहे लाख मजीठी राता, मोल न जिहिं का रुहीयूं।
कब ही वो ग्रह ऊथरि आवै, शैतानी साथे लीयों।
ठोठ गुरु वृष ली पति नारी, जद बंकै जद बीरूं।
अमृत का फल एक मन रहिबा, मेवा मिष्ट सुभायों।
अशुद्ध पुरुष वृष ली पति नारी, बिन परचै पार गिराय न जाई।
देखत अन्धा सुणता बहरा, तासों कछु न बसाई।

शेख मनउवर पुछ पीरजी इस रोह का वरण कुण है जाम्भोजी श्री वायक कह-

शेख मनोहर एवं महमंद खां ने शब्द सुना और आनन्द को प्राप्त हुए तथा वहाँ से प्रणाम करके चल ते हुए आपस में वार्ता करने लगे कि जाम्भोजी तो स्वयं विष्णु के ही रूप हैं। उनकी बात सत्य है। हम लोग पूर्णतया संतुष्ट होकर आ गये।

किन्तु एक बात तो भूल ही गये। जम्भेश्वरजी से हमने जीव का रूप-रंग नहीं पूछा। यह जीव किस रंग का है, इसका रूप क्या है, अब तो बहुत दूर आ गये हैं। वापिस जाना तो लज्जा की बात है। यदि जाम्भोजी स्वयं अन्तर्यामी हैं, तो हमें वापिस बुला लेंगे। उनके पास आया हुआ तो कोई खाली हाथ लौटता ही नहीं है। हमारी तो यही मानसिक पीड़ा है। हमें दु:ख देती रहेगी। अवश्य ही हमारा दु:ख दूर करेंगे। अन्तर्यामी श्रीदेवजी ने अपने एक सेवक को भेजकर उन्हें वापिस बुलाया और उनकी शंका का समाधान करते हुए शब्द सुनाया-

शब्द-28

ओ३म् मच्छी मच्छ फिरै जल भीतर, तिहिं का माघ न जोयबा।

परम तन्त है ऐसा, आछै उरबार न ताछै पारूं।
ओवड़ छेवड़ कोई न थीयों, तिहिं का अन्त लहीबा कैसा।
ऐसा लो भल ऐसा लो, भल कहो न कहा गहीरूं।
परम तन्त कै रूप न रेखा, लीक न लेहूँ खोज न खेहूँ।
वर्ण बिबरजत, भावैं खोजो बांवन बीरूं।
मीन का पंथ मीन ही जाणे, नीर सुरंगम रहीयूं।
सिध का पंथ कोई साधु जाणत, बीजा बरतन बहियों।

जिस प्रकार से मछली मगरमच्छ जल में रहते हैं। उनका मार्ग वही जानते हैं। उसी प्रकार से ही अनुभव तो तभी होगा, जब साधना पथ में उतरोगे और साक्षात्कार भी तभी होगा जब आत्मा परमात्मा के बारे में जान सकोगे।

यह केवल शब्द का विषय नहीं है। शब्द के द्वारा जनाया नहीं जा सकता। वह परमतत्त्व तो ऐसा ही है। यह कैसे कहें ? न तो उसकी कोई सीमा ही है, न ही कोई रूप वर्ण खोज छाया माया आदि कुछ भी नहीं है। उसे कैसे इन्द्रियों द्वारा अवगत किया जावे।

जिसने भी अनुभव किया है वही जान सका है। वह दूसरे को शब्द द्वारा नहीं दे सकता। सिद्ध का पंथ कोई साधु ही जानता है। अन्य लोग तो केवल देखा-देखी आचरण करते हैं। जल में तैरना सीखना है तो जल में डुबकी लगानी पड़ती है। उसके लिए गहरे जल में उतरना ही पड़ेगा। दूर बैठकर कोई तैरना नहीं सीखता। उसी प्रकार से परमतत्त्व की प्राप्ति हेतु तो, उसी में ही लीन होना होगा। इस प्रकार से शेख मनोहर गुरुदेव की शक्ति से परिचित हुआ। हृदय में सच्चाई का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीदेवजी के चरणों में प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किया।

शब्द इलोल सागर

नाथोजी उवाचः- एक समय की अद्भुत घटना मैं तुम्हें सुनाता हूँ। क्योंकि-तुमने तो मेरे से नहीं पूछा, किन्तु मैं तुम्हें बिना पूछे ही सुनाता हूँ। क्योंकि स्वयं श्री सिद्धेश्वरजी ने भी तो बिना कुछ जमात के पूछे ही स्वतः शब्द का उच्चारण किया था। इस शब्द को इलोल सागर के नाम से कहा जाता है। कभी-कभी बिना पूछे स्वतः ही किसी विशेष घटना की स्मृति हो जाये, तो उसे कहे बिना नहीं रहा जाता। अन्दर उमड़े हुए भावों को शब्दों द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। अपार आनन्द की अनुभूति को अन्दर रोक करके नहीं रखा जाता। वैसे तो श्री जाम्भेश्वरजी बिना प्रयोजन नहीं बोलते थे। किन्तु इस शब्द के बारे में तो अपवाद ही कहा जायेगा। आनन्द की लहरें उमड़ पड़ीं और स्वतः ही इस प्रकार से बाहर निकल पड़ीं। इस शब्द द्वारा-

इलोल सागर शब्द-29

ओ३म् गुरु के शब्द असंख्य प्रबोधी, खार समंद परीलो।
खार समंद पर परैरै, चौखंड खारूं, पहला अन्त न पारूं।
अनन्त कोड़ गुरु की दावण बिलम्बी,करणी साच तरीलो।
सांझे जमों सवेरे थापण, गुरु की नाथ डरीलो।

भगवीं टोपी थलशिर आयो, हेत मिलाण करीलो।
अम्बाराय बधाई बाजै, हृदय हरि सिंवरीलो।
कृष्ण मया चौखण्ड कृषाणी, जम्बू दीप चरीलो।
जम्बू दीप ऐसो चर आयो, इसकन्दर चेतायो।
मान्यो शील हकीकत जाग्यो, हक की रोजी धायों।
ऊंनथ नाथ कुपह का पोहमा आण्या, पोह का धुर पहुँचायों।
मोरै धरती ध्यान वनस्पति वासो, ओजू मंडल छायों।
गीदूं मेर पगांणै परबत, मनसा सोड़ तुलायो।
ऐ जुग चार छतीसां और छतीसां, आश्रा बहे अंधारी।
म्हें तो खड़ा विहायों। तेतीसां की बरग बहां म्हे, बारां काजे आयों।
बारा थाप घणा न ठाहर, मतांतो डीले डीले कोड़ रचायों।
म्हे ऊँचे मण्डल का रायों। समंद बिरोल्यो बासग नेतो, मेर मथांणी थायों।
संसा अर्जुन मार्‌यो कारज साj‌यो, जद म्हे रहस दमामा वायों।
फेरी सीत लई जद लंका, तद म्हे ऊंथे थायों।
दश सिर का दश मस्तक छेद्या, बाण भला निरतायों।
म्हे खोजी थापण होजी नाही, लह लह खेलत डायो।
कंसा सुर सूं जूवै रमियां, सहजे नन्द हरायो।
कूंत कुंवारी कर्ण समानो, तिहिं का पोह पोह पड़दा छायो।
पाहे लाख मजीठी पाखो, बनफल राता पींझू पाणी के रंग धायो।
तेपण चाखन चाख्या भाख न भाख्या, जो; 2 लियो, फल 2 केर रसायो।
थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या, न चीन्हों सुर रायों।
कण बिन कुकस कांय पीसो, निश्चै सरी न कायों।
म्हें अबधू निरपख जोगी, सहज नगर का रायो।
जो ज्यूं आवै सो त्यूं थरपा, साचा सूं सत भायो।
मोरै मन ही मुद्रा तन ही कंथा, जोग मारग सहडायों।
सात शायर म्हे कुरले कीयों, ना मैं पीया ना रह्या तिसायों।
डाकण शाकण निंद्रा खुध्या, ये म्हारे तांबै कूप छिपायों।
म्हारे मनही मुद्रा तनही कंथा, जोग मार्ग सहलीयों।
डाकण शाकण निंद्रा खुध्या, ऐ मेरे मूल ना थीयों।

इस शब्द को सुनकर के रणधीर आदि शिष्यों ने पूछा-हे देव! आप समुद्र पार कब गये थे? हमने तो

आपको यहाँ सम्भराथल पर ही देखा है।

श्री जम्भेश्वरजी ने कहा–हे शिष्यो! मैं इस शरीर से तो आपके सामने यहाँ पर बैठा हूँ, किन्तु केवल मेरा यही शरीर ही नहीं है। मेरा असली शरीर तो शब्द है। मैं शब्द द्वारा अनेक देश-देशान्तरों में गया हूँ। मेरे शब्दों द्वारा असंख्य लोग प्रबोधित हुए हैं और अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन किया है। मैं खारसमुद्र के पार भी गया हूँ तथा उससे भी आगे, जहाँ पर विचित्र लोग निवास करते हैं। वहाँ पर भी मैं शब्द शरीर द्वारा पहुँचा हूँ।

उनको भी यही ज्ञान, जो मैं तुमको सुना रहा हूँ, सुनाया था। सद्पन्थ का पथिक बनाया है। आप लोग इसमें किसी प्रकार का सन्देह न करें, क्योंकि शब्द व्यापक है। मैं भले ही यहाँ पर बैठा हूँ, किन्तु मेरा शब्द व्यापक होकर अन्य रूप से प्रह्लाद पंथी जीवों को उनकी ही भाषा में समझाता है। इसी शब्द द्वारा ही अनन्त करोड़ लोग धर्म के मार्ग पर आये हैं। गुरु वचनों को स्वीकार करके धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगे हैं। इस समय में मैं तुम्हारे सामने भगवीं टोपी धारण करके सम्भराथल पर आया हूँ। मुझे आप किसी सीमा में न बाँधें। क्योंकि मैं तो अनेक रूपों में विचरण करता हूँ। जैसा जहाँ चाहता हूँ, वैसा रूप धारण कर लेता हूँ। अभी कुछ दिन पूर्व ही मैंने सिकन्दर को चेताया था। तब मेरा रूप भिन्न ही था। बड़े बड़े दुष्ट प्रकृति के मोहग्रस्त लोगों को मैंने सन्मार्ग पर चलाया है।

मुझे अनेकानेक रूप बनाने में कुछ भी परेशानी नहीं है क्योंकि प्रकृति को अपने वश में करके अपनी माया द्वारा मैं विस्तार को प्राप्त हो जाता हूँ। यह धरती, पवन, जल,तेज, आकाश, पाँच तत्त्व तो मेरे ही अधीन हैं। मैं इनका प्रयोग विशेष कार्य हेतु कर लेता हूँ।

मैं सभी कुछ करता हुआ भी अकर्ता बना रहता हूँ। मैं सभी कर्म करते हुए भी कर्मफल में लिपायमान नहीं होता। इसलिए कर्मों का भोग सुख-दुःख मुझे छू नहीं सकते। मैं सदा ही सुख दुःख से ऊपर उठकर आनन्द की अनुभूति में रहता हूँ। मेरे देखते हुए छत्तीस युग व्यतीत हो गये हैं। दुनियाँ सभी सो जाती है, मैं तो कभी सोता नहीं हूँ। क्योंकि मुझे भूख, प्यास, निद्रा आदि सताते नहीं हैं।

मैं यहाँ 33 करोड़ प्रह्लाद के जीवों का उद्धार करने के लिए आया हूँ। इस समय तो केवल 12 करोड़ ही यहाँ मरुदेश में तथा खारसमुद्र से पार जहाँ कहीं भी होंगे, उनका उद्धार करूँगा। जब यह कार्य पूर्ण हो जायेगा तो फिर यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरूँगा। उन्हीं जीवों की खोज मुझे करनी है।

मैंने ही तो समुद्र मंथन करवाया था। मेरु पर्वत की मथाणी और वासुकी नाग की रस्सी बनायी थी। मैंने ही तो सहस्राबाहू को मारा था। उस समय मैं परशुराम के रूप में था। मैंने ही तो रावण को मारा था। उस समय मैं राम के रूप में था। मैंने ही तो कंस को मारा था, उस समय मैं कृष्ण के रूप में था। मैंने ही नन्दजी को पिता बनाया था। उन्हें स्नेह दिया और तोड़ने वाला भी मैं ही था।

मैं तो अवधू निरपेक्ष योगी हूँ। सहज में ही योग समाधि में विचरण करने वाला हूँ। इस समय मेरे पास जो जिस भावना से आता है, मैं उसे उसी भाषा में समझाता हूँ। जो सच्चे लोग हैं, वे मुझे बहुत ही प्रिय हैं। ये बाह्य परिस्थितियाँ मुझे नहीं सताती। भूख-प्यास आदि डाकणी शाकणी आदि तो मेरे मूल में नहीं हैं। इस प्रकार से शब्द श्रवण करने के पश्चात् आश्चर्यचकित रणधीरजी ने पूछा–

हे गुरुदेव! आपने तो सम्पूर्ण सृष्टि को तथा सृष्टि के जीवों, उनकी जातियों को, रीति-रिवाजों को देखा है। कृपा करके उन लोगों का दर्शन करवाइये। वे भी हमारे ही गुरुभाई एवं नियमों का पालन करने वाले हैं। इस प्रकार से रणधीर के कहने पर श्रीदेवजी बोले–

हे रणधीर! तुम्हें मैं वे लोग एवं देश दिखाऊँगा, जहाँ पर मैंने शब्द रूप शरीर से उन्हें उपदेशित किया है।

जम्भेश्वरजी ने रणधीर को अपने साथ लिया और वहाँ से कुछ दूरी पर ले गये। रणधीर के ज्योतिरूपी जीव को स्वयं श्रीदेवजी ने अपनी विशाल ज्योत में लिया और कहा– रणधीर! अब तू दिव्य नेत्रों से देख। तुम्हारा अल्पज्ञ जीव इस लोक के प्राणियों को नहीं देख सकता। मैं तुम्हें ईश्वरीय दिव्य सर्वज्ञ नेत्र देता हूँ। ऐसा कहते हुए रणधीरजी को अनेक लोग एवं विचित्र वेशभूषा दिखलायी।

हे वील्हा! श्री रणधीरजी ने वापिस आकर हमारे सामने जो वर्णन किया है, वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ। रणधीरजी ने कहा–हे लोगो! आप मेरी बात सुनकर आश्चर्य चकित अवश्य ही होंगे, किन्तु अश्रद्धा अविश्वास न करें। मैंने दिव्य आँखों से देखा है। एक ही सूर्य सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार से एक ही ब्रह्म विष्णु जगत का पालन पोषणकर्त्ता एवं सृजनकर्त्ता भी है। इसलिए असंभव कुछ भी नहीं है। वह विष्णु ही गुरु रूप में यहाँ सम्भराथल पर विद्यमान है।

श्रीदेवजी ने मुझे प्रथम दक्षिण दिशा में रहने वाले लोग जो सात समुद्रों के पार कहीं थे, उनको दिखलाया। वहाँ मैंने बहुत से गुरुभाई देखे। वहाँ पर मैंने यही धर्म और यही मार्ग देखा है। वे लोग श्रीदेवजी को देखकर उत्साह मनाने लगे थे। उनकी प्रसन्नता का कोई पार नहीं था। वहाँ से आगे जब हम बढ़े, तब वहाँ पर बड़े-बड़े कानों के लोग मुझे दिखाई दिये। छजले-सूप सदृश बड़े, बड़े कानों के लोग थे। वे बहुत ही सुन्दर थे।

वहाँ से आगे तब मैंने देखा वहाँ के बिश्नोई एकटक दृष्टि से श्रीदेवजी को देख रहे थे। मानो, उनकी तो श्रीदेवजी को देखकर समाधि ही लग गयी थी। ऐसे एकाग्रचित्त वाले बिश्नोई मैंने वहाँ देखे थे। वहाँ से आगे चले, तब समुद्र आ गया। मैं भगवान् की अपार कृपा से समुद्र में नहीं डूबा। वैसे ही पार हो गया जैसे कि धरती पर चलता हूँ।

वहाँ के लोगों के मैंने देखा कि तीखे नाक-मुँह के सुन्दर लोग थे। वे देखने में तपस्वी मालूम पड़ते थे। वे बड़े ही सौम्य मूर्ति थे। ऐसे लोग तो मैं यहाँ देख नहीं रहा हूँ। जिस प्रकार हम लोग यहाँ सम्भराथल पर बैठकर हवन करते हैं। इसी प्रकार से वहाँ पर भी लोग सभी मिल बैठकर हवन करते हैं। श्री गुरुदेव को देखकर अति प्रसन्न हुए। सभी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, अपने को धन्यभागी माना।

दक्षिण दिशा को देखकर हम लोग पश्चिम दिशा की तरफ गये। वहाँ पर बिश्नोई भाई आपस में मिलते हैं, तो एक दूसरे को नमन प्रणाम करते हैं। वहाँ पर मैंने देखा कि एक कहता है कि सुन मुन दूसरा जवाब देता हुआ कहता है घट घट रह उनमुन। वहाँ पश्चिम में मैंने देखा है कि कौए तो सफेद रंग के थे। किन्तु बुगले काले रंग के थे। वहाँ तो मैंने यहाँ से उल्टा ही देखा है। उस देश में हमारे गुरु भाई बहुत ही रहते हैं। वहाँ पर मैंने देखा कि रूँख वृक्ष आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। उनकी आपस की बात को तो मैं समझ नहीं सका किन्तु वे अपनी भाषा में कुछ बोलते अवश्य ही थे।

वहाँ से आगे बढ़े, तब हमने एक समुन्द्र को पार किया। वहाँ पर तो आश्चर्य मैंने देखा था। वे लोग जंगल में ही रहते थे। उनके पास ओढ़ने-पहनने हेतु कोई वस्त्र नहीं थे। वे लोग मृगछाला ही पहनते थे। वही ओढ़ते थे। रात्रि में सोते समय उन लोगों ने फूलों की शैय्या बिछा रखी थी। भगवान् विष्णु शेष शैय्या पर सोते हैं। तो ये लोग भी फूलों की शैय्या पर शयन करते हैं। किन्तु उनका धर्म नियम व्यवहार तो अपने जैसा ही था। वे लोग काफी सभ्य मालूम पड़ते थे।

वहाँ से आगे बढ़ने पर एक देश मे, वहाँ पर सभी भक्तजन अल्पाहार करते हैं। वहाँ से आगे पहुँचे तो मैंने देखा कि सूर्य की किरणों से रसोई पकती है। उनके पास कुछ ऐसी ही युक्ति थी, जिससे अपना भोजन

सूर्य से पकाते थे। वहाँ से आगे बढ़े, तब मैंने देखा कि पश्चिम में अभिवादन प्रणाली दक्षिण से कुछ भिन्न ही थी। वहाँ के लोग आपस में मिलते हैं तो एक कहता है तत्व केते दूसरा जवाब देता है अचल एक ही सलाघे। इस प्रकार से उनकी प्रणाम करने की शैली श्रवण करके हम लोग उत्तर की तरफ चले आये।

उत्तर दिशा में बिश्नोई बहुत विराजमान रहते हैं। हमारे जैसा ही उनका व्यवहार, विवाह, उत्सव आदि रीति-रिवाज मैंने देखा। बिना वृषभ के ही यहाँ गऊवें ब्याह जाती है, एक बार गऊ दूध देना प्रारम्भ कर देती है तो लगातार देती रहती है। गो वंश की अभिवृद्धि लगातार चलती रहती है। वे गऊवें जलपान ज्यादा करती हैं। सूखा घास कम खाती हैं। जल से भरा हुआ हरा घास चरती हैं। दूध अधिक मात्रा में देती हैं। वहाँ के बिश्नोई दूध दही घी आदि खाते हैं। जिससे बहुत ही ताकतवर है। शरीर भी उनका हृष्ट-पुष्ट है। मन भी शुद्ध पवित्र है। जैसा खावे अन्न वैसो होवे मन। जैसो पीवे पाणी, वैसी बोले बाणी। ऐसा ही नियम है।

वहाँ अन्य कोई राजा नहीं है। घर-घर में ही राजा है। स्वयं ही अपने आप पर संयम रखते हैं। दूसरे शासक की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दूसरों को कर नहीं देते। वहाँ पर गायें जल में स्नान करती हैं, बाहर घास चरती हैं। प्रात:काल स्नान करके बाहर निकलती हैं, तो वे लोग गायें दुहने के लिए अपने मटके लेकर पहुँच जाते हैं और दूध भरके ले आते हैं। अपनी इच्छानुसार खीर बनाते हैं और खाते हैं।

वहाँ उत्तर दिशा में बड़े-बड़े कोठे चावलों से भरे रहते हैं। मानो वह देश तो चावलों की खान ही है। जितना चाहे उतना उस देश में उपजता है। वे चावल खाने-पकाने में बड़े ही सुविधाजनक है। थोड़ा सा भिगोया कि गल जाते हैं। तब गर्म-गर्म खा लेते हैं। यदि ठंडा हो जाये तो सूखकर पत्थर जेसे हो जाते हैं।

वहाँ से लौटकर वापिस आते समय मुझे श्रीदेवजी ने दूसरा लोक दिखाया, जिसमें मैंने कद में बहुत ही लम्बे आदमी देखे। वह देश ही लम्बे आदमियों का लम्बक लम्बा था। वे लोग भी विष्णु का भजन कर रहे थे। इन्हीं उनतीस नियमों का पालन करते थे।

वहाँ से आगे श्रीदेवजी बढ़े तब मैंने जमल देश में गुरुभाई देखे। उस देश में चारों तरफ पर्वत दिखाई दे रहे थे। वहाँ पर चंदन, कुमकुम केसर की खेती होती है। वहाँ के चन्दन की सुगन्ध बहुत दूर तक जाती है। उस सुगन्ध के प्रभाव से अन्य वृक्ष भी सुगन्धित चन्दन की तरह हो जाते हैं।

वहाँ का धर्म भी भिन्न नहीं था। सभी बाल-वृद्ध, युवा प्रात: सांय संध्या हवन करते हैं। बिना स्नान संध्या हवन किये वे लोग भोजन भी नहीं करते हैं। इसी धर्म से ये लोग बैकुण्ठ को पहुँच जाते हैं। वहाँ के लोग आपस में मिलते हैं तो अभिवादन करते हुए कहते हैं डबाक डरू जवाब मिलता है डबक डरू अघ हरूं।

वहाँ से आगे प्रभुजी मेरे को पूरब ले गये वहाँ पर मैंने एक आश्चर्य देखा- वहाँ से आगे समुद्र से पार ले जाकर श्रीदेव ने मुझे अपनी सृष्टि का खेल दिखलाया। वहाँ पर बारहों महीना वृक्षों पर फल फूल रहते हैं। उन मधुर फलों का उपयोग सभी बिश्नोई करते हैं। उन वृक्षों में भी कोई कोई वृक्ष ऐसा भी मैंने देखा कि वह वृक्ष उगते ही तुरंत फल देना आरम्भ कर देता है। ऐसे वृक्षों में अमृत की धारा प्रवाहित होती है। जो उसे प्राप्त करले वह अजर अमर हो जाता है। ऐसे फल वहाँ बिश्नोई प्राप्त करते हैं।

उससे आगे समुद्र को लांघकर के पार पहुँच गये। वहाँ पर भी मैंने देखा कि लोगों में आपसी प्रेमभाव समता है। दोनों आँखों में कोई भेदभाव नहीं देखता है। सभी अपनी संतान को एक ही भाव से देखते हैं उसी प्रकार से सभी लोगों में एकता, दृढ़ता, प्रेमभाव मैंने वहाँ देखा। त्रिकुटि में ज्योति का दर्शन करते हैं और आनन्द-मंगल होकर शून्य में विचरण करते हैं। ऐसे बिश्नोई वहाँ रहते हैं। हे लोगो! अधिक क्या कहूँ? वहाँ के लोग बहुत ही अच्छे एवं प्रिय थे। सभी लोग गुरुदेव के बताए हुए नियमों का पालन करते हुए विष्णु

महामंत्र का जाप कर रहे थे। उन लोगो में आपस में वाद-विवाद, विरोध, काम-क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि विकार नहीं थे। वे लोग ज्ञानवान, वैराग्यवान, भक्तिमान थे।

पूर्व में नमन करने का तरीका भी भिन्न था। एक कहता जन जदा दूसरा कहता यह नमन उस कायम दायम पैदा करदा उस हाजिर हजूर उत्पति स्थिति संघार करता को इस प्रकार से नमन करते हैं।

जम्भगुरुजी ने उन्हें उपदेश दिया था, वही वे लोग पालन करते थे। इन चारों दिशाओं में मैंने जो देखा व सुना वह मैंने आप लोगों को बतलाया। अन्य देश भी मैंने अनेक देखा किन्तु मुझे जो स्मरण हुआ था वही मैंने आप लोगों को बतलाया है। जहाँ पर भी हम गये है, वहीं पर जमाती के लोगों से भेंटवार्ता हुई थी।

इस प्रकार से रणधीरजी ने जमात को अद्भुत ज्ञान सुनाया। जैसा रणधीरजी ने देखा वैसा वर्णन किया। हे वील्हा! मैंने भी ये बातें उनसे सुनकर तुम्हें सुनायी हैं। परम पिता परमात्मा अपनी इच्छा से **अनेक रूप : पाय विष्णवे प्रभ विष्णवे।**

श्रीदेवजी ने रणधीर को पुरोहित की उपाधि से विभूषित किया और इस पन्थ को आगे बढ़ाने का कार्यभार सौंपा। रणधीर श्रीदेवजी की आज्ञा शिरोधार्य करके अपने कर्त्तव्य कर्म में संलग्न हुए।

स्वर्ग खोलने की कूंची

बात- एक समइये देवजी जमाती देखी खुशी हुवा, खवां चमकण लागा, देवजी भाय आया, साथरिया यौं कहण लागा, देवजी कह-सुरगां की पोल को कीवाड़, पचास मण को थ, जदि बिसनोई कहै देवजी उघड़ क्यां करि थ, देवजी कह एक शबदि उघड़, जमात कह देवजी किसो सबद, कीसी करणी, झाभोजी कह-असतरी पुरुष दोन्यो एक मत कीया, सुध लीलंग मत। आठ प्रकार करे धरम, नुव चाल, अजर जर, ताह का हाथ आधुकीय, सबद बोल्य स वा कीवाड़ उघड़। सबद कूंची को।

नाथोजी उवाचः- एक समय श्रीदेवजी प्रसन्न होकर के जमात को देखने लगे-जब कभी भी प्रसन्न होते तो शरीर में रोमांचित हो जाते थे। ऐसा ही जमात के लोगों ने तथा मैंने देखा था। उस समय जो वार्तालाप हुआ, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

सुनो! श्रीदेवजी स्वयं ही साथरियों से कहने लगे-मैं तुम्हें स्वर्ग के बारे में बतलाता हूँ। वहाँ पर जाने का अधिकार तो सभी का ही है। किन्तु स्वर्ग के प्रवेश का द्वार (किवाड़) पचास लाख मन का है। तुम लोग कैसे खोल पाओगे, दरवाजा खुले बिना अन्दर प्रवेश असम्भव है।

साथरियों ने पूछा-हे देवजी! आप ही कृपा करके बतलाओ कि इतना भारी किवाड़ खुलेगा कैसे? हम लोग तो इतने ताकतवर नहीं हैं। जो उस किवाड़ को खोल सकेँ

देवजी ने बतलाया-किवाड़ खोलने का उपाय मैं तुम्हें बतलाऊँगा। आप ध्यानपूर्वक सुनो-देवजी ने कहा-प्रथम उपाय तो शब्द ही है।

जमात ने पुनः पूछा-कौनसा शब्द? कैसे शब्द से उघड़ेगा? कौन से कर्त्तव्य कर्म करने से उघड़ेगा? जाम्भोजी ने यह कूंचीवाला शब्द सुनाया तथा कुछ कर्तव्य कर्म भी बतलाया। जिससे किवाड़ उघड़ेगा। स्त्री-

पुरुष दोनों का मत एक हो, तभी स्वर्ग किवाड़ उघड़ेगा। क्योंकि गृहस्थ की गाड़ी दो पहियों पर चलती है। एक के बिना दूसरा व्यर्थ हो जायेगा। गृहस्थ का व्यवहार शुद्ध पवित्र होगा तो इहलोक घर ही स्वर्ग बन जायेगा। यह घर यदि बिगड़ गया तो परलोक भी बिगड़ जायेगा। इसलिए आपसी प्रेमभाव होगा वही घर स्वर्ग है।

शुद्धता, पवित्रता, आचार-विचार, उच्चकोटि का होना, एक ईश्वर की भक्ति, विश्वास ये सभी स्वर्गद्वार खुलने के उपाय हैं। यदि ऐसा नहीं होगा, तो भटक जायेंगे। आठ प्रकार के धर्म का पालन करे। आठ प्रकार का धर्म- योग के अष्टांग ही है जैसे- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ प्रकार के नियमों को उनतीस नियमों के अन्तर्गत समाहित हो जाना है। इनका पालन करना ही आठ प्रकार के धर्म पालन करना है।

नम्रता का व्यवहार रखें। जरणा एवं सहनशीलता अपनाएँ तो उसके हाथ से स्वर्ग का दरवाजा खुल सकेगा अथवा अन्त समय में कूंचीवाला शब्द का उच्चारण करने से भी स्वर्ग के किवाड़ उघड़ जाते हैं। इस प्रकार से जमात के लोगों को सचेत करते हुए यह कूंचीवाला शब्द सुनाया-

कुंचीवाला शब्द-30

ओ३म् आयो हंकारो जीवड़ो बुलायो, कह जीवड़ा के करण कमायो।
थरहर कंपै जीवड़ो डोलै, उत माई पीव कोई न बोले।
सुकरत साथ सगाई चालै, स्वामी पवणा पाणी नवण करंतो।
चंदे सूरे शीस निवन्तो, विष्णु सूरां पोह पूछ लहन्तो।
इहिं खोटे जनमन्तर स्वामी, अहनिश तेरो नाम जपंतो।
निगम कमाई मांगी मांग, सुरपति साथ सूरासूं रंग।
सुरपति साथ सुरां सूं मेलो, निज पोह खोज ध्याईये।
भोम भली कृषाण भी भला, बूठो है जहाँ बाहिये।
करषण करो सनेही खेती, तिसिया साख निपाईये।
लुणचुण लीयो मुरातब कियो, कण काजै खड़ गाहिये।
कणतुस झेड़ो होय नवेड़ो,गुरुमुख पवण उड़ाईये।
पवण डोलै तुस उडैला, कण ले अर्थ लगाईये।।
यूं क्यूं भलो जे आप न फरिये, अवरां अफर फराइये।
यूं क्यूं भलो जे आप न डरिये, अवरां अडर डराइये।
यूं क्यूं भलो जे आप न जरिये, अवरां अजर जराइये।
यूं क्यूं भलो जे आप न मरिये, अवरा मारण धाइये।
पहले किरिया आप कमाइये, तो औरा न फरमाइये।
जो कुछ कीजै मरणै पहलै, मत भल कहि मर जाइये।

शौच स्नान करो क्यूं नाही, जिवड़ा काजै न्हाइये।
शौच स्नान कियो जिन नाहीं, होय भंतूला बहाइये।
शील बिबरजित जीव दुहेलो, यमपुरी ये सताइये।
रतन काया मुख सूवर बरगो, अबखल झंखे पाइये।
सवामण सोनो करण पाखो, किण पर वाह चलाइये।
एक गऊ ग्वाला ऋषि मांगी, करण पखो किण सुरह सुबच्छ दुहाइये।
करण पखो किन कंचन दीन्हों, राजा कवन कहाइये।
रिण ऋध्ये स्वामी करण पाखो, कुण हीरा डसन पुलाइये।
किंहिं निश धर्म हुवै धुर पुरो, सुर की सभा समाइये।
जे नविये नवणी, खविये खवणी, जरिये जरणी, करिये करणी।
तो सीख हुयां घर जाइये।
अहनिश धर्म हुवै धुर पूरो, सुर की सभा समाइये।
किंहि गुण बिदरो पार पहूँतो,करणै फेर बसाइये।
मन मुख दान जु दीन्हों करणै, आवागवण जु आइये।
गुरु मुख दान जु दीन्हों बिदरै, सुर की सभा समाइये।
निज पोह पाखो पार असीपुर, जाणी गीत बिवाहे गाइये।
भरमी भूला बाद विवाद, आचार विचार न जाणत स्वाद।
कीरत के रंग राता मुरखा मन हठ मरै, ते पार गिराये कित उतरे।

इस प्रकार से कूंचीवाला शब्द श्रीदेवजी ने जमात के प्रति सुनाया और सचेत करते हुए कहा- **आयो हंकारो** अर्थात मृत्यु आ गयी। जीव को बुलावा आ गया। अहंकार ही मृत्यु है। जहाँ कहीं भी किसी भी अवस्था में अहंकार पुष्ट हुआ, तो जानो कि स्वयं शुद्ध आत्मा जो सद्चित आनन्दरूप है, उसकी मृत्यु हो गयी। वह अहंकार की काली बादली से ढ़क जाती है।

अहंकार जीव और ईश्वर, आत्मा एवं परमात्मा को मिलने नहीं देता। यही सबसे बड़ी मृत्यु है, जो स्वयं के आनन्द स्वरूप से मिलन नहीं हो पाता। संसार के दु:ख एवं दु:खों के कारणों से जूझता है। कहीं कोई ज्ञान की किरण दिखाई नहीं देती। ऐसी दशा में स्वर्ग सुख की कल्पना करना ही व्यर्थ होगी जब अहंकार रूपी मृत्यु का साम्राज्य होगा।

जीव इहलोक में जीता तो है किन्तु कंपायमान होकर जीता है। आगे भी कर्मों का हिसाब-किताब, लेखा-जोखा सामने उपस्थिति होगा तो थर-थर काँपेगा। वहाँ पर कोई भी सहायक नहीं होगा। न वहाँ माता-पिता-भाई-बन्धु ही साथ देंगे। ये तो यहीं पर छूट जायेंगे। दु:ख तो व्यक्ति अकेला ही भोगेगा। अन्य कोई साथ नहीं है। सुकर्म किया हुआ साथ जावेगा।

पूर्व जन्म के सुकर्म के कारण ही यह देह मिली है। इहलोक में भी सुकर्म ही सुख देता है। पापकर्म दु:ख का हेतु बन जाता है। अहंकार से निवृत्त होकर, अपने से भी बड़ा कोई ओर है उन साक्षात् देवता,

स्वामी, सूर्य, चन्द्र, पवन, अग्नि आदि को प्रणाम करना चाहिये था, किन्तु अपने सामने अन्य को तुच्छ ही समझा। दिन-रात विष्णु का जप करता, तो स्वर्गद्वार खुला ही था।

यह जीवन कृषक जीवन है। इसे सचेत होकर जीये तो फल मधुर प्राप्त होगा अन्यथा आलसी किसान की भांति बीज ही खो बैठेंगे। आते समय तो बीज लेकर आया था, किन्तु जाते समय वह भी खोकर जायेगा। इसमें क्या भलाई है ? जो स्वयं तो फल प्राप्ति पर्यन्त कर्म करता नहीं है। दूसरों को कहता है। स्वयं तो ईश्वर से डरता नहीं है। अन्य दूसरों को डराता है। नर्क का भय दिखाता है।

स्वयं तो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को समाप्त करता नहीं है। दूसरों को कहता है। यह तो उसका कहना व्यर्थ ही है। स्वयं तो मरता नहीं है, किन्तु दूसरों को मारने के लिए तैयार हो जाता है। सर्वप्रथम कर्म स्वयं करे तो फिर दूसरों से कहे यही कहना लाभदायक होगा। शौच स्नान आदि शुद्धता पवित्रता ही धर्म का मूल है। यहीं से चूक कर दी तो वह भूत-प्रेतादि अशुद्ध दुःखदायी योनियों में जन्म लेगा। शील को त्याग दिया है, तो वह यमपुरी में सताया जायेगा। उन्हें स्वर्ग दुर्लभ है। कर्ण ने स्वर्ण का दान दिया किन्तु मनमुखी होकर दिया, तो उस दान का फल भी जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा नहीं दिला सका। दान से भी आत्मा महान् है। इसलिए आत्मधर्म का पालन करना था। गुरुमुखी होकर विदुर ने दान दिया, वे देवताओं की सभा में शोभायमान हुए। इसलिए कोई भी कार्य गुरुमुखी होकर ही करे, वही फलदायी है। यदि आपको देवता की सभा में विराजमान होकर शोभायमान होना है, तो इस संसार में जीवन की विधि समझे। स्वर्ग सुख के मूल आधार है कि आप नमन भाव से जीयें। क्षमा करते हुए जीयें। जरणा रखते हुए जीयें। कर्त्तव्य कर्म करते हुए जीयें। यही अन्तिम सीख है। इसी शिक्षा को स्वीकार करते हुए वापिस अपने घर को जाओ। इस संसार के घरबार असली नहीं हैं। असली घर तो आगे है, जहाँ से आप आये हैं। वहीं पर जाने की पुनः कोशिश चल रही है। वहाँ जाने के बाद वापिस जन्म-मरण के चक्कर में न आना पड़े।

अपना पन्थ अपना धर्म खोजिये। वही आपको वापिस पहुँचाने में समर्थ है। अन्य पंथ अन्य धर्म आपको नहीं पहुँचा पायेगा। इसलिए स्वधर्म ही श्रेयष्कर है। परधर्म भय पैदा करने वाला है।

यदि स्वयं सुख चाहते हैं, तो स्वकीय कीर्ति से परहेज करें। मैं ही बड़ा हूँ। मेरा ही नाम हो। यही अहंकार की पुष्टि करता है। अहंकार की पुष्टि ही मृत्यु है। इसलिए मृत्यु से त्राण पाने के लिए नम्रता, शीलता, समर्पण भाव, एक विष्णु की शरणागति, शुद्धता, पवित्रता आदि गुणों को समाविष्ट करें। अवगुणों का परित्याग करें। तभी पचास लाख मन का किवाड़ हाथ लगते ही खुल जायेगा।

मूल की सिंचाई

जमात्य कह देवजी, दीन्हा धर्म, लीया पाप। देवजी कह उतम नै दीन्हो असो सु खेत मां मेह बूठो, मन मान्यो नीपनु, म धरम न दीनु असो मेह बूठो कलर मां बीज गुमायो मद मासी भंगी, पोसती, न दीनु उलटो कर्म लागो- जाम्भोजी श्री वायक कह-

शब्द-31

ओ३म् भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं का भल बुद्धि पावै।
जामण मरण भव काल जु चूकै, तो आवगवण न आवै।
भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेलत डालूं।
हरि परि हरि की आण न मानी, झंख्या झूल्या आलूं।

देवा सेवां टेव न जांणी, न बंच्या जम कालूं।
भूलै प्राणी विष्णु न जंप्यो, मूल न खोज्यो, फिर 2 जोया डालूं।
बिन रैणायर हीरे नीरे नग न सीपे, तके न खोला नालूं।
चलन चलंतै, वास बसतैं, जीव जींवतै सास फुरंतैं।
काया निवंती, कांयरे प्राणी विष्णु न घाती भालूं।
घड़ी घटंतर पहर पटंतर रात दिनंतर, मास पखंतर, क्षिण ओल्हरबा कालूं।
मीठा झूठा मोह बिटम्बण, मकर समाया जालूं।
कबही को बांइदो बाजत लोई, घड़िया मस्तक तालूं।
जीवां जूंणी पड़े परासा, ज्यूं झींवर मच्छी मच्छा जालूं।
पहले जीवड़ो चेत्यो नांहीं, अब ऊंडी पड़ी पहारूं।
जीवर पिंड बिछोड़ो होयसी, ता दिन थाक रहे सिरमारूं।

नाथोजी उवाचः- कथाक्रम को आगे बढ़ाते हुए नाथोजी ने अपने प्रिय शिष्य वील्होजी से कहा-हे शिष्य! एक समय जमात के लोग एकत्रित हुए थे। उन्होंने पूछा-हे देवजी! देने से धर्म होता है और दूसरे से लेने में पाप होता है, ऐसा हमने सुना है। क्या सत्य है?

देवजी ने कहा- केवल लेन-देन से ही पाप-पुण्य नहीं होता है। किन्तु उत्तम अधिकारी को देने से ही पुण्य होता है। जिस प्रकार से अच्छे उपजाऊ खेत में वर्षा होने पर बीज बोने से निपजता है। बीज फलीभूत होता है। फूलता-फलता है। अनन्त गुणा वृद्धि को प्राप्त होता है।

पापी जन कुपात्र जैसे मद्यपान करने वाला, भांग पीने वाला, तम्बाकू खाने-पीने वाला, अफीम खाने वाला, ये सभी कुपात्र हैं। इन्हें देने का कुछ भी शुभ फल नहीं है। उल्टा पाप का भागी बनता हैं। जिस प्रकार से वर्षा होने पर भी ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज व्यर्थ में ही चला जाता है। इसी प्रकार से दानी का दान भी व्यर्थ में ही चला जाता है।

श्री देवजी ने इसी सम्बन्ध में शब्द सुनाया जिस का भाव इस प्रकार से है- हे प्राणी! भले मूल की सिंचाई करो, जिससे भली बुद्धि की प्राप्ति होगी। अर्थात् जो कुछ भी देना है वह चाहे विद्या, धन, अन्न,जमीन इत्यादि सभी कुछ सुपात्र को दी हुई फलीभूत होती है। जिस प्रकार से अच्छे मधुर फलदायी वृक्ष में सिंचाई करने पर वह मधुरता से फलीभूत होता है। मधुर फल प्रदान करता है। उसी प्रकार देना भी सुपात्र को ही चाहिये।

जन्म-मरण, संसार के बन्धन से छूटने हेतु त्याग आवश्यक है। तेन त्यक्तेन भुंजिथः त्याग से उपभोग करो। **तउवा त्याग जो ब्रह्मा त्यागा अवर भी त्यागत त्यागूं।** निर्लेप भाव से सेवा करेंगे, तो जन्म मरण से छूट जायेंगे। ज्ञान की प्राप्ति होगी। ज्ञान से बढ़कर अन्य संसार में कुछ भी पवित्र नहीं है।

अच्छे मूल में जल डालने से डाल पत्ते फल-फूल सभी जल प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार से एक विष्णु की सेवा-पूजा भजन करने से सभी देवता स्वतः ही संतुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि सभी का मूल विष्णु है। हरि विष्णु की मर्यादा छोड़कर सांसारिक आल-बाल कुछ भी बोलता तथा करता रहा, तो यमदूतों से बच नहीं सकेगा।

हे भूले प्राणी ! विष्णु सभी का मूल है। उसी का जप कर। वह विष्णु ही सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है। अन्य देवता तो डाल पत्ते सदृश विष्णु के आधार पर टिके हुए हैं। बिना समुद्र के हीरा नहीं मिलता। सीपी बिना नग की प्राप्ति अन्य नदी नालों में सम्भव नहीं है।

इसलिए हे प्राणी ! चलते हुए, बैठे हुए, रहते हुए, जीवन जीते हुए, श्वास लेते हुए, काया से कार्य करते हुए, यह सभी कुछ कार्य व्यवहार करते हुए तुमने विष्णु से सम्बन्ध नहीं जोड़ा। ये सभी क्रियाएँ तो विष्णु की शक्ति से ही हो रही हैं।

काल कब आ जाये, कुछ पता नहीं है। किसी भी घड़ी में, किसी भी प्रहर में, किसी भी दिन-रात में, किसी भी महीने में, किसी भी पक्ष में, यह मृत्यु आ सकती है। कुछ भी समय निश्चित नहीं है कि वह काल कब आयेगा ?

कोई दिन ऐसा आयेगा, ऐसी वायु चलेगी कि तुम्हें यहाँ से जाना होगा। तुम्हें बंधन में डालकर ले जायेंगे जैसे झींवर मछली को जाल में फंसा कर ले जाता है। तुम्हें अनेकानेक छोटी-मोटी जीव योनि में डाल दिया जायेगा। पहले तो यह जीव सचेत हुआ नहीं। अब तो मनुष्य शरीर से बहुत ही दूर चला गया है। जब तुम्हारे इस जीव एवं शरीर का बिछोहा होगा, तब सिर पीट-पीटकर रोयेगा। कुछ भी उपाय नहीं होगा।

रामोजी सुराणा के प्रति शब्दोपदेश

वीश्नोइयां नु रामो सुराणौं वरज, क्रिया भजन सार क्योर नहीं। धरम किया निसतारौ होयसी वीसनोई नागौश्र सु राम न लीजे आया। वीसनोई कह जाम्भाजी भजन बिना क्रिया विना मुकते लाभ। जांभाजी श्री वायक कह-

शब्द-32

ओ३म् कोड़ गऊ जे तीरथ दानों, पंच लाख तुरंगम दानों।
कण कंचन पाट पटंबर दानों, गज गेंवर हस्ती अति बल दानों।
करण दधीच सिंवर बलराजा, श्रीराम ज्यूं बहुत करै आचारूं।
जां जां बाद बिवादी अति अहंकारी,लबद सवादी।
कृष्ण चरित बिन, नाहिं उतरिबा पारूं।।

नाथोजी उवाच:- श्रीदेवजी के पास सभी प्रकार के लोग, कोई शंका निवारण के लिए, कोई ज्ञान की प्राप्ति के लिए, कोई धन के लिए आया करते थे।

हे शिष्य ! एक समय बिश्नोइयों की जमात शहर नागौर किसी कार्यवश गयी थी। वहाँ जमात से रामोजी सुराणा की भेंट हो गयी। वह बिश्नोइयों से विवाद करने लगा-कहने लगा कि जाम्भोजी तुम्हें शुद्ध आचरण, आचार-विचार, शुद्ध क्रिया-कर्म बतलाते हैं तथा विष्णु का भजन करना बतलाते हैं, इससे क्या तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी ? क्या आप लोग स्वर्ग पहुँच जाओगे ? यह कोई धर्म नहीं है।

शास्त्रों में धर्म करना बतलाया है। धर्म का अर्थ दान होता है। बिना दिये, कहीं कुछ भी नहीं है। हम लोग दान देते हैं। इसलिए स्वर्ग-मुक्ति के अधिकारी हैं। केवल नहाने-धोने से क्या होता है ? मछली जल में

ही रहती है। ऐसी सुराणा की बात सुनकर बिश्नोई संशय में पड़ गये। यह रामो सत्य कहता है या जाम्भोजी सत्य कहते हैं ? दोनों तो सत्य हो ही नहीं सकते है ? कौनसा मार्ग हमें गन्तव्य स्थान को ले जायेगा ?

बिश्नोई कहने लगे-रामाजी ! आप हमारे साथ ही सम्भराथल चलिये। वहीं पर तुम्हारा हमारा निर्णय होगा। हमारे गुरुदेव ने बतलाया है कि विवाद नहीं करना। इसलिए हम तुम से विवाद तो नहीं करेंगे, किन्तु श्री देवजी अपना निर्णय कर देंगे, वहीं हमें स्वीकार्य होगा। ऐसा कहते हुए रामोजी के सहित जमात सम्भराथल पहुँची।

सभी ने श्रीदेव को प्रणाम किया और यथा स्थान बैठ गये। बिश्नोइयों ने कहा-हे महाराज ! यह रामो हमें बहका रहा है। कहता है कि तुम्हारे नियम, भजन, क्रिया, स्नान आदि आदि महत्वहीन हैं। युक्ति-मुक्ति हेतु तो केवल दान पुण्य ही काम आयेगा। इसके बारे में आप ही प्रमाण है। हमें क्या करना चाहिये ? इस प्रकार की जमात की बात सुनकर श्री देवजी ने शब्द सुनाया-जिसका भाव इस प्रकार से है ?

हे रामा ! यदि कोई महादानी गऊवों का दान तीर्थ में जाकर कर दे। पाँच लाख घोड़ों का दान कर दे। धान, स्वर्ण, वस्त्र आदि का भी दान कर दे। सूण्ड सूण्डाला सूं सज्जित हाथियों का भी दान कर दे तथा दान की पराकाष्ठा तक पहुँच जाये। अपनी ताकत से भी बढ़कर कोई दान कर दे। तो भी सबसे श्रेष्ठ दान शील स्नान का करना है। इन नियमों के बराबर दुनिया में कोई दान नहीं है। कर्ण,दधीचि, शिव एवं बलि राजा, ये सभी महान दानी थे। तथा राम की तरह सभी मर्यादा का पालन करने वाले थे। किन्तु पूर्णतया धार्मिक धर्म के मर्म को समझने वाले नहीं थे उन्होंने धर्म के एक अंग दान को ही अधिक महत्व दिया था। दान देने में अहंकार आजाता है। अहंकार परमात्मा से दूर हटाता है। इन लोगों ने दान का फल तो अवश्य ही प्राप्त किया, किन्तु मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सके। दान अहंकार को विकसित करता है। अहंकार परमात्मा से दूर हटाता है।
हुई का फल लीयो।

दान देकर के कहता है कि मैंने दिया। मेरे जैसा दानी अन्य कोई नहीं है। दान देकर पुन: धर्म कमाने का लोभ करता है तथा देते समय भी धर्म का लोभी स्वर्ग का सुख, यश का लोभ रहता है। यह अवस्था परमात्मा के समर्पित नहीं होने देती।

हे रामा ! जब तक कृष्ण चरित्र से सम्बन्ध नहीं जोड़ेगा, तब तक संसार सागर से पार तो नहीं उतर सकता। कृष्ण चरित्र अर्थात् यह सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा की ही लीला है। हम तो उसी के ही एक अंग हैं। उसी का ही खेल वही सभी कुछ है। हम तो केवल निमित्त मात्र ही हैं। ऐसा विराट ज्ञान ही सदा सदा के लिए दु:खों से, जन्म मरण, बुढ़ापा रोग आदि से छुटकारा दिला सकता है। केवल दान से नहीं। दान सम्पूर्ण धर्म नहीं है। यह भी धर्म का एक अंग है। इसलिए दान करते रहना चाहिये। उससे भी धर्म होगा। धर्म ही जीवन में कल्याण कारक है।

रामोजी ने पूछा- हे देवजी ! रामु कहै देवजी ! एह जीव वले जांम कोई नहीं, आगै कोई मरि अर जायो नहीं- जाम्भाजी श्रीवायक कह-

शब्द-33

ओ३म् कवण न हूवा कवण न होयसी, किण न सह्यो दु:ख भारूं।
कवण न गइया कवण न जासी, कवण रह्या संसारूं।
अनेक अनेक चलंता दीठा, कलि का माणस कौन विचारूं।

जो चित होता सो चित नाही, भल खोटा संसारूं।
किसकी माई किसका भाई, किसका पख परवारूं।
भूली दुनिया मर मर जावै, न चिन्हों करतारूं।
विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी, बल बल बारम्बारूं।
कसणी कसबा भूल न बहबा, भाग परापति सारूं।
गीता नाद कवीता नाऊं, रंग फटारस टारूं।
फोकट प्राणी भरमे भूला, भल जे यों चीन्हों करतारूं।
जामण मरण बिगोवो चूकै, रतन काया ले पार पहूँचे
तो आवागवण निवारूं।।

रामोजी ने कहा-हे देव! यह जीव पुनः जन्म ही नहीं लेता। अब तक कोई जीव मरने के बाद पुनः जन्म लेकर आया ही नहीं है। जो मर गया सो मर गया। यहीं सभी कुछ समाप्त हो जाता है। दुबारा जन्म किसका होता है? क्योंकि मरे हुए व्यक्ति ने तो वापिस आकर बतलाया नहीं है कि मैं पूर्व जन्म में कौन था? अब मैं यहाँ आया हूँ। पूर्व जन्म के सिद्धांत को कैसे मानें? इसलिए इस जन्म में यश,कीर्ति, धन-धान्य सम्पन्न होकर सुख प्राप्त कर लेना मेरी समझ में तो पर्याप्त है, आगे कुछ भी नहीं है। रामे की बात को श्रवण करके श्री जम्भेश्वरजी ने उपर्युक्त शब्द सुनाया-

हे रामा! इस संसार में कौन नहीं हुआ, अर्थात् बड़े-बड़े राजा-महाराजा, ऋषि-मुनि तथा अन्य भी छोटे-बड़े जन्म लेकर आये हैं। ये लोग कहाँ से आये हैं? यदि सभी जीव मरने के पश्चात् पैदा ही नहीं होते तो नये कहाँ से आते? वे ही जीव जिनका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया, उसे छोड़कर नया धारण करके आते हैं। जन्म लेते हैं। अब तक जो आये हैं, आगे भी वही क्रम चलता रहेगा तथा जो आ गये हैं वे भी संसार में स्थिर कहाँ रहेंगे? चले ही जायेंगे। पुनः नये बनकर लौट आयेंगे। किन्तु पूर्व जन्मकी उन्हें याद नहीं रहती है, तो ये कैसे बतलायेंगे। ऐसा स्मरण न रहना ही ठीक है। ऐसा तुम स्वीकार कर लो। अन्यथा यह जीवन नहीं जी सकोंगे। पूर्व जन्म इस जन्म में अनेकानेक उपद्रव करेगा।

हे रामा! मैंने अनेकानेक चलते हुए देखे हैं। इस संसार को छोड़कर चले गये और वापिस भी आये हैं। इस प्रकार धारा जीवन-मरण चल रहा है। इस कलयुग में मानव की तो क्या कथा कहें, सतयुग में भी नहीं ठहर सके। यहाँ पर तो क्षणभर का ही तो जीवन है।

जो कुछ पहले था, वह अब नहीं रहा। जो अब है, वह आगे नहीं रहेगा। कुछ भी स्थायी नहीं है। सभी कुछ परिवर्तनशील है। कौन किसका भाई है? कौन किसका माता-पिता है? दुनिया भूल में पड़ी हुई है। इसी मोह-माया के बन्धन में पड़ी हुई बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त हो रही है। यही वासना ही जन्म मरण के चक्कर को चलाये रखती है।

हे प्राणी! विष्णु का भजन कर! सम्पूर्ण जोर लगाकर, एकाग्रचित्त होकर उसी से अपनी निष्ठा, बल एवं मन लगावें। वही तुम्हारे जन्म-मरण के चक्र को काटेगा। सचेत होकर अपना जीवनयापन करे। जो भी भाग्य में होगा, अवश्य ही प्राप्त होगा। संसार की वस्तुओं के लिए ज्यादा चिंता में नहीं रहना।

गीता पढ़े, वह भगवान् की नाद वाणी है। वह गीता किसी कवि की कल्पनामात्र कविता नहीं है। गीता ने ही तो अर्जुन के संशय मोह को काट डाला था। तुम्हारे संशय जनित मोह को भी गीता काट डालेगी। जैसे

फिटकरी जल के मेल को काट डालती है।

हे प्राणी! भूल में मत रहना। उस कर्त्ता का स्मरण कर। वही तुम्हारे जन्म-मरण के दु:खों को काट देगा। यह तुम्हारी रत्न सदृश दिव्य काया-जीव इसे लेकर पार पहुँच जायेगा। सदा सदा के लिए तेरा जन्म-मरण मिट जायेगा।

रामू कह देवजी विसन को जाप कीती हेक दा करीय। जाम्भाजी श्री वायक कह-

शब्द-34

ओ३म् फुरंण फुंहारे कृष्णी माया, घण बरसंता सरवर नीरे।
तिरी तिरन्तै तीर, जेतिस मरैं तो मरियों।
अन्नों धन्नों दूधू दहीयूं, घीयूं मेऊं टेऊं जे लाभंता।
भूख मरै तो जीवन ही, बिन सरियों।
खेत मुक्त ले कृष्णों अर्थो, जे कंध हरै तो हरियों।
विष्णु जपन्ता जीभ जु थाकै, तो जीभड़ियां बिन सरियूं।
हरि हरि करता हरकत आवै, तो ना पछतावो करियो।
भीखी लो भिखीयारी लो, जे आदि परम तत लाधो।
जांकै बाद बिराम बिरांसो सांसो, तानै कोण कहसी साल्हिया साधो।

रामोजी ने पूछा-हे सद्गुरु! आपने विष्णु का जप करना बतलाया था। किन्तु विष्णु का जप कितने दिनों तक किया जावे? जिससे मुक्ति की प्राप्ति हो सके। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-हे रामो! जाप भजन पूजा-पाठ कितना दिन किया जावे, इसका कोई समय निर्धारित नहीं है। जिस प्रकार से वर्षा का भी कोई समय निश्चित नहीं है। कब आयेगी, कब जायेगी? कुछ पता नहीं है। जिस प्रकार से एक बूँद बूँद जल वर्षता है और सम्पूर्ण धरती को जल से परिपूर्ण कर देता है। इतनी बड़ी धरती, तालाब, नदी, नाले सभी जल से परिपूर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार से ही एक-एक नाम जपते-जपते ही अपार नाम राशि एकत्रित हो जायेगी। वह कितने दिनों में कब एकत्रित होती है, यह तो जप करने वाले पर निर्भर है।

जल से तालाब नदी भर जाते हैं। उसमें तैरने वाल तो तैरकर पार हो जाता है। कुछ लोग डूब जाते हैं। तो कुछ लोग किनारे प्यासे ही बैठे रह जाते हैं। उसी प्रकार जो नाम जप का महात्म्य जानता है, वह तो पार उतर जाता है, अतिशीघ्र ही। **तत खिण लहो इमाणो।** जो जो नहीं जानता अज्ञानता के वशीभूत हो गया है, वह डूब जाता है। तथा कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अभी किनारे बैठे देख ही रहे हैं। संध्या भजन के निकट ही नहीं जाते।

इस संसार में धन-सम्पत्ति, अन्न-धन, दूध,घी, मेवा आदि पर्याप्त मात्रा में हैं किन्तु सभी कुछ होते हुए भी अभाग्यवान उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता। उसी प्रकार से भगवान् के जप रूपी संपत्ति भी है, किन्तु उसे भी पापीजन प्राप्त नहीं कर सकते। सभी कुछ होते हुए भी यदि इन्हें प्राप्त नहीं कर सकते। यदि भूख मरे तो बिना जीवन के ही कार्य चलेगा। इस प्रकार मृतवत जीवन से क्या लाभ?

यदि धर्म के कार्य में जीवन ही चला जाये तो सुकर्म है लाभ में ही होगा। यदि विष्णु का जप करते हुए यदि जीभ थक जाये तो बिना जीभ के ही कार्य चलेगा। बिना जप की जीभ से तो न रहना ही ठीक है। जीभ

की सार्थकता तो हरि के नाम का जप करने में ही है। हरि हरि करते हुए यदि किसी प्रकार की अड़चन-बाधा आती है, तो आने दें। ऐसा पछतावा न करें कि मैंने हरि का जप किया, मुझे बाधा क्यों आयी?

यदि भिक्षा भी माँगनी हो तो ऐसी माँगें जिससे जन्म-मरण के दु:ख निवृत्त हो जायें तथा भिक्षा माँगने का अधिकार भी उसे ही है, जिसने परमतत्त्व की प्राप्ति कर ली है। अब तक जो वाद-विवाद, संशय, शोक, लोभ, मोह, ईर्ष्यादि से ग्रसित है। उसे साल्हिया (शुद्ध पवित्र, ज्ञानी, भक्त, साधु) कौन कहेगा?

इस प्रकार से रामो को शब्द सुनाया। शब्द सुनने से संशय निवृत्त हुआ और अपने घर जाकर अपने कुटुम्बी जनों को लेकर सम्भराथल पर आया। श्री देवजी से पाहल लेकर बिश्नोई बना।

जोगियों के प्रति शब्दोपदेश

एक कनफड़ो जोगी जांभजी कह जुरे आयो, आय अभखल बाणी बोल्यो, जांभजी बरज्यो। जाम्भेजी श्री वायक कह-

शब्द-35

ओ३म् बल बल भणत व्यासूं, नाना अगम न आसूं। नाना उदक उदासूं।
बल बल भई निरासूं, गल मैं पड़ी परासूं, जां जां गुरु न चीन्हों।
तइया सींच्या न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! एक समय हम सभी लोग देवजी के सन्मुख बैठे हुए थे। उसी समय एक नाथ सम्प्रदाय का कनफटा मुद्रा कानों में पहनी हुई अपने योग सिद्धि के अहंकार से गर्वित हुआ सम्भराथल पर आया। योगी ने कुछ ऐसी बातें पूछी, जिसका ज्ञान योग से कोई सम्बन्ध ही नहीं था। जैसे सांसारिक लोग जो चाहे वही मुख से बोलते हैं। उसी प्रकार मर्यादा से बाहर की बात उस योगी ने कही। उसे वाणी को संयम का ज्ञान नहीं था। कुछ भी व्यर्थ की बात बोलता ही गया। बिना प्रयोजन अप्रिय वाणी बोलना भी तो झूठ ही है। श्री देवजी ने उसे व्यर्थ झूठ बाणी बोलने से रोका और उसके प्रति यह शब्द सुनाया, जिसका भाव मैं बतलाता हूँ-

श्री गुरुदेव ने कहा-हे नाथ! तुम इस समय व्यास की पदवी को धारण किए हुए हो। तुम्हें ऐसी व्यर्थ की बात नहीं बोलनी चाहिए। व्यास होकर केवल बोलता ही है। किन्तु यह पता नहीं है कि क्या बोलता है? केवल कथन करने से, वेद शास्त्र का ज्ञाता नहीं हो जाता। ज्ञाता तो तभी होगा जब कथानुसार आचरण करेगा।

व्यास होकर अनेकानेक प्रतिज्ञा करते हैं और पुन: तोड़ भी देते हैं। हाथ में जल लेकर संकल्प करते हैं। बार-बार संकल्प करना और तोड़ देना, यह तो जीवन की निराशा को प्रकट करता है। जल देवता को रुष्ट कर देता है, तो व्यास लोगों का भला कैसे होगा? ऐसी दशा में तो गले में फांसी पड़ेगी। कोई भी बचाने वाला नहीं होगा। जिसने भी गुरु को नहीं पहचाना, उसने मूल की सिंचाई नहीं की। डाल-पत्तों में ही पानी डालता रहा। उसे फल कहाँ से मिलेगा।

कई-कई लोग स्थूल बात बोलते हैं। उन्हें कुछ भी बोलने की सुध नहीं है। सत्य, प्रिय, हितकर वचन बोलना चाहिये। **सत्य प्रतिष्ठाया क्रिया फलाश्रयत्वम्।** सत्य में प्रतिष्ठित हो जाने से उसके द्वारा किया जाने वाला कार्य फलदायी होता है। उसका किया हुआ कार्य निष्फल नहीं होता। पुन: वही योगी कहने लगा- हे जम्भेश्वर! काजी कुरान का कथन करता है, इसलिए तो वेद कुराण व्यर्थ ही सिद्ध हो रहे हैं। ज्ञान कैसे होगा यह बतलाने की कृपा करे ? श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-36

ओ३म् काजी कथै कुराणों, न चीन्हों फरमाणों,

काफर थूल भयाणों, जइया गुरु न चीन्हों।

तइया सींच्या न मलू, कोई 2 बोलत थूलूं।

जम्भेश्वरजी ने कहा- काजी केवल कुराण कथन ही करते हैं। पण्डित केवल वेद का कथन ही करते हैं। जैसा कहते हैं वैसा आचरण नहीं करते। दूसरों से सुनकर या पढ़कर दूसरों को सुनाना प्रारम्भ कर देते हैं। वेद-कुरान में क्या तत्त्व है, उसका कुछ भी उनको पता नहीं है। ये लोग काफिर (नास्तिक) हैं।

बाह्य बातों तक ही सीमित हैं। तथ्य का कुछ भी पता नहीं है। इनका जीवन अनुभव शून्य ही है। जिसने भी गुरु की शरण ग्रहण नहीं की। गुरु को पहचाना नहीं है। उन्होंने मूल की सिंचाई नहीं की। वह जो कुछ भी कहता है वह अनुभव शून्य स्थूल वार्तालाप करता है ऐसे लोगों से सत्य प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ ही है।

उसी समय एक दूसरा योगी कहने लगा- हे देव! मेरी बात सुनो, मैं भी कुछ अर्ज करना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि ब्रह्म एक ही सम्पूर्ण सृष्टि अद्वैत,अज,निरंजन आदि विभूतियों से विभूषित है। यह कैसी बात है ? इसमें कहाँ सत्य है या झूठ है। श्री जम्भेश्वरजी ने शब्द उच्चारण किया-

शब्द-37

ओ३म् लोहा लंग लुहारूं, ठाठा घड़े ठठारूं।

उत्तम कर्म कुम्हारूं, जइया गुरु न चीन्हों।

तइया सींच्या न मूलूं, कोई 2 बोलत थूलूं।

श्री जाम्भोजी ने कहा- जिस प्रकार लुहार लोहे को तपाकर अनेकानेक बर्तन, औजार बना देता है। ठठेरा पीतल को अनेकानेक आकार देता है। कुम्हार मिट्टी को अनेक रूपों में घड़े आदि में परिवर्तन करके नाम रूप प्रदान करता है। ठठेरा की भांति एक अद्वैत ब्रह्म सृष्टि का पालन पोषण कर्त्ता, रचयिता एवं संहारकर्त्ता भी है। वह स्वयं ही सृष्टि के कण-कण में विद्यमान होकर अपनी माया द्वारा विस्तार को प्राप्त होता है। जिस प्रकार मिट्टी तो एक ही है, किन्तु नाम रूप से भिन्न भिन्न है। उसी प्रकार से ब्रह्म एक है, तो भी संसार रूप में नाम रूप से भिन्न-भिन्न ही दृष्टिगोचर होता है।

उन तीनों में कुम्हार का कर्म उत्तम है क्योंकि वह मिट्टी को बर्तन का आकार देता है उसी से ही सम्पूर्ण व्या

वहारिक कार्य सम्पन्न होते हैं। जिसने गुरु को नहीं पहचाना, उसने मूल की सिंचाई नहीं की। अन्य लोग तो स्थूल व्यर्थ की ही बात बोलते हैं। जो विश्वास योग्य नहीं है।

श्री देवजी जब विराजमान थे, अनेक लोग अपनी अपनी शंका का समाधान करने को आतुर थे। उसी समय ही एक गोसांई वहाँ पर आया हुआ था। वह भी बोला-हे देव! आप देखिये मैंने गले में ठुमरा (मनका) सम्प्रदाय विशेष की पहचान हेतु पहन रखा है। यह वेशभूषा ही सत्य है। इसी ठुमरे से मैं साधु ठीक मालूम पड़ता हूँ। इसी से ही मैं संसार सागर पार उतर जाऊँगा। ऐसा मेरे गुरु ने बतलाया है। क्या यह सत्य है ? श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-38

ओ३म् रे रे पिण्ड स पिंडू, निरघन जीव क्यूं खंडू।
ताछै खंड बिहंडू, घड़िये से घमण्डूं,
अइया पंथ कुपंथूं, जइया गुरु न चीन्हों।
तइया सींचा न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।

श्री देवजी ने कहा- हे साधो! तुमने परमतत्त्व की तो खोज की नहीं। केवल शरीर तक ही सीमित रहा। यह शरीर तो नाशवान है। इस शरीर में बैठे हुए ईश्वररूपी जीव को क्यों खण्डित करता है ? जीवों के सताने में ही तुम सुख लेते हो। यह जीव तो ईश्वर का ही रूप है। तुम जीव को नहीं सता रहे हो, ईश्वर को ही सता रहे हो। वह तुम्हें कभी भी माफ नहीं करेगा। उसका दु:खरूपी फल तो तुम्हें भुगतना ही पड़ेगा।

अब तक तुमने तपस्या के बहाने इस जीव को ही सताया है। अब तुम क्षमा याचना करो। अपने किए हुए का पश्चाताप करोगे, तभी मुक्त हो सकोगे। जिस काया की तुम रचना नहीं कर सकते, उन्हें खण्डन करने का क्या अधिकार है ? इसलिए हे साधो! यह तुम्हारा पंथ सुपंथ नहीं, कुपंथ है। इस पंथ से तुम पार नहीं उतर सकते।

जिसने भी गुरु को नहीं पहचाना, उसने मूल को नहीं सींचा। केवल डाल-पात तक ही सीमित होकर उस ब्रह्म एक अज को प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस प्रकार से पृथक पृथक सारग्राही शब्द श्रवण करने पर योगी लोग कहने लगे-

हे तात्! किस प्रकार से हम लोग योगयुक्त होवें ? किस प्रकार से श्री को प्राप्त करें ? किस प्रकार से स्व-स्वरूप का बोध कर सकें ? वही मार्ग हमें आप बताइये। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-39

ओ३म् उत्तम संग सुसंगु, उत्तम रंग सुरंगू।
उत्तम लंग सुलंगू,उत्तम ढंग सुढ़ंगू।
उत्तम जंग सुजंगू, तातैं सहज सुलीलूं।
सहज सुपंथू, मरतक मोक्ष दवारूं।

हे योगीजनो! यदि संसार सागर से पार उतरना है, जीवनयुक्ति एवं मुक्ति चाहते हैं, तो सर्वप्रथम तुम्हारा कर्तव्य है कि संगति उत्तम पुरुष के साथ करनी है। यदि जीवन में कुछ धारण करना है, कुछ सीखना है, तो रंग उतम ही चढ़ाना है। यदि संसार सागर से पार उतरना है, तो पूर्णतया महासागर से पार उतर जाओगे। यदि जीवन का ढ़ंग सीखना है, तो उत्तम ढ़ंग, रहन-सहन, व्यवहार ही सीखना है। यदि किसी से जंग भी करना है, तो उतम जंग ही करें। ऐसा युद्ध करे जिससे तत्त्व की प्राप्ति हो जाये। ऐसी ज्ञान की वार्तालाप करे जिससे

पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो सके। वही सहज में ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है।

परमात्मा की लीला में रम जाना ही जीवन का आनन्द प्राप्त करना है। यही सहज में सुपंथ है। ऐसा मार्ग ही सुपंथ है। सुपंथ का पथिक ही मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार से शब्दों का श्रवण किया। मन का धोखा मिटाया और बिश्नोई पंथ को उत्तम स्वीकार करके पंथ में सम्मिलित हो गये।

लक्ष्मणनाथ एवं लोहापांगल को योग का उपदेश

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! आपने अब तक श्री जम्भदेवजी द्वारा दिए हुए अनेकानेक उपदेश श्रवण करवाये। आपके श्रीमुख से उच्चरित वाणी को मैं सुनते हुए भी तृप्त नहीं हो रहा हूँ। कुछ तो आपकी वाणी में ही जादू होगा तथा श्रीदेवजी का जीवन कर्म दोनों ही विचित्र ही है। उस विचित्रता को मैं आगे भी सुनना चाहता हूँ।

योग क्या है? असली योगी भी कोई होगा जिसकी श्री देवजी से भेंट हुई होगी? उनकी आपस की वार्तालाप आपने श्रवण की होगी। कृपा करके मुझे सुनाने का कष्ट करें। इस प्रकार से वील्हो द्वारा पूछने पर श्री नाथोजी थोड़ी देर मौन रहने के बाद कहने लगे-

शिष्य! सिद्धों की परस्पर की वार्ता तो मैं समय आने पर बाद में बताऊँगा। पहले कुछ लोग जो योग के नाम से पाखण्ड करने वाले तथाकथित सिद्धों की बात मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो!

शब्द सुण जोगी बिसनोई हुवो, बिसनोई हुवा पछे टीले गयो, टीले जोगी बालो लखमण नाथ रहे, जिंहि के भण्डारो थो। भण्डारे जोगी भेला हुवा। बिसनोई ने कहे भुगति करे, बिसनोई भुगति करै नहीं। जोगी रीसाणा, जोगी कहे! कौण तेरा पीर, कौण तेरा राह, तैं नाथ के घर दूजि राखी। बिसनोई कहे मेरे जाम्भोजी पीर। सत पंथ को राह। जोगी कहै तेरे पीर की अर हमारी बात। जोगी किते इक दिन जांभेजी दिस चाल्या। जोगी नजीक आय लागा। जोगिये एक जोगी जांभेजी कने मेल्ह्यो। जोगी कहे जाम्भोजी इहां बालां लछमण आवे हैं। तम साम्हां चलकर आदेश करके पाय लागो। जांभेजी कहे बाल लछमण मां के आसति इधका है। जोगी कहे, परभात तो बाल सरूप दीसे, मध्यान जवान अवस्था धारे साम कूं गरढ़ा नजर आवै। इस तरे की अनेक आसति है। बिसनोई कहे घणा बेस तो वेस्वा करे। जांभोजी श्रीवायक कह-

शब्द-48

ओ३म् लक्ष्मण लक्ष्मण नां कर आयसां, म्हारे साधां पड़े बिराऊं।
लक्ष्मण सो जिन लंका लीवी, रावण मारय्यो ऐसो कियो संग्रामूं।
लक्ष्मण तीन भुवन का राजा, तेरे एक न गाऊं।
लक्ष्मण के तो लख चौरासीं जींया जूणी, तेरे एक न जीऊं।
लक्ष्मण तो गुणवंतो जोगी, तेरे बाद बिराऊं।
लक्ष्मण का तो लक्षण नाहीं, शीस किसी बिध नाऊं।

शब्द 39 वां सुनकर एक योगी बिश्नोई पँथ में सम्मिलित हो गया। वह योगी कानों में मुद्रा पहनने वाला दर्शनी साधु था। जब बिश्नोई पन्थ में सम्मिलित हो गया तथा तब उसकी मुद्रा निकलवा दी थी। **और घर भटके नाथ घर अटके** यह कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। जब वह नाथ-बिश्नोई बनने के पश्चात् एक समय

एक टीले पर गया था। वहाँ पर लक्ष्मणनाथ का डेरा था। वहाँ टीले पर उस समय भण्डारा विशेष था। लक्ष्मणनाथ द्वारा आमंत्रित नाथ विशेष वहाँ पर एकत्रित हुए थे। उन नाथों ने वहाँ उपस्थित एकमात्र बिश्नोई से भोजन करने को कहा। बिश्नोई ने भोजन करना मना कर दिया। नाथ लोग क्रोधित हुए और कहने लगे-

कहो! तुम्हारा कौन गुरु और धर्म है ? हम देखते हैं कि तुम्हारे कान फटे हुए हैं। तेने नाथ का घर भेख क्यों छोड़ा ? अब तू नाथों से द्वेषभाव रखता है। बिश्नोई ने कहा-मेरे गुरु जाम्भोजी भगवान् हैं। सतपंथ ही मेरा मार्ग एवं पंथ धर्म है। योगी कहने लगे-तेरे गुरु से हम बात करेंगे। हम तुम्हारे गुरु को दोषी मानते हैं। उन्हें दण्डित करेंगे। ऐसा कहते हुए वे योगी लोग वहाँ से चल पड़े। बहुत दिनों के पश्चात् जाम्भोजी के निकट आ पहुँचे। आकर हिम्मटसर गाँव में डेरा लगाया।

लक्ष्मणनाथ ने अपने एक शिष्य को दूत बनाकर जाम्भोजी के पास भेजा। योगी सम्भराथल पर पहुँचा और अपने गुरु लक्ष्मणनाथ का संवाद सुनाते हुए इस प्रकार कहा-हे जम्भेश्वर! आपके पास यहाँ पर बाल लक्ष्मण पधार रहे हैं। इसलिए कि आप पर नाराज हैं। आप उनके सामने चलकर प्रणाम करो। अपनी भूल की क्षमा याचना करो। उनके चरणों में शीश झुकाओ, तो शायद वो आपको माफ भी कर दे।

श्रीदेव ने कहा-तुम्हारे बाल लक्ष्मण में क्या सिद्धि है ? जो मैं उनके सामने जाकर क्षमा याचना करूँ तथा मैंने भूल भी कौनसी की है ? वह दूत बोला-महाराज! हमारा लक्ष्मण तो राम का भाई लक्ष्मणकुमार ही है। प्रात:काल तो वह बाल्यावस्था को प्राप्त हो जाता है। बाल सूर्य के समान ही बाल स्वरूपवान होता है। जब सूर्य मध्याह्न आता है तो जवान हो जाते हैं। और ज्यों ही सूर्य ढ़लता है, साँझ वेला होती है तो हमारे लक्ष्मण वृद्ध हो जाते हैं। यही शक्ति लक्ष्मण में है।

वहाँ पर उपस्थित बिश्नोई बन्धुओं ने कहा-ये अनेकानेक वेश-भूषा दिखावा तो वैश्या करती है। यह तो कोई योगी का लक्षण नहीं है। योगी तो तीनों अवस्थाओं में एकरस ही रहता है। उसी समय श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-

हे आयस! बार-बार लक्ष्मण लक्ष्मण ऐसा मत कहो, अनाधिकारी साधारण व्यक्ति को तुम राम का भाई लक्ष्मण कह रहे हो। यह तो अन्याय है। ऐसा कहकर तुमने साधु-संतों, सज्जनों को भ्रमित किया है। लक्ष्मण ने तो रावण को मारा था। लंका की प्राप्ति की थी। ऐसा भयंकर संग्राम किया था। लक्ष्मण तो तीनों लोकों का राजा है। तुम्हारे लक्ष्मण के पास तो एक गाँव भी नहीं है। लक्ष्मण के तो चौरासी लाख योनियां है, तुम्हारे लक्ष्मण के तो एक ही जीव नहीं है, लक्ष्मण तो गुणवान योगी है, तुम्हारे लक्ष्मण के तो अब तक वाद-विवाद, भ्रम आदि विद्यमान हैं। लक्ष्मण का तो एक भी लक्षण नहीं है तो मैं कैसे उनके सामने शीश झुकाऊँ। यदि वास्तव में राम का भाई लक्ष्मण होता तो मैं अवश्य ही स्वागत हेतु जाता, शीश झुकाता।

जोगी कहै जाम्भोजी जोग मार्ग कठिन है। हमने अजरी बजरी साझी है। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-49

ओ३म् अबधू अजरा जारले, अमरा राखले, राखले विन्द की धारणा।

पताल का पाणी आकाश कू ंचढायले, भेटले गुरु का दरशणा।।

आगन्तुक वह दूत कहने लगा- हे जाम्भाजी! सच्च है कि योगमार्ग अति कठिन है किन्तु हमने तो यौगिक क्रियाएँ अजरोली बजरोली आदि सभी विधिवत की हैं। आप हमें केवल नाममात्र का योगी न समझें।

सद्‌गुरु देवजी ने शब्द सुनाते हुए बतलाया- हे अवधू! केवल योग के बाह्य साधन आसन प्राणायााम मुद्राएँ आदि करने से ही योगी नहीं हो जाता है जो योगी परब्रह्म को प्राप्त हो चुका है, वह तुम्हारी तरह वाद-विवाद भ्रम में नहीं पड़ेगा।

काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्यादि ये तुम्हें सदा ही जलाने वाले हैं। इन्हें प्रथम आप जला डालो, तभी तुम योगी बनने की योग्यता धारण कर सकोगे। अपने आप को अमर कर लें। बिन्दु ब्रह्मचर्य की रक्षा करे। तथा ऊर्जा शक्ति जो वीर्य-जल के रूप में नीचे की ओर स्वभाव से प्रवाहित हो रही है। इसको दशवें द्वार-ब्रह्माण्ड में चढ़ा लें। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बनें। तभी तुम सद्गुरु परमात्मा का दर्शन स्पर्श अनुभव कर सकोगे, सच्चे अर्थों में योगी बन सकोगे। पुन: वह योगी कहने लगा-हे जम्भदेव!

जोगी कहै, बाला लखमण है सो तिरिया का मुख देखे नाही। छोती नाहीं लागे। जाम्भोजी श्रीवायक कहै-

शब्द-50

ओ३म् तइया सांसू तइया मासूं, तइया देह दमोई
उतम मध्यम क्यूं जाणीजै, बिरस देखो लोई।
जांके बाद बिराम बिरांसो सांसो, सरसा भोला चाले, ताकै भीतर छोत लकोई
जांके बाद बिराम बिरांसो सांसो सरसा भोलो भागो, ताकै मूले छोत न होई।
दिल दिल आप खुदायबंद जाग्यो, सब दिल जाग्यो सोई।
जो जिंदो हजकाबै जाग्यो, थल सिर जाग्यो सोई।
नाम विष्णु के मुसकल घातै, ते काफर सैतानी।
हिंदू होयकर तीरथ धोकै, पिंड भरावै, तेपण रह्या इंवाणी।
जोगी होय के मूंड मुंडावे कान चिरावै, गोरख हटड़ी धोके।
तेपण रह्या इंवाणी। तुरकी होय हजकाबो धोकै, भूला मुसलमांणkh।
के के पुरुष अवर जागैला, थल जाग्यो निज वाणी।
जिहिं के नादे वेदे शीले शब्दे, लक्षणे अंत न पारूं।
अंजन मांही निरंजन आछै, सो गुरु लक्ष्मण कंवारूं।

योगी कहने लगा-हे देवजी! हमारे लक्ष्मणनाथ तो स्त्री का तो मुख भी नहीं देखते। सभी प्रकार की छोत नहीं लगती। योगी के लिए नारी ही साधना में बाधक है। स्त्री से तो बचे हुए हैं। आप लक्ष्मण के योगी ब्रह्मचारी कैसे नहीं मानते? श्रीदेवजी ने योगी के प्रति इस प्रकार से शब्द सुनाते हुए कहा-

हे लक्ष्मण के दूत! स्त्री पुरुष में शरीर की बनावट की दृष्टि से तो कोई फर्क नहीं है। वही श्वांस, मांस, वही देह, प्राणादिक पाँचों तत्त्वों का पुतला तो एक ही जैसा है, फिर स्त्री को मध्यम, पुरुष को उत्तम क्यों देखता है? यदि यही ज्ञान है, तो अज्ञान किसे कहेंगे? विचार करके देखो तो उत्तम मध्यम का भाव निवृत्त हो जायेगा।

यदि अब तक वाद-विवाद, भ्रम, छोटा-बड़ा और मैं और पराया का भाव योगी के अन्दर विद्यमान है तो फिर योगी कैसे हो सकता है? **वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सु दुर्लभः**। योगी का तो छोत छूआछूत

भाव निवृत्त हो जाना चाहिये था। तुम कहते हो कि वह तो स्त्री का मुख नहीं देखता तो क्या वह योगी हो गया? मानसिक संताप तो ज्यों का त्यों विद्यमान है। वह परमात्मा तो सर्वत्र विद्यमान है। प्रत्येक हृदय में विद्यमान होकर सृष्टि का संचालन करता है। वह तो जाग्रत पुरुष है। जो हज काबे में जाग्रत हुआ, पुरुष वही सम्भराथल पर भी जागृत हुआ है। परमात्मा के नाम में विघ्न करने वाले तो काफिर (शैतान) लोग हैं।

हिन्दू होकर के अर्थात् अपने को श्रेष्ठ आर्य समझते हुए भी घर बैठे हुए तीर्थों की धोक लगाते हैं, उपासना करते हैँ। तीर्थ तो स्नान करने से ही पवित्र करता है, न मात्र नाम लेने से। यह हिन्दुओं की भूल है। इसी भूल के कारण हिन्दू निष्फल रह गये।

योगी होकर केवल मूण्ड मुण्डवा लेते हैं। कान चिरवा लेते हैं। मुद्रा धारण कर लेते हैं। गोरख के धूणां पर जाकर धोक लगाते हैं। शीश झुकाते हैं। यही योग समझ रखा है। यह भूल ही निष्फलता का कारण है।

मुसलमान होकर केवल काबे के सामने मस्तिष्क झुका लेते हैं तथा हज कर आते हैं। इसको ही अपना धर्म समझ लिया है। इतना मात्र ही धर्म कर्म नहीं है। इससे आगे भी कुछ और करणीय है। ऐसा नहीं समझते। इसलिए मुसलमान भी निष्फल (व्यर्थ) का जीवन जी रहे हैं।

कोई कोई विरल पुरुष ही संसार में जाग्रत हुए हैं और भी कई जागृत होने वाले हैं। किन्तु सम्भराथल पर इस समय जाग्रत पुरुष के रूप में विद्यमान हूँ। इस समय विशेष रूप से वेदवाणी के रूप में उपस्थित हूँ। जो कार्य अन्य प्रकारों से, अन्य अवतारों में किया वो ही कार्य मैं नाद, वेद, शील, शब्द द्वारा कर रहा हूँ। वही निरंजन, निराकार, साकार रूप में विद्यमान होकर प्रगट हुआ हूँ।

हे योगी! अलख निरंजन ही मैं गुरु रूप में यहाँ सम्भराथल पर विद्यमान हूँ।

जोगीये सबद मान्यो नहीं। देवजी नाल्हीयै विडाड़े ने मेल्ह्यौ। नाल्हीयो जोगीयां कनै गयो। कुलाछ मार कूद्यो। ताल एक आसन मांड बैठो। लखमण है सो मोरे पासि आय आसण मांडो। जोगी हार आदेश आदेश कर उठि चाल्या। काहिक दूर गया कहै। जांभेजी निरहारी पुरुष कहावै। आ बात झूठी है। कै कही जाय जीमि आवता है। कै कोई आण जिमावता है। चलो या बात की ठीक करेंगे पूठा आया। जांभोजी के दोला बैठा। देवजी की कला दिन दिन चड़ती दीसै। जोगी भूख भागा। कै तो बसतियां ने उठि चाल्याँ कै ठाहरया, जोगी कहे, जाम्भोजी! अतीतों को भूख लगी है, तीनि दिन हुए कुछि दया भी आवैती है। दैवजी कहै जदि ही क्यों न कह्यौ। चेला कनि यों भुगति मंगाई। जोगियों का पतर पुरायां। योगी कहै आगै अनंत सिद्ध हुवा। तिन्हों भुगति जीमि। भुगति बिना कोई न रह्या तम भी हम पासि बैठिके भुगति जीमौ। काहे को वासते भूखे रहो। जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-51

ओ३म् सप्त पताले भुय अंतर अंतर राखिलो, म्हे अटला अटलूं।
अलाह अलेख अडाल अजूनी शिंभू, पवन अधारी पिंडजलूं।
काया भीतर माया आछै, माया भीतर दया आछै।
दया भीतर छाया जिहिकै, छाया भीतर बिंब फलू।
पूरक पूर पूर ले पोण, भूख नहीं अन जीमत कोण।

नाथोजी ने आगे कथा इस प्रकार से बतलाते हुए कहा-देवजी ने लगातार तीन शब्द सुनाये तो भी लक्ष्मणनाथ के दूत ने माना नहीं, तब श्रीदेवजी ने अपने शिष्य निहालदास को अपने पास बुलाया और कहा-

तुम लक्ष्मणनाथ के पास जाओ और अपनी सिद्धि दिखाकर के मेरे पास ही मण्डली सहित ले आओ। निहालदास ने कहा–हे गुरुजी ! मेरे पास तो सिद्धि ही नहीं है। मैं कैसे ला सकता हूँ। जाम्भोजी ने कहा–तुम अवश्य ही जाओ और वहाँ जाकर सिद्धि से ऊँचा आसन लगाकर बैठ जाना और योगियों को हरा करके ले आना। निहालदास अनमना सा होकर चला। मार्ग में विचार किया कि अब तक तो कभी मैंने अधर में आसन लगाया नहीं है। कहीं वहीं पर मेरी बेइज्जती न हो जाये ? मार्ग में ही पता करके देखता हूँ। योगियों के पास पहुँचने से पूर्व ही मार्ग में छलांग लगायी, किन्तु धरती पर गिर पड़ा। विचार किया कि मेरे में शक्ति नहीं है। वापिस श्रीदेवजी के पास लौट आया।

देवजी ने कहा–क्या बात हुई निहालदास ! वापिस क्यों लौट आया ? निहालदास बोला–गुरुदेव ! मेरे में तो सिद्धि नहीं है। मैंने मार्ग में पता लगाया था। मैं तो धरती पर गिर पड़ा था। मैं जाऊँगा नहीं। श्रीदेवजी ने पीठ थपथपाई और कहा–पुन: जाओ। अबकी बार मार्ग में पता नहीं लगाना। यह सिद्धि तुम्हें इस कार्य हेतु दी गई।

दुबारा निहालदास योगियों की मण्डली में पहुँचा और श्री देवजी की आज्ञानुसार लक्ष्मण के सामने जाकर आदेश आदेश किया किन्तु लक्ष्मणनाथ ने जवाब नहीं दिया। किन्तु उनकी धूनी पावड़ी आदेश आदेश जवाब देने लगी। लक्ष्मणनाथ ने देखा कि निहालदास तो धरती से इक्कीस गज ऊँचा आसन लगा कर बैठा है। यह सिद्धि तो हमारे से कहीं अधिक है। इस प्रकार से अपनी न्यूनता समझ करके वहाँ से लक्ष्मणनाथ मण्डली सहित रवाना हुए और सम्भराथल पर जाम्भोजी के पास पहुँच गये। लक्ष्मणनाथ ने अपने चेलों से कहा कि हमने सुना है कि जाम्भोजी निराहारी हैं, किन्तु यह बात असंभव है। बिना भोजन किये कैसे रह सकते हैं ? या तो कहीं भोजन करके आते हैं या उन्हें कोई रात्रि में भोजन करवाके चला जाता है ? अपने लोग इसका पूरा पता लगायेंगे और उनके इस झूठ को उजागर करेंगे। हम सभी लोग उनको घेरकर बैठ जाते हैं। न तो किसी को बाहर से आने देंगे और न ही किसी को बाहर जाने देंगे। देखना है कितने दिन भूखे रहते हैं।

इस प्रकार से योगी लोग तीन दिन तक घेर कर बैठ गये। न तो स्वयं ही भोजन कर सके और न ही जाम्भेजी के पास किसी को आते जाते देखा और न ही कहीं जाम्भोजी उठ कर ही गये। भूख सहन करने की भी तो कोई सीमा होती है। तीसरे दिन लक्ष्मणनाथ के शिष्य अपने गुरु को छोड़कर भूख–प्यास से व्याकुल होकर इधर गाँवों में चले गये तो कुछ अभी भी लक्ष्मण के साथ बैठे रहे।

योगियों ने आपस में ही कानाफूंसी की कि आज तीन दिन–रात हो गये हैं। जाम्भोजी की कला तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। हम तो मुरझा गये हैं। श्रावण में वर्षा विहीन जो खेती की दशा होती है, वही दशा हमारी है। न तो इस मालिक को सूखती हुई खेती को देखकर दया आती है और न ही जाम्भोजी को भी दया आ रही है। न जाने ये दोनों ही कैसे दयाविहीन है ? हम तो जाम्भोजी के अतिथि थे परंतु भूख से व्याकुल हैं।

जाम्भोजी ने उन निरपराधजनों की वार्ता सुनी और उन्हें दु:खी देखा तो बोले–हे योगीजनो ! आपको भूख प्यास सता रही है। यह बात आपने पहले ही क्यों नहीं बतलाई ? मैं तुम्हारे लिये भोजन की व्यवस्था करवाता। जाम्भोजी ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि इन अतिथियों के लिए श्रावण–भादव कड़ाह चढ़ा दो। जल्दी ही इनके लिए भोजन बना दो। इन्हें भोजन द्वारा जल्दी ही तृप्त कर दो क्योंकि ये तीन दिन से भूखे हैं।

श्रावण–भादव में बनाया हुआ भोजन अखूट होता था। वे योगी लोग इस बात को क्या जाने ? लक्ष्मण ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि वैसे ही हम तीन दिनों से भूखे हैं तथा सभी लोग आज अपनी ताकत से

अधिक ही भोजन करना है तथा कुछ अपने देवी-देवता यानि भूत-प्रेतों को भी बुला लेना। हम सभी मिल करके ये छोटे-छोटे कड़ाह खाली कर देंगे। जाम्भोजी क्या इस जंगल में हमें भरपेट भोजन करा सकेंगे? बीच में ही भोजन समाप्त कर देना है। जाम्भोजी की बेइज्जती करनी है। जाम्भोजी के शिष्यों द्वारा भोजन पत्तलों में परोसा गया। सभी पंक्ति लगाकर के बैठ गये। तब लक्ष्मणनाथ ने जाम्भोजी से कहा-आओ महाराज! आप भी हमारे साथ बैठकर भोजन पाओ। इस संसार में बड़े सिद्ध एवं अवतार हुए हैं। उन्हीं सभी ने ही भोजन ग्रहण किया है। यदि आप भोजन ग्रहण नहीं करोगे, तो हम भी भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। जाम्भोजी ने कहा-आप लोग फिर हारोगे। मुझे भोजन की आवश्यकता होती, तो मैं अवश्य ही भोजन करता। इस प्रकार से कहते हुए श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-जिसका भावार्थ इस प्रकार से है-

हे योगी लोगो! इस शरीर में ही सप्त पताल है। जिसे सप्तचक्र भी कहते हैं। इन सातों चक्रो में सर्वप्रथम चक्र कुण्डलिनी से प्राणवायु का उद्गम होता है और सातवें चक्र सहस्रार में जाकर प्राणवायु स्थिर हो जाती है। इन सात चक्रों को प्राणवायु जाग्रत करती है। ऊर्जा शक्ति का ऊर्ध्व गमन होता है। ऐसी अवस्था में भूख-प्यास निवृत्त हो जाती है। सात चक्र कमश: इस प्रकार से हैं-सहस्रार (ब्रह्मरन्ध्र) आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, मूलाधार (कुण्डलिनी)।

गुरुदेव कहते हैं-हे योगी! मैं तो प्राणवायु को सातों चक्रों के अन्दर ही रखता हूँ। इस वजह से मैं अटल हूँ। सभी प्रकार से संसार की व्याधियाँ मुझे आवृत्त नहीं करती, क्योंकि मैं अल्लाह, अडाल, अयोनी एवं स्वयंभू रूप से हूँ।

यह मेरा जलीय तत्त्व से बना हुआ शरीर तो वायु के आधार पर टिका हुआ है। मैं तो केवल श्वांस प्रश्ंवास से ही जीता हूँ। यह दिखने वाली पंचभौतिक काया अवश्य ही है, किन्तु इस काया में ही माया भी है। जो सभी का पालन पोषण करती है। जो माया अन्य शरीरों को बाहर से पोषण देती है। इसी माया में हृदय भी है। जो भावना का भोग करता है। इसी हृदय में ही तो परमात्मा का बिम्ब रूप जीव विद्यमान होकर सम्पूर्ण शरीर को जीवनशक्ति प्रदान करता है। किन्तु हृदय में विद्यमान ईश्वर दिखता नहीं है। क्योंकि माया की छाया से ढ़का हुआ है।

गुरुदेव ने कहा-हे लक्ष्मण! मैं तो अपने सत्‌चित् आनन्द रूप में ही विद्यमान रहता हूँ। मुझे सांसारिक अन्न आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। मैं तो प्राणवायु को प्राणयाम द्वारा अन्दर ही पूर्ण कर लेता हूँ। इसलिए मुझे भूख-प्यास नहीं लगती तो भोजन कौन करेगा? भूख प्यास लगना तो प्राणों का ही धर्म है। वह प्राण तो गुरुदेव कहते हैं कि-मेरे ही वश में है। अन्य लोगों के शरीरों को तो प्राण चलाती हैं, किन्तु मैं अपने प्राणों को चलाता हूँ।

इसलिए हे योगी! मुझे भूख नहीं है। आप लोग भूखे हो, इसलिए भोजन करलो। इस प्रकार के समझाने पर योगी लोगों ने भोजन किया। अपने साथियों को भी भोजन करवाया। किन्तु भोजन तो अखूट ही रहा। भोजन करने के पश्चात् लक्ष्मण कहने लगा-हे जम्भेश्वरजी! यदि आपके कोई शत्रु है तो आप हमें अवश्य ही बतला दें, हम उनका नाश कर देंगे।

जोगी कहै तम निरहारी तो हम भी निरहारी। रे जोगी यों झूठ पड़स्यो। भूखो होयसी सौ आपै ही निहौरा करसी। थे जीमों जीमियें। भुगति जीमी। देवजी ने कहै तुमारै कोई बेरी दुसमण होय तो हमकूं फूरमावों हम पालै जाम्भोजी श्रीवायक कहै-

शब्द-52

ओ३म् मोह मण्डप थाप थापले, राख राखले अधरा धरूं।
आदेश वेसूं ते नरेसूं, ते नरा अपरं पारूं।
रण मध्ये से नर रहियो, ते नरा अडरा डरूं।
ज्ञान खड़गू जथा हाथे, कोण होयसी हमारा रिपूं।

श्रीदेव ने शब्द द्वारा बतलाया कि हमारे पास तो ज्ञानरूपी खड्ग विद्यमान है। इसलिए मेरा तो कोई शत्रु नहीं है। तुम्हारे तो अवश्य ही आशा, तृष्णा, काम-क्रोध, लोभ, मोहादिक शत्रु हैं। स्वयं अपनी ही चिन्ता कीजिये। दूसरे की चिन्ता में अपना जीवन व्यर्थ में ही ना गमाइये। शत्रु कब पैदा होता है ? जब आप किसी से प्रेमभाव नहीं रखते। अपने ही अहंकार को द्वेष द्वारा पुष्ट करते हैं। अपने पुष्ट अहंकार के सामने दूसरे का कोई अस्तित्व ही नजर नहीं आता।

इसलिए हे योगी ! मोह रूपी मण्डप बनाकर उसमें रहने की कोशिश करें, तो सभी अपना ही दिखाई देगा। अपने से कभी शत्रुता नहीं होती। स्वयं की रक्षा कर ले। इन षट्उर्मियों से, जो तुम्हें सदा ही सताती रहती हैं। यह तेरा चंचल मन अस्थिर है। इसे स्थिर कर ले। जो व्यक्ति स्वयं का ही मालिक नहीं बना है, वह दूसरे का क्या मालिक बनेगा ? पहले स्वयं अनुशासित होवे तो दूसरे को उपदेश दे सकते हैं।

नरेश तो वही होगा, जिसने स्वयं को वश में कर लिया है। मन के कहने पर नहीं चलता है। स्वयं आत्मा के कथनानुसार जीवनयापन करता है। ऐसे ही नर वरणीय, पूजनीय हैं, जिनकी गति अपार है। ऐसे व्यक्ति ही संसार सागर के युद्ध मैदान में रहते हुए भी पूर्णतया निर्लेप हैं। निर्भय होकर संसार में विचरण करते हुए भी समाधि में स्थित हैं। हे योगी ! जिसके हाथ में ज्ञानरूपी खड्ग है, इसका शत्रु कौन हो सकता है ?

इन उपर्युक्त शब्दों को सुन करके ज्ञान पिपासु श्री वील्होजी बोले-हे गुरुदेव ! आपने लक्ष्मणनाथ की कथा के बारे में बताते हुए दो सिद्धांत जाम्भोजी के उजागर किये। पहला तो यह है कि जाम्भोजी जब तक मरुधरा में रहे, तब तक भोजन नहीं किया ? यदि ऐसा है तो भोजन क्यों नहीं किया ? तथा बिना भोजन के जीवित भी कैसे रहे ? दूसरी बात आपने यह बतलायी की जाम्भोजी के कोई शत्रु था ही नहीं, वे तो अजात शत्रु थे।

ज्ञान प्राप्त व्यक्ति का शत्रुभाव समाप्त हो जाता है। किन्तु कुछ लोग जो स्वयं ज्ञानी होते हुए भी उनके शत्रुभाव का निवारण नहीं हुआ है। जिस प्रकार से राम ने रावण के प्रति किया। क्या जाम्भोजी से कोई वैरभाव नहीं रखता था ? यदि ऐसा है तो वह कौनसा ज्ञान है, जिससे सभी प्राणी वैरभाव भूल जाते हैं। कृपा करके बतलाने की अनुकम्पा करे।

इस प्रकार से वील्होजी द्वारा पूछने पर नाथोजी कहने लगे-हे शिष्य ! वैसे तो भगवान् की गति निराली है। उनकी लीला वही जाने। जाम्भोजी ने कहा-**सुरनर तणो संदेशो आयो। नरनिरहारी।** यह संदेशा देव तथा मानव, दोनों शरीरों का मिला-जुला रूप है। देवता शरीर से उपदेश नहीं दे सकते। इसलिए नर का रूप बनाना आवश्यक था और केवल नर रूप ही होते तो बिना अन्न भोजन के जीवित रहना असंभव था इसलिए नर एवं देवरूप में जाम्भोजी थे।

नर रूप तो केवल उपदेश हेतु था ताकि यहाँ के लोग उनकी भाषा समझ सके। देवता रूप में भोजन ग्रहण करते थे। देवता का भोजन तो घृत, हवन-सामग्री ही है। स्वयं देवता ज्योतिस्वरूप होते हैं। घी आदि से

ज्योति प्रज्ज्वलित होती है। यज्ञ में अर्पित किया हुआ पदार्थ देवता का भोजन होता है। इसलिए जाम्भोजी यज्ञ में प्रदान की हुई आहुति रूप भोजन करते थे।

इसलिए जम्भेश्वर जी ने यज्ञ करना बतलाया है। आप लोग यदि साक्षात् भगवान् को भोजन भेंट करना चाहते हैं, तो यज्ञ करो। यज्ञ में दी हुई आहुति परमात्मा विष्णु, जो देवाधिदेव है, वही ग्रहण करते हैं। यही इनका (श्री देवजी का) भोजन है क्योंकि जाम्भाजी स्वयं विष्णु रूप हैं। इसलिए हमारा किया हुआ यज्ञ उसमें दी हुई आहुति स्वयं जाम्भोजी जीमते थे और अभी भी जीम रहे हैं।

यज्ञ में उठने वाली सुगन्धि को ग्रहण करते हैं। इसलिए तो उनका शरीर सुगन्धमय था। यज्ञ ही विष्णु जाम्भोजी का भोजन है। इसलिए अधिक से अधिक यज्ञ करें। यही विष्णु का आदेश है।

जाम्भोजी किसी से शत्रुभाव नहीं रखते थे। तो जाम्भोजी से कोई शत्रुभाव क्यों रखेगा? जहाँ संत महापुरुष साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं, वहाँ तो उनके निकट रहने वाले सभी जीव जन्तु भी वैरभाव भूल जाते हैं। सिंह और बकरी दोनों एक ही घाट पर पानी पीते हैं।

हे वील्हा! तुम यहाँ समाधी मंदिर के प्रवेशद्वार पर देख रहे हो कि सिंह और गाय एक ही बर्तन में साथ ही जल पी रहे हैं। यही जाम्भोजी का जीवन दर्शन था। जो यहाँ पर उकेरा गया है। ऐसी ज्ञान की दशा किसी भी व्यक्ति की हो जाये कि वह मनसा वाचा कर्मणा द्वारा जीव हिंसा का भाव निकाल दें, तो उसके पास रहने वाले जीव भी वैरभाव भूल जाते हैं।

जाम्भोजी का तो कहना ही क्या, वे तो साक्षात् विष्णु ही थे। भृगु ने विष्णु के लात मारी, तो भी उसको क्षमा कर दिया। कुछ भी वैरभाव नहीं रखा। ऐसे विष्णु जाम्भोजी लक्ष्मणनाथ से कहते हैं कि मैंने ज्ञानरूपी खड्ग धारण कर ली है, अब मुझे शत्रु का कोई भय नहीं है।

देवजी कहै तो तेरी पाल। जोगी कहै हमारे वैरी कोण है। देवजी कहे थारे बेरी भूख, तिसना, निद्रा,काम,क्रोध,लोभ,मोह,रोग,मांद, ऐ थारे वैरी है। इतनी सुणी जोगी उठी गया। गोदावरी जाय भेला हुवा। भेख आगै फिरीयाद कीवी। लोहापांगल बीड़ो लीयो। जोगी भेला हुवा। चाल्या चाल्या हिमटसर आया। देवजी जोगियाँ के दरसण आयो। भेष ने आदेश कियो। जोगी बोल्या नहीं। वासंद्र आदेश कीयौ। श्री सर्व दरसणे आदेश कीयौ जाम्भोजी श्रीवायक कहे–

लक्ष्मण जाम्भोजी की करामात देखकर उठकर चल पड़ा। कुछ दिनों के बाद गोदावरी नदी के किनारे पर पड़ने वाले मेले में पहुँचा और जाम्भोजी के बारे में अन्य योगी लोगों को बतलाया। एकत्रित साधुओं के सामने फरियाद की कि मेरे से तो जाम्भोजी काबू में नहीं आये हैं। आपके समूह में ऐसा कोई सिद्ध पुरुष होगा, जो जाम्भोजी को परास्त कर सके।

लक्ष्मणनाथ ने बीड़ा फेरा। चुनौती सुनाई। उन्हीं मण्डली में वहाँ पर लोहा पांगल की मण्डली भी वहीं थी। मण्डली के महंत लोहा पांगल ने चुनौती स्वीकार की। लोहा पांगल अपनी मण्डली सहित गोदावरी से चला और बागड़ देश सम्भराथल के पास ही हिमटसर गाँव में आकर डेरा लगाया।

हिमटसर गाँव में लोहा पांगल अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ एक सौ चालीस धूणी धुखाकर के महंत बनकर के बैठ गया। हिमटसर वासियों ने प्रथम इतने साधुओं को एकत्रित देखा था और आश्चर्यचकित होकर अनेक कल्पनाएँ करने लगे थे।

वहां हिमटसर की ही सोढ़ों की माँ लाछमदे ने यह समाचार सम्भराथल पर जाम्भोजी को बताया कि आप तो यहाँ पर बैठे हैं, किन्तु आपके मेहमान शत्रु बनकर आये हैँ। हमारे तो गाँव को घेर लिया है। आप ही

जाकर के उनको शांत कर सकते हैं अन्यथा तो वे कुपित बाबा लोग हमारे यहाँ उपद्रव करेंगे। हमारा गाँव ही जला देंगे। ये सभी भूतप्रेत सेवी हैं।

जाम्भोजी ने अपने शिष्य केल्हण को भेजा और कहा कि तुम जाकर भक्तों से कहो कि इनकी जमात को भोजन करवावें। यहाँ पर आये हुए अतिथि भूखे न रहें। केल्हण ने जाकर आदेश कहा, किन्तु कोई कुछ बोला नहीं, केल्हण ने सोचा या तो ये लोग अहंकारी हैं या मेरे से नाराज हैं या फिर सुनता ही न होगा।

चलूँ! पास में इस योगी का कान पकड़कर कानों में आवाज डालूँ, क्या पता कुछ जवाब भी दे? केल्हण ने कान पकड़ा ही था कि तुरंत लोहा पांगल बोला और कहने लगा हम तो योगीपुरुष समाधि में थे। तुम लोग नारी के दास हो।

केल्हण ने नारी विद्या का समुचित उत्तर देते हुए कहा-हे योगी! यह संसार तथा तुम और हम सभी नारी की ही संतान हैं। बिना नारी तो उत्पत्ति ही असंभव है। तुम लोगों ने ऊपर तो योगी का वेश बना रखा है किन्तु अन्दर तो तुम्हारे भी नारी बैठी हुई है। प्रथम अन्दर की नारी को बाहर निकालो।

केल्हण ने भोजन का निमंत्रण दिया। लोहा पांगल ने भोजन करना स्वीकार किया। जांभोजी द्वारा प्रदत्त श्रावण भादव नामक दो कड़ाहों में बना भोजन पूरी मण्डली को जिमाया, परंतु कुछ भी कम नहीं पड़ा। लोहापांगल समझ गया कि मेरी पूरी मण्डली को कई गाँव एकत्रित होकर के भी भोजन देने में आनाकानी करते हैं।

जाम्भोजी ने सहजभाव से ही अति स्वादिष्ट भोजन करवा दिया। किन्तु यह केल्हण तो जाम्भाजी का एक साधारण शिष्य ही हमें बुलाने हेतु आया है। जाम्भोजी स्वयं नहीं आये। इसलिए उनके पास जाना ठीक नहीं होगा।

जाम्भोजी लोहा पांगल को जगाना चाहते थे। उस पर अपार कृपा थी। इसलिए लोहा पांगल का भाव जानकर स्वयं श्रीदेवजी चले। जाम्भोजी अकेले ही मण्डली में पहुँचे थे कि कहीं लोहापांगल अधिक लोगों को देखकर डर न जाये। जाम्भोजी ने देखा कि लोहापांगल भोजन करके आँखे बंद करके मौन होकर बैठा है। समाधि का बहाना कर रहा है। जाम्भोजी ने जाकर आदेश कहा किन्तु न तो लोहापांगल ही कुछ बोला और न ही उसकी जमात ने ही जवाब दिया। किन्तु वहाँ पर धुइयों एवं अग्नि से आदेश आदेश आने लगा। लोहापांगल ने सुना तो आँखें खेली और रोषभरी दृष्टि से देखने लगा और कहने लगा-मेरे आदेश के विरुद्ध कौन मेरा शिष्य आदेश आदेश बोलता है? शिष्यों ने कहा-महाराज! ये धुइयां एवं अग्नि बोल रही हैं। लोहापांगल सहित सम्पूर्ण मण्डली ने आदेश आदेश कहते हुए जाम्भोजी की आधीनता स्वीकार करली।

जाम्भोजी की आज्ञा से सूर्य तपने लगा। प्रचंड गर्मी से लोहापांगल का लोह दहकने लगा। वह गर्मी सहन नहीं कर सका और छाया में जा बैठा। शरीर को ठण्डा करने का उपाय करने लगा। शरीर पर जड़ी बूटी द्वारा ईलाज किया। धूल में लोटपोट होने लगा। किन्तु जलन शाँत नहीं हुई। लोहा पांगल ने अपने कष्ट निवारण हेतु प्रार्थना की।

जाम्भोजी ने कहा-कल प्रात:काल ही सम्भराथल पर आ जाना। मैं तुम्हारे तप की निवृत्ति का उपाय बताऊँगा। ऐसा कहते हुए श्रीदेवजी सम्भराथल पर चले गये। दूसरे दिन सुबह ही अपनी मण्डली सहित श्रीदेवजी के पास सम्भराथल पहुँचा।

लोहा पांगल कहे-कहाँ-कहाँ हो। जाम्भोजी श्री वायक कहे

शब्द-40

ओ३म् सप्त पताले तिहूँ त्रिलोके, चवदा भवने गगन गहीरे।
बाहर भीतर सर्व निरन्तर, जहाँ चीन्हों तहां सोई।
सतगुरु मिलियों सतपंथ बतायो, भ्रान्त चुकाई,
अवर न बुझबा कोई।

लोहा पांगल ने पूछा कि आप कहाँ-कहाँ रहते हो? जाम्भोजी ने बतलाया कि मैंं सातों पातालों में, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, महातल तथा ऊपर के भी भू: भुव: स्व: मह: जन: तप: सत्यम् इन सातों में भी, तीनों लोक, मृत्यु, स्वर्ग, ब्रह्मलोक में भी इस प्रकार से 14 लोकों में मेरा निवास है। गगन समुद्र, बाहर, भीतर सर्व स्थानों में निरन्तर मेरा निवास है। अथवा जहाँ पर भी मेरा स्मरण करोगे, मैं वहीं पर विद्यमान हूँ।

हे लोहा पांगल! तुझे सतगुरु मिल चुका है। सतपंथ बताया है। तेरी भ्रान्ति मिटाई है। अब तुझे किसी से भी पूछने की आवश्यकता नहीं है।

शबदि सुणी आयस बोल्या नहीं। जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-41

ओ३म् सुण राजेन्द्र, सुण जोगेन्द्र, सुण शेषिन्द्र, सुण सोfQन्द्र।
सुण काफिन्द्र, सुण चाचिन्द्र, सिद्धक साध कहाँणी।
झूठी काया उपजत बिण I त,जां जां नुगरे थिती न जांणी।

उपर्युक्त शब्द में विष्णो जाम्भोजी की सर्व व्यापकता सुनकर योगी मौन हो गया। कुछ बोला नहीं तब जाम्भोजी ने पुन: शब्द सुनाते हुए कहा- हे राजेन्द्र सुनो! हे योगीन्द्र सुनो! हे शेष सुनो! हे सूफी सुनो! हे काफिन्द्र सुनो! हे चाचिन्द्र आप भी सुनो! हे सिद्धो! हे साधको! सुनो! आप लोग मौन क्यों हो गये। मेरी बात सुनना भी बन्द क्यों किया? सुनो अवश्य ही।

यह शरीर एवं शरीर के कीमती अंग कान आदि सुनने के लिए ही तो मिले हैं। अन्यथा तो यह झूठी काया उत्पन्न एवं विनाशशील है। यह चली जायेगी, तो पुन: प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसलिए इस शरीर के रहते हुए ही अमूल्य वचन श्रवण कर लो।

हे नुगरो! समय का विश्वास न करो। यह व्यतीत हो जायेगा। आयस कहै जोग मारग दीस है। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-42

ओ३म् आयसां काहे काजै खेह भकरूड़ो, सेवो भूत मसांणी।
घड़े ऊंधै बरसत बहु मेहा, तिहिमा कृष्ण चरित बिन पड्यो न पड़सी पाणी।
योगी जंगम नाथ दिगम्बर, संन्यासी ब्राह्मण ब्रह्मचारी।
मनहट पढ़िया पंडित, काजी मुल्ला खेलै आप दवारी।।

निश्चै कायो वायो होयसी, जै गुरु बिन खेल पसारी।

आयस कहने लगे हे देव! योग मार्ग अति कठिन है। हम लोग इस मार्ग के पथिक हैं। जाम्भोजी ने शब्द सुनाते हुए बतलाया कि हे आयसो! योग का अर्थ है कि जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन करना। आप लोग परमात्मा की प्राप्ति हेतु शरीर पर भस्मी क्यों लगाते हो? इस राख से तो तुम्हारा शरीर ही दूषित हुआ है। यह योग का साधन नहीं है।

हे योगी लोगो! आप लोग योग साधना भूत-प्रेतों की सेवा, शमशान भूमि में जाकर क्यों करते हो? यह तो योग के विरुद्ध कार्य है। आप लोगों ने घड़े को उल्टा कर लिया है। योग के विरुद्ध चल पड़े हो। ऊँधे घड़े में जल नहीं भरेगा। चाहे कितनी वर्षा क्यों न हो। जब तक आप पर कृष्ण चरित का प्रभाव नहीं होगा, तब तक सभी साधन व्यर्थ हैं।

कृष्ण की अपार कृपा से ही तुम्हारा उल्टा मानसिक भाव सीधा हो सकेगा। इस समय यहाँ पर कृष्ण चरित विद्यमान है। इस समय योगी, जंगम, नाथ, दिगम्बर, संन्यासी, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, मनहठी, पढ़े पण्डित, काजी मुल्ला आदि ये सभी लोग अपना अपना मनमुखी खेल खेल रहे हैं। यह तो निश्चित है कि इनकी काया क्षीण होगी। यदि बिना गुरु के मनमुखी खेल खेलते रहेंगे तो।

आयस कहै हमने जोग मारग सब लीया है। जाम्भौजी श्री वायक कहे-

शब्द-43

ओ३म् ज्यूं राज गए राजिंदर झूरै, खोज गए नै खोजी।
लाछ मुई गिरहायत झूरै, अरथ बिहूँणा लोगी।
मोर झड़ें कृसाण भी झूरै, बिंद गए नै जोगी।
tkxh txe tfi;k rfi;k] tfr rfi rdih:A
जिहि तुल भूला पाहण तोले, तिहि तुल तोलन हीरूं।
जोगी सोतो जुग जुग जोगी, अब भी जोगी सोई।
थे कान चिरावो चिरघट पहरो, आयसां यह पाखंड तो जोग न कोई।
जटा बधारो जीव सिंघारो, आयसां इहि पाखण्ड तो जोग न होई।

आयस कहने लगे-हमने योग मार्ग लिया है। हम लोग योग साधना करते हैं। जाम्भोजी ने शब्द कहा-जिस प्रकार से राज चला जाता है तो राजा रोता है, क्योंकि राज था तभी तक राजा था। खोजी व्यक्ति का खोज चला जाता है, तो वह रोता है। चरणचिह्नों की खोज करना ही उसका ध्येय था। गृहस्थ में जब घरवाली ही मर जाये तो, गृहस्थ पुरुष रोता है। क्योंकि जब तक घरवाली थी तभी तक गृहस्थ था। यही उसके जीवन का सार था।

संसार में धन के लोभी धनहीन हो जाने पर रोते हैं। क्योंकि धन ही उसका सभी कुछ था। खेती करने वाले किसान तो तब रोता है, जब उसकी खेती में आये हुए फूल झड़ जाते हैं। क्योंकि बिना फूल की खेती में फल नहीं आयेंगे, यही उसकी तो आजीविका थी। योगी के लिए तो ब्रह्मचर्य ही उसका बल है, जीवन प्राण है, वही जब स्खलित हो जाये तो उसे भी रोना ही पड़ता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य बिना योग साधना की कल्पना करना ही व्यर्थ है।

इसी प्रकार से आप लोग भी मुझे रोते हुए दिखाई दे रहे हो। फिर कैसी आपकी योग साधना सफल हुई है ? इस समय योगी,जंगम,जती,तपी,यती,तकपीर ये सभी भूले हुए इस उतम जीवन तराजू से पत्थर तोल रहे हैं। उन्हें अपनी साधना मार्ग का ज्ञान ही नहीं है, पूर्णतया भटक चुके हैं।

गुरुदेव कहते हैं कि मैं तो उसी तराजू से हीरे तोलता हूँ। उत्तम व्यापार कर रहा हूँ। यदि वास्तव में कोईं योगी होगा तो युगों युगों तक योगी ही रहेगा। तथा अब भी वह योगी है। कई जन्मों की साधना का फल योगी है। किन्तु आप लोग योगमार्ग जानते ही नहीं। केवल बाह्य दिखावा ही करते हैं। आप लोगों ने कान चिरवा लिये, मुद्रा डाल ली, लंगोटी पहन ली। हे आयस! यह पाखण्ड तो योग नहीं हो सकता तथा जटाएँ बढ़ाना एवं जीवों की हत्या करनी तो यह पाखण्ड ही है। योग नहीं है। इसलिए असली योगी बनो।

आयस कहे जोग मारग हमने सबही किया-जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-44

ओ३म् खरतर झोली खरतर कंथा, कांध सहे दुख भारूं।
जोग तणी थे खबर न पाई, कांय तज्या घर बारूं।
ले सुई धागा सीवण लागा, करड़ कसीदि मेखलीयो।
जड़ जटाधारी लंधै न पारी, बाद बिवाद बेकरणो।
थे बीर जपो बेताल धियाo, कांय न खोजो ततकणो।
आयसां डंडत डंडू मुडंत मुंडू, मुंडत माया मोह किसो।
भरमी बादी बादे भूला, कांय न पाली जीव दयो।।

आयस लोहापांगल कहने लगा- महाराज! जो भी यौगिक क्रियाएँ हैं। वे सभी मैंने की हैं। आप हमें योगी क्यों नहीं मानते हैं? श्री जम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया-

हे लोहापांगल! आप लोगों ने कन्धे पर झोली एवं कंथा (गुदड़ी) उठा रखी है। इससे कोई योगी नहीं हो जाता है। ये तो कंधे पर भाररूप ही है। आप लोगों ने योग क्या है, इसका पता भी नहीं लगाया है। तो फिर घरबार क्यों छोड़ा है? यह भार तो गृहस्थी में ही काफी था। सुई धागा लेकर आप लोगों ने मेखलिये-झोले पर अनेकों प्रकार का कसीदा-चित्रकारी बनायी है, यही योग है क्या?

केवल मूर्खतावश जटाएँ बढ़ा लेने से पार नहीं उतर सकोगे। आप लोग व्यर्थ के विवाद में पड़कर अकर्त्तव्य कर्म कर रहे हो। आप लोग बीरों का, भूत प्रेतों का जप करते हो। बेतालों का ध्यान करते हो। ये तो वैसे ही अधोगति में गिरे हुए जीव हैं। ये आप लोगों को डुबा देंगे। तत्त्व की खोज क्यों नहीं करते? व्यर्थ के बकवाद में ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हे आयसों! हाथ में डंडा लेने से या मूंड मुंडाने से कुछ भी नहीं होगा। यदि सिर मुंडा ही लिया तो मोह किसका? सिर मुंडाना तो सभी कुछ मोह माया समाप्त हो जाना है। किन्तु आप लोग तो मोहमाया में पड़े हुए हैं। आप लोग भ्रमवश व्यर्थ के वाद-विवाद में भूले हुए हैं। जीवों पर दया क्यों नहीं करते? योगी तो **सर्वभूत हिते रता** होना चाहिए।

लोहापांगल कहे- मेरे गुरु यों कहया था। तुझ कू आदि गोरख उमित का साहिब मिलेगा। जदि तेरा लोह झड., सो क्या जाणे तम होक नहीं। जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-45

ओ३म् दोय मन दो दिल सिंठी न कंथा, दोय मन दोय दिल पुली न पंथा।
दोय मन दोय दिल कही न कंथा, दोय मन दोय दिल सुणी न कथा।
दोय मन दोय दिल पंथ दुहेला, दोय मन दोय दिल गुरु न चेला।
दोय मन दोय दिल बंधी न बेला, दोय मन दोय दिल रब्ब दुहेला।
दोय मन दोय दिल सुई न धागा, दोय मन दोय दिल भिड़े न भागा।
दोय मन दोय दिल भेव न भेऊ,दोय मन दोय दिल टेव न टेऊं।
दोय मन दोय दिल केल न केला, दोय मन दोय दिल सुरग न मेला।
रावल जोगी तां तां फिरियो, अण चीन्हैं के चाह्यों।
कांहे काजै दिशाबर खेलो, मन हठ सीख न कायों।
थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या, गुरु न चीन्हों रायों।
कण विण कूकस कांये पीसो, निंश्चय सरी न कायों।
बिण पायचिये पग दुख पावै, अबधू लोहै दुःखी सकायो।
पारब्रह्म की सुध न जांणी, तो नागे जोग न पायो।

लोहापांगल कहने लगा-मेरे गुरु ने ऐसा कहा था कि तुझे आदि गोरख विष्णु साक्षात् सम्भराथल पर मिलेंगे। वे साहिब तुझ पर अपार कृपा करेंगे, तो तुम्हारा यह पापस्वरूप लोहकच्छ झड़ेगा। किन्तु मैं यह कैसे जानूँ कि वही साहिब आप हैं। मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। मेरा दिल असमंजस में है कि आपको स्वीकार करूँ या नहीं ? आप वास्तव में वही हो या नहीं ?

इतनी वार्ता श्रवण करके श्री देवजी ने शब्द सुनाया-दो मन दो दिल अर्थात् एकाग्रवृत्ति का अभाव होना। एक निश्चय नहीं कर पाना, सर्वत्र अविश्वास अश्रद्धा का होना। इस प्रकार से चलते हुए तो तुम्हारा कार्य बनेगा नहीं। यह लोहा झड़ना तो बहुत बड़ी बात है। द्विविधा वृत्ति से तो तुम कंथा गूदड़ी भी नहीं सी सकते, और न ही पंथ पर चल सकते। द्विविधा वृत्ति से तो न कथा कह सकते हैं और न ही सुन सकते। एकाग्रता के अभाव में तो मार्ग भी भूल जाओगे और एकता बिना तो न ही गुरु हो सकता और न ही चेला ही हो सकता। दो मन दोय दिल से तो बेला-इस समय में नहीं बंध सकता और वृत्ति निरोध किये बिना तो राम को ही भूल जायेगा। दो मन से तो सुई में धागा भी नहीं पिरोया जायेगा तथा एकता बिना तो युद्ध भी नहीं कर सकते और न ही भाग ही सकते। किसी भी भेद को भी नहीं जाना जा सकता। और न ही दोय मन दोय दिल प्रतिज्ञा की जा सकती है और न ही प्रेमभाव ही किया जा सकता। अविश्वास से तो खेल भी नहीं खेला जा सकता और न ही स्वर्ग की प्राप्ति ही की जा सकती है। हे लोहापांगल! रावल जोगी जहाँ-जहाँ भी भटकेंगे, किन्तु बिना स्मरण किये कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकोगे। किस हेतु अनेक देश देशान्तरों में भटकते हो, जब तक स्वकीय मनहठ का परित्याग नहीं करोगे तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। आप लोगों ने तो न तो पूर्णरूपेण योग ही किया और न ही भोग ही भोगा और न ही परमात्मा का स्मरण ही किया। ज्ञान द्वारा परमात्मा की पहचान भी नहीं की। आप लोग तो कणविहीन थोथे भूसे (चांचड़) को पीस रहे हो, उसमें कण कहाँ है ? आपकी भूख

कैसे मिटेगी ? बिना पगरखी पहने जंगल में भटकने से आप लोगों के पैर ही तो दु:ख पा रहे हैं।

हे अवधु! तुमने लोहे का कच्छ पहन रखा है। यह सिवाय दु:ख के तुम्हे क्या देगा ? पारब्रह्म परमात्मा की तो सुधि मिली नहीं, तो केवल नंगे हो जाने से योगी नहीं बन सकते।

तम आदि नाथ जोगी तो तमारे मुदरा कहाँ-जाम्भाजी श्रीवायक कहे-

शब्द-46

ओ३म् जिहिं जोगी के मनही मुद्रा, तनही कंथा पिंडे अगन थंभायो।
जिहि जोगी की सेवा कीजै, तूठो भवजल पार लंघावे।
नाथ कहावे मर मर जावै, सेक्यूं नाथ कहावे।
नान्ही मोटी जीवा जूंणी, निरजत सिरजत फिंर फिंर पूठा आवै।
हम ही रावल हम ही जोगी, हम राजा के रायो।
जो ज्यूं आवै सो त्यूं थरपा, सांचा सूं सत भायों।
पाप न छिपां पुण्य न हारा,करां न करतब लावां बारूं।
जीव तड़े को रिजक न मेटूं, मूवां परहथ सारूं।।
दोरै भिस्त बिचालै ऊभा, मिलिया काम सवारूं।

लोहापांगल ने कहा-हे जम्भेश्वर! यदि आप आदिनाथ योगी हैं, तो कानों में मुद्रा क्यों नहीं है ? जाम्भोजी ने श्रीवायक कहा-हे लोहापांगल! जिस योगी के मन ही मुद्रा है, शरीर ही गुदड़ी है, जिसने शरीर में ही अग्नि को स्थिर किया है। बाह्य दिखावा धूणा धुकाना, मुद्रा पहनना एवं गुदड़ी ओढ़ना आदि को महत्व नहीं दिया है। केवल आन्तरिक मुद्रा कंथा एवं अग्नि जागृत किया है वही योगी वास्तव में योगी है।

ऐसे महान् योगी की सेवा कीजिये। वह योगी संतुष्ट हो जायेगा, तो संसार सागर से पार उतार देगा। जो जोगी अपने को नाथ कहता है, फिर भी बार-बार जन्म लेता है और मरता है, फिर वह योगी कैसा ? अपने को नाथ क्यों कहता है ? योगी होकर भी छोटी-मोटी जीवां योनियों में भटकता है, बार-बार जन्म लेकर पुन: मरता है, वह नाथ योगी कैसा ?

हे लोहापांगल! मैं ही रावल हूँ। मैं ही योगी हूँ। मैं ही राजाओं का भी सम्राट हूँ। जो जिस भाव से मेरे पास आता है, उसी भाव से मैं उनकी देखभाल करता हूँ। जो सत्यनिष्ठ हैं, वह तो मुझे बहुत ही अच्छे लगते हैं। न तो मैं किसी के पाप को छिपाता हूँ और न हीं पुण्य का हरण करता हूँ। न ही मैं किसी को कर्म करनेके लिए मजबूर ही करता हूँ और न ही किसी को जन्म मरण के चक्कर में डालता हूँ।

सभी जीव अपने अपने कर्म करने में परम स्वतंत्र हैं। जब तक जियेगा तब तक तो अपने कर्मों को भोगेगा और मृत्यु हो जाने पर दूसरे के हाथ में चला जायेगा। अपने वश में कुछ भी नहीं होगा।

हे आयस! इस समय आप लोग दोरे नरक एवं भिस्त-स्वर्ग के बीच में खड़े हुए हैं। मिल जाओगे तो कार्य बन जायेगा। अन्यथा दोनों तरफ ही जा सकते हो।

लोहा पांगल कहे- जोग साझया है बजर काछ बणाई है- जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-47

ओ३म् काया कंथा मन जो गूंटो, सीगी सास उसासूं।
मन मृग राखले कर कृषांणी, यूं म्हे भया उदासूं।
हम हीं जोगी हमहीं जती, हमहीं सती हमही राखबा चीतूं।
पंच पटण नव थानक साधले, आद नाथ के भक्तूं।

लोहापांगल ने कहा-हमने योग साधना की है। काछ बज्र की बनाई है। लोह कच्छ पहने से काछ वज्र की भांति हो चुकी है। इसलिए हम सच्चे योगी हैं। श्रीदेवजी ने शब्द कहा-

यह तुम्हारा शरीर ही कंथा है, मन ही गूंटो गले में पहनने वाला मनका है। अन्य की आवश्यकता ही नहीं है। इस शरीर रूपी गुदड़ी को संभालकर रखें और मन की चंचलता को शांत करें यही गूंटा है। तुम्हारा श्वास प्रच्छवास ही बजाने वाले सीगी है। सीगी बजाने की आवश्यकता ही नहीं होगी क्योंकि श्वास आते जाते स्वत: ही बज रहे हैं। मनरूपी मृग को स्थिर करके खेती रूपी साधना करे। इससे उदासीनता आयेगी तो संसार की मोहमाया से छूटैगी।

हे आयस! मैं ही योगी हूँ। मैं ही सती हूँ। मैं ही यती हूँ। मैं ही चित्त को स्थिर करने वाला सिद्ध योगी हूँ। हे आदिनाथ के भक्त! पंच प्राणों का प्राणायाम द्वारा स्व वशीभूत कर, ये प्राण ही पटश्रेष्ठ है। नौ दरवाजे ही नौ थानक है। इन दरवाजों को भी बंद करके साधना कर, तभी तुम भक्त कहलाने की योग्यता धारण कर सकोगे।

लोहापांगल परच पगे लागो। के के जोगी और पणि परच्या। जटा उतराई विसनोई हुवा। जोगी कहे जाम्भोजी म्हे थारा चेला हुआ। सरणि आया सुध करणी फुरमावो। जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द - 53

ओ३म् गुरु हीरा विणजे लेहम लेहूँ, गुरु ने दोष न देणा।
पवणा पाणी जमी मेहूँ, भार अठारे परबत रेहूँ।
सूरज जोति परे परे रे, एति गुरु के शरणे।
केती पबली अरु जल बिम्बा,नवसे नदी निवासी नाला सायर एती जरणां।
क्रोड़ निनाणवे राजा भोगी, गुरु के आखर कारण जोगी।
माया राणी राज तजीलो, गुरु भेटीलो जोग सझीलो पिंडा देख न झुरणा।
कर कृषाणी बेफायत संठो, जो जो जीव पि.डै नीसरणा।
आदै पहलू घड़ी अढाई, स्वर्गे पहुंता हिरणी हिरणा।
सुरां पुना तेतीसां मेलो, जे जीवन्ता मरणों।
के के जीव कुजीव, कुधात कलोतर बांणी।
बादीलो हंकारीलो, वैभार घणा ले मरणो।
मिनखां रे तैं सूतैं सोयो, खूलै खोयो, जड़ पाहन संसार बिगोयो।

निरफल खोड़ भिरांति भूला, आस किसी जा मरणो।
बेसाही अंध पड़यो गल Qध, लियो गल बंध गुरु बरजातै।
हेलै श्याम सुन्दर के टाटै, पारस दुस्तर तरणो।
निश्चे छेह पड़ेलो पालो, गोवलवास जु करणों।
गोवलवास कमाय ले जिवड़ा, सो सुरगापुर लgणा।।

लोहा पांगल ने अपनी अनेक शंकाओं का समाधान शब्दों द्वारा किया और अन्त में गुरुदेव की सिद्धि से परिचित हुआ और अहंकार का परित्याग करके चरणों में गिर पड़ा। तन-मन-धन से समर्पित हुआ। गर्व गल जाने के साथ ही लोहापांगल का लोहकच्छ भी पिघल गया और शरीर से छूट गया।

अहंकार ही तो लौह कच्छ था। वही तो गिर गया। तब लोहे की क्या औकात? जो सजीव शरीर से चिपका रह सके। वह लोहापांगल तो लोहा ही था, जिसे श्रीदेवजी ने लोहा से रूपा (चांदी) बना दिया। उसका लोहा नाम बदलकर रूपा नाम रखा। पैरों से पांगला-लंगड़ा था। इसलिए लोहे का कच्छ पहन रखा था, ताकि पैरों से ठीक प्रकार से चल सके।

सतगुरु की अपार कृपा हुई। वह चलने योग्य हो गया। तो अब उसे लोहे के कच्छ की आवश्यकता ही नहीं रही थी। हम आपकी शरण में हैं। जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-हे शिष्यो! गुरु तो सदा ही हीरों का व्यापार करता है। जिसे लेना है, वह अवश्य ही प्राप्त करे। बहती गंगा में जिसे स्नान करना है, वह करे। अन्यथा गुरु को दोष नहीं देना।

पवन,पाणी,धरती,आकाश,वर्षा,अठारह पर्बत, सूर्य की ज्योति जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ से भी परे ये सभी गुरु की शरण में हैं। कुछ छोटे-बड़े तालाब, जल, समुद्र, नदियाँ, नये-नये प्रकार के पानी के जलस्रोत ये सभी समुद्र में ही समाहित हो जाते हैँ। उसी प्रकार से ही सम्पूर्ण ज्ञान या जीव, सभी गुरु में समाहित हो जाते हैँ। वह हिरण्यगर्भ नाम से गुरु ही विख्यात है।

निन्यानवे करोड़ राजा हुए हैँ। ये सभी विशेष राजा थे। इन्होंने राजसुख प्राप्त किया था। उन्होंने माया राणी राज आदि सभी कुछ त्याग करके गुरु से भेंट की थी और तपस्या द्वारा शरीर को सुखा डाला था। उन्होंने साधना में रत रहके, अपने प्रियजनों की भी परवाह नहीं की थी। वे लोग मोह-माया से पार उतर गये थे।

साधना रूपी कृषि कार्य करे। लाभ तो तभी होगा, जब तक फल आये। तब तक करता रहे। इस जीवन में लाभ नहीं दिखता, तो भी आगामी जन्म में फल अवश्य ही मिलेगा। अढ़ाई घड़ी में हिरणी-हिरणा तथा उनके बच्चे छः प्राणी तथा एक अहेड़ी-शिकारी भी स्वर्ग में पहुँच गये थे। जो अब तक भी आकाश में तारों के रूप में दिखाई देते हैं। क्योंकि उन्होंने धर्म पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे। इनके विपरीत कई कई जीव कुजीव हैं। कुद्यात, अपशब्द बोलने वाले, झगड़ालू, विवादी, अहंकारी, ऐसे लोग इस संसार से बहुत बड़ा भार लेकर जायेंगे। संसार सागर में डूब जायेंगे।

हे मानव, तू मनुष्य है। सोये हुए ही जीवन व्यतीत कर दिया। यह तुमने खुले रूप से जीवन को खो दिया। जड़-पत्थर आदि पर ही अपने को समर्पित कर दिया। जिस वन में फल नहीं हैं, उसमें ढूँढ़ने से भी क्या मिलेगा? भ्रान्ति में भटकता रहा निष्फल वन में। शरीर छोड़कर किस आशा-विश्वास से आगे जायेगा।

हे अन्ध! तेरे गले में मोह-ममता रूपी फांसी पड़ी हुई है। इससे छूट भी नहीं सकता क्योंकि वह फांसी तुम्हें सोने की दिखती है। गुरु ने तुझे बार बार रोका था फिर भी फंसता ही चला गया। श्यामसुन्दर भगवान्

तुझे हेला दे रहे हैं कभी तुमने सुना भी नहीं। जिस प्रकार से थोड़े दिनों के लिए घरबार छोड़कर गोवलवास को जाते हैं। उसी प्रकार से यह संसार भी तो गोवलवास की तरह ही है। यहाँ पर भी सदा रहने का जुगाड़ न बना। एक दिन जबरदस्ती छुड़ाया जायेगा। इससे तो अच्छा है कि समय रहते, पहले ही छोड़ दें।

लोह पांगल कहे देवजी। आवागवण चुके जक्यो बात बतावां। श्रीदेवजी श्रीवायक कहे-

शब्द-54

ओ३म् अरण बिंबाणे रे रिव भांणै, देव दिंवाणे, विष्णु पुराणे।
बिंCk बाणे सूर उगाणो, विष्णु बिवाणे, कृष्ण पुराणे।
कांय झंख्यो तैं आल पिराणी, सुर नर तणी सबेरूं।
इंडो फूटो बेला बरती, ताछै हुई बेर अबेरूं।
मेरे परै सो जोयण बिंबा लोयण, पुरुष भलो निज बांणी।
बांकी म्हारी एका जोती, मनसा सास बिंवाणी।
को अचारी अचारे लेणा, संजमे शीले सहज पतीना।
तिहिं अचारी नै चीन्हत कोण, जाकी सहजै चूके आवागवण।

लोहापांगल कहने लगा- हे देवजी! जिस प्रकार से जन्म-मरण दु:ख मिटे। ऐसा उपाय बतलाओ? श्रीदेवजी ने शब्द कहा- हे रूपा! मैं सतगुरु के रूप में तुम्हारे सामने बैठा हुआ हूँ। मैं तुम्हें आचार-विचार, संयम, शील सिखाने हेतु गुरु के रूप में आया हूँ। वैसे तो मैं निराकार रूप में ही रहता हूँ। वह पुरुष परमात्मा के नाम से कहा जाता है। वही पुरुष परमात्मा इस समय वाणी के रूप में अवतरित हुआ हूँ। उस परमात्मा और मेरी एक ही ज्योति है। मनसा एवं श्वास प्रच्छ्वास एक ही चल रही है।

उस आचारी परमात्मा को कोई आचरवान ही प्राप्त कर सकता है। जिसने आचारवान पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लिया, वही जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है। हे रूपा! उस परमात्मा की सत्ता से ही सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकृति की हलन-चलन हो रही है।

उस परमात्मा की इच्छा से ही प्रात:काल की अरुणवेला आती है, जिसमें सूर्य किरणों द्वारा पाँव पसारता है अर्थात् उदय होता है। यह सूर्य भी देवताओं का दीवान है। यह विष्णु रूप अति प्राचीन है। सूर्य देवता उदय होता है तो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। यह सूर्य ही विष्णु का विमान है। इसी पर सवार होकर भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि का अवलोकन करते हैं।

यह सूर्य कृष्ण पुराण है। कृष्ण की कथा भी यहीं से उदय होती है। हे रूपा! यदि आप अपना भला चाहते हैं, तो सूर्योदय की घटना के प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हुए आल-बाल झूठ क्यों बोलता है? देवता की तरफ से होने वाला सवेरा एवं संध्या वेला को व्यर्थ में न जानें दें। भगवान् विष्णु का जप करें।

दिन-रात करते हुए समय व्यतीत होता जा रहा है। समय कीमती है। इसके महत्व को समझते हुए श्वासों ही श्वास भगवान् विष्णु का भजन एवं सेवा कार्य करें। तभी तेरा पाप झड़ेगा और मुक्ति को प्राप्त हो सकेगा।

लोहा पांगल कहे देवजी! जामण मरण रहित हवै जका करणी बतायों। देवजी कहे-साधां की सेवा करि, मारग माँ जमातियाँ ने पाणी पाय, लोहा पांगल को नाम रूपो दीन्हो। एक सम चर मां पाणी पावणै न गयो। लोगे रूपै मां फोड़ा घात्या। रूपो देवजी आगे आय दलगीर हुवो। कलपण लागो। नैणे नीर प्रवाह आयो। रूपो

पछताणो तिह समये, जाम्भोजी श्रीवायक कहे–

शब्द–55

ओ३म् रणघटिये के खोज फिरन्ता, सुण सेवन्ता खोज हस्ती को पायो।
लूंकड़िये को खोज फिरन्ता, सुण सेवन्ता खोज सुरह को पायो।
मोथड़िये के गूढ़ खणंता सुण सेवन्ता, लाधो थान सुथानो।
रांघड़िये को घाट घड़न्ता सुण सेवन्ता, कंचन सोनो डायों।
हस्ती चड़ंता गेवर गुड़न्ता, सुणहीं सुणहां भूंकत कायों।

लोहा पांगल कहने लगा–हे देवजी! जन्म मरण से कैसे छूटे? यह कर्त्तव्य कर्म बतलाओ। देवजी ने कहा–हे रूपा! साधु, सज्जन पुरुषों की सेवा करे। मार्ग में आने–जाने वाले जमाती लोगों को जल पिला। जल सेवा से बढ़कर और कोई सेवा नहीं है। रूपाराम को श्री देवजी ने धरणोक गाँव में जल सेवा करने हेतु भेजा। जाम्भोलाव एवं सम्भराथल के बीच यह गाँव पड़ता है।

एक समय रूपा जल पिला रहा था। कुछ गाँव के लोग घास काटते हुए रूपे के पास एकत्रित हो गये। रूपे ने सभी को कंधे पर कावड़ रखकर जल लाकर पिलाया। बड़ी सेवा रूपी तपस्या कर रहा था। सेवाकार्य में नि:स्वार्थ भाव से लगा हुआ था। एकत्रित गाँव के लोग रूपे से मखौल–हंसी करने लगे।

रूपे से कहने लगे–तुम तो पहले मंहत थे। भूत–प्रेत जगाया करते थे। बड़ा ठाठ था। सभी लोग तुम्हारे डर के मारे काँपते थे। अब तो तुम जाम्भोजी के पास आकर घाटे में हो गये। अब यह तुम्हारी महंताई सिद्धाई कहाँ गयी। दिनभर कंधे पर कावड़ द्वारा पानी ढ़ोकर पिला रहे हो। अभी भी तुम्हें पिछली करामात शायद याद होगी। हमारा कहना मानो तो अब भी छोड़ दो। ये जाम्भोजी के चेले पने को और पुन: महंत ही बन जाओ। यही ठीक रहेगा।

रूपे ने उन लोगों को समझाया कि आप लोग मुझ से हंसी ना करो, अन्यथा पछतावोगे। लोगों ने कहा–अब तुम हमारा क्या कर लोगे? अब तो जाम्भोजी के चक्कर में ही फंस गये। निकल ही नहीं सकते। वो तुम्हारी तांत्रिक विद्या तो जाम्भोजी ने हरण कर ली है। रूपे के पूर्व संस्कार अब तक निवृत्त नहीं हुए थे। उन लोगों की वार्ता सुनकर रूपे से पुन: लोहा हो गया और क्रोध रूपी अग्नि फिर से प्रज्वलित हो गयी और रूपे ने उन लोगों के कपड़े जला दिये।

दो–चार दिन बाद ही अमावस का पर्व आया। रूपाराम व अन्य गाँव के लोग भी सम्भराथल पर पहुँचे। रूपा देवजी के सामने जाकर रोने लगा। आँखों में आँसू बहाने लगा–देवजी ने कहा–रूपा क्या बात है? रोते क्यों हो? क्या बताऊँ गुरुदेव! जिस गाँव में आपने मुझे भेजा है। उन लोगों ने मुझे बहुत ही दु:खित किया है। मैं इन लोगों के बीच नहीं रह सकता।

उसी समय गाँववासियों ने भी आकर देवजी के सामने शिकायत की कि महाराज! यह कैसा सेवक आपने भेजा है? इसने हमारे कपड़े जला दिये। श्रीदेवजी ने प्रथम तो रूपे को शब्द द्वारा समझाते हुए कहा–

हे रूपा! इससे पूर्व तू खरगोश की खोज में भटका करता था। उसी की ही सेवा करता था। मैंने तुम्हें खरगोश की जगह हाथी दे दिया है। पूर्व की स्थिति और अब में काफी अन्तर आया है। इसे तूं समझता क्यों नहीं? लोमड़ी की खोज में घूमता था उसी की ही सेवा करता था। मैंने तुम्हें

सुरभि गऊ दे दी है, फिर भी तू अपने को दीन-हीन क्यों समझता है ?

हे रूपा! पहले तू मोथ खोदा करता था, तेरा जीवन हीन था। अब मैं तुम्हें आम का मधुर फल देता हूँ। व्यर्थ के वाद-विवाद व कुतर्क में ही जीवन व्यतीत करता था। अब मैंने तुझे सेवा का कार्य सौंप दिया है। रांग घड़ता था मैंने तुझे सोना दे दिया। पहले तो पाखण्ड में ही सिद्धि समझता था, अब मैंने तुझे परम तत्त्व की प्राप्ति का साधन दे दिया है। अब तुझे अपने को हीन नहीं समझना चाहिये।

ये गाँव के लोग तुझे कुछ भी कहे तू इनकी परवाह न कर। मैंने तुझे सवारी के लिए हाथी दे दिया है अब तू हाथी पर सवार है। हाथी पर सवार को यदि कुत्ते भौंकते हैं, तो भौंकने दे। तेरा क्या बिगड़ेगा? रूपे ने देवजी भंडारो करि दीन्हौ, खीदासर के गाँव। भंडारे की सौंपना दीन्ही। जीवां ता जुगती आगै मुगति।

रूपराम को देवजी ने भण्डारे का कार्य सौंपा। सींवर गौत्र रखा। खींदासर गाँव में बसाया। जियेंगे तब तक युक्ति और अंत में मुक्ति का वरदान दिया। सिंवर गोत्र के बिश्नोई रूपे की परम्परा से हैं।

पाँचवां अध्याय

सुपात्र एवं कुपात्र विचार

एक वीसनोई न कुपात्र कह्यो जीमाया दाव जीह प धरम थ। कुपात्र ने जीमायो। जाम्भेजी कह्यो बुरो किया। जमाति कहे देवजी, सुपात्र कुपात्र को विचार कहो। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-56

ओ३म् कुपात्र कूं दान जु दीयो, tk.k रैंण अंधेरी चोर जु लीयो।
चोर जु लेकर भाखर चढ़ियो, कह जिवड़ा तैं कैनें दीयो।
दान सुपाते बीज सुखेते, अमृत फूल फलीजैं।
काया कसौटी मन जो गूंटो, जरणा ढाकण दीजै।
थोड़े मांहि थोड़ैरो दीजै, होते नाह न कीजै।
जोय जोय नाम विष्णु के बीजै, अनंत गुणा लिख लीजै।

एक बिश्नोई ने देवजी के पास आकर पूछा-हे देवजी! भोजन करवाना धर्म ही है। वह चाहे कुपात्र हो या सुपात्र, ऐसा मेरा सुनना है। इसलिए मैंने तो कुपात्र या सुपात्र का विचार किये बिना भोजन कराया है? जाम्भोजी ने कहा-तुमने अच्छा नहीं किया। पास में ही उपस्थित जमाती लोग कहने लगे-हे देव! आप हमें सुपात्र एवं कुपात्र के बारे में विचार बतलाओ। तब श्रीदेवजी ने शब्द उच्चारण किया-

हे लोगो! यदि आप जानते हुए भी कि यह व्यक्ति कुपात्र अर्थात् मांस मदिरा नशे आदि का सेवन करता है तथा अहंकारी, कपटी, ठग, कलुषित मन बुद्धि वाला, असंतोषी है तो आपका दिया हुआ दान तो चोर ही ले गया। चोर आपके धन को लेकर पहाड़ पर चढ़ गया है। जैसे अंधेरी रात में चोर ले जाता है।

इस जीव को पूछा जायेगा कि दान किसको दिया। यदि दान देना है तो सुपात्र को दे। जिस प्रकार से

उत्तम खेती में समय पर बोया हुआ बीज फूलता-फलता है। उसी प्रकार से आपका दिया हुआ सुपात्र को दान फूलता फलता है, वह अमृत हो जाता है।

जिस सज्जन पुरुष ने अपनी काया तो तपस्या रूपी कसौटी पर लगा दी हो। उस कसौटी पारख में काया खरी उतरी हो तथा मन को एकाग्र करके जो ईश्वर के ध्यान में मग्न होता हो, अजर जो सदा ही जलाने वाला, काम क्रोध, लोभ, मोह,राग,द्वेष आदि को जला दिया हो, उनकी राख पर भी संतोष, शांति, दया, करुणा रूपी ढ़क्कन लगा दिया हो, वही सुपात्र है। ऐसे सुपात्र को दिया हुआ दान सफल होता है।

सुपात्र को देने के लिए आपके पास यदि थोड़ा है तो थोड़े में से थोड़ा ही दीजिये। पास में होते हुए सुपात्र के लिए ना न कीजिये। जिस प्रकार से विष्णु का नाम लिया हुआ अनन्त गुणा फलदायक होता है। सभी पापों का नाश कर देता है। उसी प्रकार से सुपात्र को दिया हुआ दान भी अनन्तगुणा फलदायक होकर पापों की राशि को जलाकर भष्म कर देगा।

सेंसेजी का अभिमान खण्डन

वील्हो उवाचः- हे गुरुदेव! आपने मुझे अब तक जाम्भोजी के जीवन के बारे में अनेकानेक चरित्रों से अवगत करवाया। उनतीस नियमों का ही आपने अनेक तरीको से समझाया है। जाम्भोजी के मुख्य निवास स्थल सम्भराथल धाम की चर्चा मैंने श्रवण की है, जहाँ पर अनेक लोग आये थे। उन्होंने श्री देवजी का दर्शन करके जीवन को सफल बनाया था। जाम्भोजी द्वारा धरोहर के रूप में रखी हुई सफेद पोशाक चोला, चादर, माला आपने मुझे दी है और मुझे आपने शिष्य बनाया है। मैं तो आपकी महान् कृपा से कृत कृत्य हो गया हूँ।

मैंने देखा है कि जाम्भोजी के शरीर का चोला, चीपी और टोपी जाँगलू गाँव में मेहोजी थापन के घर पर रखी हैं। ये तीनों वस्तुएँ जाँगलू कैसे चली गयी? तथा जाम्भोजी की चीपी (भिक्षा-पात्र) यह खण्डित देख रहा हूँ। यह पात्र खण्डित किसने और क्यों किया? यदि इसमें कोई रहस्यमय बात हो तो बताने की कृपा करें। वैसे तो भगवान् का जीवन चरित्र रहस्य से परिपूर्ण है। जितना मैं सुनता जाता हूँ, उतना ही आनन्द विभोर होता जाता हूँ क्योंकि भगवान् की लीला बड़ी ही विचित्र है।

हे गुरुदेव! जो मैंने जानने की इच्छा की है और जो नहीं भी पूछ पाया हूँ, मेरे लिए कथन करने योग्य है, तो अवश्य ही कथन कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ। इस प्रकार से जिज्ञासा प्रकट करने पर श्री **नाथोजी कहने लगे**- हे वील्ह! अभी थोड़े ही समय पूर्व की बात है। रणधीरजी बाबल जाम्भोजी के परम शिष्य समाधि मन्दिर बना रहे थे। अभी मन्दिर पूर्ण भी नहीं हुआ कि रणधीरजी की किसी दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। सेखोजी थापन का मंझला बेटा मेहोजी ये तीन वस्तुएँ लेकर जाँगलू चले गये। एक टोपी तो अपने बड़े भाई चोखा के कहने पर वापिस दे दी, किन्तु दो वस्तुएँ चीपी चोला जाँगलू में ही रखे हुए हैं जो दर्शनीय हैं। इन बातों की विस्तार से चर्चा समय आने पर करूँगा। जो चिपी खण्डित रखी हुई है यह तो सेंसोजी कस्वां नाथूसर निवासी के घर पर खण्डित हो गयी थी। वहाँ पर जाम्भोजी भिक्षा हेतु गये थे।

वील्होजी उवाचः- हे गुरुदेव! आपने पूर्व में कहा था कि जाम्भोजी तो भिक्षा भोजन नहीं करते थे, तब वो सेंसे के घर पर भिक्षा लेने के लिए क्यों गये थे? तथा चीपी खण्डन होने की कथा विस्तार से बतलाने की कृपा करें।

नाथोजी उवाचः- हे शिष्य! यह बात तो तुमने सत्य कही कि जाम्भोजी भोजन नहीं जीमते थे। किन्तु अहंकारी भक्त सैंसे का गर्व खण्डित करने के लिए जाम्भोजी का जाना हुआ था। इस वार्ता को विस्तार से मैं बतलाता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो-नाथोजी कहने लगे कि मैं इस घटना का प्रत्यक्ष द्रष्टा हूँ-

एक समय सम्भराथल पर विराजमान सतगुरु देव ने नाथूसर गाँव में झींझाला धोरा पर जाने की इच्छा की। उसी समय ही साथरियों (भक्तों) ने भी साथ ही चलने की प्रार्थना की। श्रीदेवजी ने सभी को साथ में चलने की आज्ञा प्रदान की। उसी समय ही सभी ने ही अपने ऊँट और घोड़ा आदि जोते और नाथूसर की तरफ चल पड़े। सभी संत-भक्तजन कीर्तन करते हुए देवजी के साथ ही रवाना हुए और उनकी शोभा अतिसुन्दर थी। स्वयं विष्णु ही देवताओं के साथ कहीं मृत्युलोक में किसी को निहाल करने ही जा रहे थे। सफेद रंग के बैल हंसों के समान अपनी उज्ज्वलता को प्रदर्शित कर रहे थे। रंग-बिरंगे ऊँट घोड़ा एकत्रित चलता हुआ मेघ वर्ण, एवं गर्जन करते हुए वर्षा की शोभा को भी शोभित कर रहे थे। राग ध्वनि, साखी, शब्दों की, इन्द्र राज्य में गन्धर्वों के गान को भी मन्द कर रहे थे। बीच के गाँवों को सुशोभित करते हुए आज स्वयं हरिजी न जाने क्यों झींझाले धोरे पर जंगल में मंगल करने जा रहे थे। इस बात का तो कुछ पता नहीं था। जय जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। आज क्या हो रहा है ? शांत सुरम्य वातावरण में आज सुगन्धी क्यों आ रही है ? नासिका अपने विषय को ग्रहण कर रही थी। आँखें रूप देखने को तरस रही थी। यही कारण था कि गाँवों के लोग एकत्रित होकर अपनी आँखों से रूप को देखकर अपने जीवन को सफल कर रहे थे।

जब श्रीदेवजी अपनी भक्तमण्डली सहित झींझाले धोरे पर आ गये थे। चारों तरफ गाँवों के लोगों ने सुना तो दर्शनार्थी आसपास के गाँवों के लोग एकत्रित होकर आने लगे। जांति-पांति के भेद, भाव को छोड़कर अपूर्व श्रद्धा भाव से एवं विश्वास से आ रहे थे। पास में आते चरणों को प्रणाम करते, कुछ लोग अत्यधिक भावुक हो जाते। अपने सुख दुःख की बात त्रिकम जी से करते। ओ३म् विष्णु की ध्वनि से वह धोरा की धरती गुंजायमान हो रही थी।

इसी प्रकार से नाथूसर गाँव वासी भी अपने सिरदार सेंसोजी भक्त के साथ नृत्य करते हुए हर्ष खुशी के साथ झींझाले धोरे पर पहुँचे। अपनी-अपनी अभिलाषा लेकर देवजी के पास अपार जन समूह आ रहा था। सैंसे ने सर्वप्रथम देवजी के पास आकर पूछा-हे देव! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो हम लोग जमात के सहित आपके चरणों में प्रणाम करें तो हम लोग आपके प्रताप से पार पहुँच जायें।

देवजी ने कहा-हे सेंसा! अवश्य ही आप लोग तिरने की योग्यता रखते हैं। किन्तु अब तक तैरना जानते नहीं हैं। मैं तुम्हें तैरना सीखाने के लिए ही तो आया हूँ। नर नारी अपनी भेंट श्रीदेवजी के चरणों में रख रहे थे। कहाँ-कहाँ किस किस वन में प्रह्लाद पंथी जीव बिखरे हुए हैं, उन्हें सचेत करना होगा। इसलिए उस रात्रि में निवास श्रीदेवजी ने झींझाले पर ही किया।

गाँवो की आगन्तुक जमात ने वापिस अपने घरों में जाने की आज्ञा मानी। नाथूसर के सैंसे ने भी आगे बढ़कर हाथ जोड़े और कहने लगा-आपने बड़ी कृपा की जो हमारे जंगल में पधारे हैं। हे गुरुदेव! आप अपनी मण्डली सहित अन्नपान करें और हम लोग वापिस अपने घर को जायें। आपके पास पूरे दिन सत्संग में युक्ति-मुक्ति का मार्ग सीखा। अब रात्रि होने वाली है, हमें घर जाने की आज्ञा दीजिये।

हे गुरुदेव! आपने सम्पूर्ण जमात को कुछ न कुछ सीख अवश्य ही दी है, मेरे लिए कुछ भी नहीं कहा। मैं क्या इस योग्य नहीं हूँ जो आपके वचनों का पालन न कर सकूं। श्रीदेवजी ने सैंसे भक्त का भाव देखकर कहा- हे सेंसा!

भाव भल सूं दीजौ भीख, साम्य कह संसा आ सीख।

भाव-भक्ति से भूखे को भोजन देना यही तुम्हारे लिये शिक्षा है। सैंसे के मन में यह सीख जंची नहीं। सैंसा कुछ सोचने लग गया। न तो कुछ हाँ कह सका और न ही कुछ ना ही कह सका। साथरियों ने कहा- हे सैंसा! जैसा सतगुरु कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं। उनकी बात को स्वीकार करके पालन करे।

श्रीदेवजी ने साथरियों से कहा- सैंसे ने मेरी बात सुनी तो अवश्य ही है, किन्तु यह इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा है। यह भक्त तो अच्छा है, किन्तु अहंकारी भक्त है। सैंसा कहने लगा-हे देव! मैंने तो दान देते हुए सम्पूर्ण पापों का नाश कर डाला है। मैं तो भाई बन्धु, न्यात-जमात को एकत्रित करके इन्हें भोजन करवाता हूँ। अब इन्हें और भी जिमाऊँगा।

हे देव! मैं तो घर पर आये हुए अतिथि, साधु-संतों को अच्छी प्रकार से भिक्षा देता हूँ। घर पर आये हुए अतिथि को ना तो मैं कभी कहता ही नहीं हूँ। आप भी मेरे घर को देखें। मेरे घर को सारा संसार जानता है। केवल आप ही शायद नहीं जानते। इसलिए तो आपने ऐसी बात कही है।

श्रीदेवजी ने सैंसे भक्त तथा उनकी मण्डली को जाने की आज्ञा प्रदान की और सैंसे के चले जाने पर साथरियों से कहा-हे भक्तो! सैंसे का भण्डारा, अतिथि सेवा अवश्य ही देखूँगा। सैंसा कहता था कि आपने अब तक देखा नहीं है।

संसार के लोगों ने तो देखा है। स्वयंकर्ता अलख पुरुष ने अन्य ही रूप धारण कर लिया। दूसरा ही रूप, दूसरी ही बोली, दूसरी ही वेशभूषा। **सरसा सीस बधार्‌या केशा।** सिर के बाल लम्बे बढ़ा लिये, भगवान् की भक्ति बिना कौन पहचान सकता है?

हरि ने पतरी (चीपी) अपने हाथ में ले ली। अन्य किसी भक्त संत को साथ में नहीं लिया। अकेले ही सैंसे के घर जाकर अलख जगाई। सम्पूर्ण संसार जिनके आगे भिक्षुक बन करके कुछ न कुछ माँगता है। वह जगजीवन-मालिक आज सैंसे के घर भिक्षा के लिए पहुँच गये। भगवान् की अहैतु की कृपा होती है तभी भगवान् उसके अज्ञान जनित गर्व का भंजन करते हैं।

सैंसा तो घर पहुँचा ही था। संध्या वेला थी। गुरु के नियम का पालन करते हुए संध्या करने को बैठा ही था। जगत स्वामी ने सैंसे के घर पर अलख जगाते हुए कहा- **सत विष्णु की बाड़ी।** हे देवी! विष्णु के नाम से भिक्षा दो। आपकी बाड़ी हरी-भरी रहेगी। सैंसा भक्त संध्या कर रहा था। अन्दर से आवाज सुनी और कहने लगा-

इस संध्या बेला में मैं यह क्या सुन रहा हूँ। होगा कोई कंगाल पुरुष। फलसा-किवाड़ बंद कर दो। सैंसे भक्त ने बात तो बड़ी विचार के कही थी, क्योंकि यह बेला संध्या की थी। इस बेला में तो भगवान् के दर्शन ही होना चाहिये थे, किन्तु सेंसे ने तो अकस्मात् कुपात्र के दर्शन कर लिये। सैंसे की आज्ञा को शिरोधार्य करके सैंसे की धर्मपत्नी दौड़कर सामने आयी कि यह कहीं अतिथि आंगन में न आ जाये? पहले ही इसे रोका जाये।

सेंसे की नारी कहने लगी-मैंने तुझे देख लिया है तू हमारे घर में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। बाहर चलो। श्रीदेवजी ने सैंसे की धर्मपत्नी की इच्छा समझ ली कि यह कुछ भी नहीं देगी किन्तु इससे बिना कुछ प्राप्त किये वापिस जाना भी तो नहीं है। इसलिए खिड़की को पकड़ लिया। खिड़की छूट गयी तो फिर यहाँ कुछ भी नहीं मिलेगा यहाँ आना व्यर्थ ही हो जायेगा।

गृहलक्ष्मी कहने लगी-हे योगी! खिड़की पकड़े हुए क्यों खड़ा है? जिस प्रकार कर्जा लेने वाला खड़ा

रहता है, उसी प्रकार से खड़ा हुआ क्या देख रहा है ? हमने तुम्हारे से कर्जा तो नहीं लिया है। मालिक ने तो खेल रच दिया था। खिड़की को और मजबूती से पकड़ लिया था। श्री देवजी कहने लगे-हे लक्ष्मी ! तू तो साक्षात् गृहलक्ष्मी है। विष्णु तुम्हारे पर प्रसन्न हैं। मुझे खाली मत भेज। कुछ तो अवश्य ही दे। पहले भी आपने बड़े-बड़े दान दिये हैं। अभी-अभी देवजी के पास दान देकर लौटै हैं। मैंने जब गाँव में प्रवेश किया था, दानियों का घर पूछा था तो उन्होंने भी आपका ही घर बताया था। इसलिए मैं भी आशा विश्वास के साथ तुम्हारे घर आया हूँ।

सैंसे की नारी कहने लगी-बाहर चलो ! अपना काम करो। ये कैसी बातें करनी प्रारम्भ की है। इन बातों से मैं रीझने वाली नहीं हूँ। पीछे हट जाओ। मैं अपनी खिड़की ढ़क लेती हूँ। ऐसे खड़ा है जैसे कोई अतिथि मेहमान आया है। उस बिना बुलाये अतिथि ने तो खिड़की मजबूती से पकड़ ली थी कि कहीं हाथ से छूट न जाये। वह देवी तो ढ़कना चाहती है, किन्तु देवाधिदेव तो उघाड़ना चाहते हैं।

कैसा घर का भाग्य है। घरवाली तो घर को ढ़कना चाहती है किन्तु देवजी उघाड़ना चाहते हैं। यही ढ़कना-उघाड़ना संसार में चलता रहता है। वह तो धक्का देती है, देवजी सहन कर लेते हैं। भृगु की लात भी तो सहन कर ली थी। स्वयं विष्णु आज तो सैंसे के घर पर आये थे। घर में लक्ष्मी को प्रवेश करवाने के लिए किन्तु संसार के व्यक्ति क्या जानें ? अब तो खींचातानी होने लगी। आखिर जीव रूपी देवी तो थक ही गयी थी। उसे तो थकना ही था।

दूसरी नारी कहने लगी-यह योगी हठीला है। हठ नहीं छोड़ेगा, इसे कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा। अपने घर का बड़प्पन तो देखो। इस बड़प्पन में तो खाक है जो एक साधु को एक रोटी भी नहीं दे सकते। दोनों महारानी विचार करने लगी इसे क्या देना चाहिये ? जिससे यह अपना पीछा छोड़े। एक नारी घर में गयी और खिचड़ी की खुरचण (हंडिया के लगा हुआ वासी भोजन) (हंडिया के लगा हुआ अधजला भोजन) कुड़सी में भरकर ले आयी और कहने लगी-हे हठीले योगी ! तुम्हारा पत्र (चीपी) इधर करो, मैं तुझे भिक्षा देती हूँ। दूसरी महारानी कच्चा दूध ले आयी और दोनों ने भिक्षा प्रदान की। श्रीदेवजी ने भिक्षापात्र आगे किया। तब कुड़सी में खुरचण लेकर खड़ी हुई और जोर से क्रोध में भरकर पत्री पर दे मारा, जिससे एक किनारा खण्डित हो गया। किन्तु भिक्षा लेने में सफल तो हो ही गये। उस खण्डित बर्तन को दूसरी स्त्री ने दूध से भर दिया।

देवजी भिक्षा लेकर वापिस चले। किन्तु कुछ ही दूर जाकर वापिस लौट आये और दूसरी माँग पेश कर दी कि इस समय सर्दी पड़ रही है तो एक सी ओढ़ण तो दीजिये। सैंसे की नारी ने कहा-यह कैसा साधु है, जिसे समय का भी ज्ञान नहीं है। इसके गुरु ने यह भी सिखाया नहीं कि गृहस्थ के घर पर भिक्षा माँगने कब जाना चाहिये तथा बिना समय भिक्षा मिलने पर भी अब तक संतोष नहीं हुआ जो अब वस्त्र भी मांग रहा है।

श्रीदेवजी ने कहा-हे देवी ! भिक्षा का कोई समय नहीं होता। जब भूख लग जाये तभी भिक्षा याद आती है परंतु इस भूख का कोई पता नहीं कि कब लग जाये। तथा वस्त्र तो जब सर्दी लगे, तभी याद आता है। ऐसी वार्ता सुनकर स्वयं सैंसे ने ही अबकी बार एक गूदड़ा (पुराना मोटा वस्त्र) प्रदान किया और कहा अब तो चले जाओ।

सैंसे की नारी बोली-अभी अभी तो इसको बाहर निकाला था, किन्तु यह तो वापिस आ गया। भिखारी तो बहुत देखे, किन्तु इतना हठीला मैंने कभी नहीं देखा। सेंसे ने अपनी नारी की वार्ता सुनी तो कहने लगे-क्यों कलह मचायी है ? यदि और कुछ देना है तो दे दो, नहीं देना है तो ना कह दो। गाँव के लोग सुनेंगे तो

क्या कहेंगे ? घर की लज्जा तो रखो। सैंसे की नारी ने सैंसे की वार्ता को अनसुना कर दिया, किन्तु सैंसे ने एक आथर (वस्त्र विशेष) दिया और वहाँ से रवाना किया।

इस प्रकार से सैंसे के घर से मिला अन्न एवं वस्त्र लेकर वापिस झींझाले आ गये। परब्रह्म से साथरियों (भक्तों) ने पूछा-हे देवजी! सैंसे की वार्ता बतलाओ। वहाँ क्या और कैसी भिक्षा दी ? भक्तों के भाव को देखकर देवजी ने टूटी हुई पतरी में सैंसे के घर का अन्न एवं वस्त्र दिखलाया। और कहा यह मुझे मिला है। सैंसे ने मुझे यह सोड़ उढाई है।

रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन प्रात:काल ही गाँवों से मतवाले भक्तजन आने लगे। साखी, शब्द, हरिजस गाते हुए, झींझा बजाते हुए प्रात: काल ही जमात एकत्रित हुई। सभी लोग देवजी के दर्शन करने आ रहे थे। विशेष रूप से वे ही लोग आ रहे थे, जिनका भाग्य सौभाग्य में बदल चुका था। महिलाएँ, पुरुष, बच्चे अनेकानेक यथा रूप शृंगार करके आ रहे थे। आकर स्वामी परमात्मा को शीश झुकाते हैं और यथास्थान बैठ जाते हैं। वन में ही नगरी बस गयी है। ऐसा खेल मालिक ने रचा था। भेदभाव से रहित चाकर ठाकर एक से ही प्रतीत हो रहे थे।

जो भी श्री देवजी के दर्शन करता वह अपने सन्मुख ही देख रहा था। मुख मण्डल की कांति सूर्य सदृश शोभायमान हो रही थी। किसी को भी श्रीदेवजी की पीठ नहीं दिखाई दे रही थी। क्योंकि स्वयं देवाधिदेव विष्णु ने ही सम्भराथल पर अवतार लिया था। मनुष्य ही नहीं, पशु पखेरू भी सन्मुख आकर पवित्र हो गय थे। उत्तम जीवों को ही विश्नोई पंथ में सम्मिलित किया गया था।

नाथूसर निवासी भी सैंसे के साथ उसी प्रकार से आये थे। श्रीदेवजी को शीश झुकाते हैं और बैठ जाते हैं। दिनभर सत्संग का कार्य चलता रहा, पुन: सांयकाल हुआ, सूर्यास्त होने जा रहा था। पहले की भांति सेन्से ने फिर कहा-हे देव! दिन व्यतीत हो चुका है, रात्रि का आगमन होने जा रहा है। हमें क्या शिक्षा है, जमात हाथ जोड़े खड़ी है।

श्री देव ने पुन: कहा-

सतगुरु नाम इम द्यो भीख। साम्य कहे सैसा आ सीख।

हे सैंसा! सतगुरु परमात्मा के नाम से भिक्षा देना, तेरे लिए यही शिक्षा है।

सैंसा कहने लगा-हे सतगुरु! आप बिना सोचे-विचारे एक ही बात मुझे बार-बार क्यों कहते हो ? वैसे क्या मैं समझता नहीं हूँ। मैं आपके नाम से आपको ही समर्पण करके भिक्षा देता हूँ। प्रेमभाव से भोजन करवाता हूँ। जो मेरे पास मेरे घर में आ जाता है, उसको मैं खाली हाथ उत्तर नहीं देता हूँ। हे देव! मेरा क्या है सभी कुछ आपका ही है और आपके नाम से खर्च भी करता हूँ। सैंसे ने इस बात को जोर देकर कहा।

तब सतगुरु बोले-हे दुवागर-द्वारपाल! तुम सैंसे के घर से लायी हुई भिक्षा तथा गूदड़ा लाकर दिखाओ। जब दुवागर के हाथ में टूटी हुई पतरी एवं आथर-वस्त्र देखा तो तुरंत पहचान गया। सतगुरु ने कहा-हे सैंसा!

ए सहनाण पिछाण, मूंधे मुंह सैंसो पड्यो, सांभल सके न कोय।

सैंसे ने अपने ही घर की वस्तु पहचान कर मुंह नीचे कर धरती ऊपर गिर पड़ा। सामने देख भी नहीं सका। विलाप करने लगा-मेरे घर स्वयं सिरजणहार आये और मैं उनकी सेवा नहीं कर सका, उल्टा उन्हें अपमानित किया। हे धरती माता! तू फट जाओ और मैं तुम्हारे में समा जाऊँ। अब मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहा।

यदि संसार छोड, दे तो हरिजी संभाल लेते हैं। और यदि हरिजी ने ही छोड़ दिया, तो अब मुझे बचाने

वाला कोई नहीं होगा। यदि कोई कुएँ में गिरने वाला हो और पीछे से कोई धक्का दे देवे तो अच्छी प्रकार से गिरा जा सकता है। सैंसा विलाप करते हुए अचेत हो गया। साथ में रहने वाले सज्जनों ने प्रार्थना की कि हे नाथ! यदि आप हाथ छोड़ देंगे, तो यह जड़ मूल से ही चला जायेगा। अब यह तो आपके सामने नहीं देख सकेगा। आप से प्रार्थना नहीं कर सकेगा। किन्तु हमारी अर्ज अवश्य ही सनुो। **उठ सैंसा सतगुरु कहे गर्व न करो लिंगार।** सतगुरु कहने लगे-हे सैंसा! अहंकार न करो और खड़े हो जाओ। सतगुरु के आशीर्वचन सुनकर सैंसा खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर विनती करने लगा-हे देवाधिदेव! आपने मुझे बचा लिया है अन्यथा मैँ तो अहंकार के पंक में डूब जाता। मुझे तो इस अज्ञानता का पता ही नहीं था। आपने मेरी आंखे खोल दी है। अब मैँ गर्व को छोड़कर आपके ही अधीन हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। आपने कृपा करके मेरी आँखें खोल दी हैं। सैंसा पुनः स्वस्थ हुआ। सतगुरु ने क्षमा कर दिया। उपस्थित जन समूह ने जय जयकार की। सैंसे के भाग्य की सराहना की और देवजी के दयालुता की प्रशंसा की।

सैंसो कसवों कहे-देवजी! म्हें तो सुरगा जोगो सांमो घणो ही कियो- जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-57

ओ३म् अति बल दानों, सब स्नानो, गऊ कोट जे तीरथ दानो
बहुत करे आचारूं। ते पण जोय जोय पार न पायो, भाग परापति सारूं।
घट ऊंधै बरसत बहु मेहा, नींर थयो पण ठालूं।
को होयसी राजा दुर्योधन सो, विष्णु सभा महलाणो।
तिणही तो जोय जोय पार न पायो, अध विच रहीयो ठालूं।
जपिया तपिया पोह बिन खपिया, खप खप गया इंवाणी।
तेऊं पार पंहुता नाहीं, ताकी धोती रही अस्माणी।।

सैंसा कस्वां स्वस्थ हुआ। फिर कहने लगा-हे देव! मैंने तो स्वर्ग जाने के बहुत से उपाय किये थे, किन्तु अब तक मुझे मेरे गर्व का पता ही नहीं था। यह अहंकार मुझे ले डूबेगा। इस बात से मुझे आपने अवगत करवाया है। मैं धन्यभागी हूँ, जो आपके दर्शन एवं स्पर्श का लाभ मुझे मिला।

श्रीदेवजी ने शब्द सुनाया-हे सैंसा! अति दान, अपनी औकात से भी ज्यादा दिया हुआ दान भी लाभदायक नहीं है। अड़सठ तीर्थों में बिना श्रद्धा एवं योग्यता के किया हुआ दान लाभदायक एवं संतोषजनक भी नहीं है। करोड़ों गऊवों का तीर्थों में जाकर दान देना भी मुक्ति का कारण नहीं बन सकता। अन्य भी बहुत से किये हुए आचार-विचार भी अति आनन्ददायक नहीं है। अपने से बड़ों को देखोगे तो पार नहीं पा सकोगे। सभी से ऊँचा नहीं बन पाओगे।

अभी तो तुम्हारे से बहुत से लोग आगे हैं। वे लोग ऊँचाइयाँ छू रहे हैं। तुम तो तुम ही हो। दूसरा तो दूसरा ही होगा। अपने अपने भाग्य से ही प्राप्त होता है। घड़े को उल्टा कर दिया जावे, ऊपर चाहे कितना ही जल बरसे तो भी उसमें जल नहीं भरेगा। प्रथम घड़े को सीधा करो तब जल अन्दर गिरेगा। प्रथम अधिकारी बनो तब ज्ञानरूपी जल अन्दर भरेगा।

दुर्योधन जैसा अहंकारी राजा अब तक नहीं हुआ। जिस दुर्योधन की सभा में स्वयं विष्णु-कृष्ण आ गये, किन्तु नहीं समझ सका। और कृष्ण को बाँधने लगा। अब तक कोई कृष्ण (विष्णु) को बाँध सका है क्या? अहंकारी जीव दुर्योधन यही नादानी करता है। जब कृष्ण ने दुर्योधन की सभा में अपने रूप को विराट बनाया

तो देखते हुए भी दुर्योधन पार नहीं पा सका। गर्व से संयुक्त दुर्योधन अधबिच में ही रह गया। न तो पार पहुँच सका और न ही मृत्युलोक का राजा ही रह सका। न तो इस मृत्युलोक में रहकर यश ही प्राप्त कर सका और न ही परलोक सुधार सका।

कई जपी तपी बिना मार्ग जाने साधना का बहाना करते हुए समाप्त हो गये। इसी प्रकार कितने ही लोगों ने शरीर धन के मद में अपने को अनाधिकारी बना डाला। वे लोग भी ज्ञान बिना व्यर्थ की सिद्धि प्राप्त करने पर भी पार तो नहीं पहुँच सके, जिनकी धोती आकाश में सूखा करती थी।

जमाती कहे देवजी! कोई चार जुगा में पारि पहुँतो। जाम्भाजी कहे-राव मालदेव, झाली राणी दीठा। देही कि दाह गयी। तिह समय श्री वायक कहे-

शब्द-58

ओ३म् तउवा माण दुर्योधन माण्या, अवर भी माणत मांणो।
तउवा दान जू कृष्णी माया, अवर भी फूलत दानो।
तउवा जाण जू सहस्त्र झूझ्या, अवर भी झूझत जाणों।
तउवा बाण जू सीता कारण लक्ष्मण खैंच्या, अवर भी खेंचत बाणों।
जती तपी तकपीर ऋषेश्वर, तोल रह्या शैतानों।
तिण किण खेंच न सके, शिंभु तणी कमाणूं।
तेऊ पार पहूँता नांही, ते कीयो आपो भांणों।
तेऊ पार पहूँता नांही, ताकी धोती रही अस्माणों।
बारां काजै हरकत आb|, अध बिच मांड्यो थांणो।
नारसिंह नर नराज नरवो, सुराज सुरवो नरां नरपति सुरां सुरपति।
ज्ञान न रिंदो बहुगुण चिन्दो, पहलू प्रहलादा आप पतलीयो।
दूजा काजै काम बिटलीयो, खेत मुक्त ले पंच करोड़ी।
सो प्रहलादा गुरु की वाचा बहियो, ताका शिखर अपारूं।
ताको तो बैकुंठे बासो, रतन काया दे सोप्यां छलत भंडारू।
तेऊ तो उरवारे थाणो, अई अमाणो,तत समाणो। बहु परमाणो पार पंहुचन हारा।
लंका के नर शूर संग्रामे घणा बिरामे, काले काने भला तिकंट।
पहले जूझ्या बाबर झंट, पड़े ताल समंदा पारी, तेऊ रहीया लंक दवारी।
खेत मुक्तले सात करोड़ी,परशुराम के हुकम जे मूवा।
सेतो कृष्ण पियारा, ताको तो बैकुण्ठे बासो।
रतन काया दे सौंप्या छलत भण्डारूं, तेऊ तो उरवारे थाणो|k।
अई अमाणो पार पंहुचन हारा।

काफर खानो बुद्धि भराड़ो, खेत मुक्त ले नव करोड़ी।
राव युधिष्ठिर से तो कृष्ण पियारा, ताको तो बैकुण्ठे बासो।
रतन काया दे सौंप्या छलत भण्डारूं, rm तो उरबारे थाणk।
अई अमाणो बहु परमाणो, पार पंहुचन हारा।
बारा काजै हरकत आई, तातै बहुत भई कसबारूं।

सैंसे भक्त के साथ उपस्थित जमाती लोगों ने पूछा-हे गुरुदेव! इन चार युगों में कोई संसार-सागर से पार पहुँचा या नहीं। जाम्भोजी ने उत्तर देते हुए कहा-जोधपुर नरेश राव मालदेव तथा चित्तौड़ नरेश की माँ झालीराणी ये दोनों ही सुजीव हैं, पार पहुँच जायेंगे। इन दोनों की कथा विस्तार से आगे बतलायेंगे।

इस समय श्रीदेवजी ने लोगों को सम्बोधित करते हुए शब्द कहा-अहंकारी व्यक्ति कभी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। यह तो पक्का निश्चय ही है। जितना अहंकार निवृत्त होता जायेगा, उतना ही मुक्त होता जायेगा। बंधन ढ़ीला पड़ता जायेगा। जैसा अहंकार दुर्योधन ने किया उतना अहंकार तो अब तक किसी ने भी नहीं किया। राजा मालदेव एवं झालीराणी सर्वथा निरहंकारी हैं।

फूलते-फलते तो बहुत हैं, किन्तु कृष्णी माया जितनी फूलती फलती है, उतना कोई नहीं। युद्ध के मैदान में जाकर युद्ध तो शूरवीर संसार में बहुत करते हैं, किन्तु जितना सहस्रबाहू ने किया उतना कोई नहीं कर सका। जिसने परशुरामजी का सामना किया।

बाण चलाने में भी बहुत लोग कुशल हैं, किन्तु जितने बाण सीता को लंका से लाने के लिए लक्ष्मण ने चलाए, उतने बाण अब तक कोई नहीं चला सका। इस संसार में जप करने वाले जपी, तप, करने वाले तपी कई तकियों के पीर, मठाधीश, ऋषि शिरोमणि इत्यादि अपने अपने बल को तोल रहे हैं। ये लोग केवल अपनी शैतानी को ही तोल रहे हैं। इनके पास ज्ञान नहीं है।

शिम्भू के धनुष को उठाने के लिए सभी ने प्रयत्न किये किन्तु अहंकार से मूर्छित लोग धनुष को हिला भी नहीं सके। परमात्मा की असीम शक्ति का कौन पार पा सकता है? जो निरहंकारी हैं, वे भले ही पार पा जायें। वे भी पार नहीं पहुँच सके, जिनकी धोती आसमान में सूखा करती थी।

गुरुदेव कहते हैं कि प्रह्लाद के बिछड़े हुए इक्कीस करोड़ तो पार पहुँच गये हैं। अब बारह करोड़ इसी भूमि पर विद्यमान है। उन्हें ले जाने के लिए मेरा आगमन हुआ है। ये सभी बारह करोड़ पार पहुँचेंगे। मैंने इस मृत्युलोक में आसन जमाया है। क्योंकि यह मृत्युलोक पाताल लोक एवं स्वर्ग के बीच में विद्यमान है। मानव जीवन भी देव तथा दानव के मध्य अवस्थित है। सतयुग में जब नृसिंह अवतार हुआ था, वह नर रूप में नरों में भी शिरोमणि, देवताओं में भी देव शिरोमणि, नरों के भी राजा एवं देवताओं के देवराजा ज्ञान से युक्त बहुगुणों से सम्पन्न थे। सर्वप्रथम तो उन्होनें हिरण्यकश्यिपू को मारा था। दूसरा उन्होंने भक्त प्रह्लाद को विश्वास में लिया था। प्रह्लाद को दिलासा दिलाई थी।

दूसरों की भलाई के लिए स्वयं भगवान् विष्णु अवतार लेकर आये थे। उस समय सतयुग में नृसिंह ने प्रह्लाद को वचन दिया था। इस वजह से पाँच करोड़ का उद्धार प्रह्लाद के साथ हुआ। क्योंकि वो लोग प्रह्लाद के वचनों पर चले थे। उनकी गति अति उत्तम थी। वे लोग मुक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुके हैं, उनका निवास तो बैकुण्ठ में ही है। जन्म-मरण का चक्कर छूट गया है।

इह भौतिक शरीर तो यहीं पर छूट गया है, किन्तु उनको दिव्य रतन सदृश अलौकिक काया मिली हैं।

उन्हें सम्पूर्ण आनंद का भण्डार सौंप दिया है। वे लोग भी यहीं उसी मृत्यु लोक के ही थे। आप लोगों के ही साथी थे।

इस संसार में ही तत्त्व रूप से विष्णु समाया हुआ है। उसमें बहुत ही प्रमाण हैं। जो पार पहुँचने योग्य होंगे वे तो अवश्य ही पहुँचेंगे। इस समय भी आप पार पहुंचने की योग्यता धारण करें। निरहंकारी बनें, समर्पण भाव करें।

सतयुग के बाद त्रेता युग में भी राम अवतार हुआ। राम ने लंका में जाकर रावण को मारा था। लंका में बड़े बड़े सूरवीर योद्धा थे, जो अत्यधिक संख्या में थे। काले, कुरूप, काणे-बड़े-बड़े योद्धा युद्ध भूमि में राम की सेना से लड़ रहे थे। राम की सेना भी तो कुछ कम नहीं थी। वहाँ पर भी बबर, झंट, हनुमान आदि अनेकानेक योद्धा थे। जब उनका युद्ध होता था, तो समुद्र पार भी ताल की ध्वनि सुनाई देती थी। वे सभी लंका के दरवाजे पर ही थे।

ये सभी जीव मोक्ष के अधिकारी ही थे। राम के हाथ से मृत्यु को प्राप्त करके ये मुक्ति को प्राप्त हुए । कुछ रामजी की सेवा करके मुक्ति को प्राप्त हुए थे। वे लोग भी यहीं इसी मृत्यु लोक के ही जीव थे।

त्रेता युग में ही परशुरामजी ने क्षत्रियों का संहार किया था। उनके संपर्क में आने वाले पापी जन भी उनकी दृष्टि से ही पवित्र होकर मुक्ति को प्राप्त हुए थे। जिन्हें भी विष्णु प्यारा था, वे चाहे वैर भाव से स्मरण करें या प्रेम भाव से, वे सभी लोग पार पहुँचे हैं। इस प्रकार से त्रेता युग में सात करोड़ का उद्धार हुआ। वे सभी लोग यहीं के निवासी थे। पार पहुँचने के योग्य थे, वे पहुँच गए। वे सदा सदा के लिये पंथ निर्मित कर गये।

द्वापर में कृष्ण अवतार हुआ। युधिष्ठिर सम्राट हुए। उस समय भी नौ करोड़ का उद्धार हुआ। वे लोग भी ज्यादा भले भी नहीं थे, किन्तु कृष्ण के संपर्क में आने से पार पहुँचने के योग्य थे, वो पहुँचे गये। वहाँ उन्हें सुख दु:ख से रहित आनंद का भंडार सौंप दिया गया। वे भी यहीं के ही लोग थे।

गुरु देव कहते हैं-कि इस समय कलयुग में बारह करोड़ का उद्धार करने हेतु मुझे आना पड़ा। प्रह्लाद के वचनों को पूरा करना है। इन्हें भी मैं पार पहुँचा कर ही जाऊँगा। हे लोगो! आप लोग भी उन्हीं बारह करोड़ के अंतर्गत ही हो। तुम भी पार पहुँच जाओगे। किन्तु अहंकार के रहते तो असंभव ही है।

सैंसो कह जमाती नै। सीख दीजै। जाम्भोजी कह गुरु नांय मांग जीन भीख द्यौ। विसन जंपो क्रीया मां सावधान चालौं सैंसे ने वले कह्यो। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-59

ओ३म् पढ़ कागल वेदूं शास्त्र शब्दूं भूला भूले झंख्या आलूं।
अह निश आव घटंती जावै, तेरा सास सबी कसबारूं।
कइया चन्दा कइया सूरुं, कइया काल बजावत तूरूं।
उर्द्धक चन्दा निरधक सूरुं, सुन घट काल बजावत तूरूं।
ताछै बहुत भई कसवारूं।
रक्तस बिन्दु परहस निन्दू, आप सहै तेपण बुझे नही गंवारूं।

सैसा भक्त कहने लगा- हे गुरु देव! मेरे साथ में आये हुए सत्संगी लोग वापिस घर जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। इन्हें तथा मुझे भी घर जाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

जाम्भोजी ने कहा–गुरु के नाम की आगन्तुक सुपात्र को भोजन दीजिए। विष्णु का जप करो। क्रिया कर्म में सावधान रहो। यह बात सैंसे को कहते हुए शब्द सुनाया–

हे लोगो! वेद, शास्त्र, शब्द अवश्य ही पढें। व्यर्थ का समय व्यतीत न करें। विष्णु का जप, स्मरण, स्वाध्याय करें। व्यर्थ का बकवास न करें। दिन रात करते हुए तुम्हारी आयु बीतती जा रही है। तुम्हारा प्रत्येक श्वांस बड़ा ही अमूल्य है। इसका सदुपयोग करो।

आयु तो सभी की ही निश्चित है। चाहे सूर्य, चन्द्र, तारे ही क्यों न हो? इनकी भी आयु घटती जा रही है। काल ने तुरही बजा दी है। अपने आने से पूर्व ही सचेत कर दिया है। चन्द्र की आयु एवं ऊँचाई कम है। सूर्य की ऊँचाई, तेज एवं आयु चन्द्रमा से ज्यादा है। तो भी क्या हुआ? एक दिन काल का ग्रास तो अवश्य ही बनेंगे।

आप लोग किस के सहारे से अभिमान कर रहे हो। जब सभी कुछ छोड़,कर जाना निश्चित ही है तो समय का सदुपयोग करो और स्वाध्याय करो। दान पुण्य करो। सुपात्र का स्वागत करो। यही शिक्षा है। अब आप लोग खुशी से जा सकते हो। सैंसा भक्त अपने घर पहुँचा और गृह लक्ष्मी से जो घटना घटी थी। वही बताई। सैंसे की नारी ने आश्चर्य किया और पछतावा करने लगी। सैंसे के घर में चालीस दुधारू गायें दूध देती थी, किन्तु एक अजब गजब के मेहमान का स्वागत नहीं कर सके थे। फिर भी सैंसे को मुक्ति का वरदान श्री देवजी ने दिया था।

सैंसा पच्चीस दुधारू गायें और भी ले आया। अब तो घर में पैंसठ गायें दूध देने वाली थी। सैंसे की नारी बिलौवना करती। मक्खन,दूध,दही,घी आदि की नदियाँ बहने लगीं। आये हुये सुपात्र का सैंसा सम्मान करता। न जाने कब किस रूप में हरि ही आ जाये। गाँव के बच्चे सैंसे के घर आ जाते। वेला कुवेला में उनके साथ कोई अतिथि भी आ जाता, भोजन तैयार नहीं होता, तो सैंसा घर में तिल और शक्कर रखता उन्हें सभी को खाने के लिये देता था।

कभी–कभी बच्चे रात्रि में आकर झंझट खड़ी कर देते तो भी सैंसा देने से मुख नहीं मोड़ता था। कई बच्चे सैंसे से शिकायत करते, आज हमें कुछ भी नहीं मिला था। सैंसा भक्त उन्हें प्रेम से भोजन देता, या तिल शक्कर देता।

एक दिन सैंसा गुरु महाराज के पास सम्भराथल पर पहुँचा और कहने लगा–हे देव! मैं आपकी प्रतीक्षा करता था, किन्तु आप आये नहीं। आप भी बड़े विचित्र हैं देव!

बिना बुलाये तो आ जाते हो। किन्तु बुलाने पर नहीं आते। आप चाहे न भी आयें, किन्तु आने वाले प्रत्येक आगन्तुक में मैं आपको ही देखता था, क्योंकि पूर्व में मैं धोखा खा चुका था।

देवजी ने पूछा–हे सैंसा! कहो तुम्हारी सेवा की बात? सैंसा कहने लगा–क्या कहूँ! आपके कथनानुसार ही नियम निभा रहा हूँ, किन्तु एक आपत्ति बिना बुलाये ही आ गयी है। हमारे घर पर अतिथि आते हैं। मैं उनकी तन–मन–धन से सेवा करता हूँ। सर्दियो में मैं उनको ओढने के लिये सोड, देता हूँ किन्तु उनमें कई ऐसे चोर भी आ जाते है जो सी ओढण भी ले जाते है मैं परेशान हूँ क्या करूं।

श्री देवजी ने कहा–हे सैंसा! तुम एक बहुत बड़ी भारी लंबी चौड़ी सोड़ बनालो जिसे कोई उठा कर न ले जा सके,रात्रि में सो जायेगे। सैंसे ने वही किया एक बहुत बड़ी सोड़ बनाई जिसे सैसा सोड, के नाम से जानी जाती थी।

सैसे ने भक्ति दान मान करके अपना जीवन व्यतीत किया। एक समय सम्भराथल पर विराजमान श्री

देवजी से पूछा कि हे गुरुदेव! सैंसे की बात कहो। हमने सुना है कि सैंसा मृत्यु को प्राप्त हो गया है? श्री देवजी ने कहा-सैंसा भक्त था। उसकी कभी दुर्गति नहीं हो सकती। सैंसा भी प्रह्लाद के बाड़े का जीव था। निश्चित ही प्रह्लाद के पास ही पहुँच गया है। मुक्त हो गया है। ऐसा भक्त सदा ही सराहनीय है।

हे वील्ह! जो तुमने जाँगलू में जाम्भोजी की चीपी देखी है। वह सैंसे के घर पर टूटी है। सैंसे के घर तो भिक्षा नहीं मिल पाई थी, किन्तु अब भक्त लोग श्री देवजी को भिक्षा दे रहे हैं। अपनी मनोकामना पूर्ण कर रहे हैं। प्रेम से भक्ति भाव से दी हुई भिक्षा को श्री देवजी सहर्ष स्वीकार करते हैं। श्री देवजी को क्या चाहिये? उन्हें देवस्वरूप को भोजन हेतु घी चाहिये। वही भिक्षा दे रहे हैं तथा गुरुदेव सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं तथा भक्तों का भला कर रहे हैं।

सैंसा तो शिरोमणी भक्त हुआ। उनका तो स्वर्ग में वास हुआ। सतगुरु ने झींझाले को धाम बना दिया। नाथूसर तथा आस पास के लोगों को निहाल कर दिया। यही कथा है सैंसे की तथा और महिमा है सतगुरु जाम्भोजी की, जो मैने तुझे सुनायी है। अब आगे क्या जिज्ञासा है? अवश्य ही पूर्ण करूँगा। क्योंकि मुझे ज्ञान कथा कहने में आनन्द आता है। कथा कहना और सुनना तो साक्षात परमात्मा से ही वार्ता करनी है। हे शिष्य! इस कथा कहने में मेरा स्वार्थ एवं परमार्थ दोनो ही नीहित है।

राम-कथा

वील्हा उवाच- हे गुरुदेव! आपने मुझे अनेकानेक दिव्य चरित्र एवं ईश्वरीय शक्ति की कथा सुनाई। सुनकर मैं कृतार्थ हुआ। अब आगे मैं आपके श्री मुख से राम कथा सुनना चाहता हूँ। वैसे तो राम अनन्त राम कथा अनन्ता' राम की कथा भी अनन्त अपार है। फिर भी आपने श्री गुरु जाम्भोजी से सुना है,वही कथा विशेष सुनना चाहता हूँ।

नाथोजी उवाच- हे शिष्य-एक समय सम्भराथल पर श्री देवजी विराजमान थे। उसी समय आगन्तुक श्रद्धालुओं ने श्री विष्णु जाम्भोजी से पूछा था कि हे गुरुदेव! हमने आपके श्री मुख से सुना है। आप राम रूप की कोई अद्भूत घटना यदि है, तो अवश्य ही सुनाइये। हम आपके आधीन हैं। ऐसी वार्ता सुनकर श्री जम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया था वही मैं आपसे बतलाता हूँ।

राजा दशरथ धरम नेम किया जासूं राम लछमण अवतार हुआ। राम लछमण पै वनवास हुवौ। अठार पदम सेन्या करि। राम लछमण लंका वीढी। रावण लछमण को जत छीलवण नु काली ब्राही मेल्ही। लछमण को जत छीलवो तो माहनै मारण हारो को नहीं। क्योकि मैने जोतकी बुझया। कोई राम की सेन्या मां मने मारण हारो इ सूझै। जोतकियां लछमण कुवर बतायों। खुध्या,त्रिषा,निंद्रा नहीं। काछ वाच को निकलंक। रावण काली ब्राही नैं मेल्ही। काली ब्राही लछमण कंवार आगै हाथ जोड़ी उभी रही। लछमण कंवार कहै क्यौं। ब्राही कहै एक वचन मांगा। लछमण कुवार कहै मागो ब्राही कहे थे महाने वरो। लछमण

कहै, म्है तो भारथ करिस्या कुण जाण वचां क न वचां। ब्राही कह म्हे थांहरा गाढा जतन करेस्यां। लछमण कह थे वचन द्यौ। माहर जे घाव घोबो चोट फेट लागी तो मांहरी वाच अवाच छ: न लागो तो थानुं वरस्य। काली ब्राही उलटो छल हुवो। नागण्य होय डस्य गइ। राम लक्ष्मण भारथ कियो। लंका लूटी। दत स्यंघारयां लछमण कुंवार

साढा तीन स कोश आपको सरीर लांबो असवानै वध्यौ। नींव कोस मां देह चौड़ी कीवी। राकसणीयां सु जंतर हुवा नही। लछमण रावण की मुंछ बरोबरय छुटी। हीर तीर सुं भुंवरो मारयौ। सगति बाण सु लछमण धर पड़्यो। राम विसुरणा कर। श्री राम वायक-

शब्द- 60

ओ३म् एक दुख लक्ष्मण बंधू हइयों,एक दुख बूढै घर तरणी अइयों।
एक दुख बालक की मां मुइयो,एक दुख ओछै को जमवारूं।
एक दुख तूटे से व्यवहारूं,तेरे लक्षणे अन्त न पारूं, सहै न शक्ति भारूं।
कैते परशुराम का धनुष जे पइयो, कै तै दाव कुदाव न जाण्यौ भइयूं।
लक्ष्मण बाण जे दहसिर हइयों, ऐतो झूझ हमें नहीं जाण्यो।
जे कोई जाणै हमारा नाऊं,तो लक्ष्मण ले बैकुण्ठे जाऊं।
तो बिन ऊभा पह प्रधानो,तो बिन सूना त्रिभुवन थानों।
कहा हुआ जे लंका लइयो,कहा हुओ जे रावण हइयों।
कहा हुआ जे सीता अइयों,कहा करूं गुणवंता भइयो।
खल के साटे हीरा गइयो।

श्री जम्भेश्वर जी ने राम कथा स्वयं इस प्रकार से बतलायी-त्रेतायुग में रघुवंश में राजा दशरथ हुए। अयोध्यापति दशरथ की आयु साठ वर्ष की हो गयी। तब भी उनके संतान नहीं हुई। कुल गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से ऋष्यश्रृंग से दशरथ ने यज्ञ करवाया। जिससे उनके तीन रानियों से चार संतानें हुई। राम,भरत,लक्ष्मण, एवं शत्रुघ्न।

राम बड़े हुए। युवराज बनने की तैयारी होने वाली थी। किन्तु दैवयोग से दशरथ द्वारा वनवास दिया गया। राम, लक्ष्मण एवं सीता तीनों चौदह वर्षों का वनवास पंचवटी में व्यतीत कर रहे थे। किन्तु रावण ने मारीच को कपटी मृग बना कर छल किया और सीता का हरण कर के लंका में ले गया।

हनुमानजी ने सीता की खोज की और सुग्रीव मित्र की सहायता से लंका पर चढाई कर दी। समुद्र पर पाज बंधवायी और सेना सहित लंका में प्रवेश किया। राम की सेना लंका में प्रवेश कर गयी थी, तब रावण ने ज्योतिषियों से पूछा था कि राम की सेना में मुझे मारने वाला कौन है ? ज्योतिषियों ने बतलाया कि राम की सेना में लक्ष्मण यति हैं, जो तृष्णा,भूख,नींद आदि को जीत चुका है तथा यति ब्रहाचारी है। वही रावण को मार सकता है।

हमारे यदि किसी प्रकार की चोट,घाव न लगे, यदि लग गयी तो हमारा वचन अवचन। यदि घाव लग गया तो मैं तुम्हारे से विवाह नही करूँगा। यदि घाव नहीं लगे तो ही मैं तुम्हारे से विवाह करूँगा। इस प्रकार से काली आयी तो थी लक्ष्मण के साथ छल करने के लिये किन्तु स्वयं ही छली गयी। खाली हाथ जैसे आयी

थी वैसे वापिस लौट गयी। लक्ष्मण के यतित्व को भंग नहीं कर सकी।

गीन हो कर के लक्ष्मण को डस गयी। राम लक्ष्मण ने युद्व किया। लंका लूट ली। दैत्यों का संहार किया। लक्ष्मण कुमार ने साढे तीन सौ कोश अपना शरीर बढाया। नौ कोश देह को चौड़ी की। इसलिये राक्षसणियों से यंत्र नहीं हुआ।

रावण लक्ष्मण ने अपनी मूंछे बढाई दोनो की बराबर हुई। लक्ष्मण ने हीरे के बाण से रावण के भंवरे-जीव को मारा। लक्ष्मण के बाण से रावण मारा गया। किन्तु इससे पूर्व मेघनाद द्वारा चलाया हुआ शक्ति बाण को लक्ष्मण सहन नहीं कर सका। युद्व भूमि में मूर्छित होकर गिर पड़ा। राम ने लक्ष्मण के वियोग में विलाप किया।

साथरियों ने पूछा-हे गुरुदेव ! राम ने लंका में लक्ष्मण के वियोग में विलाप किया था। वह विलाप आप हमें सुनाइये आपके मुख से राम विलाप सुनना चाहते है। क्योंकि राम रूप धारण करने वाले तो आप स्वंय ही हैं।

जाम्भोजी ने शब्द सुनाया- हे भाई लक्ष्मण ! संसार में दु:ख तो बहुत आते हैं, किन्तु लक्ष्मण जैसे भाई का बिछोह हो जाना,इससे बढकर तो दुनिया में कोई दु:ख नहीं है। दूसरा दु:ख संसार में बूढे के घर पर तरुणी स्त्री का पत्नी के रूप में आ जाना। तीसरा दु:ख छोटे बालक की मां का मर जाना है। चौथा दुख धन हीन का जीवन है। पाँचवां दु:ख व्यवहार लेन देन में टूट जाना है। ऐसे दु:ख तो संसार में बहुत हैं। कहाँ तक गिनाये ? किन्तु भाई लक्ष्मण के बिना जो इस समय मुझे जो दु:ख हो रहा है, उसका कोई आर पार नहीं है।

हे लक्ष्मण- तू शक्ति बाण को सहन नहीं कर सका। हे भाई। तुम्हारे पास परशुराम का दिया हुआ धनुष था। जो जनक धनुष यज्ञ में परशुराम ने दिया था। क्या उस धनुष को उठाया नहीं था। हे भाई! क्या तुमने दैत्यों के दाव कूदाव नीति अनीति को नहीं समझ सका। लक्ष्मण के बाण से रावण मारा जायेगा। मैं तो ऐसा ही समझता था। मैं यह नहीं समझता था कि ऐसा भयंकर युद्ध होगा और मेरा भाई लक्ष्मण मूर्च्छित जायेगा।

हे लक्ष्मण-आज मैं स्वयं तुम्हारे सामने विपत्ति मे हूँ। मेरा तो कोई नाम भी ले ले तो बैकुण्ठ में पहुँच जाता है। किन्तु मैं इस समय असहाय होकर कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ। हे लक्ष्मण! उठ जाओ! देखो! तुम्हारे बिना तो सभी प्रधान खड़े हुए हैं। कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। तुम्हारे बिना तो तीनों भवन लोक शून्य हो गये हैं।

हे भाई ! अब क्या होगा ? यदि मैं लंका ले लूँ और क्या होगा ? यदि रावण को मार दूँ ? और क्या होगा ? यदि सीता को वापिस ले लूँ। हे मेरे गुणवान भाई। मैंने खली के लिये हीरा खोदिया। कहाँ तो सीता कहाँ भाई लक्ष्मण। मैंने सीता प्राप्ति हेतु भाई लक्ष्मण को खो दिया। मैं हानि को प्राप्त हुआ हूँ

मैं बिना भाई लक्ष्मण के अयोध्या कैसे जाऊँगा ? वहाँ मेरी माताएँ पूछेंगी के लक्ष्मण कहा है ? तो मैं क्या जवाब दूँगा ? लक्ष्मण को मूर्च्छित अवस्था में प्रधानों ने देखा तो युद्ध रुक गया।

राम ने विलाप करते हुए कहा-कोई होगा अपनी सेना मे शूरवीर जो संजीवनी बूँटी ले आवे। जिससे यति लक्ष्मण ठीक हो सके। वैद्य जी ने बतलाया है कि पवन पराक्रम से जावे। भूत दैत्यो से डरे नहीं और सूर्योदय से पूर्व में ही वापिस लौट कर आवे। वह संजीवनी बूंटी कौन लायेगा ? लक्ष्मण कंवर को ठीक करेगा। मैं इस विपत्ति काल में किससे कहूँ ?

यदि मेरे पिता दशरथ होते तो उनसे कहता। किन्तु वो तो स्वर्गवासी हो चुके हैं। भाई भरत अयोध्या में हैं। अयोध्या यहाँ से बहुत दूर है। अब मेरी पीड़ा को कौन मिटाये ? अपना ही अपनी पीड़ा को समझता है।

पराया भला क्या समझे। हनुमान ने कहा-हे राम! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपका सेवक जाऊँ और सूर्योदय से पूर्व ही आपकी कृपा से लौट आऊँ। राम ने कहा-अच्छा भाई हनुमान तुम्ही जाओ। और यहाँ है भी कौन? हनुमान जड़ी बूटी लेने चले। पीछे रामजी ने पुन: विलाप किया।

हनुमान गया तो अवश्य ही है, किन्तु समय पर शायद ही लौट कर आये।" काज पराया सीवला,जां दुखै तां पीड़," पराया कार्य ठण्डा ही होता है। जिसके पीड़ा होती है दुख भी उसी को होता है। हनुमान जी पर्वत पर पहुँच तो गये, किन्तु जड़ी बूटी की पहचान नहीं थी। इसीलिये सम्पूर्ण पहाड़ ही उखाड़ लिया और सूर्योदय से पूर्व ही जड़ी बूटी लाकर सौंप दी। वैद्य जी ने जड़ी घिस कर लगायी और लक्ष्मण तुंरत उठ बैठे। उसी समय राम जी ने पूछा-

अठारै दोषण है,रामचन्द्र कहै, तैं कोण दोशण कीयौ। कंवार कहै, कोई म्हाई दोषण दाखवी, रामचंद्र प्रदोषण का नाम कहै-श्री वायक कहै -

शब्द -61

ओ३म् कैंते कारण किरिया चूक्यौं, कैंते सूरज सामो थूक्यौं।
कैंते ऊभै कांसा मांज्या, कैंते छाण तिणूका खैंच्या।
कैंते ब्रा्geण निवत बहोड़या,कैंते आवा कोरंभ चोरया।
कैंते बाड़ी का बन फल तोड़या,कैंते जोगी का खपर फोड़या।
कैंते ब्रा्geण का तागा तोड़या, कैंते बेर बिरोध धन लोड्या।
कैंते सूवा गाय का बच्छ बिछोड़या,कैंते चरती पिवती गऊ बिडारी।
कैंते हरी पराई नारी, कैंते सगा सहोदर मारया।
कैंते तिरिया शिर खड़ग उभार्या,कैंते फिरते दातण कीयौं।
कैंते रण मैं जाय दो दीयों, कैंते बाट कूट धन लीयों।
किसे सरापे लक्ष्मण हइयों।

श्री रामजी ने कहा-हे भाई-तुमने इन अठारह दोषों में से कौन सा दोष किया? लक्ष्मण ने कहा-भाई! कोई मुझे निर्दोषी को दोषी कहता है। वे कौन से दोष है, जो शक्ति बाण लगने के कारण बन सकते हैं। उन्हीं दोषों को राम जी ने गिनाये हैं। वही दोष श्री जम्भेश्वरजी शब्द द्वारा बतलाते हैं।

हे लक्ष्मण-तुमने कौन सी कारण क्रिया में चूक की है। क्या तुम काली ब्राही द्वारा किये हुए छल में चूक गये? जो भी कर्म करते हैं, वही कारण एवं क्रिया है। कहाँ चूक गये? कौन सा ऐसा कर्म हो गया जिससे यह शक्ति बाण लगा, यह घोर विपत्ति आयी।

क्या तुमने सूर्य के सामने थूक दिया? सूर्य को तो प्रणाम करना चाहिये था। क्या तुमने सूर्य का अपमान किया? सूर्य की सत्ता-तेज को तुमने नकार दिया। क्या तुमने खड़े होकर बर्तन साफ किया? कुछ कार्य बैठ कर ही किये जाते हैं, वे कार्य तुमने खड़े हो कर किये। जैसे-भोजन ,पूजा-पाठ, यज्ञ, वार्तालाप, सत्संग आदि बैठ कर किये जाते हैं। खड़े होकर भोजन करने से अन्न देवता शाप देते हैं। क्या तुम अन्न देवता द्वारा शापित किये गये हो? क्या तुमने किसी गरीब की झोंपड़ी तोड़ दी, किसी को उजाड़ दिया है।

क्या तुमने किसी ब्राहमण, संत, भक्त, सज्जन पुरुष को भोजन का निमन्त्रण देकर भोजन नहीं करवाया ?क्या तुम किसी ऋषि पुरुष द्वारा शापित हुए हो ? क्या तुमने कुम्हार के आवा में से बर्तन चुरा लिये हैं ? अर्थात् कोई चोरी का कार्य किया है ? सच्ची कमाई करने वाले के धन का हरण कर लेना उसके दु:ख का पार नहीं है। उसी दु:खी व्यक्ति द्वारा तुम्हें शाप दिया गया होगा। क्या तुमने किसी खेत से धान फल-फूल आदि चुराये हैं ? बाड़ी के फल अभी पके भी नहीं थे, क्या तुमने तोड़, लिये ? अथवा तुमने हरे वृक्ष काटे होंगे ? बिना पके पराये फल तोड़ ने से प्रकृति शापित करती है। असमय में धान,फूल फल आदि तोड़ने में दोष है।

क्या तुमने योगी साधु पुरुष भिक्षुक के हाथ का भिक्षा पात्र तोड़ दिया ? सुपात्र भिक्षुक को भिक्षा देनी चाहिये। तुमने क्या एक मात्र सहारा भिक्षा पात्र को ही तुमने तोड़ डाला। न तो स्वंय ही भिक्षा दे सका और नहीं कोई और ही दे सके, ऐसा अपराध तुमने लक्ष्मण कर दिया।

क्या तुमने ब्राह्मण का तागा तोड़ डाला। ब्रामण की आजीविका का साधन ही तुमने समाप्त कर डाला। या, क्या तुमने ब्राह्मण की प्रतिज्ञा नियम को भंग कर डाला। नियम मर्यादा बाँधने का सहयोग करना चाहिये किन्तु तुम नियम भंग करने में हेतु बन गये। उसी दोष के कारण शक्ति लगी है। क्या तुमने किसी से वैर विरोध धन ले लिया।

हे कुंवर-तुम राजकुमार हो राज कार्य हेतु धन ले सकते हो, किन्तु जोर जबरदस्ती से नहीं। अपनी खुशी से सामर्थ्यानुसार ही धन कोई लेता और देता है, तो वही खुशी का दिया हुआ दान कर आदि फलीभूत होता है। अन्यथा जबरदस्ती लिया हुआ तो डाका है। दिल दुखाकर लिया हुआ कल्प-दु:ख का दान है। यह दोष है। क्या तुमने ऐसा तो नहीं किया ?

क्या तुमने सूवा गाय का बछड़ा अपनी माँ से विलग कर दिया ? गाय ब्याहने के पश्चात् दस दिन तक तो उसका बछड़ा ही दूध पीने का अधिकारी है। वह दस दिन तक का दूध मनुष्य के पीने लायक भी नहीं होता है। एक महीने तक माँ का दूध बछड़े को भर पेट मिलना चाहिये। बछड़ा जब भर पेट पी ले, पीछे बच जाये, वही दूध दूहना चाहिये। एक महिने बाद बच्चा घास खाने लग जाता है।

क्या तुमने घास चरती हुई, जल पीती हुई गऊ को डराकर भगा दिया। गो माता दुग्ध प्रदान करती है,घास खाती है। अमृत सदृश दूध देती है जल घास आदि से गो की सेवा करनी चाहिये। इह लोक और परलोक दोनों ही बन जाते हैं, क्या तुमने गऊ की सेवा नहीं की है। ?

क्या तुमने परायी स्त्री का हरण कर लिया ? पराया धन,पराई स्त्री, पराया तो पराया ही है। जो अपना नहीं है, उसे लेने का हमारा क्या अधिकार है ? लोक मर्यादा एवं धर्म के विरुद्ध है किसी के धन स्त्री को छीन लेना उसके हृदय में दु:ख भर देना है। किसी दूसरे को दु:ख देना ही दोष-पाप है।

क्या तुमने अपने किसी सम्बन्धी एवं सहोदर भाई को मारा है। अपना सम्बन्धी विश्वास पात्र होता है। उसे दु:ख देना या मार देना ये दोष हैं। उसके साथ विश्वास घात करना महापाप है। सहोदर तो भाई होता है। वह तो अपनी ही जान होती है। दो शरीर एक जान होती है। उसे मारना तो अपने को ही मारना है। भाई सम्बन्धी को मार कर तो स्वयं ही मर जाता है। इस पाप का फल तो शक्ति बाण लगने जैसा ही भयंकर दु:ख है।

क्या तुमने त्रिया (स्त्री जाति विशेष) कन्या,बहन,पत्नी,माँ आदि के ऊपर खड्ग उठा लिया। ये तो सभी देवी रूपा हैं। इनकी तो रक्षा करनी चाहिये। क्या तुमने कोई अकरणीय कार्य कर लिया ? क्या तुमनें चलते घूमते हुए दातुन किया। अर्थात् दांतुन करना,भोजन करना,जल पीना आदि चलते-फिरते हुए नहीं करना

चाहिये।

बैठ कर करने वाले कार्य को तुमने चलते फिरते किया है। यह प्राकृतिक प्रकोप है। यही दोष है, इसका फल भी दुख रूप है।

क्या तुमने किसी से मार पीट करके धन तो नहीं ले लिया। या तुमनें अपनी मर्यादा सीमा को छोड़ कर दूसरे की सीमा में से धान आदि छीन कर ले आया।

हे लक्ष्मण भाई ! मैं तुम्हारा भाई राम तुम से पूछता हूँ कि कौन सा श्राप (दोष) तुम्हें लगा है ? जिस कारण से शक्ति बाण लगा है। यह विपत्ति आयी है। बिना दोष बिना कारण के तो कोई कार्य बनता ही नहीं है।

इति श्री रामचंद्र कहीं लखमण कुवांर सुणी। श्री लखमण कुवांर कहै –

शब्द–62

ओ३म् ना मैं कारण किरिया चूक्यौ, ना मैं सूरज सामो थूक्यो।
ना मैं उभै कांसा मांज्या, ना मैं छान तिणूका खैंच्या।
ना मैं ब्राह्मण निवत बहोड्या, ना मैं आ0 कोरंभ चोर्या।
ना मैं बाड़ी का बन फल तोड्या, ना मैं जोगी का खप्पर फोड़या।
ना मैं ब्राह्मण का तागा तोड्या, ना मैं बेर बिरोध धन लोड्या।
ना मैं सूवा गाय का बच्छ बिछोड्या, ना मैं चरती पिबती गऊ बिडारी।
ना मैं हरी पराई नारी, ना मैं सगा सहोदर मार्या।
ना मैं तिरिया शिर खड़ग उभार्या,ना मैं फिरतैं दातण कीयो।
ना मैं रण मैं जाय दों दीयों, ना मैं बाट कूट धन लींयो।
एक जू ओंगुण रामैं कीयों, अणहुंतो मिरघो मारण गइयों।
दूजो औगुण रामैं कीयों, एको दोष अदोषा दीयों।
वन खंड मैं जद साथर सोइयों, जद को दोष तदों को होईयों।

राम जी ने अठारह दोष लक्ष्मण को गिनाये तब लक्ष्मण ने कहा–हे भाई ! इन अठारह दोषों में से तो मैंने एक भी नहीं किया किन्तु हे भाई ! आपने तो अवश्य ही दोष किये हैं। जिस वजह से आपको दु:ख आया है। मैंने तो न तो दोष ही किये हैं और न ही मुझे दु:ख आया है। मैं तो मूर्च्छित था, तो कुछ भी चेता नहीं था। अब स्वस्थ हूँ। मुझे दु:ख कब आया ? किन्तु हे भाई ! आपने विलाप अवश्य ही किया। दु:ख आपको अवश्य ही हुआ। इसमें आप दोषी होंगे।

रामजी ने कहा–मैंने कौन सा दोष किया है ? मेरे छोटे भाई ! जरा मुझे बतलाओ तो सही। मैं तो वियोग दु:ख में व्याकुल था कि मुझे कुछ भी पता नहीं चला। दोष किसमें है, यह मैं नहीं जानता।

लक्ष्मण ने कहा–हे राम ! एक अवगुण तो सर्व प्रथम आपने ही किया जो अनहोना मृग मारने–पकड़ने चले गए। आपने मेरी बात नहीं मानी और न ही सीता ने ही सुनी। मैंने सीता माता से कहा था कि असंभव है स्वर्ण मृग। मैं सभी जीवों की जातियाँ जानता हूँ, और जो जीवों को शरीर प्रदान करता है, उसको भी मैं जानता हूँ। किन्तु आपने और सीता ने मेरी बात नहीं मानी। जिस वजह से सीता का हरण हुआ, यही छोटी सी भूल थी।

जब आपने मृग के तीन बाण एक साथ मारे तो उस कपटी मृग ने पड़ते हुए हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! ऐसा पुकारा था। मैं तो आपका सेवक सीता की रक्षा के लिए सावधान था। किन्तु सीता ने कहा- हे लक्ष्मण! आपने राम की आवाज सुनी। तुम्हारा भाई विपति में पड़कर तुम्हें पुकार रहा है। जल्दी जाओ। मैंने कहा था हे मात! मेरे भाई का कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। मैं तुम्हें अकेली वन में छोड़ कर जाऊँगा नहीं। यही मेरे भाई राम की आज्ञा है।

किन्तु सीता ने जाने के लिए मुझे मजबूर कर दिया। मुझे सीता को अकेली ही छोड़ कर जाना पड़ा। आपके पास जब मैं पहुँचा, तो आपने मुझे ही दोष दिया कि सीता को अकेली छोड़ कर क्यों आए? आपने तथा सीता दोनों ने ही मुझ निर्दोष को दोष दिया। यही आपका ही दोष था।

किसी निर्दोष को दोषी बना देना या बता देना ही दोष है। किसी अचोर को चोर बता देना यही तो दोष-पाप है। दूसरों को दोष देने वाला स्वयं दोषी-पापी हो जाता है। इसी को ही पर निंदा कहते हैं। यही पाप दोष है, जिसका फल दु:ख है।

हे भाई! उसी वन खंड में ही तो हम रह रहे थे। उसी में ही राक्षस विचरण करते थे। किन्तु हम सचेत नहीं हो सके। सोते रहे। यही कारण था कि सीता का हरण हुआ लंका में पहुँच गयी।

हे राम! आपको दुख होना था, इसीलिए मुझको शक्ति बाण लगा। आपने दोष किया तो आपने दु:ख भोग लिया। वही दोष और इसका फल दु:ख। किया हुआ कर्म सुख-दु:ख अवश्य ही भोग्य है। वह चाहे राम ही क्यों नहीं। हमारे जैसे छोटे-मोटे लोगों की तो ओकात ही क्या है?

कर्म फल सिद्धान्त अटल है। यहीं इस शब्द द्वारा बतलाया है। कर्मो का फल सुख दु:ख ज्ञानी को भी भोगना पड़ता है, अज्ञानी को। किन्तु ज्ञानी तो हंस कर भोग लेता है, अज्ञानी रोकर के भोगता है। सुख दु:ख की मात्रा में अंतर हो सकता है, किन्तु जीवन में आयेंगे तो दोनों ही। हम पाप-पुण्य मिश्रित कर्म करते हैं इसीलिए मिश्रित सुख-दु:ख आते हैं।

रावण आदि राक्षसों को मार कर के सीता को लेकर चौदह वर्षो का वनवास पूरा करके राम लक्ष्मण वापिस अयोध्या लौट आये। अयोध्या निवासियों ने घर-घर दीप जला कर राम लक्ष्मण एवं सभी वानर सेना का स्वागत किया। दीपावली मनायी गयी। अब भी वही दीपावली मनाते हैं।

चौथा अध्याय

चित्तौड़ की कथा

वील्हो उवाच–हे गुरु देव! आपने अब तक अनेकानेक भक्त, योगी की कथाओं द्वारा श्री जाम्भेश्वरजी के जीवन चरित्र का वर्णन किया, जो मुझे बहुत ही अच्छा लगा। अब आगे मैं उस समय के राजा लोगों के बारे में सुनना चाहता हूँ। वे राजा लोग जाम्भोजी के सम्पर्क में अवश्य ही आये होंगे। उन्होंने किस प्रकार से शिष्यत्व स्वीकार किया। क्योंकि राजा लोग तो बहुत ही रजोगुणी होते हैं। उनमें काम, क्रोध तथा लोभ आदि कहीं ज्यादा ही होते हैं। उनके लिए समर्पण होना कठिन ही है।

नाथोजी उवाच– हे शिष्य! जाम्भोजी की शरण में तत्कालीन सभी राजा लोग आये थे उन्होंने शिष्यत्व भी स्वीकार किया था। यह जाम्भोजी का कृष्ण चरित्र ही था। कृष्ण चरित्र से अनहोनी भी होनी हो जाती है। असंभव भी संभव हो जाता है। अनेक राजाओं की विचित्र कथाओं में सर्वप्रथम मैं तुझे चित्तौड़ नरेश सांगा राणा एवं उनकी माता झालीराणी की कथा सुनाता हूँ।

''एक समै पुरब का विसनोई बालद्य लादी चित्तौड़ आया। सांग राण दांण मांग्यौ। बिसनोइया नां कारयौ। झालीराणी कह जाम्भोजी न पूछो। जोड़ बकस्यौ। जांभाजी झारी, माला, सुलझावणी दीन्ही। झाली नु जलम सोझ पड़ी। झाली नुं सबद सुणायो। जाम्भोजी श्री वायक कहै–

शब्द–63

ओ३म् आतर पातर राही रुक्मण, मेल्हा मंदिर भोयो।
गढ़ सोवनां तेपण मेल्हा, रहा छड़ा सी जोयो।
रात पड़ंता पाला भी जाग्या, दिवस तपंता सूरूं।
उन्हा ठाढा पवना भी जाग्या, घन बरसंता नीरूं।
दुनीतणा औचाट भी जाग्या, के के नुगरा देता गाल गहीरूं।
जिहि तन ऊंना ओढ़ण ओढ़ां, तिहिं ओढ़ंता चीरूं।
जां हाथे जप माली जपां, तहां जपंता हीरूं।
बारां काजै पड़यो बिछोहो, संभल संभल झूरूं।
रा?ी(सीतो हनुवंत पाखो, कौन बंधावत धीरूं।
मागर मणियां काच कथीरूं, हीरस हीरा हीरूं।
विखा पटंतर पड़ता आया, पूरस पूरा पूरूं।
जे रिण राहे सूर गहीजै, तो सूरस सूरा सूरूं।
दुखिया है जे सुखिया होयसैं, करसैं राज गहीरूं।
महा अंगीठी बिरखा ओल्हो, जेठ न ठंडा नीरूं।
पलंग न पोढण सेज न सोवण, कंठ रूलंता हीरूं।

इतना मोह न मानै शिंभु, तहीं तहीं सूसीरूं।
घोड़ा चोली बाल गुदाई, श्री राम का भाई गुरु की वाचा बहियो।
राघो सीतो हनवंत पाखो, दुःख सुख कासूं कहियों।

एक समय पूर्व देश के बिश्नोई प्रमार, औधियां, उमरा आदि गोत्र के लोग व्यापार करने हेतु अनेक देशों में भ्रमण करते हुए अपनी बैलगाड़ियों पर सामान लेकर चित्तौड़ नगरी की राज्य सीमा में प्रवेश किया। जाम्भोजी ने उनको बिश्नोई बनाया था। उन लोगो ने अपनत्व छोड़ दिया था और बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हुए थे। अपना पुश्तैनी धन्धा, व्यापार करना त्याग नहीं किया था। बिश्नोई बनकर गुरु की शरण में आ गये थे। अब वो लोग किसी से भी डरते नहीं थे। सभी देशों में निर्भय होकर भ्रमण करते थे। एक देश से दूसरे देश में वस्तु को ले जाना, क्रय-विक्रय करना, लाभ कमाना उससे अपनी आजीविका चलाना ही उनका अपना कर्म था।

इस प्रकार से कार्य करते हुए एक समय बिश्नोई व्यापारी जमात चित्तौड़ पहुँच गयी। चित्तौड़ में वस्तुओं की बिक्री की। लाभ का सौदा किया। दरबार में खबर हुई कि पूर्व देश के व्यापारी लोग सौदा बेच रहे हैं। चित्तौड़ के राजा सांगा ने अपने लोगो को भेजा और बिश्नोइयों से कर माँगने का आदेश दिया।

जब डाण (कर) माँगने वालों ने अन्य व्यापारियो की भांति बिश्नोइयों से भी कर माँगा तो बिश्नोई कहने लगे-हे भाई! आप लोग हम से कर माँगने वाले कौन होते हो? कहाँ से आये हैं? उन कर्मचारियों ने कहा-हमें राजा साँगा ने भेजा है। इस देश की सीमा में व्यापार करने वाले व्यापारी को कर चुकाना होता है। तभी आप लोग वस्तु का व्यापार कर सकते हो।

बिश्नोईयों ने कहा-जाम्भोजी के शिष्य बिश्नोई हैं। धर्म-कर्म का पालन करने वाले हैं। हमारे तो पातस्याह एक जाम्भोजी हैं "सर्व भूमि गोपाल की" अन्य कोई नहीं है। हम तो केवल जाम्भोजी की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। आपको कर नहीं देंगे।

राज कर्मचारी कहने लगे-हे बिश्नोइयों! राणा सांगा की पातस्याही में ऐसा कौन सा जबरदस्त है, जो कर नहीं देगा। आपको पता होना चाहिये की सिर पर पातस्याह तप रहा है। यदि कर नहीं देना है, तो पातशाह के पास ही चलो। ऐसा कहते हुए उन कर्मचारियों ने बिश्नोइयों को राजा के सामने उपस्थित किया।

राणा कहने लगा-आप लोग कौन होते हैं? मैं आपको देखकर समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम्हारी जाति क्या है? राणा क्रोधित होकर कहने लगा-मैं कर छोड़ूँगा नहीं। मैं छोड़ भी कैसे दूँ। न ही तुम्हारा भेष साधु का है। इसलिये साधु सन्यांसी तुम लोग हो नहीं। न ही तुमने अब तक कोई विशेष बलिदानी कार्य ही किया है। न ही धर्म रक्षार्थ प्राणों को निछावर ही किया है। न ही आप लोगों ने ब्राह्मण आदि का वेश बनाया है।

राजा कहने लगा-आप लोग डाण देवो तभी पीछा छूटेगा। धर्म रक्षार्थ ब्राह्मण,चारण, भाट ये लोग बलिदान दे देते हैं। इसलिये उन्हें डाण माफ होता है। आप लोगों में तो ऐसा कुछ भी नहीं है। बिश्नोई कहने लगे हे राजा! यदि आप क्रोध न करें तो हम आप से बात कहें। आप लोग जिनके बलिदान की बात कहते हैं, जिन्हें आप धार्मिक बतला रहे हैं, उनसे कहीं अधिक हमारा यहाँ पर बलिदान होगा। हम लोग डाण नहीं देंगे किन्तु अपना बलिदान देंगे।

हे राणा! बिश्नोइयों से आप जबरदस्ती न करें। आप न्यात जमात को एकत्रित कर लें, सभी से पूछ लें। हम बलिदान देने वाले धर्म प्रेमी जन हैं। हम से जगात नहीं ली जाती है। राणा कहने लगा-हमने सुना है कि धर्म रक्षार्थ बलिदान हो जाते हैं, वे लोग आप नहीं दूसरे होते हैं।

चारण, भाट, ब्राह्मण,योगी,याचक,और भगवान् ये लोग तागा करते हैं। अपने शरीर को भी तुच्छ मान कर त्याग देते हैं, किन्तु बिश्नोई नहीं।

बिश्नोई कहने लगे-हमारा तागा (बलिदान) तो जगत प्रसिद्ध है। हमसे तो अन्य राजा लोग भी डाण नहीं लेते हैं। अजमेर के करमसी पंवार,जैसलमेर के राजा जेतसी, नागौर का महमद खां,फलोदी के राव हमीर, मेड़ते का राव दूदा, जोधपुर का राव सांतल,जगता,गोपाल, अन्य पातस्याह, खाना, खोजा, मीलका, मीर आदि सभी राजा पातस्याह, हकीम आदि बिश्नोइयों से डाण नहीं लेते।

इस महि मंडल में जाम्भोजी की मर्यादा कौन मिटा सकता है ? हे राणा ! हम लोग बलिदान करके आँखों से दिखायेंगे। संभल कर विचार से बात कीजिये। तीन दिन के पश्चात् हम लोग सभी लोग शरीर को छोड़ देंगे किन्तु डाण नहीं देंगे। हमने तो कर्ता-धर्ता विष्णु जाम्भोजी से कवल किया है। अपने नियम धर्म को नहीं छोड़ेंगे, किन्तु बलिदान दे देंगे। ऐसा कहते हुए बिश्नोइयों ने पवली द्वार पर धरना दे दिया। तन-मन-धन त्याग कर मरने को तैयार हो गये।

नगरी के कई लोग भयभीत हुए ज्यों-ज्यों लोग भयभीत होने लगे त्यों-त्यों बिश्नोइयों में मजबूती आने लगी। जब राणा से बात नहीं संभली, तो बात राणा की माँ झालीराणी तक पहुँची। रानी ने सुना कि मात्र डाण के लिये बेटे ने साधु पुरुषों को सताया हैं। यदि ये लोग बलिदान हो गये तो बड़ा भारी अपराध हो जायेगा। ये संत पुरुष तो पीछे हटने वाले नहीं हैं। मुझे ही कुछ करना चाहिये।

साधु-सज्जनों की तो रानी सेवक थी। उन्हें इन पर दया आयी,किन्तु रानी तो सामने नहीं आती। परदे में रहती है। इनका कष्ट दूर कैसे किया जावे। करुणामयी माता झाली राणी पड़दे की परवाह न करके महलों से नीचे उतरी। अपनी सहेली के साथ राणी पड़दे में खड़ी हुई। अपने प्रधान पुरुष को पास बुलाया और कहने लगी-

हे प्रधान-तुम जल्दी जाओ और उन तागाला बिश्नोइयों को मेरे पास बुला लाओ। प्रधान पुरुष ने उन बिश्नोइयों से कहा-रानी आप पर प्रसन्न हैं, उन्होंने आप को बुलाया है। अभी अति शीघ्र चलो। रानी से सवाल-जबाब करो। तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा। अति शीघ्र ही बिश्नोई प्रधान के साथ राजमहल में रानी के सामने हाजिर हुए और रानी को आशिष दी।

रानी ने जाम्भाणी लोगों से पूछा-हे भाइयो ! मैं आपकी बहन हूँ। आप मुझे सत्य बतलाओ कि आप किस जमात के हैं ? कौन तुम्हारा गुरु एवं मार्ग है ? पूजा जप किसकी करते हो ? सेवा-चाकरी किसकी करते हो ? आप लोग हिन्दू हो या मुसलमान ? किस धर्म में आप चलते हो ?

बिश्नोई कहने लगे-हम लोग विष्णु के उपासक बिश्नोई हैं। विष्णु जाम्भोजी ही हमारे इष्ट देवता हैं। सम्भराथल पर विराजमान जाम्भोजी ही हमारे सद्गुरु हैं। सतपंथ के हम अनुयायी हैं। हम लोग धर्म पर चलने वाले हैं क्योंकि हमारे श्री देव जी ने सर्व प्रथम दया धर्म बतलाया है। बाहर भीतर एक रस, कपट भाव का परित्याग,बतलाया है। जैसा कहना, वैसा ही आचरण बतलाया है। तीर्थो में जाकर स्नान करना बतलाया है। दान, तप, शील, शुद्ध भाव इन चार नियमों पर चलने का आदेश दिया है।

झाली ने यह वार्ता सुनी तो कहने लगी-ये तो सभी हिन्दुओं के मुख्य धर्म हैं। ऐसी वार्ता सुनकर अति प्रसन्न हुई। कहने लगी-हे भाई लोगो ! तुम्हारे पर गुरु की अपार कृपा है। तुम्हारे सिर पर भगवान् का हाथ है। कौन क्या बिगाड़ सकता है ? रानी के मधुर वचनों को सुनना तो बिश्नोइयों के लिए अमृत तुल्य प्रतीत हुआ।

बिश्नोई कहने लगे-पार ब्रह्म परमात्मा स्वयं सम्भराथल पर प्रगट रूप से विराजमान हैं, जो सभी के

चित्त में बस गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो जगत प्रकाशित करने के लिये सूर्योदय ही हो गया।

सृजनहार स्वयं शिव रूप से सम्भराथल पर प्रगट हुए हैं। स्वयं सृष्टि के कर्ता ने दिव्य शरीर धारण किया है। जिसे हम अपनी आँखों से देख सकते हैं। वार्तालाप कर सकते हैं। परमात्मा धरती, आकाश, सप्त पताल आदि में सभी जीवों को संभाला है।

तब रानी ने पूछा-वह पूर्ण पुरुष किस देश में प्रगट हुआ है ? बिश्नोइयों ने कहा-उत्तम बागड़ देश धोरों की धरती सम्भराथल पर प्रगट हुए हैं। उनसें भेंट-मिलन सभी जातियों के लोगों की होती है। दर्शन करने हेतु जमात वहाँ पर एकत्रित होती है। अनेकानेक जिज्ञासा प्रगट करते हैं। उनका दर्शन-स्पर्श करके लोग अपना कार्य सिद्ध करते हैं। लोग उत्तम सौदा व्यापार कर रहे हैं। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सभी सेवा करते हैं। दया स्वरूप देव की पहचान ही है। चारों तरफ चाव (उत्साह) फैला हुआ है। राव,रंक,पातस्याह,अनेकानेक सच्चे मार्ग के अनुनायी बने हैं। बिश्नोई कहने लगे-हम भी उसी जमात के लोग हैं। श्री देव का दर्शन, स्पर्श, पाहल लेकर कृतार्थ हुए हैं। बिश्नोइयों ने जब विधि पूर्वक वार्ता का बखान किया और झाली ने प्रेम पूर्वक श्रवण किया । रानी ने अन्तर्भाव से सतगुरु को पहचान लिया कि है तो साक्षात् सिरजनहार ही। प्रगट रूप से रानी ने कहा-

हे भाई लोगो ! देवजी तो दया रूप हैं। आप लोग प्राण मत त्यागो। मेरे अन्तर में आर्त भाव जग गया है। मैं इस समय प्रार्थना कर रही हूँ कि विपति स्वयं जाम्भोजी ही मिटावे। आप लोग भी भगवान् से अर्ज करो कि इस विपत्ति से किस प्रकार से छूटें ?

रानी कहने लगी-देवजी का प्रताप पक्का है। यदि वो जगात-कर दिलावे तो देना है यदि वो नहीं दिलायेगें तो हम आप से डाण नहीं लेंगे। किन्तु यह बात उनसे पूछने से ही प्रमाण होगी। बिश्नोई बन्धुओं ने रानी से अरदास की कि तब तक हमारे बैल बिना घास के भूखे कैसे रहेंगे। गुरु से पूछ कर आने में तो कुछ दिन लगेंगे। हम लोग अपना दु:ख आपके सामने कह रहे हैं।

उनकी विनती सुन कर रानी के मन में प्रेम भाव जगा और बैलों को चरने के लिये घास वाला जंगल सौंप दिया। और कहा-यहाँ पर तुम्हारे बैल घास चरेगे, सुखी रहेंगे। आप लोग सम्भराथल पर उनसे पूछकर आओ। मेरे लिये श्री देवजी क्या आज्ञा देते हैं, यही पता करके आना है। रानी कहने लगी -जीवों के मालिक की यदि इच्छा होगी तो हमारे राज्य में धन की कोई कमी नहीं रहेगी। वो ही देने वाले हैं और दिलाने वाले भी वही हैं। उनका दिया हुआ हम कितना ही खर्च करेंगे, तो भी कम नहीं पड़ेगा। रानी साधु संतो की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझती थी। इसी दया भाव से बकसीस प्रदान कर दी। शायद इसी आशा से कि देवजी हमें इनसे डाण अवश्य ही दिलायेंगे। इसलिये घास वाला खेत दे दिया। बिश्नोइयों ने रानी का विश्वास हासिल किया और बैल घास चरने लगे।

रानी कहने लगी आप जल्दी ही देवजी के पास जाओ। दो तो जाम्भाणी जायेंगे और दो व्यक्ति विश्वास पात्र राज दरबार से जायेंगे। ये चारों जाकर जाम्भोजी से संदेशा लेकर अति शीघ्र आयेंगे। न जाने कितने दिन लगे होंगे, किन्तु शीघ्र ही देवजी के पास सम्भराथल पर चारों लोग पहुँच गये।।

रानी द्वारा दी हुई भेंट देवजी के सामने रखी और अरदास करते हुए कहा-हे देव ! चित्तौड़ के राणा सांगा ने हमसे डाण माँगा है। झाली रानी ने हमको यहाँ पर भेजा है। हमें क्या करना चाहिये ? इसमें आप ही प्रमाण हैं। देवजी ने उन लोगों को बिठाया और सान्त्वना दी। मैं अवश्य ही कुछ बतलाऊँगा तब तक आप बैठें।

गंगा पार से विश्नोइयो की एक जमात सतगुरु के चरणों का दर्शन स्पर्श करने हेतु चली। बिश्नोई

आनन्द में अभिभूत होकर चले थे। मार्ग में एक रात्रि भीयें के गाँव में निवास किया। वहाँ भीयें से भेंट हो गयी। भींयां वाराणसी में विद्या पढा था। भींयें ने पूछा कि आप लोग कहाँ जा रहे हो ? बिश्नोइयों ने कहा-कि हम लोग बागड़ देश जा रहे हैं। वहाँ पर साक्षात विष्णु का ही अवतार हुआ है। उनका दर्शन,स्पर्श,शब्द,श्रवण करके जीवन का लाभ उठायेंगे।

भींयें ने विद्या तो पढी थी, किन्तु हृदय का ताला अब तक खुला नहीं था। कुतर्क करने में वह चतुर था। श्रद्धा विश्वास नहीं था। मैं पण्डित हूँ। इसलिये सभी का पूज्य हूँ। यही अहंकार भींयें को ज्ञान से दूर हटाता था। वह व्यर्थ का बकवास करता था। बिश्नोइयों से ज्ञान की वार्ता करने लगा।

भींयां कहने लगा-आप लोगों को किसी ने भरमाया है। ये बातें आपने किसी अनपढ योगी साधु द्वारा सुनी होगी कि सम्भराथल पर अवतार हुआ है। आप लोग सार तत्त्व नहीं जानते। आप लोगों ने शास्त्र नहीं पढे हैं। कलयुग में तो एक ही अवतार होगा, वह भी कलयुग के अन्त में, जो कलयुग की करणी करता है वह कलयुग से पार कैसे होगा ?

Cिश्नोई कहने लगे हे भींयां ! हम अधिक व्यर्थ की वार्ता आप से कर के समय बर्बाद नहीं करना चाहते। आप ही हमारे साथ ही चलो। वहाँ आँखों से देखोगे तो स्वयं ही पता चल जायेगा। बिश्नोइयों की बात स्वीकार करके भींयें ने हाथ में पुस्तक ले ली और कहने लगा –

हे बिशनोइयों ! मैं प्रण करके साथ चल रहा हूँ। आप लोग भी अपने प्रण के पके रहना। कहीं बीच में ही प्रण नहीं त्याग देना। इस प्रकार से विवाद करते हुए वह दिन व्यतीत हो गया। इसलिये उस दिन जमात उसी गाँव में ही रुक गयी। भींयें की धर्म पत्नी कहने लगी-हे पतिदेव ! हठ छोड़ दो। विवाद न करो। ये हमारे जमीनदार लोग हैं। जैसा ये कहते है, वैसा स्वीकार क्यों नहीं करते ? ऐसा वचन अपनी नारी का सुनकर भींया नाराज हुआ, किन्तु अपना हठ नहीं छोड़ा।

प्रात:काल बिश्नोइयों की जमात के साथ ही भींयों अपने पुस्तक शास्त्र लेकर गाड़ी पर बैठ गया। बहुत दिन चलने के पश्चात् भींयो जमात के साथ सम्भराथल पर पहुँचा। सभी ने अपनी अपनी भेंट गुरुदेव के सामने रखी। चरण स्पर्श किया। किन्तु भींये ने अहंकार वश न तो प्रणाम किया और न ही कुछ भेंट ही रखी।

भींया सतगुरु के सन्मुख हुआ और '' द '' का अर्थ पूछा। सतगुरु ने ''द'' के चार अर्थ बताये। पहला अर्थ दान, दूसरा अर्थ दयाभाव, तीसरा अर्थ अपने इष्ट देव का स्मरण, चौथा अर्थ उस व्यक्ति की देव लोक में भी प्रतिष्ठा है जो ''द'' के अर्थ को जानता है।

भींये ने पूछा-कलयुग में तो एक ही अवतार होगा। वह भी कलयुग के अन्तिम में। आप स्वयं को अवतार कैसे कहते हैं ? मैं पुस्तक पढता हूँ। विचार करता हूँ। कलयुग में अन्य कोई अवतार नहीं है। जाम्भोजी ने कहा-अन्य अवतार तो शास्त्रों द्वारा प्रगट हैं, किन्तु यह सम्भराथल सोवन नगरी पर तो यह गुप्त अवतार है।

भींयो कहने लगा-इस सोने की नगरी को आपने आँखों से दिखाले तब मैं मानूँगा। अन्यथा कहने मात्र से क्या होता है ? आँखों से देखने से ही प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। मुझे पक्का विश्वास एवं श्रद्धा होगी, तो मैं आपको तीनों लोकों का राव अवतार मानूँगा।

जम्भेश्वर जी अपने साथ में रणधीर बावल, दूसरा धैर्यवान खींयों,तीसरा सैंसोजी राठोड़, चौथा दूजैण माल, तथा पाँचवाँ स्वयं भींया लौहार। इन पाँचों को चौकस-सावधान करके साथ चलने के लिये तैयार किया। सद्गुरु के ये पाँचों लोग भाय आये अच्छे लगे इसलिये इन्हें सोवनी नगरी दिखाई।

श्री देवजी सम्भराथल पर हरि कंकेहड़ी वृक्ष के नीचे विराजमान होते, वहाँ से पूर्व की ओर इन पांचो को ले गये। जहाँ पर तालाब है। जहाँ से मिट्टी निकालते हैं। ठीक उसी जगह पर ले गये। प्रथम तो उनसे कहा-एक मन एक दिल से सतगुरु में स्थिर हो जाओ। जब उनकी चंचल वृत्ति शाँत हो गयी, तब उन्हें वहीं पर मिट्टी हटायी तो नीचे परदे दिखाई दिये। जिनके पीछे अवश्य ही कुछ छिपा होगा। पड़दे के पीछे भारी किवाड़ जड़ा हुआ दिखाई दिया। वहाँ बिना सूर्य ही प्रकाश दिखाई दिया, मानों सूर्य उदय हो गया हो। वहाँ पर सोने के फाटक लगे हुए देखे। सोने की ही दीवारें थी।

देवजी ने कहा-हे भींया ! ये तुम्हारे ही घड़े हुए हैं। किन्तु सोने के ताले जड़े हुए दिखाई दिये। सतगुरु की महिमा कौन वर्णन कर सकता है? उनकी शक्ति को कौन सहन करेगा। आगे बढ नहीं सके। सतगुरु ने कहा-ताक में ताली रखी है,आप खोलिये और अन्दर प्रवेश कीजिये। किवाड़, तो अवश्य ही जड़े हुए हैं, किन्तु चाबी-ताली मेरे पास है। उसे लीजिये और अन्दर प्रवेश कीजिये। भींया कहने लगा-हे देव! यदि हमारे से ही किवाड़ खुल जाते, तो आपको कौन पूछता? हम तो कभी के प्रवेश कर गये होते। आपने ही जड़े है।और आप ही खोलिये। जब तक आप वचन नहीं दोगे, तब तक ये किवाड़ खुलेंगे नहीं। श्री देवजी ने उघाड़ दिये और उनके मन की भ्रान्ति को मिटाकर सोनवी संभरानगरी दिखाई। सहज भाव से ही सतगुरु ने ताला खोला। दरवाजे उघाड़े और सहज में ही पाँचों जनों को अन्दर प्रवेश करवाया।

वहाँ किसी प्रकार का सूर्य, चन्द्र आदि का प्रकाश नहीं था। श्री देवजी के शरीर का ही पूर्ण प्रकाश हो रहा था। देव ज्योति के प्रकाश से अनेक महल मन्दिर आवास गृह देखे। भींये ने सोनवी नगरी और उनके स्वामी श्री जम्भेश्वर को आँखों से देखा और कहने लगा -

अब आप मुझे भी बिश्नोई करो। मैंने खोजते-खोजते मालिक को प्राप्त कर लिया है। यही सम्भरा नगरी और वही विष्णु अवतार है। मैंने सत्य को जान लिया है। ये तो साक्षात् सृष्टि के कर्ता-धर्ता सभी कुछ हैं। शास्त्रों की गति से परे हैं।

वहाँ पर सतगुरु ने आज्ञा प्रदान की कि मैं जो वस्तुएँ तुम्हें यहाँ से ले जाने के लिये कहूँ, वही आप पाँचों लोग उठा लें। अन्य कोई वस्तु उठाना नहीं। सद्गुरु ने कहा-एक सोने की मूण-मटका, दूसरी झारी,तीसरी माला,चौथी सुलझावणी, और पाँचवाँ स्वर्ण कलश। ये पाँचों वस्तुएँ लेकर देवजी के पीछे-पीछे स्वर्ण नगरी से बाहर आ गये।

न जाने रणधीर बावल के मन में क्या आया,अनायास ही एक सोने की सिला (सिलम) हाथ में उठा ली और उसे देखते ही देखते बाहर निकल आये। रणधीर ने बाहर आकर अपने ही हाथ में पराई वस्तु देखकर पछतावा किया कि मैं बिना पूछे यह अलौकिक वस्तु ले आया। किसी ने देखा ही नहीं और नहीं मुझे किसी ने रोका ही। अन्तर्यामी श्री देवजी ने सभी कुछ जानते हुए मुझे रोका नहीं। अवश्य ही इसमें कुछ राज होगा।

जाम्भोजी ने कहा-रणधीर! बिना पूछे क्या ले आया जो पछता रहा है? रणधीर ने क्षमा याचना की परन्तु श्री देवजी ने कहा-डरो मत! इसे तू परोपकार के कार्य में लगाते रहना। किन्तु है तो तेरी मृत्यु ही। जरा बच के रहना।

भींये के मन में आनन्द हुआ। पाँचों लोगों को लेकर श्री देवजी वापिस सम्भराथल आये। लोगों ने अलौकिक वस्तुएँ देखी, तो उन पर अलग-अलग जो जिसकी थी, उसी का ही नाम था। बीकानेर का राजा लूणकरण पूर्व जन्म से ही सेवक था इसलिये स्वर्ण कलश राजा लूणकरण को देने का आदेश दिया,क्योंकि वह उन्हीं के नाम से ही था।

इस प्रकार से परब्रहा परमात्मा ने परचा दिया और भींयो को बिश्नोई बनाया। भींया सेवक साधु हुआ और जाम्भोजी की स्तुति की। सद्गुरु मिल गये। जन्म-जन्म के पाप कट गये। अन्तर्यामी तो दिल की बात जानते हैं सेवक अधिकारी को पहचानते हैं।

पूरबिये जो चित्तौड़ से आये थे, उनसे देवजी ने कहा-आप से रानी अवश्य ही पूछेगी तो उनसे यही मेरा शब्द कहना, जो मैं यह सुनाता हूँ। इससे रानी को पिछले जन्म की बात याद आ जायेगी। इस प्रकार से ''आतर पातर '' शब्द सुनाया-

शब्द में बतलाया कि-आप लोग रानी से कहना कि मैं पूर्व जन्म में कृष्ण था। और द्वारिका स्वर्णमयी मेरी नगरी थी। वहाँ मेरे साथ अति पवित्रा रानी रुक्मिणी थी। वो भी सीता का ही अवतार थी। मन्दिर महल,द्वारिका स्वर्णमयी मेरी नगरी थी। सोने के महल थे तो क्या मैं उनसे मोह करता ?

इस समय तो मैं अकेला हूँ। यहाँ बागड़ देश में रात्रि होते ही सर्दी पड़ने लगती है। सूर्योदय होने पर भयंकर गर्मी पड़ती है। यहाँ पर प्राकृतिक प्रकोप तो देखिये। गर्म ठण्डी हवाएँ अबाध गति से चलती रहती हैं कभी सूखा पड़ जाता है, तो कभी अत्यधिक वर्षा होती है। ये असहनीय हैं। किन्तु यहाँ पर दुनिया वाले भी टिकने नहीं देते हैं। कोई न कोई दुःख दर्द लेकर खड़े ही रहे हैं। प्रतिदिन कोई न कोई औचाट-विघ्न लेकर खड़े ही रहते हैं। कई-कई भले आदमी भी हैं, किन्तु अधिकतर तो निगुरे लोग ही हैं, जो गहरी गहरी गालियाँ देते हैं।

जिस शरीर पर त्रेता-द्वापर में मल मल के सुन्दर वस्त्र पहना करते थे, उसी शरीर पर अब ऊन के वस्त्र पहने जाते हैं। उस समय हाथों में हीरों की माला थी किन्तु इस समय तो काठ के मनको की माला है बारह करोड़ प्राणियों के उद्धार हेतु मैं यहाँ पर आया हूँ। मेरा वहाँ स्वर्ग लोक से यहाँ आना हुआ है।

वियोग हुआ है। पिछली बातें याद करता हूँ तो मैं भी रोता हूँ। विलाप करता हूँ। उस समय त्रेता युग में वनवास हुआ था केवल चौदह वर्ष का ही, किन्तु लक्ष्मण सीता साथ थे। मुझे धैर्य कौन बंधायेगा ? मगरे के चीड़ी-मणिये, काच-कथिर कहाँ ! हीरे के मनको की बराबरी कर सकते हैं। हीरा तो हीरा ही होता है। काच तो अपने स्थान पर निकृष्ट ही है

वियोग तो पड़ता ही आया है। आगे भी पड़ता ही रहेगा। किन्तु वियोग दुःख में दुःखित न होवे वही शूरवीर है। जो पहले कभी दुखिया थे, वे अब सुखी हो जायेंगे, राज करेंगे। यह तो समय का फेर है।

पूर्ण पुरुष तो वही है। जो अपने कर्तव्य पर डटा रहे। जो युद्ध भूमि में जाकर शूरवीर कहा जाये वही सच्चा शूरवीर है। यहाँ सम्भराथल पर गर्मियों में तो अंगीठी की तरह यहाँ पृथ्वी का वातावरण तप जाता है जेठ के महीने ठण्डा जल उपलब्ध नहीं होता है। न तो यहाँ सोने के लिये पलंग है और नहीं बिछाने के लिये सेज ही है। गले में हीरों की माला भी नहीं है। जो न ही थी। इन प्राकृतिक सांसारिक परिस्थितियों से शिम्भू घबराता नहीं है न ही सुख का लोभ ही है। और न ही किसी प्रकार का मोह भी है। यह तो संस्कार की बात है। कभी किसी से संयोग तथा कभी किसी से वियोग होना निश्चित ही है।

हम अयोध्या में बाल्यावस्था में खेल खेलते थे। घोड़ों को नचाते थे, उस समय भाई लक्ष्मण मेरी आज्ञा में चलता था। उस समय वनवास में सीता लक्ष्मण साथ में रहते थे। जब सीता का हरण हुआ तो उस समय हनुमान साथ में थे। अपने सुख दुख की वार्ता कर लेता था। किन्तु इस समय तो मेरे साथ कोई नहीं है। मैं अपनी सुख दुःख की बात किससे कहूँ।

श्री देवजी ने यह शब्द रूपी भेंट झालीराणी के पास भेजा क्योंकि इस शब्द को सुनते ही पूर्व जन्म की

प्रीति संस्कार जग जायेंगे। अपने आप को पहचान लेगी कि मैं कौन हूँ? अन्य भेंट भी सोनवी नगरी से लायी हुई दी। प्रथम शब्द,दूसरी झारी,तीसरी माला,चौथी सुलझावणी। श्री देव ने कहा-ये चारों वस्तुएँ रानी को देना। रानी अपने पीव परमेश्वर को परख लेगी।

देवजी ने कहा-यह झालीरानी का जीव सीता का है। पूर्व जन्म में यह सीता थी। साथरियों ने पूछा-हे महाराज! तीन लोक की माता सीता चित्तौड़ के राज दरबार में राणी बन कर क्यों आयी? उसने मृत्यु लोक में क्यों जन्म लिया? श्री देवजी ने कहा-जब पंचवटी में वनवास का समय व्यतीत कर रहे थे, उस समय रावण का मामा मारीच कपट का मृग बन कर के आया था। उस समय सीता छली गयी थी। अन्त समय तक सीता के दिल से वह मृग निकल नहीं सका था। यह मेरा है, मुझे प्राप्त हो जाये। यही भावना सीता की बनी थी।

इसलिये वही मारीच यह सांगा राणा है, जो रानी का बेटा बन कर आया। मारीच मृग भी सीता के सौन्दर्य को देखकर मोहित था कि यदि ऐसी सुन्दर मेरी माँ होती तो कैसा था? यह मेरी माँ बने। इसी भावना से मारीच भी बेटा बना और सीता झालीराणी बन कर आयी। ''अन्त मति सो गति''

इस विषय में कभी भी आश्चर्य नहीं मानना। शिवजी के साथ सती दक्ष की बेटी थी। किन्तु दूसरे जन्म में उसी ने हिमाचल राजा के घर जन्म लिया। तथा सीता भी ऋषियों के खून से जन्मी थी। वह राजा जनक की बेटी बनी। कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी साधारण से राजा भीम के घर जन्मी थी। जीव ही प्रेम के आवेग में भगवान् की पत्नी बन जाता है। इसी प्रकार से सीता भी सांगाराणा की माँ बन गयी। किन्तु अब इसे ज्ञान हो गया है।

त्रेता से लेकर अब तक ये जीव स्वर्ग वासी थे। अब जन्म ले लिया है, क्योंकि वासना ही जन्म का कारण बनती है। अब आगे पुन: जन्म नहीं होगा। इस समय मैं झालीराणी को बोध कराऊँगा। इसलिये झाली को झारी माला आदि भेज रहा हूँ। यह मेरी सौगात (भेंट) है। राणी इस समय अपने को विधवा ही समझती है। भक्तिमती राणी को यह स्मरण दिलाना है कि तेरा पति परमेश्वर है तू कभी अनाथ नहीं हो सकती। सदा ही सनाथ है।

सद्गुरु ने चारों वस्तुएँ देकर साथ में अपने दो सेवकों को भी भेजा। और उन्हें समझाया कि प्रथम तो राणी को ये वस्तुएँ भेंट देना। फिर राणा को भी सचेत करना, क्योंकि सांगा मारीच का जीव होने से अश्रद्धालु है। उसी को तो मैंने राम रूप धारण कर मारा था।

श्री देव के आदेश को स्वीकार कर के छ: जने चित्तौड़ को रवाना हुए और उमंग के साथ चलते हुए कुछ ही दिनों में चित्तौड़ पहुँच गये। रानी अति आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी। महलों पर चढ-चढ कर सम्भराथल की तरफ देखती थी।

बिश्नोइयों ने चित्तौड़ शहर में प्रवेश किया, तो रानी ने छ: सेवक आते हुए देखे। अच्छी प्रकार से देख कर निश्चय किया और मन ही मन में कहा-आ तो गये। न जाने समाचार क्या लाये हैं? साथ में घोड़ा-गाड़ी भी है। लगता तो ऐसा ही है कि कार्य सिद्ध कर के आये हैं।

रानी ने अपने विश्वास पात्र सेवकों को भेजा और कहा कि उन लोगों को सीधे महल में ही बुला लाओ। रानी ने देखा कि कोई राजा आया होगा, किन्तु ये तो भगवान् के भक्त आये हैं। सिर पर टोपी पहनी हुई है। इनको यहाँ महल मे ही बुला लाओ। अवश्य ही कोई अच्छी खबर लेकर आये है। जाम्भोजी के सेवक प्रथम राज दरबार में पहुँचकर सांगा को भेंट स्वरूप वस्तुएँ प्रदान की और कहा -

आप स्वयं निरंजन परमेश्वर ने ये भेंट आपके लिये भेजी है और कहा है कि हे राजा! आपने बिश्नोइयों

से डाण माँगकर अन्याय किया है। आप इनसे डाण मत लीजिये। ये सेवक भक्त हैं, जो कुछ आपको चाहिये, मैं आपको दूँगा। जो दूँगा, वह अखूट होगा। आप भक्तों से डाण लेते हैं। इसे बन्द करे। यह आपके लिए ठीक नहीं है। राणा ने भेंट स्वीकार की। तब दूसरी राणी की विशेष भेंट उनको प्रदान की। राणी अपने पति परमेश्वर की भेजी हुई भेंट प्राप्त कर के बड़ी प्रसन्न हुई। अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी।

रानी ने पूछा-अन्य कोई मेरे लिये क्या आज्ञा फरमाई है? सेवकों ने जाम्भोजी द्वारा दिया हुआ शब्द पढ कर सुनाया। और कहा कि यही बस आपके लिये सौगात है। राणी ने सेवकों को अन्दर बुलाया और उन्हें बहुत बहुत धन्यवाद दिया। राणी ने भेंट स्वीकार करते हुए शब्द को बार-बार पढा।

अपने पूर्व जन्म की याद करके सिर धुनने लगी और अपनी सहेली से कहने लगी-हे सखी ! अब मुझे पूर्व की याद हो आयी है। थोड़ी सी भूल की वजह से मेरा हरण हुआ था। मेरे पति राम को कितना कष्ट हुआ। मैंने लक्ष्मण की बात मानी नहीं। मेरा मेरे पति से वियोग उस समय हुआ था। इस समय भी मैं मोह माया की वजह से जन्म लेकर आयी हूँ। सत्य ही फरमाया है श्री देव ने अब मेरे पति परमेश्वर साक्षात् विष्णु सम्भराथल पर विराजमान हैं।

मुझे ज्ञान हो चुका है। अब मैं एक बार दर्शन अवश्य ही करूँगी। या मुझे यहीं पर आकर दर्शन देंगे। मैं निहाल हो गयी हूँ। मैं तो संसार के मोह-माया में पड़कर भूल ही गयी थी कि मैं कौन हूँ? अब मुझे ज्ञान हुआ है। रानी को विलाप करते हुए देखकर सहेली कहने लगी-

हे बिश्नोइयों! आपने कोई छल, कपट, कोई जादू-टोना किया होगा। जिससे रानी इस प्रकार से विलाप कर रही है। बिश्नोइयों का रानी की सहेली के साथ वाद-विवाद को सुन कर रानी सचेत होकर कहने लगी-आप हमारे देवता हैं। उठकर चरणों में गिर पड़ी।

सेवकों ने कहा-हे मात! उठ जाओ! हमारे चरणों का कोई प्रभाव नहीं है। यह तो उन्हीं के चरणों की सेवा का फल है, जो आज हम आपका दर्शन कर सके। अन्यथा हमारे में इतनी योग्यता कहाँ है?

राणी कहने लगी-वह देवता कहाँ रहते हैं? उनका दर्शन सुलभ होगा कि नहीं? आप ही सुनाइये वे देवता कैसे हैं? इस शब्द पत्री द्वारा मुझे ज्ञात हुआ है कि देवजी दु:खी हैं, तो संसार में सुखी कौन है ? सेवक कहने लगे जैसा आपको पत्र द्वारा बताया है, वैसे ही देवजी रहते हैं। किन्तु दु:खी नहीं हैं। सिरजन हार ने बतलाया है कि जैसे वैसे ही सुखी हैं वे झूठ नहीं बोलते। जिस प्रकार से चीटिंयो के बिल पर ऊँट को बाँध देते हैं, तो वह सुखी कैसे हो सकता है।

देवजी दुनिया का भला करने के लिये उदास रहते हैं। उन्हें भोग वस्तु की इच्छा नहीं है। धरती की भाँति धैर्यवान हैं। दुनिया का दु:ख दूर करने के लिये एक पैर पर खड़े रहते हैं। रानी अपने पूर्व जन्म को याद करके कहने लगी।

मैंने कौन सा अपराध किया था कि राम ने मुझे त्याग दिया था। यदि त्यागना ही था तो मुझे सीता रूप में बनाया ही क्यों था? यदि अपनी भार्या बना ली, तो फिर क्यों त्याग किया? राम लक्ष्मण द्वारा खींची हुई कार को लोप दिया था। लक्ष्मण की मर्यादा थी, शक्ति थी। उसका आपने उल्लंघन किया है, जिस वजह से आपको वियोग सहन करना पड़ा।

रानी ने अपने पूर्व जन्म की कथा सुनी तो आंखो में आंसू निकल आये। रोने लगी। ऐसी वार्ता संतो से सुनकर रानी अपने आप को पहचान गयी। रानी ने शब्द श्रवण किया, लंबी श्ंवासे ली और कहने लगी-हे देव! आप मुझे अपने से विलग क्यों कर रहे हो? रानी बार-बार प्रणाम करती हुई आँखों में आँसू भर लाई।

शरीर रोमांचित होने लगा। अधिक कुछ कहने में समर्थ नहीं हो सकी।

हे देवजी! मैं तो आपकी जन्म जन्म की दासी हूँ। हे कर्त्ता! आपने मुझे गर्भवास में क्यो भेजा? यहाँ पर तो मैं और मेरा के मोह चक्कर में आपको तथा अपने को ही भूल गयी थी। मैं अपने पति से वियोग को प्राप्त हो गयी थी। अब तो मेरा जन्म-मरण मिटा दीजिये। और सदा के लिये अपने पास बुला लीजिये। मैं तो जीव हूँ। आप मेरे परमेश्वर है। राणी ने सांगा को बुलाया और कहा-बेटे! ये बिश्नोई मेरे गुरु भाई हैं। तुम इनके चरणों में प्रणाम करो। जाम्भोजी ने मेरी इच्छा पूर्ण की है। तुम्हारी भी करेंगे। इन बिश्नोइयों से अपनी सीमा में किसी प्रकार का डाण नहीं लेना। हे बेटा! तू तो पूर्व जन्म का मारीच था जो राम के बाण से मारा गया था। मैं सीता थी। मेरा बेटा बनने की मरते समय तुम्हारी वासना थी। वह वासना अब पूरी हो गयी है। अब तेरा भी जन्म सफल हुआ है, और मेरा भी। ये जाम्भोजी स्वयं राम विष्णु कृष्ण हैं।

राणा साँगा ने बिश्नोइयों का आदर किया और पाँचों कपड़े पहनाए। उन्हें डाण माफकर दिया। जाम्भोजी को सिरजन हार अम्बेश्वर मान कर के शिष्य बनना स्वीकार किया। जाम्भोजी के नियमों में चलने का प्रयास करने लगा। उनके साथ ही रायसल और वरसल भी बिश्नोई बने। झालीराणी के साथ अन्य बहुत से लोग बिश्नोई बने और अपने जीवन का कल्याण किया।

विधि से चलने पर सद्‌गुरु ने उन्हें स्वर्ग का अधिकारी बनाया। बारह करोड़ प्राणियों में ये भी प्रह्लाद पंथी जीव ही थे, जिन्हें सचेत किया। साँगा राणा एक समय सम्भराथल आये और देव दर्शन करके अपने को कृत्य कृत्य माना। अपने राज्य में बिश्नोई बसाने की प्रार्थना की? तब जम्भेश्वर ने कहा-जो बिश्नोई व्यापारी पूर्व देश के हैं, वे लोग जो तुम्हारे राज्य में आये थे, उन्हें ही आप अपने राज्य में बसालो। इस प्रकार से चितौड़ राज्य में बिश्नोइयों के गाँव बसे थे। वे गाँव-भीलवाड़ा, पुर, दरीबा, संभेलिया और मांडल आदि। सोने की मूण जेसलमेर के राजा जेतसी को दीगयी। उस पर उन्हीं का नाम था।

बीदे जोधावत को परचा देना

एक समय वीदे जोधावत मोतिये साध नै रोक्यो। जांभोजी मोतिये की मदति दूणपुर आये। वीदो वाद रूपी क्रोधवंत हुय देवजी के हजूर आयों। वीदो कैवण लागौ-कोई जोगी अलेख धीयाव कोई जंगम सन्यासी शिव नु ध्याव। कोई गोरख नु धीयाव। कोई भगवंत नु धीयाव। कोई परमेसर नु धीयाव।सो कोई देव दुगरी ध्याव। नी करछः तुंतो आपो आप देव कहावै छै। सो देव पणै मो दिखाल्य। आज थारी सीधाई जाणी जासी। देवजी कहै-थारै मनां मां सो पूछय। वीदो कह-आके आम किया। नीबे नारेल किया। पाणी का दूध किया। वीदो कह आं थांहर सोरम क्यांहरी आव। जाम्भोजी श्री वायक कहै -

शब्द-3

ओ३म् मोरे अंग न अलसी तेल न मलियो, ना परमल पीसायों।
जीमत पीवत भोगत विलसत दीसां नाहीं, म्हापण को आधारूं।

अड़सठ तीरथ हिरदा भीतर, बाहर लोका चारूं।
नान्हीं मोटी जीया जूंणी, एती सास फुरंते सारूं।
वासंदर क्यूं एक भणीजे, जिंहि के पवन पिराणौं।
आला सूका मेल्हे नाहीं, जिहिं दिश करे मुहाणों।
पापे गुन्हे वीहे नाही, रीस करे रीसाणों।
बहूली दोरे लावण हारूं, भावे जाण में जाणूं।
ना तूं सुरनर, ना तूं शंकर, ना तूं राव न राणों।
काचे पिंड अकाज चलावे, महा अधूरत दाणों।
मोरे छुरी न धारूं, लोह न सारूं, न हथियारूं
सूरज को रिप बिहंडा नाहीं, ताते कहाँ उठावत भारूं
जिहिं हाकणड़ी बलद जूं हांके, न लोहे की आरूं।।3।।

नाथोजी अपने शिष्य वील्हाजी के प्रति कथा सुनाते हुए कहने लगे-हे शिष्य! इन राजाओं की परंपरा में जोधपुर नरेश का बेटा बीदा दूणपुर में राज करता था। वह गुरु की आज्ञा का लोप करता था। वह अहंकारी व विवादी व्यक्ति था। उसी नगरी में ही एक मोती नाम का मेघवंशी था। वह गुरु का शिष्य बन गया था। उसने गुरु पंथ को अपनाया था। शुद्ध कर्म करने लगा था। ''आचारो ही परमो धर्म:'' आचार ही प्रथम धर्म है। इसी धर्म का पालन करना था। उनतीस नियमों का पालन करने में तत्पर था। श्री गुरुदेव मोतिये पर अति प्रसन्न थे। प्रात:स्नान, संध्या, हवन, सद्गुरु की सेवा,श्रद्धा,तथा एक विष्णु का ही भजन करना,अखाद्य भोजन छोड़ दिया था। अपने ही हाथ से भोजन बनाता था। शौच आदि पवित्रता से जीवन व्यतीत करता था। असंस्कारी, चाहे वह जाति से ब्राह्मण ही क्यों न हो उससे संगति नहीं करता था।

दूर ही रहता था। अपने जाति भाइयों से भी दूर ही रहता था। उनके साथ खान-पान व्यवहार नहीं करता था। दुर्मति मिट गयी थी और सुमति आ गयी थी। ऐसा साधु पुरुष दूणपुर में रहता था।

उसी दूणपुर का राजा वीदो राठौड़ था। वीदे ने अपने सेवकों से सुना-कि एक मोती मेघवाल बिश्नोई हो गया है और उत्तम जाति ब्राह्मण से भी छूआछूत करता है।

वीदे ने कहा-ऐसा मेरे राज्य में कौन है? जो अपना पुस्तैनी धन्धा छोड़कर उत्तम जाति की बराबरी करता है? इस प्रकार से तो सभी छोड़ने लग गये तो हमारे छोटे-बड़े कार्य कौन करेगा? इसके देखा देखी तो दूसरे भी छोड़ देंगे। इसको पकड़ कर ले आओ और चरखी पर चढा दो। जल्दी ही समाप्त करो।

वीदे की बात किसी दयावान ने सुनी और कहा-हे राजन्! इतनी जल्दी ना करो। चार पहर तक इसे मुहूलत दी जावे। यह अपने इष्ट देवता को तो याद कर ले।

वीदे ने उसे चरखी तो नहीं चढाया, किन्तु पति पत्नी दोनों को जेल में बन्द कर दिया। जेल में बन्द उन दोनों भक्तों ने हरि का स्मरण किया। और विनती करने लगे-हे सम्भराथल धणी! हम तो अब आपकी ही शरण में हैं। हमारा आपके सिवा और कोई नहीं है। आप यदि बचा तो हम बच जायेंगे। अन्यथा वीदे के द्वारा मृत्यु होना तो निश्चित् ही है। धर्म रक्षा हेतु हम प्राण दे देंगे, तो भी मोक्ष प्राप्ति होगी। दोनों ही हाथों में लड्डू हैं। यह सुअवसर प्राप्त हुआ है अब हम चूकने वाले नहीं हैं। इस प्रकार जेल में बन्द भगवान् से पुकार करने लगे।

सवा पहर रात्रि जब व्यतीत हो गयी तब अन्तर्यामी ने साथरियों से कहा- कि एक सेवक दूणपुर में है। उसको संकट आया है। मैं जाता हूँ। आप लोग यहीं रहें।

सद्‌गुरु ने अपनी इच्छा से मनसा विमान चलाया और दूण पुर के पास ही एक स्थल पर विराजमान हुए। प्रात:काल में ही मोतिये को मारने का उपाय किया जाने वाला था, किन्तु किसी व्यक्ति द्वारा वीदे को यह पता चला कि मोतिये का गुरु आ गया है। पास ही में एक स्थल पर आसन लगाये बैठा है।

वीदे ने कहा-अच्छा हुआ। मैं स्वयं उनके वहाँ जाता, किन्तु स्वयं ही आ गया, तो अच्छा ही हुआ। वीदा तैयार होकर मिलने के लिए चल पड़ा। चलते-चलते विचार किया कि वह मोतिये का गुरु इसे मुक्त करवाने हेतु आया है। मैं इस पुरुष के पास तो जा रहा हूँ, किन्तु मैं इसे अपना मस्तक तो नहीं झुकाऊँगा। पीछे से जाकर पीठ पर लात मारूँगा। यह भी क्या समझेगा कि दूणपुर आया है। चलते चलते ज्यों ज्यों पास पहुँचा त्यों त्यों मति बदल गयी। लात मारने की इच्छा तो थी, किन्तु जाम्भोजी के प्रभाव क्षेत्र में आने से विचार बदल गये। बिना प्रणाम किये ही पास में जा बैठा। विवाद करने लगा-

वील्होजी ने पूछा-हे गुरुदेव! वीदे ने अपना विचार बदल क्यों दिया? क्या चमत्कार हुआ था? यहाँ पर भी कोई कृष्ण चरित्र हुआ है तो बतलाने की कृपा करें। नाथोजी उवाच-वीदा राठौड़ अहंकारी, विवादी, हठीला था। परन्तु भगवान् के पास में आने से वह अपनी हिंसक वृत्ति भूल गया था। क्योंकि जो भी मन, वचन,कर्म से सर्वथा अहिंसा का पालन करे,उसके पास में रहने वाला भी वैर भाव भूल जाता है। ऐसी ही महिमा वाले थे सद्‌गुरुजी। उनके पास आने से वैर भाव भूल गया था? वह वीदो। वीदो अहंकारी, विवादी अत्यधिक था। वह कृष्ण चरित्र को क्या समझे?

उन्हें क्या पता चले कि स्वयं भगवान् ही समक्ष विराजमान हैं? वीदा कहने लगा-कोई तो अपने को योगी कहता है,कोई संन्यासी कहता है,कोई तपस्वी कहता है, कोई अपने को सिद्ध साधु एवं साधक कहता है। कोई भक्त भगवान् को ही जपता है,किन्तु आप अपने को देवता भगवान् विष्णु कहते हैं। यदि आप में देवत्व है, तो आज मुझे दिखलाओ। जिस शक्ति से अपने को देवता कहते है।

आप लोगों को भ्रमित करके उनका पुश्तैनी कर्म छुड़ाते हैं। तो आज वह अपनी शक्ति मुझे दिखलाओ। सद्‌गुरु ने कहा-हे लोगों! जो जीव अपरिचित है, उसे तो परिचित करना ही होगा। यह वीदा तो ऐसा ही मूढ है।

वीदे से प्रकट रूप से कहा-हे वीदा! तुझे क्या अलौकिक कार्य चाहिये। जो देखना चाहता है वह मैं तुझे दिखाऊँगा। वीदा कहने लगा, यदि आप अलौकिक कृष्ण चरित्र कर सकते हो तो इन नीमों के नारियल देखना चाहता हूँ। सद्‌गुरु ने मोतिये को छुड़ाने हेतु नीमों के नारियल लगा कर के दिखलाये। वीदे ने तथा उपस्थित जन समुदाय ने नीमों के नारियल लगे हुए देखे तो सभी ने जाम्भोजी की जय जयकार की और अपने को धन्यवाद दिया।

एक सेवक को भेजकर नारियल तोड़ कर मँगवाये, और वही सभा में ही तोड़कर प्रसाद लिया तो कहने लगे-है तो नारियल ही। इसमें फर्क नहीं है। नारियल खाते जाते और कहते जाते कि ऐसा तो अचंभा न तो कभी सुना है, और न ही कभी देखा है। वीदा कहने लगा-यह कैसा मानव है जो नीम के नारियल लगा देता है।

उसी समय उसी सभा में ही एक भेदी कहने लगा-यह तो जादूगर का जादू खेल है। ऐसा तो बाजीगर लोग खेल दिखाते ही रहते हैं। वीदे ने कहा-यह ठीक कह रहा है। इस परचे को मैं नहीं मानता। जितनी कला मनुष्य के पास है, यदि उतनी ही कला देव के पास है, तो देव को लज्जा आनी चाहिये। इससे तो जाम्भोजी देव सिद्ध नहीं हो सकते। क्योंकि साधारण गलियों में घूमने वाले भी ऐसा करतब दिखाते हैं।

वीदा ने पुन: कहा-यदि आप मेरी इच्छा पूर्ण करेंगे, तो इस समय मेरे सामने आक के पेड़,दिखाई दे रहे हैं उन आकों के मैं आम देखना चाहता हूँ और नारियल की तरह बिना मौसम के आम के फल खाना चाहता हूँ। जम्भेश्वरजी ने कृष्ण चरित्र किया और आक वृक्षों के आम लगाये। केवल दिखलाने की बात नहीं थी। आम मंगवाकर जिमाया भी। सभी ने स्वाद चखा और कहने लगे,वही आम का मधुर रस है। ऐसी अनहोनी तो कृष्ण चरित्र से ही संभव है। कोई गोड़िया,कोई बाजीगर नहीं कर सकता।

वीदे के मन में कुछ शांति हुई। क्योंकि अलौकिक आम और नारियल वीदो भी जीम चुका था। इतना करने पर भी वीदे का संदेह अब तक निवृत्त नहीं हुआ था। कहने लगा-यदि आप साधारण संत न होकर देव रूप में हो तो एक परचा मुझे और दे दीजिए। तो मैं मोतिये को मुक्त कर दूँगा। यदि आप जल का दूध बना कर सभी को पिला दें तो मेरा मन निश्चय कर लेगा।

जाम्भोजी ने कहा-हे वीदा! जगत में दूध तो अनेक पशुओं का होता है, किन्तु तू जल का दूध बनाने की बात कहता है। फिर भी मैं तुझे दूध पिलाऊँगा, किन्तु किसका दूध पीयेगा? तुझे किसका दूध अच्छा लगता है। वीदा ने कहा-महाराज ! यह बात आपकी सत्य है कि अनेक पशुओं से दूध प्राप्त होता है, किन्तु मैं गाय का दूध पीना चाहता हूँ। क्योंकि गऊ का दूध उतम माना जाता है। यदि यह परचा आपका सत्य हुआ तो मैं मोतिये को छोड़ दूँगा।

हे वीदा! तुम्हारे विश्वास पात्र सेवक को घड़ा देकर भेजो। जहाँ से भी शुद्ध जल मिले, वहाँ से मंगवाओ। कलश में जल छान कर ले आये। सेवक ने जल का कलशा कपड़े से ढक कर पास में रख दिया। सद्‌गुरु ने शब्द उच्चारण किया और कपड़ा उठाकर वीदे को बतलाया और कहा-अब आप भी इस पवित्र दूध को पिएँ, औरों को भी पिलाएँ।

प्रथम तो अति शोभायमान उज्ज्वल दूध सभी ने आगे बढ कर देखा तथा बाद में सभी ने पिया भी। सभी ने प्रशंसा करते हुए कहा-यह दूध तो गाय के दूध से भी सवाया है। गाय के दूध से भी स्वादिष्ट, मधुर है। वीदा ने कृष्ण चरित्र द्वारा निर्मित दूध का आस्वादन लिया और कहने लगा-भोपा भरड़ा द्वारा जो अलौकिक वस्तुएँ दिखाई जाती हैं, वे तो केवल देखने तक ही सीमित हैं। उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। बाजीगरों का खेल तो झूठा है, किन्तु जाम्भोजी का यह मंत्र सत्य है। जिससे पानी का दूध बन जाता है।

वीदा कहने लगा-यह मंत्र मुझे भी सिखलाओ ताकि मैं जब चाहूँ तब जल का दूध बना लूँ। श्रीदेवजी ने कहा-हे वीदा! जिस मति शक्ति से जल की उत्पत्ति होती है, बादल बन करके बरसता है, उसी वर्षा से घास धान आदि पैदा होते हैं। गऊवें घास चरती हैं। जल पीती हैं। उसी घास जल से गऊ के पेट में दूध ग्रहण करता है। शरीर में शरीर पैदा होते हैं।

उसी शक्ति मति द्वारा ही जल का दूध भी हो जाता है। अन्य शक्ति मति द्वारा नहीं हो सकता। वह विद्या शक्ति तुम्हारे पास नहीं है। इसलिये केवल मंत्र सीखने से जल का दूध नहीं हो सकता। ऐसी करामात सीखी भी नहीं जा सकती। किन्तु वीदे ने मंत्र लिखने के लिये कागज कलम और दवात मंगवायी और मोहता से कहने लगा-आप लिखिये, कैसे नहीं लिखा जायेगा? आप मुझे याद करवा दीजिये। मैं जल का दूध बना लूँगा।

मोहता कलम कागज लेकर बैठ गया-वीदा ने कहा-बैठे क्या देख रहे हो? जैसा देवजी उच्चारण करते है।, वैसा लिखते जाइये। मोहते ने कहा ठाकुर साहब। जो तीनों लोकों का पालन-पोषण करने वाला है,श्वास प्रति श्वास जीवों की संभाल करता है, जो सभी को रोजी-रोटी देता है,उनके शब्द से ही जल का दूध हो सकता है, अपने शब्दों द्वारा नहीं हो सकता।

फिर भी मोहतो सावधान होकर लिखने लगा किन्तु मन स्थिर नहीं हो सका। जांभोजी के होठों से तो शब्द निकल रहे है किन्तु मोहता पकड़ नहीं पा रहा है। अन्त में मोहते ने हाथ जोड़ लिये और वीदे से कहने लगा-यह मंत्र मेरे से तो नहीं लिखा जायेगा।

मोहता कहने लगा-जिस प्रकार से शरीर में जीव रहता है किन्तु उसका आदि अन्त पार नहीं पाया जा सकता है। कुछ भी ठीक से नहीं कह सकते। वह अलख निरंजन ही उसकी गति को जानता है। उसी प्रकार से ही यह जल का दूध हो गया, किन्तु उसकी गति नहीं जानी जा सकती। वीदे ने पूछा-आपका शरीर महिमावान है। आपके दिव्य शरीर में सुगन्ध आ रही है। क्या आपने कोई सुगन्ध वाला तेल या परमल लगा रखी है? यदि ऐसा है तो वह कौन सा तेल है जो हमें भी बतलावे हम भी आपकी तरह सुगन्धी प्राप्त करें।

श्री देवजी ने शब्द सुनाया-मोरे अंग जिसका भावार्थ इस प्रकार से है-हे वीदा! मैंने अपने शरीर में कोई सुगन्धी वाला तेल या परमल नहीं लगाया है। किन्तु तुम सोचो! शरीर में दुर्गन्ध क्यों आती है? हम जो भी खाते पीते हैं, उसी की ही दुर्गन्ध बनती है। मैं तो कुछ भी खाता पीता नहीं हूँ, तो जीवित किस आधार पर रहते हो? श्री देवजी ने कहा-हम ही तो सम्पूर्ण जगत जीवन के आधार भूत हैं। किन्तु हमारा कोई आधार नहीं है। हम स्वंय समर्थ हैं।

जहाँ सद्गुरु, देव, ऋषि, मुनि, भक्त, संत विराजमान होते हैं। और जल का स्नान होता है, वही तीर्थ होता है जांभोजी कहते हैं कि हे वीदा! अड़सठ तीर्थ तो हृदय के भीतर ही हैं। बाह्य तीर्थ तो लोकाचार है। जब हृदय स्थित तीर्थो में स्नान हो जाये तो बाह्य तीर्थो की आवश्यकता नहीं रह जाती है। तथा हृदय के तीर्थो का जब तक पता नहीं चले तब तक बाह्य तीर्थ भी उपयुक्त हैं। ये तीर्थ आचार विचार को शुद्ध करने वाले हैं।

छोटी मोटी जीव-योनियाँ जो जन्म-मरण के चक्कर में चलती रहती हैं। ये सभी तो एक श्वांस के जीवन वाले हैं। श्वास आया तो जीवन, नहीं आया तो मृत्यु। जिन्दगी अस्थिर है। मृत्यु सदा ही सिर पर खड़ी है। हे वीदा! तू ,ऐसा क्यों कर रहा और किस के लिये? तुम नहीं जानते कि यह क्रोध तो धधकती हुई अग्नि है। इस अग्नि को जलाने में पवन ही प्राण है। क्रोध को बढाने में भी शब्द ही प्राण है। यह क्रोध रूपी अग्नि भंयकर रूप धारण कर लेती है, तो न तो सूखे को छोड़ती है और नहीं हरे को छोड़ती है। दोनो को ही जला देती है।

उसी प्रकार से यह बढा हुआ क्रोध भी यह नहीं देखता कि यह सामने वाला व्यक्ति अपराधी है या निरपराधी है। दोनों को सामान्य रूप से पीड़ित करता है। अग्नि इन्धन को जला देती है और स्वंय भी जल कर राख हो जाती है। इसी प्रकार से क्रोध भी स्वंय जलता है और दूसरों को भी जलाता है स्वंय कष्ट में पड़ता है,सामने वाले को भी कष्ट में डालता है। यह चाहे जाने में हो या अनजाने में हो अग्नि तो जलायेगी ही।

हे वीदा! तू क्रोध क्यों करता है? न तो तू शंकर है। न ही तू सुर-देवता ही है और न ही तू नर ही है। तू मानवता के गुणों से युक्त ही नहीं है। न ही तू कोई राजा ही है। इस कच्चे शरीर से अकर्तव्य कर्म कर रहा है। तू महान धूर्त है। तू राक्षस है।

वीदा कहने लगा-हे महाराज ! आप तो बड़ी ही कठोर वाणी बोलते हैं। इस प्रकार से तो आपके शत्रु पैदा हो जायेंगे तो आपको हानि पहुँचा सकते हैं अपने बचाव हेतु आप कोई शस्त्र भी रखते ही होंगे। यदि नहीं रखते तो मैं आपको देता हूँ। आपको शस्त्र पास में रखना चाहिये।

श्री देवजी ने कहा-हे वीदा ! मेरे पास किसी भी प्रकार का लोहे से बना हुआ शस्त्र नहीं है। मैं तो अपने पास बैल हांकने वाली हांकणी के समान भी लोहे या लकड़ी का हथियार नहीं रखता, क्योंकि मुझे भय नहीं

है।

सूर्य का शत्रु कभी विनाश नहीं कर सकता। सूर्य का कोई शत्रु हो भी नहीं सकता। रात्रि में चमकने वाला जुगनू क्या सूर्य का शत्रु हो सकता है ? उसी प्रकार से संसार के लोग तो मेरे सामने जुगनू के समान ही हैं। जो सूर्य उगने से पूर्व ही अपनी कला दिखाते है। सूर्य के सामने नहीं।

वीदा कह उदभूद परचौं दीखालौं। न कणी मांग्यौं नैं कणी दानूं। दुणपुर की हदेक म्रघ श्रब सोनै का करूं।श्रब सोने की पहाड़ी करूं। वीदो कहै पातेस्या खोसल्य। देवजी कह – बारै बौ घैणा पाहण बरसाउ। वीदो कहै विच माहै तीस भूख मरा। जांभोजी कह छ रूते बारमास मुसलधार मेह बरसाउ। वीदो कहे पाणी सुं वहे जावां। है मैं म्हानैं सहस डील्ह करी दीखावौ। जाम्भोजी सुकल दीसां – श्री वायक कहै –

शब्द-67 (शुक्ल हंस)

ओ३म् श्री गढ़ आल मोत पुर पाटण भुय नागौरी, म्हे ऊंडे नीरे अवतार लीयो।
अठगी ठंगण, अदगी दागण, अगजा गंजण, ऊनथ नाथन अनूं नवावन।
कांहि को मैं खैंकाल कीयों, कांही सुरग मुरादे देसां, कांही दौरे दीयूं।
होम करीलो दिन ठावीलो, सहस रचीलो छापर नींबी दूणपूरू।
गाँव सुंदरीयो छीलै बलदीयो, छन्दे मन्दे बाल दीयो।
अजम्है होता नागो वाड़े, रैण थम्भे गढ़ गागरणो।
कुं कुं कंचन सोरठ मरहठ, तिलंग दीप गढ़ गागरणो।
गढ़ दिल्ली कंचन vj दूणायर, फिर फिर दुनियां परखै लीयों।
थटे भवणिया अरू गुजरात, आछो जाई सवा लाख मालबै। पर्वत मांडू मांही ज्ञान कथूं।
खुरासाण गढ़ लंका भीतर, गूगल खेऊ पैर ठयो।
ईडर कोट उजैंणी नगरी, काहिदा सिंधपुरी विश्राम लीयो।
कांय रे सायरा गाजै बाजै, घुरे घुर हरे करे इंवाणी आप बलूं।
किंहि गुण सायरा मीठा होता, किंहि अवगुण हो0 खार खरूं।
जद वासग नेतो मेर मथाणी, समंद बिरोल्यो ढोय उरूं।
रेणायर डोहण पांणी पोहण, असुरां बेधी करण छलूं।
दहशिर ने जद वाचा दीन्ही, तद म्हे मेल्ही अनंत छलूं।
दह शिर का दश मस्तक छोnया, ताणु बाणु लडू कलूं।
सोखा बाणू एक बखाणू, जाका बहु परमाणूं निश्चय राखी तास बलूं।
राय विष्णु से बाद न कीजै, कांय बधारो दैत्य कुलूं।
म्हे पण म्हेई थेपण थेई, सा पुरुषा की लच्छ कुलूं।
गाजै गुड़के से क्यू वीहै, जेझल जाकी संहस फणूं।
मेरे माय न बाप न बहण न भाई, साख न सैंण न लोक जणों।

बैकुण्ठे विश्वास बिलम्बण, पार गिरांये मात खिणूं।
विष्णु विष्णु तू भण रे प्राणी, विष्णु भणंता अनंत गुणूं।
सहंसे नावें, सहंसे ठावें, सहंसे गावें, गाजे बाजे, हीरे नीरे।
गगन गहीरे, चवदा भवणे, तिहूँ तृलोके, जम्बू द्वीपे, सप्त पताले।
अई अमाणो, तत समाणो, गुरु फुर्माणो, बहु परमाणो। अइयां उइयां निरजत सिरजत।
नान्ही मोटी जीया जूंणी, एति सास फुरंतै सारूं।
कृष्णी माया घन बरषंता, म्हे अगिणि गिणूं फूहारूं।
कुण जाणै म्हे देव कुदेवों, कुण जाणै म्हे अलख अभेवों।
कुण जाणै म्हे सुरनर देवों, कुण जाणै म्हारा पहला भेवों।
कुण जाणै म्हे ग्यानी के ध्यानी, कुण जाणै म्हे केवल ज्ञानी।
कुण जाणै म्हे ब्रह्मज्ञानी, कुण जाणै म्हे ब्रह्माचारी।
कुण जाणै म्हे अल्प अहारी, कुण जाणै म्हे पुरुष क नारी।
कुण जाणै म्हें वाद विवादी, कुण जाणै म्हे लुब्ध सुवादी।
कुण जाणै म्हे जोगी के भोगी, कुण जाणै म्हे आप संयोगी।
कुण जाणै म्हे भावत भोगी, कुण जाणै म्हे लील पती।
कुण जाणै म्हे सूम क दाता, कुण जाणै म्हे सती कुसती।
आपही सूम र आप ही दाता, आप कुसती आपै सती।
नव दाणूं निरवंश गुमाया, कैरव किया फती फती।
राम रूप कर राक्षस हड़िया, बाण कै आगै बनचर जुड़िया।
तद म्हें राखी कमल पती, दया रूप म्हें आप बखाणां। संहार रूप म्हें आप हती।
सोलै सहंस नवरंग गोपी, भोलम भालम टोलम टालम।
छोलम छालम, सहजै राखीलो,म्हे कन्हड़ बालो आप जती।
छोलबीया म्हें तपी तपेश्वर, छोलब किया फती फती।
राखण मतां तो पड़दे राखां, ज्यूं दाहै पांन वणासपती।

वीदे को तीन परचे दिखाये। एक शब्द कहा। किन्तु वीदा संतुष्ट नहीं हुआ,और कहने लगा–कोई अद्भूत परचा दिखलाओ। ऐसा चमत्कार जो न तो किसी ने अब तक दिखाया है और नहीं कोई दिखा सके। न भूतो न भविष्यति।

श्री देव ने कहा–दूणपुर की सीमा में जितने मृग हैं, उन्हें सोने का कर दूँ। तथा तुम कहो तो तुम्हारी सीमा में जितनी पहाड़ियाँ हैं, वे सभी सोने की कर दूँ। वीदा कहने लगा–यदि ऐसा होगा तो हम से बादशाह छीन लेगा। हमें तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

देवजी ने कहा-तुम्हारी राज्य सीमा के बाहर बड़े बड़े पत्थर बरसा दूँ। वीदे ने कहा-यदि ऐसा करोगे तो हम बीच-बीच में भूख मर जायेंगे। अन्नादि कहाँ से आयेंगे ऐसा न करें।

श्री देवजी ने कहा-बारह महीने मूसलाधार वर्षा करवा दूँ यदि तुम चाहो तो। वीदा ने कहा-हम लोग डूबकर मर जायेंगे। आप कृपा करे और हमें सहस्त्र शरीर करके दिखलायें। क्योंकि आप ही तो कृष्ण चरित्र की बात करते हैं। कृष्ण ने तो अर्जुन को विराट रूप दिखाया था।

भगवान् ने कहा-अब वह विराट् रूप तो दुबारा नहीं दिखाया जा सकता। क्योंकि एक कार्य एक ही बार होता है। पुनः आवृत्ति नहीं की जा सकती। किन्तु हे वीदा ! तुम अपने विश्वास पात्र सेवकों को जहाँ कहीं भी कितने ही गाँवों में भेजोगे, मैं वहीं पर यहीं बैठा हुआ एक साथ दिखाई दूँगा। ज्योति स्वरूप से मैं सभी जगह विद्यमान हूँ। इस समय तुम्हारे पास भी मैं हूँ।

वीदा कहने लगा-सभी जगहों पर नहीं, इसी एक जगह पर ही सहस्त्र शरीर कर के दिखलाओ तो हमारा मन मानेगा। हमें विश्वास एवं श्रद्धा होगी। पंडित ज्योतिष आदि शास्त्रों का विचार करते हैं और कहते हैं कि चारों युगों में अवतार तो निश्चित जो होना है, वही होगा। यहाँ मरुदेश में अवतार कैसे होगा ? हमारे शास्त्रो में लिखा नहीं है।

श्री देवजी ने बतलाया कि असीम, निरंजन, निराकार को न तो पंडित ज्योतिषी और न ही उनके बनाए हुए शास्त्र बन्धन में बाँध सकते। वह सर्व समर्थ कर्ता क्या करेगा ? इस बात को तो वही जानता है। तुम्हारे पंडित नहीं जानते हैं।

एक मंत्री कहने लगा-यदि सहस्त्र डील न कर सको तो कोई बात नहीं है, यहीं पर पाँच शरीर एक साथ दिखा दें तो हजार भी दीख सकते हैं।

श्री देवजी ने कहा-मैंने तो आप लोगों को छूट दे दी है, जहाँ पर जितने रूप देखना चाहते हैं, उतना ही देखें। इस प्रकार से चालीस स्थानों पर वीदे ने अपने सेवक भेजे थे। उन्हीं जगहों पर भगवान् ने अपना दिव्य रूप दिखाया था। सेवकों ने जैसा देखा था, वैसा ही वापिस आकर वर्णन किया था। वीदे के प्रति शुक्ल हंस शब्द सुनाया था। जिसका भाव इस प्रकार से है -

श्री जम्भेश्वरजी वीदे के प्रति कहते है कि हे वीदा ! मैं श्री गढ बैकुण्ठ धाम से आल-चलकर मोतपुर-मृत्यु लोक में आया हूँ। पाटण भूंय नागौरी-नागौर की पट्टी में जहाँ गहरा जल है ऐसे बागड़ देश में मैंने अवतार लिया है। अवतार लेने के क्या कारण है ? यह आगे शब्द में बतलाते हैं। जो ठग लोग हैं। जो दूसरों को ठगने के लिये, उन्हें सुपथ का पथिक बनाने के लिये। धर्म का चिह्न धारण कर के धार्मिक बनाने के लिये। जो लोग शारीरिक दैनिक क्रिया करना नहीं जानते हैं, उन्हें पवित्रता सिखाने के लिए। जो लंबी-लंबी जटाएँ रखते हैं, शुद्धता से दूर हैं, उन्हें शुद्ध पवित्र शिष्य बनाने के लिए। जो धर्म की मर्यादा रूपी बंधन से मुक्त हैं, उन्हें धर्म के बंधन में बाँधने के लिए। उनकी उद्दण्डता पर अंकुश लगाने के लिये। जो किसी के आगे झुकते नहीं हैं, नमन करना नहीं जानते हैं, महान अहंकारी हैं, उनके अहंकार की निवृत्ति के लिए मैंने इस मरुभूमि में अवतार लिया है।

इस समय अधिकारी के भेद से तीन प्रकार के लोग हैं। उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार ही गति प्रदान करूँगा। कुछ लोग तो बिल्कुल ही मूढ हैं। उनका तो विनाश ही होना है। जन्म-मरण के चक्कर में चौरासी को भुगतेंगे। कुछ लोग ज्ञान के अधिकारी हैं, उन्हें स्वर्ग मुक्ति प्रदान की जायेगी। और अन्य कुछ लोग तो महान् पापी हैं, उन्हें तो नर्क दिया जायेगा।

हजारों स्थान में एक ही समय श्री देवजी ने हवन किया- दिन निश्चित किया, उन जगहों का नाम बतलाते हैं। छापर, नींबी, दूणपुर, गाँव सुंदरियो, छीलै, बलदीयों, छंदे मंदे, बालदीयो, अजमेर, होता, नागौर, रणथम्भौर, गढ, गागरौन (सवाई माधोपुर), कुं कुं कंचन, सोरठ, मरहठ, तिलंग दीप, गागरणों, गढ दिल्ली, कंचन दूणायर, थटे, भवणिया, गुजरात, आछोजाई, सवालाख, मालवै, पर्वत, मांडूं, खुरासाण, गढ लंका, ईडर कोट, उजैणी सिन्धपुरी आदि।

श्री गुरु जांभोजी कहते हैं कि हे वीदा! कुछ समय तक मैंने जगनाथ पुरी में विश्राम लिया। वहाँ पर मैंने समुद्र से कहा था-हे समुद्र! क्यों गर्जना करता हुआ भयंकर ध्वनि करता है? अपने ही अहंकार की पुष्टि करता है।

हे सायर! पहले तो तू मधुर ही था, किन्तु अब खारा कड़वा क्यों हो गया? ऐसा क्या हुआ होगा? सागर ने तो जवाब नहीं दिया। इधर वीदे ने भी कुछ जवाब नहीं दिया। तब स्वयं ही श्री देवजी ने बतलाया सुनो।

भगवान् की आज्ञा से जब देव-दानवों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था, तब मधुर अमृत तथा चौदह रत्न तो देवताओं ने निकाल लिये तभी से कड़वा हो गया। हे वीदा! सागर का अहंकार भी नहीं रह सका। तब तेरा अहंकार भी नहीं टिक सकेगा। अहंकार की वजह से ही समुद्र रस विहीन कड़वा था। तुम्हारी भी वही दशा होगी। अहंकारी दानव तो अमृत से वंचित रह गये, किन्तु विनम्रशील देवता अमृत पान कर गये।

हे वीदा! दससिर वाले रावण को प्रथम तो वचन दिया था, जिससे रावण शक्ति संपन्न हो गया। फिर उसी रावण के साथ छल करने हेतु सीता को लंका में भेजी, और रावण के दस मस्तक काट डाले। बांण तांण तांण के मारे थे और रावण को कुल के सहित नष्ट कर दिया था। वही बाण अब भी मेरे पास मौजूद हैं। किन्तु इस समय आवश्यकता नहीं पड़ेगी। रावण की भांति तू भी वीदा, नीति मर्यादा को भंग कर रहा है। वही दशा तेरी होगी।

हे वीदा! जब राम रूप धारण करके स्वयं विष्णु ही सीता को लाने के लिए सेना सहित लंका में जा रहे थे, किन्तु बीच में समुद्र ने मार्ग अवरुद्ध कर दिया। तीन दिन तक तो प्रार्थना ही करते रहे, किन्तु उस प्रार्थना से समुद्र नहीं माना। रास्ता नहीं दिया। तो रामजी ने अग्नि बाण चढा लिया था और कहा था-

एक बाण से सुखा डालूँगा। सागर ने भी मानव रूप धारण करके पुल बनाने का उपाय बतला दिया। उसी प्रकार से वीदा तेरी भी वही गति होगी । किसी अहंकारी का अहंकार टिक नहीं सका। सभी का टूटा है। वही बल निश्चित ही अब भी तेरे पास विद्यमान है। हे वीदा! तुम्हारे सामने उपस्थित साक्षात विष्णु से व्यर्थ का विवाद क्यों करता है। तथा राक्षस कुल को बढ़ावा क्यों दे रहा है?

हे वीदा! मैं तो मैं ही हूँ और तू तो तू ही है। न तो मैं तू हो सकता है और नहीं तू मैं हो सकता। तू अपने प्रकृति स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। मैं भी अपने ईश्वर स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। जो है वही बने रहो। दूसरे की नकल करने का प्रयास न करो।

वे पुरुष तो भिन्न ही हैं, जिनके लक्षण उत्तम है। हे वीदा! क्रोध में भर कर क्यों गर्जना तर्जना करता है। शेष नाग की तरह मुख से जहर उगलता है। उस प्रकार की क्रिया करके तू किसको डराता है? मेरे को तो तू भयभीत नहीं कर सकता, क्योंकि मेरे माता-पिता, बहन-भाई, सगा-मित्र, कुल-परिवार कोई नहीं है जिसका तू विनाश कर सके। केवल वैकुण्ठ लोक ही मेरा घर है। वैसे तो सभी प्राणी ही मेरा परिवार है।

विश्वास श्रद्धा ही तो मेरा सम्बन्ध है।

हे वीदा! इस समय संसार सागर से पार उतरना, बैकुण्ठ लोक की प्राप्ति का समय उपस्थित हुआ है। इस समय का अवसर हाथ से न जाने दे। वैसे ही बिना कमाई के ही नष्ट नहीं हो जाना। हे प्राणी! तू अपना भला चाहता है तो विष्णु का जप कर। विष्णु का जप करने में अनन्त गुण हैं।

वह विष्णु सर्वत्र विद्यमान है। हजारों जिसके नाम, गाँव, स्थान, शब्द में गर्जना में जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, तेज आदि में सर्वत्र है। उस विष्णु की व्यापकता देखिए-चौदह भवन, तीनों लोकों में, जम्बूद्वीप, सप्त पाताल, यहाँ तक कि सम्पूर्ण संसार में कण-कण में तत्त्व रूप से समाया हुआ है।

हे वीदा! यह गुरु का वचन सत्य है। इसमें बहुत ही शास्त्रादि प्रमाण हैं। छोटी-मोटी जीव योनियाँ जो कुछ तो सृजन हो चुकी हैं, नाना प्रकार के शरीरों को धारण कर चुकी हैं तथा कुछ अभी शरीर धारण करने हेतु प्रतीक्षा कर रही हैं, उनको मैं एक श्वांस का जीवन देता हूँ। दूसरे श्वांस मृत्यु भी।

भगवान् की माया से अनहोनी भी हो जाती है। कृष्णी माया कहाँ क्या करेगी? इसका कुछ भी पता नहीं है। जो माया द्वारा होन हार है वही होगा। किन्तु मानव कुछ अन्य करने हेतु संघर्षशील है। परेशान होता हुआ दीख रहा है। कृष्णी माया ही वर्षा के रूप में बरसती हैं। अगणित वर्षा की फुहारें भी मैं गिन लेता हूँ। मानव माया अधीन है। किन्तु गुरु महाराज कहते हैं कि माया मेरे अधीन है।

हे वीदा! भगवान् के तत्त्वस्वरूप को कौन जानता है कि ईश्वर परमात्मा क्या है? श्रीदेवजी कहते हैं कि मैं क्या हूँ, यह भी तुम कैसे जान पाओगे? कौन जानता है कि मैं देव हूँ, या कुदेव हूँ? कौन जानता है कि मैं अलख निरंजन अगम्य निराकार बुद्धि द्वारा अप्राप्य हूँ? कौन जानता है कि मैं सुर हूँ या नर हूँ, या ये दोनों ही संयुक्त रूप से हूँ?

हमारे प्रथम आदि उत्पत्ति के भेद को कौन जानता है? कौन जानता है कि मैं ज्ञानी हूँ या ध्यानी हूँ? कौन जानता है कि मै कैवल्य ज्ञानी हूँ। कौन जानता है कि मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ? कौन जानता हैं कि मैं ब्रह्मचारी हूँ? कौन जानता है कि मैं थोड़ा भोजन करने वाला हूँ या अधिक? या मैं सर्वथा निराहारी हूँ?

कौन जानता है कि मैं पुरुष हूँ कि नारी हूँ? कौन जानता है कि मैं वाद विवादी हूँ? कौन जानता है कि मैं लोभ की पूर्ति हेतु मीठा बोलने वाला हूँ? कौन जानता है कि मैं योगी हूँ या भोगी हूँ? कौन जानता है कि मैं संयोगी हूँ या वियोगी? कौन जानता है कि मैं इच्छानुसार भोगी हूँ? कौन जानता है कि मैं इस संसार लीला का पति स्वामी हूँ? कौन जानता है कि मैं सूम हूँ या दाता? कौन जानता है कि मैं सती हूँ या कुसती?

हे वीदा मैं आप ही सूम हूँ तथा दाता भी मैं स्वयं ही हूँ। सृष्टि का लय करने में तो मैं सूम हो जाता हूँ, और उत्पत्ति करने में मैं दाता हो जाता हूँ। पालन पोषण करने में दाता हूँ तो लय करने में सूम हो जाता हूँ। मैं ही सतियों में सती रूप से विद्यमान होता हूँ। तथा कुसतियों दुष्टता रूप में। हे वीदा! मैंने तो राक्षसों का वंश ही समाप्त कर दिया। कौरव जो दुर्योधन आदि थे उनको भी तित्तर-बित्तर कर दिया। राम रूप धारण करके राक्षसों को मारा था। उस समय राम बाण के आगे वनचर हनुमानादि स्वत: ही आकर जुड़ गये।

उस समय रावण की लंका में सीता की रक्षा की थी। जब हम दया करते हैं तो अति दयालु कहलाते हैं और जब भयंकर रूप धारण करके राक्षसों को मारते हैं तो हत्यारे भी कहलाते हैं।

हे वीदा! भौमासुर की कैद में सोलह हजार गोप बालाएँ जो अभी भोली भाली, खेलने वाली कन्याएँ थी। उनकी रक्षा मैंने की थी। भौमासुर को मार कर उन्हें कैद से मुक्त करवाया था। और उन्हीं जीवो को मैंने पत्नी रूप में स्वीकार किया था। वे बालाएँ मुझे स्वामी रूप से मान कर मेरे ही शरण में रही थी।

उनको मैंने सहज भाव से स्वीकार किया था। इतनी गोपियो के होते हुए भी मैं कृष्ण बाल यति ही था।

भगवान् कहते हैं कि यदि हम रक्षा करना चाहें, तो रक्षा कर सकते हैं। जिस प्रकार से चारों तरफ अग्नि लगी हो। एक सूखा पत्ता बीच में जलने को तैयार, किन्तु उसको मैं बचा लेता हूँ,या दाहा पड़ने पर भंयकर शीत से बड़े बड़े लकड़े जल जाते हैं, किन्तु एक पत्र भी बच जाता है। उसको बचाने वाला तो मैं ही हूँ। इसलिये हे वीदा ! मैं मोतिये को बचाना चाहता हूँ। यह अवश्य ही बचेगा। तू कुछ भी नहीं बिगाड़ पायेगा। इस प्रकार से वीदे को शब्द सुनाया।

सहंसार सार श्री कुण जाणै। म्हे पुरुष क नारी। वीदो कहे देवजी म्हे थानै नागा करस्या। देवजी कह जुगा जुगंतर जाहि तोई म्हे नागा हुवा नहीं। वीदै एक जणै नै सैनी कीवी। धोती को पलौ खांच्यो,पलै को छेड़ो आयो नहीं। वीदो कहै-म्हे घणा खारया। म्हारे जीव रो कासो होसी। देवजी कहै-मनसा पाप दहिसी। मोतियो छुड़ायो। देवजी संभराथलि आयो साथरिये पूछयौ-देवजी ! इह शब्द को नांव कहो। देवजी शब्द को नाव सुकल हंस बतायो। सुकल दिसा बोल्यो जीव अहल्यौ न जाय।

भगवान् विष्णु जांभोजी सहस्त्र रूप से विद्यमान हैं। इस रूप को कौन जानता है? मानव की बुद्धि अत्यल्प है, भगवान् स्वंय विराट रूप हैं। एक घड़े में समुद्र कैसे समा सकता है? जब श्री देवजी ने शब्द कहा कि ''कुण जाणै म्हे पुरुष कै नारी'' तब वीदे ने कहा-हे देवजी! हम लोग आपको नंगा कर के देखेंगे कि आप पुरुष हो या नारी। देवजी ने कहा-युगों-युगों तक तो मैं नंगा हुआ ही नहीं। अब तुम मुझे नंगा कैसे करोगे?

वीदे ने एक व्यक्ति को इशारा किया कि जाम्भोजी की धोती खींचो। उस व्यक्ति ने द्रौपदी के चीर की भांति जाम्भोजी की धोती खींची, किन्तु पार नहीं पाया। ज्यों ज्यों धोती खींचता गया, त्यों त्यों धोती बढती गयी।

वीदा कहने लगा-हे देव ! हम तो बहुत ही अपराधी हैं। आप हमारा अपराध क्षमा करें। मेरे इस जीव की क्या गति होगी ? देवजी ने कहा-मनसा पाप तुझे जलाते रहेंगे। चैन नहीं मिल सकेगा। वीदे ने कहा-मैंने आपके बारे में अच्छा नहीं सोचा था। आपकी पीठ में लात मारने की सोच कर चला था, किन्तु मार नहीं सका। इसका फल मुझे क्या भुगतना होगा?

देवजी ने कहा-तुमने पीठ पर लात मारने की सोची थी। जो दूसरे के प्रति सोचता है, वह अपने पर ही लागू होती है। तुम्हारी पीठ पर भयंकर फोड़ा होगा, जो किसी जड़ी बूटी से ठीक नहीं होगा। यह स्वयं का किया हुआ स्वयं को ही भुगतान होगा।

श्री देवजी ने मोतिये को छुड़ाया। वापिस सम्भराथल पर आये। साथरियों ने पूछा-हे देव। वीदे की बात कहो-श्री देव ने बतलाया कि वीदा तो ऊँट जैसा ही आदमी है। यह तो मर कर ऊँट बनेगा। अपने कर्मों का भोगना चाहता है। वीदे में विवाद भरा है। समर्पण भाव नहीं है। इसलिये उसे साथरियों ने कहा - आपने वीदे को शब्द सुनाया, उसका क्या नाम रखा है ? देवजी ने कहा-कि नाम ''शुक्ल हंस'' शब्द का सस्वर उच्चारण करने से जीवों के पाप नष्ट हो जायेगे। अहंकार की निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला यह शब्द है।

लूणकरण द्वारा स्तुति

श्री देवजी सम्भराथल आ गये। मोतिये को छुड़ा लिया। ऐसा बीकानेर नरेश लूणकरण ने सुना तो अपने प्रताप को साथ लेकर सम्भराथल पर आये। लूणकरण ने देव का दर्शन आनन्द विभोर होकर किया। कवि हृदय जाग उठा और अनायास ही राजा श्री देव की स्तुति करने लगा –

कवित्त

भक्त मुक्त दातार, जम्भ जगदीसर कहिये।
थल सिर रह्यो, जु आय, भाग बड़े सू लहिये।
औलखिये आचार, पार कहो कूण जू पावे।
सारा सनमुख रहै, दई नहीं पूठ दिखावै।
ज्ञान कह्यो गुरु गम दई, म्हासूं सनमुख देव।
लूणकरण कर जोड़ कहे, किणी न पायो भेव। 1।

दई जु धारी देह, कहो कुण पार जु पावै।
जाकी कला अनेक, जीव कहो जस कहां गावै।
जोजन लग महकार, श्री खण्ड जिमि नित आवै।
किस्तुरी से अधिक, सुवास प्रमल महकावै।
साधां मन आनन्द अति, आएऊ जम्भ अचम्भ।
लूणकरण कर सिर धरो, दया धर्म के थम्भ। 2।

जम्भगुरु सो देव न कोऊ, सुण्यों न देख्यो।
धूप घृत मिष्टान्न, होम करत नित प्रति पेख्यो।
करै विष्णु उपदेश, लेश जीव पाप न राखे।
सब दुनिया सूं हेत, खेत मुक्ति मुख भाखे।
आन देव किये दूर सब, कहै मुखा हरि सेव।
लूणकरण राजा कहै, नमो नमो गुरुदेव। 3।

हरि की महिमा अनन्त, कहो कुण वरण सुणावै।
सेंस सहंश मुख रटत, तास गुण पार न पावै।
रिख नारद गौतम, ब्रह्मा विसनु महेसर।
इन्द्र चन्द सूरज व्यास, जै देव भजै हर।
नेत नेत सारा कह्यो, किणियन पायो पार।
परगट आयो कहे लूणकरण, जम्भगुरु किरतार। 4।

गुरु सो दाता नहीं, परम गति गुरु ते पाई।

भव सागर बहै जात, मुक्त की न्हयाव लगाई।
हर कोई है प्रभाव, वचन हूँ कोई न टालै।
जीव सुजीवां सोध, परीत पहलों की पालै।
मुक्त झयाज मांडी जेही, खालक खेवणहार।
लूणकरण तव दास है, प्रभु मोहे पार उतार। 5।

दोहा

एहि विधि अस्तुति करी, लूणकरण नर ईश।
चरन कमल प्रसत भया, धरयो जम्भ कर सीस।

राव लूणकरण को कंवर प्रतासी घोड़ो नचावे थो। किणो कह्यो। कंवर घोड़ो भलो नचावे थे। जाम्भौजी श्रीवायक कहै– यह शब्द सुनाया, वै कंवराई अनंत बधाई, वै कंवराई सुरग बधाई।

सबद-68

ओ३म् वै कंवराई अनंत बधाई। वै कंवराई सुरग बधाई।। यह कंवराई खेह रलाई। दुनीयां रोलै कंवर किसो। कण बिण कूकस रस बिन बाकस। बिन किरिया परिवार किसो।। अरथूं गरथूं साहण थाटूं। धूंवै का लहलोर जिसो।। सो शारंगधर जपरे प्राणी। जिहिं जपिये हुवै धरम इसो। चलण चलंतै बास बसंतै। जीव जिवंतै काया नवंती।। सास फुरंतै किवी न कमाई। तातैं जंवर बिन डसीरे भाई।। सुर नर ब्रह्मा कोउ न गाई। माय न बाप न बहण न भाई। इंत न मिंत न लोक जणो। जंवर तणा जमदूत दहेला। लेखो लेसी एक जणो।।६८।।

बीकानेर राव लूणकरण का पुत्र प्रतापसी सम्भराथल के नीचे घुड़ दौड़ कर रहा था। उस समय पिता तो देवजी की स्तुति कर रहा था किन्तु पुत्र घोड़ा नचा रहा था। वही पर देवजी के पास स्थित भक्त ने कहा – हे गुरु देव ! लूणकरण का पुत्र राजकुमार घोड़ा बहुत ही अच्छा नचाता है। यह राजकुमार कितना शोभायमान हो रहा है। कुंवर की बड़ाई सुनकर श्री देवजी ने शब्द सुनाया – और कहा –

राजकुमार तो ध्रुव प्रहलाद आदि थे। जिनके लिये अनन्त बधाइया बांटी थी। अब भी बधाइयां बांट कर खुशी मनाते है। राजकुमार तो वे ही थे जिनके जन्म होने पर मृत्यु लोक एवं स्वर्ग लोक में भी बधाइयां बांटी गयी। उनकी कीर्ति स्वर्ग लोक तक फैली थी। अब तक कीर्ति पताका फहरा रही है।

यह प्रतापसी जैसे राजकुमार खेह में यानि मिट्टी में मिल जायेगे। इनका यश नहीं फैल सकेगा। ऐसा कोई दिव्य कार्य कुंवर जैसा नहीं कर जायेगा तो इसका कोई नाम लेने वाला भी नहीं होगा।

यह दुनिया तो चली जा रही है। अस्थिर दुनिया के बारे में स्थिरता सोचना अज्ञानता ही है। जब दुनिया ही यथावत नहीं रहेगी, तो इन कंवरों की क्या ओकात है, जो थोड़े ही दिन ठहर जाये। बिना कण तत्त्व के थोथा

भूसा–घास तथा बिना रस के रसहीन फल कुछ प्रयोजन नहीं है। जिस परिवार में धर्म क्रिया नहीं है, वह परिवार भी थोथा रस हीन है।

धनिक पुरुष एवं राजाओं के पास यह जो धन–धान्य, घोड़ा, हाथी आदि ठाट–बाट हैं, यह तो धूंवे के थोथे बादलों के समान है। इन बादलों से वर्षा नहीं होती जो हवा के झोंके से उड़ जायेंगे। इसलिये हे प्राणी ! उस सारंगधर भगवान् विष्णु का जप करे,वही सर्वोत्तम धन है। जिसका जप करने से ऐसा दिव्य धर्म होगा जो संसार के दु:खो से छुटकारा दिला देगा। यही जीवन का उद्देश्य है। जब तक शरीर चलता है तब तक भगवान् का भजन करे। शरीर चलते हुए,संसार में जीवन जीते हुए,जब तक शरीर स्वस्थ है तब तक हरि को न भूले। जब तक श्वास चलते हैं, तब तक शुद्ध कमाई अवश्य ही करे। यह कार्य करेगा तो यमदूतों से रक्षित हो जायेगा। इस गाथा को सुर नर, ब्रह्मा आदि सभी ने गाया है। तुम्हारे इस जीव के न तो मां, बाप, बहन एवं भाई हैं तथा न ही अपना पराया, मित्र तथा सम्बन्धी ही है। ये तुम्हे यम दूतो से नहीं छुड़ा सकेगे तुम्हारा हिसाब किताब लेखा जोखा लेने वाला तो एक है, उससे नहीं छूट सकोगे।

हीन्दवां मुसलमाणां शब्द सुण्यौ। हिन्दू मुसलमाण सरबई बैठा है। जाम्भोजी सगलाइ नो सन्मुख दीसै। केईक हिन्दू मुसलमाण कहै – कोई जंवर कै वसि है थऊ नहीं। जाम्भोजी श्री वायक कहै –

शब्द - 69

ओ३म् जबरारे तैं जग डांडीलो, देह न जीती जांणो।

माया जालै ले जम काले, लेणा कोण समाणो।

काचै पिंडे किसी बड़ाई, भोलै भूल अयांणो।

म्हा देखंता देव दाणु सुरनर खीणा, बीच गया बेराणो।

कुम्भकरण महारावण होता, अबली जोध अयाणो।

कोट लंका गढ़ विषमा होता, कांयदा बस गया रावण राणो।

नौ ग्रह रावण पाए बन्ध्या, तिस बीह सुर नर शंक भयाणो।

ले जम काले अति बुधवंतो, सीता काज लुभाणो।

भरमी बादी अति अहंकारी, करता गरब गुमानो

तेऊ तो जम काले खीणा, थीर न लाधो थाणो।

काचै पिंड अकाज अफारूं, किसो पिराणी माणो।

साबण लाख मजीठ बिगूता, थोथा बाजर घाणो।

दुनियां राचै गाजै बाजै, तामैं कणू न दाणू।

दुनियां के रंग सब कोई राचै, दीन रचै सो जाणो।

लोही मास बिकारो होयसी, मूर्ख फिरै अयाणो।
मागर मणियां काच कथीरन राचो, कूड़ा दुनी डफाणो।
चलन चलन्तै, जीव जीवन्तै, काया निवन्ती, सास फुरंतै।
कांयरे प्राणी विष्णु न जंप्यो, कीयो कंधै को तांणौ।
तिहिं ऊपर आवैला जंवर तणा दल, तास किसो सहनाणो।
ताकै शीष न ओढ़ण, पाय न पहरण, नैवा झूल झयाणो।
धणक न बाण न टोप न अंगा, टाटर चुगल चयाणो।
साल सुचंगी घृत सुबासो, पीवण न ठंडा पाणी।
सेज न सोवण, पलंग न पोढ़ण, छात न मैड़ी माणो।
न वां दइया न वां मइया, नागड़ दूत भयाणो।
काचा तोड़ नीकुचा भाषै, अघट घटे मल माणो।
धरती अरु असमान अगोचर,जातैं जीव न देही जाणो।
आवत जावत दीसे नाहीं, साचर जाय अयाणो।
जंवर तणा जमदूत दहैला, मल बैसेंला माणो।
तातैं कलीयर कागा रोलो, सूना रह्या अयाणो।
आयसां जोयसां भणता गुणंता, वार महूर्ता पोथा थोथा।
पुस्तक पढ़िया वेद पुराणों।
भूत परेती कांय जपीजै, यह पाखण्ड परमाणो।
कान्ह दिशावर जेकर चालो, रतन काया ले पार पहूँचो।
रहसी आवा जाणो।
तांह परैरे पार गिरांये, तत के निश्चल थाणो।
सो अपरंपर कांय न जंपो, तत खिण लहो इमाणो।
भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेलत डालूं।
जइया मूल न सींच्यो, तो जामण मरण बिगोवो।

अहनिश करणी थीर न रहिबा, न बंच्या जम कालूं।

कोई कोई भल मूल सींचीलो, भल तंत बूझीलो।

जा जीवन की विध जाणी।

जीव तड़ा कछु लाहो होसी, मूवा न आवत हाणी।

वै कंवराई-शब्द राजा लूणकरण ने तथा अन्य हिन्दू मुसलमान आदि सभी ने सुना। उसी समय सम्भराथल पर हिन्दू-मुसलमान सभी बैठे हुए थे। किन्तु जाम्भोजी सभी को ही सन्मुख ही दिखाई देते थे। पीठ किसी को भी नहीं दिखाई देती थी। सभी श्री मुख की शोभा निहार रहे थे। क्योंकि उनका शरीर तेजो मय ज्योति स्वरूप ही था। इसलिये ज्योति चारों तरफ एक जैसी ही दिखाई देती थी। उस समय हिन्दू-मुसलमान आदि कुछ लोगों ने पूछा-हे देव! आप हमें यह बतलाइये कि इस संसार में कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो जबर मृत्यु को वश में कर ले। इस प्रकार की शंका का समाधान देते हुए श्री देवजी ने यह शब्द सुनाया जंबरारे'' इसका भाव इस प्रकार से है-

हे लोगो! यह जबरदस्त मृत्यु निश्चित ही है। इसने सम्पूर्ण संसार को दण्डित किया है। इस मृत्यु के रहते हुए कोई अपनी इस काया को कैसे जीत सकता है? क्योंकि यह शरीर तो पंच महाभूतों से निर्मित है। ये महाभूत ही माया हैं। माया में बैठा हुआ यह जीव कैसे मुक्त हो सकता है? इस कच्चे शरीर की क्या बड़ाई करें? न जाने कब फूट जाये? जो लोग इसकी वास्तविकता नहीं जानते, वही इसकी महानता, स्थिरता का विशेष ख्याल रखते हैं। किन्तु क्या इस मृत्यु से बच सकेगा? विषम विचित्र स्थान में बनाया हुआ लंका का कोट जो पूर्ण सुरक्षित था, जिसके चारों ओर समुद्र रूपी खाई थी और त्रिकुट पर्वत पर लंका बसी हुई थी। उसमें भी रावण कुछ समय तक ही निवास कर सका। वह लंका का कोट रावण को अमर नहीं कर सका। उस रावण की महिमा बड़ी विचित्र थी। रावण ने नौ ग्रहों को पाए के बॉध रखा था। अर्थात् पूर्णतया वश में रखा था। ताकि वे रावण पर कुपित होकर मृत्यु का कारण न बन सके। उस रावण के डर के मारे सुर नर थर थर काँपते थे। सदा ही शंकित रहते थे कि न जाने कब क्या करेगा?

जब अति बुद्धिमान रावण का काल आया, तब उसने सीता का हरण किया। मृत्यु नजदीक आयी, तब रावण के मन में सीता प्राप्ति का लोभ पैदा हुआ। जब अन्त काल आता है तो व्यक्ति भ्रमित हो जाता है। बुद्धि द्वारा निर्णय नहीं ले पाता। अहंकारी रावण भी ऐसा ही जाल में फंस गया था। जिससे अन्त तक बाहर नहीं निकल सका। और आखिर में यमकाल के हाथों चढ गया। उस रावण की लंका स्थिर नहीं रह सकी। सभी स्वप्न बिखर गये।

इस कच्चे शरीर से अकर्तव्य कर्म करता है। हे प्राणी! अभिमान कैसा है? जो तुम्हे जीने नहीं देगा। साबुन, लाख, मजीठ ये केवल ऊपर के दिखावे मात्र के हैं। अंदर से थोथा ही हैं। बाजरा निकालने के बाद थोथा चांचड़ा (भूसा) को गाहने से क्या मिलेगा। दुनिया तो खुश गाने बजाने में ही है। लेकिन उनमें तत्त्व कहाँ है। दुनिया के रंग में तो सभी कोई रचे हुए है किन्तु परमात्मा के रंग में जो रचे वही असली रंग चढ़ा हुआ जानो।

यह शरीर खून मांस हड्डी आदि का समूह है। इसमें कभी विकार पैदा हो जाएंगे। यह काया रूग्ण होकर क्षीण हो जाएगी। मूर्ख इस काया के अहंकार में डोलता है। उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। मगरे की

चिड़ी मणियां, काच कथीर में रचे हुए लोग झूठे ही कहते हैं कि हमारे पास बहुत ही धन-दौलत है। यह संसार ऐसा ही असार है।

शरीर के चलते हुए, जीवन जीते हुए, काया द्वारा कार्य करते हुए, स्वस्थ काया रहते हुए, श्वांस चलते हुए, हे प्राणी! तुमने विष्णु का जप क्यों नहीं किया? केवल स्वकीय ताकत का ही प्रदर्शन किया।

तुम्हारे उपर यमदूतों का दल आयेगा। उनकी क्या पहचान होगी? उनके सिर पर ओढने बाँधने के लिए पगड़ी नहीं है। पैरों में पहनने के लिए जूते नहीं हैं। शरीर पर पहनने के लिए कुर्ता नहीं है। न ही उनके पास धनुष है, न ही बाण है, न ही सुरक्षा कवच है। टाटर चुगल बकवासी है।

वहाँ पर रहने के लिए भवन नहीं है। भोजन के लिए घृत-मिष्ठान्न नहीं हैं। पीने को ठण्डा जल नहीं है। सोने के लिए सहज पलंग-बिस्तर नहीं हैं। न वहाँ छत, मंदिर, मठ आदि नहीं हैं। वहाँ न तो दया है और न ही मया है नहीं दादी है और नही माता है। वहाँ नंगे रहने वाले भयंकर यमदूत हैं। कच्चे शरीर को तोड़ कर जीव को निकालेगे। धमकी भरे वचन बोलेगे। अघटित घटना घटेगी।

वे यम दूत धरती और आसमान के बीच से ले जायेंगे। किन्तु आते जाते दिखाई भी नहीं देंगे। यह सत्य घटना अवश्य ही घटित होगी। वहाँ पर यम दूत भयंकर दु:ख देंगे। दुर्गन्ध युक्त स्थान में डाल देंगे। जीव दु:ख के मारे रोयेगा, चिल्लायेगा। किन्तु रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा।

इस समय आयस, योगी, ज्योतिषी, पढे-लिखे, गुणी, वार-महुर्त बताने वाले, पुस्तक पढने वाले, वेद, पुस्तक, वार ग्रह नक्षत्र सभी कुछ थोथा हैं। कोई भी मृत्यु से नहीं बचा सकते। ये पढे लिखे कथित विद्वान्, भूत प्रेतों को क्यों जपते हैं? यह तो पाखण्ड है। कृष्ण (गीता) के बताये हुए मार्ग के अनुसार जीवन यापन क्यों नहीं करते? यदि गीता अनुसार चले तो इस रतन काया द्वारा बैकुण्ठ की प्राप्ति हो सकती है। अन्यथा पंथ से भटके हुए लोगों का जन्म-मरण नहीं मिट सकेगा। जन्म मरण मिट जायेगा तो उस स्थिर भगवान् के धाम बैकुण्ठ को प्राप्त कर लेगा।

सदा एक रस रहने वाले भगवान् विष्णु का जप क्यों नहीं करते? वह सदा नित्य स्थायी धाम प्राप्त करवायेगा। उस की प्राप्ति अतिशीघ्र संभव है। हे प्राणी! अच्छे मूल की सिंचाई करो। जिस प्रकार से मूल में जल डालने से वृक्ष विस्तार को प्राप्त होता है। सुमधुर फल प्रदान करता है। उसी प्रकार से विष्णु सभी का मूल है। मूल की सिंचाई करने से तुम भी फूलोगे-फलोगे। जिसने मूल विष्णु का स्मरण नहीं किया उसका जन्म-मरण नहीं मिटेगा। प्रत्येक दिन की क्रियाएँ स्थिर नहीं रहती हैं। किन्तु उन क्रियाओं द्वारा जो पाप-पुण्य होगा वह स्थिर है। उसी का फल सुख-दु:ख प्राणी भोगता है। नित्य कर्म जो धार्मिक नहीं है, तो वह यमदूतों से रक्षा नहीं कर सकेगा।

इस संसार में विरले कोई-कोई ही भल मूल की आराधना, सेवा पूजा करते हैं और तत्त्व के बारे में पूछते हैं। जो ऐसा करते हैं, वही जीवन की विधि जानते हैं और वैसा ही जीवन जीते हैं। उन्हे जीवन में लाभ मिलेगा। इस जीवन में सुख की प्राप्ति होगी। शरीर छोड़कर जायेंगे, तो भी हानि नहीं होगी। सर्व मंगल मांगल्यम् रहेगा।

जेतसी को राज्य प्राप्ति का वरदान

वीसनोई कह कुंवर प्रतापसी भागबलि थ। जाम्भोजी कह-जेसलमेर गया पहलू सवामण भाग थो। जाप दरखत कटाया जा पछ रतीउ रहयो नैही। कंवर बीकानेर गयै पछै राव लूणकरण जोतगी बुलाया, जती सेवड़ा बुलाया, भगवत वसना बुलाया, संन्यासी जोगी बुलाया, दीसंतरी श्रब वेदारथीयां नु पुछया-म्हे ढोसी जावां, म्हान महुरत द्यौं, साराइ कह्यो-रावजी री फतै होयसी। रावजी साथ भेलो कियो। काण्यवत डेरा किया। श्री जाम्भोजी काणांवत आया। कुंवर वरसी आय पगे लागो। जाम्भोजी कह वरसी। तुं रावजी नुं पाल्य छः माहीना पछै थांहरी जीत्य होयसी। पहलां जायस्यौ तो हारस्यो। म्हें रावजी नूं पाल्य छः माहीना पछै थांहरी जीत्य होयसी। पहलां जायस्यौ तो हारस्यौ। म्हें रावजी नुं थांभण नुं आया छा:। रावजी वीजो मालावत मेल्ह्यों। वीजो कहे और सगला कहे फतैं होयसी। मांहरा देव मांहर सहाय होयस्यै। मो मालीय सरीखा साथ छै। भांजणी पत्य देवजी कह-सगला पहलु तूं भाज्यस्यै। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द 87

ओ३म् जिहिं का उमग्या समाघूं, तिहिं पंथ के बिरला लागूं।
बीजा चाकर बीरूं, रिण शंख धीरू।
कबी झूझत रायूं, पासै भाजत भायूं।
ते हतंते जीयौ, ताथैं नुगरा झूझ न कीयो।

समराथल पर कुंवर प्रताप ने घोड़ा नचाया था। श्री देवजी ने साथरियों को शब्द द्वारा समझाया था। किन्तु उनके मन में बैठी हुई बात को वे रोक नहीं सके थे और देवजी से पूछ ही लिया- हे देव! कुंवर प्रतापसी का भाग्य बलवान है इसीलिए तो राज घराने में जन्म लिया है। जाम्भोजी ने कहा- अवश्य ही भाग्यवान कुंवर है। राजा का बेटा है। कभी यह राजा बन सकता था। किन्तु अब नहीं क्योंकि यह कुमार जब जैसलमेर गया था तो इसका सवामन भाग्य था अर्थात सवाया भाग्य था। किन्तु वहाँ जाकर इसने हरे वृक्ष कटवाये हैं उसके बाद तो एक रत्ती भर भी भाग्य नहीं रहा है। हरे वृक्षों को काटना तो पाप की पोटली सिर पर बाँध लेनी है। इसका भाग्य फूट ही गया है।

नाथोजी कहने लगे-हे शिष्य! जब कुंवर प्रतापसी जैसलमेर से वापिस बीकानेर पहुँचा, तब अपने बेटे को वापिस आया जान कर लूणकरण ने एक सभा बुलायी। सभा में उपस्थित ज्योतिषी, यति, सैंवड़ा, भक्त, संन्यासी, दिसांतरी, वेदज्ञ आदि से विचार-विमर्श किया। राव ने पूछा-हे विद्वानो! मैं ढोसी, नारनौल प्राप्त करने हेतु सेना सहित जाना चाहता हूँ। आप लोग मुझे मुहूर्त बताओ। सभी ने राजा की बात का समर्थन किया और कहा-अवश्य ही जाओ और विजय पताका फहराओ। जीत तुम्हारी ही होगी।

रावजी ने अपने साथियों को एवं सेना को एकत्रित किया तथा मुहूर्त देखकर के रवाना हुए। काण्यवत के तालाब पर डेरा लगाया। जाम्भोजी स्वयं काण्यौत पहुँचे। उसी समय बरसी आया और गुरु के चरणों में प्रणाम किया।

जाम्भोजी ने कहा-हे वरसी! तू रावजी को जाने से रोक दे, इस समय तुम्हारी जीत नहीं होगी। आज से छः महीने पश्चात् जाओगे तो तुम्हारी जीत होगी। मैं यहाँ रावजी को रोकने के लिए आया हूँ। वरसी ने

रावजी से कहा–जाम्भोजी जाने से रोकते हैं। ये आपके ज्योतिषी मुहूर्त झूठे हैं। यदि चलेंगे तो वापिस लौटकर नहीं आओगे। रावजी ने माले को भेजा–माले ने आकर देवजी को रावजी का संदेश सुनाते हुए कहा–

हे जम्भेश्वरजी! रावजी ने कहा है कि सभी लोग मुझे युद्ध में जाने की बात कहते हैं। आप मुझे क्यों रोकते हैं। सभी पण्डितों के अनुसार तो मेरी जीत निश्चित है। हमारे देव हमारे साथ हैं, जो हमारी रक्षा करेंगे। तथा माले जैसा मंत्री सलाहकार साथ में है। भारी सेना का साथ है, फिर हार कैसी ? श्री देवजी ने शब्द सुनाते हुए कहा–हे माला! पहले तो तू ही भागेगा। पीछे तुम्हारे अन्य सेना, तथा तुम्हारे देवताओं का तो पता भी नहीं चलेगा। ऐसा कहते हुए शब्द सुनाया–

जिसके मन की उमंगे लहरे लेती हैं। स्वयं का मानसिक उत्साह होता है, वही साधना तथा युद्ध में सफल हो सकता है। दूसरे के कहने–सुनने से जो कार्य करेगा, वह सफल नहीं हो सकता। स्वयं के पास ही कुछ गुंजाइश नहीं है, तो दूसरा क्या करेगा ? ऐसे उत्तम पंथ में तो विरल ही लगता है। दूसरे सभी तो चाकरी करते हैं। दूसरे के कहने से लगते हैं। उनका उत्साह उमंग तो क्षणिक ही होता है।

कुछ लोग प्रथम तो घोषणा कर देते हैं कि हम साधना, भजन, मुक्ति पर्यन्त करेंगे। बीच में हटेंगे नहीं। युद्ध भूमि में भी जाकर शंख बजा देते हैं, सूचना देते हैं कि हम तैयार हैं। कुछ समय तक झूझते भी हैं साधना तथा युद्ध दोनों में ही किन्तु पीछे कष्ट पड़ने पर भाग जाते हैं। डर के मारे मैदान छोड़ जाते हैं। ये लोग दूसरों की हत्या करके स्वयं जीना चाहते हैं। ऐसे लोग वीरता से युद्ध नहीं कर सकते। ये लोग नुगरे हैं।

हे माला! तू स्वयं एवं तुम्हारे लोग ऐसे ही नुगरे हैं। इनके बस की बात नहीं है। जो लोग कलयुग में थान–मूर्ति की पूजा करते हैं तथा जीवित नारायण को काटते हैं। जो निर्जीव की तो पूजा करते हैं और सजीव की हत्या करते हैं। उनमें बुद्धि कहाँ से आयेगी ? उनके अंदर तो शैतान बैठा हुआ है।

मालौ रावजी के पास्य गयौ। देवजी उठउं वरज छः। हमै उं वरज छै। रावजी जांभोजी घणो बुरो कहै छैः कै भाजिस्यै कै रिण मां रहिसी। राव रोस करनै कह्यो– हूँ पाछो आयौ समौ इतरा इण मोडियां माहे जो ये जका करूं। रावजी कह आपा ठीक। धनराज कह– जांभाजी री कहीयौ किया भला छः। रावजी कह– मरणता बीहौ छौ तो आप गढरो जापतो करो पाछा पधारौ। धनराज कह– थे कह्यो सौ करिस्या। धनराज भाटी गढ आयौ। रावजी नारनौल के चड़िया। देवजी सम्भराथल आया।

जेतसी जाम्भाजी के हजूरी आयौ। अरज करण लागौ। जाम्भाजी– राव लूणकरण रै मह मोभी छा। मैं एक घोड़ो मांग्यौ। रावजी मोनो एक घोड़ो दीजै। आपरे साथ हालूं। तिकौ रावजी मोनो रीसाय कह्यो– तोने घोड़े बेई भाटा। मोटा दगड़ा। जैतसी वैराजी हुवौ। जैतसी जांभाजी पाऐ आयौ। जांभाजी! बाप सगला इ सरीसो मोन भाठा करया। देवजी कह– गढ कोट थांरो देस थांरो बल कीसुं चाहै– जांभोजी श्री वायक कहै।

शब्द–64

ओ३म् मैं कर भूला मांड पिराणी, काचै कन्ध अगाजूं।
काचा कंध गले गy जायसैं, बीखर जैला राजों।
गड़बड़ बाजा कांय विबाजा, कण विण कूकस कांय लेणा। कांय बोलो मुख ताजो।
भरमी वादी अति अहंकारी, लावत यारी, पशुवां पड़े भिरांति।

जीव विणासै लाहै कारणै, लोभ सवारथ खायबा खाज अखाजूं।
जो अति काले लेजम काले तेपण खीणा, जिहि का लंका गढ़ था राजों।
बिन हस्ती पाखर बिन गज गुड़ीयों, बिन ढोला डूमां लाकड़ियो।
जाके परसण बाजा बाजै, सो अपरंपर काय न जंपो।
हिन्दू मुसलमानों, डर डर जीव के काजै।
रावां रका राजा रावां, रावत राजा, खाना खोजां, मीरां मुलकां घंघ फकीरां।
घंघा गुरवां सुरनर देवा, तिमर जू लंगा, आयसा जोयसा, साह पुरोहितां।
मिश्र ही व्यासां रूंखा बिरखां आव घटंती अतरा माहे कूण विशेषो। मरणत एको माघो।
पशु मुकेरू लहै न फेरूं कहे ज मेरूं सब जग केरूं। साचै से हर करै घणेरूं।
रिण छाणै ज्यूं बीखर जैला, तातें मेरूं न तेरूं।
बिसर गया ते माघू, रक्तूं नातूं सेतूं धातूं कुमलावै ज्यूं शागूं।
जीव र पिंड विछोबा होयसी, ता दिन दाम दुगांणी।
आड न पैको रती बिसोवो सीझै नाही, ओपिंड काम न काजूं।
आवत काया ले आयो था, जातैं सूको जागो।
आवत खिण एक लाई थी, पर जातैं खिणी न लागो।
भाग ।रापति कर्मा रेखां, दरगैं जबला जबला माघों।
बिरखे पान झड़े झड़ जायला, तेपण तई न लागूं।
सेतूं दगधूं कवलज कलीयों, कुमलावै ज्यूं शागूं।
ऋतु बसंती आई, और भलेरा शागूं।
भूला तेण गया रे प्राणी, तिहिं का खोज न माघूं।
विष्णु विष्णु भण लई न साई, सुर नर ब्रह्मा को न गाई।
तातैं जंवर बिन डसीरे भाई, बास बसंते कीवी न कमाई।
जंवर तणा जमदूत दहैला, तातैं तेरी कहा न बसाई।

सतगुरु ने माले को शब्द सुनाया। माला सचेत होकर रावजी के पास गया और कहने लगा-हे रावजी! देवजी वहीं तालाब पर बैठे हुए ही आपको रोक रहे हैं। वे आपको जाने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। हमें इस प्रकार से बहुत ही बुरा कहा है। उन्होंने कहा है कि या तो युद्ध के मैदान से भागोगे। या युद्ध के मैदान में ही रह जाओगे, वापिस लौट नहीं सकोगे।

राव ने क्रोधित हो कर कहा-अब तो मैं अवश्य ही जाऊँगा। किन्तु वापिस लौट कर आऊँगा। तब इस मोडिये के साथ ऐसी करूँगा, जो अब तक किसी ने किया ही नहीं। यह हमें राज का विस्तार करने नहीं देता। देवी देवताओं की पूजा भी नहीं करने देता। कोई न कोई नियम धर्म आगे रखता है। आगे मैं एक भी बात नहीं मानूँगा। मैं जो कर रहा हूँ, वही ठीक है।

उसी समय जाँगलू के धनराज भाटी साथ में थे। उन्होंने भी राव को समझाते हुए कहा–जांभोजी ने जो बात कही है, वही करने में हमारी भलाई है। रावजी ने कहा–धनराज जी! आप मरने से डरते हो। यदि ऐसा है तो आप वापिस चले जाओ। गढ की व्यवस्था करना। जो आप कहते है वही करूँगा। धनराज भाटी वापिस लौट आया। रावजी ने नारनौल की तरफरवानगी की और जाम्भोजी वापिस सम्भराथल लौट आये।

राव लूणकरण का बड़ा बेटा जेतसी सम्भराथल पर श्री देवजी के पास आकर विनती करने लगा–हे जाम्भाजी! राव लूणकरण का मैं सबसे बड़ा बेटा हूँ। मैंने रावजी से एक घोड़ा माँगा था। मैंने कहा था–हे पिताजी! मुझे एक घोड़ा दीजिए। मैं भी आपके साथ युद्ध करने को चलूँ। किन्तु रावजी ने क्रोधित होकर कहा–तुम्हें घोड़े की जगह पत्थर–भाठा देता हूँ। बड़े–बड़े पत्थर दगड़े। इसलिए नाराज होकर देवजी आपके पास यहाँ आया हूँ। अब तो मैं आपकी शरण में हूँ। हे देव! मेरे छोटे भाई प्रतापसी को तो घोड़ा दिया। मुझे भाठा दिया। बाप तो सभी पुत्रों के लिए बराबर होता है। मेरे साथ भेदभाव क्यों ?

देवजी ने कहा–हे जेतसी! सुनो, यह बीकानेर का गढ–कोट तुम्हारा ही है। यह बागड़ देश भी तुम्हारा ही है। तुम बलवान हो, बलवान क्या नहीं चाहता है ? ऐसे कहते हुए शब्द बनाया–

हे प्राणी! अहंकार के वशीभूत होकर भूल में मत पड़। जिस शरीर एवं राज की वजह से अहंकार करता है, यह तो कच्चा है, कभी टूट जायेगा। जिस प्रकार से कच्ची मिट्टी जल में गल जाती है। उसी प्रकार से यह शरीर एवं राज पाट भी गल जायेगा। ये तुम्हारे दरबार के गाजे बाजे, उठा–पटक, छीना–झपटी, छोटा–बड़ा, मेरा–तेरा, ये सभी कुछ कण रहित थोथे भूसे के सामान हैं। इनमें सुख आनंद रूपी कण की प्राप्ति कहाँ है ?

अपने ही मुख से स्वकीय बड़ाई क्यों करते हो ? भ्रम में पड़े हुए, वाद विवाद में रचे हुए, अत्यधिक अहंकारी, स्वार्थ वश सम्बन्ध जोड़ते हैं। पशु सदृश भ्रमित जीवन यापन करते हैं। अपने लाभ हेतु ये राजा लोग जीवों को मारते हैं। अपना राज्य बढाने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। अखाद्य भोजन करते हैं।

समय आयेगा। यमदूत इन्हें ले जायेंगे, तब इनका सभी कुछ नष्ट हो जायेगा। जिनके गढ थे, राज थे, हस्ती घोड़ा थे, किंतु ये कोई साथ नहीं चलेंगे। इनके बिना ही, बिना गाजे बाजे पैदल ही जाना होगा। जिस परमात्मा के दर्शन–स्पर्श से दिव्य बाजे बजते हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं करते ? केवल संसार का ही स्मरण किया।

हे हिन्दू मुसलमानो! इस जीव की भलाई के लिए पापों से डरो। वहाँ पर तो सभी बराबर ही है वह चाहे राजा, रंक, राव, रावत, खान, खोज, मीरा, मुलका, गंगा पार रहने वाले फकीर, गंगा पर रहने वाले गंगा गुरु, सुरनर, तिमर, लंगा, आयस, जोयस, साह पुरोहित,मिश्रा, व्यास, रूखा, बिरखा, इत्यादि इनकी सभी की आयु घटती जा रही है। सभी का मरण एक जैसा ही है। किसी में कुछ भी विशेषता नहीं है।

पशु आदि धन को अपना कहता है, किन्तु तुम्हारा है नहीं। क्योंकि एक एक बार छूट जाता है। तो पुनः प्राप्ति नहीं होती। इसे मेरा कहना नादानी! सच्चा जो परमात्मा है, वही मेरा है। उसी से ही संबंध जोड़ें वही सदा साथ रहेगा। जिस प्रकार रिण (जंगल) में पड़ा हुआ छाणा(उपला) समय आने पर अपने आप बिखर जाता है, उसी प्रकार से यह सभी कुछ बिखर जायेगा। इसीलिए न कोई मेरा है, और न कोई तेरा है।

हे प्राणी! तू अपना मार्ग भूल गया है। एक दिन इस शरीर को छोड़कर यह आत्मा प्रयाण कर जायेगी। जिस प्रकार से शाक–पत्ती उगती है तो लाल यौवन अवस्था में होती है। जब पक जाती है तो सफेद हो जाती है। और अंत में कुम्हला जाती है। यही अवस्था मानव की भी होती है। तीन अवस्था को पार करने के अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जिस दिन शरीर और जीव का विछोह होगा, उस दिन यह तुम्हारे दुगुने

चौगुने दाम धन आदि कुछ भी सहयोग नहीं कर सकेंगे। एक पैसा भी साथ नहीं देगा। जो कुछ है यहीं छूट जायेगा।

आते समय तो काया लेकर आया था, जाते समय काया छोड़ कर जायेगा। आते समय तो एक क्षण का समय लगा था, किन्तु जाते समय इतना समय भी नहीं लगेगा। अपने भाग्य कर्मानुसार आगे की यात्रा करेगा। सभी के कर्म भिन्न-भिन्न हैं, इसीलिए मार्ग भी भिन्न भिन्न ही हैं। दरखत के पत्ते झड़ जाते हैं वे ही पत्ते दुबारा नहीं लगते हैं, नये पते ही दुबारा आते हैं। इसी प्रकार से यह शरीर छूट जायेगा, तो दुबारा प्राप्त नहीं हो सकेगा।

जिस प्रकार से शीत काल में कमल की पत्तियाँ जल जाती हैं तथा अन्य वनस्पति भी कुम्हला जाती है। सर्दी के पश्चात् बसंत ऋतु आती है, तो पुनः प्रफुल्लित हो जाती हैं। विकास कार्य प्रारम्भ हो जाता है। उसी प्रकार से जीवन में उतार-चढाव, सुख-दु:ख आता ही रहता है।

हे प्राणी! तू भूल गया है। अपनी औकात को याद कर और अपने मार्ग को खोज। विष्णु का भजन कर। विष्णु के समान और कोई ग्रहण करने के योग्य नहीं है। उस विष्णु को सुर, नर, ब्रह्मा आदि ने गाया है। इसी से ही उच्च पद को प्राप्त कर सके हैं। विष्णु का भजन करेंगे, तो भयंकर यमदूतों के प्रकोप से बच जायेंगे।

यह कमाई यहीं पर रहते हुए, इस मृत्यु लोक में जीवन यापन करते हुए ही कर सकते हैं। यह शरीर छूटने के पश्चात् तो यह धर्म का कार्य होना असंभव है। मृत्यु समय तो नाग की भाँति डस लिए जाओगे। वहाँ तुम्हारा कुछ भी जोर नहीं चलेगा।

जैतसी कहै देवजी आपरे शब्द मांहे क्यौं समधा क्यौं न समधा। तिण रो विचार लाधो नही। देवजी कहैं तौनें भाठा दीन्हां। वै पाछा आवै नहीं। जैतसी कहे देवजी बारे जापतो घणो छ। घणो छल बल जाणे छै। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-65

ओ३म् -तउवा जाग जु गोरख जाग्या, निरह निरंजन निरह निरालंब।
जुग छतीसों एकै आसन बैठा बरत्या,अवर भी अबधू जागत जांगू।
तउवा त्याग जू ब्रह्मा त्यागा, अवर भी त्यागत त्यागूं।
तउवा भाग जो इश्वर मस्तक, अवर भी मस्तक भागूं।
तउवा सीर जो ईश्वर गौरी, अवर भी कहियत सीरूं।
तउवा बीर जो राम लक्ष्मण, अवर भी कहियत बीरों।
तउवा पाग जो दश शिर बांधी, अवर भी बांधत पागो।
तउवा लाज जो सीता लाजी, अवर भी लाजत लाजूं।
तउवा बाजा राम बजाया, अवर बजावत बाजूं।
तउवा पाज जो सीता कारण लक्ष्मण बांधी, अवर भी बांधत पाजूं।
तउवा काज जो हनुमत सारा, अवर भी सारत काजूं।

तउवा खागज जो कुम्भकरण महरावण खाज्या, अवर भी खावत खागूं।
तउवा राज दुर्योधन माण्या, अवर भी माणत राजूं।
तउवा राग ज कन्हड़ बांणी, अवर भी कहिये रागूं।
तउवा माघ तुरंगम तेजी, टटू तणा भी माघूं।
तउवा बागज हंसा टोली, बुगला टोली भी बागूं।
तउवा नाग उद्यावल कहिये, गरूड़ सीया भी नागूं।
तउवा शागज नागरबेली, कूकर बगरा भी शांगू।
जां जां शैतानी करै उफारूं, तां तां महंतज फलियों।
जुरा जम राक्षस जुरा जुरिन्द्र,कंश केशी चंडरूं।
मधु कीचक हिरणाक्ष हिरणाकुस, चक्र धर बलदेऊं।
पावत वासुदेवो मंडलीक कांय न जोयबा, इहिं धर ऊपर रती न रहीबा रांजू।

उक्त शब्द सुनकर जेतसी कहने लगा-हे गुरु देव! आपके द्वारा कहा गया शब्द मैंने सुना, किन्तु पूर्णरूपेण समझ नहीं पाया। कुछ तो समझा किन्तु कुछ नहीं समझा। देवजी ने कहा-हे जेतसी! तुम्हारे पिता श्री ने तुम्हें भाठा (पत्थर) दिये, घोड़ा नहीं दिया। वे तुम्हारे पिता वापिस नहीं आयेंगे। यह बीकानेर का गढ पत्थर ही तो है। यही तुम्हें दिया है। इस पत्थर के मिल जाने से तुम्हें राज्य सम्पूर्ण सम्पत्ति मिल जायेगी।

जेतसी कहने लगा-हे देव! उनके साथ में सैनिक हैं। सुरक्षा बहुत है। वे जीत कर लौटेंगे। मुझे आपका दिया हुआ पत्थर नहीं मिलेगा। मेरे पिता स्वयं ही बलवान शूरवीर है, तथा छल-बल सभी कुछ जानते हैं। जाम्भोजी ने श्री वायक सुनाया-जिसका भावार्थ इस प्रकार से है-

हे जेतसी! तुम अपने पिता के बारे में यह कहते हो कि छल-बल सभी कुछ जानते हैं, सर्व समर्थ हैं और जानने का दावा तुम भी करते हो, किन्तु तुझे अब तक पता नहीं है। जो इस संसार में विभूति हुई है वे तो विरले ही हैं। उन विभूतियों के बारे में सुन! और अपने से तुलना करे।

इस संसार में बहुत से लोग जाग्रत हुए हैं। सचेत होकर अपने जीवन का लाभ लिया है। किन्तु निरीह, निरंजन, निरांलब, गोरख यति जितने जाग्रत हुए, उतना तो कोई नहीं हो सका। उनके एक ही आसन पर बैठे हुए छत्तीस युग व्यतीत हो गये। वैसे तो अन्य अवधूत भी जागे हैं, किन्तु गोरख जैसा कहाँ?

त्यागी तो संसार में बहुत हुए हैं, किन्तु जितना त्याग प्रजापति ब्रह्माजी ने किया, उतना त्याग कोई नहीं कर सका। ब्रह्माजी सृष्टि के रचयिता होते हुए भी अपने पुत्रों से पूजा नहीं चाही, यही बड़ा त्याग है। कुछ भी नहीं चाहना। भाग्यशाली तो दुनिया में बहुत देखे गये, किन्तु जितना भाग्य ईश्वर के मस्तक में है उतना किसी के भी नहीं। क्योंकि जो भी दृष्ट-अदृष्ट है, वही सभी कुछ ईश्वरीय है। वह धनवानों का भी धनवान है। उनके बराबर कोई नहीं है। किससे उपमा दी जावे।

पति-पत्नी का सम्बन्ध, इस संसार में निभा लेते हैं। यह सम्बन्ध जन्म जन्मांतरों तक भी किसी किसी का चलता है। सभी का नहीं। बाकी तो इस जन्म में ही सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। किन्तु जितना शिव और गौरी-पार्वती में चला, उतना किसी का भी नहीं। पहले जन्म की सती, दूसरे जन्म में पार्वती बन कर आयी और पति शिव तो वही थे।

भाई-भाई का सम्बन्ध चलता है। काफी हद तक निभता है। किन्तु स्वार्थ वश टूटता भी देखा गया है। किन्तु जितना सम्बन्ध राम-लक्ष्मण का चला, उतना तो किसी का भी नहीं। ये शरीर दो, किन्तु जीवात्मा एक रूप ही थे। एक के बिना दूसरा जीवंत भी नहीं रह सकता था। सिर पर पगड़ी मान मर्यादा की प्रतीक लोग बाँधते हैं। किन्तु जितनी पगडियाँ दसशिर रावण ने बाँधी, उतनी तो अब तक कोई नहीं बाँध सका। किन्तु अति सर्वत्र वर्जयेत, अति सर्व नाश का कारण है।

गृहणियाँ अपने घर, कुल, परिवार की लज्जा रखती हैं। सभी तो नहीं, किन्तु कुछ ही मात्रा में, घर की प्रतिष्ठा गृह लक्ष्मी के हाथ में है, किन्तु जितनी प्रतिष्ठा मान मर्यादा सीता ने रखी उतनी तो कोई नहीं रख सकी। सीता ने अपने पिता के घर ससुराल, तथा राम की लज्जा रखी। मर्यादा धर्म में आँच नहीं आने दी।

युद्ध भूमि में जाकर नगाड़े आदि बाजे तो बहुत लोग बजाते हैं। जीतने की लालसा रखते हैं। किन्तु राम ने लंका पर विजय का बाजा बजाया, धनुष की टंकार की, ऐसी टंकार ध्वनि तो अब तक कोई नहीं कर सका।

कुछ चौधरी लोग सभा में बैठ कर मर्यादा की लकीर तो खींचते हैं। उसे पूर्ण कर पायें या नहीं, यह तो निश्चित नहीं है, किन्तु लक्ष्मण ने जो रेखा खींची ऐसी रेखा तो कोई नहीं खींच पाये। लक्ष्मण ने पंचवटी में सीता की रक्षार्थ रेखा खींची थी। जिसे रावण भी लाँघ नहीं सका था। औरों की तो बात ही क्या है?

परोपकार का कार्य तो बहुत लोग करते हैं, दूसरों के दुःखों से व्यथित होकर उनका कार्य करने की कोशिश करते हैं, किन्तु जो परोपकार सेवा का कार्य हनुमान जी ने किया ऐसा तो अब तक किसी ने भी नहीं किया।

भोजन करने में तो बहुत ही लोग पेटू हैं। अधिक भोजन करते हैं तो एक दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ लगी हुई है। किन्तु जितना भोजन कुम्भकरण करता था, उतना भोजन तो कोई नहीं कर सका। कुम्भकरण का भाई अहिरावण भी उसके तुल्य ही था।

राज तो बहुत लोगों ने किया। राज सुख में मदमस्त भी हुए और अहंकारी दुर्योधन हुआ,जितना अपने को ही महत्व दुर्योधन ने दिया इतना मान तो किसी ने नहीं बढाया। जो 'जनम्यो छत्र समेत' राजा ही जन्मा था और राजा ही मरा था। अहंकार की पराकाष्ठा दुर्योधन में थी।

गऊएँ चराते हुए ग्वाले बंसी तो बहुत बजाते हैं, गीत गाते हैं, किन्तु जितनी सुन्दर बंसी कृष्ण ने बजाई तथा सुन्दर गीत गाये ऐसे गीत व बंसी अब तक किसी ने नहीं बजाई। वैसे तो टट्टू भी काफी तेज चलते हैं किन्तु जितनी तेजी तुरंगम (घोड़े) में होती है, उतनी तेजी तो किसी भी पशु में नहीं होती है। तेज चलने वालों में घोड़ा ही श्रेष्ठ है।

बगुलों की भी टोली देखने में अच्छी लगती है बाग को शोभायमान करती है। किन्तु हंसों की टोली सदृश बगुलो की टोली कहा है। हंस तो हंस ही है बगुले तो बगुले ही है,दोनो की क्या बराबरी। अनेक जाति के नाग हैं जैसे गोहिरा आदि भी नाग ही हैं किन्तु मणि धारी सर्प जैसे साधारण नाग कहा है। कुकुरमुत्ता आदि का भी तो साग है,जो साग कहा जाता है किन्तु नागर बेल की बराबरी कहाँ करेगा? एक ही जाति होते हुए भी गुण धर्म में बड़ा ही भेद है। ऊपर से देखने मात्र से कुछ भी नहीं होता है।

जहाँ-जहाँ पर शैतान लोग अपनी शैतानी-दुष्टता का प्रसार करेंगे तो वही पर वही फली भूत होगी। अच्छाई कहाँ से आयेगी? मृत्यु अनादि काल से ही चली आ रही है। कंस, केशी, चंडरू, मधु कीचक, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, चक्रधर, बलदेव, इत्यादि लोगों ने भी वासुदेव भगवान् की प्राप्ति की है।

हे जेतसी ! तुम्हारे ये मण्डलीक क्यों नहीं देख रहे है ? समझ क्यों नहीं रहे हैं ? जो नारनौल युद्ध के लिए जा रहे हैं। यहाँ इस धरती पर तो किसी का भी राज एक रत्ती भर स्थिर नहीं रहा है। जब किसी का भी नहीं रहा, तो इनकी क्या औकात है ? जो स्थिर रह सकेंगे।

राजपूत कहै-रावजी क्यौ समझां। शब्द मांहै, जैतसी कहै-जाम्भोजी साच कहै छै। इण धरती ऊपर कोई राजा रह्यौ नहीं। मांहरै तो रूड़ा छै। राव लूणकरण नुवां ही छै। म्हानु तो कोट दीन्हौ। राव जेतसी बीकानेर में राज कीयों। लूणकरण कामि आयों।

सम्भराथल पर देवजी ने जेतसी को शब्द सुनाया। उस समय वहाँ पर उपस्थित एक राजपूत ने कहा-हे रावजी ! क्या आप जाम्भोजी की बात समझे या नहीं ? जेतसी ने कहा-जाम्भोजी ने जो कहा है वह सत्य ही कहा है। इण धरती पर कोई राजा स्थिर रहा ही नहीं है। मेरे लिये तो यह उपदेश बहुत ही अच्छा है। मुझे ज्ञान हुआ है। किन्तु मेरे पिता के लिए अच्छा नहीं है। मुझे तो जाम्भोजी ने कोट दिया, राजा बना दिया है। राव लूणकरण युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। जेतसी बीकानेर के अधिपति बने।

वील्हो उवाच-हे गुरु देव ! प्रथम जो आपने बतलाया था कि राव लूणकरण ने जाम्भोजी की स्तुति की थी। उन्हें अपना इष्ट देवता मानता था। किन्तु नारनौल जाते समय उन्होंने जाम्भोजी की आज्ञा का उल्लंघन क्यों किया ?

नाथोजी उवाच-हे शिष्य ! मनुष्य की मनोवृत्ति बड़ी ही चंचल है। लूणकरण जब जाम्भोजी के सामने था तब तो उमंग उमड़ रही थी, उनका कवित्व जग गया था। किन्तु जब वापिस अपने राज में आया तो वासना ने उस आनंद को ढक दिया और नारनौल हस्तगत करने की इच्छा जागृत हुई। राजा ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ज्योतिषी, पण्डित आदि विद्वानों से पूछा था। तब उन्होंने युद्ध में जाने की प्रेरणा दी थी। और कहा कि अवश्य ही जीत होगी। पण्डित लोग चाहते थे कि राजा हमारे चंगुल से कहीं निकल न जाये इसीलिए जाम्भोजी की बात को झूठी करते गये और अपने वाक्जाल में फंसा लिया तथा राजा को मृत्यु तक पहुँचाने के लिए तैयार कर लिया।

जब अंत समय आ जाता है तो अच्छी बात भी उल्टी लगती है राजा लूणकरण के साथ भी ऐसा ही हुआ। राव लूणकरण के विपरीत उनका बड़ा बेटा जाम्भोजी की शरण में आ गया तो देवजी ने कृपा की और उन्हें राजा बनाने का वरदान दिया। कुदरत का खेल बड़ा ही विचित्र है, जो होनहार है वही होता है। इसके लिए परिस्थितियां अपने आप बनती जाती है।

'' नर चीते कछु और दई कछू और बणावै।
करण मत महल दई तहां धूल उड़ावै। ''

बन्दी नेतसी को छुड़ाना

नाथोजी उवाच– बीकानेर का प्रसंग पूर्ण हुआ तब शिष्य वील्हाजी की जिज्ञासा को शांत करते हुए कहने लगे–

तोडै सोलंकी राज करै नेतसी। जिण नु चारण गीत कह्या। कूड़ा विडदावण घणा दीन्हा। महलूखान नवाब अजमेर के थाणै सुण्या। मन मां अहंकार कीयों। चड़ि अर तोड़ो मारयों। अदि कीवी नेतसी स पकड़्यौ। अजमेरी आंणौ। चारण कनां सु उलटा गीत कहाया। नेतसी राठौड़ा ने ओठी मेल्ह्या। मामा कागद बाच्या। जोधपुर टीकै राव सांतल। राव सांतल साथ भेलो कीयौ। चीडावत रिड़मलो, त जोधावत भेला हुआ। वारै राव जोधपुर थी। बारै अणीकर चड़्या। पीही थांवलै थी। नैड़ो कांकोलाव तलाब डेरा किया। दूदै जोधावत नै जाम्भोजी मिल्या था। थांवलै जाम्भोजी प्रगट। राव सांतल दरबार कीयों। सांतिल कहै– सतगुरु मिलै त सांसो भाजै। अमराव कहे– रावजी क्यों सांतलि कहै– रे भाई! सलै आवै कोई नही। लड़ाई करण रो तो बूतो कोई नही। टका द्या तो पणि आपणी काची हुवै। दूदोजी कहै– सांसो जाम्भोजी मेटसी। हालौ जाम्भोजी रै पगै लागा। सोह भेला हुवा। राव सांतल कहै– हमें जाम्भोजी कठे छै। दूदोजी कहे– अठे थांवले छै छड खड़ी असवारी। करत प्रणाम जाम्भोजी र पाये आया। राठौड़ प्रदेखणा दे पाये लागा। जित रे खान की असवारी आई। राठौड़ा के साथ का कोई क्योंई कोई क्योई कहण लागा। सतगुरु कहे– डेरो पासउ करो। चिंता मति करो। खान पासि पतिसाही दल। खान आय कदम पोसी कीवी। जाम्भोजी श्री वायक कहे–

शब्द–66

ओ३म् ऊमाज गुमाज पंज गंज यारी, रहिया कुपहीया शैतान की यारी।।
शैतान लो भल शैतान लो, शैतान बहो जुग छायो।
शैतान की कुबध्या न खेती, ज्यूं काल मध्ये कुचीलूं।
बे राही बे किरियावन्त कुमती दौरै जायसै, शैतानी लोड़त रलियों।
जां जां शैतान करै उफारूं, तां तां महंत न फलियों।
नील मध्ये कुचील करबा, साध संगिणी थूलूं।
पोहप मध्ये परमला जोति, यूं सुरग मध्ये लीलूं।
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं घण बरषंता नीरूं।
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं रूही मध्ये खीरूं।

नेतसी सोलंकी टोडे का राजा था तथा राठौड़ जोधपुर नरेश का भानजा था। एक समय एक चारण अजमेर में राजा महलूखान के राज दरबार में पहुँचा और वहाँ जाकर उन्होनें महलूखान के सामने कविता सुनाई।

उस कविता में टोडे के राजा नेतसी की महिमा का बखान था। चारण ने कवि होने के नाते कुछ अधिक ही महिमा का बखान कर दिया। जितना बखान किया, उतना महान् सोलंकी था ही नहीं। लेकिन कवि को कौन कहे? महलूखान के लिए सोलंकी की महिमा सुनना असह्य ही था। कौन राजा ऐसा होगा जो

दूसरे छोटे-मोटे राजा की महिमा सुनेगा ?

महलूखान ने कहा- मेरे से भी बड़ा अन्य राजा कैसे हो सकता है ? यदि बड़ा हूँ तो मैं ही हूँ। महलूखान ने टोडे पर चढाई की और टोडे को जीत लिया। नैतसी को बंदी बनाकर अजमेर ले आये। चारण द्वारा बड़ाई सुनकर नेतसी के साथ अन्याय किया। नेतसी को चारण के सामने उपस्थित किया। और कहा- यही है वह तुम्हारे राजा जिनकी तुम मेरे सामने बड़ाई करते थे। अब तुम उलटे गीत गाओ। महिमा का बखान तो बहुत किया, किन्तु अब तुम इसकी हीनता के गीत गाओ। इस प्रकार से महलूखान ने अहंकार वशीभूत होकर चारण से उल्टे गीत गवाये।

नेतसी जेल में बंद हो गया। राज्य छूट गया। किस अपराध के कारण नेतसी को बंदी बनाया गया इसका कुछ भी पता नहीं था। नेतसी ने किसी भी प्रकार से कागज लिखकर अपने मामा के पास जोधपुर भेजा। जोधपुर नरेश ने कागज पढा और अपने साथियों को एकत्रित किया और कहा-कि अजमेर जेल में बंद भानजे को छुड़ाना है। इसीलिए अजमेर पर चढाई करने की तैयारी करो। उस समय बारह राव जोधपुर के अधीन थे। सभी एकत्रित होकर अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर अजमेर पर चढाई के लिए चल पड़े।

अजमेर और जोधपुर की सीमा थांवला गाँव में थी। उधर जोधपुर तथा इधर अजमेर अपनी राज्यसीमा तक तो जोधपुर नरेश बेखटके पहुँच गये। किन्तु अपनी सीमा से बाहर जाने की हिम्मत नहीं हुई। थांवले गाँव के पास ही काकोलाव तालाब के किनारे डेरा डालकर बैठ गए। बारह रावों में दूदा जोधावत साँतल का भाई मेड़ता का राजा साथ था। दूदे की भेंट जाम्भोजी से कई बार हो चुकी थी। इसीलिए दूदा जाम्भोजी की महिमा जानता था।

राव सांतल ने दरबार एकत्रित किया और विचार-विमर्श करने लगे कि ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए ? यदि हम सीधे आक्रमण करते हैं तो नेतसी का छूटना असंभव है। न जाने दबा हुआ शत्रु नेतसी को ही न मार दे ? क्या पता चले कि हमें ही हार का मुँह न देखना पड़े। हमारे पास शस्त्र, तोपें आदि भी शत्रु की बराबरी नहीं कर सकते।

नेतसी को छुड़ाने के लिए न तो हम झुक सकते हैं, यह हमारी राठौड़ों की मर्यादा है। और न ही टका पैसा ही दे सकते हैं। इससे हमारी कमजोरी जाहिर होती है। हमारी तोपें भी कच्ची हैं। उनका सामना करने में असमर्थ है। यदि युद्ध करते हैं तो बहुत ही खून-खराबा होगा। एक को बचाने के लिए हजारों की जान जायेगी। यह तौ सौदा महंगा पड़ेगा। सांतल को कुछ सदबुद्धि आयी।

इस समय तो कोई अलौकिक शक्ति देवी-देवता ही हमारा साथ दें, तो ही हमारा कार्य बनेगा। हमारी महलूखान से लड़ाई भी क्या है ? केवल नेतसी को छुड़ाना ही तो कार्य है। यह कार्य बिना दैविक शक्ति के होना असंभव है। इस समय ऐसा कौन सा देवता है, जिसका हम स्मरण करें, जिससे हमारा कार्य सुलभ हो जाये। ''साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे''।

उस समय दूदा राव ने कहा-हे भाई ! इस समय प्रत्यक्ष शक्ति तो श्री जय अम्बेश्वर ही हैं। अम्बा शक्ति के भी ईश्वर श्री जम्भेश्वर प्रगट रूप से विद्यमान है। हम उनकी शरण ग्रहण करे। मेरे तो बहुत से कार्य उन्होंने सहज में ही कर डाले हैं। अभी अभी सरियाखान के युद्ध में उन्होंने ही मुझे विजय दिलाई थी।

उनका दिया हुआ खाण्डा जो मैं पास रखता हूँ। यह विजय का वरदान मेरे पास है। उन्हीं कीकृपा से मुझे मेड़ते का राज मिला है। आप उन्हें स्मरण कीजिए। हमारी विपत्ति का कोई न कोई निदान अवश्य ही निकालेंगे।

सांतल ने कहा–वो जम्भेश्वर इस समय कहाँ पर है ? दूदे ने बतलाया कि वो तो यहीं थांवले में ही हैं। वैसे तो उनका वचन है–''जहाँ चीन्हों तहां पायो'' जहाँ पर भी आप याद करोगे, वहीं पर हूजूर हाजिर हैं। वे तो सभी जगह विष्णु रूप से व्यापक हैं तो यहाँ भी अवश्य ही प्रकट हो जायेंगे। हम उनकी शरण में जायें। वही हमारा उद्धार करेंगे।

सांतल ने कहा–दूदा चलो ! जहाँ वे इस समय हैं, वहीं जाकर विनती करते हैं। उसी समय ही श्री देवजी थांवले प्रगट हुए और सांतल आदि राजाओं को दर्शन दिया। सांतल ने उमराओं सहित विनती की। परिक्रमा करके चरणों में दण्डवत प्रणाम किया।

श्री देवजी ने कहा–हे सांतल! आप अपनी मंडली सहित दूर जाकर बैठो। अभी ही अजमेर से महलूखान आ रहा है। तुम्हारी समस्या का समाधान होगा। सांतल ने अपना डेरा दूर लगा लिया। सांतल चिंता मुक्त हुआ। प्रतीक्षा करने लगा कि नेतसी को देवजी कैसे छुड़ाते हैं ?

महलूखान के मन में प्रेरणा जगी कि मैंने सुना है कि जोधपुर की सेना थांवले आ गयी है और जाम्भोजी उन्हें वरदान देने के लिए थांवला पहुँच गये हैं। जाम्भोजी सांतल को वरदान देंगे तो निश्चित ही बलवान हो जायेंगे। मैं उनसे युद्ध नहीं कर सकूँगा। जाम्भोजी उन्हें वरदान दे, उससे पूर्व ही मैं उनके चरणों में पहुँच जाऊँ और उनसे वरदान लेकर शक्ति संपन्न हो जाऊँ। वे तो समदृष्टि हैं। इस प्रकार से विचार कर के महलूखान अपने साथ अन्य उमरावों को लेकर हाथी पर सवार होकर थांवले पहुँचा। राठौड़ों के साथ के लोग कुछ ही कुछ कहने लगे। जैसे यह क्यों आया है ? इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते।

महलूखान ने आकर श्री देव के चरणों में प्रणाम किया–श्री जाम्भोजी ने महलूखान को शब्द सुनाया जिसका भाव इस प्रकार से है–हे महलूखान ! तुमने अपने जीवन के लक्ष्य को ठीक से समझा ही नहीं है। तुम्हें ईश्वर (परमात्मा) से संबंध जोड़कर, वह ईश्वर मेरा है, ऐसा कहना चाहिए था। किन्तु तुमने तो हाथी–घोड़ा, राज–पाट, महल आदि नाशवान वस्तुओं से यारी जोड़ रखी है। इसी वजह से कुमार्ग पकड़ लिया है।

शैतान लोगों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है। वे तुम्हारे अपने मित्र तुम्हें डुबा देंगे। शैतान दुष्ट लोगों को ही बढावा देते हैं। उन्हीं से प्यार करते हैं। ये शैतान लोग तो सभी युगों में छाये हुए थे। अब भी शैतान छा गये हैं। शैतान लोगों की खेती (कार्य) ही कुबध करना है। अन्य कुछ भी तो कार्य नहीं है। जिससे दूसरों को दु:ख होवे, वही कार्य करना शैतान की खेती है।

समय तो अपने हिसाब से ठीक ही व्यतीत हो रहा है। किन्तु शैतान लोग उसमें कुचिलता करके उसे बदलना चाहते हैं। वे लोग राह (पंथ) को नहीं जानते हैं, न ही कोई क्रिया ही शुद्ध रखते हैं। कुमति लोग दौरे (नरक) में पडेंगे। अच्छाइयाँ आनी तो कठिन हैं किन्तु बुराइयाँ तो जबरदस्ती प्रवेश कर जाती हैं। जहाँ–जहाँ पर भी शैतान लोग अपना कर्तब दिखाते हैं, वहाँ–वहाँ पर उनका कर्तब फलीभूत नहीं होता है। विकास तो नहीं होता, किन्तु विनाश तो हो जाता है।

परमात्मा की लीला रचना में, प्रकृति में विकृति पैदा करना यह शैतान का कार्य है । साधु संत के प्रति स्थूल वार्ता करना। उनसे सत्संग की बात न पूछ करके व्यर्थ की संसार की बातों में रस लेना यही शैतानपना है। जिस प्रकार से फूल में सुगन्धी होती है, उसी प्रकार से स्वर्ग सुख में भी उसी चेतन की सत्ता विद्यमान है। उस चेतन की सत्ता से ही फूल में सुगन्धी और सुख में आनंद की अनुभूति होती है। संसार में रहकर दूसरों का शोषण न करो। किन्तु दूसरों का पालन–पोषण करो। यही उपकार है। इसी उपकार की बदौलत ही वर्षा होती है। उपकार की भावना से ही गाय के पेट से दूध उतरता है। सभी कुछ परोपकार से ही

दुनिया फूलती फलती है। इस प्रकार से महलूखान को शब्द सुनाया। खान कहै- नेता क्या है, ज्यान कबूल है। पीरजी बैठूंगा पीछै, छोंडोगा पहला। उभा उभ मंगायो। हथणी चाड़ अर लाया। जाम्भैजी हजूर आंणी बेड़ी काटी। महलूखान कहै- वे नेतसी यौं जाणेगा, कदी मामां का जोर करि कै छूटा। हूँ सो नहीं। पीरजी ने छुडाया है। नेतसी मामां सो मिल्यो। मामा कहै किण तरै छूटो। नेतो कहे-जांभेजी छुटायो। राठौड़ खुशी हुवा।

जाम्भोजी के सामने खान एक पैर पर खड़ा था। कहने अगा- हे महाराज! यह नेतसी तो क्या है? मैं आपके कहने से प्राण भी दे सकता हूँ। हे पीरजी! मैं बैठूँगा बाद में, पहले नेते को छोडूँगा। वही पर ही खड़े खड़े ही नेतसी को मंगवाया। नेतसी को हथणी पर चढा कर हाजिर किया। जाम्भोजी के सामने ही नेतसी की बेड़ी काटी। नेतसी को मुक्त कर दिया।

महलूखान कहने लगा-यह नेतसी यह न समझे कि मुझे मेरे मामा ने छुड़ाया है। मैंने तो जाम्भोजी के कहने से छोड़ा है। नेतसी अपने मामा से जाकर मिला। मामा ने पूछा-कि कैसे छूटे? नेतसी ने कहा कि मुझे तो जम्भदेवजी ने छुड़ाया है। राठौड़ खुशी हुए। बिना युद्ध के ही नेतसी छूट गया, जाम्भोजी ने बड़ी कृपा की है।

महलूखान कहै-पीरजी भिसति कीसी तरै पाइये। खुदाय का दीदार मिलै। ऐसा होह बतावो। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

महलूखान ने पूछा कि हे पीर जी! स्वर्ग कैसे मिले? खुदा का दीदार-प्रेम कैसे मिले? ऐसा उपाय बतलाओ? जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-विसमला-विष्णु कृपालु दयालु रहम करने वाला रहीम है। उनके पास जाने वाला मार्ग तुम्हारे मार्ग से भिन्न है।

कृष्णी माया से मिली हुई इस काया में, हृदय में, जीवों के प्रति अहिंसा की भावना से उस रहमान रहीम से भेंट होगी। अपने मानव जीवन के कर्तव्य को निभाना ही कलमा है। उस रहीम को बाहर न खोजकर के दिल में ही खोजो तो अवश्य ही साक्षात्कार होगा। तभी आप सच्चे मुसलमान होगे।

जितने भी पीर पुरुष इस जमीन पर अवतरित हुए हैं, सभी ने कर्तव्य कर्म करना ही बतलाया है। नेकी से चलना ही सलाम बताया है। जो जीते हुए भी मरे के समान निरंहकारी होता है, वही सच्चा तथा ईमानदार हो सकता है। यही प्रमाण है।

जो हमारे दिल में लीलामय पुरुष परमात्मा विराजमान है। वह तो सभी पर रहम करने वाला है। तुम प्रथम सुपात्र बनो। इतने नियमों पर चलोगे तो भिस्त स्वर्ग की प्राप्ति हो सकेगी।

महलूखान कहै- मुसलमानी के राह मां गोसत का अजाब नहीं। जाम्भौजी श्री वायक कहै-

शब्द-75

ओ३म् जोगी रे तु जुगत पिछांणी, काजी रे तूं कलम कुरांणी।
गऊ बिणासो कहि तानी, राम रजा क्यूं दीन्ही दानी।
कान्ह चराई रनबे बांनी, निरगुन रूप हमें पतियानी।
थल शिर रह्या अगोचर बानी, ध्याय रे मुंडिया पर दानी।
फीटा रे अण होता तानी, अलख लेखो लेसी जाणी।

महलूखान कहने लगा-मुसलमानी धर्म में गोश्त खाने की मनाही नहीं है। जाम्भोजी ने शब्द द्वारा बतलाया-

प्रथम तो वहाँ उपस्थित योगी से कहा-हे योगी तू युक्ति को पहचान, तथा बाद में काजी से कहा-कि

तू कुराण में स्थित कलमों को पहचान। कुराण के कलमों में क्या कहा है ? कुराण यह तो नहीं कहती कि जीव हत्या करो। गउवों को क्यों मारते हो ? गउवों को मारने का आदेश ही होता तो राम रहीम ने दया करके क्यों बचाया ? स्वयं कृष्ण ने वन में गऊवें क्यों चराई ? गौ वंश का संवर्धन क्यों किया ?

अन्य किसी दूसरों की बात यदि तुम नहीं मानते तो मैं वही निर्गुण सगुण रूप से तुम्हारे सामने उपस्थित होकर बतला रहा हूँ। अपनी दिव्य अलौकिक वाणी से युक्त मैं सम्भराथल पर विराजमान हूँ। रे मुंडिया ! मैं परोपकार की बात करता हूँ। मुझे स्वार्थ कतई नहीं है। ध्यान से देख, विचार कर।

अनहोनी तो तुम्हारे से होगी नहीं। तुम चाहे कितना भी जोर लगाले। केवल अपनी अल्प बुद्धि एवं ताकत का प्रदर्शन कर के अपने को मूर्खता में ही डालोगे। वह अलख निरंजन हिसाब-किताब, लेखा-जोखा अवश्य ही लेगा। तुम्हारी मन मानी नहीं चलेगी।

महलूखान कहै- मुसलमान कहै वेराह चलह। जाम्भोजी शब्दवाणी कहै-

शब्द-76

ओ३म् तन मन धोइये संजम हुइये, हरष न खोइये।

ज्यूं ज्यूं दुनियां करै खुवारी, त्यूं त्यूं किरिया पूरी।

मुग्धां सेती यूं टल चालो, ज्यूं खड़के पासि धनूंरी।

महलूखान कहने लगा- हे देवजी ! आप मुझे जो आदेश दोगे, वह मैं शिरोधार्य करूँगा। किन्तु हमारे जाति भाई मुसलमान मुझे काफिर कहेंगे। वे राह चलने का दोष मेरे ऊपर लगायेंगे। मैं कैसे जीवन व्यतीत करूँगा ?

श्री देवजी ने शब्द सुनाते हुए कहा-हे महलूखान ! सर्वप्रथम व्यक्ति अपना सुधार कर लेता है तो वह दूसरे का भी कर सकता है। सच्चाई को कोई कलंक नहीं लगता। शुद्ध स्वर्ण के तो जंग नहीं लगता। स्वयं अपने आप ही तन को धोइये। स्नानादि शौच क्रिया द्वारा शरीर की सफाई की जा सकती है। उसके पश्चात् मन को भी धोइये। मन शुद्ध,भाव की शुद्धता से रहेगा। व्यर्थ का वाद-विवाद, संकल्प-विकल्प वासनादि ही मन को दूषित करते हैं। इसीलिए शुद्ध भावना से मन को धोइये। इसके बाद इन्द्रियों को वश में कीजिए। मन बुद्धि अहंकार, इन्द्रियाँ आदि सभी तुम्हारे वशीभूत हो जायेगा, तो मन धुल जायेगा। सदा ही प्रत्येक परिस्थिति में ही खुशी बनी रहे। प्रसन्नता ही मुख्य धन है। यही चला गया तो पास में कुछ भी नहीं बचेगा हर हाल में खुश रहो।

आपके नियम धर्म देखकर दुनियां आपसे द्वेष करेगी। आपकी निंदा करेगी। आपको निम्न स्तर का भी बतलायेगी। किन्तु आप अपनी क्रिया पूरी रखो। दूसरों के बहकावे में आकर अपने सिद्धान्त को छोड़ मत दो। संसार में कुछ मुग्ध लोग भी हैं। जो जानते हुए भी शैतानी करते हैं। वे लोग अपने नियम धर्म में बाधा भी डालेंगे किन्तु सावधान रहना। यह पता चल जाये कि मुग्ध आ रहा है उससे बचकर चलो। व्यर्थ का विवाद कर के समय एवं श्रद्धा को हानि पहुँचायेगा। जिस प्रकार से आवाज- खतरे को भांप कर के धनुरी-धनेर पक्षी उड़ जाता है। उसी प्रकार से मुग्धों से दूर रहें।

महलूखान ने नेतसी को मुक्त कर दिया और शब्दों का श्रवण करके वापिस अजमेर चला गया। महलूखान के चले जाने पर श्री देवजी के निकट सांतलराव अपनी मंडली सहित पास में आया और कहने लगा-

राठौड़ आय देवजी के पगै लागा। राठौड़ कहे-जाम्भाजी ! म्हे थारा सिख खासा हुवा। तिको म्हे

बिसनोई अकर किया। जाम्भोजी कहे-अकर किया बिसनोइयाँ ने रूड़ानां। बिसनोइयाँ कनां पाँचवौ वांटौल्यौ। छत्रीया कह्यो-देवजी ! राजा जठे बिसनोई रो मान जो सायै भाजै। तिको तिजाते मां श्री भगवान् सुं वे मुख हुवै। छत्री कहै-जाम्भाजी ! देवां मांहै सुधी आराध कुण रो। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-70

ओ३म् हक हलालूं, हक साच कृष्णों, सुकृत अहल्यो न जाई।
भल बाहीलो भल बीजीलो, पबणा बाड़ बलाई।
जीव कै काजे खड़ो ज खेती, तामैं ले रखवालो रे भाई।
दैतानी शैतानी फिरैला, तेरी मत मोरा चर जाई।
उनमन मनवा जीवन जतन कर, मन राखीलो ठांई।
जीव के काजै खड़ो ज खेती, वाय दवाय न जाई।
न तहां हिरणी न तहां हिरणा, न चीन्हों हरि आई।
न तहां मोरा न तहां मोरी, न ऊंदर चर जाई।
कोई गुरु कर ज्ञानी तोड़त मोहा, तेरो मन रखवालो रे भाई।
जो आराध्यो राव युधिष्ठिर, सो आराधो रे भाई।

महलूखान के रवाना होने के पश्चात् राठौड़ ने आकर देवजी के चरणों में प्रणाम किया। और कहने लगे-हे जम्भेश्वरजी ! हम बहुत से लोग आपके शिष्य हो गये हैं। इसीलिए बिश्नोई लोग अकड़ हो गये हैं कि राजा अब हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा, क्योंकि हमारे गुरु भाई हो गये हैं।

हे महाराज ! इन लोगों को आप ही समझा दो। जिससे ये लोग हम से टक्कर का रास्ता न अपनायें। नहीं तो मजबूर होकर हमें कठोर कार्यवाही करनी पड़ेगी। जाम्भोजी ने कहा-यदि बिश्नोई आपके सामने अकड़ जाते हैं, तो यह अच्छी बात नहीं है। आप लोग भी बिश्नोइयों को नाजायज तंग न किया करो। ये लोग मेहनती किसान है। खेतों में उपज ज्यादा करते हैं तथा बहुत समय सेवा, भजन, यज्ञ, परोपकार में भी लगाते हैं। इसीलिए इनसे पाँचवाँ भाग लिया करो। क्षत्रिय कहने लगे-हे देवजी ! जहाँ राजा आपका शिष्य है। वहाँ बिश्नोइयों का मान बढता है। राजा बिश्नोइयों का आदर करता है। यदि ऐसा न करे तो वह राजा अधिक दिन राज नहीं कर सकेगा। उसका राज उल्ट जाता है। तो उसका सहायक कौन होगा ? प्रजा और भगवान् दो ही तो सहायक हैं।

क्षत्रिय कहने लगे-हे जाम्भोजी ! देवता तो बहुत हैं। हम उन देवताओं में आराधना किस की करें ? ऐसा पवित्र कल्याणकारी कौन देवता है जिससे हमारा कल्याण हो सके ? जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-

हे क्षत्रियो ! हक की कमाई करो। हक की कमाई ही सच्ची कमाई है। कृषि खेती करना हक की कमाई है। जिससे परिश्रम से कमाया जाता है। खेती ही उत्तम है। सुकृत किया हुआ व्यर्थ में नहीं जाता है। उत्तम खेती करो। अच्छी प्रकार से खेत में हल चलाओ। तथा अच्छी भली प्रकार से खेत में युक्ति पूर्वक बीज बोवो। जब खेत में धान उग आये, तो उसकी रक्षा के लिए पवित्रता की बाड़ करो। यह खेत तो अनाज प्राप्ति हेतु करो। तथा दूसरी खेती जीव की भलाई के लिए साधना रूपी खेती करो। साधना से आनंद परमानंद प्राप्ति रूपी फल मिलेगा।

अनाज हेतु तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए खेती की रखवाली करनी होगी। खेती को खाने के लिए कुछ दैत्य, कुछ शैतान लोग मौका देख रहे हैं। तुम्हारी सद्बुद्धि को कहीं मयूर नहीं चर जाये। यह मेरा है, मैं ही इसका मालिक हूँ। यह मेरापन ही मयूर है जो साधना एवं खेती को उजाड़ देता है। मन को थिर करके ही खेती की जा सकती है। मन टिकेगा नहीं तो न तो साधना ही बन पायेगी और न ही खेती ही कर पायेंगे। इसीलिए एक मन एक दिल होकर ही कार्य करें।

इस जीव की भलाई के लिए मन को एकाग्र करके कार्य में तत्पर हो जा। इसी से ही सफलता मिलेगी। जब मन एकाग्र हो जायेगा, श्रद्धा भाव स्फुरित होगा तो किसी भी प्रकार की शीत लहर या लू नहीं लगेगी। खेती को नुकसान पहुँचाने वाले हरिण एवं हरिणियाँ तथा हरियावड़ी गाय। तथा मयूर मयूरी चूहे आदि हैं। इनसे बचाव के लिए प्रयत्नशील रहना होगा।

साधना पक्ष में भी मन रूपी हरिण मन की वासना रूपी हरिणियाँ, शुद्ध सात्विक बुद्धि रूपी गाय, अहंकार रूपी मयूर तथा मेरापन रूपी मयूरनियाँ, अचेतनता रूप चूहे, ये सभी साधना तथा खेती में बाधक हैं, इन्हीं से सावधान रहना होगा। तभी खेती कर पायेगा।

हे क्षत्रियो! इस महान् साधना की सफलता हेतु कोई ज्ञानी गुरु धारण करो। वह तुम्हारे मोह को तोड़ देगा। क्योंकि अब तो मोह माया का रखवाला तुम्हारा मन है। जिस प्रकार से राव युधिष्ठिर ने आराधना की, उसी प्रकार से तुम भी आराधना करो। तुम्हें सफलता मिलेगी।

राव सांतिल बूझै देवजी! ऐ बीजा देव पूजीजै छै किं फुरमाया छै क नहीं। जाम्भोजी श्री वायक कहै–

शब्द–71

ओ३म् ध0णा धूजे, पाहण पूजे, बेफरमाई खुदाई।
गुरु चेले के पांये लागे, देखो लोग अन्यायी।
काठी कण जो रूपा रेहण, कापड़ माह छिपाई।
नीचा पड़ पड़ तानें धोकै, धीरा रे हरि आई।
ब्राह्मण नाऊं लादण रूड़ा, बूता नाऊं कूता।
बै अपहाने पोह बतावै, बैर जगावै सूता।
भूत परेती जाखा खांणी, यह पाखंड परवाणो।
बल बल कूकस कांय दलीजै, जामैं कणूं न दाणूं।
तेल लीयो खल चौपे जोगी, खलपण सूंघी बिकाणो।
कालर बीज न बीज पिराणी, थलसिर न कर निवाणो।
नीर गए छीलर कांय सोधो, रीता रह्या इवाणो।
भंवता ते फिरता फिरंता ते भवंता, मड़े मसाणे तड़े तड़ंगे।
पड़े प[kk.k ह् वातो सिद्धि न काई, निज पोह खोज पिराणी।
जे नर दावो छोड्यो मेर चुकाई, राह तेतीसों की जाणी।।

राव सांतल ने पूछा– हे देवजी ! ये लोग एक ईश्वर विष्णु परमात्मा को छोड़ कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। इनकी पूजा करना आप जैसे अवतारी पुरुषों ने तथा वेद शास्त्रों ने बतलाया है या नहीं ? इसके बारे में आप मुझे बतलाइये, कि कल्पित देवता पूज्य हैं या नहीं ? तब श्री देवजी ने शब्द सुनाया–हे सांतल ! कुछ लोग योग साधना के बहाने छाया चढाते हैं या कांपते हैं या सर्दियों की रात्रि में धूणी धुका लेते हैं। कपड़े नहीं ओढते। सर्दी के मारे कांपते हैं और पूजा पत्थरों की करते है। ऐसा परमात्मा ने तो नहीं फरमाया। प्रथम तो मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है। मूर्ति बनाने वाला गुरु और मूर्ति उसकी चेला। किन्तु निर्माण कर्ता गुरु ही चेला के चरणों में पड़ता है। नीचे गिर कर प्रणाम करता है। यही तो अन्याय है। हे लोगों, देखो ! ये लोग सजीव मूर्ति का तो निरादर करते हैं किन्तु निर्जीव पत्थर या काठ कणजो, चांदी, मिट्टी या अन्य प्रकार की मूर्ति बना कर उसको कपड़े के अंदर छिपाते हैं। भोग लगाते हैं, स्नान कराते हैं, सुलाते हैं तथा नीचे पडकर धोक भी लगाते हैं। उन पुजारियों से पूछते हैं कि इस प्रकार से हरि मिलेंगे। तो ये लोग यही कहते हैं कि धैर्य रखो, हरि आयेंगे, दर्शन देंगे।

इस प्रकार से भोली-भाली जनता को भ्रमित करने वाले पुजारी, ब्राह्मणों से तो भार ढोने वाला पशु ही अच्छा है, जो भार तो ढोता है। कुछ हमारा भार हल्का ही करता है। किन्तु ये तुम्हारे पुजारी तो तुम्हारे ऊपर भार डाल कर के और भी बोझिल बना देते हैं तथा बुत (कल्पित मूर्ति) से तो जीते जागते कुत्ते भी अच्छे हैं, जो भूले भटके हुए को मार्ग बता देते हैं। कहीं रात्रि में मार्ग से भटक जाये तो कुत्ते को भौंकता हुआ सुनकर गाँव का पता लग जाता है, और यदि कोई रात्रि में चोर आ जाये तो कुत्ता भौंककर जगा देता है। किन्तु ये बुत नहीं जगा सकेगी। चोर तो इन बुतों को ही उठाकर ले जायेंगे तो भी ये बुत नहीं कहेंगे कि हमें क्यों ले जाते हो ?

भूत-प्रेतों की लोग पूजा करते हैं। ये भी वायु प्रधान शरीर वाली जीव योनियाँ हैं। मरने के पश्चात् कुछ जीवों को जन्म प्राप्त नहीं होता तो अधोगति में चली जाती हैं, इनकी पूजा पाखण्ड है। असलियत में पूजा योग्य तो एक भगवान् विष्णु ही हैं, जो सर्व सृष्टि का पालन-पोषण करने वाले हैं।

हे प्राणी ! बार बार कूकस (थोथा भूसा) को क्यों दलता है (पीसता है) यह तो पाखण्ड ही है। क्योंकि एक बार दाने निकल गये तो फिर दुबारा दाने उसमें कहाँ से मिलेंगे। तिलों में से तेल निकाल लिया जाता है, तो पीछे खली ही शेष रह जाती है। जो केवल पशुओं के खाने योग्य ही रहती है। उस खली की कोई कीमत नहीं है। उसी प्रकार से शरीर से जीवात्मा निकल गयी, तो पीछे केवल शरीर खली समान ही है।

ये भूत प्रेत भी ऐसे ही हैं। भूत प्रेतों की सेवा करना तो कालर भूमि में बीज बोना है। जहाँ पर अनाज नहीं पनपता। बीज ही व्यर्थ में चला जाता है। कल्पित देवताओं की पूजा तो व्यर्थ का ही परिश्रम है। नीचे की पकी जमीन में तालाब खोदने से तो जल ठहरेगा, सभी जीव जल पीयेंगे। सभी का भला होगा। किन्तु कोई अज्ञानता वश धोरे-टीबे पर कोई तालाब खोदे तो वहाँ जल कहाँ ठहरेगा ? परिश्रम व्यर्थ ही होगा। ऐसा ही अन्य देवता की पूजा करना व्यर्थ का परिश्रम है, निष्फल है।

कुछ साधु संत लोग सिद्धि प्राप्ति हेतु भ्रमण करते हैं, भटक रहे हैं, अज्ञानता से विमूढ हैं। कहीं श्मसान भूमि मे जाकर भूत-प्रेतों की सेवा करते हैं। कई लोग खड़े ही रहते हैं। पत्थरों पर जाकर सिर रगड़ते है। वहाँ पर सिद्धि कहाँ है ?

हे प्राणी ! तू अपने स्वकीय स्वाभाविक मार्ग की खोज कर। जिस मानव ने अहंकार छोड़ दिया है, मेरापन त्याग दिया है, उसी ने ही तेतीस करोड़ के उद्धार का जो मार्ग है उसी को जाना है। अन्य तो केवल

देखा-देखी ही करते हैं। रास्ते से भटके हुए हैं। वे क्या जाने मार्ग को ?

राव सांतल ने पूछा-हे गुरु देव! मुझे क्या करना चाहिए ? हे महाराज! मैं प्रसन्नचित नहीं हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि सभी राजा लोग अपने पुत्रों के साथ राज्य कर रहे हैं, किन्तु मेरे एक भी पुत्र नहीं है। आप कृपा करके मुझे एक पुत्र दीजिए। यदि आपकी आज्ञा हो तो एक विवाह और करूं। मेरे अन्तर में बहुत ही इच्छा है। मैं दुखी हूँ। एक पुत्र हो जाये तो मेरा दुःख दूर हो जायेगा।

श्री देवजी ने कहा-हे सांतल! तेरे घर में मुझे तेरह स्त्रियाँ दीख रही हैं। इनके ही जब नहीं हुआ तो तू तेरह विवाह और भी करले तो भी नहीं होगा। सांतल ने पूछा-हे देव! इसमें क्या कारण है ? कि संतान नहीं हो रही है। बालक नहीं हो रहा है। इसमें मुझे कौनसा शाप लगा है ?

ऐसा कौन सा पाप मेरे खाते में जमा है, जो संतान नहीं होने देता। हे सांतल! तुम्हारे पोते जमा पाप पुण्य ही नहीं है। बालक तो तभी होगा, जब तुम्हारे पुण्य पाप जमा होगा। या तो कुछ लेना होगा या कुछ देना होगा। यदि किसी का देना है, तो वह आपका पुत्र बन कर के आयेगा और वह तुम्हारी संपत्ति का मालिक बन जायेगा और अपना दिया हुआ वापिस ले लेगा। और यदि आपको कुछ किसी से लेना है तो वह आपका पुत्र बन कर आयेगा और अपना सेवा करके दे जायेगा। अपना कर्जा चुका देगा। इसीलिए हे सांतल! तुम्हारे पूर्व जन्म का न तो कुछ लेना है और नहीं कुछ देना है। इसीलिए संतान नहीं हो रही है।

देव ने कहा- हे सांतल! अपने जीवन के बारे में विचार करो। पूर्व जन्म के कर्म संस्कार तुम्हारे साथ हैं। अब आगे मुक्त होने की बात करो। आप पूर्व जन्म के पुण्य से राजा बने हैं। अब आगे की जिंदगी कहीं नीचे न गिर जाये, ध्यान रखो। इसीलिए सुशील बनो। स्नान करो। मद्य-मांस से दूर रहो। इस प्रकार से जीवन व्यतीत करोगे, तो संसार सागर से पार उतर जाओगे। देवजी की बात सांतल ने स्वीकार की, तथा शुद्ध जांभाणी पंथ का पथिक बन कर उनतीस नियमों का पालन किया। वहाँ से सांतल विदा हुआ। अपने भानजे को छुड़ाकर जोधपुर वापिस चला आया।

सतगुरु देव वहीं थांवला साथरी पर विराजमान थे। उसी समय रणसीसर का रावल अपनी सेना सहित सांतल की सहायता हेतु आया था। सांतल के जाने के पश्चात रावल देवजी के पास आया। रावल के पास चढने के लिए तेजस्वी ऊँट था। जाम्भोजी के नजदीक आकर ऊँट को बैठाया और रावल ऊँट से नीचे उतरा। देवजी के चरण स्पर्श करने हेतु, ऊँट को छोड़कर आगे बढा ही था।

तभी ऊँट चमक कर के भागा। पास में खड़े दूसरे लोगों ने कहा- ऊँट गया, ऊँट गया। जब लोगों ने कहा तब रावल सचेत हुआ किन्तु तब तक तो भाग चुका था। रावल के हाथ से छूट चुका था। देवजी ने रावल को कृष्ण चरित्र दिखलाया। ऊँट के पीछे अपना हाथ लंबा बढाया। आगे ऊँट भाग रहा था पीछे श्री देवजी का हाथ उसे पकड़ने के लिये जा रहा था। मानो बादलों में बिजली चमकती हुई आगे बढ रही थी। देवजी के हाथ ने ऊँट को पकड़ लिया था।

उस समय तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा था कि ऊँट गया किन्तु कर्ता जी के हाथ लंबे हैं। जहाँ तक जायेगा, वहीं तक आगे हाथ तैयार है। रावल तथा अन्य सभी ने यह आश्चर्य देखा। रावल ने देवजी की करामात देखी और कितने दूर से हाथ ने ऊँट को पकड़ा था वह धरती मापी तो अठारह पैण्ड लंबा हाथ श्री देवजी ने बढाया था।

श्री हरि ने भक्तों का भाव देखकर यह आश्चर्य दिखाया था। रावल ने देवजी के चरणों में प्रणाम किया और वहीं पर बैठ गये। रावल अति प्रसन्न होकर देवजी की महिमा का गुणगान करने लगा। हरि हरि

बोलते हुए चरण कमलों को स्पर्श करता हुआ अपने को धन्यवादी माना। साथ में जितने लोग थे वे सभी प्रसन्न मुद्रा में थे।

रावल अपने साथियों सहित वहाँ श्री जी के पास ही बैठा ही था कि उसी समय एक रैबारी ऊँट साँढ चराने वाला दूध लेकर आया। सतगुरु ने कहा-बिना हाथ धोये तू दूध ले आया है। एक ऊँटनी ब्याही थी,उसका मल तुम्हारे हाथों में लगा था, उन्हीं हाथों से तू दूध दूहकर लाया है। सतगुरु ने बिना देखे ही यह बात बतलाई थी, किन्तु बात तो सत्य ही थी।

रैबारी ने कहा-बात तो आपकी सत्य है। देवजी ने उस दूध को वापस लौटा दिया और कहा-इन लोगों के लिए दूसरा दूध हाथ धोकर ले आओ। अपना पात्र उस रैबारी को दिया और अपना एक आदमी साथ में भेजा। रैबारी ने दुबारा जाकर पवित्रता से दूध दूहा और देवजी के सामने लाकर रखा।

रावल के सेवकों से कहा-जाओ जल ले आओ। और दूध की खीर बनाओ। सेवकों ने कहा-हे देव! हमारे पास तो बरतन भी नहीं हैं, खीर किसमें बनायें? सिरजनहार ने अरदास सुनी और बतलाया कि जो आपके सामने सरकंडा दिख रहा है, इसके पास जमीन में गडे हुए बरतन हैं खोदकर, निकाल कर ले आओ।

सेवक खोदकर सभी बरतन ले आये। बड़े ही सुंदर चमकते हुए बरतन थे। अभी ही मानो किसी ने रखे हों। इसी समय ही मानो किसी ने बनाए हो। बिल्कुल नये सुंदर। या कोई रखकर भूल गया हो। पात्रों को देखकर पूछा-हे देव! ये पात्र किसने रखे हैं? श्यामजी ने कहा-ये बरतन तो अलौकिक हैं किसी साधारण कारीगर द्वारा निर्मित नहीं हैं। सृष्टि के कर्ता ने ही बनाये हैं। अन्यत्र ऐसे बरतन दुर्लभ ही हैं। कृष्ण चरित्र द्वारा ही ऐसी अनहोनी हो सकती है। यह कृष्णी माया ही है।

अग्नि जलाई और कड़ाही दूध की भर कर के चढा दी। दूध उबलने लगा। रावल जी ने कहा-चावल नहीं हैं। बिना चावल के खीर कैसे बनेगी? देवजी! चावल चाहिए। श्री सिद्धेश्वर जी ने कहा-यहाँ बालू मिट्टी में चावल मिले हुए हैं, छान कर निकाल लीजिए। बालू रेत छान कर चावल निकाले। दूध में डाले खीर पक कर तैयार हुई। खीर में महकार आ रही थी। रावल ने देखा कि ऐसी खीर तो कभी न देखी और न ही चखी है, यह तो विचित्र खीर है।

कांसी के बरतनों में खीर परोसी। रावल भगवान् का प्रसाद मान कर जीमने के लिए बैठे। खीर खाते जाते और बड़ाई करते जाते। रावल ने कहा-हे देव! आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। कृपा कर के मुझे भी आपके शिष्यों के साथ सम्मिलित करके बिश्नोई बना लीजिए। जांभोजी ने रावल को पाहल पिलाया, बिश्नोई पंथ में सम्मिलित किया।

रावल ने आज्ञा ली और वहाँ से प्रस्थान किया। रावल अपने घर पहुँचा। रावल की नारी ने देखा कि इन्होंने तो सिर मुण्डवा लिया है। जाम्भोजी का चेला मोडा बन गया है। मुंडित सिर को देख कर रोने लगी। लोगों ने कहा-ऐसा क्यों रो रही हो? मैंने क्या अवगुण किया है, क्या अपराध किया है? भाई भतीजे आकर रावल से मिले। रावल को सिर मुंडित देखकर बहुत दुखी हुए।

उन लोगों से रावल ने कहा-परब्रह्म ही सम्भराथल पर प्रगट हुए हैं। उन देवजी ने मुझ पर दया की है। बड़े प्रेम भाव से मुझे बिश्नोई बनाया है। आप दु:खित होकर रो क्यों रहे हो? वहाँ के गणमान्य प्रधान लोगों ने रावल को निमंत्रण देकर भोजन हेतु बुलाया। ससम्मान रावल को बैठने के लिए बिछौना दिया। भोजन परोसा और कहा-भोजन करो।

रावल ने उनका कहना नहीं माना और कहा-मैं तुम्हारे द्वारा बनाया हुआ भोजन नहीं करूँगा। क्योंकि

तुमने शुद्धता (पवित्रता) से भोजन नहीं बनाया है। तुम सभी असंस्कारित जीव हो। मैं जाम्भोजी का शिष्य बिश्नोई हूँ। गृह लक्ष्मी ने पूछा-तो आप किस प्रकार का भोजन करेंगे? रावल जी ने कहा-यह देवजी की आज्ञा है कि मैं बिश्नोई का ही भोजन करूँ। प्रथम तो आप सभी लोग बिश्नोई बनें। तब मैं तुम्हारा भोजन करूँगा।

रावल जी के वचनों को सुना सभी ने, किन्तु उनमें से एक लाहणी जो वरो जाट की बेटी थी, वह बिश्नोई हो गयी। रणसीसर के मंगोवल के साथ विवाह हुआ था। लाहणी का पिता वरो जाट बड़ी बासनी बास में रहता था। लाहणी रावल के बताये मार्ग पर चल रही थी। बिश्नोई पंथ की पथिक बन कर अपने पति मंगोवल के साथ धर्म का आचरण कर रही थी।

वरो कहने लगा- रावल की मति तो किसी योगी संन्यासी ने हरण कर ली है। उसके देखा देखी मेरी बेटी भी मति हीन हो रही है। कुछ दिनों बाद वरो ने अपनी बेटी को अपने घर पर लाने की सोची। वरों ने अपने बेटे को भेजा कि जाओ अपनी बहन को कुछ दिनों के लिए ले आओ। भाई ने बहन से जाकर पीहर चलने का निवेदन किया-तुम्हारे माता-पिता तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हैं। तुम्हे मिले को बहुत दिन हो गये हैं।

माता-पिता ने कहा है कि लाहणी बिश्नोई बनकर बहुत कष्ट उठाती है। प्रातः काल के स्नान से लेकर सभी क्रियाएँ कष्टदायक ही तो हैं। लाहणी अपने पीहर जाने के लिए तैयार हुई, किन्तु रावलजी ने कहा-तू पीहर मत जा। वहाँ तेरे से नियमों का पालन नहीं होगा। तू अपने नियमों पर अटल अपने पति मंगोवल के साथ रह कर ही कर सकती है।

मंगोवल और तुम दोनों ही बिश्नोई बन चुके हो। पवित्र शुचि शीलवंत बन चुके हो। अब तुम लोग उनका भोजन कैसे करोगे? जो तुम्हारे पीहर के लोग अपवित्र हैं। यदि उनके यहाँ भोजन करोगी तो तुम्हारा धर्म नष्ट हो जायेगा। लाहणी अपने माता-पिता से मिलने के लिए उतावली हो रही थी। अपने धर्म- नियमों की रक्षा का वचन अपने पति एवं रावल को देकर अपने भाई के साथ पीहर चली गयी।

वरो का दूसरा भाई भोजो नींबड़ी रहता था। मंगोवल की वार्ता भोजो ने सुनी थी। वह अपनी भतीजी लाहणी को अपने गाँव नींबड़ी ले गया। कुछ दिनों के पश्चात् मंगोवल भी अपनी पत्नी लाहणी को लाने के लिए अपनी श्वसुराल गया। वहाँ पर किसी ने भी मंगोवल का आदर नहीं किया। कुछ अन्य पास पड़ौस के लोगों ने सामान्य आदर किया। मंगो को चारपाई बिस्तर लाकर दे दिया। मंगोवल ने देखा कि चारपाई बिस्तर गंदे हैं। बैठने लायक ही नहीं हैं। देवजी की आज्ञा का स्मरण किया और चारपाई बिस्तर छोड़ कर नीचे धरती पर ही अपना आसन बिछाकर बैठ गया।

अपने दामाद को नीचे बैठा देख करश्वसुराल के लोग जो भी आते हंसी उड़ाते। देखो कैसे हमारा दामाद बैठा है? यहाँ नीचे बैठा हुआ कितना सुंदर दिखता है। मूर्ख लोग फिटीफिटी कहते हुए धिक्कार कर रहे थे। कहने लगे-रीणसी ने ऐसा ही कपूत जन्मा है। सभी ऐसे ही हैं।

जाट कहने लगे-अपने नियम शील स्नान को छोड़ कर यदि हमारा भोजन करेगा तो ठीक है अन्यथा तुम्हारी हालत खराब होगी। जाटों ने मंगोवल को पकड़कर झोंपड़े में बंद कर दिया। किन्तु मंगोवल ने उनका कहना नहीं माना। उन लोगों ने भोजन लाकर जबरदस्ती जिमाने की कोशिश की किन्तु मंगोवल ने उनका भोजन स्वीकार नहीं किया।

जाट कहने लगे-अब इसका क्या करें? हमारा भोजन नहीं करता। या तो आठ प्रहर तक भोजन कर लेगा, नहीं तो हम इसकी हत्या कर देंगे। हमारी लड़की किसी अन्य से विवाह देंगे। साधु सज्जन विपत्ति आने पर भी धर्म नहीं छोड़ते, क्योंकि उनका रखवाला तो स्वयं परब्रह्म परमेश्वर है। दुष्टों ने दु:ख बहुत दिया। संकट की घड़ी को मंगोवल ने सहन करके पार की। भक्त के कष्ट को देखकर जाम्भोजी प्रगट हुए और उनके दुख को दूर किया। धैर्य बंधाया और कहा- हे मंगोवल! तुम जाटों को एक परचा चमत्कार बताओ। तभी ये लोग मार्ग पर आयेंगे। जाटों का भाई भोजा मारा जा चुका है। ऐसा इन्होंने सुना है किन्तु भोजा अब तक जिंदा है। नवें दिन आ जायेगा। ऐसा इनको तू बता देना ये लोग तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। ऐसा कहते हुए श्री सिद्धेश्वरजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

प्रात: काल ही जाट लोग एकत्रित हुए और मंगोवल से बात पूछने लगे-मंगोवल! तुमने अपने कुल की मर्यादा तोड़ दी। जाम्भोजी से तुम्हें क्या मिला? जाम्भोजी तो परचा बहुत देते हैं। तुम भी उनसे कुछ सीखे हो या नहीं? यदि कुछ जानते हो तो चमत्कार करो और छूट जाओ।

मंगोवल ने कहा- तुम्हारा भोजा घोड़ा बेचने गया था, किन्तु वापिस नहीं लौटा। किन्तु अब नवें दिन लौट आयेगा। जाटों ने आश्चर्य प्रकट किया कि अब तक हमरा भोजा जिन्दा है? वापिस लौट आयेगा? यह तो हमारे पक्ष की सुंदर बात कही। क्या पता ऐसा ही हो? ऐसा कहते हुए मंगोवल को झोंपड़े से बाहर निकाल दिया। हमारे से चूक हुई है। हमें भक्त के प्रति ऐसा नहीं करना चाहिए था। हमने आपसे द्वेष भाव रखा, आपको सताया, अच्छा नहीं किया।

नवें दिन भोजो लौट आया। सभी ने प्रेम भाव से मिलन किया। सभी जाट मंगोवल से भी प्रेम से मिले और जाम्भोजी एवं उनके भक्तों को भी धन्यवाद दिया। मंगोवल एवं लाहणी को प्रेम से विदाई दी। वो भक्त दंपत्ति अपने गाँव रणसीसर वापस लौट आये। त्रिभुवन नाथ ने सभी का कार्य सिद्ध किया।

बिश्नोई पंथ का प्रारम्भिक काल कंटकों से परिपूर्ण था। अनेक कष्टों को सहन करके भी धर्मवीर लोगों ने इस पंथ को सुदृढ किया। इसकी नींव गहरी एवं मजबूत है। सामान्य तूफानों से हिलने वाली नहीं है। अपने खून से सींच सींच कर इस धर्म रूपी बेल का संवर्धन किया है।

जाम्भोजी का जैसलमेर पधारना

रावल जैतसी जैसलमेर उजवणो कियो। च्यार वरा गुरुमुखी दीन्हा। जाम्भोजी श्रीवायक कहे-

शब्द-88

ओ३म् गोरख लो गोपाल लो, लाल गवाल लो,
लाल लीलंग देवो, न0 खंड पृथिवी प्रगटियो,
कोई बिरला जाणत म्हारी आद मूल का भेवों।

जाम्भोजी के समय में अनेक राजा हुए उनमें मुख्य रूप से जैसलमेर के राजा जैतसी का नाम अग्रगण्य है। जैसलमेर की राज परम्परा में जेतसी उस समय राजगद्दी पर विराजमान थे। राजा पूर्णतया धार्मिक विचारों से ओतप्रोत था। दया,दान,जरणा,युक्ति,शौच,शील,स्नान आदि नियमों का दृढ़ता से पालन करता था। पापकर्म करने से डरता था। धर्म की तरफ राजा का रुझान स्वाभाविक ही था।

रावल जेतसी ने जेतसमंद बांध का निर्माण करवाया था। जिसमें जल ठहरे और वन तथा वन्य जीव जन्तु जल पी सके। सभी का भला होवे। जैतसमंद का कार्य पूर्ण होने पर उसकी प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने जाम्भोजी को बुलाने की योजना बनायी थी। हमारे यज्ञ में श्री देवजी पधारें तो हमारा कार्य पूर्ण हो जाये। मैं उनके चरणों की रज ले सकूँ। अपने को कृतार्थ करूँ। हमारे यज्ञ में चार चाँद लग जायें।

वे मुझे जैसा आदेश देगे वैसा मैं करूँगा। यज्ञ में होने वाले अदृष्टों से मैं बच जाऊँगा। ऐसा शुभ विचार जैतसी ने किया और अपना एक विश्वासपात्र सेवक जाम्भोजी के पास भेजा।

सतगुरु सम्भराथल पर विराजमान थे। सतगुरु के पास जेतसी का भेजा हुआ दूत आया। बड़े ही आशा एवं विश्वास के साथ देवजी का दर्शन अश्रुपूर्ण नेत्रों से किया। चरणों में वंदना करके श्रीदेवजी के पास बैठा। दूत ने हाथ जोड़कर जैसा जेतसी ने निवेदन किया था, वैसा कहने लगा-

हे देव! रावलजी ने कहा है कि मैं आपका सेवक हूँ। आप जेतसमंद की प्रतिष्ठा में जैसलमेर पधारो। आपके बारे में श्रद्धा भरे वचनों से कहा है कि धन्य है कलयुग के लोग जो आपका दर्शन कर रहे हैं। हे देव! आपने सतयुग का धर्म कलयुग में प्रकट किया है। कुमार्ग पर चलते हुए लोगों को आपने सुमार्ग पर चलाया है। अज्ञानी जनों को ज्ञानी बनाया है। आपको जिसने भी पहचान लिया है उसके हृदय का ताला खुल गया है। आपने जिस पर भी कृपा की है, उन्हें रिद्धि सिद्धि सभी कुछ प्रदान की है। अब कृपा करके हमारे देश जैसलमेर भी पधारो। हम आपकी आशा में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अब हमारी आशापूर्ण होने का समय आ गया है। यदि आप यज्ञ में आ जाओ तो हमारी सभी कामना पूर्ण हो जायेगी।

देवजी ने कहा- हे दूत! आप वापिस जाओ, और रावल से पूछो कि मैं आऊँगा, तो वहाँ पर मेरी ही बात चलेगी। किसी अन्य की नीति, वार्ता किसी भी प्रकार का जोर नहीं चलेगा। तुम्हारे वहाँ पर ठाकुर, राजा, प्रधान, योगी, संन्यासी, तपस्वी, तीर्थवासी, पण्डित, ज्योतिषी इत्यादि वहाँ पर एकत्रित होंगे। वे सभी अपनी अपनी बात चलायेंगे। यदि उनका कहना मानना है, तो मेरे का मत बुलाओ। मुझे बुलाना है तो मैं जैसा कहूँ, वैसा ही करना होगा। जैसलमेर से जो दूत आया था उसको तो देवजी ने अपने पास ही बिठा लिया और अपना दूसरा आदमी जैसलमेर के लिए रवाना किया। जो देवजी ने राजा को संदेश भेजा था वही ठीक प्रकार से कहने वाला विश्वासपात्र व्यक्ति था। वह जाम्भोजी द्वारा भेजा गया दूत जैसलमेर के राजदरबार में जैतसी

को समाचार यथावत सुनाया।

रावल ने कहा-हम राजा लोग पढ़े लिखे पण्डितों की सेवा अवश्य ही करते हैं, उनके कथनानुसार चलते हैं, किन्तु अब जाम्भोजी को बुला रहे हैं, तो जैसा वो आदेश देंगे वैसा ही हम करेंगे। रावलजी ने विनती करते हुए कहा-हमारे तो गुरु चरणों की ही आर्त-इच्छा है। देवजी आयेंगे तो सर्वप्रथम पूजा उनकी ही करूँगा। मैं स्वयं जैसलमेर की सीमा तक सामने आऊँगा और उनकी अगवानी करके स्वागत करके अपनी नगर में प्रवेश करवाऊँगा। हमारे सद्‌गुरु देव पधारेंगे, तो हमारे सभी पाप नष्ट हो जायेंगे।

रावल की वार्ता उस सेवक ने सुनी, श्रद्धा का भाव देखा और समझा कि रावल वास्तव में प्रेमी आदमी है। इसके यहाँ तो जाम्भोजी का आना आवश्यक है। रावल से सीख माँगी और वापिस सम्भराथल की तरफ रवाना हुआ। कुछ ही दिनों में देवजी के पास वापिस सम्भराथल पर आ गया और रावल की भक्तिप्रेम की वार्ता विस्तार से बतलाई और कहा-

हे देव! आपको उनकी इच्छा अवश्य ही पूर्ण करनी चाहिए, अन्यथा राजा आपसे, ज्ञान,ध्यान,श्रद्धा से दूर हट जायेगा। उसका दिल टूट जायेगा। अवश्य ही आपकी आज्ञा के अनुसार ही कार्य होंगे। उन्होंने आपकी आज्ञा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की है। रावल ने विशेष रूप से कहा है कि हे देव! आप ही हमारी इच्छा को पूर्ण करने वाले हैं। दु:खों को मिटाने वाले हैं। तुम्हारे आने से ही हमारी लज्जा रहेगी।

जाम्भोजी ने रावल के दूत को वापिस भेजा और कहा कि मैं जेतसी के समंद प्रतिष्ठा में अपनी मण्डली सहित अवश्य ही आऊँगा। किन्तु तुम रावल से कहना है कि मेरे स्वागत हेतु कोई बहुत बड़ी सेना या ठाकुरों के साथ लाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिस-जिस गाँव से सेना आएगी तो वहाँ के लोगों को कष्ट होगा। राजा स्वागत हेतु आयेगा, तो आम जनता को परेशानी उठानी पड़ेगी। अधिक घोड़ा ऊँट आयेगे तो, वे बेचारे मूक प्राणी बेवजह दु:ख पायेंगे।

मैं जीवों को सताना नहीं चाहता। घोड़ों के खुरताल तथा ऊँटों के पैरो के नीचे दब कर न जाने कितने जीव मारे जायेंगे। मैं तो राजा के पाप-दोष हरण करने हेतु जा रहा हूँ। कहीं ऐसा न हो कि पाप-दोष अधिक न हो जाये। हमारा मिलन पूर्णतया निरभिमान होकर होगा। किसी प्रकार कर दिखावा या कष्ट साध्य नहीं होगा।

जम्भेश्वरजी ने जैसलमेर चलने की तैयारी की। उसी समय साथ में रहने वाले संत भक्त भी कहने लगे हम भी चलेंगे, हम भी चलेंगे। सभी चलने को तैयार थे। ऐसे अवसर को कोई हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। उनमें सभी भगवान् के भक्त ही थे। किसको पीछे छोड़े, किसको साथ में लें? इसलिये श्री देवजी ने सभी को ही चलने की आज्ञा प्रदान कर दी।

भक्तों के सिर पर टोपी, हाथ में जप माला, उज्ज्वल बागा (कुर्ता) पहने हुए, अन्त:-बाह्य शुद्ध पवित्र थे। सवारी हेतु मजबूत स्वस्थ तेज चलने वाले ऊँट साथ में लिये हुये। ऐसी मण्डली श्री देवजी के साथ चली। जैसे संत पवित्रात्मा थे वैसे ही अपनी सवारियों को भी सजाया था। देवजी ने अपनी मण्डली के साथ शोभायमान होकर जैसलमेर के लिये प्रस्थान किया।

इस प्रकार से जैसलमेर जाते समय देवजी के साथ तीन सौ पच्चीस ऊँट थे। सबसे आगे देवजी का ऊँट चल रहा था। चलते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो आकाश में विमान ही उड़ते जा रहे हों। मानो स्वयं विष्णु ही देवताओ के साथ विमानों पर बैठकर स्वर्ग लोक से आ रहे हों। मार्ग में जांगलू, खींदासर, जाम्भोलाव आदि स्थानों को पवित्र करते हुए, वहाँ के लोगों को प्रसन्न करते हुए जैसलमेर की सीमा में वासणपी गाँव

पहुँचे।

रावल जी के चाकर ने जाकर खबर सुनाई कि जाम्भोजी वासणपी आ चुके है। उनके साथ बहुत से सेवक भी आये हैं। किन्तु उन्होंने अपने आने की बात किसी को भी नहीं बताई है। इस वार्ता को सुनकर राजा सचेत हुआ।

कहने लगा–देवजी वासपणी आ गये हैं। रावल ने शीघ्र ही सामने चलने की तैयारी की। रावल जी ने कहा–चलो देवजी के सामने स्वागत हेतु चलेगे। हालांकि देवजी ने मना किया है, किन्तु हमारा कर्तव्य बनता है। रावल ने जाम्भोजी के लिये भेंट हेतु चावल, मूँग, घृत, मिठाई आटा आदि लेकर सजाया और अपने योग्य उमराओं को साथ लेकर वासणपी के लिये प्रस्थान किया। सामान आदि तो सवारियो पर रखा किन्तु रावल जी देवजी की आज्ञा को स्वीकार करते हुए जैसलमेर से पैदल ही चले। पाँच कोश वासणपी गाँव देवजी के पास अति शीघ्र ही पहुँच गये। रावल जी ने देवजी के चरणो में प्रणाम किया। देवजी रावल जी से प्रेमभाव रखते थे।

देवजी ने कहा–क्या बात है रावल! दु:खी क्यों हो रहे हो? तुम यहाँ तक सामने क्यो आये? इतने जीवों को दुखित क्यों किया? प्रतिज्ञा एवं वचन मेटे नहीं जाते, पूर्ण किये जाते हैं। इस प्रकार से हाथ जोड़े खड़े हुए रावल को एक सोने की मूण मटका प्रदान किया। यह वही मूण थी जो सोनवी नगरी से लाये थे।

जेतसी ने प्रार्थना करते हुए कहा–हे देव! आप तीनों लोको के मालिक, एक मुझ जैसे सामान्य मनुष्य के द्वारा निमन्त्रण देने पर आ गये। इससे बढकर और मेरा क्या सौभाग्य होगा? अन्य गुरु तो संसार में बहुत हैं किन्तु वे तो कुगुरु, झूठे, पाखण्डी हैं। उनकी मैं क्या शरण लूँ? आप आ गये। इससे बढकर और मेरा क्या सौभाग्य हो सकता है। यदि मैं पाँच कोश आपके सामने नहीं आऊँ तो मानव कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

रावल ने विनती की–हे देव! मैं तुच्छ भेंट ले आया हूँ, इसको आप स्वीकार करें। आपके साथ आये हुए संत संतोषी जीमेंगे तो मैं निहाल हो जाऊँगा। मेरा यज्ञ यहीं पूर्ण हो जायेगा। इसलिये आप भोजन बनाने का आदेश दें। सभी लोग प्रथम भोजन करें, फिर आगे जैसलमेर चलें। देवजी के आदेशानुसार वहीं सभी ने भोजन बनाकर प्रसाद रूप में ग्रहण किया।

देवजी ने कहा–हे रावल! आप इन लोगों को भोजन करवावो। मेरा भोजन तो सभी जीवों की तृप्ति हो जाना ही है। मैं तो स्वयं संतोषी हूँ तथा दूसरों का पालण पोषण कर्ता हूँ। हे राजन लेना–देना परोपकार करना, यही जीव की भलाई का मार्ग है। वही तुम्हें करते रहना चाहिये।

रावल जेतसी के साथ एक ग्वाल चारण भी था। उन्होंने बिश्नोइयों की जमात देखकर कहा–हे देवजी ! आप तथा आपकी बात तो समझ में आती है। किन्तु ये आपके साथ में कौन लोग हैं? किस कुल, जाति, परिवार, समाज के लोग हैं?

उस समय जाम्भोजी की आज्ञा से साथ में रहने वाले तेजोजी चारण जवाब देते हुए कहने लगे–प्रथम तो ये लोग जाट कुल में पैदा हुए थे। अब इन्हें सद्‌गुरु जाम्भोजी मिल गये हैं तो ये लोग सुगुरु सुज्ञानी बिश्नोई हो गये हैं। ये लोग ज्ञान तथा पाहल से पवित्र हो गये हैं। पूर्व कुल पलट गया है। क्योंकि उत्तम की संगति करने से पार उतर गये हैं। जिस प्रकार से लोहा लकड़ी की संगति करने से जल से पार उतर जाता है। ये लोग सतपंथ के पथिक बन गये हैं।

अब इस पंथ को छोड़ कर कहीं नहीं जायेंगे। अपवित्र से पवित्र हो चुके हैं। पुन: अपवित्रता में प्रवेश

नहीं करेंगे। पहले तो ये लोग ''जी'' कहना ही नहीं जानते थे। गधे, कूकर की तरह ही जो चाहे वही बोलते थे। इन्हें कोई नाम लेकर पुकारता था तो ये लोग '' हो'' कहकर ही बोलते थे। किन्तु अब'' जी जी '' कहते हैं। पहले तो ये काच की तरह नकली थे, किन्तु अब कंचन बन गये हैं। काच तो सस्ता बिकता है, किन्तु सोना महँगा बिकता है। ये लोग जाट ही थे। जाटों की तरह ही रहते थे। बिना गाली के बोलते भी नहीं थे। किन्तु अब तो देवजी ने इनको बुद्धि प्रदान की है। उसी बुद्धि से ही बोल प्रकट होता है इसलिये सुवचन बोल रहे हैं।

ग्वाल चारण ने पूछा-इन लोगों ने सिर क्यों मुंडाया है? इनके कोई मर तो नहीं गया है? मरने पर तीजे दिन लोग सिर मुंडाते हैं। मुझे इस बात का पता नहीं है। इसलिये पूछता हूँ?

तेजो जी चारण ने कहा-माथो-सिर तो तीन अुगल ही है। जिसे मस्तिष्क कहते हैं, जहाँ पर कुदरती बाल लहीं उगते । जिसका जितना ललाट चौड़ा होगा उतना ही वह बुद्धिमान होगा। जहाँ बाल नहीं उगते, वही तो सिर ही तो ज्ञान, विद्या, ज्योति का केन्द्र है। बाकी सिर में बाल उगते हैं। वहाँ ऐसा कुछ भी नहीं हैं जो विशेष हो सके। '' जड़ जटा धारी, लंघे न पारी'' जटाएँ बढा लेना तो जड़ता (मूर्खता, अज्ञानता) का परिचायक है। ललाट की तरह ही सिर रखना बुद्धि ज्ञान का विकास करना है। इसलिये ये लोग गुरु मुखी हुए है। सिर मुंडाया है।

इन्होंने अपने प्रियजन मार दिये हैं। जो सभी को मारते हैं। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि ये तो संसार में सभी के पीछे लगे हैं। संसार इनके पीछे लगा है, किन्तु इन भक्तों ने इन सेनाओं को मारकर सिर मुंडाया है। हे ग्वाल! ऐसी व्यर्थ की बात मत बोल। सुन्दर शब्दों का उच्चारण करो।

आगे पुन: तेजोजी ने बतलाया-मोडा (साधु) को देखकर लोग आदेश करते हैं। हाथ में माला होती है, तो राम-राम कहा जाता है। मुसलमान को सलाम कहा जाता है। सभी का अपना अपना अलग मार्ग है। अपनी-अपनी पहचान है। सभी अपने-अपने मार्ग पर चलकर तो अवश्य ही पहुँच जायेंगे। बाह्य वेशभूषा से व्यक्ति की पहचान होती है। जाम्भोजी ने इनकी अलग पहचान हेतु भी इनका सिर मुंडाया है। इन्हें साधु बनाया है। क्योकि ये लोग मोडा हैं। इन्होंने मोह को ढाह लिया है। सिर से नीचे गिरा दिया है।

कौन नुगरा? कौन सुगरा? कौन साधु? कौन असाधु? कौन भक्त? की पहचान वेशभूषा से होती है। इसी को देखकर वन्दना की जाती है मूंडत सिर भक्त का बाना है। इसलिये भक्त को प्रणाम ज्ञानी लोग करते हैं। मूंड मुंडाये हुए भक्त संतों की,भूत-प्रेत उपासक लोग निन्दा करते हैं। वे लोग पाप पुण्य को नहीं जानते। निनाणवे करोड़ राजा हुए हैं जो गुरु की शरण में जाकर सन्यास धारण किया है मूंड मूंडाये हैं। तो सिर मुंडाना कोई बुरी बात नहीं है।

कितने लोगों ने इस समय गुरु की बात को सुनकर के अपने जीवन को धन्य बनाया है। अपनी कुल परंपरा को छोड़ कर के सतपंथ के अनुगामी बने हैं। हे ग्वाल! आप मुझे ही देखिये। मैं भी तुम्हारा ही भाई चारण हूँ। मैं भी अन्य लोगों की भांति पाप कर्म में डूबा हुआ था। मैं देवजी की शरण में आया। अपने कुल को पलट दिया। सतपंथ का अनुगामी हुआ। पापों को छोड़कर असली चारण मैं अब हुआ हूँ। पहले चारण नहीं था, मारण था। किन्तु अब मारण से चारण बना हूँ। अब मैं किसी को मारता नहीं, चारता हूँ यही ज्ञान मुझे यहाँ प्राप्त हुआ है। यह सतगुरु का ही उपकार है।

उसी समय रावल जेतसी ने कहा-चंदन अपनी संगति से अन्य वृक्षों को भी सुगन्धित कर लेता है। नीम भी अपनी संगति से अपने जैसा कड़वा अन्य को बना देता है। किन्तु यदि बाँस चंदन के साथ उग जाये, तो

उसे चंदन भी अपने जैसा सुवासित नहीं कर सकता, क्योंकि बांस के गाँठे होती हैं, सुगन्धी को वे गाँठे प्रवेश नहीं होने देती। यही सद्‌गुरु की पहचान है।

यदि कोई व्यक्ति बाँस की तरह होगा, तो सद्‌गुरु की संगति चंदन की भाँति कुछ नहीं कर पायेगी। पारस लोहे के साथ रखी जावे, तो वह पारस लोहे को सोना बना देती है। मीठा कड़वे के साथ रखा जावे तो मीठा कड़वे को भी मीठा बना देता है। गुरु मिलने का यही उपकार है। सभी कुछ पलट देते हैं।

ये सद्‌गुरु तो जल का दूध,नींमो के नारियल करते हैं। लोहे को पलट कर कंचन करते हैं, मैं तो जैसलमेर का राजा कहा जाता हूँ। झूठ-कपट, पाखण्ड में विश्वास नहीं करता। मैंने जाम्भोजी में सच्चाई देखी है। तब मैं विश्वास को प्राप्त हुआ हूँ।

ग्वाल चारण जेतसी से विनती करने लगा-मैं चारण कविता करता हूँ, किन्तु जाम्भोजी के बारे में झूठा अक्षर नहीं जोड़ पाता। मैंने कई बार प्रयत्न करके देखा भी है, किन्तु खाली ही रहा हूँ। न जाने मुझे जाम्भोजी का कोई शाप है। अब मुझ पर कृपा करेंगे। मैं अपनी भूल की क्षमा चाहता हूँ।

बहुत बात हो गयी। अब चढो-चढो कहते हुए जाम्भोजी के आदेशानुसार सेवक गण एवं रावल जी जैसलमेर के लिये रवाना हुए। रावल मन में खिन्न था कि मैंने मालिक को बहुत कष्ट पहुँचाया है। परन्तु अब मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ। इस प्रकार से सहज भाव से जैसलमेर में प्रवेश किया। जैसलमेर के राज दरबार में न जाकर जैत संमद पर ही जांभोजी ने आसन लगाया। सम्पूर्ण शहर में जय जय होने लगी। प्रजागण, स्त्री पुरुष गुरु जी के चरणो में नमन करते हुए दर्शन लाभ करते हुए कृतार्थ हो रहे थे। गुरु देव की सभा देव लोक की सभा की भांति शोभायमान हो रही थी। जिसने भी देखा उन्हीं के पाप एवं संशय का विनाश हुआ। जिस प्राणी के अन्दर कभी झूठ कपट की वासना नहीं उभरती, सदा ही प्रिय हित कर बोलता है, जप तप सद्क्रिया में लीन है, ऐसे सुगुरु जन की भाट लोग बिड़दावली गाते हैं।

रावल कहने लगा-हे देव! अब मुझे आगे क्या करना है। वह आप ही आज्ञा प्रदान करें। जैसा आप कहेंगे वैसा ही मैं करूँगा। मैं आपका सेवक हूँ। जब तक आप आज्ञा प्रदान नहीं करेंगे, तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा।

देवजी ने कहा-प्रथम आज्ञा तो मेरी यह है कि तुम्हारे ठाकुर, मित्र, सम्बन्धी राजा प्रजा लोग तुम्हारे से मिलने के लिये आये हैं, तुम्हारी भेंट हेतु बकरे लाये हैं, जो तम्बूओ में बन्धे खड़े हैं, ये सभी कटेंगे। ये जीव निरपराधी हैं, इन्हें छोड़ना होगा। इन जीवों को अमर करदो। यह पुण्य का कार्य करो। यह प्रथम वरदान है।

दूसरी बात यह मान्य होगी कि तुम्हारे राज्य में जहाँ पर भी भेड़-बकरियाँ बकरे को जन्म देती है उसे ये तुम्हारे लोग मार कर खा जाते हैं। उन जीवों को बचाना होगा। इसके लिये "अमर रखावै ठाट" जीवो को मरने न दे। उनका पालण पोषण करे। यह तुम्हारे लिये दूसरा नियम होगा।

तीसरी आज्ञा यह है कि जहाँ तक तुम्हारे राज्य की सीमा है, और तुम्हारी शक्ति चलती है, वहाँ तक वन्य जीव मारने वाले शिकारी से जीव जन्तुओं की रक्षा करो। जितने जीवों की रक्षा होगी, उतनी ही तुम्हारे राज्य में सम्पन्नता आयेगी। सदा खुशहाली बनी रहेगी। जीव को मारकर अपना पेट भरोगे तो वे जीव आपको सुख नहीं दे सकते। उन्हीं जीवों की तरह तड़प-तड़प कर मरोगे। यही तीसरा वरदान आज्ञा है इसे पालन करो।

चौथी आज्ञा यह है कि तुम्हारे राज्य में चोर बहुत हैं। दूसरे राज्य की सीमा से पशु चोरी कर के लेकर आते हैं और तुम्हारे राज्य की सीमा में प्रवेश करते ही चोर साहूकार हो जाता है। पीछे उनका मालिक ढूंढने आता है, किन्तु उसे कुछ भी नहीं मिलता है। यह अन्याय हो रहा है। इस अन्याय को रोकना होगा। तुम्हें

जिसका पशु है, उसका वापिस दिलाना होगा। तभी न्याय होगा। प्रजा के साथ न्याय करोगे, तभी तुम सच्चे अर्थो में राजा कहलाने के अधिकारी होगे। यही चौथी आज्ञा है।

पाँचवीं आज्ञा यह है कि जो लोग बिश्नोई बन गये हैं। वे लोग आप के पास न्याय हेतु आये, तो उन्हें न्याय देना। बिश्नोइयों से जगात (कर) नहीं लेना। उन्हें माफ कर देना। क्योंकि ये लोग पूर्णतया धार्मिक हैं। ये लोग हरे वृक्ष नहीं काटते। जीवों को नहीं मारते और न ही मारने देते। खेती करते है। यज्ञ करते हैं, इससे राज्य में खुशहाली बनी रहती है। राज्य दिन दूना रात चौगुना अभी वृद्धि को प्राप्त होता है। यह पाँचवीं आज्ञा है इसका पालन करो।

इन पाँच नियमों पर चलने का जेतसी से संकल्प करवाया। देवजी ने कहा-हे राजन्! यदि तू इन नियमों का पालन करते हूए राज शासन चलायेगा तो तुम्हारा इह लोक एवं परलोक दोनों ही बन जायेंगे।

हे वील्हा! उस प्रकार से जैसलमेर गढ के अधिपति के ऊपर धर्म, न्याय एवं मर्यादा की छत्र छाया की। देवजी द्वारा जीवों की रक्षा का दिया हुआ वचन पालन किया। न जाने कितनो जीवों की रक्षा जेतसी के यज्ञ में हुई तथा आगे के लिये भी जीव रक्षा का बीड़ा उठाया। धन्य-धन्य है जीवा धणी। जो पापों पर प्रहार करते हैं।

जेतसी ने देवजी की आज्ञानुसार सभी जगह ढिंढोरा पिटवा दिया। आज से आगे अब कोई राज्य में जीव हत्या नहीं करेगा। कोई बावरी, शिकारी आदि जीव नहीं मारेंगे। यह घोषणा सभी ने सुनी और राजा व प्रजा दोनो ने ही बहुत-बहुत धन्यवाद किया। मरते हुए जीवो को बचाया, यह कार्य तो सद्गुरु के आने से ही संभव हो सका।

वील्हा उवाच-हे गुरुदेव ! सुना है कि उस समय एक कन्या का विवाह भी किया था। एक बारात का स्वागत राजा ने किस प्रकार से किया था? क्योंकि अनावश्यक प्राचीन परंपरा के तो जाम्भोजी विरोधी थे। उन्हें तोड़ने की सलाह देते थे। जाम्भोजी का सिद्धान्त तो प्रगतिशील था। जेतसी के यहाँ नयी परंपरा कौन सी प्रारम्भ की? वह कैसी परंपरा थी? मुझे बतलाने का कष्ट करें।

नाथोजी उवाच-हे शिष्य! जब मांसाहार का पूर्णतया त्याग करवा दिया, तब जेतसी ने बारात का स्वागत शाकाहारी भोजन से किया। अनेकों प्रकार की मिठाइयाँ, शाक-पात यही मानवोचित एवं प्रिय भोजन है। यही करना उचित था। वही जेतसी ने किया। भोजन का समय होने पर मेहमानों को आमन्त्रित करके बुलाया। उन्हें पंक्ति लगा कर के बिठाया गया। अलग अलग थालियाँ रखी गयीं। भोजन वितरण करने वाले सेवको ने झूठन से बचाकर भगवान् के लगा हुआ भोग प्रसाद के रूप में प्रदान किया।

भगवान् का प्रसाद मान कर भोजन करने से उन आये हुए आगन्तुको का मन शुद्ध, पवित्र हुआ। जिस यज्ञ को श्री देवजी ने स्वयं जैत संमद की प्रतिष्ठा हेतु किया था। उनके प्रसाद का तो फिर कहना ही क्या था? जो भी भोजन करते गये, शुद्ध पवित्र होते गये। यही तो उनके चमत्कार की महिमा थी।

भोजन के पश्चात् विवाह का कार्यक्रम हुआ। मुहूर्त के अनुसार चंवरी मांडी गयी। चारों तरफ खूँटी रोप कर सूत फिराया गया। घड़ा जल का भर कर वेदी पर रखा गया। वेद मन्त्रों द्वारा कलश की स्थापना हुई। वासुदेव की वन्दना द्वारा विवाह का कार्य प्रारम्भ हुआ। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये गोत्राचार पढा गया। हवन प्रंचड होने पर वैदिक ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र पढ कर यज्ञ में गो घृत की आहुति दी। जैसा श्री देवजी ने बतलाया उसमें फर्क नहीं आने दिया। प्रथम ओ३म शब्द का उच्चारण किया। विप्रो ने वेद मन्त्रो का सस्वर उच्चारण किया। सुनने मे कर्ण प्रिय लगते थे। महिलाएँ सोलह शृंगार करके मंगल गीत गाने लगीं।

कन्या एवं दूल्हे का हथलेवा कर शाखोचार पढकर के कन्या का विवाह राजा ने विधि पूर्वक किया। अन्त में अग्नि की परिक्रमा कर के फेरा कार्य पूर्ण किया।

अपनी शक्ति के अनुसार रावल ने कन्यादान किया। जो वहाँ उपस्थित दान देने के अधिकारी थे, उन्हें यथा योग्य दान देकर संतुष्ट किया। सभी याचकों ने सन्तुष्ट होकर जेतसी को धन्यवाद दिया। जिस प्रकार से पाण्डवों ने यज्ञ किया। पाण्डवों के यज्ञ में भगवान् कृष्ण उपस्थित थे उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे। जेत संमद की प्रतिष्ठा हुई। राव जेतसी ने अपनी बेटी का विवाह सम्पन्न किया। सभी कार्य देवजी की कृपा से पूर्ण हुए।

रावलजी ने विनती करते हुए कहा-आपकी अति कृपा से मैं कृतार्थ हुआ। किन्तु मेरी एक इच्छा है कि आप अपने शिष्य बिश्नोई को मेरे राज्य में बसाओ। उनकी प्रेरणा से हमारी प्रजा भी सुखी क्रियावान हो सकेगी। हे देव! आप तो सम्भराथल चले जायेंगे, किन्तु मैं आपके शिष्य का दर्शन करके कृतार्थ हो जाऊँगा।

सद्‌गुरु देव ने जमात में खबर पहुँचाई कि आप में से यहाँ जैसलमेर बसने के लिये कौन तैयार है? जमात में से लक्ष्मण एवं पाण्डू गोदारा ने सद्‌गुरु की बात को सहर्ष स्वीकार किया। और लक्ष्मण पाण्डू को खरीगे गाँव में बसाया। धन्य हैं ऐसे भक्त जन जिन्होंनें गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके अपने जन्म को सफल कर लिया। अपनी जन्म भूमि छोड़ कर लक्ष्मण पाण्डू खरींगे गाँव में सदा सदा के लिये बस गये।

देवजी ने कहा-हे जेतसी ! तुम्हारे राज्य में ये दो भक्त बसेंगे। जिस राज्य में भक्त निवास करते हैं, जहाँ पर क्रिया कर्म संयम आदि नियमो का पालन होता है, विष्णु का जप, यज्ञ होता है, उस राज्य में किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आयेगी। सदा खुशहाली बनी रहेगी। ऐसा धर्म का प्रभाव है। इस धर्म की नींव तुम्हारे राज्य में पड़ चुकी है।

जेतसी ने हाथ जोड़कर देवजी के आशीर्वाद को शिरोधार्य किया। कृष्ण चरित्र के प्रभाव को अपनी आँखों से देखा। स्वीकार किया कि यह जैसलमेर गढ मर्यादा में बंधा रहेगा, तो कभी पलटेगा नहीं। पुन: रावल ने हाथ जोड़कर विनती करते हुए कहा-हे देवजी! आपकी कृपा से मेरा यज्ञ सफल हुआ। मुझे किसी प्रकार का कलंक नहीं लगा। मैंने आपकी कृपा से अन्न-धन बहुत ही खर्च किया, किन्तु किसी बात की कमी नहीं आई। आपकी कृपा से दिन दूनी, रात चौगुनी बढती ही गयी। हे देव! जैसा आपने कहा वैसा ही मैंने किया। आपके दर्शनसे मेरे पाप प्रलय हो गये। क्यों न होगा। हमारा यज्ञ पूर्ण करने आदि गुरु साक्षात् विष्णु हमारे यज्ञ में पधारे हैं। मेरा भाग्य बलवान है, जो मैं आपका सेवक बना।

रावल ने एक विनती करते हुए कहा - हे देव ! इस कलयुग में जीवों का उद्धार कैसे होगा? सुना है कि कलयुग में जीवों की मुक्ति नहीं होती। यह मेरी शंका थी, उसका समाधान मुझे मिल गया। एक बार जाम्भा सरोवर का जल चलू भर पी लूँ तो मेरे सम्पूर्ण झंझट कट जायेंगे। जन्मो-जन्मो तक मुनि लोग यत्न करते हैं। धोती आसमान में अधर सुखाते हैं। कुण्डलिनी आदि जाग्रत करके योग करते हैं। कठिन तपस्या करते हैं, उनको भी युक्ति मुक्ति संभव नहीं है। किन्तु मेरा धन्य भाग है, जो मुझे मुक्ति का वरदान मिला। आवागवण मिटाकर के श्री देवजी ने स्वर्ग-मुक्ति का वरदान दिया।

रावल कहने लगा-केवल मैं ही अकेला नहीं हूँ। देवजी के कृपा पात्र दिल्ली का सिकन्दर लोदी, महमंद खां नागौरी, मेड़ते रा दूदा राव,जोधपुर नरेश सांतल, चितौड़ का सांगा राणा, बीकानेर का लूणकरण, जेतसी एवं अजमेर का महलूखान आदि अनेक राजा लोग कृपा पात्र बने।

हे वील्हा! रावल जेतसी धन्यवाद का पात्र है, जिन्होंने जाम्भोजी की आज्ञा का पालन किया, और परोपकार का कार्य जाम्भोलाव तालाब खुदवा कर किया। विष्णु का जप करते हुए मुक्ति के पथ के पथिक

बने। अपने राज्य में जीव हत्या बंद करवायी। जैसलमेर में यज्ञ करवाया। अपने राज्य में धर्म की नींव रखी।

रावल जी के प्रति देवजी ने शब्द सुनाया - हे रावल ! गोरख को प्राप्त करो। वह भी साक्षात् विष्णु है। गोपाल को प्राप्त करो वह भी गोपालक विष्णु ही है। इस धरती पर बड़े-बड़े उथल-पुथल हुए है, किन्तु हम तो ज्यों के त्यों ही है? हमारे आदि मूल भेद को कौन जानते हैं? रावलजी को शब्द सुना कर श्री देवजी साथरियों सहित विदा हुए। शब्द—गोरख लो गोपाल लो।

रावल जी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से एक पलक निहारते हुए विदाई दी। पुन: दर्शन होंगे, इसी आशा से रावलजी अपने को संमयित कर के अपना कर्तव्य कर्म निभाया। श्री देवजी वापिस सम्भराथल पहुँचे साथरिया प्रसन्न चित्त हुए, सभी ने प्रणाम किया।

सातवाँ अध्याय

गुरु आसन सम्भराथले

मूलो प्रोहत कह देव म श्रब मानीज मान्यारो ओगण कोई नहीं। वेद कह छ: एक हाथ क पाटौ बांधे उभौ, वीसनोई कह पाटौ क्यौ बांध्यौ? साहिब सुं चोरी कीवी ज्यौ बांध्यौ। बाललो चोरयो। धीज जीतो घर माही यो ले नीसर थो। हाथ दाधौ। जाम्भोजी श्री वायक कहै -

शब्द -72

ओ३म् वेद कुराण कुमाया जालूं, भूला जीव कुजीव कुजाणी।
बसंदर नहीं नख हीरूं, धर्म पुरुष सिरजीवै पूरूं।
कलि का माया जाल फिंटाकर प्राणी, गुरु की कलम कुरांण पिछाणी।
दीन गुमान करैलो ठाली, ज्यूं कण घातै घुण हांणी।
साच सिदक शैतान चुकावों, ज्यूं तिस चुकावै पांणी।
मैं नर पूरा सरविण जो हीरा, लेसी जांके हृदय लोयण।
अन्धा रह्या इंवाणी।
निर[k लहो नर निरहारी, जिन चोखंड भीतर खेल पसारी।
जंपो रे जिण जंपै लाभै, रतन काया ए कहाँणी।
कांही मारूं काहीं तारूं, किरिया विहूँणा पर हथ सारूं।
शील दहूँ उबारूं ऊन्है, एकल एह कहाणी।
केवल ज्ञानी थल शिर आयो, परगट खेल पसारी।

कोड़ तेतीसों पोह रचावण हारी, ज्यूं छक आयी सारी।

सर्वोच्च कैलाश पर्वत सदृश धोरो में शिरोमणि सम्भराथल पर गुरु शिष्य एकत्रित हुए। फाल्गुन बसन्त ऋतु की अमावस्या के दिन गुग्गल घृत की महकार से चारो दिशाएँ प्रफुल्लित हो रही थी। चारों तरफ का सघन वन बसन्त के आगमन का स्वागत कर रहा था मयूर, कोयल, कबूतर, तोता अनेकों प्रकार की चिड़ियाँ आदि पक्षी भांति-भांति के गीत गा रहे थे।

वन्य पशु हरिण, लोमड़ी, सियार, खरगोश आदि जीव पूर्ण सुरक्षित हो करके आनन्द में विभोर हो कर नृत्य गान कर रहे थे। वहाँ नीरव तो केवल मानव शब्दों की थी। नाथोजी ने अपने बीते हुए दिनों का स्मरण किया और कहने लगे-

हे वील्हा! यही वह सम्भराथल है, जहाँ पर कुछ वर्ष पूर्व सदा ही मेला लगा रहता था। यहीं की ये हरी भरी कंकेहड़ी के वृक्ष धन्य हैं, जिनके नीचे घनी छाया में श्री देवजी विराजमान होते थे। यह वन साक्षी है। अब भी देवजी की सुवास से सुवासित है। ये वन्य जीव तुम देख रहे हो एक साथ ही भ्रमण कर रहे हैं। यह उन्हीं श्री देवजी का प्रभाव है।

इसी सम्भराथल की पावन धरती पर जाम्भोजी ने सत्ताईस वर्ष तक गऊएँ चराई थी। वे गऊएँ बछड़े भी धन्यवाद के पात्र हैं, वे ग्वाल बाल भी यहीं सम्भराथल पर ही भगवान् के साथ खेल खेलते थे। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पवित्र स्थल पर ही बिश्नोई पन्थ की स्थापना की थी। बड़े बड़े शैतान राजा लोग यहीं आकर चरणों में झुके थे। इस स्थल को तुम प्रणाम करो। हे वील्हा! अच्छा ही हुआ कि तुम यहाँ आ गये और ज्ञान चर्चा कर के अपने जीवन को सफल बना रहे हो।

वील्हा उवाच-हे गुरुदेव! आप से बढकर इस समय मैं अन्य किसी पुरुष को प्रामाणिक पुरुष नहीं मानता, जो देवजी के साथ रहकर उनके श्री मुख से शब्द श्रवण किया हो और मुझे बतला सके। उन्होंने जो भी शब्द उच्चारण किया, उसको आपने कण्ठस्थ किया है। आपने महत्ती कृपा की, जो मुझे शब्द सुनाये। आपकी दया से मैंने सभी शब्द कण्ठस्थ भी कर लिये हैं। ये शब्द कब-कब और किस किस को सुनाये हैं। यह मैं अब तक जान गया हूँ। किन्तु अब आगे और भी जानना शेष है। कृपाकर के आगे के शब्द एवं उनके प्रसंग तथा भाव जानना चाहता हूँ।

नाथोजी उवाच-हे शिष्य! जैसा मैने तुझे अब तक जो भी प्रसंग-कथाएँ बतलाई हैं, इसी प्रकार आगे भी बतलाता हूँ। एक समय श्रीदेवजी सम्भराथल पर संत भक्तों की सभा में विराजमान थे। उसी समय ही एक पुरोहित आया। उसका नाम मूला था। पुरोहित ने सुना था कि जाम्भोजी कल्पित देवी-देवताओं को मान्यता नहीं देते। किन्तु पुरोहित इनकी पूजा में विश्वास रखता था और पूजा करता भी था।

पुरोहित ने पूछा-हे देव! सभी देवताओं की उपासना करनी चाहिये। इनकी उपासना करने में कोई दोष नहीं है, क्योकि वेद में लिखा है। वही पुरोहित हाथ के पट्टी बाँधे हुए जाम्भोजी के सामने खड़ा देखकर बिश्नोइयों ने पूछा -

पुरोहित जी! हाथ में पट्टी क्यों बाँधी है। पुरोहित ने कहा-साहब से चोरी की थी इसलिये बाँधी है। एक सोने का हार चुराया था। जब धैर्य धारण कर के घर से बाहर निकला था। तब मैंने सोचा कि चोरी में सफल हुआ किन्तु जिस हाथ से स्वर्ण हार चुराया था, वह हाथ जलने लगा। हाथ में जलन से घाव हो गया है। पता नहीं ऐसा क्यों हुआ है? यह तो जाम्भोजी ही बतलायेंगे। श्रीदेवजी ने ''वेद'' यह शब्द सुनाया-

हे पुरोहित! हिन्दुओं का प्रमुख ग्रन्थ वेद है तथा मुसलमानों का कुरान, ये दोनों ही बड़े भारी शब्दों का जाल है। एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। एक प्रकार का शब्द जाल है उसमें फंसना सरल है, किन्तु निकलना कठिन है। सतगुरु ही जाल की गुत्थी को जानते हैं। वे ही जाल को तोड़कर मुक्त कर सकते हैं। किन्तु भूले हुए अहंकारी पुरोहित एवं मुल्ला दोनों ही मनमाना अर्थ करते हैं। अपनी इच्छानुसार ही वेद का नाम नेकर कुमार्ग पकड़ लेते हैं। नाम वेद तथा कुरान का लेते हैं।

हीरे का नग भी चमकता है। अपनी ज्योति प्रकाशित करता है। किन्तु वह अग्नि की समानता नहीं कर सकता। हीरा तो हीरा ही है और अग्नि तो अपनी जगह अग्नि ही है। उसी प्रकार से धर्म पुरुष तो पूर्ण सचेत पुरुष है, किन्तु कुछ लोग उनकी बराबरी करके अपने को धर्म पुरुष भी घोषित करते हैं, किन्तु बराबरी नहीं हो सकती।

कलयुग में माया-जाल का पसारा अधिक है। इन्हीं पसारे से बाहर निकल कर देखे। गुरु ने जो कहा है, वही सत्य है। वही वेद कुरान है। इसे पहचानो। हे पुरोहित ! अहंकार से तुम लोग भरपूर हो। तुम्हें कुछ भी नहीं दिखता है। इस को बाहर निकालोगे, तो अन्दर खाली हो जाओगे। तब तुम्हारे भीतर ज्ञान भरेगा। जिस प्रकार से मोठ आदि अनाज में घुण (कीड़ा) अन्दर प्रवेश हो जाता है, अन्दर ही अन्दर खाता रहता है। मोठ को थोथा कर देता है। उसी प्रकार से तुम्हारे अन्दर भी, अहंकार तुम्हें खा रहा है। इसे बाहर करे।

अन्दर बैठे हुए शैतान को सत्य धर्म से बाहर निकालो। जिस प्रकार से जल पीने से प्यास बुझ जाती है। उसी प्रकार से सत्य धर्म से शैतान रूपी प्यास को मिटा डालो। तभी शांति होगी।

हे पुरोहित! मैं तो इस समय नर के रूप में पूर्ण पुरुष हूँ। आप जो चाहोगे, वही मिलेगा। कल्प वृक्ष की भाँति मैं सभी की इच्छा पूर्ण करूँगा। किन्तु प्राप्त तो वही नर करेगा, जिसके हृदय में ज्ञान के नेत्र खुले हुए हों। अन्धे लोग तो खाली ही रह जायेगे। आप ज्ञान नेत्रों से देखिये। मैं नर रूप में होते हुए भी निराहारी हूँ।

मैंने चारों दिशाओं में अपने खेल का पसारा किया है। जो कुछ खेल हो रहा है, वह मेरी प्रेरणा से ही हो रहा है। इसलिये हे लोगो! विष्णु का जप करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति होगी। यह तुम्हारी काया, अन्य शरीरों से श्रेष्ठ है। ऐसा कहा जाता है।

मैं किसी को तो मारता हूँ और किसी को तारता भी हूँ तथा जो क्रिया रहित है, उसको दूसरो के हाथ छोड़ देता हूँ। किसी को शील देता हूँ, और उन्हे उबार लेता हूँ। इसलिये सृष्टि के कर्ता, पालक, एवं संहार कर्ता ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश रूप से मै ही हूँ यह कार्य मैं अकेला ही करता हूँ। किन्तु तीन कार्य करने से मेरे तीन नाम पड़ गये। वही कर्ता-धर्ता कैवल्य ज्ञानी बन कर इस समय मैं सम्भराथल पर आया हूँ।

प्रकट रूप से मैंने ही खेल पसारा है मैंने प्रह्लाद भक्त को वचन दिया था। उनके तेतीस करोड़ को पार उतारना है। वही प्रह्लाद पन्थ जीवित करके इन लोगों को दिखाने के लिये मैं यहाँ पर आया हूँ। जिस प्रकार से सम्पूर्ण गायें जब जल-घास खा-पीकर बैठ जाती हैं, जुगाली करती हैं, उसी प्रकार से मैं उन प्रह्लाद के पंथी जीवो को तृप्त कर दूँगा। वे स्वंय बैकुण्ठ पहुँच जायेंगे। तभी पूर्ण तृप्त हो सकेंगे। यही कार्य हे पुरोहित! तुमने चोरी की तो तुम्हारा हाथ जला ? अब तुम यहाँ पर आये हो और पूछते हो कि मेरा हाथ क्यो जला। यह तो तुम्हारे पाप की थोड़ी ही झलक है। यह तो तुम्हें सचेत करने के लिये सूचना मात्र है। हे वील्हा ! इस प्रकार से अनेकानेक लोगों को सम्भराथल पर हरी कंकेहड़ी वृक्ष के नीचे बैठे हुए शब्द सुनाया। उन्हें सचेत कर के बिश्नोई पंथ के पथिक बनाया। इस शब्द का भाव पूर्ण हुआ तो पुन: आगे के शब्द का विचार बताने लगे-

बीसनोई कह, एक जोगेसर दीठो, आसण सीला थरहराय रही थी। जाम्भोजी श्री वायक कहै

शब्द-73

ओ३म् हरी कंकेहड़ी मंडप मेड़ी, जहाँ हमारा वासा।
चार चक नव दीप थर हरै, जो आपो परकासूं।
गुणियां म्हारा सुगणा चेला, म्हें सुगणा का दासूं।
सुगणा होय सैं सुरगे जास्ये, नुगरा रह्या निरासूं।
जाका थान सुहाया घर बैकुण्ठे, जाय संदेशो लायो।
अमियां ठमियां इमृत भोजन, मनसां पलंग सेज निहाल बिछायों।
जागों जोवो जोत न खोवो, छल जासी संसारूं।
भणी न भणबा, सुणी न सुणबा, कही न कहबा, खड़ी न खड़बा।
रे! भल कृषाणी, ताके करण न घातो हेलो।
कलीकाल जुग बरते जैलो, ताते नहीं सुरां सो मेलो।

हे बिश्नोइयो ! आपने एक योगी को देखा है, सिला हिलती हुइ देखी है। आपने देखा कि योगी सिला हिला रहा है, इसमें कुछ भी सिद्धि नहीं है।

श्री देवजी ने शब्द कहा-मैं यहाँ सम्भराथल पर हरी कंकेहड़ी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ हूँ। यहाँ हमारा निवास स्थान है। ये कंकेहड़ी के वृक्ष ही हमारे मन्दिर,मठ, हवेली हैं। वह योगी तो सिला हिला रहा है, किन्तु मैं यहाँ पर बैठा हुआ यदि अपने पूर्ण रूपेण प्रकाश ज्योति को प्रकाशित कर दूँ तो चारों चक और नव द्वीपों के रूप में यह सम्पूर्ण धरती ही थर-थर काँपने लग जाये। कभी धरती में भूकम्प आता है। वह हमारी ज्योति का थोड़ा सा बढा हुआ रूप ही होता है। उससे ही धरती काँप उठती है। यदि सम्पूर्ण ज्योति पूर्ण रूपेण प्रकाशित हो जाये तो यह ब्रह्माण्ड काँप उठेगा।

योगी आसन हिलाता है, या स्वयं हिलता है ? यह तो योगी के लिए ठीक नहीं है। योगी को तो स्थिर आसन होकर बैठना चाहिए। ''स्थिरं सुखमासनम्'' इस संसार में कुछ गुणी जन हैं। वे हमारे सुगणे चेले हैं। मैं तो एसे सुगुरों का दास हूँ। जो सुगणा शुद्ध पवित्र आत्मा हैं, वे तो स्वर्ग में जायेंगे किन्तु जो निगुरे हैं, पाखण्डी हैं, वे तो निराश ही रहेंगे। उनकी इच्छा पूर्ण नहीं होगी। ये योगी लोग बाह्य दिखावों द्वारा पाखण्ड करके, अनेक प्रकार से पेट भरने का उपाय करेंगे। ऐसे निगुरे लोग आखिर निराश ही रहेंगे।

श्री देवजी कहते हैं कि मैं बैकुण्ठ से संदेशा लेकर आया हूँ। वहाँ पर तुम्हें चलना है। वहाँ पर अमृत, मिष्ठान्न, सुमधुर फल, आदि का भोजन इच्छानुसार उपलब्ध है। शयन करने हेतु इच्छित पलंग, सेज बिछाई हुई मिलेगी। जिस पर सोने से आनंद से पूर्ण हो जाओगे। तुम्हारी भक्ति ज्ञान कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होगा। इसीलिए जागो, देखो, विचार करो, ज्योति का साक्षात्कार होता रहे। कहीं ज्योति खो न जाये। कहीं संसार के चक्कर में पड़कर ज्योति को भूल न जायें। यदि भूल गये तो छले जाओगे। तुम्हारे साथ धोखा हो जायेगा।

हे कृषाण! भजने योग्य तो भगवान् हैं। उसका भजन नहीं किया। सुनने योग्य भगवान् की कथा-लीला है, उसको नहीं सुना। कथन करने योग्य जो भगवान् की कथा-नाम है वह कथन नहीं किया। खेती करने योग्य खेती तो भगवान् की प्राप्ति की साधना है। तुमने नहीं की। कानों में परमात्मा की शब्द ध्वनि

डालनी चाहिये थी, वह तुमने नहीं डाली। तो तुमने जन्म व्यर्थ ही खो दिया। यह समय कलयुग व्यतीत हो रहा है। इसमें सचेत नहीं हुआ। इस कलयुग में देव विष्णु से मिलन होना कठिन है। अनेकों विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। तुम्हारा जीवन व्यर्थ में ही न चला जाये इसीलिए गुरु देव कहते है मैं तुम्हें सचेत कर रहा हूँ।

नाथोजी उवाच-हे वील्हा! इस प्रकार से जमात एक योगी के प्रति लोगों की भावना-पाखण्ड को देखकर श्रद्धालु हो गयी थी, वह तो अन्ध श्रद्धा थी, जिससे खड्डे में गिरने की संभावना थी। उससे लोगों को सचेत किया। तथा आगे भी योगियों के प्रति अनेकों शब्द सुनाये-

बालनाथ कंवलनाथ गुरु चैलो दौन्यो बिसनोई हुवा। कहै-जाम्भाजी म्हे अतीत करम करके पारायण हुवा। अब म्हाने अतीत को मार्ग बतावो। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-74

ओ३म् कड़वा मीठा भोजन भखले, भखकर देखत खीरूं।
धर आखरड़ी साथर सोवण, ओढ़ण ऊना चीरूं।
सहजे सोवण पोह का जागण, जे मन रहिबा थीरूं।
सुरग पहेंली सांभल जिवड़ा, पोह उतरबा तीरूं।

बालनाथ कंवलनाथ दोनों गुरु शिष्य भ्रमण करते हुए एक समय बिश्नोइयों के गाँवों में इधर सम्भराथल के पास ही विचरण कर रहे थे। गुरु ने तो गाँव के बाहर ही आसन लगाया और चेले को भेजा कि जाओ, भिक्षा ले आओ। चेला घूमता हुआ एक ऐसे घर में चला गया, जहाँ उस घर में किसी स्त्री पर प्रेत की छाया आयी हुई थी।

घर के लोगों ने प्रार्थना की कि महाराज ! आप यदि भूत प्रेतों को निकालने का मंत्र आदि जानते हैं तो इलाज कर दीजिये। हम आपके लिये खीर बनाते हैं। वह शिष्य अवधूत भूत प्रेतों की बाधा दूर करने के लिये कोशिश करने लगा। उसकी कोशिश से या अन्य कोई कारण से भूत प्रेत भाग गया। वह स्त्री स्वस्थ हो गयी। घरवालों ने महाराज के लिये इस खुशी में खीर बनायी और भोजन के लिये कहा -

उस योगी के चेले ने कहा-मैं अकेला यहाँ भोजन नहीं करूँगा। मेरे गुरु आसन पर हैं। पहले उनको भोजन अर्पण करके फिर मैं भोजन करूँगा। इसलिये आप मुझे और मेरे गुरु के लिये पात्र (बरतन) में खीर भरदो, मैं लेकर चला जाऊँगा। घर वालो ने पात्र खीर से भर दिया और वह वहाँ से लेकर रवाना हुआ।

अन्तर्यामी श्री जाम्भोजी देख रहे थे। जाम्भोजी ने उसकी आत्मा को पहचाना था कि यह तो सुजीव है। किन्तु भूत प्रेतों की उपासना करना और खीर खाना ही इसका उद्देश्य हो गया है। इसको इस कार्य से निवृत्त करना चाहिये। अन्यथा यह भूत प्रेत ही बनेगा। इसकी दुर्गति हो जायेगी।

इस प्रकार से मर मर कर भूतों के उपासक उसी गति को प्राप्त होते रहेंगे, तो अन्त कहाँ आयेगा? इनका तो सम्प्रदाय बढता ही जायेगा। लोगों को बे वजह तंग करेगा। किसी में भूत प्रेत प्रवेश करा देना किसी में से निकाल देना, अपना कार्य बना लेना, यही तो हो रहा है। जब वह कंवलनाथ खीर लेकर जा रहा था तो जाम्भोजी ने अपना हाथ बढाकर खीर को गिरा दी। चेला गुरु के पास पहुँचा किन्तु खाली हाथ ही।

गुरु ने पूछा-चेला भिक्षा नहीं लाये? क्या कहूँ गुरुजी! भिक्षा तो बहुत ही अच्छी खीर रूप में मिली थी किन्तु मार्ग में एक हाथ दिखाई दिया था, उसने खीर गिरा दी। मैं तो कुछ भी नहीं समझा। वह किसका हाथ

था ? गुरु ने कहा–यह करामात तो जाम्भोजी की ही हो सकती है। चलो वही चलते हैं। दोनों गुरु चेला सम्भराथल पहुँचे।

शिष्य ने कहा–गुरुजी ! जिस हाथ ने खीर गिराई थी, वह तो यही जाम्भोजी का हाथ है। मैं पहचान गया हूँ। बालनाथ ने प्रणाम करते हुए प्रार्थना की–हे जम्भेश्वर ! आपने खीर क्यों गिरा दी ? हम भूखे थे। भिक्षा में प्राप्त खीर आपने हमें क्यों नहीं खाने दी ?

जाम्भोजी ने कहा–यदि कोई छोटा बालक सर्प को पकड़ ले तो माता पिता उसे बचाते हैं, उसी प्रकार मैंने भी आपको अधिकारी जान कर नरक में पड़ने से बचाया है। तुम लोग जीवन निर्वाह हेतु जो भी भोजन मिल जाये, उसी से ही निर्वाह करो। किन्तु अच्छे भोजन खीर आदि की प्राप्ति हेतु भूत प्रेतो की पूजा मत करो। यह तुम्हारा कार्य नहीं हैं। नहीं तो तुम्हारा जीवन बर्बाद हो जायेगा। अन्यथा अन्त मति सो गति, तुम मरकर भूत प्रेत ही बन जाओगे। ऐसा कहते हुए यह शब्द सुनाया–

हे योगी ! कड़वा मीठा जो भी भोजन मिल जाये उसे अमृत तृल्य मान कर, खीर ही समझकर भोजन करले। रसना के वशीभूत होकर जीवन को अधोगति में न डालो। जब अच्छी भूख लगी हो तो भोजन करलो वही अमृत है। धरती ही सेज–पलंग है इसी पर गहरी नींद आये तब सो जाओ। गहरी नींद बिछौना नहीं माँगती। ओढने पहनने के लिये ऊन खादी का मोटा वस्त्र ही ठीक है। जब सर्दी लगे जिस वस्त्र से बचाव हो जाये वही वस्त्र ओढने पहनने योग्य है। वही मखमली चीर मानो। जो मौके पर सर्दी गर्मी का बचाव करे।

सहज में ही जब निद्रा आये, तब सो जावो। सोने का कोई नियम नहीं है। जब नींद आये तभी समय है उठने के लिये नियम है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठे। गहरी नींद में सोए। स्वप्न आये तो उठ जाए। सूर्योदय से पूर्व ही उठे। साधना भजन करे, तभी तुम्हारा मन स्थिर होगा। यह स्वर्ग मुक्ति एक प्रकार की पहेली ही है। वहाँ पर पहुँचना इतना सरल नहीं है। जितना तुम समझते हो। यदि मार्ग पकड़ लोगे तो पार पहुँच जाओगे।

कंवलनाथ को गुरु वीसुरण कीयो। बालनाथ कंवलनाथ कहे–जांभोजी ! कोई भैरूं अरू माता, अरू आन देव, पूजै तिनको फल कहो–जांभोजी श्री वायक कहै–

शब्द–77

ओ३म् भूला लो भल भूला लो, भूला भूल न भूलूं।
जिंहि ठूंठड़िये पान न होता ते क्यूं चाहत फूलूं।
को को कपूर घूंटीलो, बिन घूंटी नहीं जाणी।
सतगुरु होयबा सहजे चीन्हबा, जाचंध आल बखाणी।
ओछी किरिया आवै फिरिया, भ्रांती सुरग न जाई।
अन्त निरंजन लेखो लेसी, पर चीन्हैं नहीं लोकाई।
कण बिन कूकस रस बिन बाकस,बिन किरिया परिवारूं।
हरि बिन देह रै जांण न पावे, अम्बाराय दवारूं।

जाम्भोजी द्वारा पूर्व शब्द सुना तो बालनाथ ने विलाप किया। घर बार छोड़ कर योग धारण भी किया, साधना मार्ग में भी चल रहे है। किन्तु हमारी साधना को तो जाम्भोजी तुच्छ ही मानते है।

पुनः बालकनाथ ने पूछा–हे गुरु देव ! यदि कोई भैरू, योगमाता आदि आन देवता की पूजा करते हैं, उनको कुछ फल मिलता है या नहीं ? जाम्भोजी ने शब्द सुनाते हुए कहा –

हे बालनाथ कंवलनाथ ! तुम लोग भूले हुए हो। तुम्हें वास्तव में साधना-पूजा का पता नहीं है। योग धारण करने से पूर्व भी भूले भटके थे। कुछ ज्ञान की किरण जगे, इस आशा से तो योग धारण किया था। किन्तु तुम्हें गुरु भी ऐसे ही मिलते गये, जो वो भी भूले हुए थे। अन्धे को अन्धा मिला तो रास्ता कौन बतलाये ? इस समय भी तुम भूले हुए हो। तो भी फिर से भूल मत करना।

अब भी रात्रि नहीं आयी है, दिन ही है, सचेत रहो। जिस ठूँठ पर पत्ते ही नहीं हैं, सूख चुका है उस पर फल कहाँ से आयेगा ? ये कल्पित देव जिन्हें तुम देवी देवता कहते हो, ये तो सूखे हुए ठूँठ की भाँति है। यहाँ फल कहाँ है ? जिसने अनुभव किया है वही जानता है। अनुभवी तो कोई बिरला ही होते हैं। जिस प्रकार कपूर ऊपर से देखने में तो बहुत अच्छा रुचिकर प्रतीत होता है, किन्तु उसे घोटकर चखकर देखे, तो असलियत का पता चले। उसी प्रकार से तथाकथित देवी देवता कपूर की तरह ही शोभायमान हैं, किन्तु रस एवं फल में कटुता भरी है।

सतगुरु यदि है तो सहज में ही पहचान करले। अन्यथा तो सतगुरु के नाम पर डुबोने वाले ही अधिक सक्रिय हैं, जो व्यक्ति भ्रमित है जांचध पीलिया रोग से पीड़ित है वह तो जो आँखों में पीलापन है। वही सभी जगह देखेगा। स्वयं स्वार्थवश देखेगा और दूसरों को भी आल-बाल कुछ बकेगा।

अधूरा कर्म पूर्ण फल नहीं दे सकता। ओछे छोटे देवता की पूजा भी जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छुड़ा सकती। बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में डालेगी। किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँचना, यह भ्रमित का लक्षण है। भ्रान्त व्यक्ति कभी स्वर्ग (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकता।

मृत्यु काल में भगवान् निरंजन ही सम्पूर्ण जीवन का लेखा जोखा माँगेगा। उस समय आन देवता की पूजा साधना जवाब नहीं देगी। वहाँ पर इस साधना का कोई महत्व नहीं होगा। ये बाते तो वहाँ छुपानी ही होंगी। ये भूत-प्रेत तो बिना कण के थोथे भूसे की तरह व्यर्थ ही हैं। बिना रस के बाकस की तरह इनकी पूजा की हुई व्यर्थ में हो जायेगी। उस अमृतमय परमात्मा से दूर ही ले जायेगी। जिस प्रकार से जिस परिवार में शुद्ध क्रिया नहीं है, वह परिवार भी व्यर्थ ही है।

वह परिवार एकता नहीं रख सकता, बिखर जायेगा। इसी प्रकार से तुम्हारा सम्पूर्ण प्रयास धूल धूसरित हो जायेगा। हरि की कृपा बिना तो इस शरीर से जब आत्मा निकलेगी तो पार नहीं पहुँच सकेगा। हरि ही संसार सागर में डूबते हुए का एक मात्र सहारा है। इसलिये अम्बाराय मेरे श्री भगवान् विष्णु के परम धाम पहुँचने के लिये, सदा सदा के लिये जन्म मरण से मुक्त होने के लिये, अन्य देवता को छोड़कर एक हरि का ही सहारा पकड़े, तभी कल्याण युक्ति मुक्ति है। योग धारण करने का फल है।

जोगी कहै जाम्भाजी हम जोग साज्या है नव पोली जीती है जाम्भोजी श्री वायक कहै

शब्द-78

ओ३म् नवै पोल नवै दरवाजा, अहूँठ कोड़रूं राय जड़ी।
कांय रे सींचो बनमाली, इंहि बाड़ी तो भेल पड़सी।
सुवचन बोल सदा सुहलाली, नाम विष्णु को हरे सुणkk।
घण तण गड़बड़ कायों वायो, निज मारग तो बिरला कायो।
निज पोह पाखो पर असी पर, जाण म गाहि म गायो Xूंणो।
श्रीराम में मति थोड़ी, जोय जोय कण बिण कूकस कांयो लेणो।

योगी बालनाथ कहने लगा–हे जाम्भोजी! हमने योग साधना की है। नौ पोल जीती है। जाम्भोजी शब्द कहै –

हे बालनाथ! इस शरीर की संरचना में नौ दरवाजे हैं (दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, एक मुख) ये सात तो ऊपर के दरवाजे तथा दो नीचे के उपस्थ एवं गुदा। ये नौ दरवाजे तथा नौ ही इनके पीछे पोल खाली जगह हैं। जहाँ पर ये इन्द्रियाँ अवस्थित होती हैं। तथा साढे तीन करोड़ रोमावली छिद्रों से यह शरीर युक्त है। ये सभी दरवाजे बाह्य वस्तु ज्ञान को ग्रहण करते हैं और अन्दर के अवशिष्ट मलादि का त्याग करते हैं।

इस प्रकार यह शरीर एक जंगल के रूप में है। जहाँ पर अनेकानेक झाड़ियाँ आदि उगे हुए हैं, इसी वन की सिंचाई माली बन कर के कर रहे हैं। इससे पार भी जाना है। यह साधना तो तुमने की ही नहीं। यह वनबाड़ी तो एक दिन अवश्य ही मुरझा जायेगी तथा उजड़ भी जायेगी। इसलिये हे योगी! सुवचन का उच्चारण करोगे, तो सदा ही खुशहाली बनी रहेगी।

तुमने योग धारण कर लिया है, तो सदा निरंतर एक विष्णु का ही स्मरण,पूजन करो। उसी का ही कीर्तन करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है। अधिक भाग-दौड़, उछल-कूद क्यों कर रहे हो ? शांत होने की कोशिश करो। अपने निज स्वकीय मार्ग पर चलो। स्व धर्म के अनुयायी बनो। ऐसे मार्ग पर तो कोई विरला ही चलता है।

यदि अपना निज पथ छोड़ कर देखा देखी चलेगा, तो पार नहीं उतर सकोगे। यही चौरासी लाख जीव योनियो में भटकोगे। जानते हुए भी भूल कर रहे हो। तुम्हें पता है कि मूँग मोठ निकाल लेने के पश्चात् पीछे गूणा (भूसा) ही अवशिष्ट रहता है। उसे तुम दुबारा गाहटा करोगे तो आपका प्रयत्न व्यर्थ ही जायेगा। उसमें अन्न कहाँ है।

श्री रामजी में तो बुद्धि (विश्वास) कम ही है, किन्तु संसार में मति अधिक है। यदि ऐसा है तो बिना कण के थोथे घास को ले रहे हैं। उसमें अन्न आदि तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जोगी कहै जांभाजी! जोग सों उमर बधै–जाम्भोजी श्री वायक कहै –

शब्द–79

ओ३म् बारा पोल नवै दरसाजी, राय अथरगढ़ थीरूं।
इस गढ़ कोई थीर न रहिबा, निश्चै चाल गया गुरु पीरूं।

योगी कहने लगा – हे देव जाम्भोजी! हम लोग योग साधना करते हैं। श्वासों को जीत लिया है। इससे हमारी आयु बढती है।

जाम्भोजी ने शब्द सुनाया–यह जीवात्मा इस बारा पोल और नौ दरवाजे वाले शरीर में बैठा हुआ है। बाहर तो क्योंकि पोल (शून्य आकाश) ही है। उस शून्य आकाश मार्ग से जीव निकलकर के चला जायेगा। आगे मार्ग साफ है। शरीर में बैठा हुआ यह न जाने कौन से दरवाजे से निकलेगा ? उसे तुम कैसे रोक सकोगे ?

यह जीव अन्दर बैठा है तभी तक यह काया–जीवन है। इस काया गढ में न तो अब तक कोई स्थिर रहा है और न कोई आगे स्थिर रहेगा। कुछ तो जल्दी ही प्रयाण कर जाते हैं। तो कुछ बाद में इससे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। निश्चित् ही गुरु पीर राजा आदि चले गये हैं। हे योगी! तुम लोग इसमें रहने का विचार कर रहे हो। इस प्रकार से बालनाथ एवं कंवलनाथ जाम्भोजी के शिष्य बने। धर्म का आचरण किया।

यह बिश्नोई पंथ सीधा, सरल एवं साफ है। इसलिये इसमें समय-समय पर अनेकानेक लोग सम्मिलित होकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते रहे हैं।

नाथोजी उवाच–हे शिष्य! इस परम पवित्र सम्भराथल पर देवजी इन हरि भरी कंकेहड़ी वृक्षों के नीचे

विश्राम करते थे। उनके बिछाने के लिये कोई आसन आदि नहीं था। इसकी पूर्ति हेतु गंगा पार से आने वाले बिश्नोई यात्री सुन्दर मखमल का बिछौना लेकर श्री देवजी के पास आये थे। इस बात को मैं तुझे विस्तार से बतलाता हूँ।

एक पूरब को बिश्नोई मखमल मीसरू को गदरो रूई सू छलाय र ल्यायो। तम जाम्भोजी पोढो तदे यापे सोइयो। जाम्भोजी श्री वायक कहै –

शब्द-80

ओ३म् जे म्हां सूता रेण बिहावे, तो बरते बिम्बा बारूं।
चन्द भी लाजै सूर भी लाजै, लाजै धर गेणारूं।
पवणा पांणी ये पण लाजै, लाजै बणी अठारा भारूं।
सप्त पताल फुणींदा लाजै, लाजै सागर खारूं।
जम्बु दीप का लोइया लाजै, लाजै धवली धारूं।
सिध अरु साधक मुनिजन लाजै, लाजै सिरजन हारूं।
सतर लाख असी पर जंपा, भले न आवै तारूं।

एक पूर्व गंगा पार का बिश्नोई मखमल मिसरूं का गद्दा रूई से भराकर के सम्भराथल पर लाया, और जाम्भोजी से कहा – हे देव ! आप यहाँ वृक्ष तले रेत पर ही बैठे रहते हैं। रात्रि में सोते नहीं। शायद यहाँ कठोर भूमि में नींद नहीं आती होगी ? आप यह मखमल का गदरा स्वीकार कीजिये। इस पर सोइये। आपको गहरी नींद आयेगी।

सतगुरु जी ने शब्द सुनाते हुए इस प्रकार से कहा – हे भक्त ! क्या मैं तुम्हारे कथानुसार सो जाऊँ ? यदि मैं सो गया तो तुम नहीं जानते क्या हो जायेगा ? हमारे सोने का अर्थ तुम नहीं जानते। यदि मैं सो गया तो रात्रि हो जायेगी अर्थात् प्रलय हो जायेगा। अभी मुझे असमय में मत सुलाओ। प्रलय होने का समय नहीं आया है। जब तक एक हजार युग पर्यन्त मैं सोता रहूँगा तो रात्रि ही बनी रहेगी। और जब मैं जग जाऊँगा तो उतना ही दिन रहेगा।

इस समय प्रलय हो जाये तो सूर्य,चन्द्र,तारे,धरती,गगन,मण्डल,पवन,पाणी,अठाहर भार वनस्पति,सातों पताल, शेष नाग, सागर, सिद्ध, साधक, मुनिजन तथा सृजनहार तथा इस जम्बू दीप के लोग ये सभी लज्जित हो जायेंगे।

ये सभी असमय में ही प्रलय हो जायेगा। यहाँ कुछ भी नहीं रहेगा। किसी भी प्रकार का जीवन एवं जीने का साधन नहीं रहेगा। इसलिये मुझे आप सोने के लिये ना कहो। अब तो जीओ और विकास करो, यह समय अनुकुल है।

हे लोगों ! इस समय तो साधना भजन करो। भजन भी ऐसा करो जो तुम्हें संसार सागर से पार उतार दे। जिस प्रकार से लाख की चूड़ियाँ बनती हैं लाख को तपा करके साँचे में ढाला जाता है, तो वे साँचे का आकार ग्रहण कर लेती हैं उसी प्रकार से तुम्हारी चित्त वृत्ति भी तदाकार-विष्णु के आकार की हो जाये। वही सच्चा भजन होगा। सर्वत्र विष्णु परमात्मा का ही दर्शन हो सके, ऐसी साधना करो।

पुन: वील्होजी को समझाते हुए नाथोजी कहने लगे- जाम्भोजी ने अनेकानेक साधन – मार्ग मुक्ति के लिये बतलाये हैं, उस समय सम्भराथल पर विराजमान देवजी के पास में योगी,सिद्ध, विशेष रूप में आया

करते थे। उन्हें उसी प्रकार की बात बतलाया करते थे। एक समय की बात है कि जाम्भोजी के पास एक साधु आया और उनसे वार्ता हुई। वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। एक साधक साधु का क्या कर्तव्य है ऐसा श्री देवजी ने बतलाया था -

एक साध परदेस ता चाल्यौं। घोड़ी नै घोड़ो छोड़ी नीसरयौ। घाटि बाधि छः महीना को बछेरो हुवौ। बीकानरे को देश पूछि पांव धोपालियै आयौ। एक लुगाई पूछै कीथोड़ीयौ आयौ। कीथोड़ी जासी। साध कहै देवजी के दीवाणि जासूं। अत तो देव कोई नहीं। एक पाखण्डी सो थै। पाखण्ड चलायौ थै। कोई देव ना बात। साध पछताणें। कलपण लागौ। देवजी दूवागर मेल्ह्यों। दुवागर कहै- साध तन्है देवजी यादि कीयौ। कह्यों घोड़ी झालै बैठो थै। जीह नै जाय बुलाय ल्यावो। साध खुसी हुवो। देवजी कै दीवाण आयौ। देवजी कहै साध कलप्यौ क्यौ। देवजी ! थानैं पाखण्डी कह्या। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-81

ओ३म् भल पाखण्डी पाखण्ड मंडा, पहला पाप पराछत खंडा।
जा पांखडी के नादे वेदे शीले शब्दे बाजत पौण।
ता पाखंडी ने चीन्हत कौण, जाकी सहजै चूके आवागौण।

एक साधु प्रदेश से चला। उसके पास में सवारी हेतु घोड़ी थी। जब अपने देश में चला था तब घोड़ी गर्भवती हुई थी और सम्भराथल तक पहुँचते पहुँचते बछेरा छः माह का हो गया अर्थात् सत्रह-अठारह माह बराबर चला था। तब धूँपालिये गाँव में सम्भराथल के निकट पहुँचा था। धूँपालिये गाँव की एक महिला ने पूछा-कि कहाँ से आये हो ? और कहाँ जाओगे ?

साधु ने कहा-हे देवी ! मैं बहुत ही दूर से चल कर आया हूँ और देवजी जाम्भोजी के पास जाऊँगा। वह देवी कहने लगी-यहाँ पर कोई देव नहीं है। एक पाखण्डी अवश्य ही है। पाखण्ड चलाता है। न कोई देव है और न ही कोई देव पने की बात ही है।

साधु पछताने लगा-इतनी दूर से चलकर आया, किन्तु यहाँ के लोग तो पाखण्डी बतला रहे हैं। मेरा यहाँ तक आना व्यर्थ ही हुआ। देवजी ने सम्भराथल पर विराजमान होते हुए भी बात जान ली और अपने एक सेवक को भेजा। सेवक ने जाकर कहा-हे साधो ! तुम्हें देवजी ने याद किया है। वहीं सम्भराथल पर बुलाया है। मुझे तुम्हारे पास भेजा है और कहा है कि घोड़ी पकड़े हुए साधु बैठा है, उसे बुला लाओ। ऐसा निमन्त्रण सुन कर साधु बड़ा ही प्रसन्न हुआ। और देवजी के पास सम्भराथल आ गया। देवजी ने कहा-हे साधो ! तुम दुःखी क्यों हुए ? हे देवजी ! आपको उस स्त्री ने पाखण्डी बतलाया था। इसलिये मुझे दुःख हुआ। जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-हे साधु पुरुष ! उस स्त्री ने मुझे पाखण्डी बतलाया था। सो ठीक ही बतलाया था। मैं पूरा पाखण्डी हूँ। मैने पूरा पाखण्ड प्रारम्भ कर दिया है। प्रथम तो पाखण्ड द्वारा मैंने पापों का खण्डन कर दिया है। पापों को पराजित करके उन्हें भगाता हूँ।

मेरे पास पापों का खण्डन करने के चार साधन हैं। प्रथम नाद, वेद, शील और शब्द। इन साधनों की महत्ता बढती है, तो पाप भाग जाते हैं। ऐसा मैं पापो। का खण्डन करने वाला पाखण्डी हूँ। ऐसे पाखण्डी को कोई पहचान लें तो उसका सहज में ही जन्म-मरण मिट जायेगा। जीवन मुक्त होकर आत्मानन्द का लाभ मिलेगा।

साध सबद क सांभल्यौ। सतगुरु नै साच करि जाणै। साध के हिरदे की खिड़की खुली। साध को सबद कह्यो -

शब्द-82

ओ३म् अलखअलख r। अलख न लखणा, तेरा अनन्त इलोलूं।
कौण सी तेरी करणी पूजै, कोण से तिंहि रूप सतूलूं।

हे साधो! तू वाणी द्वारा तो "अलख-अलख" ऐसा उच्चारण करता है, किन्तु उस अलख को तुमने जाना-पहचाना नहीं है। उस अलख को जान ले तो तेरे अन्दर आनन्द उमंग की लहर उठ रही है, उससे परिचित हो जायेगा। ऐसा होने पर फिर संसार के दु:खों से दु:खित नहीं होगा। वह आनन्द तुझे अपने में डुबोये रखेगा।

ऐसा कौन सा कर्म तू करता है,ऐसी कौन सी तू पूजा करता है, जिससे आत्मानन्द की अनुभूति हो सके। तू है तो सच्चिदानन्द रूप। तेरे स्वरूप की तुलना किससे की जाय? ऐसा कुछ है भी नहीं, जो तुम्हारी बराबरी कर सके।

देवजी कहै सबद मत कहै। तेरे जीव को भलो हुवो। तेरा जीव काया छोडिसी जदि अढाई घड़िये सुरगे जासी। साथरिये कह्यौ देवजी! अणी सिर का केस मैल्ह कराया नहीं। चलु लियो नहीं। इह नै थे सुरग दीन्हौ। औरा नै तो घणा घणा बरष हुवा। भजन भगति करता नै। जांह नै तो कदे कहो नहीं। देवजी कहे-अणि म्हानै रूड़ा पिछाण्यां।

उस साधु के मन में उस स्त्री के प्रति रोष था। क्योंकि उसने जाम्भोजी को पाखण्डी कहा था। वह कुछ अप शब्द कहने लगा-जाम्भोजी ने रोक दिया और कहा-ऐसा किसी के प्रति मत बोलो। अब पीछे की बात को भूल जाओ। तुम्हारा भला हो गया। तुम्हारा जीव तुम्हारी काया को छोड़ कर जायेगा तो अढाई घड़ी में ही स्वर्ग पहुँच जायेगा।

साथरियों ने पूछा हे देवजी ! इस साधु ने तो आपसे संपर्क सत्संग किया ही नहीं,सिर के बाल कटवाये ही नहीं,नियमों का पालन किया ही नहीं,पाहल भी ग्रहण नहीं किया,इसको आपने अति शीघ्र ही मुक्त होने का वरदान दे दिया। हम लोगों को तो देखिये तथा दूसरो को भी, बहुत वर्ष हो गये हैं आपकी संगति करते हुए भी पहचान नहीं सके हैं। "क्यूं क्यूं भणता क्यूं क्यूं सुणता,समझ विना कछू सिद्धि न पाई" समझ से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है केवल कहने या सुनने से कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता।

अन्य अनेक क्षत्रिय वैश्य आदि के आगमन पर जाम्भोजी ने बतलाया-

एक समै जाट रजपूत मुंडिया नै लैआर देवजी कै दीवाणी आया। थे जाण्यौ म्हे जिसड़ो ज्ञान थांहरै कोई नहीं। मुडिंया कहै थे किसे ठिकाणै रा अतीत। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-83

ओ३म् जो नर घोड़ै चढ़े पाग न बांधै, ताकी करणी कौण विचारूं।
शुचियारा होयसी आय मिलसी, करड़ा दो जग खारूं।
जीव तड़ै को रिजक न मेटूं, मुवां परहथ सारूं।
हाथ न धोवै पग न पखालै, नहीं सुधी बुधि गिवारूं।
म्हे पहराजा सूं कौल ज लियो, नारसिंघ नर काजूं।
जुग अनन्त अनन्त बरत्या, म्हे सुनि मण्डल का राजूं।

एक समय रजपूत एवं जाट बहुत सारे एकत्रित होकर एक साधु (मोडा) को साथ लेकर सम्भराथल पर देवजी के पास आये और कहने लगे–कि आप समझते हो कि मैं लोगों को प्रमोध (ज्ञान) देता हूँ, जाग्रत करता हूँ। किन्तु हमारे जैसा ज्ञान आपको नहीं है। हम तुम से ज्ञानी ज्यादा हैं। साधु मुंडिया कहने लगा–आप किस आश्रम या मठ के साधु हैं? आप कौन सी परंपरा से सम्बन्ध रखते हैं?

जाम्भोजी ने शब्द सुनाया–जो मनुष्य घोड़े पर तो चढना चाहता है, किन्तु पागड़ा (रकाब) नहीं बाँधता। पागड़ा पर ही पैर रख कर घोड़े पर चढा जा सकता है। बिना पागड़ा चढना नादानी है,अज्ञानता है। उसी प्रकार से सर्वोच्च शिखर, वैकुण्ठ धाम तो पहुँचना चाहता है, किन्तु साधना रूपी मार्ग नहीं पकड़ता, तो ऐसे पुरुष के कर्मों के बारे में क्या विचार करे? उसका कर्म तो बिना बीज की खेती की तरह व्यर्थ ही है।

जो शुचि (पवित्र) आत्मा है, वह तो कही से भी आकर मिलेगा। और जो कठोर, अपवित्र, अश्रद्धालु होगा वह दोजक नरक में गिरेगा। इसलिये आप लोग पहले शुचि बनो। इस संसार में जिसने भी जन्म लिया है, वह अपने पूर्वकृत कर्मो के अनुसार जैसा भी जीवन व्यतीत कर रहा है, उन्हें पूरी आजादी है। उनके कृत कर्मों को मिटाया नहीं जा सकता, किन्तु मरने पर दूसरों के हाथ चढ जायेगा। स्वयं पराधीन हो जायेगा, कुछ भी करने में स्वंतत्र नहीं होगा। यह स्वतन्त्रता तो जीते जी ही है।

जो व्यक्ति हाथ भी नहीं धोता, पैरों को भी नहीं धोता,स्नान आदि शुचि क्रिया भी नहीं करता ऐसे गंवार (मुर्ख) पुरुष को शुद्धि एवं बुद्धि कहाँ से आयेगी। हे साधो ! आपने पूछा कि मैं कहाँ का साधु हूँ? सुनो! मैं तो वैकुण्ठ वासी विष्णु हूँ। प्रह्लाद की रक्षा हेतु जब मैंने नृसिंह का रूप धारण किया था, हिरण्यकशिपू को मारा था, तब मैने प्रहलाद को वचन दिया था। उन वचनों को मैं पूरा करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ।

वैसे असली मेरा पता पूछते हो तो सुनो! अनन्त युग व्यतीत हो गये। मेरे देखते हुए, मैंने प्रलय एवं सृष्टि की संरचना देखी है। मैं शून्य मण्डल का राजा हूँ। शून्य मण्डल ही मेरा निवास है। मैं ही उस मण्डल का मण्डलेश्वर हूँ।

मुंडिया कहै म्हे दाढी मूंछ माथै का केस सह मुंडाया भदर हुवा। डाफडोफ काई राखी नहीं। जाम्भोजी श्री वायक कहै –

शब्द–84

ओ३म् मूंड मुंडायो मन न मुंडायो, मूंहि अबखल दिल लोभी।
अन्दर दया नहीं सुर काने,निंदरा हड़े कसोभी।
गुरु गति छूटी टोट पड़ैला, उनकी आवा एकपख Ikrk।
वे करणी हूँता खूंधा, असी सहंस नव लाख भवैलां कुंभी दौरे ऊंधा।

वह साधु फिर से कहने लगा – मैंने दाढी मूंछ तथा सिर के केश सभी मुडवा लिये है। मैं भदर हो चुका हूँ। तथा अन्य कोई दिखावा पाखण्ड नहीं है। मैं स्वर्ग मुक्ति का अधिकारी क्यों नहीं? श्री देवजी ने शब्द सुनाते हुए कहा –

हे साधो! तुमने सिर आदि तो मुंडवा लिये ये तो बाह्य जटाएँ थी। किन्तु तुमने अपने चंचल मन को नहीं मुंडाया। इस मन की चंचलता को नहीं मेटा। इसे स्थिर नहीं किया। मुख से अपशब्द बोलना नहीं छोड़ा। दिल में बैठा हुआ लोभ, उसको भी नहीं छोड़ा। तो केवल सिर मुंडाने से क्या होगा? तुम्हारे अन्दर दया भाव नहीं है। कर्ण द्वारा परमात्मा का शब्द स्वर सुनने की क्षमता नहीं है। नित्य प्रति दूसरो की निंदा करता है।

अपनी ही हानि करता है। स्वकीय यश को ही पलीता लगाता है। दूसरो का यश समाप्त करने के चक्कर में स्वंय का ही यश नाश करता है। सद्‌गुरु का बताया हुआ मार्ग छूट गया, तो तुझे बहुत ही हानि उठानी पड़ेगी।

यह दुर्लभ मानव जीवन हाथ से चला जायेगा तो आगे चौरासी लाख छोटी-छोटी योनियों में भटकना पड़ेगा। उनकी आयु एक सप्ताह या दो सप्ताह से ज्यादा नहीं होगी। बार बार अति शीघ्र ही जन्म और मरण को प्राप्त होगा। वे अपने ही कर्म से नरक में गिरोगे। जियेंगे तो मारे जायेंगे, आयु अति अल्प होगी। नौ लाख अस्सी हजार वर्षों तक कठिन दुखदायी कुंभी पाक नरक में चक्कर काटेगा। इसलिये यही समय है। सुकृत करने का। इससे मुख न मोड़ो। आगे फिर से जाट मुंडिया कहने लगे -

जाट रजपूत मुडिया परचि पाऐ लागा। कह-जाम्भोजी-कोई मोटो हुव स बतावौ, जक नुं जपां। जाम्भोजी श्री वायक कहै -

शब्द-85

ओ३म् भोम भली कृषाण भी भला, खेवट करो कमाई।
गुरु प्रसाद काया गढ़ खोजो, दिल भीतर चोर न जाई।।
थलिये आय सतगुरु परकाश्यो, जोलै पड़ी लोकाई।
एक खिण मांहि तीन भवन म्हें पोखां, जीवाजूण सवाई।
करण समो दातार न हूवो, जिन कंचन बाहू उठाई।
सोई कवीसा कवल नवेड़ी, जिण सुरह सुबछ दुहाई।।
मेर समो कोई केर न देख्यो, सायर जिसी तलाई।
लंक सरीखो कोट न देख्यो, समंद सरीखी खाई।।
दशरथ सो कोई पिता न देख्यो, देवल देसी मांई।
सीत सरीखी तिरिया न देखी, गरब न करीयो कांई।।
हनुमत सो कोई पायक न देख्यो, भीम जैसो सबलाई
रावण सो कोई राव न देख्यो, जिण चोहचक आन फिराई।।
एक तिरिया के राहा बैधी, लंका फेर बसाई।
संखा मोहरा सेतम सेतूं,ताक्यूं बिलगै कांई।।
ब्राह्मण था ते वेदे भूला, काजी कलम गुमाई।
जोग बिहूणा जोगी भूला, मुंडिया अकल न काई।।
इहिं कलयुग मैं दोय जन भूला, एक पिता एक माई।
बाप जाणे मेरे हलीयो टोरे, कोहर सींचण जाई।
माय जाणे मेरे बहूटल आवे, बाजे बिर/k बधाई।।
म्हें शिम्भू का फरमाया आया, बैठा तखत रचाई।
दो भुजडंडे परबत तोला, फेरां आपण राई।।

एक पलक मैं सर्व संतोषां, जीया जूण सवाई।
जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठो आसन धारी।
हाली पूछे पाली पूछे, यह कलि पूछण हारी।
थली फिरंतो खिलेरी पूछे, मेरी गुमाई छाली।
बांण चहोड़ पारधियो पूछै, किहिं अवगुण चूकै चोट हमारी।
रहो रे मूर्खा मुग्ध गवांरा, करो मजूरी पेट भराई।
है है जायो जीव न घाई।
मेड़ी बैठो राजेन्द्र पूछै, स्वामीजी कती एक आयु हमारी।
चाकर पूछै ठाकर पूछै, और पूछै कीर कहारी।
सोक दुहागण तेपण पूछे, लेले हाथ सुपारी।
बांझ तिरिया बहुतेरी पूछे, किसी परापति म्हारी।
त्रेताजुग में हीरा बिणज्या, द्वापर गऊ चराई।
वृन्दावन में बंसी बजाई, कल जुग चारी छाली।
न0 खेड़ी म्हें आगे खेड़ी, दशवें कालंकै की बारी।
उत्तम देश पसारो माड्यो, रमण बैठो जुवारी।
एक खंड बैठा नव खंड जीता, को ऐसा लहो जुवारी।।

राजपूत मुंडिया परिचित हुए और श्री देवजी के चरणों में प्रणाम किया। कहने लगे-हे देवजी! जो सबसे महान् हो, वही हमें बतलाओ। जिसका हम जप करें। जाम्भोजी ने शब्द सुनाया, जिसका भावार्थ-

सबसे उतम तो खेती है। क्योंकि उसी से ही सभी पलते हैं। भोजन करने से ही सभी जीते हैं, केवल खेती करना ही पर्याप्त नहीं है। खेती के साथ ही साथ साधना भी जरूरी है। खेती तथा साधना दोनों ही श्रम साध्य है। इसके लिये भूमि अच्छी चाहिये। जहाँ खेती निपज सकेगी। साधना भी देश काल को ध्यान में रखकर करनी चाहिये। जिससे शीघ्र फलदायी हो सके। स्वयं परिश्रम करे, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। गुरु की कृपा भी साथ में चाहिये, ताकि खेती साधना सफल हो सके।

इस काया रूपी गढ में काम क्रोधादि चोर प्रवेश न कर जायें। इसके लिये सचेत रहना जरूरी है। उसी आत्मा परमात्मा को काया रूपी गढ में देखो। वही हृदय देश में अवस्थित है। इस सम्भराथल पर सद्‌गुरु के रूप में स्वंय विष्णु आये हैं। उनका प्रकाश ज्ञान फैल रहा है। अब अन्धेरा मिट गया है। जो कुछ छिपा हुआ है, जो अन्धेरे में नहीं दिख रहा था, अब उसे खोज लो। दीख जायेगा।

श्री देवजी कहते हैं कि मैं सर्वत्र व्यापक होकर, सभी जीव-योनियो में प्रवेश करता हूँ तथा उनका पालण-पोषण भी एक क्षण में कर देता हूँ। कर्ण के समान कोई दाता नहीं हुआ। जिन्होंने हाथ में सोना लेकर सदा ही दान दिया था। खाली हाथ कभी किसी को नहीं भेजा। किन्तु कर्ण सभी जीवों का पालन-पोषण एक क्षण में करने में असमर्थ था। अवश्य ही घर पर आये हुए अतिथि को देता था। किन्तु सभी जीव योनियों तक नहीं पहुँच सका था। कह दिया दूँगा, तो अवश्य ही दिया। माता कुन्ती को वरदान,इन्द्र को

कवच कुण्डल, तथा ग्वाला ऋषि को गोदान इत्यादि।

श्री जाम्भोजी कहते हैं-मैंने सुमेरू पर्वत जैसा कोई पर्वत नहीं देखा। समुद्र के समान तालाब नहीं देखा। लंका जैसा कोई कोट नहीं देखा। समुद्र जैसी खाई नहीं देखी। दशरथ जैसा कोई पिता नहीं देखा। देवकी जैसी कोई माता नहीं देखी। सीता जैसी स्त्री नहीं देखी। जिन्होंने किंचित भी अहंकार नहीं किया। बड़े घर की बेटी एवं बहू होकर भी गर्व नहीं करना कुछ विशेषता बतलाता है। हनुमान जैसा कोई सेवक नहीं देखा और भीम जैसा कोई बलवान भी नहीं देखा। रावण जैसा कोई राजा नहीं देखा। जिन्होंने चारों दिशाओं में अपनी आण-मर्यादा, राज्य सीमा फैला दी थी। किन्तु एक स्त्री सीता के लिये अपना विकास अवरुद्ध कर बैठा। जिस वजह से लंका दुबारा बसायी गयी। रावण और लंका दोनों ही तहस नहस हो गये। स्वर्णमयी लंका में शंख, मोहर, हीरे आदि लंका की शोभा बढाते थे।

वह लंका रावण की क्यों छूटी ? एक स्त्री का हरण किया, इस वजह से। यहाँ पर जाम्भोजी कहते हैं कि मैंने तो रावण, लंका, सीता, हनुमान, भीम, देवकी, दशरथ आदि को देखा है। तो इसका अर्थ है कि जाम्भोजी उस समय मौजूद थे और इस समय भी हैं, आगे भी रहेंगे। अपनी आँखों देखी बात बतला रहे हैं।

श्री देवजी ने आगे फिर कहा-यहाँ पर मरुभूमि में कलियुग के पहरे में जो ब्राह्मण थे, वे तो वेद को भूल चुके हैं, अपने धर्म को ही भूल गये हैं। काजी लोग कुरान को भूल गये हैं, कलमे का क्या मतलब है ? इन्हें पता नहीं है। केवल बाह्य दिखावे के योगी योग मार्ग को भूल गये हैं। मुंडिया लोगों को तो बुद्धि-ज्ञान ही नहीं है। ये लोग ज्ञानी होने का दावा करते हैं, किन्तु इनको ज्ञान नहीं है।

इस भंयकर कलियुग में माता-पिता भी भूल में है। पिता तो यह चाहता है कि मेरा बेटा बड़ा होगा तो हल चलायेगा। कुएँ से जल सींच कर के लायेगा। माता जानती है कि मेरा बेटा बड़ा होगा, तो बहू लायेगा। मैं खुशी मनाऊँगी, बधाइयाँ बाँटूँगी। किन्तु बेटे का क्या कर्तव्य है और माता पिता का क्या कर्तव्य है ? ये दोनों ही नहीं जानते।

श्री सतगुरु देवजी कहते हैं-मेरे इस शरीर के माता-पिता लोहट हांसा भी यही सोच रहे थे। किन्तु मैं तो स्वयंभू हूँ। प्रह्लाद को फरमाया था, कि आऊँगा, इसलिये आया हूँ,किन्तु मेरे या अन्य माता-पिता इस बात को क्या समझे, क्योंकि वे तो भूले हुए हैं। मैं यहाँ सम्भराथल पर आसन लगा कर बैठा हूँ, मैं चाहूँ तो दोनो हाथों से पर्वत को उठाकर तोल सकता हूँ। अपनी ताकत का प्रदर्शन कर सकता हूँ।

एक ही पलक में सर्व जीवों को भोजन देकर संतोष पैदा करता हूँ। अनेक शरीरों में आत्मा रूप में प्रवेश करके मैं पोषण करता हूँ। मैं तो युगों-युगों का योगी हूँ। यहाँ पर आया हूँ। आसन लगाकर के बैठा हुआ हूँ। यहाँ सम्भराथल पर आसन लगाकर बैठे हुए को भी बैठने नहीं देते। अनेक प्रकार के लोग आते हैं और पूछते हैं-

हल चलाने वाला हाली पूछता है। पाल-पशु धन चराने वाला पाली पूछता है। इस कलयुग में लोग सांसारिक बातें पूछते हैं, थलों पर घूमता हुआ खिलेरी पूछता है कि मेरी बकरी खो गयी है। आप बतलावें। बाण चलाकर के पारधी (शिकारी) पूछता है कि अकारण ही मेरा निशाना क्यों चूक जाता है ?

जाम्भोजी कहते हैं कि-रे मूर्ख। मुग्ध गंवार! मजदूरी करके पेट भराई कर लो, किन्तु इन जीते जागते जीवों को क्यों मारते हो ? मैड़ी बैठा हुआ राजा पूछता है कि मेरी आयु कितने दिनों की है ? चाकर पूछता है ठाकुर पूछता है। कीर-कहार भी यहाँ आकर पूछते हैं। विधवा स्त्रियाँ पूछती हैं। हाथ में सुपारी की भेंट लेकर स्त्रियाँ पूछती हैं कि मेरे संतान क्यों नहीं हुई ? आगे होगी या नहीं ? मेरा यहाँ जन्म लेने का क्या प्रयोजन है ?

यदि संतान ही नहीं होगी तो ?

जाम्भोजी कहते हैं कि मैंने त्रेता युग में हीरों का व्यापार किया। उत्तम लोगों के साथ संपर्क हुआ। उत्तम फल की प्राप्ति हुई। द्वापर युग में गऊ चराई। वृन्दावन में बंसी बजाई। किन्तु अब कलयुग में तो छाली-भेड-बकरी चराने का समय आ गया है। यहाँ इस कलयुग में तो भेड-बकरी जैसे ही लोग यहाँ बसते हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरा संपर्क है। इससे पूर्व मैंने नौ अवतार लिये हैं। दसवाँ अवतार कल्कि होगा।

इस बार मैंने इस उत्तम बागड़ देश में धर्म का प्रचार किया है। यहाँ पर मैं एक जुवारी की तरह खेल रहा हूँ। आखिर जीत तो मेरी ही होगी। मैं यहाँ पर बैठा तो एक खण्ड में ही हूँ, किन्तु नव खण्ड को जीत लिया है। ऐसा मैं जुवारी हूँ। कोई लेना चाहे तो अवश्य ही प्राप्त करें।

साथरियाँ जमाती अरज कीवी। जांभोजी सुधी मार्ग बताओ। जाम्भोजी श्री वायक कहे -

शब्द-86

ओ३म् जुग जागो जुग जाग पिरांणी, कांय जागंता सोवो।
भलकै बीर बिगोवो होयसी, दुसमन कांय लकोवो।
ले कूंची दरबान बुलावो, दिल ताला दिल खोवो।
जंपो रे जिण जंप्यो जणीयर, जपसी सो जिण हारी।
लह लह दाव पड़ंता खेलो, सुर तेतीसां सारी।
प0न बंधान काया गढ़ काची, नीर छलै ज्यूं पारी।
पारी बिनसै नीर ढुलैलो, ओपिंड काम न कारी।
काची काया दृढ़कर सींचो, ज्यूं माली सींचे बाड़ी।
ले काया बासंदj होमो, ज्यूं ईधन की भारी।
शील स्नाने संजमे चालो, पाणी देह पखाली।
गुरु के वचने निंव खिंव चालो, हाथ जपो जप माली।
बस्तु पियारी खरचो क्यूं नाहीं, किहिं गुण राखो टाली।
खरचे लाहो राखे टोटो, बिबरस जोय निहाली।
घर आगी इत गोवल बासो, कूड़ी आधो चारी।
सुकरत जीव सखायत होयसी, हेत फलै संसारी।
आज मूवा कल दूसर दिन है, जो कुछ सरै तो सारी।
पीछे कलियर कागा रोलो, रहसी कूक पुकारी।
ताण थकै क्यूं हार्यो ना ही, मुरखा अवसर जोला हारी।।

साथरियां जमाती के लोगों ने अर्ज की कि हे गुरुदेव ! आप हमें कोई ऐसा पवित्र मार्ग बताओ कि हम पवित्र हो सकें ? जाम्भोजी ने शब्द द्वारा बतलाया-हे प्राणी ! जागो !

इस युग के लोगों ! समयानुसार चलो ! जाग्रत होवो ! जागते हुए सोते क्यों हो ? जागने का अर्थ है कि

सचेत हो जाओ। दृष्टा (साक्षी) बनो। आलस्य निंद्रा प्रमाद में समय नष्ट न करो। एक क्षण में ही यह जीवात्मा शरीर से विलग हो जायेगी। तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। तुम्हारे अन्दर बैठे हुए काम क्रोधादि दुश्मनों को क्यों छिपाते हो ? अपने सद्‌गुरु को अपने पास बुलाओ। वह तुम्हारी अज्ञानता का ताला सद्‌गुरु खोल देगा। आप अन्दर प्रवेश करोगे, तो अन्दर छुपे हुए आपके दुश्मन भाग जायेंगे।

हे लोगों! विष्णु का जप करो। वह विष्णु ही तुम्हारा जन्म दाता, पालन कर्ता एवं संहारकर्ता भी है। जप भी वही करेगा, जो उसको पहचान लेगा। जैसा जहाँ भी अवसर-दाव मिल जाये, यह भक्ति-भजन का खेल खेलो। इसी खेल को ही तेतीस कोटि देवता खेल रहे हैं। इसी प्रभाव से वे देवता पद को भी प्राप्त हो गये हैं। श्वास प्रच्छवास पर आधारित यह कच्ची काया है। पवन में बंधी हुई विनाशशील काया का कुछ भी भरोसा नहीं है। जिस प्रकार से जल से भरा हुआ कच्चा घड़ा होता है,वह कच्चा घड़ा

कब फूट जाये और जल बिखर जाये ? फूटा हुआ कच्चा घड़ा किसी प्रयोजन का नहीं होता। उसी प्रकार से यह शरीर भी व्यर्थ ही हो जाता है। जब उसमें से जीव निकल जाता है।

कच्ची काया को पाल- पोष कर के बड़ी करते हैं। समय-समय पर भोजन-जल आदि द्वारा सिंचाई की जाती है। जिस प्रकार से माली बगीचे में पेड़ पौधों की सिंचाई गुड़ाई आदि करके फल देने के लायक बना देता है।

उसी प्रकार से यह शरीर है। एक पौधे की भांति ही है। इससे मधुर फल मिलता। किन्तु कुछ लोग कटु कषाय- जहरीला फल भी प्राप्त कर रहे हैं।

इस काया को तपस्या-त्याग रूपी अग्नि में तपाओगे, तो परिश्रम का फल सुमधुर ही होगा। जिस प्रकार से लकड़ी का गट्ठा जलते हुए ईन्धन में डाल दिया जाता है, तो वह जल कर राख हो जाता है। उसी प्रकार से तपस्या रूपी अग्नि में काम, क्रोध, अहंकार आदि जल जायेंगे, तो इस काया में बैठे हुए परमात्मा का साक्षात्कार हो सकेगा। लकड़ी में अग्नि तो रहती ही है, किन्तु प्रकट जलाने से ही होती है। उसी प्रकार से इस शरीर में आत्मा-परमात्मा तो रहता ही है, किन्तु प्रकट-साक्षात् दर्शन तो तभी होगा जब काम क्रोधादि का पर्दा हट जायेगा।

हे लोगो! शीलवान बनो। नित्यप्रति बाह्य शुद्धि के लिये प्रात:काल स्नान करो। आन्तरिक शुद्धि के लिये संध्या हवन आदि कार्य करो। मन-बुद्धि का संयम करो। इन्द्रियों को वश में करो। इस शरीर को जल से धो डालो और मन को भगवान् की भक्ति संयम-नियम से धो डालो। गुरु के वचनों को श्रद्धा विश्वास पूर्वक धारण करो। सभी के प्रति नम्रता, सहनशीलता का स्वभाव धारण करो। हाथों में माला रखो, और विष्णु का जप करो।

जो वस्तु अपने को प्यारी लगती है, उसे ही एकत्रित क्यों करते हो ? उसे खर्च करते रहो। व्यय करने में लाभ है और जोड़कर रखने में हानि है। जल पड़ा हुआ गंदा हो जाता है। बहता हुआ जल स्वच्छ (उज्ज्वल) पवित्र रहता है, इसी प्रकार से धन-संपत्ति है। ऐसा विचार करके देखोगे तो निहाल हो जाओगे। परमात्मा को प्राप्त कर जाओगे।

सच्चा घर तो आगे है। यहाँ तो गोवलवास ही है। जिस प्रकार से अकाल या विपत्ति दशा में अपने घर

को छोड़कर के कुछ दिनों के लिये अन्यत्र समय व्यतीत करने के लिये चले जाते हैं। उसी प्रकार से यह संसार है, असली घर तो हम जहाँ से आये है वही वापिस जाना है वहीं है। जीव शरीर में रह कर जीता है इसके द्वारा किया हुआ सुकर्म ही इस जीवन में सुख-दु:ख का हेतु है। आगे भी सुकर्म ही सखा की भांति साथ जायेगा। इस संसार में प्रेम ही फलीभूत होता है। प्रेम ही इह लोक एवं परलोक में साथ देता है।

जीवन जीते हुए एक दिन मृत्यु भी आ जाती है। आज मृत्यु प्राप्त हुए शरीर से जीव आत्मा विलग हुई है। कल दूसरा दिन होगा। और परसों तीसरा दिन भी आ जायेगा। कब तक यहाँ रहेगा ? तीसरे दिन तो यहाँ से प्रस्थान करना पड़ेगा। भाई-बन्धु तीसरे दिन एकत्रित हो कर विदाई दे देंगे। जलांजलि प्रदान कर देंगे। बस इतना ही तुम्हारा हमारा सम्बध था। अब आगे जैसी तुम्हारी कर्म वासना होगी, वैसा ही जन्म होना निश्चित होगा। इन तीनों दिनों में भी यदि मोह माया का जाल छोड़ सके, तो छोड़ देना। यह अवसर प्राप्त है। संसार, परिवार, धन-दौलत को छोड़कर ऊपर उठ सके तो उठ जाना, अन्यथा तो यहीं कहीं पुन: जन्म हो जायेगा।

तीसरे दिन भाई-बन्धुओं को भोजन करवाये, उस अन्न द्वारा जीव आगे के जन्म की यात्रा करेगा। अन्न नहीं जिमायेंगे, तो वह जीव दुर्गति को प्राप्त हो सकता है। दूसरे जन्म का आधार अन्न ही है। मरने के पश्चात् तो पीछे तो रोना-पीटना ही रह जाता है। वह रोना-चिल्लाना जीव की सद्गति में सहायक नहीं होगा। उस समय तो भगवान् का कीर्तन ही सहायक हो सकेगा।

अपनी निजी ताकत होते हुए भी हे जीव ! तू क्यों हार गया ? इस संसार में तो खेल खेलने के लिये आया था। बहुत दाँव खेले सभी उलट ही पड़ गये। इस अवसर का सदुपयोग करना चाहिये था किन्तु मुर्खता वश दुरुपयोग ही किया।

आठवाँ अध्याय

बाजोजी तरड़ को सन्मार्ग में लाना

वील्हो उवाच - हे गुरु देव ! त्रिगुणात्मिका यह माया है। सम्पूर्ण संसार इस माया के वशीभूत ही होगा। सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से ऊपर भी कोई व्यक्ति उठ सका है या सभी अपने स्वभाव में ही प्रवृत्त हो रहे हैं, यदि स्वभाव को व्यक्ति नहीं छोड़ सकता, तब तो व्यक्ति सुधार का कार्य व्यर्थ ही सिद्ध होगा ? क्या जाम्भोजी ने ऐसे व्यक्ति का आमूल-चूल परिर्वतन किया है? यदि किया है तो ऐसे व्यक्ति की कथा सुनाइये,जिससे श्री सिद्धेश्वर जी की महत्ता एवं भगवान् की दिव्य लीला का श्रवण हो सके और व्यक्ति के सुधार का मार्ग प्रशस्त हो सके ?

नाथोजी उवाच - हे शिष्य ! मैं तुम्हें आँखों देखी घटना कहता हूँ। जो कुछ भी मैंने प्रत्यक्ष आँखों से देखा है। उसमें संदेह की कुछ भी गुंजाइस नहीं है। एक समय सम्भराथल की हरि कंकेहड़ी के नीचे आसन लगाये हुए सिद्धेश्वरजी विराजमान थे। बिश्नोई पंथ का विस्तार हो चुका था। जाम्भोजी ने दो प्रकार के शिष्य बनाये थे, प्रथम तो विरक्त साधु समाज, दूसरा गृहस्थ समाज। एक समय जाम्भोजी के चेले साधु समाज की मण्डली भ्रमण करते हुए जसरासर गाँव में पहुँची। बीकानेर राज्य का यह गाँव है। इस गाँव में तरड़, गौत्र के

जाट रहते हैं। इन लोगों में किसी प्रकार की भक्ति,क्रिया आदि साधन नहीं थे। कुकर्म सुकर्म का ज्ञान भी नहीं था। साधुओं की मण्डली ने अपनी इच्छा से भ्रमण करते हुए गाँव में प्रवेश किया था। भोजन की इच्छा से गाँव की एक बहन सहजा के घर पहुँच गये थे। सहजा का हृदय अन्य लोगों की अपेक्षा शुद्ध-पवित्र था। सहजा ने संतों को नमन किया तथा प्रेम से भोजन दिया। संत मण्डली भोजन करके चलने लगी तब सहजा ने हाथ जोड़े और कहा -

आप संत लोग परोपकारी हैं। मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे घर पर पधारे। मैं आपकी शरण में हूँ। अब आप कृपा करो। जीवन सफल होने का उपाय बतलाओ। अन्यथा तो भवसागर में डूबने का खतरा तो अवश्य ही है। यही जीवन डूब गया तो फिर बचेगा ही क्या? संतों ने शुद्ध हृदय सहजा को देखा और अधिकारी मान कर उससे इस प्रकार से कहने लगे -

हे सहजा-तू सद्‌गुरु के पास जाओ। सम्भराथल पर सद्‌गुरु सदा ही विराजमान है। वो ही तुम्हारा भला करेंगे। सहजा ने संतों की बात को सत्य माना और दूसरे दिन प्रात: काल ही सहजा फल फूल घृत आदि की भेंट लेकर सम्भराथल पर श्री देवजी के पास पहुँच गयी। देवजी के सामने भेंट रख कर के कहने लगी-

हे देव! आप तो पूर्ण परमात्मा हो। इस समय सद्‌गुरु के रूप में विराजमान हो। ऐसा मैंने संतों के मुख से सुना है। उन्हीं को मैं आज अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख रही हूँ। मैं आप से क्या कहूँ? माया के वशीभूत होकर जंजाल में यह जीव उलझ गया है। मैं निष्प्रयोजन ही संसार में भटक रही हूँ। मुझे नियम धर्म का कुछ भी पता नहीं है। अब मैं आपकी शरण में हूँ। आप ही मेरी इच्छा पूर्ण करोगे। इस प्रकार से निष्कपट भाव से की गयी प्रार्थना को श्रवण कर के श्री जांभोजी कहने लगे -

हे बहन! कुकर्मों का त्याग करो। झूठ,कपट,दम्भ,एवं अपनी बड़ाई इत्यादिक के नजदीक भी नहीं जाना।

नित्यप्रति ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर शौच स्नानादिक क्रियाएँ करना। हवन, विष्णु-भजन आदि के कार्य करना। घर पर आये हुए अतिथि, संत जनों की सेवा करो। ऐसा उपाय करो कि थोड़ा-थोड़ा पुण्य होता रहे। पुण्य दान करने से होता है तथा दान सुपात्र को देना। यही सब से बड़ा यज्ञ है। यह घर में चलता रहे। इस प्रकार से पुण्य को पांगला कर के रखे, ताकि घर में ही बना रहे,अन्यथा घर से निकल जायेगा।

ऐसे हरि के वचनों को सुना। हरि के चरणों में प्रणाम किया और वापिस अपने गाँव जसरासर चली गयी। जैसा श्री सद्‌गुरु ने कहा था वैसे ही नियमों का पालन करने लगी। इस बात का पता जसरासर के चौधरी बाजाजी तरड़ को लगा-बाजा स्वयं देखने के लिए एक दिन प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व ही सहजा के घर पर आया,उस समय सहजा स्नान करके आयी थी।

बाजा ने कहा-हे बहन! सुबह-सुबह ठण्डी में स्नान करने का क्या प्रपंच कर रही है? सहजा ने बाजा के वचन सहन कर लिये, जो कि असहनीय थे। नियम धर्म को बाजा प्रंपच बता रहा था।

सहजा हंस कर के कहने लगी-हे भाई! मैं तो जाम्भोजी की चेली हूँ। वे तो सम्भराथल पर सदा ही विराजमान हैं। उनका दर्शन करने से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सहजा की वार्ता सुन कर के बाजो कहने लगा-तू कहती है, तो मैं जाकर स्वयं देखूँगा कि क्या है? शायद पाखण्डी होंगे। लोगों को बहकाते है। अपनी इच्छा से मनमुखी धर्म चलाते हैं। यह सवेरा स्नान करने का नियम कहाँ से आया है? हमारी परंपरा में तो ऐसा नहीं था।

बाजोजी क्रोधित होकर सम्भराथल गया और कहने लगा-मैं जो चाहूँगा वही परचा देंगे, तो मैं दास हो

जाऊँगा अन्यथा मैं यहाँ पर तुम्हारा पाखण्ड नहीं चलने दूँगा। जम्भेश्वरजी ने कहा- हे बाजा! जो तुम्हें चमत्कार चाहिये, वही परचा मैं तुम्हें दूँगा, बोल क्या माँगता है?

बाजोजी के बाप दादा का धन धरती में गड़ा हुआ था, किन्तु बाजा को पता नहीं था कि कहाँ है? बाजोजी ने धन प्राप्ति हेतु जाम्भोजी के चरणो में लंबा पड़कर दण्डवत प्रणाम किया। श्री देवजी के चरणों को पकड़ा। सिर झुकाया। जिससे कुछ कोमल हुआ और कहने लगा-

हे देव! हमारे पुरखों का धन धरती में गड़ा हुआ है। आप कृपा कर के बतला दीजिये। जाम्भोजी ने कहा- एक मूण (मटका) सोने-चाँदी का भरा हुआ है, वह जमीन में है। तुम नहीं जानते। किन्तु तुम्हारे दोनों बेटे और बहू जानती है। उन्हें पता है। क्योंकि वह धन उन्हीं का है। उन्होंने ही पूर्व जन्म में अपने लिये ही एकत्रित करके रखा था। उन्हें जाकर पूछ लेना, वे बतला देगे। अब उन्हें याद हो आयी है।

बाजा सम्भराथल से अति शीघ्रता से वापिस अपने घर आया और अपने दोनों बेटों से पूछा-तो उन्होंने बतलाते हुए कहा-पिताजी। इस बात का तो हमें पता ही था। हमने आपको वैसे नहीं बतलाया था। आपने भी कभी हम से पूछा भी नहीं था। हमें तो जाम्भोजी की कृपा से साफ दिखाई दे रहा है। क्योंकि वह तो आपने भी कभी हमसे पूछा भी नहीं था। क्योंकि वह तो हमारा ही अपना धन था, जो सुरक्षित रखा था। आप जब चाहो, तभी लाकर उपस्थित कर देंगे।

ऐसी बेटों की वार्ता सुनकर बाजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहने लगा-हे बेटा! वह धन अभी निकाल कर ले आओ। मैं उस धन से बहुत बड़ा यज्ञ करूँगा। न्यात जमात को भोजन जिमाऊँगा, पहिया करूँगा, दस दस कोश से सभी गाँवो के लोग आयेंगे। उनको भोजन दूँगा। अपना पाप नष्ट होगा। हे बेटे! आपका नाम सभी जगह प्रकट होगा, लोग आपकी बड़ाई करेंगे, जब आपकी बड़ाई होगी,जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तब तक आपका नाम रहेगा। स्वर्ग में भी अप्सराएँ आपका गीत गायेगी। अपने सभी पाप धुल जायेंगे। हे बेटों! आप लोग तब तक तैयारी करो और मैं सम्भराथल जाता हूँ और जाम्भोजी से पूछ आता हूँ, उनको भी खबर-निमन्त्रण दे आता हूँ। ऐसा अपने बेटे न्यात- जमात को समझाकर के बाजोजी देवजी के पास सम्भराथल पर आया।

बाजोजी विनती करने लगा-हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मैंने धन प्राप्त कर लिया है। आप हमारे गाँव चलो। हमारे पूरे कुटुम्ब को बिश्नोई बनालो। जाम्भोजी ने कहा-हे बाजा! केवल बिश्नोई बनने से तो तुम्हारा कुल नहीं तर सकेगा। बिना समझ के तो सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जब तक उनतीस नियमो का पालन आपका कुटुम्ब नहीं करेगा, तो केवल बिश्नोई बनने से क्या लाभ होगा? केवल तुम्हारे कहने से भी तो क्या होता है? जब उन लोगो का भाव जगेगा, तभी वे यहीं चले आयेंगे।

बाजोजी हंस कर कहने लगा-हे देव! बात तो मैं आपसे दूसरी ही पूछने आया था। वह यह कि आपकी कृपा से मिले हुए धन द्वारा मैं पहिया करना चाहता हूँ, इतना बड़ा भारी उत्सव जो अब तक किसी ने किया भी नहीं है। आप आज्ञा प्रदान करो। तो मेरा कार्य सफल हो सके। पहला कार्य तो मेरा यही है। दूसरे कार्य नियम- धर्म को तो मैं बाद में करूँगा।

जाम्भोजी ने समझाते हुए कहा-इतना बड़ा उत्सव पहिया नहीं करना। थोड़ा-थोड़ा पुण्य दान करना ही श्रेष्ठ है। घर पर आये हुए सुभ्यागत की पूजा करो। हमारे ये संत-भक्त पूर्णतया सुपात्र हैं। इनकी सेवा, पूजा, भोजन आदि प्रदान करना ही सभी से बड़ा यज्ञोत्सव-पहिया है। इससे अधिक करोगे तो सुपात्र-कुपात्र का कोई निर्णय नहीं हो सकेगा। पुण्य होने की संभावना कम ही होगी।

बाजो तो तन-मन-धन के अभिमान में लिप्त था। वह जाम्भोजी की बात को कुछ भी नहीं समझ सका। कहने लगा- महाराज-आप ये छोटी-छोटी बातें बतला रहे हैं। एक, दो या तीन वह भी कभी-कभी सुपात्र आता है, इससे कितना धन खर्च कर सकूँग ? न तो इससे संसार में नाम ही होगा और न ही पाप ही कटेंगे,ये छोटे-छोटे कार्य मेरे से नहीं हो सकेंगे।

हे देव ! आप स्वयं घर चलो। हमें सभी को बिश्नोई बना लो, मेरे साथ मेरे कुटुम्ब के इक्यासी घर पलट कर बिश्नोई बन जायेंगे, आप कृपा करके पाहल दीजिये। बाजे की बात को स्वीकार कर के श्री देवजी ने बाजे को पाहल का कलशा दिया और कहा-जिस जिस को तुम यह पाहल दोगे, वही तुम्हारी जमात में मिल जायेगा।

बाजो ने जाम्भोजी की बात सुनी तो थी, किन्तु अनसुनी कर दी तथा अपने घर लौट आया। बाजा ने अपने कुटुम्बी लोगों को एकत्रित किया। उन्हें जाम्भोजी का पाहल पिलाया तथा जाम्भोजी की आज्ञा फरमाते हुए कहा- अब हम जाम्भोजी के चेले हो गये हैं। उनतीस नियमों का पालन करेगें। भवसागर से पार तिरने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। इसमें लापरवाही नहीं करनी है। जाम्भोजी की आज्ञानुसार अब मैं एक यज्ञ करूँगा। पहियो करूँगा। न्यात-जमात को भोजन जिमाऊँगा। आप लोग सभी मेरा सहयोग करेंगे।

बाजोजी के कथनानुसार घृत मिष्ठान आदि वस्तुएँ एकत्रित की गयी। पहिया चढा दिया गया। कई दिनों तक सभी आगन्तुओं को भोजन करवाया। अनेकानेक मिष्ठानों का भोजन प्रेम से सभी ने किया। यज्ञ सम्पूर्ण हुआ।जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर पहुँचे कि मैं जाम्भोजी से पूछ कर के आऊँ कि इस यज्ञ में पुण्य फल कितना मिला ? क्या हमारे सभी पाप समाप्त हो गये हैं ? क्योंकि वे तो अन्तर्यामी हैं। सभी कुछ जानते हैं। इसलिये बतला देगे।

बाजा जम्भेश्वर जी के सामने हाथ जोड़े हुए खड़ा था। जाम्भोजी ने कहा-कहो बाजा ! यज्ञ कैसा हुआ ? बाजा ने कहा महाराज ! ऊपर से देखने में तो बहुत ही अच्छा था।

सभी लोग वाह-वाह कहते हुए बड़ाई कर रहे हैं, किन्तु पुण्य-पाप की बात तो सूक्ष्म है। वह आप ही बतला सकते हो। हे देव ! आप ही बतलाओ कि कितना पुण्य हुआ ?

जाम्भोजी ने कहा-हे बाजा ! पुण्य की आशा छोड़ दो। पुण्य तो कुछ हुआ ही नहीं है। एक खेजड़ी का तइया हुआ है। उसका पाप तुम्हारे पल्ले में है। वह तुम्हें भोगना पड़ेगा। तुमने मेरी बात मानी नहीं। तुम्हारे सेवकों ने पहिया बनाने हेतु एक खेजड़ी वृक्ष को काटा था। उसका पहिया-चक्र बना कर के चढाया था। उस खेजड़ी वृक्ष को काटने से वह मर गयी थी। मरने के पश्चात् तीजा किया जाता है। वही हुआ है। उसे काटने का जो पाप है, वह तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। ऐसी वार्ता सुन कर बाजो उदास हो गया। इतना धन खर्च हुआ, किन्तु पुण्य कुछ भी नहीं हुआ।

कहने लगा- हे देव ! अब दुबारा फिर यज्ञ करूँ। आपकी आज्ञा हो तो सम्पूर्ण पापों का नाश कर डालूँ। ये तुच्छ पुण्य मेरे से नहीं होते। आप मुझे बार-बार क्यों कहते हैं। आप विधि बतलाइये। अबकी बार ऐसा यज्ञोत्सव करूँ जिससे पुण्य का ढेर हो जाये।

श्री देवजी ने कहा-हे बाजा ! तू जसरासर का चौधरी है। तरड़ तेरी गौत्र है। खेजड़ी वृक्ष काट कर के तूने पहिया बना कर चढाया और यहाँ आकर कहता है कि मैंने न्यात जमात को जिमाया है। अब तू मेरे पास आकर पूछता है कि पुण्य कितना हुआ ? मैंने तुम्हें कहा है कि खेजड़ी का तइया हुआ है। इससे तू क्रोधित हो रहा है।

बाजे ने फिर नहीं पूछा। मन में मरोड़ कर ली। जाम्भोजी से क्रोधित हो कर आँखें लाल करके वहाँ से चल पड़ा। मानो राठौड़ ही रूठ गया हो। बाजे ने हरि से मन को तोड़ लिया। अपना संपर्क समाप्त कर के वापिस अपने गाँव आ गया। आगे वर्षा हुई तो बाजे ने अपने खेत में हल चलाया। जांभोजी ने उनतीस नियमों में कहा था कि अमावस्या के दिन हल नहीं चलाना। किन्तु बाजे ने जानते हुए भी अमावस्या को हल चलाया। एक सौ बीघा में तिल बोये। अच्छी वर्षा हुई। इस वर्ष तो तिलों की फसल बहुत अधिक हुई। पाप किया। अमावस्या को हल चलाया। तिलों की पैदावार अधिक हुई तिलो में तेल भी अधिक ही निकला। बाजा तिल-तेल बेचकर बहुत सा धन प्राप्त करके श्री देवजी के पास सम्भराथल पर आया और कहने लगा-

हे देवजी ! आपने तो बतलाया था कि अमावस्या को हल न चलायें, किन्तु मैंने तो अमावस्या को ही हल चलाया था। तिल बहुत हुए हैं। मैं तो माला माल हो गया हूँ। आपने कहा था कि अमावस्या को हल चलाने में पाप लगता है, वह पाप मेरे कहाँ चिपका है ? मुझे दीख तो नहीं रहा है। या अमावस्या को हल चलाने से तिल नहीं होते तो मैं मानता कि पाप हुआ है,जिससे तिल नहीं हुए हैं। इसका कारण मुझे बतलाओ।

जाम्भोजी ने कहा-हे बाजा ! पाप-पुण्य की बात का तो तब पता चलेगा, जब यमदूत तुम्हें नरक में डालेंगे ऊपर से मार पड़ेगी। पाप-पुण्य का फल समय आने पर ही फलीभूत होता है। अब जल्दी ही क्या है ? फल दुख रूप होकर अतिशीघ्र ही सामने आ जायेगा। तिल पैदा होने की बात तो यह है कि खेत में बीज पड़ेगा वर्षा होगी जल वायु का ठीक से संगम होगा तो बीज उगेगा ही। बीज वपन समय पर करने से उगता है, यह तो प्रकृति का नियम है। अनैतिक कार्य करने से भी तो उसका फल मिलता ही है, ऐसा जानकर के पाप कर्म न करे, मर्यादा को न तोड़े।

बाजा कहने लगा- महाराज ! आपने मुझे खरी-खरी असहनीय बातें कही हैं। मैं आपको देखता हूँ तो मेरी आँखें जलती हैं। मैं आगे से किसी मोडे-साधु या संन्यासी के पास ही नहीं जाऊँगा। सामने मिल भी जायेगा, तो दूर से टल कर चला जाऊँगा। और यदि सामने मिल भी गया तो आँखें बन्द कर लूँगा।

जाम्भोजी ने कहा- हे बाजा ! तू देखेगा क्या ? तुम्हें दिखेगा ही नहीं। मुंडिये साधु-संतो के दर्शन तो दुर्लभ ही हैं। ऐसा सुनते ही बाजा अन्धा हो गया। आँखों के बिना तो जीना ही व्यर्थ है। इससे बाजे को चेता हुआ,हाथ जोड़ कर चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा-बिना आँखों के कार्य नहीं चलेगा।

हे प्रभु ! मेरी आँखें मुझे वापिस लौटा दीजिये। इन्हीं आँखों से मैं आपका दर्शन करूँगा। मेरी हृदय की आँखें भी खोल दीजिये, ताकि मैं आपकी बात पर श्रद्धा विश्वास करके जीवन को सफल कर सकूँ। मुझे आप अपना सेवक बना लीजिये। श्री देवजी ने बाजे के सिर पर हाथ रखा। बाजे के नयन पुनः खुल गये।

बाजो कहने लगा-हे देव ! अब आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये। मैं अबकी बार एक यज्ञ और करूँ। आप हमारे घर पर पधारो। आपके कथानुसार ही मैं करूँगा। देवजी ने कहा-यदि तू मेरा कहना करेगा, तो मैं तुम्हारे घर अवश्य ही चलूँगा। यदि तू किसी अन्य के कहने से या अपनी मन मर्जी से चलेगा तो मेरे को कभी मत ले जाना।

बाजा कहने लगा-हे गुरुदेव ! आपके सिवाय मेरा यहाँ कोई नहीं है, जिसको मैं प्रथम वरण करूँ। आपही अपनी संत मण्डली सहित मेरे घर पधारो। आप जैसे गुरु अन्य इस संसार में कोई नहीं हैं, जिसको हम महता दे। हे देव ! आप यज्ञ में पधारो। आपका मुख देखने से ही हमारी गति होगी।

बाजे की प्रार्थना पर श्री जाम्भेश्वरजी जसरासर बाजे के घर पधारे थे, साथ में संत मंडली भी थी। जसरासर के लोगों को सत्संगति की महिमा बतलाई। रात्रि में जागरण किया। प्रात: काल स्वयं सद्गुरु देव

हवन करने को विराजमान हुए। पाहल देकर बाजे की जमात को बिश्नोई पंथ में सम्मिलित किया।

बाजे ने पूछा–हे गुरु देव! इस यज्ञ में मैं पीछे वाली भूल तो नहीं दोहराऊँगा, किन्तु आगे मुझे क्या आदेश है? आपकी आज्ञा का लोप नहीं करूँगा। जाम्भोजी ने कहा– हे बाजा! इस यज्ञोत्सव में तू विशेष रूप से कुपात्र को नहीं आने देना, अन्यथा तुम्हारा यज्ञ फल समाप्त हो सकता है। बाजे ने पूछा–हे महाराज! सुपात्र–कुपात्र का निर्णय कैसे किया जावे? जाम्भोजी ने बतलाया–

प्रथम चार वर्ण प्रसिद्ध हैं इनमें चौथा वर्ण शूद्र कहलाता है किन्तु किसी छोटी जाति में जन्म लेने से कुपात्र नहीं हो जाता है। ऊँची जाति में जन्म लेने से वह सुपात्र भी नहीं हो जाता है। सुपात्र–कुपात्र का निर्णय तो कर्मों के अनुसार ही होता है। जो व्यक्ति चाहे उच्च कुल में भले ही जन्मा हो, किन्तु अमल तमाखू, भांग, माँस, मद्य आदि का सेवन करता है, वह कुपात्र ही है। जो व्यक्ति जीवों की हत्या करता है या करवाता है, वह भी कुपात्र ही है। चोरी निंदा आदि का व्यवहार करके किसी को धोखा देने वाला भी कुपात्र ही है। असंतोषी भी कुपात्र ही है। ऐसा मानना चाहिये।

इसके विपरीत जो व्यक्ति चाहे नीच कुल में ही जन्म क्यों न लिया हो, किन्तु इन दुर्व्यसनों से दूर रह कर जीव दया, वृक्षों की रक्षा, शीलवान, सत्य प्रिय एवं मधुर वक्ता, यज्ञ, पूजा, भजन आदि ईश्वरीय एवं धार्मिक कार्य करने वाला, सुपात्र ही है। इसीलिए हे बाजा! कुपात्र से बच कर के यज्ञ करना। ऐसा कहते हुए श्री देवजी अपने शिष्यों सहित सम्भराथल पर आ गये।

इस प्रकार से बाजा ने दूसरा यज्ञ भी श्री देवजी के बतलाये हुए नियमों के अनुसार ही किया। बाजा ने सोचा कि अबकी बार तो मैंने पुण्य का ढेर कर लिया है। मैं सम्भराथल पर जाकर देवजी से पूछ आता हूँ। ऐसा विचार कर के बाजा सम्भराथल गया और कहने लगा–

हे देवजी! आप तो अति शीघ्र ही लौट आये। मैं अपने यज्ञ की महिमा आपके सामने क्या कहूँ? जैसा आपने कहा, ठीक उसी प्रकार से मैंने नियमों का पालन किया है। अब मैं आपके पास पूछने के लिये आया हूँ कि इस मेरे दूसरे यज्ञ में कितना सा पुण्य हुआ है? यह बतलाने का कष्ट करें।

सद्गुरु ने कहा–हे बाजा सुनो! इस तुम्हारे यज्ञ से पुण्य तो हुआ था, किन्तु वह तो बाड़ से कूद कर भाग गया है। तुम्हारे पल्ले में कुछ भी नहीं रहा। बाजा ने पूछा– हे गुरु देव! बाड़ से कूदकर पुण्य कैसे भाग गया? यह बात मेरी समझ में नहीं आयी।

श्री देवजी ने समझाते हुए कहा–तुम्हारी न्यात, जमात, तुम्हारे बेटे, दामाद आदि तो सभी बावले हैं। जब भोजन बनकर तैयार हो गया था, एक कड़ाहे में हलवा बनाया था। अब तक तो भगवान् के भोग भी नहीं लगा था, न ही संत सुपात्रों ने ही भोजन किया था, न ही तुम्हारे बड़े–बूढे बच्चों आदि ने ही भोजन किया था।

सर्वप्रथम एक तुम्हारा ढाढी शिकारी आया था। उसने बाड़ के ऊपर से भोजन माँगा और तुम्हारे दामाद अखै ने पावड़ी भर कर उस डूम कुपात्र को भोजन दे दिया। उसने पल्ला मांडकर भोजन ग्रहण कर लिया। वह तुम्हारा भोजन जीमकर वन में गया और एक हरिण को लट्ठी से मार गिराया। पहले इस हरिण के पीछे–पीछे भागता आया था। वह हरिण तो विचारा भूखा–प्यासा, कमजोर हो गया था और वह डूम शिकारी ने तुम्हारा भोजन करके हिरण को मार लिया। अब इस यज्ञ से तो एक हरिण का तइया हुआ है। इसका पाप तुम्हारे को भोगना होगा। वह तो जमा ही रहेगा। तुमने मेरी बात मानी नहीं। इससे तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं हुआ है। यदि तुम्हें विश्वास नहीं है, तो घर जाकर पूछ ले। पूर्व खेजड़ी काटने की घटना भी पूछ लेना।

दाता सुपात्र को दान देकर पुण्य की आसा करता है, तो कुपात्र को देकर पाप की भी आसा करनी

चाहिये। सुपात्र तुम्हारा भोजन करके सत्कर्म करेगा तो इसका फल दान दाता को मिलेगा। कुपात्र दान दाता का भोजन करके कुकर्म करेगा तो उसका फल भी तो दान दाता को पाप रूप दु:ख क्यों नहीं मिलेगा? अवश्य ही मिलना चाहिये।

बाजा दौड़ कर घर गया और पहले तो अपने चाकरों से पूछा कि आप लोगों ने हरि खेजड़ी काटी थी क्या? नौकरों ने कहा-हम क्या करें? पहिया बनाने के लिये आपके ही खेत में खड़ी खेजड़ी वृक्ष को काटा था। यह बात तो जाम्भोजी की ठीक हुई। इसके पश्चात् बाजा अपने दामाद अखो के पास गया और कहा- बेटा! तुमने मेरे यज्ञ को विध्वंस कर दिया। मैंने तुम्हें शिक्षा दी थी कि यज्ञ में कुपात्र को नहीं देना। क्या तुमने कोई ऐसा कार्य किया था?

अखो कहने लगा-श्वसुरजी! इसमें आप मुझे दोष क्यों देते हो? आपके कुल परिवार का ढाढी था। वह बाड़ के बाहर से खड़ा हुआ हलवा भोजन माँग रहा था। उसको अंदर तो आने ही नहीं दिया। तुमने यही कहा था कि किसी को अंदर नहीं आने देना। मैंने तो बाहर खड़े हुए को एक पावड़ी हलवा दिया था। इसमें आप मेरा दोष बता रहे हैं। भरी सभा में आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। ऐसी ही बात थी तो यज्ञ ही क्यों किया? यदि किया तो मुझे बुलाया ही क्यों?

मैं तो अभी अपने घर वापिस चला जाता हूँ। फिर कभी इस घर में लौट कर नहीं आऊँगा। मैंने तो सोचा था कि यह ससुराल है। यह तो दुश्मनों का घर हो रहा है। बाजोजी ने अपने दामाद को मनाया। बड़ी मुश्किल से रोका और वापिस सम्भराथल आये और कहने लगे-

हे देव! आपने जो कहा वह पूर्ण सत्य है। अब मैं क्या करूँ? जो भी पुण्य का कार्य करता हूँ, वह उल्टा ही हो जाता है। फिर भी कुछ धन अब तक मेरे पास बचा है। उसका मैं पुण्य कार्य करूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो एक बार प्रयास और करके देखूँ।

जाम्भोजी ने कहा- छीदो बीज। धीरे-धीरे चलने से गाँव पहुँच जायेगा और यदि भागेगा तो कभी नहीं पहुँचेगा। बाजा कहने लगा-हे देव! यदि मुझे जलाना है, तो एक बार ही जला डालिये। बारबार मुझे थोड़ा-थोड़ा डाम्भ देकर न जलाओ। आप कृपा करो। अबकी बार एक विधि और बताओ जिससे पुण्य का ढेर हो जाये। जाम्भोजी ने कहा-तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं आ रहा है। सर्वप्रथम तो न्यात जमात को जिमाने से अहंकार आता है। उससे निवृत्त होना आवश्यक है।

शास्त्र महापुरुषों के प्रति श्रद्धा का अभाव होना भी यज्ञ के फल को नष्ट कर देता है। अपने अन्दर बैठे हुए अवगुणों को बाहर निकालना भी यज्ञकर्ता के लिये जरूरी है। हरा वृक्ष नहीं काटना। कुपात्र से बचना। लोभी, क्रोधी, ईर्ष्यालु से संगति नहीं करना इत्यादि नियमों का पालन करते हुए यज्ञ करेगा तो तुम्हें सफलता मिलेगी। अमल,तम्बाकू, भाँग,मद्य माँस,का सेवन करने वाला कुपात्र ही जानो तथा नीला राक्षसी वस्त्र पहनने वाला भी चाण्डाल कुपात्र ही जानो। यज्ञ में जरणा रखना। स्वंय की कीर्ति हेतु किया हुआ पुण्य कार्य फूलता फलता नहीं है। वह सीमित हो जाता है। यज्ञादिक कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से किया हुआ कर्ता को मुक्ति प्रदान करता है।

हे बाजा। अब तुम वापिस घर जाओ और शुभ कर्म करो। फल की आशा छोड़कर निष्काम कर्म करो। दान देना चाहिए, किन्तु देश काल सुपात्र का विचार करके देना चाहिये। वही सात्त्विक दान होगा। समुद्र में वर्षा का होना तो व्यर्थ ही है। कुपात्र में रखी हुई वस्तु भी दूषित हो जाती है। उसी प्रकार से कुपात्र को दिया हुआ दान भी दूषित हो कर विकार ही पैदा करेगा। संत सुपात्र की सेवा करो। वही तुम्हारा दिया हुआ अनन्त

गुणा फलित होगा।

हे बाजा! इस समय तुम गरीब कन्याओं का विवाह करो। जो गरीब बाप की बेटी है, वह बाप विवाह करने में असमर्थ है। तुम उन्हें अपनी बेटी मान कर विवाह करो। यही ठीक रहेगा। जाम्भोजी की आज्ञा शिरोधार्य करके बाजा वापिस अपने घर आया और अपने कुटुम्बियो को एकत्रित किया और जाम्भोजी की आज्ञा सुनाई।

अपने ही जाति भाइयो का घृत एकत्रित किया। अपने ही नये कड़ाह-कड़ाही बनवाये। पवित्रता से कार्य प्रारम्भ किया। न्यात-जमात, जानी-बराती सभी को प्रेम से भोजन जिमाया। जैसा जाम्भोजी ने कहा था, वैसा ही एक सौ कन्याओं का विवाह किया। सभी को अपनी सामर्थ्य अनुसार दहेज दिया। किसी से कुछ लिया नहीं। केवल दिया ही दिया। पूरा खर्च बाजे ने उठाया, क्योंकि पुण्य का ढेर जो करना था।

यज्ञ समाप्त कर के बाजो गर्व से जाम्भोजी के पास गया। पहले तो अपने यज्ञ की बड़ाई स्वंय ही अपने मुख से की। बाजे ने कहा- हे देव! आप तो स्वंय ही अन्तर्यामी हैं। मैं आपसे क्या बखान करूँ? किन्तु बिना कहे मुझ से रहा भी नहीं जाता है। मेरे घर पर एक सौ कन्याओं का विवाह हुआ है। एक बेटी का विवाह करना भी बड़ा कठिन कार्य है। आपकी कृपा से मैं पूर्ण सफल हुआ हूँ, कई हजारो लोगों ने मिष्ठान्न भोजन लगातार कई दिनो तक किया है। उनकी आत्मा प्रसन्न हुई होगी। मुझे कितना फल मिलेगा?

हे देव आपही बतलाइये। इस यज्ञ का क्या फल हुआ है? मैंने तो सारा ही धन लगा दिया है। अब मेरे पास कुछ भी नहीं हैं। मैंने सर्व मेध यज्ञ कर दिया है। यदि पुण्य हुआ है, तो कह दो अन्यथा पहले की तरह अब की बार भी ऐसा कह दो कि नहीं हुआ।

जाम्भोजी ने कहा- अवश्य ही बड़प्पन हुआ है, किन्तु पुण्य तो कुछ भी नहीं हुआ है। बाजा की आँखें फटी की फटी रह गयी। सद्गुरु ने दया की और बाजे को उठाया और कहा-पुण्य तुम्हारे घर में ही राख में दबा है। राख में दबे हुए आठ टके लेकर तुम यहाँ आ जाना। मैं तुम्हारा कार्य बनाऊँगा।

बाजे के बात समझ में आ गयी। मेरा पुण्य मेरे घर में राख में दबा हुआ है?

जाम्भोजी के कथनानुसार बाजो अपने घर गया और अपने बेटे की बहू से पूछा- हे बेटी! मैंने पुण्य के लिये कार्य किया था, किन्तु जाम्भोजी ने कहा है कि पुण्य कुछ हुआ नहीं है।

पुण्य राख में कैसे दबा हुआ है? तुम राख से बरतन साफ करती थी, तब तुमने किसी से कुछ लिया तो नहीं? क्या बात हुई? जो कुछ हुआ सो नि:शंकोच बतलाओ। तुम्हीं तो इस घर की लज्जा-मर्यादा हो। तुम्हारे लिये तो मैं पुण्य कार्य कर रहा था।

बहू ने कहा-हे श्वसुर जी! मैं तो बरतन साफ करने की सेवा कर रही थी। मैंने तो बरतन मंजाई का किसी से कुछ भी लेने की इच्छा नहीं की, किन्तु एक बराती जेब में हाथ डाल कर कुछ देने लगा। मैंने तो देखा तक नहीं। लेना तो दूर की बात है। किन्तु वह बराती राख में कुछ टके डाल कर चला गया। हमने तो लिया नहीं। वही राख में ही दबे पड़े होगे।

बाजोजी छलनी लेकर गये। वहाँ पर बरतन साफ करने की राख पड़ी थी। राख छान कर जाम्भोजी के कहने के अनुसार आठ टका लेकर सम्भराथल पर पहुँचे। जाकर देवजी के सामने रखे। जाम्भोजी ने बाजा को धन्यवाद दिया। अपना कमल हस्त बाजे के सिर पर रखा।

मलेर कोटले में गऊ हत्या बन्द करवाना

जम्भेश्वर जी ने बाजे को काली पोशाक पहनाई और आज्ञा देते हुए कहा- हे बाजा! आप मलेर कोटले जाओ। वहाँ पर बाग में एक खुदा की मस्जिद है। शेख सदू खान नित्यप्रति सैकड़ों गऊवों को मरवाता है। जिसके पाप का कोई पार नहीं है। शेख सदू नित्यप्रति वहाँ पर नमाज पढने आता है नमाज पढ कर गो हत्या करवाता है। जिस पाप से बाग सूख गया है। सूखा बाग देखकर शेखसदू चिन्ता में पड़ा हुआ है। अब समय आ गया है। आप अवश्य ही जाओ। वहाँ पर गो हत्या बन्द करवाओ।

हे बाजा! तुम यहाँ से जाओ। साँय समय में बाग में ही जाकर आसन लगाना। प्रात: काल वहाँ पर हवन करना। तुम्हारे बाग में प्रवेश करने से ही वह सूखा हुआ बाग हरा-भरा हो जायेगा। यही प्रमाण मानना। हवन करने के पश्चात् बावर्ची में जाना। ये आठों टके, जो तुम्हारे पास हैं ये देग में डाल देना। ये टके डालकर सिद्ध मन्त्र का उच्चारण करना। अग्नि देवता को मेरी आण देकर कहना कि तपे नहीं। ठण्डी हो जाये तथा करद जो कश्यप कुल में उत्पन्न हुआ है, उन्हें भी कश्यप कुल की आण देना और कहना कि तू कश्यप कुल में उत्पन्न हुआ है। इसलिये काटो मत। फिर बाग में जाकर आसन लगा लेना।

जब तुम्हारे पास शेख सदू आवे तो उसे समझाकर यहाँ पर मेरे पास ही ले आना। बाजोजी ने जाम्भोजी की आज्ञा शिरोधार्य कर वहाँ श्री देवजी को नत मस्तक होकर परमात्मा का स्मरण करते हुए रवाना हुए। थोड़े ही समय में मलेरकोटले (पंजाब) पहुँच गये। वहाँ जाकर जैसा जाम्भोजी ने कहा था, उसी अनुसार बाजोजी ने कार्य किया। बाजोजी ने देखा कि सुखा बाग हरा-भरा हो गया है। जो व्यक्ति मन, बुद्धि, इन्द्रियों का संयम कर के जो भी संकल्प करता है, वह पूर्ण होता है। बाजो का संकल्प भी पूरा हुआ और बाग में बैठे हुए हवन कर रहे थे।

एक काजी दौड़ा हुआ शेखसदू के पास गया और कहने लगा-हा अल्ला! अब क्या करे? हमारी रोजी रोटी बन्द हो गयी। शेखसदू ने पूछा कि क्या हुआ? हुआ क्या? न तो अग्नि तप रही है, जल ठण्डा पड़ा हुआ है। हम तो मारे गये। नहीं करद काट रहा है। न जाने क्या हुआ? शेखसदू ने पूछा आगे क्या हुआ? कोई फकीर अवलियापीर तो तुम्हारे यहाँ नहीं आया था। यह अग्नि बाँधना, करद का न चलना तो इन सिरफिरे फकीरों की करामात होती है।

काजी ने कहा-हाँ। एक काली बरदी साँई के वेश में आया तो था। देगों के पास ही खड़ा था। कुछ देख रहा था। फिर वहाँ से करद के पास भी गया था। वहाँ खड़ा खड़ा होठ हिला रहा था। न जाने उसने क्या पढा होगा? हो सकता है उसी ने ही कुछ किया होगा। शेखसदू ने पूछा-अब वह कहाँ गया होगा? किसी ने बतलाया कि वह तो बाग में बैठा हुआ हैं। शेखसदू ने बाग की तरफ देखा तो आगे बैठे हुए हैं। शेखसदू जाकर चरणों में गिर पड़ा।

बाजोजी सकुचाते हुए कहने लगे हे शेख ! तू मेरे चरणो में क्यों गिर रहा है। यह बाग मेरे से हरा-भरा नहीं हुआ है। इसको हरा-भरा करने वाला तो बागड़ देश में सम्भराथल पर श्री जाम्भोजी विराजमान हैं। उन्हीं के चरणों में गिरो। वहीं तुम्हारा भला होगा।

इस प्रकार से बाजोजी की करामात देख कर के खान ने आदेश दिया कि अति शीघ्र चलो। बागड़ देश में जाम्भोजी के दर्शन करके जीवन लाभ लेगे। खान की आज्ञा मान करके अनेक घोड़े,हाथी सवारी हेतु तैयार

किये। शेख सदू बाजेजी के साथ सम्भराथल पर श्री देवजी के पास आये।

जाम्भोजी ने भी सुपात्र अधिकारी जान कर आदर ही किया। जीव कर्मो के अनुसार भटक जाता है। किन्तु जब भी सचेत हो जाये तभी ही भला हो जाये। दुराचारी से भी दुराचारी, पापी से भी पापी यदि भगवान् की शरण में आ जाये, तो भी भगवान् कहते हैं कि मैं उसे साधु ही बना देता हूँ। साधु समान ही समझता हूँ।

शेख सदू ने पूछा हे देवजी! स्वर्ग जाने का मार्ग बताओ ?नरक की तो बात सुनने से ही डर लगता है। ऐसा शब्द सुनाइये जिससे दोजक से छूट सकें। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-112

ओ३म् जाके पंथ का भांजणा, गुरु का नींदणा, स्वामी का दुस्मणां।
कुफर ते काफरा, कुमली कुपातूं, कुचिला कुधातूं।
हड़हड़ा भड़हड़ा, दाणबै दूतबा, दाणबे भूतबा।
राकसा बोकसा, जाका-जन्म नहीं पर कर्म चंडालूं।
और कूं जिभै कर आप कूं पोखणा, जिंहि की रुवा ले दीजैसी।
दौरैं घुंप अंधारौं, तान बे तानबा, छान बे छानबा।
तोड़ बे तोड़बा, कूक बे पुकारबा, जाकी कोई न करबा सारूं।

हे खान! ईश्वर ने सनातन पन्थ चलाया है। प्रकृति द्वारा जो कुछ भी निर्मित है, वह वैसा ही रहे। उसको तोड़ना, मारना ,विकल्प पैदा करना ही पन्थ को तोड़ना है। गुरु स्वामी ईश्वर द्वारा बताये हुये मार्ग को छोड़ कर मर्यादा का उल्लंघन करना, गुरुकी निंदा अपमान करना है। स्वामी ही तो सृष्टि के कर्ता-धर्ता हैं। उन्हीं से दुश्मनी करना है। ऐसे लोग अनीति पर चलने वाले काफिर हैं। धर्म विनाशक हैं। अशुद्ध, कुपात्र, कुचील, तन-मन-धन से उनका जीवन बर्बाद है।

यह लोक बर्बाद हुआ, तो समझो पर लोक भी गया। ऐसे लोग दानव हैं। भूत प्रेत सदृश हैं, राकस है किन्तु बिल्कुल ही बोकस खाली है। उनका जन्म तो भले ही उच्च कुल में हुआ है किन्तु कर्म से चाण्डाल है। जो औरो को मार कर अपना पालण-पोषण करते हैं। उनकी जीव आत्मा दौरे (नरक) में डाली जाएगी। घुप अन्धकार होगा। वहाँ पर तानेगे तोड़ेगे,छानेगे,वहाँ पर भयंकर कष्ट में रोऐगा, पुकारेगा,किन्तु कोई सहायता नहीं करेगा।

हे शेख! यदि तुम ऐसा जीवन व्यतीत कर रहे हो, तो देखलो इसका फल भी ऐसा ही भयानक होगा। इसलिये यदि भिस्त चाहते हो तो जीव हत्या करनी छोड़ दो। जो जीवों को मारेगा तो जीव भी अनेकानेक रूप में आकर बदला तो अवश्य ही लेंगे।

''जीवो जीवस्य भोजनम्'' जीव जीव का भोजन बनता है। यही तो चौरासी लाख जीव योनियो में भटकने की परंपरा है। जो कभी समाप्त होने वाली नहीं है।

इस प्रकार से जाम्भोजी ने बाजे को मलेर कोटला भेज कर गो हत्या बन्द करवायी। यज्ञ का फल प्रदान किया। शेख सदो सतपन्थ का अनुगामी बना। अपने साथ सत्रह जीव मुक्ति को प्राप्त करवाये। सदा सदा के लिये जीव हत्या बन्द करवा दी। ऐसे श्री देव जम्भेश्वर को यदि सदा ही स्मरण करें, तो हमारा हृदय पवित्र होगा। ज्ञान ध्यान में अग्रसर हो सकेंगे।

बाजोजी तरड़ ने पूछा-जांभोजी ! धरती ता उचौ कित एक उचौं सूरेज थै, केतो एक उचों चांद छ: केता एक उंचा तारा थै,जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-89

ओ३म् उरधक चन्दा निरधक सूरूं, नवलख तारा नेड़ा न दूरू।
नव लख चन्दा नव लख सूरूं, नव लख धंधूं कारूं।
तांह परै तेपण होता,तिंहका करूं विचारूं।

हे बाजा ! चन्द्रमा धरती के समीप ही है। सूर्य धरती से अधिक दूर है। नव लाख तारे कुछ तो नजदीक हैं, तथा कुछ बहुत ही दूरी पर हैं। सूर्य और चन्द्रमा के बीचो-बीच कुछ तारे हैं तथा कुछ शनि आदि तारे तो सूर्य से भी बहुत दूरी पर हैं। तो कुछ तारे चन्द्रमा से भी बहुत ही नीचे है। सूर्य चन्द्रमा ताराओं के बीच की दूरी भी नव लाख योजन है। यह ब्रह्माण्ड अनन्त है। इससे ग्रह नक्षत्र भी अनन्त हैं। इन सभी से ऊपर तो पुरुष परमात्मा विराजमान है। उस परमात्मा का घेरा तो सभी से बड़ा है। उसी में ही सभी समा जाते हैं।

हे बाजा ! मैं तो उस पुरुष परमात्मा की बात करता हूँ। उसी की प्राप्ति हो जायेगी तो समझो सभी कुछ जान लिया। और कुछ भी जानने के लिये अवशेष नहीं रहा। इस प्रकार से थोथा बाजा बजने वाले बाजे को सुदृढ किया और दान की महत्ता बतलायी। युक्ति पूर्वक जीवन जीते हुए मुक्ति का मार्ग बतलाया। बाजोजी मुक्ति के अधिकारी बने,और सच्चे भक्त बन कर अपना उद्धार किया।

भूत सेवी साणिंया को रोटू गाँव से उठाना

स्याणियो पेदड़ो कुम्भ पेदड़े को बेटो। गाँव रोटू रह। जीह नै भूत लागो। उपंग की बात कहण लागो। एक विश्नोई की तरवार चोरी थी। मैंहदसर क रजपूत छान्य क कातर लाधौ। देसा परदेसा की बात कह। वीसनोइयां ने कह थे सीनान करो जको आधो सीनान थ।पहलू पाणी पीयो तो भीतरलौ सीनान हुव। पछै उपरलौ सीनान सुध्य बले। वीसन कौ नाव मतल्यौ नहचै चैहमै चैहमै म चउ जाप करो। वीरम भादू डकराय जांभजी क हजूरी आयौ। साथै ल्यायो। जाम्भोजी श्री वायक कहै -

शब्द-90

ओ३म् चोइस चेड़ा कालिंग केड़ा अधिक कलांवत आयसै।
वै फेर आसन मुकर होय बैसैंला, नुगरा थान रचायसै।
जाणत भूला महापापी, बहू दुनियां भोलायसैं।
दिल का कूड़ा कुड़ियारा, उपंग बात चलायसै।
गुरु गहणा जो लैवे नाहीं, दश बंध घर बोसायसै।
आप थापी महापापी, दग्धी परलै जायसैं
सतगुरु के बैड़ें न चढ़ैं, गुरु स्वामी ने भायसैं।

मंत्र बेलु ऋध सिध करसें, दे दे कार चलायसैं।
काठ का घोड़ा निरजीवता, सरजीव करसै, तानैं दाल चरायसैं।
अधर आसन मांड बैसेंला, मूवा मड़ा हसांय सैं।
जां जां पवन आसण, पाणी आसण, चंद आसण,
सूर आसण, गुरु आसन संभराथले,
कहै सतगुरु भूल मत जाइयो,पड़ोला अभै दोजखे।

गाँव रोटू नागौर में बिश्नोई बसते हैं। स्याणियों पेदड़ो जो कुम्भा का बेटा था। वही रोटू में रहता था। वन में साँढ (ऊँटनी) चराता था। एक दिन अशौच शरीर से वन में घूम रहा था। उसको कोई भूत-प्रेत चिपक गया था। उपंग की बात यानि अजब गजब की बात-मानव द्वारा अदृष्ट बात कहने लगा।

जैसे-एक बिश्नोई की तरवार खो गयी। स्याणिये ने तुरंत बतला दी कि मैहदसर में एक राजपूत की छान (झोंपड़े) में छिपा कर रखी गयी है। किसी की गाय, किसी की भैंस आदि खो जाती, तो सांणियां तुरंत बतला देता। इस प्रकार से स्यांणिये ने पूरे पन्द्रह परचे दिये। देश प्रदेश की सभी देखी अनदेखी बात बता देता था।

बिशनोइयों ने पूछा-कि भाई तुम कौन हो ? स्याणिये ने बतलाया कि मैं तो जांभोजी का छोटा भाई हूँ। जाम्भोजी ने सम्भराथल पर अवतार लिया है। मैं यहाँ पर हूँ। जो परचा आपको चाहिए वह आप मेरे यही पर ले लेवें, इस प्रकार से रोटू गाँव के पास ही एक थली पर बैठा हुआ भूत प्रेत चरित्र करने लगा। लोग उन्हें स्याणा ज्ञानी कहने लगे, क्योंकि लोगों की दृष्टि में तो वह ज्ञान की ही बात करता था। विशेष रूप से जाम्भोजी के चेले बिश्नोइयों से कहने लगा-

आप लोग जो स्नान करते हो, वह तो आधा स्नान है। प्रथम तो जल पीओ। उससे भीतर का स्नान होगा। जब भीतर का स्नान हो जाये, तो फिर बाहर शरीर का स्नान करो। तभी पूर्ण स्नान होगा। सांणियां कहने लगा- आप लोग विष्णु का जप करते हों, यह भी ठीक नहीं है। यदि जप करना है तो चहमैं-चहमैं इस मंत्र का जप करो। इससे तुम्हारा दु:ख कटेगा। इस प्रकार का पाखण्ड देखकर वीरम भादू जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर पहुँचा।

हे देव! आप ही जैसा हमारी थली पर भी प्रकट हुआ है। जिस प्रकार से आप अलौकिक लीला करते हैं उसी प्रकार से वह भी करता है। यदि कोई चोर चोरी करके चला जाता है तो सांणियां उसे तुरंत बतला देता है। वह तो आप का छोटा भाई भी अपने को बतला रहा है। आपके ऐसे कितने भाई हैं? केवल परचे ही नहीं देता, वह तो आपकी तरह ही धर्म भी बतलाता है। एक नया पंथ भी बतलाता है। वह आदेश देता है कि पहले जल पीओ, पीछे स्नान करो और चहमैं-चहमैं भजन करो।

जम्भेश्वरजी ने कहा-यह तो चेड़ा है। अधोगति में पड़ा हुआ भूत-प्रेत योनि को प्राप्त जीव है। यदि वह तुम्हारे यहाँ रहेगा, तो विष्णु पूजा धर्म नियमों में विघ्न पैदा करेगा। उसे वहाँ से भगाना ही होगा। जाम्भोजी ने रोटू गाँव के लिये प्रस्थान किया और गाँव के निकट साथरी में खेजड़ी वृक्ष के नीचे आसन लगाया। गाँव के लोग देव दर्शनार्थ आते और पूछते-

कहो देवजी, आप कितने भाई हैं? एक तो हमारी थली पर अवतरित हुआ है, आप की तरह ही लीला कर रहा है। किन्तु हमें पता नहीं है कि आपका पंथ सत्य है या आपके छोटे भाई का? वैसे तो आप बड़े सिद्ध है। आपका भाई सैणा छोटा सिद्ध है। वह तो सदा ही हमारी थली पर विराजमान है। ग्रामीण भक्तों के

सरल सहज वचन सुन कर देवजी ने कहा–अच्छी बात है। यदि छोटा भाई सिद्ध है तो किन्तु आप लोग जाओ और छोटे भाई को यहीं पर बुला लाओ।

जाम्भोजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर के चार जने सांणियां को बुलाने के लिये चले। कुछ लोग खेल देखने के लिए उनके साथ ही साथ चल पड़े। थली पर जाकर देखा, सांणियां वहाँ पर बैठा ध्यान लगा रहा था। उन लोगों ने जाकर बतलाया और कहा–चलो ज्ञानीजी, आपके बड़े भाई आये हैं तुम्हें वहीं पर बुलाया है। ऐसी बात सुन कर सांणियां क्रोधित हो कर कहने लगा–मुझे बुलाने वाला अनाड़ी कौन है?

बिश्नोइयों ने कहा–रे सांणियां! ऐसा क्यों बोलता है? जम्भगुरु जी तो त्रिलोकी के नाथ हैं। तू उन्हें अनाड़ी कहता है? सांणियां ने कहा– जिसको गर्ज होती है वह अपने आप चला आता है। मुझे तो गर्ज नहीं है। यदि जाम्भोजी को गर्ज है, तो वे यहीं पर चले आवें। मैं तो अपने आसन पर बैठा हूँ।

जो आसन पर बैठा होता है, वही बड़ा होता है। दूसरे बाहर से आने वाले छोटे होते हैं। यदि उनको मिलने की इच्छा है, तो यहाँ पर चले आवें अन्यथा वहाँ से चले जायें, मैं नहीं जा सकता। क्योंकि यह मर्यादा के विरुद्ध है।

सांणियां द्वारा इस प्रकार का जवाब सुन कर रोटू गाँव के लोग वापिस आ गये और कहने लगे–हे महाराज! वह तो आ नहीं रहा है और अपने को ही बड़ा सिद्ध आसन धारी बता रहा है। आप स्वयं ही वहाँ पर चलो। जाम्भोजी ने कहा–आप लोग दुबारा जाओ और उसका हाथ पकड़ कर थली से नीचे घसीट लेना, जब तक वहाँ थली पर बैठा हुआ है, तभी तक ये बातें कर रहा है। वहाँ से घसीट लेंगे, तो तुम्हारे साथ चल पड़ेगा। तुम्हारा सामना नहीं करेगा।

वे लोग वापिस गये और जाकर कहा–अरे सांणियां तुम्हें जाम्भोजी ने बुलाया है। तुम्हीं से कुछ बातें करनी हैं, तब सांणियां झुंझला कर विरम के मुख पर थाप चलाई उसी समय ही विरम ने सांणिये का हाथ पकड़ कर थली से नीचे घसीटा और जाम्भोजी के पास लेकर आ गये। वह चुप–चाप बिना विरोध किये ही चला आया।

जाम्भोजी ने कहा–दूसरा पंथ क्यों चलाता है? अपने को देवता क्यों कहता है? बिना स्नान किये जल क्यों पिलाता है? चहमैं चहमैं भजन क्यों बतलाता है? चहमैं चहमैं भजन तो भूत प्रेत करते हैं।

सांणियां कहने लगा–मैं तो अपना जो सिद्धांत है वही बतलाता हूँ। मुझे झूठा ओलाणा क्यों देते हो? जो मैं हूँ, वही मैं कर रहा हूँ। इसमें आप मुझे दोषी नहीं कह सकते। जमाती लोगों ने पूछा–हे देव! हमें आश्चर्य हो रहा है कि यह खोयी हुई वस्तु कैसे बता देता है? यदि यह अभी आपके सामने से लोप हो जाये तो क्या होगा। तब जाम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाते हुए कहा–

यह असली ताकतवर चेड़ा (भूत प्रेत) है। ये चेड़े चौबीस प्रकार के होते हैं। कलंकी वाले कीड़े जोंक की तरह दूसरों के चिपट जाते है। ये भूत प्रेत अधोगति प्राप्त साधारण जीव ही तो होते हैं, किन्तु इनका वायु प्रधान शरीर होने से दूर–दूर तक वायु के साथ सम्मिलित हो कर जान लेते है तथा किसी अन्य मानवादि शरीर में प्रवेश कर जाते है। फिर उनका खून जोंक की तरह चूसते हैं।

कुछ कला बाज लोग भी होते हैं, जो अपनी कला द्वारा लोगों को मोहित करके अपनी पाखण्ड क्रिया में सफल हो जाते हैं। कुछ लोग आसन लगा कर समाधि ध्यान का ढोंग कर के भी लोगों को ठगने में सफल हो जाते हैं। कुछ नुगरा गुरु विहीन मन मुखी लोग पेट भराई के लिये कहीं कोई मूर्ति की स्थापना कर लेते हैं और उसे ही देव कहते हैं, लोगों को भेंट–चढावा चढाने के लिए प्रेरित करते हैं।

जानते हुए भी कि यह मूर्ति कोई देवता नहीं है। फिर दूसरों को भुलावे में डालेंगे। ऐसे लोग तो महा पापी हैं। अनजान में पाप हो जाता है, तो पापी है। किन्तु जानते हुए पाप करता है, भूल करता है। वह महा पापी है। उपर से दिखावे के लिए तो सत्य का आचरण करते हुए मालूम पड़ते हैं, किन्तु उनका दिल झूठ कपट वासना से भरा हुआ है। ऐसे लोग उपंग बात ऊटपटांग बातें चलायेंगे। गुरु के कथनानुसार तो जीवन यापन करेंगे नहीं किन्तु मनमुखी चलेंगे। अपनी कमाई का दसवाँ भाग दान देना चाहिये। वह न कर के घर में ही अर्थ लगा लोंगे। स्वयं ही मूर्ति की स्थापना करते हैं और स्वयं उसको नमस्कार करते हैं। ऐसे महा पापी दग्ध नरकों में गिरेंगे।

सतगुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग पर तो चलेंगे नहीं, गुरु स्वामी की बात अच्छी नहीं लगेगी। ऐसे अज्ञानी जन मंत्र द्वारा, मिट्टी द्वारा, रिद्धि-सिद्धि दिखलायेंगे। कभी मंत्र द्वारा जल की कार दिला कर लोगों को भ्रमित करेंगे स्वकीय सिद्धि का प्रदर्शन करेंगे। लकड़ी का घोड़ा बना कर उस निर्जीव को सजीव करके उसे हो सकता है कि दाल चरा दें। कभी कोई धरती के ऊपर अधर आकाश में आसन लगा कर बैठ जायेंगे। मुर्दे को हंसा सकेंगे, फिर भी हे लोगो! सावधान रहना। जब तक सूर्य का आसन, चन्द्र का आसन, पवन का आसन, जल का आसन, मर्यादा स्थिर है। ये सभी अपनी अपनी मर्यादा पर टिके हुए हैं तब तक जाम्भोजी कहते हैं कि मेरा आसन सम्भराथल पर स्थिर है। सतगुरु कहते हैं कि हे लोगो! भूल नहीं जाना। अन्यथा तो दोरे (नरक) में गिरोगे। ऐ चौबीस प्रकार के चेड़ा आपको भुलावे में डाल सकते हैं। सावधान रहें।

रणधीर कह असा आयस्यै तो आंह ने किसो दोस। कीस आकीद रहेस्यै। जांभोजी कह अता, थोक जाण्यस्यै नहीं। धरती मां वसत सूझयस्य नहीं, पांणी ता घृत होयसी नहीं। परमन की लहस्यै नहीं,उरध र बाणी जाण्यस्यै नहीं, सुरग पहैली कहस्यै नहीं, केवल न्यांन की बात कहिस्यै नहीं, अति बात सतगुरु जांण, मेरा नहीं डीगस्यै, सतयुग में छाया दाग थो, मेर की छाया पड़े अति सतयुग क भूत नै सूझ। दवापुर में अगन्य दाग थो, वासदे की झल दीस अति दवापुर के भूत ने सुझ, कल्यजुग मां भौमी दाग थ मरद को बौल्यौ, गाय को रांभ्यो सुणित अतो कल्यजुग के वितर ने सुझ, अब वीतर नीसर गयों। ननेउ के कोहर क खेजड़ को डालौ भान्यौ, राव हमीर नै चिलत दिखाल्यौ।

जाम्भोजी के हजूरी शिष्य रणधीर ने पूछा- हे देव! आपने जो शब्द कहा- मूवां मड़ा हसायसैं, ''काठ का घोड़ा निरजीव सरजीव करस्यै'' इत्यादि ऐसे कलाकार आयेंगे, विचित्र करतब करेंगे तो विचारे इस साणियैं का क्या दोष है? यही उनसे पीछे क्यों रहे?

जाम्भोजी ने समझाते हुए कहा-ये भूत प्रेत कलाकार अपनी औकात के अनुसार ही जान पायेंगे। जो ईश्वरीय कर्म है, वह ये नहीं कर पायेंगे। इन्हें धरती में गड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देगी। ये जल का घृत नहीं बना सकते। दूसरे के मन की बात नहीं बता सकेंगे और न ही जान सकेंगे। स्वर्ग पहेली मार्ग नहीं कह सकेंगे, ये उपर्युक्त बातें सतगुरु ही जानते हैं, ये भूत प्रेत नहीं, यही इनकी पहचान है। ब्रह्म वाणी नहीं जानते।

सतगुरु ने कहा-जो मेरा है, भक्त ज्ञानी है, भगवान् का प्रेमी है, वह तो अपनी मर्यादा को छोड़ेगा नहीं। दूसरे लोग ही इनके चक्कर में फंस जायेंगे। सतयुग में छाया अर्थात् वन में ही मृत शरीर को छोड़ने की प्रक्रिया थी। तब तो भूत प्रेतों को मेरु पर्वत की छाया जहाँ तक पड़ती थी उतना ही भूत को दिखता था। त्रेता युग में जल का दाग था यानि मृत शरीर को जल में बहाने का विधान था, तब तो एक समुद्र से दूसरे समुद्र के बीच में जितना फैसला है उतना भूत को दिखता था। द्वापर में अग्नि का दाग था यानि मृत शरीर को अग्नि में जलाया जाता था। तब तो अग्नि की ज्योति प्रकाश जहाँ तक दिखाई देता है उतना भूत को सूझता था। अब

कलयुग में धरती को दाग है। धरती में मुर्दे को गाड़ा जाता है। इस समय मनुष्य की आवाज या गाय के रंभाने की आवाज जहाँ तक सुनाई देती है, वहीं तक भूतों को दिखता है अर्थात् जहाँ तक धरती है वहीं तक दिखता है।

जाम्भोजी ने पूछा रे सांणियां मुलतान के दरवाजे पर क्या है ? साणियां ने कहा-हे देवजी ! दो घोड़े दौड़ रहे हैं। जिनका शरीर अति बलिष्ठ है। दुबारा जब लंका की बात पूछी तब कहने लगा-कि लंका के दरवाजे पर एक मालण बैठी हुई है। उसकी छबड़ी में चार नींबू हैं। देवजी ने दो नींबू उठा लिये और फिर पूछा-अब कितने हैं ? सांणियां कहने लगा-अब दो ही दिख रहे हैं। देवजी ने फिर उन दोनों नींबुओं को मंगवा लिये तथा फिर पूछा अब कितने हैं ? अब तो छबड़ी खाली है। किन्तु वे नींबू कहाँ गये, सांणियां कहने लगा-ये तो मुझे पता नहीं है। देवजी ने अपने पास से दिखलाये और कहा-ये नींबू वो ही हैं या और ? सांणियां बोला हैं तो वही।

जाम्भोजी ने कहा- हे सांणियां ! तूं लंका मुलतान की बात तो बता देता है। किन्तु तुम्हारे पास अति निकट की बात नहीं बता सकता। उसी समय ही उस सांणिये पेंदड़े के अंदर से वह प्रेत निकल गया। फिर उससे पूछा कि अब तुम्हें कितना दिखता है ? सांणिये ने हाथ जोड़े- महाराज ! अब तो जितना इन लोगों को दिखता है, उतना ही मुझे दिखता है।जो अंदर बैठा हुआ देखता था, वही बोलता था।वह निकल के चला गया।

जाम्भोजी ने बतलाया-अब वह भूत प्रेत ननेउ गाँव के कुंवे पर पहुँच गया। एक खेजड़ी के डाले पर बैठा है और उसने पूरी ताकत लगा कर खेजड़े की डाली तोड़ डाली है। अब वहाँ से भी चला गया है और फलोदी के राव हमीर को चरित्र दिखलायेगा।

वील्होजी ने पूछा-हे गुरु देव ! वह बिना शरीर की आत्मा हवा रूप में अति शीघ्र गमन कर जाता है, यह तो सत्य है। किन्तु उस प्रेत ने फलोदी के राव हमीर को आगे क्या चरित्र दिखलाया ? इन भूत-प्रेतों की कथा द्वारा भी जाम्भोजी महाराज का दिव्य जीवन चरित्र सुनने को मिलता है। नाथोजी कहने लगे-

जांभोजी ने हंकारो कियो, रणधीर कहे देवजी ! क्यौं रजपूत रजपूताणी ऊठ चडया, राव हमीर के दरबार गया फलोदी, रजपूताणी रावल गंज मां सौंपी, आकाश ने कूकड़ी बाही, तागी तागी उंचो चढयौं, हाथ ग बटका होय पड़या, रजपूताणी सती हुई, रजपूत पूठो आयौं, रजपूताणी रावल गंज मांही यों बुलाय लीवी, राव हमीर के मनमां इचरज हुवौं, म्हां सांम्हौ ओठी चाडयो थे। औठी आयसी हंकारो कियो जदि ननेऊ के खेड़े को डालो भानी लुक गयौं, ननेऊ को ओठी आयसी, अंतरे दोय ओठियां आय हकीकत कही, लोग जमाती के परचौं आयो, जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-91

ओ३म् छंदे मंदे बालक बुद्धै, कूड़े कपटे ऋद्ध न सिद्ध।
मेरे गुरु जो दीन्ही शिक्षा, सर्व आलिंगण फेरी दीक्षा।
जाण अजाण बहीया जब जब, सर्व अलिंगण मेटे तब तब।
ममता हस्ती बंध्या काल, काल पर काले प l jत डाल।
ध्यान न डोले मन न टलै, अहनिश ब्रह्म ज्ञान उच्चरे।
काया पत नगरी मन पत राजा, पंच आतमा परिवारूं।
है कोई आछै मही मंडल शूरा, मन राय सूं झूझ रचायले।

अथगा थगाय ले अबसा बसायले, अनबे माघ पाल ले।
सत सत भाषत गुरुरायों, जरामरण भो भागू।

नाथोजी ने वील्हो जी के प्रति इस प्रकार से बतलाते हुए कहा– हे वील्हा! जब मैं श्री देवजी के श्री मुख की ज्योति चारों तरफ देखता था, उस समय मैं अकेला ही नहीं था। पास में अनेक संत भक्त लोग बैठे हुए थे सद्गुरु देव ने हंकारा किया–लंबी श्वास ली किन्तु कुछ भी बोले नहीं। उस समय वहाँ उपस्थित संत शिरोमणि रणधीर जी ने श्री देवजी से पूछा–

आज आप किस पर प्रसन्न हुए हैं, आपकी अलौकिक क्रियाएँ देख कर कुछ न कुछ आश्चर्य जनक घटना का आभास होता है। श्री देवजी ने कहा– मैं देख रहा हूँ कि सांणियां के अंदर बैठा हुआ प्रेत सांणियां पेदड़े को तो छोड़ गया, किन्तु वह ननेऊ गाँव के कुएँ पर पहुँच गया है। वहाँ जाकर उसने खेजड़ी के डाल को तोड़ा है। वहाँ से दो आदमी ऊँट पर सवार होकर यहाँ सम्भराथल पर ही आ रहे हैं तथा अति शीघ्र ही पहुँचने वाले हैं। उनकी यह समस्या है कि खेजड़ी की डाल स्वत: ही कैसे टूट गयी?

ननेऊ से वह प्रेत फलोदी के एक राजपूत में प्रवेश करके पहुँच गया है। यह राजपूत भी सांणिये की भांति ही भूत–प्रेत सेवी है। अनेकों कला बाजी दिखाता है। वह राजपूत तथा उसकी धर्मपत्नी दोनों फलौदी के राव हमीर के दरबार में पहुँच चुके हैं। रणधीरजी ने पूछा–हे देव! आप हमें इस बात को विस्तार से बतलाये कि वहाँ फलोदी के राज दरबार में पहुँच कर उसने क्या किया? यदि कथन करने योग्य वार्ता है, तो अवश्य ही कहिये?

जाम्भोजी ने आगे की कथा विस्तार से कहते हुए कहा–कोट फलोदी में राव हमीर के दरबार में एक राजपूत अपनी स्त्री के साथ ऊँट पर सवार होकर पहुँचे। जब राव हमीर का दरबार लगा हुआ था तभी उस राजपूत ने प्रवेश करके सभी को नमन किया और कहने लगा–यदि आप लोग देखना चाहो तो मैं आपको दिव्य खेल दिखाने आया हूँ। आप लोग देखें कि मैं सूर्य की किरणों द्वारा सूर्य भगवान् तक पहुँच जाऊँगा। आप लोग तथा रावल हमीर आदि सभी सत्यवादी है। मेरी अमानत को संभाल कर के रखो तथा एक तो मेरी धर्मपत्नी है और मेरा ऊँट भी है, मैं वापिस आकर ले लूँगा। राव हमीर ने स्वीकृति प्रदान कर दी। अवश्य ही खेल दिखायें हम सभी देखेंगे।

राव हमीर ने उसकी स्त्री को राजमहल में रानियों के पास भेज दी, और उसका ऊँट सेवकों को सौंप दिया। उस क्षत्रिय ने अपनी जेब से कच्चे धागे की कूकड़ी निकाली और सभी के देखते ही देखते आकाश में फेंक दी और वह उस कूकड़ी के सहारे–सहारे सभी के देखते ही देखते आकाश में चला गया। कुछ दूर तक तो लोगों ने जाते हुए देखा, किन्तु वह तो इतना ऊँचा चला गया लोगों की आँखों से ओझल हो गया।

क्षत्रिय सूर्य लोक में गया है। वापिस आ जायेगा। सभा वहीं पर बैठी प्रतीक्षा कर रही थी कि आकाश से उसके शरीर के कटे हुए अंग गिरने लगे। सर्व प्रथम एक हाथ जो आभूषणों से युक्त था धरती पर आकर गिर पड़ा। देखते ही देखते दूसरा हाथ एवं दोनों पाँव तथा धड़ भी आकर सभी के सामने गिर पड़े। सभी ने देखा कि यह शरीर उस क्षत्रिय का है, जो सूर्य लोक में गया था। कहीं युद्ध हुआ होगा और वह तो मारा जा चुका है।

उस क्षत्रिय की धर्मपत्नी से कहा कि तुम्हारा पति तो वीर गति को प्राप्त हो गया है। ऐसी बात सुनकर उस सती ने शरीर के अंग एकत्रित कर के पति के वियोग में विलाप करने लगी। राव हमीर ने

समझाया, किन्तु वह तो अपने पति के साथ ही सती होने के लिए तैयार हो गयी तथा बिना कुछ विलंब किये अपने पति के साथ ही सती भी हो गयी। सभी लोग जिंदा एवं मुर्दे को साथ ही जला कर के वापिस लौट आये। तीसरे दिन का तैइया भी कर डाला। बात समाप्त हो गयी।

दस दिन के पश्चात् एक दिन राव हमीर राजदरबार में बैठे थे कि उस क्षत्रिय ने आकर मुजरा-प्रणाम किया और कहने लगा-मैं वापिस आ गया हूँ। मेरी स्त्री और ऊँट दे दो। मुझे कहीं अन्यत्र जाना है। हमीर तथा अन्य सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। कहने लगे-हमने तो तुम्हारे कटे हुए शरीर को अग्नि में समर्पित कर दिया है। तुम्हारे शरीर के साथ ही तुम्हारी स्त्री भी जल चुकी है। दस दिन व्यतीत हो गये हैं। जले हुए भी क्या वापिस लौटाए जा सकते है ? क्षत्रिय कहने लगा-

मेरी अमानत आप देना नहीं चाहते हैं। पराई स्त्री को जबरदस्ती से छीन रहे हैं। मैंने तो सोचा था कि राजा प्रजा की रक्षा करता है, किन्तु यह राजा तो चोर है। राजा कब का भला होता है ? सदा ही चोर लुटेरे होते हैं। या तो तुम मेरी स्त्री को वापिस दे दो, जो तुमने महलों में छिपा कर रखी है। अन्यथा मैं स्वयं बुला लेता हूँ तुम्हारी बेइज्जती होगी।

हमीर ने कहा-मैं कहाँ से दे दूँ, महलों में नहीं है। उसकी तो एक मुट्ठी भर राख हो गयी है। अच्छी बात है। यदि तुम नहीं देना चाहते, तो मैं ही बुला लेता हूँ। ऐसा कहते हुए आवाज लगायी। वह स्त्री अपने पति की आवाज सुन कर महलों से दौड़ती हुई चली आयी। राव हमीर ने यह आश्चर्य देखा और अन्य सहयोगियों ने भी देखा।राव हमीर के कुछ भी समझ में नहीं आया। यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ? किंकर्तव्यविमूढ हमीर ने दो आदमियों को सम्भराथल पर भेजा और आदेश दिया कि जाम्भोजी से पूछा कर आओ और हमें बतलाओं कि यह राज क्या था ?

हे वील्हा ! हम लोग देवजी के समीप थे, उसी समय हमीर के भेजे हुए दो ऊँट सवार तथा ननेऊ से भेजे हुए भी दोनों साथ ही सम्भराथल पहुँचे। वहाँ पर उपस्थित सभी के सामने ही देवजी ने यह शब्द सुनाया-

रणधीरजी ने पूछा- हे महाराज ! यह क्या आश्चर्य था ? क्या हकीकत थी ? जाम्भोजी ने बतलाया कि यह तो भूत-चेड़ों की ही करामात थी। न तो कोई आकाश मार्ग में गया और न ही कोई मरा, न ही जला। यह तो केवल देखने मात्र की बात थी। चेड़ों की ही करामात थी।

हे रणधीर ! भूत-प्रेतों की सेवा करना मंद कार्य है। भूत प्रेतों का सेवक मरने पर भूत-प्रेत ही बनता है। जिस की जो पूजा करेगा, वह वही होगा। बाहर कुछ अन्य, भीतर कुछ और दिखावामात्र करना छंद है। जो अभी बालक बुद्धि के लोग हैं, वे ही इन दिखावे के कार्य में भाग लेते हैं और भ्रमित होते हैं। यहाँ केवल झूठ कपट है। न तो कोई सिद्धि है और न ही कोई रिद्धि है। हमारे जैसे गुरुवों ने शिक्षा देकर दीक्षित किया है। सभी जगह धर्म मर्यादा का प्रचार किया है। उसी तरफ इन जंजालों को छोड़ कर ध्यान दो। जब भी जान कर या अनजान में कार्य किया है, धर्म कर्म किया है, तभी-तभी उन्हें सचेत किया है। उनके पापों को, अज्ञानता को मिटाया है।

मैं और मेरा यह माया है। ममता रूपी हस्ति काल के अधीन है। ज्यों-ज्यों समय आगे बढता जाता है, त्यों-त्यों अधिकता से बंधन का प्रसार होता है। किन्तु होना तो यही चाहिये था कि किसी भी प्रकार से

ध्यान न डोले, मन चंचल न होवे, रात दिवस ब्रह्म में ही लीन रह कर ब्रह्मज्ञान का उच्चारण करे।

काया रूपी यह नगरी है। मन ही इस काया का राजा है। अन्य पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय आदि इन्हीं सम्पूर्ण परिवार का आत्मा ही स्वामी। इस मही मंडल में ऐसा कोई शूर वीर होगा जो इस चंचल मन से युद्ध करले, यह कभी थकने वाला नहीं है। इसे थकाय ले। यह कभी वशीभूत होने वाला नहीं है इसे वशीभूत एकाग्र करले। यह सदा ही मनमुखी चलने वाला है, इसे सच्चे पथ का पथिक बना ले। जाम्भेश्वरजी कहते है कि मैं यह सत्य कहता हूँ कि गुरु के वचनों को स्वीकार कर ले। तो सदा सदा के लिये जन्म-मरण का भय निवृत्त हो जायेगा।

एक वैदिक ब्राह्मण को शब्दोपदेश

एक वेदियों कह- जाम्भाजी वेद विना सिध नहीं, जाम्भोजी श्री वायक कहै-

एक समय सम्भराथल पर श्री देवजी विराजमान थे। उनके पास एक वैदिक पंडित आया, उसने कहा- हे महाराज! आप चाहे कुछ भी करो किन्तु वेद पढे बिना सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। वेदों के ज्ञाता ही सफल होते है। श्री देवजी ने उनके प्रति यह शब्द सुनाया-

शब्द-92

ओ३म् काया कोट पवन कुटवाली, कुकर्म कलफ बणायो।
माया जाल भरम का संकल, बहु जग रहीया छायों।
पढ़ वेद कुराण कुमाया जालों, दंत कथा जुग छायों।
सिध साधक को एक मतो, जिन जीवत मुक्त दृढ़ायो।
जुगां जुगां को जोगी आयो, सतगुरु सिद्ध बतायो।
सहज स्नानी केवल ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, सुकृत अहल्यो न जाई।
क्यूं क्यूं भणंता क्यूं क्यूं सुणंता, समझ बिना कुछ सिद्धि न पाई।

यह काया ही कोट (किला, महल) है। इसमें चलने वाला प्राण वायु ही इसके दरवाजे पर खड़ा होने वाला पहरेदार है। कुकर्म रूपी किवाड़ बनाये हुये हैं। भ्रम, माया जाल रूपी जंजीर लगा रखी है। सम्पूर्ण जगत में यही किवाड़ जड़ रखा है। किसी एक दो की बात नहीं है। जब तक यह किवाड़ खुलेगा नहीं, तब तक भ्रम-माया जाल से कैसे बाहर निकलेगा? तुम्हारे वेद इस कुकर्म किवाड़ को नहीं तोड़ सकते।

आप वेद पढें कुराण पढें, किन्तु माया जाल में अधिक ही फंसते चले गये। अनेकों प्रकार के विधि विधान। यह करो, यह न करो। एक दूसरे के विरोधी वाक्यों के जाल में फंस जाने का खतरा अधिक है। वेद शास्त्र तो लिखित हैं, किन्तु कुछ दन्त कथाएँ जो एक दूसरों को कहते सुनते आ रहे हैं, सम्पूर्ण जगत की यही रीति है। कुछ कथाएँ तो सत्य हैं, तो कुछ झूठी मनगढन्त कथाएँ भी प्रचलित है। कौन सी बात विश्वास योग्य है और कौन सी नहीं, यह निर्णय करना सद्गुरु के बिना सम्भव नहीं है।

एक तो गन्तव्य स्थान पर पहुँच चुका है, प्राप्त कर चुका है, वह तो सिद्ध है और दूसरा अभी साधना कर रहा है। पहुँचने के लिए प्रयत्न शील है, वह साधक है। दोनों का लक्ष्य एक ही है। उन दोनों ने ही मुक्ति प्राप्ति का लक्ष्य दृढ कर रखा है।

हे वैदिक ! चाहे तुम्हारे वेद पढ कर परमात्मा तक पहुँचे या अन्य साधन द्वारा पहुँचना, तो आखिर एक ही जगह पर है। किस साधन को मन्द कहें या किसे तेज कहें, यह तो अधिकारी भेद से निर्णय होगा,जो जिस मार्ग पर चलने योग्य होगा, उसे लिये वही मार्ग श्रेष्ठ है। इसलिये आप केवल वेद की ही बात कह कर के अन्य साधनों को नकार नहीं सकते।

श्री देवजी कहते हैं कि मैं तो युगों युगों का योगी हूँ। मुझे न तो किसी गुरु की आवश्यकता है और न ही वेद पढने की, वेदों में जो कहा है, वह मैं जानता हूँ, यह मैं अभी-अभी नहीं सीखा हूँ, मैं तो युगों युगों का योगी हूँ, ये बातें तो मैंने पिछले युगो में ही जान ली थी। मुझे तो तुम्हारे जैसे पढे-लिखे लोगों ने ही सद्गुरु एवं सिद्ध की उपाधि प्रदान की है।

मैं तो सहज में ही ज्ञान सरोवर में स्नान करने वाला स्नानी हूँ। मैं तो कैवल्य ज्ञानी हूँ। ब्रह्मज्ञानी हूँ। मनुष्य का किया हुआ सुकर्म साधन-भजन ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रयत्न व्यर्थ में नहीं जाता है।

हे वैदिक ! तू वेद मन्त्रों का उच्चारण क्यों करता है ? और क्यों ही वेद मन्त्रो को सुनता है ? बिना समझ के तो कोई कार्य सिद्ध ही नहीं होता है। समझ ही बड़ी बात है। वह समझ ही बड़ी है। वह समझ पढे लिखे को हो जाये, यह कोई आवश्यक नहीं है। और अनपढ को न आवे यह भी कोई जरूरी नहीं है। ज्ञान की प्राप्ति किसी को भी हो सकती है। मुख्य उद्देश्य समझ ही है। किन्तु तुम्हें समझ ही नहीं आयी, वेदों के अनुसार जीवन यापन नहीं किया। वेद मन्त्र तो केवल तुम्हारे दूसरो के सुनाने के लिये ही हैं। स्वंय ने इनका सदुपयोग नहीं किया है। इस प्रकार से वैदिक पुरोहित के प्रति शब्द सुनाया।

कुंवर मालदेव के प्रति शब्द सुनाया

नाथोजी कहने लगे-हे शिष्य ! शब्द की महिमा अनन्त है। शब्द ही ब्रह्म है। जो शब्द को ग्रहण कर लेता है,वह ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार से शब्द की महिमा श्रवण करने हेतु एक समय जोधपुर नरेश राव माल देव ने जम्भेश्वरजी के पास लोहावट के जंगल में आकर भेंट की थी। वो कथा मैं तुझे सुनाता हूँ-

मूले की मनिसा मन की मन माहे हुई,चालि जोधपुर राव गांगै के दरबार आयौ,दरबार माहै बात चाली,बीजौ कोई तमासो हुवै,तिको आगे कु माहवै,जिका नु दीसै,पाछलां लू वीसै नहीं,जांभोजी सगला नुं सनमुख दीसै,कंवर मालदेव कहै- आ पारख करस्यां,मालदे साथ भेलो करि चडयौ,लोहावट की साथरी सतगुरु नै आय परसयौ,मालदे कहै-जाम्भाजी थांहरी आदि उत्पति कहो,जाम्भाजी श्री वायक कहै-

शब्द-93

ओ३म् आद शब्द अनाहद बांणी, चवदै भवण रह्या छल पाणी।

जिहिं पाणी से इंड उपना, उपना ब्रह्मा इन्द्र मुरारी।

मूलाराम पुरोहित एक समय जोधपुर राव गांगा के दरबार में कुछ कार्यवश पहुँचा। मूलै के मन में कुछ मानसिक पीड़ा भी थी,तथा कुछ जाम्भोजी के बारे में कथन भी करना था। मूले ने दरबार में जाकर बात

चलाई।

मूलै ने कहा–इस समय कोई आश्चर्य जनक घटना हो रही है, तो कोई बतलावे। मूला कहने लगा–मैंने सम्भराथल पर एक आश्श्चर्य देखा है। वैसे तो सामान्य रूप से तो हम किसी के यदि सामने बैठे हुए हों तभी मुख दीखता है, किन्तु जाम्भोजी के हम पीछे भी बैठते हैं तो भी उनका मुख दीखता है। उनका मुख चहुंदिस परसै चारो तरफ दिखाई देता है। ऐसा साधारण आदमी का नहीं।

यह आश्चर्य जनक घटना मूला कहने लगा कि मैं अभी देख कर आया हूँ। गांगे राव का राजकुमार कहने लगा– यदि ऐसी बात है तो अवश्य ही परीक्षा लेंगे। राजकुमार मालदेव अपने साथ में मूला पुरोहित एवं अन्य लोगों को साथ लेकर जोधपुर से रवाना हुए। लोहावट की साथरी पर सद्गुरु की तथा मालदेव की भेंट हुई। वहीं पर मालदेव ने श्री देव के चरण स्पर्श किये। मालदेव ने पूछा– हे देवजी! आप अपनी उत्पत्ति बतलाओ ? श्री देव ने शब्द सुनाते हुए कहा–

ओ३म यह आदि शब्द है। जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं थी, तब भी ओ३म शब्द रूप में था। ओंकार की ध्वनि ही थी। जिसकी कोई हद नहीं है। अपार वाणी है। किसी सीमा में बाँधी नहीं जा सकती। ओ३म शब्द से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। सर्व प्रथम धंधुकार में आकाश, वायु, तेज, जल तथा धरती की उत्पत्ति होती है। जल का स्थूल रूप ही यह धरती है। जब जल ही भरा था। तब उस जल से अण्डाकार उत्पन्न हुआ। उसी अण्डे में सर्व प्रथम विष्णु रूप उत्पन्न हुए जो पालन पोषण कर्ता, साकार रूप से अवस्थित हुए। उसी विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई। उसमें ब्रह्मा रूप सृष्टि के उत्पत्ति कर्ता उत्पन्न हुए। तीसरे रूप में वही ओम शब्द शिव रूप में संहार कर्ता उत्पन्न हुए। ओम तो निराकार शब्द रूप में एक ही है, किन्तु जब वह क्रियाशील हुआ तो विष्णु, ब्रह्मा शिव रूप में तीन हो गये। इन्ही तीनों से ही सृष्टि का विस्तार हुआ, देव, दानव, मानव आदि सृष्टि का कार्य बढता ही गया।

मालदै कहै– पहला उतपुत कुण कुण हुवा जाम्भोजी श्री वायक कहे–

शब्द–94

ओ३म् सहस्त्र नाम सांई भल शिंभु, म्हें उपना आदि मुरारी।
जद म्हें रह्यो निरा लंभ होकर, उतपति धंधुकारी।
ना मेरे मायन ना मेरे बापन, मैं अपनी काया आप सवारी।
जुग छतीसों शून्यहि बरत्या, सतजुग माही सिरजी सारी।
ब्रह्मा इन्द्र सकल जग थरप्या, दीन्ही करामात केती वारी।
चन्द सूर दोय साक्षी थरप्या, पवन पवनेश्वर पवन अधारी।
तद म्हे रूप कीयो मैनावतीयो, सत्यब्रत को ज्ञान उचारी।
तद म्हे रूप रच्यो काम ठीयो, तेतीसों की कोड़ हंकारी।
जब मैं रूप धर्यो बाराही, पृथिवी दाढ़ चढ़ाई सारी।
नरसिंघ रूप धर हिरण्यकश्यप मार्यो, प्रहलादो रहियो शरण हमारी।
बावन होय बलिराज चितायो, तीन पैंड कीवी धर सारी।
परशुराम होय क्षत्रियपन साध्यो, गर्भ न छूटी नारी।

श्रीराम शिर मुकुट बंधायो, सीता के अहंकारी।
कन्हड़ होयकर बंसी बजाई, गऊ चराई।
धरती छेदी काली नाथ्यो, असुर मार किया क्षय कारी।
बुद्ध रूप गयासुर मार्यो, काफर मार किया बेगारी।
पंथ चलायो राह दिखायो, नौवर विजय हुई हमारी।
शेष जंभराय आप अपरंपर, अवल दिन से कहिये।
जांभा गोरख गुरु अपारा,
काजी मुल्ला पढ़िया पंडित, निंदा करे गिवारा।
दोजख छोड़ भिस्त जे चाहो, तो कहिया करो हमारा।
इन्द्रपुरी बैकुण्ठे बासौ, तो पावो मोक्ष हि द्वारा।।

मालदेव ने पूछा- हे देव! सर्व प्रथम उत्पन्न कौन कौन हुए? अर्थात् विष्णु ने कौन-कौन से अवतार कब-कब लिए? तथा उन्होंने कौन-कौन से कार्य कब-कब किये? श्री देवजी ने विष्णु अवतारों का प्रयोजन इस शब्द द्वारा बतलाते हुए कहा-

वैसे तो विष्णु व्यापक सत्ता का नाम है, जो प्रत्येक जीवों के अन्दर समायी हुई है। स्वयं विष्णु ही जीव रूप से शरीरो में समाहित होकर पालन-पोषण करते हैं। फिर भी विष्णु के सहस्र नाम तथा कार्य हैं, जो गिने नहीं जा सकते। वह हजारों नाम वाला सांई विष्णु ही स्वयंभू है।

श्री गुरु देव जी कहते हैं कि मैं ही वही विष्णु हूँ, जो सर्वप्रथम मुरारी के रूप में प्रकट हुआ था। मुर नाम के दैत्य का संहार कर्ता ही मुरारी है । जब मैं निरारंभ में था अर्थात् सृष्टि रचने में क्रियाशील नहीं था, उस समय तो केवल धंधुकार ही था। धन्धुकार में ही उत्पति प्रारम्भ हुई। मैं स्वयं सृष्टि कर्ता हूँ। किन्तु मेरे माता-पिता, बहन-भाई आदि कुछ भी नहीं है। मैंने तो अपनी काया विष्णु ब्रह्मा शिव में अपने आप ही बनाई है। मैं सम्पूर्ण सृष्टि को बना सकता हूँ, तो स्वयं को भी तो अनेक रूपों में बना सकता हूँ।

छत्तीस युग तो शून्य ही में व्यतीत हो गये। सृष्टि के प्रलय के बाद छत्तीस युग तो शून्य ही बना रहा। वहाँ कुछ भी नहीं था। सर्वप्रथम सतयुग का प्रारम्भ हुआ। तब मैंने सम्पूर्ण सृष्टि की सर्जना की। सृष्टि का रचयिता कोई होना चाहिये। इसीलिए ब्रह्मा रूप से मैं स्वयं ही बना। सृष्टि का पालण पोषण कर्ता भी चाहिये, इसीलिए मैं विष्णु के रूप में प्रगट हुआ और केवल रचयिता तथा पालन पोषण कर्ता से भी सृष्टि का संतुलन बिगड़ता है, इसीलिए संहार कर्ता भी चाहिये। इसके लिए शिव रूप से मैं ही संहार कर्ता हुआ। तीनों देवता को योग्यता के अनुसार सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण के अनुसार करामात भी प्रदान की थी।

सूर्य चन्द्रमा दो साक्षी भी बनाये। ये दोनों सम्पूर्ण संसार को अपनी प्रकाशमयी आँखों से देखते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकाशित करते हैं। यही जगत की दो आँखें है, ईश्वर की भी यही आँखें हैं। इन्हीं आँखों से ईश्वर भी देखता है। इसीलिए उनसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। दिन में तो सूर्य रहता ही है, किन्तु कभी रात्रि को चन्द्रमा नहीं रहता है, तब तीसरी आँख अमावस्या रहती है। उसके द्वारा भी देखा जा सकता है।

तीसरी उत्पत्ति पवन देवता की है, जो सभी के श्वांस के रूप में सेवनीय है। श्वांस ही तो जीवन का आधार है। श्वांस रूप होकर वही विष्णु ही सभी को जीवन प्रदान करते हैं। इसीलिए शरीर को जीवित रखने

के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता पवन की ही होती है। यह पवन ही ईश्वर है। जीवन का आधार है।

गुरु महाराज कहते हैं कि मैंने अनेकों अवतार पूर्व में लिये हैं। जब मैंने मछली का अवतार धारण किया था उस समय सतयुग था। सृष्टि प्रलयावस्था को प्राप्त हो गयी थी। सृष्टि के बीजों की रक्षा करने के लिए मछली का रूप धारण करके, राज ऋषि सत्यव्रत को उपदेश दिया था।

दूसरा अवतार कछुए का धारण किया था। जब देव दानवों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था, तब मथानी मेरु पर्वत की बनाई थी। वह समुद्र में डूबने लगी थी। तब कछुए का रूप धारण करके नीचे पीठ लगायी थी। देव-दानवों का कार्य पूर्ण किया था। देवताओं को अमृत पान करवाया था। देव-दानवों का गर्व भंजन किया था। क्योंकि उनको पता चल गया कि बिना विष्णु के हम अकेले सर्वथा निष्फल (असहाय) हैं। तीसरा अवतार वाराह का धारण किया था। जब हिरणाक्ष ने अपनी करामात से पृथ्वी को जल में डूबा दी थी। उस समय जल में डूबी हुई धरती का उद्धार करने हेतु वाराह रूप धारण करना ही युक्त था। ऐसा ही विचित्र रूप बना कर के धरती को बाहर निकाला और हिरणाक्ष को मारा था। वह भी तो मैं ही था।

चौथी बार नृसिंह रूप धारण करने वाला भी मैं ही था। उस समय हिरण्यकशियपु को मारने वाला नृसिंह रूप में विष्णु मैं ही था। हिरण्यकशियपु के बेटे प्रह्लाद ने शरण ग्रहण की थी। शरणागत की रक्षा करने वाला विष्णु अवतारी हूँ। पाँचवाँ अवतार बावन रूप धारण किया था। राजा बलि अनधिकार चेष्टा कर रहा था। इस लिये राजा बलि को सचेत किया था। स्वर्ग का अधिपति बनने हेतु यज्ञ पूर्ण करने जा रहा था। किन्तु समय से पूर्व कभी किसी को कुछ मिलता नहीं है। भगवान् ने बावन रूप धारण करके बलि को सचेत किया। इसीलिए तीन पग धरती की माँग की थी। याचक बन कर के विष्णु ने तीन पद भूमि में तीनों लोक मांग कर के बलि को इन्द्र पद प्राप्ति की चेष्टा से निवृत्त किया।

छठा अवतार परशुराम जी के रूप में धारण किया। दुष्ट क्षत्रियों का नाश किया। हालांकि जन्म तो ब्राह्मण कुल में हुआ था, किन्तु क्षत्रियों को दण्डित करने के लिए क्षत्रिय रूप धारण किया और एक भी क्षत्रिय नहीं छोड़ा। वह परशुराम भी वही विष्णु के रूप में मैं ही था। सातवाँ अवतार राम रूप में विष्णु अवतरित हुए। रावण आदि दुष्ट राक्षसों का संहार किया था। स्वयं राम राजा बने, राम राज्य की स्थापना की थी। एक राजा को कैसा होना चाहिये, यह मर्यादा कायम की थी। पती-पत्नी, भाई-बन्धु, माता-पिता, सेवक आदि के पवित्र सम्बन्धों को उज्ज्वल किया।

आठवाँ अवतार विष्णु कृष्ण के रूप में आये थे। कृष्ण रूप में अनेकानेक चरित्र किये थे। सर्व प्रथम ग्वाल बालों के साथ गऊवें चराई। वृन्दावन में बंसी बजाई। धरती के ऊपर बढे हुए पापियों का विनाश किया। सम्पूर्ण धरती को छान मारा कहीं कोई पापी रह न जाये। कालिये नाग को वश में किया नाथ डाली। यमुनाजी के कुण्ड से कालिये को बाहर निकाला। सभी के लिये जल शुद्ध पवित्र किया। पीने योग्य बनाया। अनेकानेक असुरों को मार कर के क्षय कारी बनाया। वही कन्हैया भी श्री देवजी कहते है मैं ही था।

नवाँ अवतार बुद्ध रूप में आये। गया जी पर निवास किया। वहाँ प्रचलित पाखण्ड को देखा और उसे खण्डन करने का बिड़ा उठाया। हिन्दु धर्म में प्रचलित पाखण्ड का संहार किया। बौद्ध पंथ चलाया। शुद्ध मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया अंगुलिमाल नाम के दैत्य को संत बनाया। जम्भेश्वरजी कहते हैं कि इस प्रकार से नौ बार विजय हमारी हुई है। इन नौ अवतार से जो कार्य हो सका। वह तो समयानुसार पूर्ण किया। किन्तु अब भी बहुत सारे कार्य करने शेष हैं। वह कार्य जम्भराय रूप में आकर पूर्ण करूँगा।

वैसे तो मैं अपार शक्ति सम्पन्न हूँ। मुझे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी थोड़ी सी शक्ति

लेकर आता हूँ और अपना कर्तव्य कर्म करके चला जाता हूँ। यही मेरा विभिन्न अवतारों का प्रयोजन है। मैं तो प्रथम दिन से ही अपरंपार शक्ति सम्पन्न हूँ। इस समय यहाँ भारत भूमि में जांभा एवं गोरख दोनों ही अपार गुरु रूप में विद्यमान है। किन्तु पढे हुए पंडित, काजी, मुल्ला आदि अपनी अहंता के कारण समझ नहीं पा रहे है, ये मूर्ख लोग निंदा करते हैं। दोजख (नरक) को छोड़कर यदि स्वर्ग को चाहते हैं तो हमारा कहना स्वीकार करो। यदि इस प्रकार से गुरु पथ पर चलोगे तो आपको स्वर्ग-मोक्ष, जीवन युक्ति मुक्ति की प्राप्ति अवश्य ही होगी।

मालदेव कहै- अलख संभू कहो सो कुण उपायो, पहला क्यौह बीजो ही हुवो। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-105

ओ३म् आप अलेख उपन्ना शिंभू, निरह निरंजन धंधूकांरू।
आपै आप हुआ अपरम्पर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं।
नै तद चन्दा नै तद सुरुं, पवण न पाणी धरती आकाश न थीयों।
ना तद मास न वर्ष न घड़ी न पहरूं, धूप न छाया ताव न सीयों।
न त्रिलोक न तारा मंडल, मेघ न माला वर्षा थीयों।
न तद जोग नक्षत्र तिथि न बारसीयों, ना तद चवदश पूनो मावसीयों।
नै तद समद न सागर न गिरि न पर्वr, ना धौलगिरी मेर थीयों।
ना तद हाट न वाट न कोट न कसबा, बिणज न बाखर लाभ थीयों।
यह छत धार बड़े सुलतानो, रावण राणा ये दिवाणा।
हिन्दू मुसलमानूं, दोय पंथ नहीं जूवा जूवा।
ना तद काम न करषण जोग न दर्शण, तीर्थ वासी ये मसवासी।
ना तद होता जपिया तपिया, न खच्चर हींवर बाज थीयों।
ना तद शूर न वीर न खड़ग न क्षत्री, रण संग्राम न जूझ न थीयों।
ना तद सिंह न स्यावज मिरग पंखेरूं, हंस न मोरा लेल सूवो।
रंग न रसना कापड़ चोपड़, गोहूँ चावल भोग नथीयों।
माय न बाप न बहण न भाई, ना तद होता पूत धीयों।
सास न शब्दूं जीव न पिंडू, ना तद होता पुरुष त्रियों।
पाप न पुण्य न सती कुसती, ना तद होती मया न दया।
आपै आप ऊपनां शिंभू, निरह निरंजन धन्धू कारूं।
आपो आप हुआ अपरंपर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं।

मालदेव ने पूछा-हे देव! अलख स्वयंभू ने तो सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की थी, किन्तु अलख शिंभू को रचने वाला कोई और ही होगा? क्योंकि बिना उत्पत्ति कर्त्ता के तो कुछ उपजता ही नहीं है, यह नियम है।

अलख निरंजन को उत्पन्न करने वाला कोई अन्य ही होगा ?

श्री जाम्भोजी ने शब्द सुनाते हुए कहा- हे मालदेव! आप स्वयं ही शिम्भू अलख निरंजन उत्पन्न हुए हैं। उन्हें उत्पन्न करने वाला अन्य कोई नहीं है। यदि उन्हें भी उत्पन्न करने वाला कोई और स्वीकार करें तो फिर आगे परंपरा चल पड़ेगी। उसका कोई और होगा तो, उसका भी कोई और ही होगा। इस परंपरा का कोई अंत नहीं है। यह सिद्धान्त अनवस्था दोष से ग्रसित है। इसीलिए एक ही ब्रह्म अंतिम है। उसी से ही सृष्टि की रचना होती है। उसे बनाने वाला कोई अन्य नहीं है। क्योंकि वह ब्रह्म अजन्मा है। माया से रहित है। वह अन्य सभी का तो आधार है, किन्तु उसका आधार कोई नहीं है। हे राजेन्द्र ! ब्रह्म तो स्वयं आपो ही आप है। स्वयं ही सृष्टि के रूप में परिवर्तन होते हैं। उस समय, जब सृष्टि की रचना नहीं हुई थी तब भी एक निरंजन शिम्भू था। या उस समय धंधुकार ही था। इस समय सृष्टि के सौन्दर्य को आप देख रहे हैं। यह उस समय कुछ भी नहीं था। जैसे- चन्द्रमा, सूर्य, पवन, पाणी, धरती, आकाश, ये पाँचों तत्त्व, उस समय नहीं थे। तथा महीना, वर्ष, घड़ी, प्रहर, धूप-छाया, सर्दी-गर्मी, तीनों लोक, तारा मंडल, मेघमाला आदि नहीं थे।

योग-नक्षत्र, तिथि, द्वादशी,चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, समुद्र, पर्वत, धौलागिर, मेरु आदि भी नहीं थे। हाट-मार्ग, कोट, कस्बा, व्यापार, हानि-लाभ आदि नहीं थे। इस समय के सम्राट, छत्रपति, मंडलेश्वर, रावण, राणा, दीवान, हिन्दू मुसलमान ये दोनों पंथ अलग अलग नहीं थे। कार्य कृषाण, योग दर्शन तीर्थ तथा तीर्थवासी, मसवासी, श्मशान भूमि में निवास करने वाले,मठ वासी, मठ में निवास करने वाले भी नहीं थे। जप करने वाले जपिया, तपस्या करने वाले तपिया, ये भी नही थे।

उस समय एक निरंजन शिंभू ही था। तब खच्चर-घोडे बाज आदि भी नहीं थे। उस समय शूरवीर, खड,क्षत्रिय भी नही थे और न ही रण संग्राम या युद्ध होता था। उस समय रंग-रसना, कापड़, चोपड़, घी तेल, गेंहूँ चावल, आदि भोज्य पदार्थ नहीं थे। माता-पिता, बहन-भाई, पुत्र-पुत्री आदि भी नहीं थे। उस समय श्वास प्रश्वास, जीव शरीर, स्त्री-पुरुष, पाप-पुण्य, सती-कुसती, माया-दया भी नहीं थी।

हे राजेन्द्र ! उस समय एक निरंजन माया रहित स्वयंभू था। वही निरंजन स्वयंभू ही स्वयं सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुआ। यह विचारणीय विषय है। इसीलिए स्वयं ही विचार करके देख ले।

मालदेव कह देवजी सीख द्यौं, जाम्भेजी कह-जको राज विद्या ध्रम पाल्यसी, बिसनोई को तागो पाल्यसी, मरजाद मां रहिसी, तैं राज द्योक, राज्य रीध खडग सिध होयसी, मेट जिहक राज रीध्य खडग सिध जायसी, सतगुरु कही सांच करि मानी। मालदेव जोधपुर आयों।

मालदेव ने शब्द सुने और कहने लगा- हे देव! मुझे शिक्षा प्रदान कीजिये और अपना शिष्य बनाइये। जाम्भोजी ने कहा- हे राजन! जो राज-धर्म का पालन करेगा, वही सच्चे अर्थो में राजा होगा। राजस्व के रूप में जनता से धन लेता है, किन्तु वह धन तुझे युक्ति-युक्त ही लेना होगा। विशेष रूप से बिश्नोइयो से पाँचवाँ भाग लेना, क्योंकि बिश्नोई पूर्ण रूपेण धार्मिक हैं। अपना धन ईमानदारी से कमाते हैं और दसवाँ भाग दान पुण्य में खर्च करते हैं। इसीलिए इन्हें यह विशेष छूट मिलनी चाहिये।

हे राजन! यदि आप मर्यादा में रह कर राज करोगे, तो तुम्हारे राज में रिद्धि सिद्धि की अभि वृद्धि होगी। तुम्हारा खड्ग सिद्ध होगा। अवश्य ही तुम विजय को प्राप्त होगे। जो राजा मर्यादा का परित्याग करेंगे उन्हें ये अलौकिक सिद्धि आदि की प्राप्ति नहीं होगी। मालदेव ने सद्‌गुरु की कही हुई बात सत्य कर मानी।

मालदेव के साथ मूला पुरोहित भी था। जाम्भोजी तथा मालदेव की वार्ता को सुना, किन्तु पुरोहिताई की वजह से वाद-विवाद में ही अपनी विद्वता को मानता था। मैं पडित हूँ, मैं विद्वान हूँ, यह अहंकार ही विवाद

का कारण होता है। मूला पुरोहित कहने लगा–आप मुझे कोई अलौकिक परचा दीजिये, अन्य सीधे साधे लोगो को क्यों ठग रहे हो ? क्रोध से युक्त हुआ ब्राह्मण कहने लगा–

मुझे प्रथम परचा तो यह दीजिये। मेरी मुट्ठी में क्या है ? दूसरा परचा यह दीजिये कि मेरे घर में कितने जीव हैं ? कितने पुरुष, नारी एवं बच्चे हैं ? भिन्न भिन्न करके बतलावें ? तीसरा परचा यह दीजिये कि मैं तुम्हारे शरीर पर तलवार मारूँगा। यदि आपके चोट नहीं लगे, तो मैं जनेऊ रखकर आपका शिष्य हो जाऊँगा। श्री देवजी ने कहा–हे ब्राह्मण ! तुम्हारे हाथ में नारियल की गिरी है, किन्तु तू खली लेकर आया था। वह अब पलट करके नारियल की कच्ची गिरी बन गयी है।

तुम्हारे कुटुम्ब में तीन सौ घर हैं। तुम्हारे शरीर से उत्पन्न बालक तीस हैं। उनमें सोलह पुत्र एवं पौत्र हैं, चौदह नारी दिखाई देती हैं। तुम्हारे पास में यह तलवार है, यह तो लकड़ी की है। यह कटारा तुम मेरे शरीर पर मारो, तभी तुम्हारा भ्रम मिटेगा।

ऐसा कहते ही मूला हाथ में कटारा (तलवार) लेकर उठ खड़ा हुआ जिसके मारने से कोई बच नहीं सकता था। मूले ने पूरे जोर से देव के शरीर पर प्रहार किया। ज्योही कटारा मारा, शरीर को पार करके दूसरी तरफ निकल गया। मूलै ने देखा कि हाड माँस शरीर में दिखाई नहीं दे रहा है।

इसलिये जिस प्रकार से हवा में तलवार निकल जाती है, उसी प्रकार से आर पार हो गयी, किन्तु श्री देवजी के शरीर में खरोंच तक नहीं आयी। मूले ने देखा कि यह तो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा स्वंय ही हैं। मूले के हाथ से तरवार नीचे गिर पड़ी। जाम्भोजी ने कहा–तुम्हारे किये हुए पाप छूटेंगे नहीं, जब तक तुम अहंकार को नहीं गिराओगे। व्यर्थ के विवाद को नहीं छोड़ोगे।

मूला कहने लगा–व्यास कहे देवजी आज ही ज समझि नै कासौ करणौ छै,जाम्भोजी श्री वायक कहै –

मूला व्यास कहने लगा–देवजी! आज ही समझ करके क्या करना है समझने के लिये तो आगे दिन बहुत है। अभी क्या जल्दी है ? जाम्भोजी ने शब्द सुनाया–

शब्द–95

ओ३म् वाद विवाद फिटाकर प्रांणी, छोड़ो मन हठ मन का भाणk।
कांही कैं मन भयो अंधेरो, कांही सूर उगाणो।
नुगरा के मन भयो अंधेरो, सुगरा सूर उगाणो।
चरणभि रहीया लोयण झुरीया, पिंजर पड्यो पुरांणो।
बेटा बेटी बहन रु भाई, सबसै भयो अभाणो।
तेल लियो खल चोपै जोगी, रीता रहीयो घांणो।
हंस उड़ाणो पंथ बिलंब्यो, कीयो दूर पयाणो।
आगै सुरपति लेखो मांगै, कहि जिवड़ा के करण कमाणो।
जीवड़ा नै पाछो सूझण लागो, सुकरत ने पछताणो।

हे पुरोहित! व्यर्थ का विवाद करना छोड़ दे। तुझे जो अच्छा लगता है, उसी में ही तुम्हारा मन लगता है। उसी में तुम्हारा मन हठ करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह ठीक ही हो। वाद–विवाद करके तो बड़े–

बड़े राक्षस मारे जा चुके हैं।

इस संसार में सभी तरह के लोग हैं। किसी-किसी को तो ज्ञान हुआ है जिससे ज्ञान चक्षु खुल गये हैं तथा कई लोग सूर्योदय हो जाने पर भी आँखें नहीं खोलेगे तो उन्हें प्रकाश की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? जो अभी नुगरे हैं, जिन्होंने गुरु की शरण ग्रहण नहीं की,उनके तो अज्ञानान्धकार ही छाया हुआ हैं, तथा जिन्होंने गुरु धारण किया है,सुगरा हो चुका, उसके ज्ञान चक्षु खुल गये हैं। हे मूला ! व्यर्थ के विवाद में समय व्यतीत न करो। तुम्हारी आयु बहुत ही छोटी एवं कीमती है, इसे समझो। यदि इस प्रकार तुम कहते रहोगे कि अब क्या जल्दी है, तो यह काल किसी को भी माफ नहीं करता है। तुम्हारे शरीर पर बुढापा आ जायेगा। यह काल तुम्हारे शरीर को खा जायेगा। शिथिल कर देगा। आँखें देखना बन्द कर देंगी। हाथ-पाँव कार्य करना छोड़ देंगे। यह शरीर रूपी पिंजर तुम्हारा पुराना पड़ जायेगा।

उस समय जिन्हें तुम अपना कहते हो, वे लोग तुम्हारे से घृणा करने लग जायेंगे। तुम्हारे अपने प्रिय बेटा-बेटी, बहन और भाई सभी तुम्हारे से विलग हो जायेंगे। किसी को भी तुम अच्छे नहीं लगोगे, क्योंकि जब तिलों से तेल निकल जाता है, तो पीछे खली ही शेष रह जाती है। जो पशुओं के खाने के काम आती है। उसी प्रकार से तुम्हारे शरीर पर बुढापा आ जायेगा। शरीर से शक्ति रूपी तेल निकल जायेगा तो यह खली सदृश रस विहीन हो जायेगा।

एक दिन वह भी उपस्थित हो जायेगा। इस शरीर से हंस रूपी जीव उड़ जायेगा। जिस सरोवर में जल नहीं रहता है, वहाँ से हंस भी उड़ कर के चला जाता है। इसी प्रकार से रस जवानी विहीन यह जीर्ण शीर्ण शरीर हो जायेगा, तो इसमें हंस रूपी जीव कैसे रह सकेगा ?

आगे-जाने का मार्ग उसे मिल नहीं सकेगा। क्योंकि सम्पूर्ण जीवन में कभी भी उस मार्ग पर चला नहीं। जब तक मार्ग पर चलने का अभ्यास नहीं करेगा तो अन्तिम समय प्रयाणकाल में कैसे मार्ग मिलेगा ?बिना मार्ग तो कोई अपने गन्तव्य स्थान (मुक्ति) को प्राप्त नहीं हुआ है। मार्ग में भटक जाने पर इस मानव जीवन से कहीं बहुत दूर चला जायेगा। चौरासी लाख योनियों में भटक जायेगा। आगे सुरपति (धर्मराज) जीवन का लेखा-जोखा माँगेंगे।

हे जीव ! तुमने मानव जीवन में रह कर क्या धर्म-कर्म किये है ? ऐसा पूछने पर जीव को पछतावा होगा। पीछे के जीवन को देखेगा। किन्तु वहाँ तो ऐसा कुछ भी कार्य नहीं किया, जो आगे धर्मराज के यहाँ गवाही दे सके। जीव ने सुकर्म नहीं किया। इसलिये जीव को पछताना होगा।

हे मूला ! बाद में तुम्हें पछताना न पड़े, इसलिये मरने के पूर्व ही सचेत होकर शुभ कार्य करने में संलग्न हो जाओ। इस प्रकार से जोधपुर नरेश मालदेव एवं मूला पुरोहित दोनों ही अपनी संतुष्टि कर के वापिस जोधुपर को रवाना हो गये।

गोपीचन्द और भर्तृहरि को शब्दोपदेश

एक समै जोगी गोपीचन्द भर्तृहरि देवजी कै हजूर आया। आघु नै हाथ कीयौ। जाम्भोजी श्री वायक कहै

शब्द-96

ओ३म् सुण गुणवंता सुण बुधवंता, मेरी उत्पति आदि लुहारूं।
भाठी अन्दर लोह तपीलो, तंतक सोना घड़े कसारूं।
मेरी मनसा अहरण नाद हथोड़ो, शशीयर सूर तपीलो।
पवन अधारी खालूं।
जे थे गुरु का शब्द मानीलो, लंघिबा भव जल पारूं।
आसण छोड़ि सुखासण बैठो, जुग जुग जीवे जम्भ लुहारूं।

सद्गुरु देव सम्भराथल विराजमान थे। पास में संत भक्तों की जमात बैठी हुई थी। उसी समय ही दो योगी आये। उन्होंने आते ही कुछ सांकेतिक भाषा में कहा। उन्होंने नाक के हाथ लगाया। इशारा किया। श्री देवजी ने जिह्वा की तरफ इशारा करते हुए न जाने क्या कहा? जाम्भोजी ने इस अवसर पर एक शब्द भी सुनाया। वही शब्द हे वील्हा! मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जिसका भाव कुछ इस प्रकार से है-

जाम्भोजी के पास में सभी तरह के लोग आया करते थे। उन्हें उसी तरह का शब्द- आदेश देते थे। किसी को तो फटकार भी सुनाते थे। किन्तु इन दोनों योगियों की तो भारी प्रशंसा की है। कहा है-''सुण गुणवंता सुण बुधवंता'' हे गुणवानो! हे बुद्धिमानो! आप सुनो। मेरी उत्पत्ति तो आदि-अनादि है। मैं कोई आज कल का योगी नहीं हूँ। लुहार की भांति मैं तो आगे नयी उत्पत्ति करता हूँ। जिस प्रकार से लुहार भट्ठी के अंदर रखकर लोहे को तपाता है और उस लोहे को अग्नि के संयोग से तपा कर, कूट कर तत्त्व रूपी लोहा बना देता है। उस तत्त्व रूपी लोहे से अनेकानेक औजार बर्तन आदि बना देता है। उसी प्रकार से मैं भी पांच तत्त्व रूपी लोहे को लेकर उससे तत्त्व रूपी मानव शरीर का निर्माण करता हूँ। वैसे तो सभी शरीर इन पांच तत्त्वों से ही निर्मित हैं।

किन्तु पाँच तत्त्वों का सार रूप यह मानव तन ही विशेष है, जिसमें यह जीवात्मा विराजमान होती है। जिस प्रकार से लुहार के पास अहरण, हथौड़ा, अग्नि, ईंधन और हवा देने वाली खाल की धोंकनी होती है, जिससे हवा देकर अग्नि को प्रज्जवलित करता है। उससे लोहा तपता है। उसी प्रकार से मेरे पास भी मनसां इच्छा ही अहरण है। जो मूल आधार है जिसके ऊपर ही सभी कुछ निर्भर है। नाद ही हथौड़ा है, जो चोट करता है।

मेरे पास भी नाद ध्वनि ही हथौड़े का कार्य करती है। जो सोये हुए चित्त को जाग्रत करती है। सूर्य हीं अग्नि सदृश इन पाँच तत्त्वों को पिघलाने वाला है। और चन्द्रमा ही इन्हें पुन: ठण्डा करता है। तभी कार्य सफल हो पाता है। प्राण वायु ही धौंकनी है जो अंदर बैठी हुई वैश्वानर अग्नि को प्रज्वलित करती रहती है। इसी प्रकार से मैं उत्पत्ति करता हूँ। यदि आप लोग गुरु का वचन स्वीकार कर लो तो संसार सागर से निश्चित ही पार हो जाओगे।

हे गोपीचंद भर्तृहरि! मैंने तो सांसारिक आसन छोड़ दिया है और आध्यात्मिक सुखासन पर बैठा हूँ

इसीलिए युगों-युगों तक जीने वाला जाम्भा लुहार हूँ। इस प्रकार से उन आगंतुक योगियों को संदेशा दिया और वे दोनों वहाँ से प्रस्थान कर गये।

हे वील्हा! हमने श्री देवजी से पूछा-कि हम तो आपके इशारे को नहीं समझ पाये और न ही यह जान पाये कि वे दोनों योगी कौन थे? यह कृपा कर के बतलावें।

श्री देवजी ने कहा-ये दोनों तो गोपीचंद और भर्तृहरि थे। क्या वे ही गोपीचंद भर्तृहरि थे? ऐसा कहते हुए हम लोग वहाँ से उठ खड़े हुए। उनको देखने के लिये पीछे भाग पड़े। किन्तु देवजी ने हमें रोकते हुए कहा-रुको! वे अब तुम्हें नहीं मिल सकेंगे, क्योंकि वो बहुत ही दूर चले गये हैं।

हे देव! आपने पहले नहीं बतलाया। हम उनका दर्शन वार्तालाप करते । आपकी तथा उनकी क्या वार्तालाप हुई, यह तो बताने का कष्ट करें।

देवजी ने बतलाया-उन्होंने नाक की तरफ इशारा किया। इसका मतलब था कि हम तो इस लम्बे जीवन से नाक-नाक आ गये अर्थात् थक गये है। मैंने जवाब देते हुए कहा था कि पहले आपने अपनी जिह्वा से ही लम्बी आयु माँगी थी। इसीलिए जिह्वा की तरफ मेरा इशारा था। अब लंबे जीवन को जीना ही होगा, काया की आयु बढा लेना भी तो सुख शांति प्रदान नहीं कर सकती।

ऊदोजी नैण का जाम्भोजी के शरण में आना

मांगलोद गंगा पार का जमाती आय उतरया, ऊदो नैण देवी को भोपा कहै- जमातियां इह महमाई नै पूजी र पाछा जावौ देव करै थौ देवी करसी। बिश्नोई कहै देवी सुरग देसी। देवी ऊदै के घट आय बोली सुरगां मां क्यौइ नहीं सुरग मटा मटि थै पणि मेरे सारै सुरग कोई नहीं। ऊदो जमातियां के साथ देवजी के हजूरी आयो। विसनोई हुवौ। ऊदो कहै देवजी कहो तो महमाई का गीत गाऊ। जाम्भोजी श्री वायक कहै-

शब्द-97

ओ३म् विष्णु विष्णु तूं भणरे प्राणी, जो मन मानै रे भाई।
दिन का भूला रात न चेता, कांय पड़ा सूता आस किसी मन थाई।
तेरी कुड़ काची लगवाड़ घणो छै, कुशल किसी मन भाई।
हिरदै नाम विष्णु को जंपो, हाथे करो टवाई।
हर पर हरि की आंण न मानी, भूला भूल जपी महमाई।
पाहन प्रीत फिटाकर प्राणी, गुरु बिन मुक्त न जाई।
पंच क्रोड़ी ले प्रहलाद उतरियो, जिन खरतर करी कमाई।
सात क्रोड़ी ले राजा हरिचंद उतरियों, तारादे रोहिताश हरिचन्द हाटो हाट बिकाई।
नव क्रोड़ी राव युद्धिष्ठिर ले उतरियो, धन धन कुन्ती माई।
बारा क्रोड़ समाहन आयो, प्रहलादा सूं वाचा कवल जु थाई।
किसकी नारी बस्त पियारी, किसका बहिन रु भाई।

भूली दुनिया मर मर जावै, ना चीन्हों सुर राई।
पाहण नाऊं लोहा सक्ता,नुगरा चीन्हत कांई।

नाथोजी महाराज अपने शिष्य वील्हो के प्रति आगे की कथा सुनाते हुए कहने लगे-एक समय गंगा पार से बिश्नोइयों की जमात सम्भराथल पर आ रही थी। इससे पूर्व भी कई बार आ चुकी थी। उनका पैदल आना कई लोगों को सचेत करना था। पूर्व की जमात ने तो हासम कासम को सचेत किया था और दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी को सचेत किया था। दूसरी बार भीयों पंडित को अपने साथ लेकर आये थे और उन्हें बिश्नोई बनाया था।

इस बार बिश्नोइयों की जमात गंगा पार से चल कर गंगा यमुना को पार कर के नागौर से पूर्व दिशा में गोठ मांगलोद में आकर तालाब के किनारे आसन लगाया था। तालाब के निकट ही गाँव के बाहर महमाई का मंदिर था। तालाब में स्वच्छ जल प्राप्त था। बिश्नोई लोग देवी के मंदिर में तो नहीं गये किन्तु तालाब के किनारे ही बैठे थे।

उस समय स्नान, संध्या, हवन कर रहे थे। ज्योति का दर्शन एवं शब्दों की ध्वनि, घृत सामग्री की सुगन्धी, चारों तरफ फैल रही थी। मंदिर के पुजारी ऊदोजी नैण थे। ऊदोजी मंदिर में आरती नित्य प्रति करते थे, किन्तु दीपक तेल का ही करते थे। वह भी छोटी चिराग तेल की। उसमें वह दिव्य सुगंध कहाँ थी ? ऊदो आरती गाता था किन्तु महमाई की ही गाता था। आज पहली बार शब्दों की ध्वनि सुन रहा था ? घृत आदि दिव्य पदार्थों की सुगंध ले रहा था।

ऊदा जल लाने के बहाने से तालाब पर गया था। ऊदै ने देखा कि यहाँ तो दिव्य देव सदृश शुभ्र वेश में भक्त विराजमान हैं। ये ही लोग हवन कर रहे हैं। हो सकता है कि हमारी देवी दर्शनार्थ आये होंगे। ये तो धनवान भी हैं। यदि आ जायेंगे, चढावा करेंगे तो बहुत धन प्राप्त होगा। मैं अभी शीघ्र चलता हूँ। इनके आने की प्रतीक्षा एवं पूर्व तैयारी करता हूँ। अपनी देवी को भोग लगाता हूँ। खुश करता हूँ, तो इन्हें अवश्य ही वरदान देगी। मेरी कंगाली अवश्य ही आज मिट जायेगी।

ऊदा वापिस मंदिर में पहुँचा और देवी को प्रसन्न किया। स्वयं भोपा बना, अंग में तेल लगाया, लाल तिलक किया, सिर की लंबी लंबी जटायें खोल दी। हाथ में जंजीर एवं लोहे का सरिया लेकर उछल कूद करने लगा। देवी ने भोपे के शरीर में प्रवेश किया। वह तो देवी नहीं थी, कोई प्रेत ही था। किन्तु लोग उसे देवी देवता कहते थे। पूजा होती थी।

ऊदा ऐसी विकराल अवस्था में अपने ही शरीर पर चोट मारता हुआ बिश्नोइयों की जमात के पास पहुँच गया। बिश्नोइयों ने देखा और कहा- हे भाई ! क्यों जुल्म करता है ? इस अपने ही शरीर को क्यों पीटता है ? यह तो अन्याय है। ऐसा मत करो जो तुम्हें लेना है तो हम तो वैसे ही दान दे देंगे, इस पाखण्ड को करने की हमारे सामने आवश्यकता नहीं है।

ऊदो कहने लगा-आप हमारी देवी के मंदिर में चलो। वहाँ जो आपको चाहिये वही सभी कुछ मिलेगा। एक बार मस्तक झुका दो। तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाऐगी। बहुत देर से मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आप लोग आये क्यों नहीं ? आप लोग कहाँ से आये है ? और कहाँ को जा रहे हैं ? किस कार्य के लिये जा रहे हैं ?

जमात के लोगों ने कहा-हम लोग गंगा पार पूर्व देश से चल कर आये हैं। सम्भराथल पर विष्णु जाम्भोजी के पास जा रहे हैं। वहाँ पर हमें जीया ने युक्ति मूवां ने मुक्ति मिलेगी अर्थात् युक्ति मुक्ति लेने जा रहे

हैं। ऊदो कहने लगा– यदि युक्ति और मुक्ति यहीं पर देवीजी प्रदान कर दें तो आप लोग आगे नहीं जाओगे ? जमात ने कहा– यदि ऐसी बात है तो आप अपनी देवी से पूछ लें, क्या वह स्वर्ग, युक्ति मुक्ति दे सकती है ? यदि दे सकती है तो हम लोग देवी के मंदिर पर स्वर्ण कलश चढा देंगे।

ऊदे ने देवी को अंदर प्रवेश करवाया और कहने लगा– स्वर्ग मुक्ति आदि तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। स्वर्ग मटामट है अर्थात् केवल कहने सुनने की बात है। मुक्ति नाम की भी कुछ वस्तु नहीं है। जो नहीं है वह मैं कैसे दे सकती हूँ। यह संसार ही सभी कुछ है। आगे कुछ भी नहीं है और न ही मैं कुछ जानती हूँ। यदि तुम्हें कुछ संसार की वस्तु चाहिये, तो मैं कुछ उल्टा सीधा कर सकती हूँ जैसे–किसी को लंगड़ा, बहरा, रुग्ण आदि करने में मेरा कुछ सहयोग हो सकता है।

बिश्नोई कहने लगे, हम जिनके पास जाते हैं, वे तो पूर्ण परमेश्वर हैं, हमें युक्ति मुक्ति प्रदान करेंगे– हे उद्धव ! यदि तुम्हें भी चाहिये तो हमारे साथ चल। ऐसा कहते हुए ऊदे से देवी की पूजा छुड़वाकर साथ में ही सम्भराथल लेकर चले आये।

ऊदा भक्त मार्ग में चलते हुए विचार करने लगा न जाने क्या होगा ? क्या मुझे वो सद्‌गुरुदेव अपनायेंगे ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता। जिस देवी की पूजा करता था, उसका भय भी मुझे बना हुआ है। ये सभी लोग तो पूर्व परिचित हैं। सभी धनवान हैं। सभी ने अपनी अपनी भेंटें ली हैं। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है बिना भेंट मैं उनके पास सभी से अलग ही दिखने वाला पहुँचूँगा, तो क्या वो मुझे अपनायेंगे ? मेरे पास भले ही कुछ भी नहीं है, किन्तु मेरा प्रेम भाव तो है, क्या मेरे प्रेम को ठुकराएँगे ?

वे तो पूर्ण ब्रह्म अन्तर्यामी हैं। हृदय की भावना को जानते हैं। फिर भी अवश्य ही कुछ तो भेंट ले लेनी चाहिये। खाली हाथ जाऊँगा तो खाली हाथ लौट आऊँगा। ऐसा विचार करते हुए सम्भराथल मार्ग में नागौर से एक टके की खली ले ली। ज्यादा तो कुछ जेब में था भी नहीं। वापिस मंदिर में जाने का अवसर ही नहीं मिला था।

सम्भराथल सभी के साथ ऊदोजी भी पहुँचे। वहाँ पर श्री देवजी की मुख शोभा देखी, ज्योति सदृश मुख मंडल चारों तरफ ही दिखाई दे रहा था। सभी ने अपनी अपनी अमूल्य भेंटें रखी, उदो सकुचाने लगे। मैं कैसे रखूँ ? इनके पास तो बड़ी कीमती वस्तुएँ है। मेरे पास तो पशुओं को चराने वाली खली ही तो है। यह भेंट करने से तो ना करना ही ठीक है। ऐसा विचार करते हुए उद्धा सभी के पीछे ही बैठ गया।

जम्भेश्वर जी ने ऊदे का नाम लेकर पुकारा–हे ऊदा ! पीछे क्यों बैठा है ? आगे आ जा। जो कुछ भी भेंट लाया है, वह तो प्रेम रस से भरी है, मुझे दे दे। ऊदा संकोच वश डरता–डरता सामने आया। कपड़े में बंधी अमूल्य भेंट ऊदे ने सामने रखी। श्री देवजी ने कहा–उद्धव ! तू तो बहुत ही अच्छी भेंट लाया। सभी को दिखाते हुए श्री देवजी ने कहा देखो ऊधव नारियल की गिरी लाया है। यह तो अमूल्य है। हवन करने के काम आयेगी। उद्धव द्वारा प्रेम से भेंट की हुई खली भी नारियल बन गई।

ऊदो हाथ जोड़े हुए पास में खड़ा हुआ था। जाम्भोजी ने कहा–हे ऊदा ! तू तो कवि है। कुछ गा कर के सुनाओ। ऊदो कहने लगा–हे महाराज ! यदि आप माताजी के भजनों के लिए कहो तो मैं सुना दूँ। अन्य कुछ जानता ही नहीं हूँ। पास में बैठे हुए लोग उपहास करने लगे कि देखो ऊदो कुछ भी नहीं जानता, यह तो निपट मूर्ख ही है। न जाने यहाँ क्यों आ गया ? श्री देवजी ने कहा–माता का तो तू जानता है, किन्तु कुछ पिताजी वाले भी तो सुना दे। ऊदा कुछ भी नहीं बोला, श्री देवजी ने ऊदे के सिर पर हाथ रखा, ऊदे के मन में हुलास–(आनंद) हुआ और आनंद में विभोर हो कर गाने लगा–

ओ गुरु आयो जाम्भराज देव, निज हक साच पिछाणियों।
जो साधां ने देवेलो पार, मुखि बोले अमृत बाणियों।
इमरत बाणी गुरु मुख बोलै, सुरग सुध लीला पति।
देवां को गुरु विसन जाम्भौ, जतियां गुरु पुरो जति।
पार गिराय जीव वासो, जे हक साच पिछाणियो।
मानुष रूपी विष्णु आयो, मुखि बोले इमरत बाणियो।

इस प्रकार से श्री देवजी की स्तुति में ऊदे ने इस साखी का गायन किया। पास में बैठे हुए सज्जनों को आश्चर्य चकित कर दिया। कवि हृदय तो ऊदा था ही। देवजी ने सिर पर हाथ रखा तो कविता सरिता की भांति बह पड़ी। ऊधो ने श्री देवजी की स्तुति करते हुए कहा-मैं आपकी शरण में तो आ गया हूँ, किन्तु मेरा भय अब तक नहीं मिटा है। जिस प्रेत की मैं माता मान करके पूजा करता था उसने मुझे बहुत कष्ट दिया। आज मुझे पता चला है कि वह तो मेरे साथ धोखा ही था। मैंने अपनी जिंदगी वैसे ही बर्बाद कर डाली है। हे देव! मेरा भय दूर कीजिये। श्री देवजी ने ऊदे का भय मिटाने हेतु यह विष्णु विष्णु भण शब्द सुनाया। जिसका भाव इस प्रकार से है-

हे ऊधा! तथा अन्य सभी लोगो! यदि आपको भय लगता है, तो विष्णु विष्णु इस नाम का जप करो। रे भाई! यदि तुम्हें श्रद्धा विश्वास है, तुम्हारा मन नाम जप करने को राजी है, तो अवश्य ही तुम्हारे भय को मिटा देगा। दिन का भूला-भटका रात्रि को घर लौट आये तो वह भूला हुआ नहीं माना जाता। यदि रात्रि में भी घर नहीं आये तो चिंता होती है। इसी प्रकार से बाल एवं जवानी अवस्था में यदि ईश्वर को भूल गया तो कोई बात नहीं। अब बुढापे में भी सचेत हो जाये, तो वह संभल सकता है। बुढापे ने यहाँ से जाने की सूचना दे दी है। अब भी यदि सोया रहा, सचेत नहीं हो सका तो किस आशा पर जी रहा है। तुम्हें कौन सहारा देगी, तेरी मृत्यु बिगड़ जायेगी, तो दुर्गति होगी।

इस संसार में तो सच्चा झूठा संबंध गहरा है। किन्तु कच्चे धागे की तरह इस लगाव को भी तोड़ा जा सकता है। इतनी गहरी मोह माया में फंसा होने से कुशलता कैसे हो सकती है? हृदय में विष्णु का जप करते हुए हाथों से शुभ कार्य करो। हे ऊदा! हरि की मर्यादा तो छोड़ दी। भूला हुआ तुमने महमाई की पूजा सेवा की है महमाई तो केवल पत्थर की मूर्ति ही तो है। इस प्रकार से पत्थरों की प्रीति छोड़ो।

गुरु की शरण हुए बिना तो मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते। गुरु की शरण ग्रहण करके और हरि की मर्यादा में रह कर के पाँच करोड़ का उद्धार प्रह्लाद ने सतयुग में किया था। स्वयं प्रह्लाद ने शुद्ध कमाई की थी तथा अपने अनुयायियों को भी प्रेरित किया था। त्रेता युग में हरिश्चन्द्र एवं उनकी धर्म पत्नी तारादे एवं कुंवर रोहिताश्व ने सात करोड़ का उद्धार किया था। स्वयं धर्म की रक्षार्थ हाट में जाकर बिक गये थे। किन्तु धर्म को नहीं छोड़ा था।

नौ करोड़ का उद्धार द्वापर युग में धर्मराज युधिष्ठिर ने किया था। उस माता कुन्ती को भी धन्य है, जिन्होंने ऐसे पुत्र पैदा किये। उन्हें ऐसे दिव्य संस्कार प्रदान किये। श्री जाम्भोजी कहते हैं कि बारह करोड़ों का उद्धार करने हेतु मैं स्वयं आया हूँ। क्योंकि मैंने ही नृसिंह रूप में अवतार लिया था। उस समय प्रह्लाद को वचन दिया था कि तुम्हारे तेतीस करोड़ों का उद्धार होगा। अब तक पाँच, सात व नौ करोडों का तो उद्धार हो चुका है। बारह करोड़ अवशेष हैं। उनका उद्धार करने हेतु मैं आया हूँ।

कौन किसका है? कोई किसी का नहीं है। जिन्हें कहते हैं कि यह मेरी नारी है, मैं इसका नर हूँ, यह

मेरी प्यारी वस्तु है। मेरी बहन, मेरा भाई, यह मेरा कुछ भी नहीं है। किन्तु दुनिया इसी भूल में भटक रही है। अनेकानेक जन्म-मरण को प्राप्त हो रही है। मोह माया ग्रसित प्राणी उस विष्णु परमात्मा को अपना नहीं बनाते जो कि वास्तव में अपना ही है। जो अपना नहीं है, उसे तो अपना मान रखा है।

हे ऊदा! तू जिस पत्थर की मूर्ति की सेवा पूजा करता है, उससे तो लोहा ही मजबूत है। लोहे की पूजा क्यों नहीं करता ? सदा ही शक्तिशाली की ही पूजा करनी चाहिए। जिसका जैसा संग करोगे, तो उसकी संगति का फल भी अवश्य ही मिलेगा।

नाथोजी उवाच-हे वील्हा! इस प्रकार से यह शब्द ऊदेजी के प्रति श्री देवजी ने सुनाया और उससे कहा-कि तुम भक्त अधिकारी होने से पाहल लेकर बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हो जाओ। डरो मत, अब तुम बिश्नोई पंथ के पथिक हो गये, इसीलिए अब तुम्हें किसी प्रकार के भूत-प्रेत महमाई आदि से भय नहीं होगा।

यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है, तो तू वापस अपने महमाई के मंदिर में जाओ और जाते समय यह पाहल का लोटा ले जाओ। जब तुम्हें भूत-प्रेत भय उत्पन्न करायेंगे, तो तुम जल की कार दिला कर के बीच में खड़े हो जाना, फिर तुम स्वयं आश्चर्य देखना।

ऊदो भक्त जाम्भोजी की आज्ञा शिरोधार्य करके सम्भराथल से रवाना हुआ, ज्योंही अपने गाँव की सीमा में प्रवेश किया त्योंही वह महमाई, जो एक प्रेत के रूप में थी ऊदो के सामने बवंडर बन कर के आयी और डराने लगी। ऊदो जाम्भोजी के वचनानुसार जल की कार देकर बीच में खड़ा होकर, विष्णु विष्णु जप करने लगा। वह बवंडर (भैंतूलिया) दूर-दूर ही भयंकर ध्वनि करता हुआ वेग से दूसरी तरफचला गया।

जाम्भोजी एवं जाम्भोजी की पाहल का चमत्कार एवं प्रताप ऊदे ने देखा तथा आश्चर्य चकित हुआ। वह महमाई हताश अवस्था में ऊदे को भयभीत करने के लिए कभी बैठूरा बनती, तथा कभी अग्नि के रूप में दिखाई देती, कभी सिंह बन कर गर्जना करती, किन्तु ऊदे ने तो श्री देव परमात्मा विष्णु की शरण ले रखी थी। भय निवृत्त हो चुका था। आखिर महमाई ही घबराकर ऊदे से कहने लगी-

हे ऊदा! तुमने तो सद्‌गुरु को प्राप्त कर लिया है, किन्तु मैं तो एक अवगति प्राप्त जीव हूँ। मेरा इस प्रेत योनि में प्राप्त जीव का उद्धार कब होगा ? तुम्ही कोई उपाय करो। मेरे दु:ख का कोई पार नहीं है। मेरा वायु प्रधान यह अधम शरीर है। एक क्षण भी स्थिर नहीं हो पाता। मैं स्वयं इस शरीर से भोजन प्राप्त करने में असमर्थ हूँ। तुम्हारे जैसे पुजारियों के शरीर में प्रवेश करके ही मैं भोजन प्राप्त करता हूँ। अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। मैं स्वयं पराधीन हूँ। कभी-कभी मेरे को मारा पीटा भी जाता है। वह भी मैं किसी शरीर में रह कर ही सहन करता हूँ। यह सभी कुछ मेरे कर्मो का ही फल है।

अब तू ऊदा वहीं जा और मेरा भी किस प्रकार से उद्धार होगा, यह विनती जाम्भोजी से करना। मेरी पूजा तो कोई दूसरा ही करेगा। मैं अपनी पूजा तो स्वयं किसी दूसरे से करवाऊँगा। अब तुम हमारे लायक नहीं हो क्योंकि तुमने पाहल ग्रहण करके देवताओं के नियम धारण कर लिया है। तुम्हारे पर हमारा वश नहीं चलता।

इस प्रकार से ऊदो अपने घर गया, लोगों ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि महमाई का पुजारी-भोपाजी लौट आये हैं। न जाने एकाएक कहाँ छिप गये ? अब हमारी विपदा दूर करेंगे। ऊदो ने कहा- अब आप लोग ऐसी आशा न करें। मैं अब भूत-प्रेतों की पूजा नहीं करता। मुझे तो सतगुरु मिल गये हैं।

यदि आप लोग भी युक्ति-मुक्ति चाहते हैं, तो मेरे साथ चलो। अपने बुटुम्ब को लेकर ऊदो

सम्भराथल आया और अपने परिवार को बिश्नोई पंथ में सम्मिलित किया। जाम्भोजी ने ऊदे को ऋद्धि सिद्धि प्रदान की और नैण गोत्र का बिश्नोई बनाया।

जब संत महापुरुषों की संगति हो जाती है, तो दुराचारी भी साधु बन जाता है। जिस प्रकार से पारसमणि की संगति करने से लोहा पलट कर सोना बन जाता है, और दही भी पलट कर घृत बन जाता है।

ऊदो मूलतः कवि हृदय मानव थे। जाम्भोजी की स्तुति में ऊदे ने आरती, साखी, छन्द, कवित आदि की रचना की थी।ऊदो जी द्वारा रचित काव्य अति उच्च कोटि का है। उन्होंने जैसा प्रत्यक्ष देखा था वही यथार्थ कहा था। यथार्थ वक्ता एवं हजूरी कवियों में ऊदोजी का नाम अग्रगण्य है।

नवां अध्याय

गंगा की धारा का सम्भराथल पर आगमन

एक समं जाम्भेजी क हाथ कुटालौ लीयौ। जाम्भाजी थे कर था जको म्हे करस्या। जाम्भोजी कह गंगा की सीर छुटी थी। कलो थल हुव हार जीत। रह हारय थे वुरा कियौ। जाम्भोजी श्री वायक कह–

शब्द–98

ओ३म् जिंहि के खिंण ही ताऊं, खिण ही सीऊं।
खिणही पवणा गुरु खिणही पाणी, खिणही मेघ मंडाणो।
कृष्ण करंता वार न होई, थल सिर नीर निवाणो।
भूला प्राणी विष्णु जंपो रे, ज्यूं मौत टलै जिरवाणों।
भीगा है पण भैद्या नाहीं, पांणी मांहि पखाणों।
जीवत मरो रे जीवत मरों, जिन जीवन की बिध जांणी।
जे कोई आवै हो हो कर, आप जै हुइये पांणी।
जाकै बहुती नवणी बहुती खवणी, बहुती क्रिया समाणी।
जांकी तो निज निर्मल काया, जोय जोय देखो ले चढ़ियो अस्मानी।
यह मढ़ देवल मूल न जोयबा, निज कर जपो पिराणी।
अनन्त रूप जोवो अभ्यागत, जिहिं का खोज लहो सुरबाणी।
सेतम सेतूं जेरज जेरूं, इंडस इंडू, अइयालो उरध जे खैणी।

एक समय श्री जाम्भोजी ने सभी के सामने कुदाला हाथ में लिया, उसी समय उपस्थित साथरियों ने जाम्भोजी का हाथ पकड़ लिया और कहने लगे– हे देव! आप यह क्या कर रहे हैं? हम लोग आपके पास इतने लोग बैठे हुए हैं। जो कार्य आप करना चाहते हैं, वह कार्य हम कर लेंगे। आप स्वयं न करके हमें आज्ञा प्रदान कीजिए। हमें क्या सेवा करनी है?

जाम्भोजी ने बतलाया कि गंगा की एक धारा धरती के नीचे बहती हुई ईधर से जा रही थी। उस

को मोड़ कर सम्भराथल पर लाने के लिए प्रयत्नशील हुआ था, किन्तु आप लोगों ने रोक कर अच्छा नहीं किया है। आप लोगों ने इस थल पर हार–जीत का सवाल उठा लिया है। आप लोग समझते हो कि हमारी हार हो रही है या रोकने से जीत हो रही है। इस हार जीत से ही तो अवसर आया हुआ चला गया है। इस प्रकार से तो हार तुम्हारी ही होगी। न जाने कब तक हारते रहोंगे ? कभी तो सचेत भी हो जाया करो। ऐसा कहते हुए श्री देवजी ने शब्द सुनाया–

प्रकृति में परिवर्तन प्रति क्षण होता रहता है। किन्तु प्रकृति का नियंता स्वामी यथावत अपरिवर्तन शील रहता है। अति शीघ्र ही बदलने वाली प्रकृति स्वतंत्र नहीं है, किन्तु पुरुष परमात्मा के अधीन है। एक क्षण में ही गर्मी आ जाती है, दूसरे क्षण में सर्दी का प्रकोप बढ जाता है। एक क्षण में वायु का वेग रुक जाता है, दूसरे ही क्षण वायु प्रकुपित हो जाती है। एक क्षण में ही जल सूख जाता है तो दूसरे ही क्षण में अपार जल आ जाता है। जो सम्पूर्ण भूमि को जल से भर देता है। इसीलिए हे सज्जनो ! एक क्षण के लिए ही इस सम्भराथल की भूमि पर गंगा जल की धारा आयी थी। किन्तु अब वो चली गयी है। उस क्षण का सदुपयोग नहीं हो सका है। यदि भगवान् श्रीकृष्ण चाहे तो समय नहीं लगता। फिर भी इस धरती पर गंगा आ सकती है तथा पुन: जा भी सकती है। भगवान् की इच्छा से तो इस सम्भराथल पर नीचे खोदने से जल प्रवाह मिल सकता है या बालुका पर तलाब खोदने से भी जल ठहर सकता है।

हे भूले हुए लोगो ! विष्णु का जप करो, जिससे तुम्हारी अकाल मृत्यु एवं बुढापा टल जायेगा। आप लोग ऊपर से तो देखने में भक्त ही दिखते हो, किन्तु उस जल में पड़े हुए पत्थर के जैसे हो जो जल में भीग तो गया है, किन्तु जल अंदर प्रवेश नहीं कर सका है। यदि आप लोग जीवन जीने की विधि जानना चाहते हैं, यानि जीवन जीना सीखना चाहते हैं, तो जीवत मरो। तुम्हारे अंदर बैठे हुए दुश्मन काम, क्रोध, लोभ, मोह इन को मारो। इससे तुम्हारा अहंकार गिर जायेगा। तुम शुद्ध पवित्रात्मा रूप से जीवन जी सकोगे। ये पराये आये हुए मेहमान जो तुम्हारा भला नहीं चाहते, उनको तुम बाहर निकालो।

यदि आपके पास कोई अन्य व्यक्ति हो हो करता हुआ आता है कि इसको मारो मारो, ऐसा कहता हुआ, वह व्यक्ति अग्नि का रूप है। इस आती हुई अग्नि के गोले को, क्रोधित व्यक्ति को जल से, मधुर वचनों से ठण्डा किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति में बहुत ही नम्रता है। बहुत ही क्षमा भाव है। वह व्यक्ति क्रियावान है। उसमें सद्गुणों का समावेश है। उसकी यह पंचभौतिक काया अति निर्मल हो चुकी है। वह व्यक्ति प्रति क्षण सचेत है। सभी कुछ देखता हुआ द्रष्टा (साक्षी) है। वही व्यक्ति स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त होता है। इन सद्‌गुणों से रहित जन चाहे वह मठ में बैठा हुआ है, चाहे वह मूर्ति के आगे शिर झुकाता है, किन्तु उसे जीवन जीने की विधि, जीवन के मूल का कुछ भी पता नहीं है।

हे प्राणी विष्णु का जप करो। किन्तु इतने प्रेम भाव से करो कि उसमें तल्लीन होकर, ताकि दुराव मिट जाये। जीव ईश्वर की एकता हो जाये। प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान जो विष्णु अनन्त रूप में हैं, उसकी खोज करो। उसे खोजने के लिए वेद शास्त्र गीता आदि देववाणी में ग्रंथ विद्यमान हैं।

चार प्रकार की जीव योनियाँ हैं कुछ तो स्वेदज जो पसीने से पैदा होती है। अन्य जेरज जो जैर से पैदा होती हैं जो पशु मानव आदि। कुछ अण्डे से पैदा होती हैं, जो पक्षी कहे जाते हैं। अन्य वृक्षादि उद्भिज जीव योनियाँ हैं। इन्हीं सभी में मानव जीवन अमूल्य है। इसे व्यर्थ के वाद विवाद में तथा अनैतिक कार्य में डाल कर व्यर्थ न करें।

साथरियां कहै देवजी थारी थेई जाणो। जाम्भोजी श्री वायक कहै–

शब्द-99

ओ३म् साच सही म्हे कूड़ न कहिबा, नेड़ा था पण दूर न रहीबा।
सता सन्तोषी सत उपकरणां, म्हे तजीया मान अभिमानूं।
बसकर पवणा बसकर पाणी, बसकर हाट पटण दरवाजों।
दशे दवारे ताला जड़ीया, जो ऐसा उस ताजों।
दशे दवारे ताला कूंची, भीतर पोल बणाई।
जो आराध्यो राय युद्धिष्ठर, सो आराधो रे भाई।
जिंहि गुरु के झुरैन झुरबा, खिरै न खिरणा, बंक तृबंके।
नाल पैनालै, नैणे नीर न झुरबा, बिन पुल बंध्या बांणो।
तज्या अलिंगण तोड़ी माया, तन लोचन गुण बांणो।
हालीलो भल पालीलो सिध पालीलो, खेड़त सूना राणो।

साथरिया सज्जन कहने लगे हे देवजी! आपकी लीला तो आप ही जानें? हम अज्ञानी जीव क्या जानें। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-हे सज्जनो! मैं आप से जो भी कहता हूँ वह सत्य ही कहता हूँ। मैंने जो सत्य का अनुभव किया है, वही बतलाता हूँ। मैं आप से सुनी सुनाई बात नहीं कह रहा हूँ । मैं आपके पास में ही हूँ, दूर नहीं हूँ। आपके अति निकट हृदय में ही मेरा निवास है। इसीलिए मैं आपकी एक एक भावना को जानता हूँ।

श्री देवजी कहते हैं कि मैं सदा संतोषी हूँ। मुझे किसी से कुछ भी नहीं चाहिये। जो कुछ भी चाहिये वह तो मेरे पास बहुत है। मैं सदा ही परोपकारी हूँ। मैं इसीलिए परोपकारी हूँ क्योंकि मान, अपमान,अहंकार को छोड़ दिया है। अहंकारी व्यक्ति स्वार्थी होता है। मैं ही हूँ। अन्य मेरे बराबर न होवे यही तो क्षुद्रता को प्राप्त करवाती है। मैं स्वयं अपने आप में संतुष्ट आनंदित हूँ क्योंकि मैंने बाह्य भोग पदार्थो का सेवन करना छोड़ दिया है।

दस दरवाजे शरीर के है। उनमें पाँच दरवाजों से भोग्य पदार्थो का सेवन किया जाता है, तो उनकी बाह्य वृत्ति हो जाती है। मैंने ये आँखें, कान, नाक, त्वचा, रसना आदि से विषयों का सेवन करना छोड़ दिया है। ये दरवाजे बंद कर लिये है। विषय प्रवेश द्वार बंद होगा, तो प्रवेश कहाँ से करेंगे। मन की चंचलता भी प्राणायाम द्वारा मिटा दी है। इन्हीं दसों दरवाजों पर ताला लगा दिया है। अन्तर आत्मा की अनुभूति से मैं तुम्हारे सामने विद्यमान हूँ। ऐसा कोई कुशल साधक होगा तो परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकेगा।

जब दसों दरवाजे बंद हो गये तो भीतर (पोल) शून्य बन जायेगा। बाह्य सांसारिक विचार वासनाओं से शून्य होकर एकाग्रचित्त प्रसन्नचित्त होगा। जिस प्रकार से राव युधिष्ठिर ने आराधना की थी, उसी प्रकार से हे भाई! आराधना करो। जिससे सफलता मिल सकेगी। जो आप को बतलायी गयी है। यही युधिष्ठिर की उपासना एवं धर्म का पालन है।

जिस गुरु परमात्मा के समीपस्थ हो जायेंगे, अर्थात् वृत्ति की एकाग्रता हो जायेगी, तो फिर संसार के कितने ही कष्ट हानि आदि आजायेगी तो फिर नहीं रोयेगा। जो विलाप करने के समय में भी विलाप नहीं करेगा। दुनियां विनाश शील है, यदि कुछ भी विनाश होगा तो भी तुम्हारा कुछ भी नष्ट नहीं होगा। तुम स्वयं

अपने आप में स्थिर हो।

दुनिया राग-द्वेष से परिपूर्ण है। जब तुम आत्मस्थ योगस्थ हो जाओगे, तो दुनिया आपकी दुश्मन हो जायेगी। आप से टेढी चलेगी। किन्तु उससे तुम्हारा कुछ भी टेढापन नहीं हो जायेगा। ऐसी ध्यानावस्था में योगी परमात्मा के अति निकट से भी अति निकट आ जाता है। जीव ईश्वर दोनों एक हो जाते हैं। बीच की उपाधि तिरोहित हो जाती है। हर प्रकार की परिस्थिति में प्रसन्न चित्त रहेगा। छोटे मोटे दु:खों से रोना छूट जायेगा। आँखों में दुख के आँसू नहीं बहायेगा।

संसार में लोग तो पुल या मार्ग से पार होते हैं, किन्तु समाधिस्थ जन के लिये तो विना किसी सहारे के ही संसार सागर से पार हो जाना सुलभ है। ज्ञान समाधि में अवस्थित जन पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है। तभी सांसारिक मोह माया छूट जाती है। साधना भक्ति भाव एकाग्रवृति से की जाती है। यह शरीर ही लोचन यानि देखने का अर्थात् साधना करने में सहायक है। इस शरीर से ही परमात्मा को प्रत्यक्ष कर सकते हैं। अन्य शरीरों द्वारा असंभव है, किन्तु धनुष की डोरी पर बाण चढता है, तभी वह आगे लक्ष्य को बेध पाता है। उसी प्रकार से यह शरीर भी अपने सहायक मन बुद्धि द्वारा ही लक्ष्य तक, परमात्मा तक पहुँच पायेगा, क्योंकि इसी शरीर में ही तो सत्चित् आनंद स्वरूप परमात्मा विराजमान हैं।

हे हाली! खेती करने वाले किसान! साधना करने वाले साधक! यदि तुम्हें खेती एवं साधना करनी है तो ऐसी युक्ति से करो जो सिद्धि की प्राप्ति हो जाये। खेती करने वाला कृषक शून्य एकान्त में जाकर खेती करे तो उसकी खेती सफल होती है।

उसी प्रकार से साधक भी एकान्त में बैठ कर सभी धारणाएँ वासनाएँ छोड़कर मन की एकाग्रता का अभ्यास करे, तो उसकी भी साधना सफल होगी। इस प्रकार से श्री देवजी ने साधना भजन भक्ति का मार्ग बतलाया जो सभी के लिए उपयोगी एवं तत्त्व प्राप्ति कराने वाला है।

धन की असारता के सम्बन्ध में शब्द

एक राजा तब आयकै, ऐसी करी जो बात
अर्थ गर्थ वाहन घणा, सुनिये सतगुरू बात
दान पुण्य नीकै करै, सो क्यूं समझे देव।
अब तो सतगुरु दाखबो, जो पावा म्हे ही भेव।

सद्गुरु देव से शब्द श्रवणार्थ न्यात जमात सम्भराथल पर विराजमान थी। हे वील्हा! उसी समय देखा कि एक राजा सम्भराथल पर देवजी के पास आया।

देवजी से कहने लगा-हे सद्गुरु! मेरी बात भी सुनो। मैं एक राजा हूँ। मेरे पास जो कुछ भी हाथी, घोड़ा, वाहन, सेना, शस्त्र, धन आदि होना चाहिये, वह सभी कुछ मेरे पास है। दान पुण्य भी मैं बहुत ही करता हूँ। दुनिया वाले मुझे जानते हैं। किन्तु आप मुझे नहीं जानते हैं। इतना तो मेरे पास है। अन्य क्या होना चाहिये यह आप बतलावे। श्री जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-100

ओ३म् अर्थूं गर्थूं साहण थाटूं, कूड़ा दीठो ना ठाठों।
कूड़ी माया जाल न भूलीरे राजेन्द्र, अलगी रही ओजूं की बाटो।
नव लख nताला बार करीलो, बार करे कर बंद करीलो।
बंद करे कर दान करीलो, दान करे कर मन फूलीलो।
तंत मंत बीर बेताल करीलो, खायबा खाज अखाजूं।
निरह निरंजन नर निरहारी, तऊ न मिलबा झंझा भाग अभागूं।

हे राजन्! यह धन-दौलत, हाथी, घोड़ा आदि का ठाठ बाट सभी कुछ झूठा है। जो वस्तु स्थायी नहीं है, उसका ठाट बाट कैसा? झूठी माया जाल में भूलना नहीं। इस माया जाल में फंस जाओगे तो सदा के लिए ही फंसे रह जाओगे। कभी बाहर नहीं निकल सकोगे। माया जाल से दूर ही रहना।

सत्य मार्ग का अन्वेषण करो तथा उसी से ही मन को जोड़ो। तुम कहते हो कि मैंने दान बहुत दिया है। यह बतलाओ बहुत कितना होता है? यदि नौ लाख दंताला हाथियों को एकत्रित करके उन्हें बंद करके और सभी का ही दान करो और दान करके मन में प्रफुल्लता लाओ। कि मैंने बहुत किया है। तथा तंत्रमंत्र वीर बेताल आदि की साधना करो। अखाद्य मांसादि का भोजन करते हो तो तुम्हें निरंजन,निराकार, नर निरहारी विष्णु की प्राप्ति तो नहीं हो सकेगी।

परमात्मा की प्राप्ति करना ही मानव तन का मुख्य कर्तव्य है। वह बिना साधना के नहीं मिल सकेगा। कोई कोई विरला मनुष्य होगा जो उसे प्राप्त कर सकेगा। दूसरे तो अभागी ही होगे जो खाली रह जायेंगे।

अमावस्या व्रत कथा महात्म्य

एक समै बात चाली, कोई कह तीरथ को बड़ो धरम, कोई कह मावस को बड़ो धरम, कोई कह बारस को बड़ो धरम,कोई कह नवग्रह पूजा को बड़ो धरम। जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-101

ओ३म् नितहि veko I नित संकरांति, नितही नवग्रह वैसें पांति।
नितही गंग हिलोले जाय, सतगुरु चीन्हे सहजै न्हाय।
निरमल पाणी निरमल घाट, निरमल धोबी मांड्यो पाट।
जे यो धोबी जाणै धोय, घर में मैला वसत्र रहै न कोय।
एक मन एक चित साबण लावे, पहरंतो गाहक अति सुख पावै।
ऊँचै नीचै करे पसारा, नहीं दूजै का संचारा।
तिल मैं तेल पहुप मैं वास, पांच तत मैं लियो प्रकाश।
बिजली के चमकै आवै जाय, सहज शून्य मैं रहै समाय।

नैयो गावै न यो गवावै, सुरगे जाते वार न लावै।

सतगुरु ऐसा तंत बतावै, जुग जुग जीवै बहुर न आवै।

नाथोजी उवाच-हे वील्हा! एक समय हम सभी भक्त मण्डली सम्भराथल पर श्री देव के निकट एकत्रित हुए थे। हमारे बीच में ही विवाद खड़ा हो गया था। हमारे में से कोई कहता था तीर्थ-सेवन स्नान का सबसे बड़ा धर्म है। दूसरा कहने लगा कि अमावस्या का व्रत रखना ही बड़ा धर्म है क्योंकि मैं अमावस्या का व्रत करता हूँ। तीसरा कहने लगा कि शास्त्रो में द्वादसी का महात्म्य अधिक बतलाया है। चौथा कहने लगा कि संक्रान्ति का दान पुण्य करना ही बड़ा धर्म बतलाया है। पाँचवाँ कहने लगा कि नौ ग्रहों की पूजा करना ही बड़ा धर्म बतलाया है।

''मुण्डे मुण्डे मति भिन्ना'' जितने लोग थे उनका विचार भिन्न भिन्न ही था। कहीं कोई निर्णय पर नहीं पहुँच सका था तथा कोई भी अपनी हार स्वीकार करने को तैयार नहीं था। ऐसी दशा में श्री जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-

हे भक्तो! अमावस्या नित्य ही आती है। संक्रान्ति भी नित्य ही आती है। नौ ग्रह भी पंक्ति लगाये हुए नित्य ही आपके सामने उपस्थित हैं। तीर्थ शिरोमणि गंगा भी नित्य हिलोरे ले रही है। आपके निकट बहती है। आप लोग व्यर्थ में विवाद क्यों कर रहो हो ? एक वाक्य को श्रवण कर के सभी विवादी प्रसन्न हो गये और हर्षित हो कर कहने लगे -

देवजी ने हमें जिता दिया है। हमारी ही बात का समर्थन किया है। आप लोग श्री देवजी की बात को समझ नहीं पाये हैं। नित्य प्रति अमावस्या एवं सक्रान्ति कहाँ आती है ? ये तो एक माह बाद आती है। तथा नौ ग्रह भी एक साथ पंक्ति लगा कर कैसे बैठ सकते हैं ? तथा तीर्थ गंगा स्नान आदि भी नित्य प्रति सुलभ कहाँ है। हे वील्हा ! इस प्रकार की वार्ता सुन कर श्री देवजी के सम्मुख हुए और कहने लगे-

हे महाराज! नाथोजी की बात का उत्तर चाहते हैं,आपने जो नित्य की बात कही यह तो असंभव है।श्री देवजी ने कहा-आप लोग ठीक कह रहे हैं। बाह्य गंगा स्नान अमावस्या का व्रत संक्रांति का पुण्य दान और नौ ग्रह नित्य एकत्रित हो सकते हैं, किन्तु जो व्यक्ति सद्‌गुरु चीन्हे सहजै न्हाय जो सद्‌गुरु को पहचानता है और सहज में ही ज्ञान में स्नान करता है। उसके लिए नित्य ही शुभ अवसर गंगा स्नानादि उपस्थित है।

सद्‌गुरु की पहचान एवं शरणागति हो जाये तो सहज में ही पुण्य का भागी हो जायेगा। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति हो जाएगी। छुपे हुए अपार आनंद की प्राप्ति संभव हो जायेगी। यही बड़ा धर्म होगा। यदि सद्‌गुरु परमात्मा का स्मरण अबाध गति से चलेगा तो उसके लिए जल स्वत: ही निर्मल (शुद्ध, पवित्र) हो जायेगा। उसके शरीर से छूकर जल भी गंगा जल हो जायेगा। भगवान् विष्णु के चरणों से निकली गंगा भी तो भगवान् के चरणों का स्पर्श करने से गंगा बन गयी।

ऐसा पवित्र आत्मा सतत विष्णु का भजन करने वाला जहाँ पर भी बैठेगा, जिस घाट स्नान पर विराजमान होगा, वह पृथ्वी भी उसके स्पर्श से तीर्थस्थल बन जायेगी। उसके निकट आने वाले भी वैर भाव को भूल जायेंगे। वह संत महापुरुष धरती और जल को तीर्थ बना देगा। शरीर में विराजमान जीवात्मा ही धोबी है। यह जन्मों-जन्मों के पाप को धो डालेगा। प्रथम विष्णु के स्मरण से पवित्र होगा तो अपने संचित पाप कर्मो को एक मन एक चित साबुन लगा कर चिपके हुए कर्मो को साफ कर डालेगा।

भगवान् ने यह शरीर रूपी दिव्य चादर प्रदान की है। इसके न जाने कितने जन्मों का मैल लगा है। इस लिए तो बार बार जन्म लेना एवं मरना पड़ता है। अबकी बार अपना उद्धार स्वयं ही कर लेगा। अपने घर

में एक भी मैला वस्त्र (पाप कर्म) नहीं रहने देगा। द्विधा वृत्ति का त्याग तो तभी हो सकेगा, जब आत्म साक्षात्कार होगा। जब उसे एक बार दिव्य खजाने का पता लग जायेगा, तो फिर संसार के विषयों में नहीं भटकेगा। एकाग्र वृत्ति युक्त हो जायेगा। ऐसी दशा में शरीर रूपी वस्त्र में छिपी हुई जीवात्मा अति आनंद को प्राप्त होगी।

ऊपर नीचे चहुं दिस दृष्टि का प्रसार करेगा तो सर्वत्र वही एक ही सत्‌चित्‌ आनंद रूप ब्रह्म दृष्टि गोचर होगा। जिस प्रकार से तिल में तेल एवं फूल में सुगंधी रहती है, उसी प्रकार से पाँचों तत्त्वों में उसी का ही प्रकाश विद्यमान है। आकाश, वायु, तेज, जल एवं धरणी से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। उन्हीं पाँचों में ज्योति चेतनता उसी परमात्मा की ही है, ऐसा अनुभव करेगा।

मेघों से जब आकाश भर जाता है। वर्षा होने लगती है तो बिजली चमकने लगती है। वह एक क्षणिक ही होती है। उसी प्रकार से शरीर में भी जीवात्मा एक चमक ज्योति की तरह है। एक क्षण में ही शरीर में प्रवेश करती है तथा जब शरीर से जीव ज्योति बाहर निकलती है, तो बिजली के चमकारे की भांति अति शीघ्र ही आकाश शून्य में विलीन हो जाती है।

परम तत्त्व प्राप्त पुरुष परम शांत होता है। हे सज्जनो! तुम्हारी तरह उछल-कूद, वाद-विवाद नहीं करता। जब तक उस परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई है, तब तक वह अधूरा ही है। वह चाहे दुनिया की सभी वस्तुएँ प्राप्त क्यों न करले? अहंकार शून्य परम भक्त वह न तो किसी अन्य के गुणगान ही करेगा। न ही किसी के प्रशंसा के गीत ही गायेगा। और न ही अपने अहंकार की पुष्टि के लिये दूसरों से गवायेगा। ऐसा व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति में देरी नहीं करता है।

सद्‌गुरु कहते हैं कि मैं तुम्हें ऐसा तत्त्व बतला रहा हूँ। जीवन जीओगे तो युगों युगों तक युक्ति पूर्वक आनंदित होकर और शरीर शांत हो जायेगा तो पुन: जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आओगे। हे लोगो! यही धर्म महान्‌ धर्म है। इसी का ही आचरण करो।

वील्हो उवाच-हे गुरु देव! आपने जाम्भोजी द्वारा उच्चरित शब्दों का बखान किया। उच्च कोटि के साधक की बात बतलायी। किन्तु साधारण जन के लिए अमावस्या व्रत, गंगा स्नान आदि का भी माहात्म्य बतलाने की कृपा करे। क्योंकि उनतीस नियमों में एक नियम अमावस्या का व्रत करने का भी तो है। यदि आपने विष्णु जाम्भोजी के श्री मुख से अमावस्या व्रत की विशेषता-माहात्म्य सुना है तो अवश्य ही बतलावें।

नाथोजी उवाच-एक समय सम्भराथल पर विराजमान श्री देवजी से मेरठ के राजा एवं साथरियों ने यही प्रश्न पूछा था। श्री देवजी ने अमावस्या व्रत का माहात्म्य बतलाते हुए एक प्राचीन इतिहास बतलाया था। वही मैं तुझे बतलाता हूँ।

काशी में सोमदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी धर्मपत्नी एवं एक लड़का तथा एक लड़की ये चारों जने गंगा स्नान करते भगवान्‌ का भजन परम श्रद्धा विश्वास के साथ करते। एक दिन उनके घर में एक यति आया। उन चारों जनों ने उनके चरणों में मस्तक झुकाया। उस यति ने उनको आशीर्वाद देते हुए इस प्रकार से कहा-प्रथम ब्राह्मणी को आशीर्वाद देते हुए कहा-सौभाग्यवती हो। जब उसकी कुंवारी कन्या ने मस्तक झुकाया तो यति ने कहा- चिरंजीव हो।

ब्राह्मणी ने पूछा-हे यति! ऐसा भेद क्यों? यति ने कहा-मेरा वचन असत्य न हो जाय इसीलिए मैंने जो होनहार है, वही कहा है। ब्राह्मणी बोली वह होनहार क्या है? यति कहने लगा-इस कन्या का पति जब चौथा फेरा लेगा, तब मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए मैंने इसे सौभाग्यवती नहीं कहा।

ब्राह्मणी कहने लगी- हे यति! यदि आपको इस बात का पता है तो यह भी बतलावें कि क्या इसका कुछ उपाय भी हो सकता है? यदि कोई उपाय है तो अवश्य ही बतलावें। यदि ऐसी दुर्घटना हो गयी तो हम तो सभी रो-रो कर के मर जायेंगे।

यति उवाच-हाँ एक उपाय अवश्य ही हो सकता है। कदली वन में एक गूजरी रहती है वह धन ऐश्वर्य से संपन्न है। नित्य प्रति अभ्यागतों को भोजन देती है। जिसके यहाँ सदाव्रत चलता है। वह गूजरी अमावस्या का व्रत विधि विधान से करती है। यदि वह यहाँ आ जाये और एक अमावस्या व्रत का फल प्रदान कर दे, तो अवश्य ही तुम्हारी कन्या का पति जीवित हो जायेगा।

ब्राह्मणी उवाच- हे यति जी! आप ही प्रमाण हैं। किन्तु वह धन ऐश्वर्य से संपन्न हमारी गरीबों की झोंपड़ी में क्यों आयेगी?

यति उवाच- वह अन्य धनवानों जैसी मद में अंधी नहीं है। आप अवश्य ही जाओ। परोपकारी जीव है। अवश्य ही तुम्हारे दु:ख से द्रवित होकर चली आयेगी। ऐसा कहते हुए वह यति तो चला गया।

वृद्ध ब्राह्मण ने अपने पुत्र को पास बुलाया और यति की बात बताते हुए कहा-हे बेटा! तुम कदली वन को जाओ और गूजरी को यहाँ बुला लाओ। मैं तो वृद्ध हो गया हूँ। मेरे से तो चला नहीं जाता है आज्ञाकारी बेटे ने अपने पिता की बात स्वीकार की और माता पिता को प्रणाम करके कदली वन को रवाना हुआ ।

बीच में अनेको वनों को पार करते हुए, वन की शोभा निहारते हुए, केई दिनों के पश्चात कदली वन में प्रवेश किया। गूजरी के स्थान को देखा और अति प्रसन्न हुआ। वहाँ पर सदा व्रत बाँटा जा रहा था। ऋषि, ब्रह्मचारी, साधु-संत भिक्षा लेने आते हैं। उन्हें प्रेम से भिक्षा मिलती है। वे लोग तो भिक्षा प्राप्त कर के चले जाते हैं, उन्हीं की लाइन में वह काशी का ब्राह्मण पुत्र खड़ा होकर भिक्षा प्राप्त कर लेता है। यह नित्य प्रति की क्रिया हो चुकी थी।

वह ब्राह्मण जिस कार्य हेतु आया था, वह तो सफल होता नहीं दीख रहा था। भीड़भाड़ में मिलना वह भी अपने स्वार्थ के लिए तो हो सकता है, असफलता ही हो जाए। जब किसी भी प्रकार से गूजरी से मिलन न हो सका, ब्राह्मण ने मिलने का एक सरल उपाय ढूंढ निकाला। वह सेवा करना ही था। सेवा कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

ब्राह्मण ने देखा कि लोग पगडंडी पर आ जा रहे हैं, किन्तु मार्ग साफ नहीं है। मार्ग पर खात, गोबर, कंकड़, पत्थर, बिखरे पड़े हैं। चारों तरफ से घास उग आयी है। मार्ग छोटे हो गये हैं। सेवा का कार्य अपने आप ही खोज लिया और सेवा में लग गया। दिन में तो विश्राम करता और रात्रि में जब सभी सो जाते तो वह ब्राह्मण बालक मार्ग में सफाई करता। झाड़ू लगाता, कंकर पत्थर चुन चुन कर हटाता। घास काटकर मार्ग चौड़ा करता। आने जाने वाले आगंतुकों के लिए मार्ग सुमार्ग हो गया।

सभी ने आश्चर्य प्रगट किया कि ऐसा कौन परोपकारी होगा जो इस कार्य को संपन्न कर रहा है। धीरे धीरे बात गूजरी तक पहुँची। एक दिन गूजरी ने अपने सेवकों से कहा- वह कौन है जो सेवा कार्य कर रहा है? उसे पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करो। हमारे ऊपर बड़ा भारी अहसान हो रहा है। गूजरी का बात समर्थन कर के एक रात्रि में उस ब्राह्मण बालक को पकड़ कर के गूजरी के सामने उपस्थित किया। ब्राह्मण बालक तो मिलना ही चाहता था और उन्होंने यह कार्य सहज में ही करवा दिया। गूजरी उवाच- हे ब्राह्मण! आप कहाँ से आये हैं? किस हेतु आपके अयोग्य यह कार्य कर रहे है? हमारे ऊपर भार चढा रहे

हैं।

ब्राह्मण उवाच- हे गूजरी ! मैं बहुत ही दूर देश काशी से चल कर आया हूँ। हमारे घर पर एक यति आया था। उन्होंने मेरी बहन के पति की मृत्यु विवाह के चौथे फेरे में बतलायी है। आप कृपा कर चलें, तथा यति के अनुसार एक अमावस्या के व्रत का फल अवश्य ही प्रदान करें। आप हमें सभी को बचा लें। मैं आपको अपनी बहन के विवाह में निमंत्रण देने आया हूँ।

गूजरी उवाच-अवश्य ही मैं आऊँगी। आपके परोपकार- सेवा का कार्य करने से हमारे ऊपर ऋण चढ गया है। उसे मैं आकर अवश्य ही चुकाऊँगी। आप सहर्ष अपने देश वापिस जाओ। तुम्हारी बहन का विवाह जब तय हो जाये, तब मेरे कों पत्र लिख देना। मैं अवश्य ही आऊँगी। मैं कुछ करने वाली नहीं हूँ। जो कुछ करेंगे, वह भगवान् ही करेंगे। ऐसा कहते हुए गूजरी ने ब्राह्मण बालक को विदा किया।

अपने आने का प्रयोजन सफल हुआ मान ब्राह्मण बालक सहर्ष वापिस काशी लौट आया और अपने माता-पिता को कुशल समाचारों से अवगत करवाया। कुछ दिन व्यतीत होने के पश्चात् ब्राह्मण ने गूजरी को पत्र लिखा-सिद्ध श्री गूजरी जोग, तुम हमारे देश में पधारोगे तो हमारा रोग कटेगा। आप तो करुणामयी परोपकारी हैं। कदली वन की निवासी देवी, हमने विवाह लग्न लिख दिया है। हम आपको अपने स्वार्थ हेतु कष्ट देते हैं। किन्तु आप तो सदा हरि के गुणगान में अपना समय व्यतीत करती हो। हमारे अपराध को क्षमा करें। समय पर अवश्य ही पधारना। आपके आने में ही हमारा जीवन है, अन्यथा मृत्यु है। कागज देकर एक वाहक को भेजा। गूजरी ने कागज पढा और अपने बेटे बहू को पास बुला कर कहने लगी-

हे बहू ! मैं काशी जा रही हूँ । एक महीने में लौट कर आऊँगी। वहाँ पर मैं अर्जित पुण्य का दान करने जा रही हूँ। हो सकता है पीछे कुछ अनहोनी हो जाये तो घबराना नही। अपने घर का कार्य ठीक ढंग से करती रहना। अपना नियम-मर्यादा नहीं तोड़नी, मैं अति शीघ्र ही लौट आऊँगी।

इधर कदली वन से गूजरी ने काशी के लिये प्रस्थान किया और उधर काशी में सोमदत ब्राह्मण के घर विवाह कार्य प्रारम्भ हो गया। विवाह का समय आ चुका था। विप्रगण वेद मंत्रों का उच्च स्वर से उच्चारण करने लगे। अग्नि में आहुति दी जाने लगी। ज्यों ज्यों समय निकट आने लगा त्यों त्यों सोमदत की चिंता बढने लगी। वह समय तो निकट आ गया है, किन्तु अब तक गूजरी नहीं आयी। न जाने क्या होगा ?

वरवधू अग्नि की परिक्रमा करने लगे। ज्योंहि चौथी परिक्रमा पूरी करी त्योंही वह वर बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा। प्राण पखेरू उड़ गये। सोमदत विलाप करने लगा-चारों ओर हाहाकार होने लगा। यह क्या हो गया ? उसी समय ही उपस्थित महिलाओं के बीच में से गूजरी उठी और हाथ में जल लेकर संकल्प किया और कहा-

हे भगवान् विष्णु ! हे अग्नि देवता ! यदि मैंने मन, वचन, कर्म एवं श्रद्धा से अमावस्या का व्रत पूर्ण विधि विधान से किया है, तो मैं एक अमावस्या का फल इस वर ब्राहमण को देती हूँ। यह ब्राह्मण जीवित हो जाये। ऐसा कहते हुए जल छिड़का और वह ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ। ओ३म का उच्चारण करने लगा। कहने लगा न जाने क्यों मुझे मूर्छा आ गयी थी।

चारों ओर पुन: गाजे-बाजे, वेदों की ध्वनि का प्रसार होने लगा। सभी ने गूजरी के अमावस्या के व्रत का फल प्रत्यक्ष देखा और जय जयकार करने लगे। गूजरी तत्काल वहाँ से रवाना हुई। उन लोगों ने बहुत रोका आदर किया किन्तु कहने लगी-मुझे अतिशीघ्र वापस जाना है। मार्ग में चलते-चलते गूजरी ने एक गाँव में तालाब के किनारे डेरा लगाया और पूछा कि आज क्या तिथि है ? ज्योतिषियों ने बतलाया कि

आज तो चतुर्दशी है। कल पूर्ण अमावस्या है। गूजरी ने जिस अमावस्या का फल प्रदान किया था, उसकी पूर्ति वहाँ पर अमावस्या का व्रत करके की और वापिस अपने घर आ पहुँची। वहाँ पर बड़े बेटे की बहू ने कहा-श्वासु जी! आपके बड़े बेटे को तो न जाने क्या हुआ? वे तो हिलते डुलते भी नहीं हैं। मैंने तो आपकी बात पर विश्वास किया है। अब तो आप ही प्रमाण हैं। गूजरी ने बेटे के शयन कक्ष में जाकर देखा तो वह तो मृत था। गूजरी ने अपनी झारी से जल लेकर उन पर छिड़का और अमावस्या के व्रत के प्रभाव से पुन: जीवित किया।

हे वील्हा! इस प्रकार का माहात्म्य श्री देवजी ने बतलाया था। वह मैंने तुझे बतला दिया है। इसलिए उनतीस नियमों में एक नियम है कि अमावस्या का व्रत करो। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव है। तुरंत फल देने वाला है। वेदों में कहा ''अमावस्या देव मातरम्'' अमावस्या देवताओं की माता है। जब अमावस्या की रात्रि में सूर्य चन्द्र दोनों का ही प्रभाव धरती पर समाप्त हो जाता है तो देव माता अमावस्या का प्रभाव रहता है। सूर्य-चन्द्र एवं अमावस्या ये तीनों ही देवताओं की आँखें हैं। अमावस्या के दिन एवं रात्रि में चन्द्रमा सर्वथा ही लुप्त हो जाता है। चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है। चन्द्र किरणों द्वारा हमें संजीवनी शक्ति प्रदान करता है। उसी से ही सम्पूर्ण सृष्टि में स्थित वनस्पति, मानव, पशु, पक्षी आदि का विकास एवं प्रफुल्लता आती है।

अमावस्या के दिन चन्द्र से वंचित होने से व्रत करना चाहिये। उस दिन किया हुआ भोजन विकार पैदा करता है। शरीर के भोजन प्रतिकूल होता है। चूंकि अमावस्या रात्रि देवत्व शक्ति विहीन होती है तो उस रात्रि में भूत- प्रेत- राक्षस आदि बलवान हो जाते हैं। हमारी दैवी शक्ति मंद हो जाती है। इसीलिए अमावस्या का व्रत करके हवन यज्ञ, पूजा पाठ, आदि देवता संबंधी कार्य ही करे। सांसारिक कार्य न करे, जिससे कि हम प्रेतादिक से पीड़ित हो जाये।

वेदों ने आदेश दिया है कि ''दर्श पौर्णमास्यां यजेत्'' अमावस्या एवं पूर्णमासी को यज्ञ करे। शुभ कार्य ही करे। पर्व दो ही हैं एक अमावस्या दूसरी पूर्णमासी। यज्ञ तो दोनों में ही करे। अनन्त गुणा फलदायी है। किन्तु व्रत अमावस्या का ही करे। पूर्णमासी का व्रत करने का विधान नहीं है, क्योंकि पूर्ण चन्द्रमा को तो खीर बनाये और भोजन करे यही उत्तम होगा।

जाम्भोजी ने उन्नतीस नियमों में एक नियम बताया है कि ''अमावस्या का व्रत राखणौ, भजन विष्णु बतायो जोय।''

बूढ़े के प्रति शब्दोपदेश

एक बिश्नोई आय कै, पूछै भेद विचार।
बेटा बेटी कुटुम्ब सूं, मोह न छूटे लिंगार।
घर मां ही मुक्ति भी हो, सो तुम कहो मुरार।
बूढे ऐसे बुझियो, जीव का करो उद्धार।

श्री जम्भेश्वरजी सम्भराथल पर विराजमान थे। एक बूढा नाम का खिलेरी गोत्र का बिश्नोई आया और उन्होंने पूछा– हे गुरु देव! मैं अब वृद्ध हो गया हूँ, मरने की तैयारी चल रही है, किन्तु बेटा–बेटी, पौत्र आदि का मोह नहीं छूट रहा है। ज्यों–ज्यों बुढापा आता जाता है, त्यों–त्यों तृष्णा अधिक बलवती होती जा रही है। आप यदि घर बार छोड़ कर संन्यास की बात कहें तो मेरे लिये ठीक नहीं होगी। मैं किसी भी प्रकार से प्राचीन परम्परा (संन्यास) ग्रहण करने के योग्य नहीं हूँ। घर परिवार के बीच में ही रह कर मुक्ति हो जाये ऐसा विचार बतलावे। इस प्रकार से बूढे ने जीव का उद्धार किस प्रकार से होवे यह पूछा था। श्री देव जाम्भेश्वरजी ने शब्द सुनाया–

शब्द–102

ओ३म् विष्णु विष्णु भण अजर जरीजै, धर्म हुवै पापां छूटीजै।
हरि पर हरि को नाम जपीजै, हरीयालो हरि आण हरूं।
हरी नारायण देव नरूं।
आशा सास निराश भईलो, पाईलो मोक्ष दवार खिणूं।

हे वृद्ध पुरुष! इस समय आप कोई अन्य साधना करने में समर्थ नहीं हो क्योंकि वह अवस्था चली गयी है। तिलों में से तेल निकल गया है। अब तो घर परिवार में रहते हुए ही, विष्णु–विष्णु इस महा मंत्र का जप करो। घर परिवार में बहुत कुछ हानि–लाभ, अर्थ–अनर्थ होगा, किन्तु तुम उनमें भाग न लो। बाह्य सांसारिक उपद्रवों से उत्तेजित न होवे। अंदर की शाश्वत शांति भंग न होने पावे। तुम्हें जो काम क्रोध, लोभ, मोह, सदा ही जलाते रहे हैं। उन्हें तुम पहले ही जला डालो। अर्थात् जरणा करो।

विष्णु का जप एवं जरणा कर लोगे तो धर्म होगा। धर्म होगा तो पापों से छूटेगा। धर्म ज्ञान रूपी अग्नि, पाप रूपी पुराने घास को जला डालेगी। इस प्रकार से लगातार अबाध गति से हरि का जप करो। अन्य कल्पित देवता को छोड़ कर, केवल एक हरि का ही जप करो। यही जीवन का लाभ है। अवश्य ही लाभ प्राप्त कीजिए और सतपन्थ के अनुयायी बनिये। यह सतपन्थ ही तुम्हें परमात्मा के धाम तक पहुँचा देगा। वहाँ से वापिस लौट कर नहीं आना पड़ता।

हे बूढा! अब तो तुम हरिमय ही हो जाओ। जहाँ देखो, वहाँ हरि विष्णु ही नजर आवे। कण कण में विद्यमान हरि हरियाली रूप में देखो। हरि आण, हरि की माया प्रकृति में ही तो वही सत्ता रूप से दर्शनीय है। विवेक द्वारा पानी का पानी, दूध का दूध कर देखो। सार तत्त्व ग्रहण करलो और संसार को त्याग दो।

हरि नारायण विष्णु ही देवताओं के भी देवता है। सभी के प्राण रूप से विद्यमान होकर सभी का पालन पोषण करते हैं। वही हमारे सर्वस्व हैं। उनका आधार ही तुम्हें जीवन गति, युक्ति, मुक्ति प्रदान करेगा।

केवल एक विष्णु की प्राप्ति की आशा ही उत्तम आशा है। अन्य संसार की आशाओं से निराश हो जाईये। क्योंकि संसार प्राप्ति की इच्छा अब तक किसी की पूर्ण नहीं हुई है। एक आशा की पूर्ति यदा कदा हो भी जाती है, तो आगे हजारों आशाएँ और खड़ी हो जाती हैं, कहाँ तक पूर्ण करेंगे। इसलिए आशा रूपी फांसी में न बंध कर, विष्णु का जप करें। हे बूढा! अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त होना है, तो इस शब्द को धारण करले। इस प्रकार से बूढे को शब्द सुनाया। युक्ति-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

मूलो पुरोहित के प्रति शब्दोपदेश

एक समै देव जी दीवाण्य मूलौ पुरोहित आयौ। मूलो दूहो कह- मूल रो वचन-
विण्य बोल्या समझै नहीं, बोल्या बड़पण जाय।
अबूझा सूं बोलणों, कारी लगै न काय।।
जाम्भोजी श्री वायक कह-

शब्द-103

ओ३म् देख्या अदेख्या सुण्या असुण्या, क्षिमा रूप तप कीजै।
थोड़े मांहि थोड़ेरो दीजै, होते नाहि न कीजै।
कृष्णी मया तिहूँ लोका साक्षी, अमृत फूल फलीजै।
जोय जोय नांव विष्णु के दीजै, अनन्त गुणा लिख लीजै।

मूलो पुरोहित पहले राव माल देव के साथ लोहावट की साथरी पर आया था। जाम्भोजी के चमत्कारों से परिचित हुआ था। अब की बार दुबारा घर-परिवार के झगड़े से दु:खी हो कर आया था। उन्होंने एक दोहा कहा-जिससे यह मालूम पड़ता है कि मूला अति दु:खी था। न तो अपने दु:ख की बात किसी से कह सकता था और न ही कहे बिना रह ही सकता था। यदि किसी से कहे तो भी उसकी समस्या का कोई समाधान नहीं था। अंदर ही अंदर घुटन महसूस करते हुए जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर आया था और इस प्रकार से कहने लगा- हे देव! मैं कुछ नहीं बोलता हूँ, तो वे लोग समझेंगे कैसे? अपनी बात मैं बोल कर ही बता सकता हूँ, और यदि सच्ची बात बोलता हूँ तो झगड़ा होता है। अपने ही परिवार से झगड़ा करना ठीक नहीं है। झगड़े से मेरी मान-मर्यादा बड़प्पन समाप्त हो जाता है।

अज्ञानी मूढ़ों से कुछ कहना ही व्यर्थ है। उस बोलने से कुछ भी नहीं होगा। इसलिए मूला कहने लगा- ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिये? आप ही प्रमाण है। श्री देवजी ने मूले को लक्ष्य करके सभी के प्रति शब्द सुनाया-

हे मूला! जो कुछ तुम आँखों से देखते हो, वह तो अनदेखा करो। उसे देखकर उसे संस्कार रूप में जमने न दो। अन्यथा बीज की भांति वह अंकुरित हो जायेगा। देखा हुआ अनदेखा कर दो। संसार में रहोंगे तो अच्छा-बुरा सभी कुछ सुनोगे, किन्तु तुम्हें सुना हुआ भी अनसुना कर देना चाहिये। कानों के द्वारा सुना हुआ शब्द भी भीतर जाकर संस्कार के रूप में स्थिर हो जाता है और अप शब्द सुना हुआ तो संस्कार के रूप में बैठा हुआ सदा ही दु:ख देता रहेगा। देखना-सुनना भी जीव को प्रदूषित कर देता है। इसीलिए अशुद्ध देखना-सुनना दोनों ही वर्जित है। शुद्ध देखना, सुनना हृदय को पवित्र कर के सदा ही आनंदित करता है।

हे मूला! क्षमा कर देना ही तपस्या है। अपने आप को संयमशील बना लेना ही सब से बड़ा तप है। संसार के लोग तो उत्तेजित करने की कोशिश करेंगे ही, किन्तु आप शांत रहिये। अपने आप के अहंकार को निवृत्त कर दे। यही बड़ी तपस्या ज्ञान प्राप्ति का साधन हो सकेगा। यदि आपके पास थोड़ा है, तो थोड़ा ही दीजिए। आपके पास होते हुए याचक को ना न कहे।

दान कई प्रकार से किया जाता है। विद्या दान, भक्तिदान, द्रव्यदान, गोदान, वस्त्र दान, इत्यादि दिया जाता है। जिसको आवश्यकता है, आप उसकी आवश्यकता को पूर्ण करने में समर्थ हैं, तो अवश्य ही पूर्ण कीजिए। यह आपका सात्त्विक दान होगा। आवश्यकता पूर्ण की जा सकती है, किन्तु इच्छा किसी याचक की अब तक पूरी नहीं की जा सकी है। आवश्यकतानुसार माँगने वाला सुपात्र है तथा इच्छा पूर्ति हेतु माँगने वाला कुपात्र है। कुपात्र को दान देना तामसी है। उसका फल शुभ नहीं मिलता।

भगवान् कृष्ण की माया फूलती और फलती है। जिस प्रकार से सुखेत में बोया हुआ बीज फलित होता है। यह माया तीन लोकों की साक्षी है अर्थात् तीनों लोकों का विस्तार इस माया से ही हुआ है। यह माया चंचला है। न जाने कब किस के पास जायेगी, धनवान बना देगी ? तथा न जाने कब किससे मुंह मोड़ लेगी और कंगाल बना देगी ?

हे मूला! अब तू विष्णु का नाम सचेत हो कर ले। यही तुम्हारे साथ जायेगा। शुभ घड़ी, संध्या बेला में लिया हुआ नाम अनंत गुणा होकर फूलता-फलता है। अन्य जंजाल छोड़ दे, यही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा।

अमोसरय एकै संसारी दुहो कह्यौ-
सुणी असुणी करां, दीठी कर अदीठा।
पड़दो फाड़े न बोलिय, ज सीर बल अभिवाण।
मूल की मनसां निसा हुई, परच्य पाय लागौ।

उसी समय उपस्थित एक संसारी व्यक्ति ने एक दोहा कहा- हे देव! आप जो कहते हैं वह ठीक है। हमें संसार में युक्ति पूर्वक जीवन यापन करने के लिए ऊटपटांग, अप्रिय सुनी-सुनाई बात अनसुनी कर देनी चाहिये और गलत आचरण आँखों से देखा हुआ भी अनदेखा कर देना चाहिये। तथा हमें सत्य प्रिय हितकर ही बोलना चाहिये। कभी ऐसी बात न कहे, जिससे गुप्त बात का पड़दा उठ जाये। कुछ बातें छिपाने योग्य होती हैं। उनको छुपाना ही चाहिये। तथा कभी अग्रगण्य बन कर चौधराहट नहीं करना चाहिये। यदि कार्य सुधर गया, तो उसका यश चौधरी को न देकर स्वयं अपने ऊपर लेंगे। और यदि बिगड़ गया तो सभी लोग अग्रगण्य पुरुष को ही दोष देंगे। मूला जो इच्छा लेकर आया था, जिस बात का समाधान चाहता था, वह इच्छा उसकी पूर्ण हो गयी। उसे समाधान मिल गया। श्री देवजी को प्रणाम किया। पुरोहिताई के अहंकार को गिरा कर के शुद्ध पवित्र मानव बन कर के शांति को प्राप्त हुआ। नाथोजी उवाच- हे वील्ह! मैंने वहाँ पर देखा कि उपस्थित जन समूह को जाम्भोजी ने एक पहेली सुनाई वह इस प्रकार से पहली सतगुरु जमात्य सं कही।

करषण संथाने पाप की जंत,खल संथान मुच्यते।
खल संथाने पाप की जंत,सो ग्रह संथाने मुच्यते।
ग्रह संथाने पाप की जंत गुरु संथाने मुच्यते।
गुरु संथाने पाप की जंत,से बजर लेप लिपते।
श्रब संथाने पाप की जंत,ते बुडत भवसागरूं।

सद्गुरु ने जमात से पहेली इस प्रकार से कही-कृषक खेती करता है। अन्न आदि पैदा करता है,खेती

करने से अनेक जीवों की हत्या एवं कष्ट होता है। उससे जो पाप होता है, वह तो जब खला यानि अनाज लूण चूण कर के निकालते हैं, तब वह पाप समाप्त होता है। तथा धान निकालते समय गाहटा आदि करने में जो पाप होता है, वह अनाज घर लेजा कर रोटी बना कर सभी को खिलाते हैं, तो उस पुण्य से पाप नष्ट हो जाता है। घर में अनाज पीसना, रोटी बनाना,आदि से जो चूल्हे चोके में होने वाला पाप वह गुरु स्थान में जाकर दान-पुण्य करने से, सुभ्यागतो को भोजन देने से उस पाप से मुक्त हो जाता है। गुरु स्थान में जाकर कोई दुर्भावना करे, मानसिक पाप करे तो वह बज्रलेप हो जाता है। छूटना असंभव है। सभी स्थानों में सर्वत्र पाप ही पाप करे, तो वह अवश्य ही संसार सागर में डूब जायेगा। इसलिये सावधान होकर सर्वत्र पाप से अवश्य ही बचें।

नाथोजी उवाच-उसी समय ही वहाँ उपस्थित गोरा बागड़ियाणी पूछ-जाम्भाजी! थोड़ा आखर घणो नफो हुवै असा सिखावौ। जाम्भोजी पहेली कह -

सीनान दान कण किया,होम जाप मेव चुं।
एक बोल जुग च्यारी,देव दान प्रजकुं।

गोरा कहने लगी-हे देवजी! हम लोग अनपढ है ज्यादा अक्षर हमें याद नहीं रहते, थोड़ा अक्षर होवे ऐसा अक्षर ज्ञान हमें बतलावे।

जाम्भोजी ने पहेली सुनाई-प्रात:काल में स्नान करना, सुपात्र को दान देना, शुद्ध आचरण करना, हवन करना, विष्णु का जप करना, सत्य प्रिय मधुर वचन बोलना, चारों जुगों से चले आ रहे एक ही नियम में स्थिर रहना। देव पूजा करना यही दान है।

साहू को स्नान का महत्व बतलाना

बिजनौर को चौधरी नांव साहू,गंगा पार सु आयौ,छ:ताकड़ी सोनो चाड़यौ। जाम्भोजी! कीया भजन हुव नहीं,सोनो साटै मुकति द्यौ। जाम्भोजी कह-छ: ताकड़ी तेरो,छ:ताकड़ी म्हे देस्या,आंखे में काचौ रतन थ,आ रतन काया की सहनाणी थ,तेरी काया रतन थ। दूजौ मोल साटली आव,साहु कह,जम्बू दीप कीमता साह दीन ताउ मोल साट मील नहीं,तो रतन काया क्यौंकरि मिल्यसी,जाम्भोजी श्री वायक कहै -

शब्द-104

ओ३म् कंचन दानो कछु न मानूं, कापड़ दानूं कछु न मानूं।
चोपड़ दानूं कछु न मानूं, पाट पटंबर दानूं कछु न मानूं।
पंच लाख तुरंगम दानु, कछु न मानू, हस्ती दानू कछु न मानूं।
तिरिया दानू कछु न मानूं, मानूं एक सुचील सिनानूं।

गंगा पार पूर्व से बिजनौर निवासी एक चौधरी जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर अपनी जमात सहित आया। उसका नाम साहू था। तथा कर्म भी साहू का था। स्वर्ण व्यापार करता था। उसने छ:ताकड़ी यानि छ: धड़ी (तीस सेर) सोना जाम्भोजी के भेंट किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा-हे देवजी! मेरे से भजन भाव साधना तो होती नही है और न ही स्नान संध्यादिक क्रियाएँ ही हो पाती हैं। मैं स्वर्ण का कार्य करने वाला

हूँ। इस कार्य में शील धर्म भी मेरे से पालन होता नहीं है।

यह सोना आप लीजिये और मुझे मुक्ति की प्राप्ति करवा दीजिये। मेरे सभी अवगुण माफ कीजिये और यह सोना लीजिये।

जाम्भोजी ने कहा -हे साहू ! यह तीस सेर तो तेरा और इतना ही मैं तुझे दूँगा। इसके बदले में तू एक यह रतन काया तुम्हारे जैसी और भी खरीद के ले आ,क्योंकि इस रतन काया में भगवान् ने आँखें दी हैं। आँखों के अन्दर भी देखने वाला छोटा सा रतन यह भी तू इस सोने के बराबर मोल देकर खरीद कर ले आ सकता है क्या ? साहू कहने लगा -हे देवजी ! यह सोना तो बहुत ही थोड़ा है। सम्पूर्ण जम्बूदीप को बेच कर भी उस धन से रतन काया तो खरीदी नहीं जा सकती। आप बताइये की यह रतन काया कैसे मिलेगी ?

जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-रतन काया की प्राप्ति का उपाय बतलाया-शब्द में बतलाते हुए कहा-हे साहू! तुम्हारा ये कंचन दान, इसका मेरे यहाँ कोई महत्व नहीं है। तथा कपड़े का दान भी यदि तू करे तो कुछ भी महत्व नहीं देता। घी तेल आदि का दान भी यदि तू समझे कि महत्व का होगा, वह भी कुछ भी नहीं है।

सवारी हेतु हे साहू! तू हाथी का दान करे तो भी मै इस दान को कुछ भी नहीं मानता। पाट पटम्बर बहुमूल्य वस्त्रों का दान भी मेरे सामने नगण्य है। यहाँ तक कि पाँच लाख उच्च कोटि के घोड़ों का दान करले तो भी उसको महत्वपूर्ण नहीं समझता। कन्या दान सर्वश्रेष्ठ दान है। वह दोनों कुलों को तारने वाली है। उसके विवाह तथा दहेज आदि में दे देना उसको भी मैं कुछ भी नहीं मानता।

हे साहू! मैं तो सुचील, सचैल (वस्त्र सहित) अंग के पाँचों वस्त्रों की धुलाई सहित किया गया स्नान सुचील सिनानूँ कहलाता है। स्नान को ही मानता हूँ। जिसकी तुम क्षमायाचना कर रहे हो वही तो तुम्हें युक्ति मुक्ति दिलाने वाली क्रिया धर्म है। इस प्रकार से बिजनौर के साहू के द्वारा दान दिया हुआ सोना भी श्रीदेवजी ने अस्वीकार कर दिया तथा शील धर्म एवं स्नान संध्यादिक क्रियाओं को महत्वपूर्ण बतलाया।

जाम्भा सरोवर तीर्थ का महात्म्य

वील्हो उवाच:- हे गुरुदेव ! आपने पीछे बतलाया था कि जाम्भोजी ने गंगा को सम्भराथल के नीचे एक धारा के रूप में बहते हुए देखा था। उसी समय साथरियों ने पूछा कि-अब वह धारा कहाँ गयी ? तब श्रीदेवजी ने बतलाया था कि वह धारा तो जाम्भा तालाब पर पहुँच जायेगी। वही गंगा समान तीर्थ होगा। उसमें स्नान करने का फल गंगा सदृश ही होगा। इस समय में आपसे जाम्भोलाव का माहात्म्य एवं तीर्थों की महिमा सुनना चाहता हूँ।

नाथोजी उवाच:-हे शिष्य ! जहाँ पर भी पवित्र जल में स्नान किया जाता है, वह तीर्थ कहलाता है। जल तो सभी जगह विद्यमान है, किन्तु तीर्थ की महिमा को तो वही जल प्राप्त होता है, जहाँ पर कभी किसी महापुरुष, संत, ऋषि ने तपस्या यज्ञादिक शुभ कार्य किये हों। वैसे तो जाम्भोजी ने 'अड़सठ तीर्थ हिरदा भीतर कह करके हृदय के भीतर ही बतलाया है, किन्तु बाह्य तीर्थ भी लोकाचार के लिये हैं। ताज्य नहीं हैं। सेवनीय ही हैं। जिन साधारण लोगों को भीतर के तीर्थों का कुछ पता नहीं है, उनके लिए बाह्य तीर्थ भी बतलाया गया है, आवश्यक भी है। हृदय के भीतर के तीर्थों में स्नान तो कोई बिरला ही कर पाता है। तीर्थो में शिरोमणि गंगा स्नान है। श्रीदेवजी ने गंगा का महत्व बतलाया है। पाहल गति गंगा तणी जेकर जाणे कोय। गंगा दूर देश में स्थित है। यहाँ के लोगों को गंगा का स्नान मिल सके, इसके लिए जाम्भोजी महाराज ने जाम्भोलाव तीर्थ बतलाया था।

एक समय सम्भराथल पर विराजमान श्रीदेवजी के सम्मुख बैठे हुए रणधीर आदि भक्तों ने श्रीजी से पूछा था, तब जाम्भोजी ने जाम्भोलाव का माहात्म्य बतलाया था। हे वील्हा! वही मैंने श्रीमुख से सुना था। वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ। ध्यानपूर्वक श्रवण करो-पवित्र जाम्भोलाव ज्ञान गंगा में भी स्नान करेंगे तो पवित्र ज्ञानी हो जाओगे। नाथोजी उवाच- सेवकों ने सतगुरु से पूछा-हे देव! तीर्थ कितने हैं? उनमें कौनसे तीर्थ में जाकर स्नान करें जिससे पापों से मुक्त हो सकेंगे। यहाँ पर तो गंगा,यमुना, सरस्वती, प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, रामेश्वरम्, द्वारावती, जगन्नाथ, केदार, बद्री, पुष्कर आदि अनेकों तीर्थ है। इनमें से जो श्रेष्ठ है उसी में ही हम स्नान करें। जिससे मुक्ति को प्राप्त हो जावें। जाम्भेश्वरजी ने तीर्थों का बखान करते हुए इस प्रकार से कहा-

वैसे तो अड़सठ तीर्थ हृदय भीतर ही हैं। उनकी खोज करो। अन्यत्र कहाँ कहाँ भटकोगे? पैर घिसाओगे। शरीर,धन,बल की ही हानि होगी। आप लोग हृदय तीर्थ में ही स्नान करो और यदि इस उच्च स्नान करने में समर्थ नहीं हैं, तो मैं तुम्हें यहीं देश फलोदी में ही तीर्थ बतलाता हूँ।

सेवकों ने पूछा-हे देव! यहाँ फलोदी देश की भूमि किस प्रकार से पवित्र होकर तीर्थ बन गयी। यह बतलाने की कृपा करें। इस भूमि पर किसने तपस्या की, किसने यज्ञ किये हैं और कौन पार पहुँच सका है। यदि ऐसी यह पवित्र भूमि है, तो अब तक छिपी हुई कैसे रही? प्रगट क्यों नहीं हो सकी? वेद पुराणों में इसकी चर्चा क्यों नहीं हुई? चारों युगों में ऋषियों से छिपी क्यों रह गयी? तथा यह भूमि पवित्र किस प्रकार से हो गयी?

श्री जाम्भेश्वरजी ने बतलाया-सातवें कल्प में ब्रह्म सरोदक नाम से तीर्थ था। यहाँ पर ब्रह्माजी ने यज्ञ की रचना की थी। वहाँ पर अठ्ठासी हजार ऋषि लोग आये थे। उनमें मार्कण्डेय, दत्त, लोमश आदि प्रधान थे। छः महीने तक लगातार हवन हुआ। विशाल वेदी में परनालों से घृत की धारा द्वारा आहुति प्रदान की थी। वहाँ पर सर्वदेव महेश,इन्द्र तथा विष्णु आये थे। उनके चरण कमलों की रज से यह भूमि पवित्र हुई थी और यज्ञ से यह स्थल तीर्थ बन गया था।

दूसरी बार में भगवान् शिव ने यहाँ पर यज्ञ किया था। दस महीने तक यज्ञ हुआ था। इन्द्रादिक देवता स्वयं यज्ञ में सम्मिलित हुए थे। उसमें अपार घृत सामग्री की आहुति दी गयी थी। देव मुनियों ने जयजयकार किया था। यज्ञ पूर्ण हुआ। देवताओं तथा ऋषियों ने शंख बजाया। देवताओं ने फूलों की वर्षा की गन्धर्वों ने मधुर ध्वनि में गायन किया था। स्वर्ण कलश जल से परिपूर्ण करके सुशोभित वेदी पर रखा था। इस प्रकार से यज्ञ सम्पन्न हुआ था।

तीसरा यज्ञ यहाँ पर पाण्डवों ने किया था। वनवास काल में पाण्डवों ने वेदव्यासजी से पूछा था कि ऐसा कोई स्थल बतलाओ, जहाँ जाकर के हम यज्ञ करें। हमारी इच्छा पूर्ण होवे। वेदव्यासजी ने जांगल देश में, काम्यक वन में, यहीं जाम्भोलाव स्थल को ही बतलाया था। पाण्डवों ने यहाँ पर दिव्य वेदी-यज्ञकुण्ड बनाया था। यज्ञ में अन्य मुनियों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण स्वयं भी पधारे थे। ब्रह्माजी ने स्वयं श्रीमुख से वेद मंत्रों का उच्चारण किया था। वेदव्यासजी ने भागवत कथा का गान किया था। लगातार अठारह महीने तक यज्ञ किया था। यज्ञ से तीनों लोक तृप्त हुए थे। श्रीकृष्ण ने पांचायण शंख बजाया था। ऐसी यह दिव्य भूमि यज्ञ से अति पवित्र है।

यह बात सत्य है कि वेद पुराणों में इस स्थल की चर्चा नहीं हुई है। यहाँ पर अन्य भी अनेकानेक पापियों का उद्धार हुआ है। श्रीदेवजी ने श्रीमुख से जाम्भा सरोवर का महात्म्य बतलाया था। उसी समय ही साथरियों ने श्रीदेवजी से इच्छा प्रकट की कि यदि ऐसा पवित्र स्थल है तो आप हमें अवश्य ही उस स्थल का दर्शन

करवाइये। हम भी वहाँ जाकर यज्ञ तपस्या तथा मिट्टी निकाल करके अपने को पवित्र करेंगे। आप भी वहाँ पर उपस्थित होंगे, तो हमारा सौभाग्य अनन्त गुणा फलीभूत हो जायेगा।

साथरियों की प्रार्थना स्वीकार करते हुए श्रीदेवजी सम्भराथल से भक्तों सहित रवाना हुए प्रथम दिन जांगलू के पास ही जंगल में आसन लगाया। रणधीरजी ने कहा- हे देवजी! हमारे बैल प्यासे हैं! जल कहाँ मिलेगा ? श्रीदेवजी ने हरे-भरे वृक्ष दिखाते हुए कहा कि- यहाँ से थोड़ी दूर पर ही ये वृक्ष दिखाई देते हैं। वहाँ शुद्ध जल मिलेगा। रणधीरजी ने कहा-महाराज! वहाँ पर तो जल नहीं हैं। इस भूमि को मैं जानता हूँ। जाम्भोजी ने कहा-हे भक्त! अवश्य ही जाओ। वहाँ जल मिलेगा। बैलो को लेकर जल हेतु पहुँचे तो वहाँ जल से तालाब भरा हुआ मिला। बैलों को जल पिलाया और शुद्ध जल लेकर वापिस आये। सद्गुरुदेव की लीला को धन्यवाद दिया।

हे वील्हा! वह वही जगह है, जहाँ देवजी ठहरे थे। वह जांगलू की साथरी एवं जल की प्राप्ति हुई है वह बरसिंगवाला तालाब। एक रात्रि विश्राम जांगलू की साथरी करके दूसरे शाम को खींदासर में निवास किया। जहाँ पर रूपे को भण्डारी बनाकर भेजा था। वहाँ के लोगों ने आदर सत्कार किया। रूपे सिंवर ने अपने को धन्यवादी माना।

तीसरे दिन शाम को जाम्भोलाव पहुँचे। उस पवित्र स्थल को तीर्थ बनाया। वहाँ पर खुदाई का कार्य विक्रम सम्वत् 1566 मिगसर कृष्ण पक्ष पुष्य नक्षत्र पंचमी बृहस्पतिवार को प्रारम्भ किया। जैसलमेर के राजा जैतसी को समाचार मिला कि हमारे इष्ट देवता आजकल फलोदी के पास आये हैं। परोपकारार्थ तालाब खुदाई का कार्य करवा रहे हैं। जैतसी भी पुण्य कार्य में भाग लेने के लिए अपने सेवकों सहित जाम्भोलाव श्रीदेवजी के निकट पहुँचे। प्रणामादि मर्यादा का पालन करते हुए जाम्भोलाव तालाब खुदाई में अपनी भागीदारी सुस्थिर करने के लिए श्रीदेवजी से प्रार्थना की। जम्भेश्वरजी की आज्ञा अनुसार तालाब खुदाई के कार्य में जैतसी संलग्न हुआ।

राजा स्वयं सेवा कार्य करता था। प्रजा तो उन से ही आगे बढ़कर कार्य करने में उतावली हो रही थी। दिन भर मिट्टी निकालते, पाल बंधाई का कार्य करते, सांय को श्रीदेवजी कमलासन पर विराजमान होते। उनके पास जमात एकत्रित होती। उस पवित्र जाल वृक्ष के नीचे बैठकर जनता को सदुपदेश देते। सेवाकार्य एवं सत्संग श्रवण करके उस पवित्र स्थल पर जनता अपने आप को कृतार्थ अनुभव कर रही थी।

श्रीदेवजी ने बतलाया कि यह पवित्र सरोवर है। इसकी खुदाई करने में महान पुण्य है। यहाँ पर सिद्धों में शिरोमणि कपिल मुनि ने तपस्या की थी। यहीं पर सांख्य शास्त्र की रचना की थी। आप लोग यह जाल वृक्ष देख रहे हैं। इसी के नीचे कपिल मुनि का आसन था। इसी तालाब में ही स्नान करने एवं श्रद्धापूर्वक मिट्टी निकालने से ही फल मिलता है।

करोड़पति सेठ फलोदी का श्रीचंद एवं उनके तीन पुत्रों तथा एक कन्या की दुर भाग्यवश दुर्गति हो गयी थी। स्वयं ब्रह्माजी का लिखा हुआ लेख यहाँ स्नान करने से दुर्भाग्य से सौभाग्य में बदल गया था। विपत्ति एवं दुर्भाग्य से सौभाग्य में बदलने वाला यह स्थल है।

कर्णमाल ऋषि का तपस्या क्षेत्र भी यही था। यहीं से उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। अपने किए हुए कुकर्मों के मेल को यहीं पर स्नान ध्यान करके धो डाला था।

एक जीव हिंसक सुखनियां भी भटका हुआ यहाँ पर आ गया था। प्यासा था। जल पी लिया। मिट्टी निकाली एवं स्नान किया। उसकी बुद्धि शुद्ध हुई। सदा-सदा के लिए इस तीर्थ के प्रभाव से जीव हत्या करनी

छोड़ दी। पूर्व जन्म के कुछ अच्छे कर्म थे, वे यहीं आने पर फल देने में समर्थ हो गये। जिसके प्रभाव से वह दयालु मानव बन करके भगवान् का प्रिय भक्त हो गया था।

इस तीर्थ पर वस्त्र दान का फल उत्तम है। पूर्व जन्म में द्रौपदी अपनी सहेलियों के साथ इस तीर्थ में स्नान करने के लिए आयी थी। उसी समय ही एक ऋषि तालाब में स्नान कर रहे थे। उनके पास उस समय लंगोटी के लिए वस्त्र नहीं था। उन कन्याओं को देखकर संकोच के मारे जल से बाहर नहीं आ सके। द्रौपदी इस बात को समझ गयी। उसने अपने चीर में से एक टुकड़ा फाड़कर ऋषि की तरफ फेंक दिया। ऋषि लंगोटी पहन करके वहाँ से प्रस्थान कर गये। उसी वस्त्रदान के प्रभाव से द्रौपदी का चीर बढ़ा था। दूसरे जन्म में वही वस्त्र का दान देने वाली कन्या द्रोपदी के रूप में जन्म लेकर आयी। कौरवों की सभा में दुशासन द्वारा चीर हरण हुआ था। उस वस्त्र दान के प्रभाव से द्रोपदी का चीर बढ़ा था। श्रीदेवजी जनसमूह को जाम्भोलाव का महात्म्य बतला ही रहे थे कि उनके सामने अलूजी चारण हाथ जोड़ उपस्थित हुए और प्रार्थना करने लगे–

वेद जोग्य वैराग खोज, दीठा नर नंगम।
सन्यासी दरवेश सेष, सोफी अरू जंगम।
विथा वियापी मोही आज, आसा कर आयो।
पाणी पियो एक बार, पेट सुख परचो पायो।
पांचवा वेद संभल्या शब्द, चार वेद होता चलूं।
केवली जम्भ सांभल कवल, आज साच पायो अलूं।

अलूजी जोधपुर राज्य के रहने वाले थे। चारण गोत्र के प्रसिद्ध कवि थे। उन्हें जलोदर रोग हो गया था। इलाज करवाने के लिए अनेकों जगहों पर भटका था। अलूजी ने सुना था कि एक वैद्य मुलतान में रहता है। वहाँ पर भी गये। किन्तु कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ। एक वर्ष तक दवा का सेवन किया, किन्तु व्यर्थ ही गया। वहाँ से चलकर लाहौर आये। वहाँ पर एक सूफी से दवा ली, किन्तु उदर रोग तो दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही गया। वहाँ से चलकर काँगड़े पहुँचा। वहाँ पर एक सिद्ध नाथ रहता था। उनसे आशीर्वाद जंतर मंतर करवाया, किन्तु जलोदर तो बढ़ता ही गया। वहाँ से चलकर इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँ पर एक मुल्ला से ईलाज करवाया, किन्तु कुछ भी फल नहीं मिला। वहां से चलकर मथुरा में आये। वहाँ एक गोसाई मुनि का नाम सुना था। उनके पास एक महीना तक रहे, किन्तु रोग घटा नहीं। बढ़ते ही चला जा रहा था। वहाँ से चलकर जयपुर गये। वहाँ एक संन्यासी के चरणों में श्रद्धा अर्पित की। वहाँ से अजमेर आया किन्तु कुछ भी लाभ नहीं मिला। वहाँ से चलकर मण्डोर आया। एक नाथ के चरणों में सिर झुकाया। रोग निवृत्ति की प्रार्थना की। उनकी सेवा की, किन्तु रोग की निवृत्ति नहीं हो सकी। वहाँ से चलकर पोकरण होते हुए फलोदी आया। दो तपस्वियों को अपनी कर्मों की रेखा दिखाई। उनसे पूछा कि अमर रोग कटेगा या नहीं। उन्होंने 16 दिन अपने पास रखा। जब मरने की तैयारी हो गयी, कहीं कोई जीवन की आशा ही नहीं बची, तब अलू को चारपाई पर डालकर जाम्भोलाव लाये। यहाँ एक बार सिद्ध तीर्थ में स्नान किया।

श्रीदेवजी जाल वृक्ष के विराजमान थे। उसी समय ही हे वील्हा! मैंने अलूजी को स्तुति करते हुए देखा था। अलूजी अपनी घोर निराशा प्रकट कर रहे थे। जीवन आशा छोड़ चुके थे। आंखों में अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। हाथ जोड़ते हुए श्रीदेवजी के सामने लम्बे गिर चुके थे।

श्री जम्भदेवजी ने अपने शिष्यों से कहा–जाओ सरोवर से जल ले आओ। जल द्वारा श्रीदेवजी ने स्वयं ही अलूजी को स्नान करवाया। दो घूँट जल पिलाया। अलू पूर्ण स्वस्थ हो गया। स्तुति करने लगा। सदा–सदा

के लिए अलू रोगों से निवृत्त होकर अनेक छन्दों द्वारा श्रीदेवजी की स्तुति की थी। अलू की व्याधि मिट गयी। अन्न-जल ग्रहण करके स्वस्थ हुआ। अब केवल व्याधि ही नहीं मिटी, जन्म-मरण रूपी व्याधि भी मिट गयी। अलू जी चारण जाम्भोजी के शिष्य कवि हुए अपनी वाणी को जाम्भोजी की स्तुति द्वारा सफल किया।

जैसलमेर की यात्रा में तेजोजी चारण जाम्भोजी के साथ गये थे। वहीं पर ग्वाल चारण ने बिश्नोइयों के बारे में कुछ प्रश्न पूछे थे। उनका समुचित जवाब तेजोजी ने ही दिये थे। तेजोजी को कुष्ठ रोग हो गया था। जाम्भोजी तालाब खुदवा रहे थे। तेजोजी जाम्भोलाव पर जाम्भोजी के सम्मुख हुए थे। वहाँ जाम्भोलाव पर स्नान करने के लिए तेजो ने कोशिश की थी, किन्तु कुष्ठ रोग होने से वहाँ के लोगों ने स्नान करने नहीं दिया। जाम्भोजी ने अपने चेले निहालदास को बुलाया और कहा-सरोवर से जल की झारी भर ले आओ। इन्हें स्नान कराओ। जल स्नान से रोग की निवृत्ति होगी। तेजो के कुष्ठ रोगी शरीर पर जल डाला। जैसे ही शरीर पर जल गिरा कुष्ठ रूपी मैल को जल ने धो डाला। तेजोजी ने देखा काया कंचन जैसी होकर दमकने लगी। कवि तेजो ने हाथ जोड़े और स्तुति करने लगे-हे जम्भेश्वर, परम दयालु, कृपालु, आप की जय जयकार हो। आप तो सत्चित् आनन्द स्वरूप स्वयं ही अपनी इच्छा से ही मूर्त रूप धारण करके आये हैं। स्वयं संतोषी होते हुए दूसरों का पालन-पोषण करने वाले जमात के नियन्ता स्वामी हो। हे देव! हम आपकी क्या महिमा गायें? आप तो सत्य स्वरूप हो। हम सांसारिक लोग तो अनेक पापकर्मों के बन्धन में बंधे हुए कैसे सत्य की स्तुति कर सकते हैं।

आपने मुझे कोढ़ रूपी नरक से बाहर निकाला है। आप कल्पवृक्ष स्वरूप हो। आपके पास जो आ जाता है, वह खाली हाथ नहीं जाता है। जो सुरधेनु की सेवा करे, तो वह मनोवांछित फल प्रदान करने वाली होती है। यदि कोई अपने पास पारस मणि रखे, तो उसकी दरिद्रता स्वत:ही मिट जाती है। मैं आपकी शरणागति हो चुका हूँ। आप मुझे जो आज्ञा दोगे, वही मैं करूँगा। ऐसा कहते हुए तेजो गुरु के चरणों में गिर पड़ा।

हे देव! रक्षा करो। श्री देवजी ने तेजे को उठाया और कहा-इस कुष्ट को झड़ने में अन्य किसी का कोई प्रभाव नहीं है। यह तो इस सागर जल में स्नान का ही प्रभाव है। तुमने तन-मन-धन अर्पण कर के अहंकार को छोड़ कर के श्रद्धा पूर्वक स्नान किया है। तुम्हारी पवित्र श्रद्धा एवं विश्वास ही तुम्हारा रोग दूर करने में सहायक है।

इसी प्रकार से कोल्हजी चारण भी फलोदी के ही रहने वाले थे। इनके मस्तिष्क में कीड़ा था। दिमाग में भंयकर पीड़ा चल रही थी। कोल्ह जी ने भंयकर पीड़ा झेली थी। अनेकों जगहों पर भटका भी। जहाँ पर भी जिसने भी पीड़ा हरने का उपाय बतलाया वही पर ही कोल्हजी गये थे। किन्तु किसी से भी कुछ कार्य नहीं बना। मगज में कीड़ा था, वह अन्दर ही अन्दर खोखला करता गया। धीरे-धीरे भंयकर पीड़ा से कोल्हजी की दोनो आँखें चली गयी। दिखना बन्द हो गया। इस प्रकार तीन वर्षो तक अन्धे हो कर ही समय व्यतीत किया। फिर भी दर्द तो कम नहीं हुआ।

कोल्ह जी का समय अच्छा आया। एक समय जैसलमेर में कवि अलूजी से भेंट हुई। तब कोल्ह ने अपना दुखड़ा कह सुनाया। अलू ने बतलाया-हे भाई! आजकल जाम्भोजी महाराज फलोदी के पास ही कपिल सरोवर खुदवा रहे हैं। तुम भी मेरी तरह ही उनकी शरण में चले जाओ। आजकल जैसलमेर के राव जेतसी भी वहीं पर सेवा कार्य कर रहे है वहाँ जाने से मेरा जलोदर रोग मिट गया था, और रावल जेतसी के भी पेट में फोड़ा हो गया था, उसकी भी निृवति हो गयी है। तुम तो पास में ही रहते हो। एक बार अपना चारण

कवि पने का अहंकार छोड़कर उनकी शरण में तो जाओ। यदि अकेले नहीं जा सकते तो मेरे साथ चलो।

एक बार सरोवर में स्नान करना, तुम्हारे चक्षु खुल जायेगें। तुम्हारी व्याधि की निवृत्ति हो जायेगी। ऐसा कहते हुए अलूजी ने कोल्हजी का हाथ पकड़ कर जाम्भोलाव ले आये। जाम्भेश्वर जी कमलासन पर विराजमान थे। उनकी दिव्य वाणी कोल्ह जी ने सुनी और अपने को धन्य धन्य कहा –

कोल्हजी कहने लगे हे देव! मुझे बचाओ। मेरी रक्षा करो त्राहि माम। मैं अपना पन त्याग के आपकी शरण आया हूँ। ऐसा कहते हुए श्री चरण कमलो में दण्डवत प्रणाम किया। सभी को छोड़ कर, हे देव मैंने आपकी ही शरण ली है। आप मेरे दिव्य चक्षु मुझे वापिस लौटा दीजिये। ये मेरी आँखें मस्तिष्क रोग से चली गयी हैं।

जाम्भोजी ने कहा–जाओ, एक बार सरोवर में स्नान करो, तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी, तुम्हारा सम्पूर्ण दु:ख मिट जायेगा। कोल्ह वहाँ से उठ खड़े हुए। तीर्थ स्थल में जाकर जल में डुबकी लगायी, बाहर निकला तो आँखें खुल गयी थी। पहले से कहीं अधिक सुन्दर दुनिया दिखने लगी थी। दूसरी डुबकी लगाई, फिर आँखें खोली और देखा कंवल सदृश नयन खुल गये थे। इस प्रकार से आँखें खुली,करोड़ों जन्मों के पापों का नाश सागर में स्नान से हुआ। कोल्ह जी ने स्तुति की –

तुमे सुरा सुख दियण,तुम्हे असुरा संघारण।
तुमे जगत पति जगदीश,तुमे सिध साध सुधारण।
तुमे जग जीवा जीव,तुमे केवल अरू कामी।
तुमे त्रिगुण पति आद,तुमे तत अंत्रजामी।
सकल सिरजत सांइया,करतार आप आया कले।
वीनती कोल बल बल विसन,सांरग धर सम्भराथले।

कोल्ह अल्हू की आरती,सुणी जंभ भवनेश।
कुष्ट गयी चक्षु खुले,रहयौ न दुख लवलेश।
जंभसागर में नहात ही कोट रोग विलाय।
नाथो कहै सतगुरु मिले,जीव ब्रह्म मिल जाय।

कान्ह जी चारण राज कवि थे। अन्न–धन–लक्ष्मी के भण्डार भरे थे। किन्तु सभी कुछ होते हुए भी पुत्र नहीं था। जिस कारण से सदा ही उदासीन रहते थे। बिना पुत्र के धन–दौलत, मान–सम्मान, गृहस्थी को प्रिय नहीं लगते। जिस गृहस्थ में संतान ही नहीं, वह घर नहीं श्मसान ही होता है।

वैद्य हकीम,ओषध आदि से इलाज करवाया, किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। भोपा–भरड़ा, कल्पित देवताओ की भलीभांति उपासना की, किन्तु निष्फल हुआ। देवी–देवता, गोगा,भैंरू आदि के थानों पर भी गया, मस्तक झुकाया, मन्दिर बनवाने तथा स्वर्ण कलश चढाने की प्रतिज्ञा की, किन्तु वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। अनेक योगी, ब्रह्मचारी,सन्यासी,नाथ आदि के पास भी गया, अपनी व्यथा कथा भी कही,सभी ने अपनी मति के अनुसार कुछ कहा, परन्तु सन्तान की प्राप्ति नहीं हो सकी। इस प्रकार से आठ वर्ष तक अनेकों उपाय किये किन्तु किसी से भी कार्य नहीं हुआ।

एक समय कान्होजी अपने जाति भाई अलू जी के पास जाय बैठा। उदासीन होकर सर्वथा निराश था। अलू जी ने कहा–ऐसे जीवन से निराश न होइये, मेरे कहने से एक बार अवश्य ही जाम्भोलाव जाइये और वहाँ पर सपत्निक स्नान कीजिये तथा वहाँ के जल का आचमन कीजिये। तुम्हारे कोई पूर्व जन्म के किये हुए

पाप ही तुम्हारे संतान न होने के कारण हैं। वह पाप कटने का सरल उपाय जाम्भोलाव तालाब में स्नान करना एवं जल पान करना, मिट्टी निकालना है।

अलू जी की बात पर श्रद्धा विश्वास कर के कान्ह जी चारण सपत्नीक अमावस्या के दिन जाम्भा सरोवर गये और तीर्थ में स्नान, दान,आचमन किया। वापिस लौट आये। नवें महीने कान्ह जी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जो पाप बाधा डाल रहा था, वह सिद्ध सरोवर के प्रताप से नष्ट हो गया। इस प्रकार से समय समय पर चार बार जाम्भोलाव पर गये और कान्होजी को चार पुत्रों की प्राप्ति हुई।

कान्ह जी के पुत्र बड़ा हुआ, प्रथम पुत्र के विवाह में श्री जाम्भोजी को निमंत्रण देकर बुलाया था। जाम्भोजी ने निमन्त्रण स्वीकार लिया था। कान्ह जी के पुत्र को आशीर्वाद देने गये थे। कान्हजी ने अनेक प्रकार से श्री देवजी का सम्मान किया और कहने लगे-

हे देवजी! आपकी कृपा का ही यह प्रसाद है। मैं तो सर्वथा उदासीन होकर गृहस्थ धर्म से उदासीन ही हो गया था। मेरी आशा निराशा में बदल गयी थी। बिना पुत्र के कुल का विनाश हो जाता है। आपने कृपा करके मेरे को कुलदीपक प्रदान किया।

अब आप शुभ कमल सदृश हाथ मेरे तथा मेरे कुलदीपक ऊपर रखिये। आपकी अहैतुकी कृपा सदैव बनी रहे। मेरा कुल परिवार आपकी भक्ति करता रहे। यही मैं याचक आपसे याचना कर रहा हूँ।

एविधी अस्तुति जंभ की,अल्हू कान्ह जन कीन्ह।
चारण चार जीव बाणवैं,विष्णु धर्म इन लीन्ह।
पुत्र काज जेहि जाचिया,तेही दीन्हा सब त्याग।
अड़सठ धर्म हृदय धरै,नाथा भये बड़ भाग।

नाथोजी उवाच-तीर्थो का प्रभाव प्रत्यक्ष रूपेण देखने को मिलता है। जो व्यक्ति श्रद्धा-भाव से तीर्थों में स्नान करता है, उसको शुभ फल की प्राप्ति अवश्य ही होती है। तथा जो तीर्थ जल ठहरने की भूमि जल ग्रहण करने योग्य बनाने हेतु मिट्टी निकालता है, उसके पुण्य का तो कोई आर पार ही नहीं है। हे वील्ह! मैं तुम्हें एक विचित्र कथा सुनाऊँगा। जिससे तुम्हारी अज्ञानता नष्ट हो जायेगी तथा जीव अजर अमर है यह ज्ञान होगा।यह शरीर जीर्ण-शीर्ण होकर मरता है। तब वह अपने कर्मो के अनुसार ही फल भोगता है। श्री जाम्भोजी के सानिध्य में जैसलमेर के राव जेतसी तालाब खुदवायी का कार्य करवा रहे थे। उस समय श्री जाम्भोजी वहीं जाल वृक्ष के नीचे कमलासन पर विराजमान थे। दिन भर के सेवा कार्य से निवृत्त होकर सांयकाल में श्री देवजी के पास आकर मन बुद्धि की खुराक ज्ञान की प्राप्ति करते थे।

एक समय हे वील्हा! मैंने देखा कि जेतसी जाम्भोजी से इस प्रकार से पूछ रहे थे। जेतसी उवाच-हे देव मैं कई दिनों से लगातार अनेक लोगों को देख रहा हूँ। सभी की प्रकृति भिन्न भिन्न है। फिर भी कुछ हद तक एकता भी है। परन्तु इन्हीं लोगों के बीच एक स्त्री की रीति अलग ही है, अन्य स्त्रियाँ अपने समुह में रहती हैं, बातें करती हैं और तालाब से मिट्टी निकालती हैं,उनकी मुझे कुछ भी शिकायत नहीं है क्योंकि वे तो सामान्य हैं।

एक स्त्री उन से अलग रहती है, घूँघट में मुँह छुपाये हुए पूरे दिन अबाध गति से तालाब से मिट्टी निकालती है। किसी से बात ही नहीं करती,नहीं किसी को अपना मुंह ही दिखाती। हे देवजी! यह मुँह छिपाना, घुँघट निकालना तो यह बतलाता है कि इसने कोई अपराध किया होगा जो मुँह दिखाने योग्य नहीं है अन्यथा तो मुँह ढकना क्यों? उसी समय अन्य लोगों ने भी कहा -

''एक विसनोवण्य घुँघट काढ माटी काढ,वीसनोई कह –जांभाजी !आकुण जीव थ,पहल जमवार मथुरा नगर मां राणी थी।अण अकरम कुमाणा फेरय लादण हुई, बुढ खीलहरी क घरे कणी साध इह क उपरे पाणी आण्यौ थो।साध दवा दीन्ही,मिनख जमवार आई।अब माटी काढिसी।आवा गुवण्य खंडत होयसी। जाम्भोजी श्री वायक कह –

शब्द–110

ओ३म् मथुरा नगर की राणी होती, होती पाटमदे राणी।
तीरथ वासी जाती लूटे, अति लूटे खुरसाणी।
मानक मोती हीरा लूट्या, जाय बीलूधा दांणी।
कवले चूकी वचने हारी, जिहिं औगुण ढ़ांची ढ़ोवे पांणी।
विष्णु कूं दोष किसो रे प्राणी, आपे खता कमाणी।

एक बिश्नोई स्त्री घुंघट निकाले हुए तालाब से मिट्टी निकाल रही थी। कुछ बिश्नोई सभा में आये और कहने लगे–हे जाम्भोजी। पहले जन्म में यह जीव कौन था ? जाम्भोजी ने बतलाया–पहले जन्म में यह मथुरा नगर की राणी थी। इसने पाप कर्म किये थे। जिससे यह बूढे खिलेरी के घर पर भार लादने वाली घोड़ी बन कर आयी। इस पर पानी को ढो कर बूढो पिलाया करते थे। किसी सुपात्र साधु ने इसका लाया हुआ जल पिया था,उसने इसको आशीर्वाद दिया था। जिससे कुछ पाप इसके हल्के हुए और यह मानव जीवन में आयी। इस समय मिट्टी निकाल रही है। इसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायेगे। जन्म–मरण के चक्कर से छूट जायेगी।

उपस्थित जन समुदाय के प्रमुख राव जेतसी ने पुन: पूछा–हे देव! इसके पूर्व जन्म की कथा विस्तार से बतलाइये,आप तो अन्तर्यामि परमेश्वर सर्वज्ञ हैं। हम तो जीव होने से अल्पज्ञ है। श्री जम्भेश्वर जी ने शब्द द्वारा विस्तार से बतलाया–यह मथुरा नगर की शिरोमणि रानी थी। जब इसका पति स्वर्गवास हो गया तो यही पूर्ण पटरानी होने से राजा बन गयी। इसी के हुक्म से राज काज चलता था।

एक समय गुजराती तीर्थ यात्री गंगा यमुना में स्नान तीर्थ करने के लिये मथुरा में आये थे। तथा अन्य तीर्थ यात्री खुरासाण से भी यही एकत्रित हो गये थे। मथुरा की आसा नाम की पटराणी ने अपने सेवकों को आदेश दिया था कि जो कोई भी मथुरा में प्रवेश करे, उससे कर अवश्य ही लेना है। ये तीर्थ यात्री यमुना के किनारे आसन लगाये हुए थे। डाणी डाण कर लेने वाले राज पुरुषों ने आकर उनसे भी कर मांगा और कहा महारानी के आदेशानुसार पहले कर दीजिये,पीछे यमुना में स्नान करे। वे तीर्थवासी लोग कहने लगे हम व्यापारी नहीं हैं। जो आप हम से कर माँग रहे हो हम तो तीर्थयात्री हैं। तीर्थ यात्रियों से डाण नहीं लिया जाता और न ही हम देंगे।

उन राज पुरुषों ने रानी के सामने जाकर निवेदन किया कि ये लोग तो व्यापारी नहीं है। तीर्थयात्री है। इनके साथ कैसा व्यवहार किया जावे ? रानी ने कहा–क्या हुआ जो तीर्थ यात्री हैं तो इनके पास धन है या नहीं ? यदि धन है तो किसी भी प्रकार से प्राप्त करो। यहाँ तो सभी व्यापारी ही ऐसा ही बहाना बाजी करते है। हे सेवको ! मुझे धन चाहिये हीरा मोती माणिक आदि चाहिये, जाओ लूट ले आओ।

रानी के कहने अनुसार ही उन राज सेवको ने उन तीर्थ यात्रियों से माणिक, मोती, हीरा, स्वर्ण मुद्रा आदि लूट ली। रानी को लाकर समर्पित कर दिया। रानी ने उस लूट के धन को अपने काम लिया।

हे शिष्यो ! वह रानी थी, उसने प्रजा पालन का कार्य धर्म नीति से करने का वचन जनता को तथा भगवान् को दिया था। भगवान् को साक्षी मानकर शपथ ली थी। किन्तु उन वचनों को तो लोभ के वशीभूत होकर तोड़ दिया था। उस जन्म में तो पाप के धन को खाकर, दूसरे के हक को छीन कर, जीवन सुख से बिताया, क्योंकि जीव कर्म करने में स्वंतत्र है। इस जीवन में कुछ भी करने में समर्थ है किन्तु "मूवा परहथ सारूं" मरने के बाद दूसरे के हाथ चढ जाता है, उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है।

इसी पाप से दूसरे जन्म में वह बूढ़े खिलेरी के घर पर भार लादने वाली घोड़ी बनी। उसने पीठ पर पानी ढ़ोकर के पानी पिलाया। कुछ पुण्य इसको भी मिला, और संत की कृपा से इस जन्म में यह स्त्री बन करके आ गयी है। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसका भोक्ता भी वही होता है किन्तु व्यक्ति को जब जब भी पाप कर्मों का फल दु:ख आता है, तो विष्णु भगवान् को दोष देता है। हे प्राणी ! विष्णु को दोष क्यों देता है ? यह सुख दु:ख तुम्हारे कर्मों का ही फल है।

झाली रानी का जाम्भा सरोवर पर आना

नाथोजी उवाच:- हे शिष्य ! जाम्भोलाव की महिमा को चितौड़गढ़ के राणा सांगा एवं उनकी माता झाली रानी ने सुनी। जाम्भोजी से साक्षात्कार तो पूर्व में दोनों कर चुके थे। किन्तु जाम्भा सरोवर का दर्शन स्पर्श करना चाहते थे। उन्हें ज्ञान हुआ कि इस समय श्रीदेवजी तालाब खुदवा रहे हैं। छ: महीने से वहीं पर ही हैं, अच्छा अवसर था।

रानी अपने बेटे से कहने लगी-हे बेटा ! यदि तुम्हें राजकाज में फुर्सत हो तो एक बार जाम्भोलाव तालाब में स्नान करने की मेरी प्रबल इच्छा है। वहीं पर ही श्री विष्णु जाम्भोजी का दर्शन भी सुलभ हो सकेगा। सांगा कहने लगा-हे माताजी ! इस समय मुझे राजकार्य में समय नहीं है। मैं फिर कभी जाऊँगा। आप चली जाइये। मैं आपकी सेवा के लिए कुछ सेवकों को भेज दूँगा। हम राज घराने के लोग हैं हमें वहाँ देवजी के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। जो तुम उचित समझो, भेंट लेकर अवश्य ही जाओ।

झाली रानी अपने सेवकों के साथ चितौड़ से एक संदूक में जाम्भोजी के लिए दिव्य भेंट लेकर चली थी। सहज रूप से चलते हुए श्रियारी गाँव में तम्बू लगाया। भोजनादिक करने के पश्चात् रानी एवं उनके सेवक सो गये। रात्रि में मेणा लोग जाम्भोजी की भेंट सन्दूक चुरा ले गये। रानी ने जम्भगुरु को याद किया। हे देव ! आपको दी जाने वाली भेंट चोर ले गये। यह कैसे हो सकता है ? अनधिकारी चोर आपकी भेंट को छू सके। यदि ऐसा हुआ तो आपकी सिद्धि का क्या होगा ? वे आठ चोर थे, जो चोरी कर ले गये। जाम्भोजी के प्रकोप के भाजन बने। जाम्भोजी ने उन्हें शिक्षित करने हेतु अंधा कर दिये। पाँच दिन तक अंधे ही रहे। आँखें नहीं खुलीं। तब सचेत हुए और सन्दूक ज्यों की त्यों ले जाकर रानी को सौंप दी, तभी उनकी आँखें खुली।

रानी से उन चोरों ने प्रार्थना की कि हे रानीजी ! आप हमें क्षमा करें, हमने जाम्भोजी की करामात देख ली

है। आप देवी क्षमा की मूर्ति हैं। हमारी नादानी पर ध्यान नहीं देंगी। अब हमें छुट्टी देवें, पुनः ऐसी भूल नहीं करेंगे।

झाली राणी वहाँ से चलकर सम्भराथल आयी। सम्भराथल पवित्र भूमि का दर्शन किया। तीन रात विश्राम कर वहाँ से झींझाले साथरी का दर्शन किया। वहाँ से चलकर एक रात्रि खींदासर में विश्राम किया। वहाँ पर उदोजी के दर्शन हुए। वहाँ से जैसला तथा भींयासर होते हुए जाम्भोलाव तालाब पर रानी पंहुची।

सतगुरुदेव जाल वृक्ष के नीचे कमलासन पर विराजमान थे। दिव्य प्रेमरूपी भेंट सतगुरु के आगे रखी। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। झाली अपने स्वामी साक्षात् विष्णु का दर्शन करके अतिप्रसन्न हुई। जम्भेश्वर की आज्ञा से जाम्भोलाव में स्नान करके अपने को पवित्र किया। तालाब की कुछ दूरी पर तम्बू तनवाये। सांयकाल में संतों को निमंत्रण देकर जागरण करवाया। प्रातः काल श्री जम्भेश्वर जी के कर कमलों से कलश की स्थापना करके पाहल अमृत का पान किया। अनेकों प्रकार के मिष्ठान्न भोजन संत भक्तों को जिमाया, वस्त्र दान दिया।

सौ रुपया की मिट्टी निकलवायी। तालाब के चारों तरफ वस्त्र बिछा करके महोत्सव किया। वही वस्त्र संतों को प्रसाद के रूप में प्रदान किया। इस प्रकार से झाली रानी ने सूत फेराया। वस्त्र दान करके अपने जीवन को सफल किया। इस प्रकार से झाली रानी ने आठ दिनों तक जाम्भोलाव पर निवास किया और श्रीदेवजी से आज्ञा लेकर वापिस प्रस्थान करते समय पूछा-

झाली राणी पूछियो, देव तणे दरबार।
अयोध्या में आनन्द घणा, सुखी किसा करतार।

श्रीदेवजी ने झाली के प्रति शब्द सुनाया-

शब्द-111

ओ३म् खरड़ ओढ़ीजै, तूंबा जीमीजै, सुरहै दुहीजै।
कृत खेत की सींव मलीजै, पीजै ऊंडा नीरूं।
सुरनर देवां बंदी खानै, तित उतरीबा तीरूं।
भोलब भालब टोलम टालम, ज्यूं जाणो त्यूं आणो।
मैं बाचा दई प्रहलादा सूं, सु चेलो गुरु लाजै।
कोड़ तेतीसूं बाड़े दीन्हीं, तिनकी जात पिछाणो।

झाली रानी ने पूछा हे देव! अब आप यहाँ बागड़ देश में कैसे हो ? पूर्व जन्म अयोध्या में तो बड़े आनन्द में थे।

श्रीदेवजी ने शब्द सुनाते हुए कहा-यह बागड़ देश तथा यहाँ के लोग एवं समय का प्रभाव ये अपनी विशेषता तो प्रकट करेंगे ही। इस समय तो यहाँ पर खरड़-मोटा ऊनी-सूती कपड़ा ओढ़ा जाता है। किन्तु अयोध्या में तो ऐसा नहीं था। वहाँ पर तो मखमल के वस्त्र ओढ़े व पहने जाते थे। यहाँ पर भोजन के लिए तूंबा जो कड़वा होता है, वह भी खाया जाता है। किन्तु वहाँ अयोध्या में अमृत भोजन था। यहाँ पर बागड़ देश में सुरह गाय का दूध दूहा जाता है। किन्तु अयोध्या में तो कामधेनु थी। इच्छित दूध देने वाली। यहाँ की गऊवें अल्प मात्रा में दूध देती हैं। वहाँ त्रेतायुग में तो अयोध्या में हम थे। वहाँ पर तो सम्पूर्ण धरती ही हमारी थी। समुद्र ही सीमा थी। किन्तु यहाँ कलयुग के बागड़ देश में सीमाएँ बहुत ही छोटी हो गयी हैं। अपनी ही खेत की

सीमा में ही रहना होता है। पृथ्वी के छोटे छोटे टुकड़े हो गये हैं। भूमि के लिए मर रहे हैं। उस समय रामावतार में ऐसा नहीं था। पीने के जल का अभाव यहाँ पर है। जल मिलना दुर्लभ है। बहुत ही गहराई में खोदेने से जल प्राप्त होता है। वही जल पिया जाता है। किन्तु उस समय राम रूप में हम थे तो जल सर्वत्र सुलभ था। इस समय जल नीचे चला गया है तथा कहीं पर खारा भी हो गया है। उस समय मधुर स्वच्छ जल सुलभ था।

उस समय त्रेतायुग में तेतीस प्रमुख देवता रावण की कैद में बन्द थे। रावण उनसे अपनी इच्छानुसार कार्य लेता था। सूर्य देवता रावण की रसोई पकाता था। अग्नि देवता कपड़े धोता था, पवन देवता बुहारी देता था। ब्रह्मा देवता आटा पीसते थे। रोग बुढ़ापे को रावण ने बाँध रखा था। मृत्यु को कुएँ में डाल रखी थी। उनको मुक्त करवाने के लिए मुझे वनवास हुआ। सीता का हरण हुआ। रावण की मृत्यु हुई। वे लोग पार उतर गये। इसलिए ही लंका में एकत्रित हुए थे। वह राम-रावण युद्ध पार उतारने का किनारा था।

हे झाली! उस समय तो हम भी इसी प्रकार से रहे। अत्यंत सुखी थे। द्वापरयुग में भी गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि मैं भोलम भालम टोलम टालम के रूप में आया था। मैंने देखा था कि उस समय मथुरा के लोग गोप-ग्वाल बाल, अत्यंत भोले-भाले सरल जीवन जीने वाले हैं। उनके साथ रहना मुझे अच्छा लगा था। वहाँ पर वृन्दावन में मैंने रास रचाई थी। वह तो अत्यंत ही मोहक थी। ब्रह्म जीव का साक्षात् करने वाला वह दिव्य खेल था। मैंने ऐसे ही समझा था, ऐसे ही वो लोग अधिकारी थे। वैसा ही दिव्य रूप कृष्ण का धारण करके मैं आया था। वहाँ के दिव्य आनन्द का तो आर पार ही नहीं है।

हे रानी! मैंने ये अवतार क्यों लिये ? इसमें भी कोई कारण अवश्य ही है। जब सतयुग में हिरण्यकश्यपु को मारने के लिए मैंने नृसिंह रूप धारण किया था। उस समय मैंने हिरण्यकश्यपु को मारा था और प्रह्लाद को वचन दिया था कि तुम्हारे तेतीस करोड़ अनुयायियों का मैं चार युगों में उद्धार करूँगा। इकवीस करोड़ तो तीन युगों में पार पहुँच गये। अब कलयुग में बारह करोड़ अवशिष्ट है उनका उद्धार करने हेतु मैं आया हूँ। यदि प्रह्लाद चेले को दिया हुआ वचन मैं पूरा नहीं करूँगा तो सु चेलो और गुरु दोनों ही लज्जित हो जायेंगे। मैं उन बिछुड़े हुए प्रह्लाद पंथी जीवों की जाति जानता हूँ उस समय के वे जीव इस समय यहाँ बागड़ देश में जन्म लेकर आये हैं। उनके स्वभाव को मैं पहचानता हूँ, उन्हीं जीवों का उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। वे जीव भी यही बागड़ देश में शरीरों को धारण करके रम रहे हैं। मैं उनको पार पहुँचाऊँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है। गुरु शिष्य पहले तो प्रतिज्ञा करे, फिर प्रतिज्ञा तोड़ दे, तो दोनों ही लज्जित हो जाते हैं।

हे वील्हा! इस प्रकार से श्रीदेवजी ने झाली रानी को उनके मन की शंका का निवारण करते हुए वहां से विदाई दी। कपिल सरोवर खुदाई का कार्य श्री देवजी ने स्वयं करवाया और वापिस सम्भराथल चले आये। लगातार छः महीने श्रीदेवजी का जाम्भोलाव पर ही विराजमान रहना और ज्ञान,ध्यान, तीर्थ महात्म्य की चर्चा करना ये सभी बातें मैंने तुझे बतलायी है।

नौरंगी को भात भरना

नाथोजी उवाच:- हे वील्ह! एक समय सम्भराथल पर श्रीदेवजी विराजमान थे। उनको रोमांचित हुआ देखकर हम लोगों ने पूछा -हे देवजी! आज किस जीव के भाग खुले हैं? सदा ही आनन्द में रहने वाले श्रीदेवजी ने बतलाया-रोटू गाँव में एक भक्तिमती उमा नाम की बेटी रहती है। वह भादू गोत्र की है और झोदकणा गोत्र में उसका विवाह हुआ है। उसकी दो कन्याएँ हैं। वे बड़ी हुई। विवाह लायक हुई तो उन्होंने उनका विवाह करने की तैयारी कर ली है। इस समय वह उमा अपने पीहर गयी है। वहाँ पर अपने पिता, चाचा, ताउ, भाइयों को विवाह में आने का निमंत्रण देने गयी है। उमा बत्तीसी लेकर विधि विधान से निमंत्रण देने पहुँची है। किन्तु उनके कटुम्बी भादू जनों ने निमंत्रण-बत्तीसी लेने से इनकार कर दिया है।

उन्होंने कहा कि-तू तो हमें क्या समझती है? जाम्भोजी की भक्त बनी है। वो ही तुम्हारा भात भरेंगे। वहाँ जाम्भोजी के पास निमंत्रण देने क्यों नहीं गयी? यहाँ पर ही क्यों आ गयी? हमारे पास पहले तो कभी नहीं आयी थी। अब गरज पड़ी तो कैसे आ गयी? जिसकी तू चेली बनी है, वही तुम्हारा भात भी भरेंगे। इस प्रकार से व्यंग्य वचन कहे। अपने प्रिय भ्राता, माता-पिता, बन्धुओं से ऐसे अप्रिय वचन सुनकर वह बेचारी वापिस आ गयी। अब तो उसे मेरे सिवाय अन्य कोई भाई बन्धु आदि दिखाई नहीं दे रहे हैं। जो विवाह में सम्मिलित हो सके और भात भर सके।

इतना ही नहीं उमा जल लेने कुएँ पर गयी थी। वहाँ पर भी अन्य महिलाएँ उमा से कहने लगी-हे उमा! क्या अपने भाइयों को निमंत्रण दे आयी? वे तो अवश्य ही बहुत सारा भात भरेंगे। तुम्हारा विवाह का खर्चा सभी पूरा हो जायेगा। उसमें तो बच भी जायेगा। तीसरी सखी ने कहा-हे उमा! जल्दी जल लेकर घर पहुँचो, भात लेकर तुम्हारे भाई आ गये होंगे। उनका स्वागत कौन करेगा? चौथी सखी बोली-इसके चाचा, बाबा, भाई आदि तो अवश्य ही होंगे, या नहीं? इसका कोई सगा भाई होगा तो अवश्य ही भात भरेगा।

उमा कहने लगी- हे सखियो! यदि मेरे कोई भात भरने वाला हो तो आप लोग इस प्रकार की व्यंग्य वाणी- मौसा नहीं मारती। ये टेढ़ी बातें नहीं करती। तुम्हें मालूम है कि मेरे भाइयों-कुटुम्बियों ने भात भरना स्वीकार नहीं किया है। आप लोग इस प्रकार से जले पर नमक न छिड़को। मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु, गुरु-स्वामी सभी कुछ जाम्भोजी ही हैं। मैंने तो उनकी ही शरण ग्रहण कर ली है। अब तो मेरी लज्जा उनके ही हाथ में है। इस प्रकार से विलाप करती हुई उमा जल का घड़ा लेकर लौट आयी। अपने कार्य में संलग्न हो गयी। वे अन्तर्यामी मेरी लाज रखेंगे।

श्री जाम्भोजी ने साथरियों से कहा-हे भक्तो! अतिशीघ्र ही रोटू चलना है। तैयारी करो। उमा की बेटियों का विवाह तो परसों ही है। कल ही हमें रोटू पहुँचना होगा।

रणधीरजी ने पूछा- हे देव! आपके पास उमा का निमंत्रण पत्र आया है क्या? श्री देवजी ने कहा- उमा के हृदय की करुणा की पुकार मैं सुन रहा हूँ। यह निमंत्रण सर्वोत्तम है। बाह्य चिट्ठी तो लोक व्यवहार की भाषा है। मैं प्रेम की भाषा जानता हूँ। तुम लोग स्थूल भाषा का अर्थ समझते हो। हे रणधीर! यह समय शंका समाधान का नहीं है। प्रात:काल ही अपने साथरियों को लेकर चलो। सायंकाल में रोटू पहुँचना है। वहाँ पर राजा लोग भी उपस्थित होंगे। मैंने उनको निमंत्रण भेज दिया है। जिस बेटी ने मुझे ही सर्वस्व मान लिया है, शरणागत प्राप्त हो गयी है, तो उसकी लज्जा अपने ही हाथो में है। उमा को ऐसा दिव्य भात भरना है, जो अब

तक किसी ने भी नहीं भरा है।

हे वील्ह! नौरंगी की बेटियों का विवाह अक्षयतृतीया-आखातीज को था। दूज की शाम को रोटू गाँव की सीमा में अनेकों तम्बू तन गये और राजा लोग अपने अपने सैनिक उमराओं के साथ रोटू गाँव में पहुँच चुके थे। गाँव के लोगों ने अपने ही खेतों में तम्बू तने हुए देखे तो आश्चर्यचकित हुए और कहने लगे-

यह क्या हो रहा है? क्या कोई राजा की सेना दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने जा रही है। इतने में ही एक व्यक्ति आया। कहने लगा-साथरी पर गुरु जाम्भोजी आ चुके हैं। उमा ने सुना कि स्वयं त्रिलोकीनाथ मेरी प्रार्थना सुनकर आये हैं। मैं धन्य हो गयी। मेरा जीवन सफल हो गया। अब मुझे किसी बात की चिंता नहीं है। अक्षय तृतीया के अवसर पर श्री जाम्भोजी उमा का भात भरने के लिए अनेक भक्तों के साथ रोटू गाँव के बीच में पहुँचे। रथ से नीचे उतरने लगे, तभी उनके एक पैर की एडी पत्थर पर टिकी थी। वहीं पत्थर पर चरण चिह्न अंकित हो गया था।

चौकी बिछाकर भात भरने के लिए श्रीदेवजी उच्च आसन पर विराजमान हुए। अन्य लोग भी यथास्थान विराजमान हुए उमादेवी थाल में तिलक आदि का सामान सजाकर उपस्थित हुई। सर्वप्रथम श्रीदेवजी की आरती उतारी। श्रीदेवजी ने उमा को उपहार में नौरंगी चीर ओढ़ाया। तभी से ही उमा का नाम नौरंगी पड़ गया। यह विचित्र नौ रंगों से रंगा हुआ ओढ़ना था। न तो किसी ने अब तक देखा था और न किसी मानव द्वारा निर्मित था।

देवजी के साथ अन्य लोग भी उमा के लिए भाई बन्धु बनकर आये थे। उनको भी तिलक देकर विजयी होने की कामना उमा बहन ने की। सभी ने अपनी अपनी योग्यतानुसार भेंट प्रदान की। उमा का थाल भर गया था एवं सभी भण्डार भी भर गये थे।

श्रीदेवजी भात भरने को आये हैं। आज तो जो कुछ भी किसी को चाहिये, वही मिलेगा। सम्पूर्ण गाँव के लोगों को यथा योग्यतानुसार रुपये हीरे, वस्त्रादिक से भण्डार भर दिये। श्रीदेवजी ने कहा-यहाँ हमारे दरबार में आया हुआ कोई खाली नहीं जायेगा। जो कुछ, जितना जिसको चाहिये, उतना दिया जायेगा। श्रीदेवजी के हाथों से प्रसाद लेकर रोटू गाँव के छोटे-बड़े, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी आनन्दित हुए

साथ में आए हुए जोधपुर नरेश राव मालदेव ने कहा- हे देव! आप सम्पूर्ण सम्पत्ति इस गाँव के लोगों को लुटा रहे हैं। हम भी तो आपके साथ हैं। इन गाँव वासियों ने सेवा चाकरी अच्छी की है। यह सभी आपकी ही कृपा का फल है। हमारे पास तम्बू ज्यादा नहीं हैं। हमारे सैनिक, हाथी, घोड़े आदि धूप में हैं। उनके लिए यहाँ छाया कुछ भी नहीं है। यहाँ इस गाँव की सीमा में एक भी वृक्ष नहीं है। छाया के अभाव में सभी बेहाल हैं। कुछ उपाय बतलाइये।

श्रीदेवजी ने जिस प्रकार से वस्त्र आकाश मार्ग से उतारे थे, उसी प्रकार से सभी के देखते देखते खेजड़ी के तीन हजार सात सौ पेड़ गोलोक से मंगवाये। जहाँ-जहाँ पर वृक्षों का अभाव था, वहीं-वहीं पर रोप दी। सामान्य खेजड़ी को तो बड़ी होने में समय लगता है, किन्तु वे बढ़ी हुई तैयार, गहरी छाया वाली, गो लोक की तुलसी ही थीं। लोगों ने देखा कि एक ही रात्रि में रोटू की सीमा में बाग लग गया। हर्ष की लहर फैल गयी।

रोटू गाँव के कुछ लोग श्री जाम्भोजी के पास आये और कहने लगे- हे महाराज! आपने खेजड़ियों का तो बाग लगा दिया किन्तु हमारे लिए एक भारी समस्या पैदा कर दी है। प्रथम तो इन खेजड़ियों के नीचे बाजरा, मोठ तिल आदि अनाज ही नहीं जम पावेगा, क्योंकि बड़े पेड़ के नीचे छोटा पेड़ ही नहीं पनप सकेगा और यदि अनाज भी हो गया तो चिड़ियाँ इन पेड़ों पर बैठेंगी। हमारा अनाज तो ये खा ही जायेंगी। हमारा परिश्रम

तो व्यर्थ ही चला जायेगा। हमें भूखा मरना पड़ेगा। यह तो अपने हमारी समझ में अच्छा नहीं किया।

जाम्भोजी ने समझाते हुए कहा-आप लोग चिंता न करो। इन खेजड़ियों के नीचे अन्य जगह से कहीं अधिक ही पैदा होगा। ये खेजड़ियाँ तुम्हारे अन्न के लिए खाद पैदा करेंगी। इनके पत्ते झड़ेंगे। पशु-पक्षी इनके नीचे ऊपर विश्राम करेंगे, उनकी बींट की खाद बनेगी। ये वृक्ष भूमि में नमी बनाये रखेंगे। स्वयं तो ऊपर का जल ग्रहण नहीं करेंगे, तुम्हारी फसलें जो ग्रहण करती हैं, नीचे पाताल का जल इनकी जड़ें खींचेंगी और भूमि को जलयुक्त बनाये रखेंगी। ये वृक्ष तुम्हारे लिये वर्षा लायेंगे। यह हरा-भरा बाग बादलों को खींच कर ले आयेगा। वर्षा करवा देगा। जिससे तुम्हारे अकाल कभी नहीं पड़ेगा। सदा खुशहाली हरियाली बने रहेगी। इसलिए इन परोपकारी स्वर्ग से आये हुए वृक्षों को काटना नहीं।

आप लोग यह कहते हैं कि चिड़ियाँ खेत चुग जायेंगी। यह भी आपका कहना ठीक नहीं है। श्रीदेवजी ने कहा-मैं चिड़ियों को कह देता हूँ। ये तुम्हारे खेत का अनाज नहीं खायेगी। रात्रि विश्राम तुम्हारे इन पेड़ों पर करेंगी, किन्तु दाना चुगने अन्यत्र तुम्हारी सीमा से बाहर जायेंगी। जब तक तुम लोग अपने नियमों का पालन करते रहोगे, तब तक ये चिड़ियाँ भी अपने नियम पर अडिग रहेंगी।

नाथोजी उवाच:-हे वील्ह! इस प्रकार से चिड़ियों को श्रीदेवजी ने आदेश दिया। उन अज्ञानी चिड़ियों ने उनके आदेश को माना है। वे तो श्रीदेवजी की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर रही हैं, किन्तु मानव को देखो। वह शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन करने जा रहा है। मैं तुझे कहाँ तक कहूँ? जाम्भोजी के शिष्य बिश्नोई भी नियमों में ढ़ील दे रहे हैं।

हे वील्ह! हम तुम पढ़ लिखकर विद्वान् हो गये हैं। जाम्भोजी की कृपा तुम्हारे पर असीम है। मैं तुम्हारे अन्दर वह अपार शक्ति को देख रहा हूँ। जिसके द्वारा तुम इस पंथ के रक्षक के रूप में उभर सकते हो।

मैंने तुझे अबाध गति से जाम्भोजी की लीला सुनाई है। अग आगे कुछ विशेष लीला मैं तुम्हें सुनाऊँगा। रोटू गाँव के लोगों एवं नौरंगी को प्रसन्न करके श्री देवजी वापिस अपने शिष्यों के साथ सम्भराथल लौट आये। राजा प्रजा लोग वापिस पुण्य कार्य करके चले गये। नौरंगी ने भगवान् का स्मरण अनन्य भाव से किया था जिसका फल श्रीदेवजी ने योगक्षेम के रूप में दिया था। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग कहा जाता है और प्राप्त की रक्षा करना क्षेम कहा जाता है।

दसवां अध्याय

भूतों की गति करना

सम्भराथल पर विराजमान श्रीदेवजी के पास आये हुए मेरठ के राजा आसकरण एवं खेतसी ब्राह्मण पंडवाला ने अमावस्या कथा का विवरण पूछा था। श्रीदेवजी ने व्रत कथा महात्म्य एवं शब्द सुनाया था।

पुन: आसकरण ने पूछा-हे देव! आप जीवित व्यक्तियों की गति तो अपने नियम पालन से कर सकते हो, किन्तु जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो गया है और उसकी गति नहीं हुई अर्थात् जन्म को प्राप्त नहीं हुआ है, वह अशरीरी जीव जो वायु के रूप में भटका है। उसकी दशा अत्यंत दयनीय है। आप उस जीव पर भी दया करके उसकी गति कर सकते हैं क्या?

श्री देवजी ने कहा-हे आसकरण! यह बात तुमने ठीक समय पर पूछी है। तुम कुछ समय तक यहीं ठहरो। मैं प्रत्यक्ष रूप से तुम्हें बतलाऊँगा। अभी कुछ समय के पश्चात् ही तुम्हारे सामने गंगापार से बिश्नोइयों की जमात आयेगी। उस जमात में कुलचंद एवं उनके दोनों बेटे धनो बिछू भी आ रहे हैं तथा अन्य सुरगण, भंवरो उनके दामाद चेलोजी आदि इष्टमित्रों सहित आ रहे हैं। ये लोग परमभक्त हैं। प्राय: हर छठे महीने सम्भराथल पर आते रहते हैं। इधर फाल्गुन महीने तथा उधर आश्विन के महीने में इनका जमात सहित आगमन होता रहता है। किन्तु अबकी बार कुछ घबराये हुए आ रहे हैं।

इतनी वार्ता श्रीदेवजी कह ही रहे थे कि एक आदमी ने आकर समाचार सुनाया कि गंगापार के बिश्नोइयों की जमात तो पहुँच चुकी है। जम्भेश्वरजी के पास बिश्नोइयों की जमात सहर्ष पहुँची। दण्डवत प्रणाम किया।

हे वील्हा! उन लोगों ने अपनी बहुमूल्य भेंट श्री चरणों में समर्पित की। श्रीदेवजी ने उन्हें आशीर्वचन कहे। कुशल समाचार पूछा-कुलचंद जी ने कहा- हे देव! आपकी अपार कृपा से सभी कुशल मंगल है। जिसके सिर पर आपका हस्तकमल रखा हो, तो उनकी कुशलता तो सदैव ही रहेगी। अनकों बार हम आपकी शरण में आये हैं। कभी हमें कष्ट नहीं हुआ।

आपकी अपार कृपा से ही तो मुझे चार संतानों की प्राप्ति हुई थी। शांति मेरी बड़ी बेटी जिसका विवाह मैनें आपकी आज्ञा से चेलोजी से कर दिया। चेलोजी सज्जन प्रकृति के हमारे दामाद हैं। मेरी बेटी प्रसन्न है। मेरे दो बेटे धनो और बीछू भी आपकी कृपा से सुपात्र है। ये भी मेरे साथ में हैं। मेरी छोटी बेटी इमरती का विवाह आपके दर्शन करके वापिस जाकर कर दूँगा। आपकी कृपा से वह भी सम्पन्न हो जायेगा। हम लोग आपको निमंत्रण देने आये हैं। कृपा करके मेरी छोटी बेटी के विवाह में आप अवश्य ही पधारो। इस प्रकार से कुलचन्दजी कुशल समाचारों से अवगत करवा रहे थे कि धनो बीछू भी देवजी के दरबार में आ गये।

जाम्भोजी ने पूछा-क्या बात है? आप लोग पीछे से क्यों आये? क्या कार्य हेतु रुक गये थे? धनो बीछू कहने लगे-हे देव! क्या बतलावें? आपकी कृपा से ही हम लोग पहुँच गये हैं। अन्यथा तो न जाने हमारे साथ क्या घटना घटित हो जाती है? हम लोग अपने साधन द्वारा सकुशल कुचौर गाँव तक तो पहुँच चुके थे। वहाँ हमें जंगल में ही रात्रि हो गयी थी।

एकाएक सैकड़ों भूत-प्रेतों ने हमें घेर लिया। आगे बढ़ने ही नहीं दिया। हम लोग उनसे दु:खी होकर नाक नाक आ गये हैं। हमने विचार किया कि क्या करना चाहिये? इनसे छूटें कैसे? हे देव! आपकी अनुकम्पा से हम लोग उनको साथ ही आपके पास ले आये हैं। आप उन अशरीर धारी दु:खी जीवों का

कल्याण करो। वे तो आपकी ज्योति के निकट सम्भराथल नहीं आ सकते हैं। यहाँ नजदीक ही धूँपालिया गाँव के टीबों में 350 भूत-प्रेत बैठे हुए हैं। हम उनको वहाँ एक खेजड़ी के नीचे बिठाकर आये हैं। कृपालु दया के सागर श्रीदेवजी वहाँ से उठ खड़े हुए साथ में जमात एवं राजा आसकरण भी चला। थोड़े ही समय में वहाँ पर पहुँच गये। जहाँ भूतों की जमात थी।

जम्भेश्वरजी ने कहा-हे अगति प्राप्त जीवात्माओं! आप लोग यदि अपना भला चाहते हैं तो पंक्ति लगाकर बैठ जाओ। पहले तो अपनी-अपनी जाति तथा नाम बताओ। फिर यह बतलाओ कि तुमने ऐसा कौनसा कार्य किया, जिससे इस प्रकार की अगति को प्राप्त होकर भटक रहे हो? उनमें चार भूत योद्धा थे। प्रथम वे ही अपना परिचय देते हुए कहने लगे-हम खंधार, खेतसी, खेराज और करणसिंह थे। वे ये हम हैं। हम चारों मोहीला गोत्र के हैं। खींवराव से हम कुचौरा रहने लगे थे। तथा अन्य हमारी जामत में केई चांपा, कुमावत, भगवन्ती, मेड़तिया, ये 14 राठौड़ बैठै हुए हैं। यदुवंशी, भाटी, सांखला, चौहान, पैथल, धंधल, सोढ़ा, पंवार, इन्दो, सोनगरा, मोयल, सिसोदिया इत्यादि गोत्रों के तथा विभिन्न नावों के शूरवीर थे। वे ही मरकर भूत योनि में चले गये। कुल तीन सौ पचास संख्या में उपस्थित हैं।

राजा आसकरण ने पूछा- हे गुरुदेव, ये लोग तो सभी शूरवीर थे। गौ तथा धर्म रक्षार्थ युद्ध करते हुए बलिदान को प्राप्त हुए थे। इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई?

श्रीदेवजी ने बतलाते हुए कहा- धाड़ेती डाकू गउवें ले जा रहे थे। उन धाड़ेती डाकू लोगों को सबक सिखाने हेतु ये लोग युद्ध में लगे हुए थे। दोनों ओर से भयंकर संग्राम हुआ। दोनों ही पार्टियों के लोग कट मरे थे। आखिर जीत तो गोरक्षक शूरवीरों की ही हुई थी।

युद्ध के मैदान में शूरवीर पड़े हुए घायलावस्था में कराह रहे थे। उन्हें कोई देखने वाला भी नहीं था। प्यास लगी थी। वहाँ तो उन्हें कोई जल पिलाने वाला भी नहीं था। उसी समय ही एक स्त्री बैलगाड़ी पर जल लेकर अपने खेत को जा रही थी। उस महिला ने जब जंगल में घायलावस्था में कहराते हुए लोगों को देखा। वह उनके पास में गयी। उनकी सहायता करने की इच्छा हुई। उन घायलावस्था में लोगों ने जल माँगा। उस स्त्री ने जल पिलाया। उन तीनसौ पचास लोगों ने जल पिया और मृत्यु को प्राप्त हो गये।

हे राजन! वह जल पिलाने वाली स्त्री रजस्वला अवस्था में थी। एक रजस्वला स्त्री के हाथ का पानी पीकर वे स्वर्ग में जाने के अधिकारी क्षत्रिय लोग अधोगति भूत-प्रेत गति को प्राप्त हो गये थे। रजस्वला स्त्री के द्वारा बनाया हुआ भोजन जलादि ग्रहण करने से उनकी यह गति हुई थी।

श्रीदेवजी ने उस समय ही वहाँ पर कच्चे करवे में जल मंगाया और हवन करके पाहल बनाया तथा उनको पंक्ति में बैठाकर भूतों के ऊपर पाहल जल छिड़का। सभी के देखते ही देखते उनका वायुप्रधान शरीर लुप्त हो गया और उन जीवात्माओं ने स्वर्गारोहण किया।

हे वील्ह! श्री जम्भेश्वरजी द्वारा बनाया हुआ पाहल-जल की यही करामात है। भूत प्रेत प्राप्त जीव को सद्गति प्रदान करने वाला है। इसलिए जो सज्जन पुरुष होगा, वह तो पाहल को अमृत तुल्य समझकर के ग्रहण करता है। और जो कपूत है, वह पाहल लेने से लज्जा मरता है।

चेलोजी की सहनशीलता

राजा आसकरण ने जाम्भोजी तथा उनकी पाहल का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा। जाम्भोजी गंगा पार की जमात के साथ वापिस सम्भराथल चले गये। वहाँ पर गंगा पार की जमात कुलचन्द, धनो, बीछू आदि सोलह दिन रहे। एक दिन चेलोजी ने हाथ जोड़कर कहा-

हे देवजी ! अब हमें यहाँ आये को बहुत दिन हो गये हैं। आपकी आज्ञा हो तो वापिस जाये। जाम्भोजी ने आदेश देते हुए कहा-अवश्य ही जाओ।

कुलंचद ने हाथ जोड़कर कहा-हे देव ! हम आप से विलग नहीं हो सकते। हर छठे महीने हमारा आने का नियम है। यह निभता रहे। इस समय हम लोग आपको आपकी मण्डली सहित ले जाना चाहते हैं। कृपा करो एक बार हमारे देश में अवश्य ही पधारो। हम लोग वापिस जाकर विवाहोत्सव करेंगे। छोटी बेटी का विवाह होगा। उसमें सभी न्यात जमात को बुलायेगें। आप भी वहीं पर दर्शन दो, तो हमारा कार्य सफल होगा।

जाम्भोजी ने कहा-हे भक्त! विवाहोत्सव मनाओ, किन्तु सुपात्र की पूजा करो। ''दान सुपाते, बीज सुखेते, अमृत फूल फलीजै। जिस प्रकार से मौसम आने पर अच्छी खेती में बोया हुआ बीज फूलता फलता है और अनन्त गुणा हो जाता है, उसी प्रकार से सुपात्र को दिया हुआ दान भी अमृत दायी, फलदायी होता है। इसलिये विवाह में हवन यज्ञ करो। सुपात्रों को भोजन प्रेम से जिमाओ। सुपात्र साधु जनों को जिमाया हुआ भोजन भगवान् ही ग्रहण करता है।

इस समय तुम्हारे यज्ञ में मैं तो नहीं आ सकूँगा। किन्तु आपके साथ में चेलोजी भक्त है। वह मेरा ही रूप है। आप इनकी सेवा पूजा दर्शन करो। यह भगवान् का ही दर्शन होगा। आप लोगों ने बहुत ही यात्राएँ की हैं, बार-बार आने में कष्ट होता है। इसलिये आप वहीं पर आपके ही दामाद चेलो जी मेरा ही प्रतिनिधि है। उनका दर्शन उपदेश शिरोधार्य करो। आप लोग निर्धन तथा छोटे चेले जी के बारे में शंका नहीं करना। इस प्रकार से धनो, बिच्छु कुलंचद को श्री देवजी ने आदेश दिया।

नाथोजी कहते हैं कि हे वील्ह ! जाम्भोजी का आदेश शिरोधार्य करके वहाँ से रवाना होने लगे, किन्तु उनके दिल में जाम्भोजी की कही बात बैठी नहीं थी। चेलो जी को जाम्भोजी का रूप मानने को कतई तैयार नहीं थे। किन्तु देवजी के सामने कुछ बोल भी नहीं सके थे। वहाँ से रवाना होते हुए पुनः सभी ने प्रणाम किया। मन ही मन में तथा प्रकट रूप से एक दूसरे के मुँह की तरफ देखते हुए कहने लगे-

जाम्भोजी ने ऐसी बात न जाने क्यों कही कि चेलोजी का दर्शन कर लिया करो। कुलचंद जी ने कहा-आप लोग शंका मत करो। यह बड़े लोगों की रीत है। भक्तों के गुण प्रगट करते हैं। उनके अवगुणों की तरफ ध्यान नहीं देते। वैसे तो चेलोजी कोई हम से ज्यादा अच्छे नहीं है। इस समय जो कुछ भी श्री देवजी ने कहा है, वही मानलो। सभी अपनी अपनी विनती श्री देवजी से निवेदन करो और यहाँ से चलो।

श्री देवजी ने उन भक्तों की काना-फूसी तथा संशय को निवृत्त करते हुए पुनःकहा-हे कुलंचद ! जो भक्त शील, संतोष, क्षमा, जरणा, अजरा जरै, जीवत मरै, वह तो मेरा ही स्वरूप है। उस भक्त और भगवान् में भेद नहीं है। ऐसी देवजी की सार गर्भित वार्ता सुन कर हृदय में धारण किया और अपने अपने बैलगाड़ी जोत ली। अंतिम विदाई लेने हेतु एक-एक करके सामने आये और अपने-अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किये।

कुलंचद कहने लगा-हमारी जमात हाथ जोड़े खड़ी है। आँखों में आँसू बह रहे हैं। मुख से कुछ बोल नहीं

पा रहे हैं। आप से बिछुड़ते हुए उन्हें भारी दु:ख हो रहा है। जिस प्रकार से राम वन में गये थे तो अयोध्या के लोगों को भारी दु:ख हुआ था। जिस प्रकार से गुह निषाद के प्रेम था, वैसा ही प्रेम अपने लोगों का आपके प्रति झलकता है। ये लोग आप से विनती कर रहे हैं। आपको साथ ले चलने का आग्रह कर रहे हैं। बार-बार हम आप से निहोरा कर रहे हैं।

जाम्भोजी ने कहा-इस समय तो आप लोग वापिस जाइये और चेले जी को ही मेरा रूप मान कर दर्शन कीजिये। तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। फिर कभी मैं अवश्य ही आपके देश में आऊँगा। धनोजी स्तुति करते हुए कहने लगे-हे प्रभु हमें सदा प्रसन्नता बनी रहे। ''हरष न खोइये''यह तो आपकी कृपा से ही संभव है। हम तो अज्ञानी जीव हैं। संसार की मोह-माया में उलझ जायेंगे। जब तक हम आपके पास में हैं, तभी तक आपकी यह त्रिगुणी माया का पर्दा हम से दूर है। वहाँ जाते ही छाया-माया का पर्दा गिर जायेगा। वीछू जी कहने लगे-आपका दर्शन सूर्य के समान है। जब सूर्योदय होता है तो अन्धकार नहीं टिकता। उसी प्रकार से आपका सामीप्य है। तभी तक ज्ञान प्रकाश रहता है। इसलिये आप हमें अपने पास ही रहने दीजिए।

सुरगण भंवरा ने भी अपनी अपनी कथा व्यथा का वर्णन किया। क्षमा याचना की। हे देव आपकी महिमा हम अज्ञ जन कहाँ तक वर्णन करें, स्वयं शिव, ब्रह्मा भी आपकी महिमा का पार नहीं पा सकते। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही आपकी विभूति है। हे प्रभु ! आप सदा ही दयाभाव बनाये रखें, हम आपको एक क्षण भी नहीं भूलें। ऐसी कृपा करो।

श्री देवजी ने सभी को यथा योग्य आदेश दिया और चेलो जी के कंधे पर अपना दुपट्टा डाला।उन्हें अपना उत्तम अधिकारी शिष्य बनाया और सम्भराथल से विदाई दी। बिश्नोइयों की जमात सम्भराथल से वापिस अपने देश को चली। पहली रात्रि कुचौरा में व्यतीत की और आगे चलते हुए जहाँ जल की सुविधा होती वहीं अपने नियमों को निभाते हुए बीस दिन व्यतीत होने पर वापिस अपने देश गंगापार नगीने पहुँचे। अपने प्रिय मित्रों से, सज्जनों से मिले। सम्भराथल धाम की यात्रा कर के बहुत दिनों बाद लौटे थे। सभी ने खुशियाँ मनाई।

कुछ समय आनन्द मंगल में व्यतीत हो जाने पर कुलंचद ने अपनी छोटी बेटी इमरती के विवाह की तिथि तय कर दी। अपने कुटुम्बी सभी लोगों को निमन्त्रण देकर बुलाया। बहन-बेटियों को स्वंय जाकर ले आये। इस प्रकार की खुशी के अवसर पर किसी को भी नहीं छोड़ा। निमन्त्रण देकर बुलाया। अपने नजदीकी थे या दूर के भी थे, जमाती भक्त थे। उनको भी निमंत्रण भेजा। किन्तु धनों ने अपनी बड़ी बहन राम प्यारी तथा अपने बहनोई चेलो जी को नहीं बुलाया। स्वयं कुलचंद जी ने ही मना कर दिया था। कुलंचद जी सभी को एकत्रित कर के कहने लगे -

जाम्भोजी ने कहा है कि हम लोगो में शिरोमणि भक्त चेलोजी हैं, किन्तु हमें विश्वास नहीं हो रहा है। वहाँ पर सम्भराथल पर तो हम शिष्टाचार वश कुछ कह नहीं सके थे। अब हमें चेलोजी की परीक्षा करके देखना है।चेलोजी को निमंत्रण नहीं देना,और यदि बिना बुलाये आ भी जाये तो कोई आदर सत्कार नहीं करना और इतने पर भी क्रोधित न हो तो ऐसे कटु असहनीय शब्दों द्वारा अपमान भी करना है।सावधान रहे।

वैसे भक्त का क्या पता चले, शूरवीर का पता तो युद्ध के मैदान में ही चलता है।

हीरा असली है या नकली, इसका पता भी हीरे को अहरण पर रखकर के घण से चोट मारे, न टूटे तो असली और टूट जाये तो नकली समझे। सोने का असली नकली का पता भी तपाने से चलता है। उसी प्रकार से भक्त का पता भी जरणा रखने से चलता है, पुरुष कैसा क्या है ? उसी का पता भी विद्या पढने के

बाद ही चलता है। यदि चेलोजी जाम्भोजी का रूप ही है, तो हम परीक्षा कर के देखेंगे।

जाम्भोजी की बराबरी तो वही कर सकता है, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह को जला डाले। सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही परमात्मा परिपूर्ण है। व्यापक है, ऐसा देखता है''

वासुदेव सर्वमिति स महात्मा, राग -द्वेष, भाव-कुभाव, बन्ध-कुबन्धु इत्यादि मानव के स्वाभाविक दुर गुण जिनमें न हो वही ईश्वर तुल्य दर्शनीय पुरुष है। किन्तु चेलोजी शायद ऐसा नहीं है ? इनकी परीक्षा करके देखेंगे। इसलिये सभी को बुलाया किन्तु बहन-बहनोई को नहीं बुलाया।

विवाह महोत्सव में भोजन के लिये घृत, मिष्ठान आदि की व्यवस्था अपने समाज के लोगो द्वारा ही की गयी। शुद्धता-पवित्रता से भोजन बनाया गया। संतों द्वारा विराट यज्ञ किया गया। सर्वप्रथम यज्ञदेव को अग्नि में भोजन प्रसाद की आहुति दी गयी। उसके पश्चात् बाहर से आये हुए अतिथि सुपात्र को प्रेम से भोजन करवाना प्रारम्भ किया तथा अन्य भी बराती जमाती लोग भी समय पर भोजन करने लगे।

नगीने में ही निवास करने वाले चेलोजी अपनी पत्नी रामप्यारी से कहने लगे-आज तुम उदास सी क्यों दिख रही हो ? तुम्हारे पिताजी के घर पर तो महोत्सव हो रहा है। तुम्हारी माता, बहिनें, भाई आदि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अपने नन्हें बच्चो को लेकर जाओ ये बच्चे भूखे हैं। भोजन का समय हो गया है। सभी लोग भोजन कर रहे हैं। चलो चलते हैं आज तो वहीं भोजन होगा।

ऐसी बात सुनकर चेलोजी की पत्नी कहने लगी-क्यों जले पर नमक छिड़कते हो ? जिन मेरे माता-पिता, भाइयों ने नजदीक तथा दूरी के भी सम्बन्धियों को निमंत्रण देकर बुलाया है, हम यहाँ पास में ही बैठे हुए हैं। हमें बुलाया तक नहीं। ऐसे यज्ञ महोत्सव में कैसे जाएँगे ? मैं तो उस घर का पानी भी नहीं पीना चाहती।

चेलोजी अपनी धर्मपत्नी से कहने लगे-अपने ही लोगों को निमंत्रण नहीं दिया जाता। वह तो पराये को दिया जाता है। क्रोध तो उनको करना चाहिये, जो निमंत्रण की प्रतीक्षा करते हैं। फिर भी निमंत्रण मिलता नहीं है। तुम्हें तो ऐसा नहीं करना चाहिये। उनको क्यों दोष देती हो ? उनके तो घर में विवाह का कार्य है। उन कार्यो में सेवा करने के लिए हमें जाना चाहिये था। तू तो नाराज होकर बैठ गयी। यदि तू नहीं जाती है, तो ना जा। हम तो अभी जाते हैं। ऐसा कहते हुए चेलोजी बाल-बच्चों को साथ लेकर अपने ससुराल कुलचंद के घर पर पहुँच गये।

धनो जी ने सभी को सावधान कर दिया था। इसलिए किसी ने भी आदर सत्कार नहीं किया। उल्टा कहने लगे-अपने परिवार को लेकर चले आये हैं। कुलचंद जी कहने लगे-कुछ लोग ही ऐसे होते हैं जो बिना बुलाये ही चले आते हैं। जिनको लाज शर्म नहीं है। वे ही लोग अपनी अपनी थाली लेकर आ जाते हैं। इतना कहने पर भी अपने पिता तुल्य श्वसुर की बात का कोई बुरा नहीं माना। घर में प्रवेश कर गये। घर में भी चेले जी से कोई नहीं बोला। आगत-स्वागत का कुछ भी शब्द नहीं कहा। चेलोजी भोजन करने के लिए बैठने हेतु ताकड़-तोला विचार करने लगे। कहाँ बैठूँ ? तभी भक्त चेलोजी की सासू कहने लगी-

यहाँ क्यों खड़े हो ? जैसे कोई तमोली खड़ा है। जैसे कोई पान सुपारी वाला पनवाड़ी है। ऐसे खड़ा मूँछे फरकाता है। ऐसे ही शब्दों द्वारा सभी ने ही अपमान किया। भोजन करने का अवसर ही नहीं मिला। एक प्रहर तक उठते-बैठते रहे,किन्तु कहीं भी भोजन की प्राप्ति नहीं हुई। उठ कर अपने घर को चल पड़े। जब घर से बाहर निकलने लगे, तब बाहर बैठे हुए लोगों ने भी हंसी उड़ाते हुए कहा-चेलोजी भोजन कर के आ रहे हैं। दूसरा कहने लगा तभी तो पसीना आ रहा है। इस प्रकार से व्यंग्य बाण सुनते हुए चेलोजी घर पर पहुँच गये।

चेलोजी बाल बच्चों से कहने लगे- इस समय तो तुम लोग भोजन अपने घर पर ही करो। वहाँ तुम्हें भोजन नहीं मिला, क्योंकि अपने लोग देरी से पहुँचे थे। इस समय मैं जाता हूँ। सेवा कार्य करवाता हूँ। शाम को भोजन में सम्मिलित होंगे। मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगा।

चेलोजी अपने श्वसुर के घर पहुँचे। सेवा कार्य में जुट गये। चेलोजी ने देखा कि घर के लोग तो सभी अन्य कार्य में व्यस्त हैं। ये बेचारे अनबोल पशु, गाय, बैल आदि भूखे प्यासे हैं। उनकी सेवा कार्य में तल्लीन हो गये। उन्हें घास खिलाना, पानी पिलाना, उनका गोबर डालना आदि करना, किन्तु किसी ने भी यह नहीं कहा कि जमाता जी! आपका कार्य यह नहीं है। सभी चेलोजी की सेवा से प्रसन्न हो रहे थे। शाम को भोजन का समय हुआ, तब चेलोजी अपने घर आये और रामप्यारी से कहने लगे-

भोजन करने के लिए चलो। रामप्यारी कहने लगी-तुम ही चले जाओ। मैं तो नहीं जाऊँगी, और यह भी बता देती हूँ कि तुम्हें वे लोग एक लोटा जल भी नहीं पिलायेंगे। चेलोजी कहने लगे- यदि जल नहीं पिलायेंगे, तो भी कोई बात नहीं है। आखिर रहना तो उस घर में ही है। क्या अपनी आत्मा को छोड़ी जा सकती है? वे तो मेरी ही आत्मा हैं। वे तो हमारे माता-पिता, भाई-बंधु सभी कुछ हैं। यह तो कौन सी बात है? हमारे ऊपर उनका ऋण है। यदि जिंदगी भर उनकी झूठ भी उठायें, तो भी हम उन माता-पिता के ऋण से उऋण नहीं हो सकते। इस प्रकार कहते हुए चेलोजी अपने बच्चों को लेकर चल पड़े। घर में प्रवेश करते ही कुलचंदजी ने रोक दिया और कहा-तुम लोग घर में क्यों जा रहे हो? बिना ही प्रयोजन भीड़ क्यो करते हो? यहाँ खड़े रहो। मैं अंदर जाता हूँ। पहले देखकर आता हूँ कि आगे जगह है या नहीं? चेलोजी ने कुलचंद के पीछे-पीछे आंगन में प्रवेश किया। अंदर किसी ने ऐसा नहीं कहा कि आओ, आओ बैठो।

बालकों के सहित चेलोजी भोजन करने बैठे, तब धनोजी ने कहा-तुम लोग देरी से आये हो। अब भोजन समाप्त हो गया है। जल्दी आना चाहिये था। न जाने क्या करते रहे, अब आकर बैठ गये है। जाओ यहाँ से। कल सुबह आना। चेलोजी कहने लगे-ये बालक भोले हैं। इस बात को नहीं समझते हैं। इन्हें थोड़ा ही है वही दीजिये। इन बालकों को क्रोधित न करें। अब थोड़ा दीजिए प्रातःकाल फिर आयेंगे किन्तु वहाँ किसी ने भी चेलोजी की बात नहीं सुनी। थोड़ी देर वही बैठे रहे, फिर वहाँ से उठ कर चल दिये।

धनो कुलचंद ने देखा कि चेलोजी में सहनशीलता है। कहीं क्रोध का नाम नहीं है। एक बार और भी देखेगे। क्या होता है? तीसरी बार फिर से न्यात-जमात को भोजन करने के लिये बुलावा आया, किन्तु चेलोजी को नहीं बुलाया। जब सभी लोग भोजन कर चुके, तब सब से पीछे चेलोजी आये। पाकशाला में एक आदमी को बिठा रखा था। उन्होंने चेलोजी से कहा-एक प्रहर बाद आना। साथ में अपने बालक स्त्री को ले आना।

तीसरी बार चेलोजी ने भोजन शाला में प्रवेश किया। वहाँ पर किसी ने भी सम्मान नहीं किया। चेलोजी पंक्ति में जाकर बैठ गये। कोई व्यक्ति आया। चेलोजी के आगे से थाली उठा ली, और अन्दर ले गये। चेलोजी प्रतीक्षा करने लगे। शायद थाली लेकर वापिस आयेगा। थाली लेकर तो कोई नहीं आया किन्तु चेलोजी की सासू बोली-पेट पर तो झोली मांड रखी है। पेट हो तो भर भी जाये, किन्तु झोली कैसे भरेगी? जहाँ देखती हूँ दामाद तो वही आगे खड़ा तैयार मिलता है।

चेलोजी ने अपनी सासू की बात की कुछ भी परवाह नहीं की। वही भोजन शाला में बैठे रहे। धनोजी ने कहा-यहाँ भीड़ क्यों कर रहे हो? अपने घर को क्यों नहीं जाते?

चेलोजी ने कहा-ये बच्चे भूखे हैं, आज इन्होंने कलेवा भी नहीं किया। अपने मामा के घर भोजन करने

के लिये आये हैं। जो कुछ पीछे बचत-खुरचण आदि है, वही दीजिये।धनोजी ने कहा -कुछ है तो दे दो। नहीं तो यह हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा।

धनोजी के कहने से पीछे बचा हुआ खुरचण भोजन,अधजला हुआ भोजन लाकर दिया,चेलोजी ने भगवान् विष्णु के भोग लगाया और प्रेम से अमृत मान कर भोजन करने लगे।कुलचंदजी ने चेलोजी का हाथ पकड़ लिया। भोजन का ग्रास मुँह में जाने नहीं दिया। चेलोजी कहने लगे, इन बच्चों को तो भोजन करने दो। आज ये भूखे है। हम फिर आपको कष्ट नहीं देगे। इस प्रकार के यज्ञ से इन बच्चो को भूखे नहीं जाने दो।

धनोजी ने हाथ जोड़ दिये-कुलचंदजी ने कहा-जम्भेश्वरजी सच्चे हो गये।

जाम्भोजी के अनुसार ही चेलोजी खरे उतरे हैं। यह हमने प्रत्यक्ष देख लिया है।

चेलोजी में भारी सहनशीलता है। हमने आपका अपमान किया। जाम्भोजी की बात का विश्वास नहीं किया। हम आपके अपराधी हैं। आप तो सहनशीलता के मूर्ति हैं। हमने आपका अपराध किया। हम पापी हैं। आप ही हमारे पाप का निवारण कर सकते हैं।

चेलोजी कहने लगे-हम तो आपके बालक हैं। तुम हमारे माता-पिता हो, अन्य सभी ही एक गुरु के चेले गुरु भाई हैं। आपने सभी ने भोजन कर लिया, तो समझो सभी ने कर लिया हैं। मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सका, उल्टा भीड़भाड़ में आपको दु:ख ही दिया। फिर आपने तो कुछ भी क्रोध नहीं किया। आप फिर भी उल्टा मुझ से ही याचना कर रहे हैं।

इस प्रकार से याचना करके मुझे शर्मिंदा न करें। धनो वीछू कहने लगे-हे देवता जी! हम तो आपकी शरण में हैं। आप तो जाम्भोजी की ही देही हो। आपका दर्शन जाम्भोजी का ही दर्शन है। ऐसे विष्णु रूप साक्षात् हमारे घर में मौजूद हैं। हमने आप का अपमान किया। फिर भी आपने क्षमा कर दिया। परीक्षा करने के चक्कर में हमने इह लोक और परलोक दोनों ही खो डाले हैं। जो संतों को दु:ख देता है, फिर भी संतजन उसका उपकार ही करते हैं। अपने श्वसुर जी के यज्ञ में चेलेजी ने तनिक भी क्रोध नहीं किया। उपकार की भावना से चेलोजी ओतप्रोत थे।

चेलोजी अपने घर पर आये और रामप्यारी को समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे-इस यज्ञ महोत्सव में इतना आनन्द आया। मेरे जीवन भर में इससे पूर्व इतना आनन्द कभी नहीं आया। इन सात दिनो में आत्मोन्नति का सुअवसर प्राप्त किया। तथा सेवा धर्म करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरे पर प्यारे बिछू ने मेरी आत्म-उन्नति में समय-समय पर अवसर दे मुझे कृतार्थ किया। मैं प्रभु जम्भदेव से प्रसन्न और सच्चे दिल से प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर उनका भला करे।

आनन्द के रहस्य को तुम नहीं समझती प्यारी। शारीरिक सुख का नाम ही क्या आनन्द होता है? आनन्द तो आत्मा की तृप्ति का नाम है। ऋषि-मुनि लोग तो आनन्द के लिये जप-तप-व्रत सभी करते हैं। शरीर रहे चाहे जाय, इसकी चिंता किये बिना आत्मिक आनन्द के लिये हँसते-हँसते विष के प्याले पिये। सूली पर चढे, तथा सर्पो से खेलते रहे, उन महात्माओं के आनन्द के रहस्य को क्या थोड़े से ही दु:ख में भूल गयी?

हमारे सब से बड़े प्रह्लाद भक्त, राजा युधिष्ठिर आदि पुरुष और सति शिरोमणि सीता, दमयन्ती, तारा, सावित्री, अनुसूइया, आदि देवियों ने कष्ट सहे,किन्तु क्रोध को निकट नही आने दिया। तुम दूर क्यों जाती हो? आज कल के ही दिनो में गुरुजी महाराज के थोड़े से ही सदुपदेश सुनकर तुम्हारी ही स्त्री जाति की देवी मीरा का जीवन देखो। अनेक प्रकार का अपमान और कष्ट सहने पर भी कुछ भी परवाह नहीं की, हंसते हुये अनेकों कष्ट सहन कर लिये, किन्तु भगवान् की भक्ति एवं प्रेम भाव नहीं छोड़ा क्रोध को जीत लिया।

रावण गोयंद को चोरी से निवृत्त करना

नाथोजी उवाच –एक समय श्री देवजी सम्भराथल पर अपने शिष्यो के सहित विराजमान थे। उनके पास एक विचित्र झगड़ा लेकर कुछ लोग उपस्थित हुए। श्री देवजी ने दैविक शक्ति द्वारा उस झगड़े को निपटाया। हे वील्ह! उस चरित्र को मैंने अपनी आँखो से देखा था। वील्हो उवाच–हे गुरुदेव! वह दिव्य चरित्र क्या था? इस कथा को मुझे विस्तार से बतलाने का कष्ट करें। आपकी वाणी द्वारा सुन कर के मैं धन्य हो जाऊँगा। ऐसी वील्होजी की प्रार्थना सुनकर कथा झोरड़ा की नाथोजी ने सुनाना प्रारम्भ किया।

रावण गोयंद दो भाई सोतर में झोरड़ा गाँव के रहने वाले थे। उनकी गोत्र भी झोरड़ा थी। उन्होंने चोरी करने का ही कार्य धन्धा अपना रखा था। रावण गोयंद ने चोरी बहुत की थी। एक घड़ी भी नहीं रुके थे। कभी भी रूक कर अपने नीच कर्म के बारे में सोचा नहीं था।

एक समय दोनों भाई सिन्ध देश में चोरी करने के लिये गये थे। मार्ग में कोई गाँव तथा जल मिलने की संभावना नहीं थी। इसलिये वो दोनों एक चमड़े की बनी हुई दीवड़ी जल भरने की,साथ में लेकर चलते थे। उन्होंने उस दीवड़ी को तो मार्ग में किसी पेड़ पर टाँग दी थी और स्वयं सिन्ध देश में चोरी करने हेतु चले गये। सोचा था कि वापिस आकर जल पी लेगे और अपने देश चले जायेंगे।

वे दोनों भाई सिन्ध देश में पहुँचे और वहाँ से उन्होने दो सुन्दर घोड़ी चुराई। दोनों दो घोड़ी लेकर वापिस चल पड़े और वहाँ आ पहुँचे जहाँ पर जल रख कर आये थे।

गिलहरी ने उस चमड़े की दीवड़ी को काट दिया। जल बिखर गया। रावण गोयंद ने दीवड़ी को खाली पाया। उन्हें प्यास लगी थी। बहुत ही प्रयास से वहाँ तक पहुँचे थे कि जल पीयेंगे, किन्तु जल नहीं मिला। बिना जल के प्राण निकलने को हो रहे थे। इस जल, वायु, अन्न पर आधारित शरीर को जिन्दा रखना कठिन था।

गोयंद कहने लगा– हे भाई! अब क्या करें? जल बिना तो प्राण एक पलक में ही निकलने वाले हैं। यहाँ से 60 कोश तक कोई गाँव नहीं है। इस समय तो जल के बिना तो एक कदम भी चलना कठिन है। इस समय हम बहुत ही दु:खी हो रहे हैं। अन्य कोई उपाय न देखकर देवी–देवताओं का स्मरण करने लगे। किन्तु किसी भी देवी देवताओं से कार्य नहीं बना। जल की प्राप्ति होवे, तो जीवन बचे।

तब रावण दु:ख में भरकर बोला– अब मैं प्यास से व्याकुल हो रहा हूँ। एक क्षण भी जीवन जीने में असमर्थ हूँ। ऐसा कोई प्रत्यक्ष देवता नहीं है, जिसका स्मरण करने से वर्षा होवे। जल प्राप्ति का एक ही उपाय है कि किसी भी प्रकार से वर्षा होवे। बिना प्रत्यक्ष देवता के वर्षा होना असंभव है। यदि कोई है तो बतलावो। भाई, उनको भी याद कर ले, जिससे वर्षा हो सके।

गोयंद कहने लगा–हे भाई सुनो! इस समय तो सम्भराथल पर श्री जाम्भोजी विराजमान हैं। इस समय तो यहाँ के प्रत्यक्ष देवता जाम्भोजी ही हैं। उनका स्मरण करें तो हो सकता है कि अपना जीव बच जाये। इस प्रकार से दोनों ने विचार किया और अन्य देवी देवताओं को छोड़कर केवल जम्भेश्वरजी की शरण

ग्रहण कर ली। श्रीदेवजी का ही ध्यान किया। प्रार्थना करने लगे-

हे देव! हमारी रक्षा करो, हमारी रक्षा करो। इस प्रकार की प्रार्थना करते हुए कुछ समय ही व्यतीत हुआ कि आकाश में बादल दिखाई दिये। बादल चारों तरफ से एकत्रित होकर गर्जना करने लगे और बूँदें गिरने लगी। प्यासे जनों को बूँदें अमृत तुल्य लगी। वहीं पर ताल में एक खड्डा था, वह भर गया। दोनों भाईयों ने स्नान किया, जल पिया। अपने पशुओं को भी जल पिलाया। जल पिया। आनन्द को प्राप्त हुए। ऐसे जम्भेश्वरजी ने उनकी रक्षा की।

दोनों घोड़ी लेकर वहाँ से चल पड़े। इसी प्रकार से उनके हृदय पर पड़ा हुआ अज्ञानता का ताला खुल गया। वहाँ से चलते-चलते सम्भराथल पर आ गये। जाम्भोजी का दर्शन किया। कहने लगे यही हैं वो प्रत्यक्ष देव जिन्होंने बिना ही बादल वर्षा करवायी। हमारे प्राण बचाये हैं। हाथ जोड़कर परिक्रमा की और कहने लगे-श्रीदेव हरि ने हमारी रक्षा की है।

रावण कहने लगा- हे देव गति करो। चौरासी के चक्कर से छुड़ाओ। श्रीदेवजी-जीवनयुक्ति, मृत्यु पर मुक्ति का मार्ग बतलाते हुए कहने लगे। हे रावण गोयंद! चोरी-जारी कभी नहीं करना। हृदय में विष्णु का ध्यान करना। विष्णु का ही जप करना। दोनों समय संध्या वेला में हरि का भजन, संध्या करना। विष्णु-विष्णु ऐसा उच्चारण करना, यही महामंत्र है। प्रात:काल नित्य स्नान करना। भूल करके भी झूठ नहीं बोलना। इसी प्रकार से नित्य नियम कर्तव्य कर्म करो। इससे तुम्हारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

हे वील्हा! इस प्रकार से रावण गोयंद झोरड़वासी सोतर के रहने वाले दोनों भाइयों ने चोरी करना छोड़ दिया। जम्भगुरु की वन्दना करने लगे। इससे उनके पाप मिटने प्रारम्भ हो गये। वे तो चोरी कर्म करने वाले मध्यम थे, श्रीदेवजी ने उनको उत्तम साधु बनाया। वे तो कुकर्मी, चोरी का धन खा कर अपना निर्वाह करने वाले थे। इस संसार में ऐसे असाधु पुरुषों को श्रीदेवजी ने साधु पुरुष बनाया। शील स्नान से काया को पवित्र किया। आन देवता को छोड़कर देवजी के शरण में आया। सिर मुण्डवाकर बिश्नोई पन्थ में सम्मिलित हो गये। जीव की अज्ञानता मिट गयी। भाविक होकर जीवन व्यतीत करने लगे। जम्भेश्वरजी के नियमों पर चलते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया। रावण गोयंद वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये। खेती बिणज व्यापार करते थे। किन्तु कुछ खास लाभ नहीं मिलता था। पहले चोरी के धन से जीवन यापन हो रहा था, किन्तु अब तो बुढ़ापा आ गया था। ऊपर से अकाल भी पड़ चुका था। खेतों में अन्न भी नहीं हुआ था। अन्य कुछ कार्य करने में असमर्थ भी हो गये थे। एक तो अकाल पड़ा। दूसरा बुढ़ापा भी आ गया। आँखों से दिखाई भी कम ही देता था। यदि बुढ़ापे में घृत मिल जाता तो कुछ शरीर में ताकत भी आ जाये, तो कुछ कार्य मजदूरी करे। जीवन निर्वाह हो सके। भूखे से तो भजन बनता नहीं है, क्या किया जाये?

दोनों भाई विचार करने लगे। हम लोगों ने सिर मुंडवाकर सतपंथ में प्रविष्ठ हो गये। नियमों का भी पालन भलीभांति कर रहे हैं। किन्तु घर में भूख आ गयी। इसका इलाज तो नहीं हो पा रहा है। उस दिन वर्षा हुई थी। हमारे प्राणों की रक्षा भी हुई थी। क्या पता यह वर्षा जाम्भोजी ने करवायी थी या अपने आप हो गयी थी? यह भी अब तक कुछ पता नहीं चल सका है?

जाम्भोजी देवता हैं या नहीं? एक बार परीक्षा कर के देखेंगे। यदि अबकी बार हम नहीं पकड़े जायेंगे तो चोरी करना पुन: प्रारम्भ कर देंगे और यदि पकड़े गये तथा जाम्भोजी ने हमें छुड़वा दिया तो जानेंगे कि जाम्भोजी असली देव हैं। ऐसा विचार करके दोनों भाई चोरी करने के लिए निकल पड़े।

रोल गाँव में आकर सांय की वेला में रुके। गाँव के अमरे जाट के घर पर आसन लगाया। अमरे

जाट ने पूछा– कहो, तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तब रावण कहने लगा– हे भाई ! हम तो साधु सदृश ही बिश्नोई पंथ के अनुयायी हैं। जाम्भोजी ने हमें साधु पंथ में सम्मिलित किया है। घर में कुछ अन्न धन की कमी आ गयी है। प्रदेश जायेंगे, कुछ कमाई करेंगे। आज की रात्रि में तुम्हारे घर पर विश्राम करेंगे। सुबह आशीर्वाद देकर ही जायेंगे।

साधु भक्तों के सदृश आये हुए अतिथियों को देख कर जाट ने झोंपड़ा खोल दिया। चारपाई बिछा दी और कहा– बैठिये, विश्राम कीजिये। वे दोनों भाई लट्ठियाँ धर कर बैठ गये। इस प्रकार से संध्या का समय हुआ, तब दोनों भाई हाथ पैर धोकर संध्या करने बैठ गये। जब एक घड़ी रात्रि व्यतीत हो गयी, तब भी संध्या से उठे नहीं।

जाट कहने लगा– आप हमारे अभ्यागत हो, पहले भोजन करो। फिर हमारे हाली पाली बाल बच्चे भोजन करेंगे, तब दोनों ने सिर हिला दिया। भोजन करने से इंकार कर दिया क्योंकि संध्या कर रहे थे। मुख से बोल नहीं रहे थे। ऐसा ही अमरे ने समझा।

कुछ समय पश्चात् अमरो फिर कहने लगा–आप लोग भोजन क्यों नहीं करते ? हम लोग आपकी प्रतीक्षा में हैं। तब गोयंद कहने लगा–हम तो रात्रि में भोजन करते नहीं हैं, क्योंकि चतुर्मास आ चुका है। हम तो दिन में ही भोजन करते हैं। हमारा नियम क्यों तुड़वाते हो ? अमरो कहने लगा– यदि आप लोग भोजन नहीं करेंगे तो हम लोग भूखे को घर में रहने ही नहीं देंगे। यह भूख की हत्या हम क्यों लें। उसी समय हाली पाली तथा अमरे का बड़ा पुत्र भी देखने के लिए आ गया था। अमरे और उन दोनों के वाद विवाद मिटाते हुए बड़े पुत्र ने कहा–पिताजी ! कोई बात नहीं है। यदि अब भोजन नहीं करते तो कोई बात नहीं, किन्तु सुबह भोजन करके जायेंगे। रावण गोयंद ने भी बात स्वीकार कर ली। अमरो शांत हो गया।

सभी छोटे–बड़ों ने भोजन किया और रात्रि में सभी सो गये। तब रावण गोयंद उठ खड़े हुए और अच्छे बैलों की जोड़ी को खोला, उनकी रास पकड़ी और घर से बाहर हो लिये। नागौरी बैल थे। घर से निकलते हुए, बड़े वेग से कूदते हुए चले। रावण गोयंद उन्हें लेकर उत्तर की तरफ चल पड़े। जब बैलों के बिदकने की आवाज हुई तब गाँव के बड़े बूढे लोग जग गये। बैलों के पैरों की ध्वनि सुन कर कहने लगे किस के बैल रस्सी तुड़वा कर भाग गये या कोई चोर ले गया ? अमरे ने जग कर अपने बैलों को देखा तो आश्चर्यचकित हो गया, न तो वहाँ बैल थे और नहीं वे आये हुए मेहमान,

अमरो कहने लगा– सफेद रंग, सीधे सींगों वाले मेरे प्रिय बैल कितने सुंदर थे। वे कितने तेजस्वी थे। किन्तु इस समय यहाँ पर नहीं है। उन्हें कौन ले गया ? वे आये हुए हमारे मेहमान भी नहीं हैं। न जाने वही तो कहीं न ले गये है ? वे तो अपने को साधु पुरुष बतला रहे थे। यह कैसे हो सकता है ? शाम को उन्होंने भोजन भी नहीं किया था। इसका मतलब भी अब समझ में आ गया है। वे मेरा नमक खाकर मेरी चोरी कैसे करते ?

गाँव के लोगों ने एकत्रित होकर कहा–आप चिंता न करें। हम अभी पीछे जाते हैं। जहाँ पर भी गये हैं, वहीं से ले आते हैं, आपके बैल और चोर अभी आपके सामने होंगे। इस प्रकार से पैरों की खोज लेकर उत्तर दिशा की तरफचले।

रावण गोयंद बैलों को लेकर जा रहे थे। काफी दूर निकल गये थे कि रात्रि व्यतीत हो

गयी। ब्रह्म मूहूर्त का समय आ गया। रावण गोयंद से कहने लगा- एक घड़ी की रात्रि रह गयी है। अब तो हमारा स्नान संध्या का समय हो गया है। जाम्भोजी ने नियम बतलाया था। उस नियम का पालन तो करें। कुछ तो जाम्भोजी के वचनों से डरें। इस प्रकार कहते हुए अपने पास में जल की दीवड़ी को खोली और दोनों ने झट पट स्नान किया और संध्या करने बैठ गये। अभी तो नियम ही पूरा करना था। अति शीघ्र आगे जाना था। पीछे से कहीं पकड़ने वाले नहीं आ जायें। संध्या करके उठे तो देखते है कि पीछे से बाहरू आ रहे हैं। बाहरू-पकड़ने वाले को देखा तो धैर्य खो गया।

कहने लगे- ये लोग तो पीछे आ गये हैं। हम पकड़े गये। आज हमें ये लोग चोट मारेंगे। अब हमें कौन बचायेगा? चोरी हमने की तो उसका फल हमें मिलेगा ही। अब डरने से क्या होगा? इस समय तो भाग भी नहीं सकते। इस समय तो केवल सम्भराथल स्वामी का ही स्मरण करें। वही हमें बचायेगा, तभी बचेंगे। यह कुबध हमने अपने आप ही खेली है। इस प्रकार से तो श्री देवजी चोरो का मित्र नहीं है। एक बार हमें बचाया था। क्या बार-बार हमें बचायेगा? हे देव! हमने अपराध किया है। अब हम आपकी ही शरण में हैं पूर्ण रूपेण श्री देवजी के ही शरणों में हो जाये। अपनी तरफसे जोर जबरदस्ती या सामना नहीं करना है। शरणागति पूर्ण रूपेण ही करनी है। ऐसा कहते हुए स्वकीय अभिमान को छोड़ कर सद्गुरु जाम्भोजी के ही शरण में हो गये।

इस प्रकार से साधु सज्जनों की करुणा पुकार दयालु श्री जांभोजी ने सुन ली। अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए उन सफेद रंग के बैलों को काला कर दिया और सीधे सींगों को टेढा-भीला कर दिया। बाहरू नजदीक आ पहुँचे थे। बैलों को देखकर बिलखने लगे। अति दु:ख से कहने लगे- यह क्या हुआ, वे मेहमान हमारे घर में ठहरे थे। वे तो वही हैं। बैलों के पैरों के निशान भी वही हैं। खोज नहीं भूले। किन्तु बैल वही नहीं हैं। पंचों देखो तो सही। यह भी आश्चर्य ही है।

बाहरू ने पूछा-आप कौन हैं? रावण ने कहा- हम तो जाम्भोजी के शिष्य बिश्नोई पंथ के पथिक साधु पुरुष हैं। पंचों ने कहा- हे भाइयों चोट नहीं मारना। डरकर के दूर रहना। निरपराध साधु पुरुष का कहीं अपमान कर बैठे, तो ये हमें भष्म कर देंगे। इस समय क्या करना चाहिये? ये बैल हमारे हैं या अन्य किसी के? इसका फैसला कौन करेगा? रावण गोयंद तथा बाहरूओं ने विचार किया और सभी लोग बैलों सहित सम्भराथल पर चले आये। जम्भेश्वरजी के दर्शन हुए और बाहरू विनती करते हुए कहने लगे-

हे देवजी! ये बैल किसके हैं? हमारे हैं या किसी और के? किन्तु हम यह लीला समझ नहीं पाये हैं, ये बैल हमारी घर की गाय के जन्मे हैं। हमने ही इन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है, रस्सी भी वही है। सींगों में रस्सी की दी हुई गाँठ भी वही है, सभी कुछ वही है किन्तु बैलों का रंग और सींग वही नही है। अब आप ही फैसला करें।

जम्भेश्वरजी ने कहा-इन बैलों को आप इन कंकेहड़ी वृक्ष की परिक्रमा करवावो। तुम्हारा न्याय हो जायेगा। उन लोगों ने जैसा कहा था वैसा ही किया। कंकेहड़ी वृक्ष की परिक्रमा करवायी। तब जैसे थे वैसे वापिस पलट गये।

श्री देवजी के समीप आने से माया द्वारा निर्मित नकली रूप कैसे स्थिर रह सकता था? श्री देवजी के पास तो असली रूप में प्रगट होना होता है। इस प्रकार से काले रंग से पुनः सफेद रंग में बदल दिया और भीला का पुनः सीधे सींग कर दिया और कृष्ण चरित्र करके रोला-झगड़ा मिटा दिया। सम्भराथल पर जितने आने वाले बाहरू थे, सभी को स्वर्ग प्रदान किया।

रावण गोयंद को श्री देवजी कहने लगे-हे रावण गोयंद! इस बार तो मैंने तुम्हें बचा लिया है। किन्तु अब की बार नहीं बच पाओगे। बार बार नहीं होगा। श्वेत वर्ण से स्याह'' सद्गुरु ने सीख दी और कहा-तुमने एक या दो चोरी नहीं की है। तुमने दो सौ अस्सी चोरियाँ की हैं तुमने ऊँट, घोड़ी, घोड़ा चुराये हैं तुमने उनके मालिकों को भयंकर दु:ख दाह पैदा किया है। उसका फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। मैं तुम्हारी चोरी का अवगुण बताता हूँ।

एक तो तुमने तुरंग बछेरी चुराई थी। वह पूर्व जन्म में तुम्हारी बहिन थी। तुमने अपनी बहन के थाप की मारी थी। वही बछेरी बन कर बैर लेने के लिए वापिस आयी थी। जब तुमने बछेरी चुराई थी तो तू पकड़ा गया था। तुमने उत्तर दिशा से जाल की लकड़ी तोड़ी थी जब तू भागने लगा था, तब पकड़ा गया और जिस हाथ से थाप की मारी थी, वही हाथ तेरा काट दिया था। यह सहनाण सच्चे हैं तो स्वीकार करले। जिस दिन तेरा हाथ कटा, उसके बाद भी तुमने एक सौ चालीस चौरियाँ की। उससे भी तुम्हें अकल नहीं आयी। जिसका पशु हरण करोगे, जिसको दु:ख दोगे, तो तुम्हें दु:ख ही मिलेगा।

तुम यह जानते हो कि यह वैर भाव यही समाप्त हो जायेगा। ऐसा नहीं है। वैर तो सदा सदा ही नया होता जाता है। चाहे युग भी बीत जाये तो भी वैर भाव मिटता नहीं है। इस प्रकार से रावण गोयंद ने चोरी छोड़ दी और गुरु की शरण में आये। साधु की संगति हरि की भक्ति संसार सागर से पार उतारने वाली है। यदि किसी को लाभ लेना है तो समय रहते चूके नहीं। हे वील्ह! धन्य ऐसे सतगुरु जिन्होंने चोरों को भी साधु बनाया।

सेख सदो न परचाय गाय छुड़ाई, दंत कथा घणी थ। जाम्भोजी श्री वायक कह-

शब्द-106

ओ३म् सुणरे काजी सुणरे मुल्ला, सुणियो लोग लुगाई।
नर निरहारी एक लवाई, जिन यो राह फुरमाई।
जोर जरब करद जे छाड़ो, तो कलमा नाम खुदाई।
जिनके साp सिदक इमान सलामत, जिण यो भिस्त उपाई।

कर्नाटक के राजा शेख सदू को परचा दिखा करके रास्ते पर लाये, वह गऊ हत्यारा था। उसके प्रति शब्द सुनाया-

हे काजी, हे मुल्ला सुनो! तथा अन्य भी स्त्री-पुरुष सभी सुनो। नर रूप में आये हुए निरहारी कैवल्य ब्रह्म ने ही यह सतपंथ बताया है। आप लोग जीवों पर जोर जबरदस्ती से करद चला कर उनकी हत्या करते हो। यह पाप कर्म छोड़ दो, तो तुम्हारा पढा हुआ कलमा खुदा के नाम होगा। तुम्हारे से विपरीत जिस पुरुष के पास सच्चाई ईमानदारी, धर्म सलामत है, वही स्वर्ग को प्राप्त कर सकेगा।

वैष्णव साधु जमात के प्रति योग उपदेश

नाथो उवाच– हे वील्ह! जब श्री देवजी सम्भराथल पर विराजमान थे, उस समय उनके पास अनेकों शंकाओं को लेकर तरह–तरह के लोग आया करते थे। उसी समय की एक वार्ता मैं तुम्हें बतलाता हूँ–

हरिद्वार से चलकर द्वारिका को अनेकों वैष्णव संतों की जमात जाया करती थी। पाँच सौ संतों की एक जमात सम्भराथल पर श्री देवजी की महिमा सुन कर आ गयी। उस जमात का महंत लाल दास बड़ा भाग्यशाली संत था। उस संतों की जमात ने पीपासर में डेरा लगाया। वहाँ पर जाम्भोजी के बारे में उनकी सिद्धि के बारे में चर्चा होने लगी। कुछ लोगों ने तो बात स्वीकार कर ली, किन्तु कुछ लोगों ने नहीं माना।

लालदास मंहत ने कहा– आप कुछ लोग सम्भराथल जाओ, और अपनी करामात दिखा आओ। यदि जाम्भोजी पाखण्डी हैं, तो उन्हें पकड़ लेना और अपने हाथ दिखाना। उनमें से कुछ लोग सम्भराथल पहुँचे। जाम्भोजी की दिनचर्या आसन आदि देखे और पूछा–आपके बिछाने के लिए आसन–बिछौना क्यों नहीं है? महंत लोगों के तो बिछाने के लिए आसन होता है। श्री देवजी ने उनके मन की भावना को जान कर शब्द सुनाया–

शब्द–107

ओ३म् सहजे शीले सेज बिछायों, उनमन रह्या उदासूं।
जुगे जुगन्तर भवे भवन्तर, कहों कहाँणी कासूं।
रवि ऊगा जब उल्लू अन्धा, दुनियां भया उजासूं।
सतगुरु मिलियो सतपंथ बतायो, भ्रांत चुकाई, सुगरा भयो विश्वासूं।
जां जां जाण्यो तहां प्रवाण्यो, सहज समाणो, जिंहि के मन की पूगी आसूं।
जहाँ गुरु न चीन्हो पंथ न पायो, तहां गल पड़ी परासूं।

श्री देवजी ने कहा– हे साधो! मैंने तो सहज ही में शील रूप आसन बिछा रखा है। तुम्हारी आँखें स्थूल वस्त्र के बिछौने को ही देखती हैं, किन्तु मैंने शील रूपी बिछौना बिछा रखा है। मैंने मन को उपर उठा लिया है। चित्त की एकाग्रता के कारण मैं परमात्मा से जुड़ा हुआ हूँ। इसीलिए संसार से उदासीन हूँ। मुझे सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है।

अनेकों युग व्यतीत हो चुके हैं। अनेकों सृष्टियाँ बन चुकी हैं एवं बिगड़ भी चुकी हैं, मैंने तो उस परिवर्तनशील समय को देखा है। इस समय मैं उन बीते हुए युगों की बात कहता हूँ किन्तु यहाँ सुनने वाला कोई नहीं है। किसे कहूँ? जब सूर्योदय हो जाता है, तो उल्लू अंधा हो जाता है, किन्तु दुनिया प्रकाशित हो जाती है। इसी प्रकार से जो लोग उल्लू की भांति हैं, वे तो रात्रि को ही दिन कहते हैं और दिन को रात्रि कहते हैं। उन्हें यही पता नहीं है कि सूर्योदय हो चुका। ज्ञान का प्रकाश फैल चुका है।

हे वैष्णव! वे उल्लू सदृश लोग हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि सद्गुरु का मिलाप हुआ है। सतपंथ बता दिया है। भ्रांति मिटा दी है। किन्तु कुछ सुगरा लोग हैं, उन्हें विश्वास प्राप्त हुआ है। नुगरा लोग अश्रद्धालु कुतर्की हैं। उन्हें विश्वास नहीं हुआ। जिस ने भी जाना है, उसने ही प्रमाण माना है। वह सहज में ही शरणागत हो गया है। एकता स्थापित कर ली है। तल्लीन हो गया है। उसी के मन की आशा पूर्ण हो गयी है। तथा जिन्होंने गुरु को

नहीं पहचाना, सतपंथ का अनुगामी नहीं बना, उसी के गले में फांसी पड़ेगी। जन्म-मरण के बंधन में पड़ गया। चौरासी लाख जीव योनियों में भटकेगा।

इस प्रकार से शब्द को सुन कर उन वैष्णव साधु ने काह- महाराज! योग समाधि के बारे में कुछ बतलाओ। ऐसी साधना बतलाइये जिससे हमारा चंचल मन स्थिर हो सके। इन्द्रियाँ वशी भूत हो सके। किस प्रकार से हम क्या साधना करें, जिससे सुखी हो सकें। यह हम भलीभांति जानते हैं कि निज धर्म जाने बिना, आचरण किये बिना, अब तक कोई सुखी नहीं हो सका है। हम आपसे निज धर्म के बारे में जानना चाहते हैं।

श्री देवजी ने कहा- हे वैष्णव! तुमने अच्छी बात पूछी है। इस वार्ता से तुम्हारी ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा प्रगट होती है। ज्ञान के द्वारा ही जीवन की युक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है। श्री देवजी की वार्ता सुन कर वह साधु वापिस अपनी मंडली में गया और कहने लगा-चलो! हम सभी मिल कर चलते हैं। वहाँ पर जाम्भोजी अकेले ही हैं। उनकी हंसी उड़ाते हुए, उन्हें अपमानित करेंगे। इस प्रकार से विचार करके साधुओं की जमात वहाँ से चल पड़ी और जाम्भोजी को चारों तरफ से घेर कर बैठ गयी और कहने लगे-

कहो आप में क्या करामात है? सत्य बोलो, लालदास महंत कहने लगा- मैंने अपना शिष्य आपके पास भेजा था। उसने आप से योग समाधि की बात पूछी थी, किन्तु आपने बतलायी नहीं। शायद आप जानते नहीं हैं? श्री जम्भेश्वरजी ने कहा-मैं तो सभी कुछ जानता हूँ यदि आप सभी कुछ सुनना चाहते हैं, तो तुम्हें सुनाऊँ, ऐसे कहते हुए शब्द सुनाया-

शब्द-108

ओ३म् हालीलो भल पालीलो, सिध पालीलो खेड़त सूना रांणो।
चन्द सूर दोय बैल रचीलो, गंग जमन दोय रासी।
सत संतोष दोय बीज बीजीलो, खेती खड़ी अकासी।
चेतन रावल पहरै बैठे, मृगा खेती चर नहीं जाई।
गुरु प्रसादे, केवल ज्ञाने, ब्रह्म ज्ञाने, सहज स्नाने।
यह घर ऋद्ध सिद्ध पाई।

हे कृषक! हे साधक! अनाज प्राप्ति हेतु खेती की जाती है। तथा समाधि प्राप्ति हेतु साधना की जाती है। जो कुछ भी करे चाहे खेती करे या साधना, उसे भली प्रकार से एकाग्र चित्त, श्रद्धा भाव से करे। तब तक करे, जब तक सिद्धि की प्राप्ति न हो जाय। अपना कर्तव्य कर्म, धर्म समझ के अपनी साधना तथा खेती करे। खेती करने वाला किसान शून्य एकांत वन में जाकर खेती करे। अन्यथा खेती पनप नहीं सकती। और साधक भी साधना रूपी खेती एकान्त शून्य देश में जाकर प्रारम्भ करे, तभी साधना से सिद्धि की प्राप्ति रूप फल मिल सकेगा।

खेत में हल चलाने के लिए दो बैलों की आवश्यकता होती है। एक बायें चलता है, दूसरा दायें चलता है। उसी प्रकार से सूर्य और चन्द्र ही दो बैल हैं। सूर्य एवं चन्द्र नाड़ी, ये दो नासिकायें। जिससे हम श्वांस अंदर लेते हैं और बाहर छोड़ते हैं। यही दो बैल हैं। गंगा और यमुना दो बैलों को काबू में करने के लिए रस्सी (जेवड़ी) हैं। साधना के लिए गंगा-यमुना-सरस्वती ये तीनों का संगम त्रिवेणी हैं। गंगा यमुना दोनों को खींचकर के सरस्वती में डालना प्राणायाम कहलाता है।

सृष्टि उत्पत्ति कर्ता ब्रह्मा रजोगुण रूप, एवं विनाश कर्ता शिव तमो गुण रूप, पालन पोषण कर्ता विष्णु सत्व रूप से विलीन हो जाना साधना की सिद्धि है। सत एवं संतोष रूपी दो बीज बोना है। सत्य की संगति यानि परमात्मा की प्राप्ति हो जाना, पहला बीज है। इसे ही बोयेंगे, तो ही सुफल की प्राप्ति होगी। दूसरा बीज संतोष है, ऐसी निर्बीज समाधि हेतु शून्य एकान्त में साधना रूपी खेती करे।

सजगता, चेतनता, सदा बनी रहे, यही रावल है। इसे पहरे पर बिठा दीजिये। कहीं काम, क्रोध, लोभ रूपी मृग वन्य पशु खेती को खा न जायें। इतनी साधना स्वयं करे, तो भी सफलता मिलने में संदेह है। इसीलिए गुरु की कृपा प्रसाद भी साथ चाहिये। उसे भी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये अन्य सांसारिक कार्य व्यवहार से ऊपर उठकर कैवल्य ज्ञान में ही रमण करे। ब्रह्मज्ञान में ही रत रहे। सहज में ही ज्ञान गंगा में स्नान करे। ऋद्धि-सिद्धि प्राप्ति का यही घर है। यही साधन उपयुक्त है। ''हालीलो'' यह शब्द सुन कर वैरागी साधु ने कहा-हम तो जो आप कहते है वह तो पहले से ही जानते हैं सिद्धि को प्राप्त किया है। अलख को लख लिया है। हृदय में ध्यान करते है। इस पर जम्भदेवजी ने पुन: शब्द सुनाया-

शब्द-109

ओ३म् देखत भूली को मन मानै, सेवै बिलोवै बाझ सनाने।
देखत भूली को मन चेवै, भीतर कोरा बाहर भेवै।
देखत भूली को मन मांनै, हरि पर हर मिलियो शैताने।
देखत भूली को मन चेवै, आक बखांणे थंदे मैवे।
भूला लो भल भूला लो, भूला भूल न भूलूं।
जिंहि ठूंठड़िये पान न होता ते क्यूं चाहत फूलूं।

हे साधो! आप लोग जानते हुए भी भून कर रहे हो, क्योंकि तुम्हारा चंचल मन स्थिर नहीं है। जो तुम्हारा मन कहता है, वही करते हो। यह भूल तो वैसी है जैसे कोई बांझ स्त्री की सेवा करके पुत्र चाहता है तथा जैसे कोई जल में से मंथन करके मक्खन लेना चाहता हो।

देखते हुए, जानते हुए भी मन जो चाहता है, वही अनर्थ कार्य कर रहे हैं। भीतर से तो पुण्य कर्म शुद्ध भावना से शून्य है। किन्तु बाहर से पुण्यात्मा बनने का दिखावा करते है। उस पत्थर की तरह जो जल में पड़ा हुआ है। तो भी ऊपर से भीगा हुआ है, किन्तु अंदर से सूखा है।

देखते हुए, जानते हुए भी भूल करता है। स्वकीय मनमानी करता है। हरि को तो छोड़ दिया है और शैतानों से मिल गया है। हरि विष्णु पालन पोषण कर्ता जीवन का आधार है। उस जीवन के आधार को छोड़ कर शैतानों से मिल कर हरि से दूर चला गया। जीवन को नरक मय बना डाला है, तो कैसा सुखी जीवन, कैसा ज्ञान?

देखते हुए, जानते हुए भी भूल करता है, मन की वासना के पीछे दौड़ता है, बुद्धि से कार्य नहीं लेता है? आक का तो बखान बड़ाई करता है तथा मेवा की निंदा करता है। यही भूल है। परमात्मा की प्राप्ति रूप अमृत की प्राप्ति है। इसे त्याग कर विष की सराहना करता है यानि संसार के सुख को ही सुख मान लिया है।

श्री देवजी कहते हैं कि हे साधु जनो! आप भूले हुए हो तथा फिर भी जोर देकर कहूँगा कि तुम भूल हुए हो। तुम्हें सत्य असत्य का विवेक नहीं है। असत्य को ही सत्य मान लिया है। अब तो प्रकाश हो चुका

है। अंधेरे में न चलो। जिस ठूँठ पर पत्ते ही नहीं हैं उसके ऊपर फूल कहाँ से आयेगा? यदि सूखे ठूँठ पर फूल चाहते हो तो यही तुम्हारी भारी भूल होगी। संसार के पदार्थ तो सूखे ठूँठ की भाँति है, वहाँ सुख कहाँ है? यदि चाहते हो तो भूल होगी।

इस प्रकार से श्री देवजी के श्री मुख से शब्द श्रवण कर के सभी साधु जन प्रसन्न हुए। जाम्भोजी के शिष्य बन गये। उस समय वे सभी पाँच सौ पैंतीस थे। सभी बिश्नोई पंथ के अनुयायी बन कर पूर्णतया उनतीस नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे। लालदास महंत को लालासर में भण्डारे का काम सौंपा गया। कुछ तो लालदास के साथ ही भंडारी बन गये, तथा कुछ गृहस्थी बन गये जिनकी गोत बरड़ बटेसर आदि हो गयी।

इस प्रकार से देवजी के पास वही लोग विशेष रूप से आ रहे थे, जो प्रह्लाद पंथी जीव थे। वे कहीं भी किसी भी देश, गोत्र, जाति में छिपे थे, वहीं से भागे चले आये। जिस प्रकार से जल सदैव ही नीचे की ओर स्वभाव से ही बहता है, सम्पूर्ण जल सृष्टि समुद्र की तरफही दौड़ती है। समुद्र से मिलने के लिए उतावली हो रही है। ऐसे ही लोग जान कर या अनजान में ही श्री देवजी के पास दौड़ते चले आते थे।

रूपा मांझू को जल छानने का आदेश

नाथोजी उवाच- हे शिष्य! श्री देवजी ने एक समय रूपा मांझू को शिष्या बनायी थी। उसे जल छान कर पीने का आदेश दिया था, किन्तु उस बालिका ने वह महत्वपूर्ण नियम तोड़ दिया था। फिर श्री देवजी ने उसे क्षमा कर दिया था। वह किस प्रकार से हुआ यह मैं तुम्हें विस्तार से बतलाता हूँ। वील्हो उवाच- हे गुरु देव! यदि रूपा ने नियम भंग कर दिया था तो उसे दंडित करना चाहिये था, श्री देवजी ने उसे क्षमा कैसे कर दिया?

नाथोजी उवाच- जाम्भोजी तो दयालु कृपालु हैं। यदि कोई भूल से नियम तोड़ता है फिर क्षमा याचना करता है, तो उसे क्षमा कर देना, यह नियम विरुद्ध नहीं है। क्योंकि उनतीस नियमों में क्षमा कर देना भी तो एक नियम है। इस नियम का निर्वाह श्री देवजी ने किया था। तथा अन्य लोगों को भी सचेत किया था। किस प्रकार से नियमों का पालन करना है, मैं आगे तुम्हें कथा विस्तार से बताता हूँ।

एक रूपा नाम की बालिका गाँव हिमटसर में रहने वाली थी। उसका गोत्र मांझू था। इस बालिका के पूर्व जन्म के संस्कार अच्छे थे। दया, धर्म, ज्ञान, बीज रूप से विद्यमान थे। किन्तु पूर्व जन्म के संस्कार सोये हुए थे।

एक समय एक साधु गाँव हिमटसर में भिक्षा लेने के लिए आया और वह रूपा के घर जाकर बोला- भिक्षां देही ''सत्य विष्णु की बाड़ी'' कहते हुए भिक्षा मांगी। रूपा पात्र में भिक्षा लेकर दौड़ आयी और उस साधु को भिक्षा देने लगी तब साधु ने कहा- हे बालिके! तू भिक्षा देने आयी है। क्या तुमने गुरु धारण किया है? गुरु मंत्र लेकर सुगरी हुई या नहीं? तब रूपा ने सिर हिलाते हुए नहीं कहा- तब साधु कहने लगा- मैं तुम्हारे हाथ की भिक्षा नहीं लूँगा। मैं नुगरे की हाथ की भिक्षा नहीं लेता। यह मेरा नियम है। क्योंकि तुम्हारा तो अन्न जायेगा, मेरी भूख जायेगी, किन्तु पुण्य कुछ भी नहीं होगा। ऐसा कहते हुए साधु तो खाली हाथ ही कहीं अन्यत्र चला गया।

रूपा रोती हुई अपनी माँ नाथी के पास आयी। नाथी ने पूछा-बेटी रोती क्यों हो? तुझे किसने

सताई ? रूपा ने साधु द्वारा बताई हुई बात अपनी माँ को बतलाते हुए कहा- हे माँ ! मैं गुरु मंत्र लूँगी, सुगरी बनकर करोड़ों जन्मों के पाप मिटाऊँगी।

नाथी ने कहा-बेटी रो मत ! कोई साधु संन्यासी पुरोहित आ जायेगा तो तेरे कान में फूँक दिलवा दूँगी। रूपा कहने लगी-सम्भराथल पर विराजमान जाम्भोजी के पास मैं जाऊँ और उनसे गुरु मंत्र ले लूँ, यदि आपकी आज्ञा हो तो। नाथी कहने लगी-जाम्भोजी तो नियम बहुत बताते हैं। उन कठोर नियमों का पालन तेरे से होगा नहीं। रूपा बोली-मैं उन नियमों का पालन कर लूँगी। मुझे सम्भराथल जाने की आज्ञा दे दो।

दूसरे दिन प्रात: काल में रूपा ने स्नान कर के थाली में घृत, गुड़, आखा (अनाज) नारियल आदि भर कर सम्भराथल श्री देवजी के पास पहुँची और प्रार्थना करने लगी-श्री देवजी ने ओम् शब्द गुरु सुरति चेला, यह सुगरा मंत्र सुनाया तथा उनतीस नियम बतलाये। विशेष रूप से आज्ञा प्रदान करते हुए कहा-जल को छान कर के ही लेना। ब्रह्ममूहुर्त में उठना। स्नान करके संध्या करना।

रूपा ने गुरु धारण किया। पाहल ग्रहण करके प्रसाद बाँटकर घर लौट आयी। शुभ समाचार अपने माता-पिता, कुटुम्बियों को सुनाया। एक दिन रूपा अपनी सहेलियों के साथ तालाब से जल लाने के लिए गयी थी। शाम का समय था। बादल उमड़-घुमड़ करके आने लगे। उधर सूर्य अस्त होने जा रहा था। अंधकार एवं आँधी की संभावना देखकर तालाब पर पहुँची हुई उन बालाओं ने अपना घड़ा बिना छाने हुए जल से भर लिया। और एक दूसरी को उठाकर चल दी।

रूपा कहने लगी हे सखियो ! आप लोग मुझे अकेली छोड़ कर क्यों जा रही हो ? साथ में ही आई थी, साथ में ही जाना चाहिये। दूसरी बालाएँ कहने लगी- ''तू चेली पड़पच करे, यांही पड़ज्यै रात'' तू जाम्भोजी की चेली बनी है यह जल छानना- भरने का पड़पच कर रही है। हमारे तो यहीं पर ही रात्रि हो जायेगी। इसलिए हम तो जा रही हैं। रूपा ने कहा रुको ! अभी मेरा घड़ा भरा नहीं है। किन्तु आधा ही हुआ है। मैं जाम्भोजी द्वारा बताये हुए नियमों के अनुसार जल छान कर के भर रही हूँ, देर तो कुछ लगेगी ही। तुमने तो बिना छाने जल भर लिया है। तुम रुक जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे पीछे घड़ा कौन उठवायेगा ?

इतना कहने पर भी उन बालाओं ने रूपा की एक भी बात नहीं मानी और वहाँ से चल पड़ी। रूपा ने कहा- यदि आप लोग मेरा नियम भंग करवाना चाहें तो करें, मैं बिना छाने ही आधा घड़ा भर लेती हूँ। घर पर जाकर छान लूँगी। रूपा ने घड़ा उठाने का लालच किया और बिना छाना हुआ जल भर लिया। उनके साथ ही घड़ा सिर पर उठा कर चल पड़ी।

रूपा के मन में ग्लानि हुई। पछतावा भी किया कि आज मैंने नियम तो तोड़ ही दिया है। घड़ा उठाने का लालच किया और नियम लालच में टूटा। अब तो भगवान् ही मालिक हैं। वे सभी पनिहारिनें सिर पर घड़ा उठाये हुए बातें करती हुई जा रही थी।

उधर आकाश में बिजलियाँ चमकने लगी। गर्जना होने लगी। काली कजरारी मेघ मालाएँ सम्पूर्ण आकाश को आच्छादित करती हुई आ गयी। सभी को वापिस अपने घर जाने की शीघ्रता थी। रूपा भी उनके साथ ही साथ तेजी से चल रही थी। गाँव के बीच में पहुँची तो रूपा के ठोकर लगी और घड़ा धरती पर गिर पड़ा। घड़ा फूट गया। जल बिखर गया। रूपा रोते हुए खाली हाथ ही घर पहुँची।

माँ ने पूछा-जल नहीं लायी ? घड़ा फूट गया, जल बिखर गया। रूपा को रोती देखकर माँ ने कहा- बेटी ! कोई बात नहीं घड़ा फूट गया तो और आ जायेगा, चुप हो जाओ। रूपा कहने लगी हे माँ ! मुझे घड़ा फूटने की चिंता नहीं है, किन्तु मैंने जाम्भोजी के बताये हुए नियम को तोड़ दिया। तालाब के जल में जीव थे।

मैंने बिना छाने जल भर लिया था। नियम तोड़ दिया था। वे जल के जीव, जल बिना तड़प रहे थे। मेरे सामने ही बेहाल थे। मैं कुछ भी नहीं कर सकी। अब क्या होगा ? कल ही तो नियम लिया था। आज मैंने तोड़ दिया। अब मेरी क्या गति होगी ?

इधर सम्भराथल पर विराजमान देवजी ने रूपा पर कृपा करी और वे जलीय जीव तड़प रहे थे उन्हें मरने नहीं दिया। उनके पंख लगा कर आकाश में उड़ा दिया। हे वील्हा! उस समय पास में बैठे हुए सभी लोगों ने देखा था कि आकाश में विचित्र प्रकृति के जीव उड़ रहे हैं। वे तो उधर से सम्भराथल पर ही आ गये थे। हम तो उनके बारे में कुछ भी निर्णय नहीं कर पाये थे कि ये जीव क्या हैं ? इनका भाग्य अवश्य ही खुल गया है।

श्री देवजी से हमने पूछा था कि हे देव! ये जीव कौन हैं ? तब श्री देवजी ने बतलाया था– कि मैं क्या बतलाऊँ ? कल ही तो एक रूपा नाम की छोकरी नियम लेकर गयी थी कि जल छान कर के लूँगी। आज ही उसनें नियम तोड़ कर बिना छाने जल भर लिया है। उसका घड़ा फूट गया है। उसमें जीव थे। वे ही जीव ये हैं। मैंने उन्हें पंख लगा कर उड़ा दिया है।

दूसरे दिन प्रात: काल ही रूपा क्षमा प्रार्थना करने के लिए सम्भराथल पर श्री देवजी के पास आयी। जाम्भोजी ने कहा– तुमने नियम तोड़ा था। कितने जीव मरते ? किन्तु मैंने बचा लिया है। तुम्हें पाप के पंक से बचाया है। पुन: ऐसी गलती नहीं करना। बार–बार क्षमा नहीं होगी। इस भूल के बदले में तुम्हें अन्य नियम भी पालन करने होंगे।

तुम्हें पराई निंदा नहीं करनी चाहिये। झूठ नहीं बोलना। चोरी नहीं करना। नील वस्त्र धारण नहीं करना। विष्णु मंत्र का जाप करना। अमावस्या का व्रत रखना इत्यादि। उसी समय ही हमारे लोगों के साथ रणधीर बाबल उपस्थित थे। उन्होंने पूछा कि हे देव! जल में जीव कितने दिन पश्चात् पड़ जाते हैं ? श्री देवजी ने कहा– चार प्रहर पश्चात् जल में जीव उत्पन्न हो जाते हैं। आठ प्रहर चौबीस घंटा बाद दिखाई देने लग जाते हैं। इसलिये चार प्रहर पश्चात् जल छानकर के ही पीना चाहिये। मोटे कपड़े से छानकर जीव वापिस जल में ही डालना चाहिये। जीवों को मारना नहीं चाहिये, उन्हें वापिस जल में ही डालना चाहिये। रूपा एक पैर पर हाथ जोड़े हुए खड़ी थी। उसी समय ही रूपा के पीछे–पीछे एक जाट भी आ गया था। उसने भी जाम्भोजी की वार्ता सुनी थी और कहने लगा–

हे महाराज! आप इस छोकरी को क्यों डरा रहे हैं ? इसने तो कोई भी जीव नहीं मारा। यह छोकरी जहाँ तालाब से पानी भर रही थी, वहाँ तो इसने कोई जीव नहीं मारा। दो भैंसे–झोटा वहाँ जल में पड़े थे किन्तु इसने तो नहीं मारे। वे तो मैंने जंगल में जाते हुए देखा था। यदि आप इसी प्रकार से ही झूठी बात करेंगे, तो पार कैसे उतरेंगे ?

श्री जम्भेश्वरजी ने कहा–हे जाट! जल में छोटे–छोटे असंख्य जीव होते हैं। उनकी तो भी हत्या होती है। जल के इन छोटे–छोटे जीवों को मारोगे तो वे भी तुम्हें मारने के लिए रूप बदल कर आयेंगे। तुम्हें भी तो जल के जीव होना पड़ेगा। बड़े जीव छोटे जीवों को खा जाता है ''जीवो जीवस्य भोजनम्'' जीव जीव का भोजन होता है। इसी प्रकार से तो तुम्हें चौरासी लाख जीव योनि में भटकना होगा।

वह जाट पुन: कहने लगा– हे महाराज! आप कहते है कि जल छाने बिना मुक्ति नहीं होगी तो मानलो कोई आदमी वन में प्यासा है, उन्हें किसी तालाब–बावड़ी में जल तो मिल गया, किन्तु पास में छानने के लिए कपड़ा न हो तो क्या करे ? क्या वह जल सेवन न करे ? प्यासा मर जाये ? श्री देवजी ने कहा– मानलो कहीं

विपत्ति के समय में जल छानने का कपड़ा पास में न हो तो सिर पर पगड़ी तो होगी। उससे ही छान कर जल पीये। तब वह जाट फिर से कहने लगा– यदि मान लो पगड़ी भी न हो तो क्या करे ? क्या वह बिना छाने हुए जल न पीये ? श्री देवजी ने कहा– यदि पास में पगड़ी न हो तो कुर्ता धोती कुछ तो होगा ही उससे ही छान कर जल पीये।

वैसे कोई यह नियम नहीं है। किन्तु विपत्ति के समय में यह भी किया जा सकता है। नियम तो शुद्ध कपड़े से ही जल छान कर लेना चाहिये। ''विपत्ति काले मर्यादा नास्ति'' हे जाट यदि तुम्हें नियम का पालन नहीं करना है, तो विवाद का कोई अंत नहीं है। तुम्हें नियम का पालन करना ही नहीं है। उस जाट के बात समझ में आयी और व्यर्थ का विवाद छोड़ कर सुमार्ग का अनुयायी बना।

उस जाट के अन्य कुटुम्बी भी जो तेरह घर पैंसठ स्त्री पुरुष थे वे सभी बिश्नोई पंथ के पथिक बने। हे वील्ह! इस प्रकार से प्रह्लाद की प्रतीत से पूर्व पंथ का विस्तार यहाँ कलयुग में सम्भराथल पर हुआ। पूल्हजी ने स्वर्ग अपनी आँखों से देख कर लोगों से स्वर्ग सुख वर्णन किया था। उसी के प्रभाव से अनेकानेक लोग पंथ में सम्मिलित हुए। इस प्रकार से इस पंथ का विस्तार हुआ।

मुल्ला सधारी के प्रति शब्दोपदेश

मुल्ला सधारी बूझियो, जाम्भाजी सु जबाब।
सर तोरे बिन महब है, झूठ सभी खुबाब।

एक समय सम्भराथल पर श्री देवजी के पास सधारी मुल्ला आया। तथा जाम्भोजी से सवाल जवाब करने लगा तथा कहने लगा– सोरे तोरे किताब ही सत्य है। जो उसमें कहा है, वही ठीक है, अन्य तो सभी कल्पनाएँ हैं। झूठी ही हैं। श्री देवजी ने शब्द सुनाया–

''**जंके पंथ का भांजणा**'' यह शब्द सुन कर मुल्ला सधारी पुनः कहने लगा–

मुल्ला सधारी यूं कहै, महमंद ही फुरमान।
रोजे रखे निवाज पढे, बंदगी करै साहब तेही भांन।

मुल्ला सधारी इस प्रकार से कहने लगा– महमंद ने हमें फरमाया है। वही हम करते हैं। जैसे रोजे रखना, नमाज पढना, साहब की बंदगी, हम इसी प्रकार से करते हैं। यही बंदगी साहब को मान्य भी है। तब श्री देवजी ने दूसरा शब्द सुनाया–

शब्द–113

ओ३म् ईमा मोमण चीमा गोयम, महमंद फुरमानी।
उरका फुरका निवाज फरीजां, खास खबर बिनाणी।
इला रास्ती ईमा मोमन, मारफत मुल्लाणी।

हे मुल्ला ! तुम्हारे मजहब के आदि पीर महंमद ने जैसा तुम कहते हो वैसा नहीं फरमाया है। उनका कहना तो यह था कि सच्चा मानव तो वही हो सकता है, जो ईमानदारी से हृदय गुफा में छिपे हुए परमेश्वर की खोज करो, वैसे तो सर्वव्यापी परमात्मा प्रकट ही हैं, कहीं नहीं गया और न ही लंबी आवाज बांग देने से आयेगा उस घट-घट में व्यापक परमात्मा को तो शांत चित्त से ही देखा जा सकता है। नमाज या अल्ला के नाम पर तुम लोग जितना हो हल्ला मचाते हो, वह जायज नहीं है। वह तुम्हारे कंठ से निकली हुई ध्वनि को नहीं सुनता। यदि आप लोगों को वहाँ तक आवाज पहुँचानी है, तो वह हृदय के द्वारा ही पहुँचाई जा सकती। इसलिए हृदय में आवाज की स्फुरणा करो।

यही अच्छी खबर महंमद ने आप लोगों को सुनाई थी। मैं तुम्हें फिर से सचेत कर रहा हूँ। हृदय में परमात्मा का स्मरण करना, यही सच्चा मार्ग है। इसी मार्ग द्वारा ही कृपालु परमात्मा तक पहुँचा जा सकता है। इन काजी एवं मुल्लाओं के मारफत से यही बात कही जानी चाहिये। क्योंकि उन महा पुरुषों का यही आदेश है।

सेखे जाट को परचा देना

हे वील्ह ! अब मैं तुम्हें कुछ अद्भुत चमत्कार की बातें बतलाना चाहता हूँ। ध्यान पूर्वक सुनो ! एक समय सम्भराथल श्री श्याम धणी विराजमान थे। उस समय हम लोग भी उपस्थित थे। उधर जोधपुर की तरफ से एक जाटों की जमात सम्भराथल पर आयी। उनमें सेखो जाट प्रधान थे। उस जाट समाज के प्रधान ने आकर इस प्रकार से कहा-

जाट जमाती आय कै, गुरु के लागा पांय।
क्रिया धर्म जांणौ नहीं, थूल जू बचन सुणाय।
मूरख परचै आहि सूं, जो म्हानै परचाय।
तो सतगुरु सांचो कहूँ, ईश्वर जांणू तांहि।

जाट जमात ने स्वयं ही अपनी अज्ञता प्रकट करते हुए कहा-हे सद्गुरु ! हम आपके चरणों में शीश झुकाते हैं। बस हम तो इतना ही जानते हैं। हम लोग कुछ भी धर्म- कर्म क्रिया नहीं जानते। अधिक सूक्ष्म बातें हम नहीं समझते। हमें तो आप स्थूल बातें ही बतलायें, ताकि हम समझ सकें। जिस किसी प्रकार से मूर्ख मान जाये, वही तरीका आप अपनायें। यदि आप हम जैसे लोगों को अपनी करामात से इस पथ के पथिक बना देंगे, तभी हम मानेंगे कि आप वास्तव में ईश्वरीय अवतार ही हैं ऐसा कहने पर श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-114

ओ३म् सुरनर तणो सन्देसो आयो, सांभलियो रे जाटो।
चांदणै थकै अंधेरै क्यूं चालो, भूल गया गुरु बाटो।
नीर थकै घट थूल क्यूं राखो, सबल बिगोबो खाटो।
मागर मणियां क्यूं हाथ बिसाहो, कांय हीरा हाथ उसाटो।

सुरनर तणों संदेशो आयो, सांभलियों रे जाटो।

हे जमात के लोगो! आप सुनो! यह मैं तुम्हें जो कह रहा हूँ यह आपके लिए संदेशा है। इस संदेशे को लेकर मैं आया हूँ। तुम लोग मुझे देख रहे हो। मैं किस रूप में हूँ? मेरा रूप देव स्वरूप है तथा नर रूप भी है। यह विचित्र रूप धारण करके मैं तुम्हें संदेशा देने के लिऐ आया हूँ।

इस समय ज्ञान का प्रकाश हो चुका है। तब आप लोग अज्ञान रूप अंधेरे में क्यों चल रहे हैं? आप लोग गुरु मार्ग भूल गये हो। जल होते हुए भी घड़ा खाली क्यों रखते हो अर्थात् ज्ञान रूपी जल तुम्हें मिल रहा है, तो बुद्धि रूपी घट खाली क्यों रखते हो? ज्ञान की प्राप्ति करो। जल रूपी ज्ञान न मिले तो मजबूरी हो सकती है।

आप लोग जानते हुए भी भूल कर रहे हो। छाछ में घी नहीं है, फिर भी आप लोग उसका मंथन कर रहे हैं। रस हीन संसार छाछ की तरह ही है। उसमें आप घृत रूपी आनंद खोज रहे हो। यही तो भूल कर रहे है। मगरे के चिड़ी मणिंया, काँच की चूड़ियाँ, आदि हाथों में धारण कर रहे हो और हाथ में आया हुआ हीरा फेंक रहे हो।

इस संसार की मान-प्रतिष्ठा, अहंकार, लोभ, मोहादिक की पूर्ति हेतु कल्पित देवी-देवताओं की तो पूजा करते हैं जो काच-कथीर, मागर-मणियां सदृश ही है। और मैं आपको हाथ में ज्ञान रूपी हीरा देता हूँ। इसे आप फेंक रहे हैं।

हे लोगो! सुरनर द्वारा संदेशा आपके पास आया है। अब तो आप लोग संभल जाओ। अन्यथा तो फिर पछताना ही होगा। यह मानव जीवन हीरे जैसा प्राप्त है। इसे काच कथीर समझ लिया है। इसकी महत्ता समझो।

इस प्रकार के वचनों को श्रवण किया और सेखो श्री देवजी के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा- हे देव! आप मुझे तन-मन-धन से दास समझिये। अब मैं आपको छोड़ कर अन्य किसी की शरण में नहीं जाऊँगा किन्तु मेरे साथ मेरे कुटुम्ब के पचास घर हैं, वे भी मेरे साथ आ जायें, ऐसा आप कोई अद्भुत परचा देवो?

श्री देवजी ने कहा-तुम क्या चाहते हो? जो तुम चाहोगे वही मिलेगा। सेखो ने कहा-हे देव! घर में कहीं माया गड़ी हुई है। न जाने कितनी है, कहाँ पर है? आप बता दीजिये? जब धन मिल जायेगा तो मैं उस धन से एक तालाब खुदवाऊँगा। सम्पूर्ण धन आप जहाँ कहोगे, वहीं खर्च कर दूँगा। और हम सभी कुटुम्ब परिवार के लोग आपकी शरण में आ जायेंगे। बिश्नोई पंथ को स्वीकार करेंगे और ये जटाएँ उतरवा देंगे। मोडा होकर साधुमय जीवन यापन करेंगे।

श्री देवजी ने बतलाया कि तुम अपने गाँव लाम्बा जाओ। अपने घर की उत्तर की तरफ कौने में छान के नीचे तीन हाथ धरती खोदना। वहाँ पर तुम्हें एक भरा हुआ मटका मिलेगा। निकाल कर देख लेना। उसके अंदर क्या-क्या है? ऐसी वार्ता श्रवण कर सेखो अपने साथियों के साथ चल पड़ा। लांबे गाँव में अपने घर पर जाकर, जैसा देवजी ने बतलाया था, उसी प्रकार से धरती को खोदा तो फावड़ा जाकर मटके से टकराया। सेखे का संशय मिट गया। निकाल कर देखा उसमें पाँच मन चाँदी थी। तीस सेर स्वर्ण मुद्रा थी। वह सभी

धन लेकर गाड़ी पर रखा और सद्गुरु के पास सेखो सात दिनों में आ पहुँचा।

सेखा अपने कुटुम्बियों को लेकर आया था। अपने परिवार तथा प्राप्त धन को श्री देवजी के चरणों में समर्पित किया था। श्री देवजी ने कलशा मंगवाया और उसी क्षण ही पाहल देकर लांबा गाँव के तीन सौ पचास घरों के लोगों को बिश्नोई पंथ में सम्मिलित किया। सभी नर नारी पन्द्रह सौ थे। वे सभी प्रह्लाद पंथी जीव थे।

उनका यहाँ देवजी के पास आना निश्चित था। सेखे ने तो केवल उनको जगाया था। बिश्नोई पंथ के पथिक बनने वाले सारण, सीवल, कसवां, लोल आदि गोत्र के जाट थे। वे सभी बिश्नोई बने।

सेखे ने प्राप्त धन से जाम्भोलाव तालाब खुदवाया था। धन का सदुपयोग होता है, तो वह इहलोक एवं परलोक दोनों में ही जीवन उन्नति एवं मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है। अन्यथा धन भी बंधन का कारण बन कर के इह लोक एवं पर लोक दोनों में ही दु:खदायी हो जाता है। सेखे ने इस प्रकार से धन का सदुपयोग किया और जीयां ने जुक्ति मूवां ने मुक्ति की प्राप्ति की।

एक योगी के प्रति योग वचन

जोगी एक ज आवियों, जम्भ गुरु के पास।
हाथ जोड़ बोलत भयों, सूधो वचन प्रकाश।
गुदड़ी धर बैठत भयों, कीन्हौ एह विचार।
रूप तुम्हारे जोग निध, कृस कैसे किरतार।

एक योगी श्री जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर आया। हाथ जोड़ कर कुछ वचन बोलने लगा – और फिर गुदड़ी धर कर बैठ गया। जाम्भोजी की क्रियाएँ देखी और फिर कहने लगा– हे योगी! आपका स्वरूप तो योग सिद्ध पुरुष तुल्य दैदीप्यमान है। किन्तु आपका शरीर दुर्बल क्यों है? इस दुर्बलता का क्या कारण है? श्री देवजी ने उस योगी को सचेत करते हुए शब्दोच्चारण किया–

शब्द–115

ओ३म् म्हे आप गरीबी तन गूदड़ियो, मेरा कारण किरिया देखो।
बिन्दो ब्योहरो ब्योर बिचारो, भूलस नांही लेखो।
नदिये नीरूं सागर हीरूं, पवणा रुप फिरे परमेश्वर।
बिंबै बैला निश्चल थाघ अथाघूं, उमग्या समाघूं।
ते सरवर कित नीरूं, गहर गम्भीरूं।
खिण एक सिद्धपुरी विश्राम लियो,
अब जु मंडल भई अवाजूं। म्हे शून्य मंडल का राजूं।

श्री जम्भेश्वरजी ने कहा–हे योगी! मैं तो आप स्वयं गरीबी रूप में रहता हूँ, क्योंकि मुझे बाह्य सांसारिक किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। शरीर नाशवान है, तो शरीर पर किया जाने वाला श्रृंगार भी तो नाशवान ही होगा। जैसा यह प्राकृतिक स्वाभाविक शरीर है, यही अच्छा है। इसे सजाने संवारने की अधिक आवश्यकता नहीं है। हे योगी! मैं तो शरीर धर्म से ऊपर उठ कर परमात्मा में रमण करता हूँ। यह मेरा शरीर ही गूदड़ियां है। जिस शरीर रूपी गुदड़ी ने आत्मा रूपी परमात्मा को अंदर बैठा रखा है। इस आत्मा की रक्षा के लिए ही शरीर रूपी गुदड़ी मेरे लिए प्राप्त है। इसीलिए मुझे किसी प्रकार की गुदड़ी की आवश्यकता नहीं है। मेरे शरीर को क्यों देखते हो? मेरे शरीर में होने वाली क्रियाओं को देखो। जो अंदर की भावना होगी, वही शरीर की क्रियाओं द्वारा बाहर प्रगट हो जायेगी। इस लिए क्रियाओं को देखकर अंदर की भावना पढी जा सकती है। बिन्दु शून्य है, यह ओम शून्य में ही ध्वनित होता है। सम्पूर्ण सृष्टि के प्रलय में भी एक शून्य ही बचता है। वही शून्य ही आत्मा–परमात्मा का रूप है। इसीलिए श्री देवजी कहते हैं कि मेरी दृष्टि सदा शून्य में ही विचरण करती है। संसार रूप में कभी परिवर्तित नहीं होती। तब मुझे संसार की वस्तु की उपादेयता नगण्य मालूम पड़ती है। विचार शून्यावस्था ही समाधि है। श्री देवजी कहते हैं कि मैं सदा ही समाधि में ही स्थित रहता हूँ।

हे योगी! यही योगी के लिये लेखा–जोखा है। इसे भूले नहीं। सदा ही जाग्रत बना रहे। कितनी भी कठिन परिस्थितियाँ आ जाये, किन्तु ब्रह्म से वृत्ति चलायमान न हो। वह सर्वत्र व्यापक परमात्मा नदियों में जल रूप में विद्यमान है। सागर में सार तत्त्व हीरे के रूप में अवस्थित है। तथा वह पवन के रूप में परमेश्वर ही सर्वत्र व्यापक हो रहा है। आकाश तथा वायु से कहीं जगह खाली नहीं है। उसी प्रकार से वह परमात्मा भी कहीं भी अविद्यमानता प्रकट नहीं करता।

सूर्य उदय एवं अस्त बेला ही संध्या की बेला है। ऐसे समय में साधना करना उपयोगी है। इस पवित्र बेला में निश्चल हो जाये। सम्पूर्ण प्रकृति भी संध्या बेला में कुछ समय तक शांत हो जाती है। सृष्टि तथा सृष्टि के जीवों का हलन–चलन रुक जाता है। उस समय में एकान्त में बैठकर श्रद्धा पूर्वक मन को एकाग्र करें। न थकने वाले मन को थकायले। तो उस असीम अपार परब्रह्म स्वरूप आत्म तत्त्व की प्राप्ति की जा सकती है।

ऐसी स्थिति जब भी आयेगी तब हृदय में आनंद की लहरें उठेंगी। आत्मानन्द ही सर्वोतम आनंद है। सांसारिक आंनद कुछ भी नहीं है। वह तो क्षणिक सुख है। आनंद का आभास मात्र है। उमंग की लहरों में संसार को भूल जायेगा तो उस परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग सहज में ही मिल जायेगा। ऐसी दशा बड़ी ही अनमोल, अनिर्वचनीय है। किसी की भी बराबरी नहीं की जा सकती। संसार का सुख तो गड्ढे के गंदे जल जैसा है। हमारी आनंद की लहरें–उमंग तो समुद्र की लहरों की भांति उच्च कोटि की हैं। समुद्र की लहरें गहरी तथा गंभीर हैं।

हे योगी! एक क्षण में ही मैं समाधिस्थ हो जाता हूँ। जहाँ सिद्ध लोगों की वृत्ति परमात्मा में रमण करती हैं, वहीं पर मेरी वृत्ति भी स्थिर हो जाती है। सम्पूर्ण मंडल की मधुर ध्वनि ऐसी दशा में सुनी जा सकती है। कौन कहाँ पर क्या बोलता है? किसके मन में क्या भावना उठती है? उन्हें जाना जा सकता है। क्योंकि चित्त की वृत्ति सर्वत्र हो जाती है। तो सर्व ही जाना जा सकता है। बाह्य वृत्ति जब सांसारिक होती है, तो वह वृत्ति अल्पज्ञ हो जाती है। एक देश तथा एक देश में वृत्ति सीमित होने से एक ही देश को देखा जा सकता है।

सुना जा सकता है। इसलिए हे योगी! मैं तो शून्य मंडल का राजा हूँ। तुम्हारी तो वहाँ तक पहुँच ही नहीं है।

हे वील्ह! इस प्रकार से योगी ने एक ही सार गर्भित शब्द सुना, तो योगी के मन में शांति आ गयी। मुद्रा कानों से निकाल कर रख दी और भेख को छोड़ कर बिश्नोइयों की पंक्ति में जाकर बैठ गया। इस प्रकार से सन्मार्ग से भटका हुआ एक योगी बिश्नोई बना तथा सत्पंथ का पथिक बन कर जीवन का उद्धार किया।

मृग छाला पावोड़ी कांय फि रावों

जोगी सब भेला हुआ, आया मारू देश।
भस्म लगाई देह में, लम्बे बढाए केश।
जोगी जब डेरा किया, हिमटसर में आय।
सतगुरु को जब खबर हुई, सन्मुख मिले तांह।
जोगी तब बोले नहीं, सतगुरु कियो आदेश।
धूनी पावड़ी पवन पाणी, सब ही कियो अलेख।

हे वील्ह! लोहापांगल एवं लक्ष्मणनाथ आदि मण्डली को अनेकानेक शब्द पूर्व में सुनाये थे। इस समय भी नाथों की मण्डली सम्भराथल पर आयी थी। ज्यों-ज्यों चर्चा फैलती गयी, त्यों-त्यों अनेक साधु मण्डली सम्भराथल पर आती रहती थीं। कोई अद्भुत बात जब कानों में पड़ती है, तो स्वभाविक रूप से उसे जानने की जिज्ञासा प्रगट होती है। योगियों की जमात मरुस्थल देश में भ्रमण करने के लिए आयी थी। उन लोगों ने देह में भस्म लगा रखी थी। लंबे लंबे केश बढा रखे थे। विचित्र वेश भूषा एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़, स्वयं को ही पूज्य बनाने की लालसा, अनेक बाह्य आडंबर करवाती है।

उन योगी लोगों को स्वयं का तो कुछ पता नहीं है कि हम क्या कर रहे है? मद में अन्धे हो रहे थे। जाम्भोजी को परास्त करने हेतु सम्भराथल की तरफ बढ रहे थे। जिन गाँवों में आसन लगाते, वहाँ के लोगों को अपनी सिद्धि द्वारा आतंकित करते और अपना कार्य सिद्ध कर रहे थे। एक गाँव से दूसरे गाँव में पहुँचना, कई लोग धूणी लगा कर बैठते, कई लोग पंच अग्नि तापते थे। कई लोग इसके विपरीत भयंकर सर्दी में जल धारा अपने उपर डलवाते। गर्मी में भयंकर पाँच धूणा लगा कर तपते थे ये सभी क्रियाएँ ज्ञान मुक्ति में बाधक थी। किन्तु लोगों में वाह वाही खूब हो रही थी। इसीलिए ही तो ये लोग आडंबर करते थे।

योगी लोगों ने हिमटसर में आकर डेरा लगा लिया। वहीं के किसी व्यक्ति ने जाम्भोजी को खबर भेजी कि पूर्व की तरह इस बार भी सिद्धों की जमात आपको दु:ख देने के लिए आ रही है। आप स्वयं ही इसका उपाय करें।

सद्गुरु जाम्भोजी ने कहा- ये योगी लोग न जाने कितनी दूर से कष्ट उठा कर आये हैं। वे तो हमारे मेहमान हैं। मैं उन्हें यहीं सम्भराथल पर ही बुला लाता हूँ। हे शिष्य गणो! आप लोग उनके लिए सावन-भादव कड़ाहे चढा दो। इनके लिए जल्दी से भोजन बनादो। जाम्भोजी उन योगियों के पास गये। वहाँ पर जाकर

आदेश कहा–किन्तु कोई भी योगी बोला नहीं, परन्तु योगियों की तरफसे धूनी, पवन, पावड़ी ने आदेश आदेश कहा! चारों तरफ से आदेश की ध्वनि सुनकर योगी लोग लज्जित हो गए। उठ कर चल पड़े।

देवजी सम्भराथल पर विराजमान हुए, योगी लोग भी घेर कर बैठ गए। साथरियों ने देखा कि आकाश में मृग छाला एवं पावड़ी घूमती हुई दीख रही है। आश्चर्य चकित होकर पूछा कि हे देव! यह क्या हो रहा है।? ये मृग छाला एवं पावड़ी निराधार घूम रही हैं। यह किस की करामात है? श्री देवजी ने कहा– यह तो उन उपस्थित योगी लोगों की सिद्धि का परिचय है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। यह तो उन की साधारण सी बात है। बच्चों का ही खेल है। इससे आप लोग भ्रमित नहीं होना। इससे भी अधिक सिद्धि का प्रदर्शन किया जा सकता है। किन्तु इस समय आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार से कहते हुए श्री देवजी ने शब्द सुनाया–

शब्द–116

ओ३म् आयसां मृगछाला पावोड़ी कांय फिरावो,
मतूंत आयसां ऊगंतो भाण थंभाऊं।
दोनों परबत मेर उजागर, मतूंत अधबिच आन भिड़ाऊं।
तीन भवन की राही रुक्मण, मतूंत थल सिर आंण बसाऊं।
नवसै नदी निवासी पाला, मतूंतो थल सिर आन बहाऊं।
सीत बहोड़ी लंका तोड़ी, ऐसो कियो संग्रामो।
जां बांणे म्हे रावण मार्यो, मतूंत कोवंड सोखा हाथे साहै।
कैरूं पांडव जांदम जोधा, मतूंत गढ़ हथनापुरि आंणि दिखाऊं।
अति अनेरा बाग सवाया, मतूंत सोवन मृगा करि चराऊं।
अति अनेरा पावस पांणी, मतूंत घण पाहंण बरसांऊ।
आयसां! मृगछाला पावोड़ी कांय फिरावो, मतूंतो उगंतो भांण थंभाऊं।

हे आयस! आप लोग मृग छाला एवं पावड़ी अधर आकाश में क्यों घुमाते हो? इससे अपनी सिद्धि प्रगट कर रहे हो। श्री देवजी कहते हैं कि वह भी मेरे सामने? यदि मेरी इच्छा हो तो मैं उगते सूर्य को भी रोक सकता हूँ। यदि मैं चाहूँ तो तुम्हारी इस सिद्धि को मन्द करने के लिए दोनों पर्वत जो उदयगिरी एवं सुमेरू हैं उन्हें भी बीच में लाकर आपस में भिड़ा दूँ। एक पूर्व छोर पर है, दूसरा पश्चिम छोर पर है। किन्तु दोनों को एकत्रित किया जा सकता है।

तीन भवन की राणी रुक्मिणी है तीन भवन अर्थात् तीनों लोक की लक्ष्मी रुक्मिणी को मैं यहाँ सम्भराथल पर लाकर बसा दूँ। यदि मेरी इच्छा हो तो हो सकता है। नौ सौ नदियाँ एवं उनमें मिलने वाले सम्पूर्ण नाले–झरने जो अन्यत्र कहीं दूर दूर बह रहे हैं, यदि मेरी इच्छा हो तो मैं उन सभी को यहाँ समराथल पर लाकर बहा दूँ।

हे आयस! मैंने राम रूप में अवस्थित होकर सीता को लंका से वापिस लाया था। तथा लंका को

तोड़ डाला था। ऐसा भयंकर संग्राम किया था। जिन बाणों से मैंने रावण को मारा था। वही धनुष बाण इस समय मैं अपने हाथों में धारण कर लूँ। यह हो सकता है, किन्तु यह होना या न होना मेरी इच्छा पर ही निर्भर करता है।

कौरव, पाण्डव और यादव योद्धा जिन्होंने महाभारत युद्ध लड़ा था, किन्तु इस समय वे एक भी यहाँ धरती पर नहीं हैं। उस समय हस्तिनापुर में थे। यदि मेरी इच्छा हो तो उन्हें पुन: हस्तिनापुर में लाकर दिखा दूँ। वैसे गए हुए वापिस लौट कर ज्यों के त्यों नहीं आते। किन्तु मेरी सिद्धि से तो यह असम्भव कार्य भी सम्भव हो सकता है।

हे योगी! यहाँ सम्भराथल पर इस समय बाग बगीचे लगे हुए नहीं हैं, किन्तु मेरी इच्छा हो तो मैं अभी अति सुंदर हरे-भरे बाग लगा दूँ। और उसमें असम्भव है सोने का मृग, किन्तु मैं सोने का मृग बनाकर उसे बाग में चरा दूँ। वैसे तो वर्षा ऋतु में सामान्य वर्षा स्वाभाविक होती है। किन्तु यदि मैं कुछ विशेष करना चाहूँ तो वर्षा जल की जगह पत्थर भी बरसा सकता हूँ। हे आयस! मृग छाला पावड़ी क्यों घूमाते हो? यदि मेरी इच्छा हो तो मैं उगता हुआ सूर्य भी रोक सकता हूँ।

जोगी तब ऐसे कही, सुनो स्वामीजी बात।
जोग सिद्धि हम भी लई, सतगुरु केरे पास।

योगी कहने लगे- हे स्वामी जी! हमने भी योग सिद्धि की प्राप्ति सद्‌गुरु के पास से की है। हम कोई साधारण गुरु के चेले नहीं हैं। आप तो सभी कुछ कर सकते हैं, किन्तु कुछ तो हम भी कर सकते हैं। श्री जाम्भोजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-117

ओ३म् टूका पाया मगर मचाया, ज्यूं हंडियाया कुता।
जोग जुगत की सार न जाणी, मूंड मूंडाय बिगुता।
चेला गुरु अपरचै खीणा, मरते मोक्ष न पायों।

हे आयस! आप लोग भ्रमित हो रहे हैं। आपको सिद्धि कहाँ मिली है? आप लोगों को घर-घर घूमने से रोटी के टुकड़े मिल जाते हैं। उस भिक्षा के अन्न को खाकर लड़ाई-झगड़े, वाद-विवाद में उलझे रहते हो। जिस प्रकार से घर-घर हांडने वाला-घूमने वाला कुत्ता, टुकड़ा खाकर लड़ता, झगड़ता, भौंकता है। आप लोगों ने योग मुक्ति का सार नहीं जाना। केवल सिर मुंडवा लिया है। अब तुम्हारी बात पर विश्वास किसी को नहीं हो रहा है। तुम्हारी यह तो गति नहीं है। यह तो दुर्गति हो गयी है।

इस प्रकार से जीवन जीते हुए तो गुरु और चेला दोनों ही बिना साधन के, ज्ञान प्राप्त किए बिना ही मर जायेंगे। ऐसे गुरु शिष्य को मोक्ष नहीं होगा। इस प्रकार से ये दो शब्द नाथ योगियों के लिए श्री देवजी ने कहे थे। और भी बहुत से शब्द कहे थे। उनमें आगे का शब्द हे वील्हा मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

मौनी बालक की कथा

एक विसनोवण एक डावड़ो ले आयी। जाम्भाजी ! ओह मोटो हुवो, अजु बोल नहीं। जाम्भोजी कह रे बालका बोल्य। डावड़ो सिध बोल। मोनी बचन - जाम्भोजी श्री वायक कहे-

शब्द-118

ओ३म् सुरगा हूँते शिंभु आयो, कहो कूंणा के काजै।
नर निरहारी एक लवाई, परगट जोत विराजै।
प्रह्लादा सूं वाचा कीवी, आयो बारां काजै।
बारा मैं सूं एक घटै तो, सू चेलो गुरु लाजै।

नाथोजी कहते हैं कि हे वील्ह ! जब श्री जाम्भेश्वर जी सम्भराथल पर विराजमान थे उस समय उनके पास में आने वालों में एक बिश्नोई महिला अपने एक छोटे से बालक को साथ लेकर सम्भराथल पर आयी। कहने लगी-हे जाम्भाजी ! यह मेरा बच्चा अब बड़ा बोलने लायक हो गया है। किन्तु यह तो बोलता नहीं है। एक बार इसे बुलवा दीजिये। इससे मेरा संशय मिट जायेगा। हे देव ! मुझे यह संशय है कि यह बोलना तो जानता है, किन्तु बोलता नहीं है। क्या यह बोलना नहीं जानता ? यदि जानता है, तो बोलता क्यों नहीं ?

श्री जाम्भोजी ने उस माता की बात सुन कर बालक से कहा- अरे ! बालक ! बोल ! ऐसा कहते हुए चुटकी बजाई, तो बालक बोलने लगा। प्रथम वाणी का उच्चारण सिद्धों की वाणी का ही किया। प्रथम दो पंक्ति तो मौनी बालक के वचन हैं। अन्तिम दो पंक्तियाँ जाम्भोजी के वचन हैं। प्रथम तो बालक ने प्रश्न पूछे हैं। आगे जाम्भोजी ने उत्तर दिये हैं। क्योंकि वह बालक जाम्भोजी की प्रेरणा से ही बोला था इस लिए इन दो पंक्तियों को जाम्भोजी के शब्दो में ही सम्मिलित कर लिया है। जिस प्रकार से वेद भी तो ईश्वर की प्रेरणा से ही ऋषियों ने उच्चारण किये थे। वेद ईश्वर रचित कहे जाते है। इसलिए यह शब्द भी जाम्भोजी द्वारा रचित माना जाता है। इस शब्द द्वारा बालक ने क्या पूछा था और श्री देवजी ने क्या जवाब दिया था इसके बारे में शब्द बतलाता है।

बालक ने पूछा हे देव ! आप तो स्वर्ग - बैकुण्ठ धाम में थे। मैंने आपको वहाँ पर देखा था। तथा आप तो स्वम्भू हैं। स्वतंत्र हैं। कर्मो के बंधन से परे हैं। तब यह बतलाओ कि यहाँ मृत्यु लोक में कैसे आए ? किस प्रयोजन से आपका आना हुआ ? बालक ने फिर से कहा- मैं आपको यहाँ बैठा देखता हूँ, आप बड़े विचित्र हैं, आप नर रूप में होते हुए भी निरहारी हैं। भोजन नहीं करते, ऐसा क्यों है ?

आप इस समय अकेले ही आये है, साथ में लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी को क्यों नहीं लाये ? इससे पूर्व तो साथ लेकर आते थे। पूर्व अवतारों में सीता- रुक्मिणी रूप में आप के साथ थी। आप यहाँ पर प्रकट ज्योति स्वरूप से विराजमान हो। जहाँ आप बैकुण्ठ धाम में रहते हैं, तो आपकी ज्योति से ही वह लोक प्रकाशित होता है। वहाँ अन्य प्रकाश करने वाले सूर्य चन्द्रादि नहीं हैं। वही यहाँ पर विराजमान हो रहे हैं। बालक कहने लगा-मैं नहीं समझ पा रहा हूँ, यह अपूर्व आपकी लीला अद्भुत है।

आगे जाम्भोजी ने उत्तर देते हुए कहा-हे बालक! मैंने सतयुग में नृसिंह रूप धारण करके प्रह्लाद को वचन दिया था, उन वचनों को पूरा करने के लिए मेरा यहाँ आना हुआ है। उस समय मैंने प्रह्लाद भक्त से कहा था कि तुम्हारे तैतीस करोड़ साथियों का उद्धार मैं समय-समय पर करूँगा।

पाँच करोड़ इस समय तुम्हारे साथ ही सतयुग में, सात करोड़ त्रेता युग में हरिश्चन्द्र के साथ, द्वापर युग में नौ करोड़ का युधिष्ठिर के साथ उद्धार होगा। कलयुग में मैं स्वयं ही आऊँगा और शेष बचे हुए बारह करोड़ का उद्धार करूँगा। इस समय इस देश में वही प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीव जन्म लेकर आये हैं। उनका उद्धार करूँगा।

हे बालक! उन्हीं बारह करोड़ों में तुम भी एक हो। तुम्हारा समय आ चुका है। अब दुबारा तुम्हारा जन्म नहीं होगा। तुम भागे हुए चले आए हो। यही तुम्हारा प्रह्लाद पंथी होने का प्रमाण है। यदि इस समय प्रह्लाद को दिया हुआ वचन पूरा नहीं करूं तो सुचेला और गुरु दोनों को ही लज्जा लगेगी। पहले तो वचन दिया था, किन्तु अब निभा नहीं सके। इसीलिए मेरा यहाँ पर आगमन हुआ है।

हे वील्ह! बालक तथा श्री देवजी की परस्पर इस प्रकार से हुई वार्तालाप को हमने सुनी थी। जब श्री देवजी अपनी बात बता चुके थे, तब वहाँ पर उपस्थित भक्तों की भावना को देखते हुए मैंने पूछा था कि हे देव! यह बालक पहले तो मौन था, अब बोलने लगा है। यह बात स्वर्ग की करता है- आपको भलीभांति जानता भी है। इसकी-आपकी मुलाकात कहाँ पर और कैसे हुई थी? इसके बारे में तथा इस बालक का परिचय ठीक से देने की कृपा करें।

श्री जम्भेश्वर जी ने कहा-इस बालक की कथा मैं क्या बतलाऊँगा, यह स्वयं ही बतला देगा। ऐसा कहते हुए श्री देवजी ने बालक से कहा- रे बालक! तू अपने पूर्व जन्म की कथा स्वयं ही इन लोगों को बतला दे, क्योंकि अब तू मेरे पास है। अब तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है। पहले जन्म में तू बोलने से ही फंस गया था। अब तुझे डरने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं तुम्हारे साथ हूँ। देवजी की वार्ता श्रवण कर के वह बालक अपनी कथा स्वयं ही कहने लगा-

बालक बोला-मैं पूर्व जन्म में ऋषि था। लखनऊ के उत्तर दरवाजे पर तपस्या करता था। इस बात को वहाँ के लोग सभी जानते हैं। वहाँ का राजा नित्य प्रति मुझे भोजन देने आता था। वह राजा संतों का सेवक था। उसी शहर में एक भटियारी रहती थी। वह नित्य प्रति धूणी के लिए लकड़ी डाल कर जाती थी। इस प्रकार से एक राजा, दूसरी भटियारी की सेवा से मैं बारह वर्ष तक तपस्या करता रहा।

एक समय वह भटियारी मेरे सामने आकर रोने लगी। मैंने पूछा-माई क्यों रो रही हो? उस भटियारी ने कहा- महाराज! मेरे एक ही लड़का है। वह तो चोरी करता है। डाका डालता है। मेरे बेटे ने चोरी की है। उसके हाथ से एक लड़की मर गयी है। नगरी के लोग रोते-पीटते राजा के पास गये और चोर को पकड़ कर फांसी देने की बात राजा से कही। राजा ने प्रजा को शांत किया और मेरे बेटे को फांसी का आदेश दिया। मेरा बेटा पकड़ा गया है। आज ही यह राजा जो आपके पास आता है यही फांसी देगा। कृपा करके मेरे बेटे को बचाइए। अन्यथा मैं भी बेटे के वियोग में रो रो कर मर जाऊँगी।

यह बात सुन कर मैंने कहा- हे माई! तुम चिंता मत कर! रोना बंद कर दे। मैं तेरे बेटे को बचा दूँगा।

उसी समय ही राजा आया और मुझे भोजन जिमा कर वापिस जाने लगा, तो मैंने पूछा– हे राजन! आज जल्दी क्यों जा रहे हो? राजा ने कहा– हे ऋषिवर! आज एक सख्स को फांसी देना है। इसीलिए मुझे जाना होगा। मैंने कहा– हे राजन! उस व्यक्ति को फांसी नहीं देना। एक बार तो उसके अवगुण माफ कर देना। राजा ने मेरी बात मान ली और भटियारी के बेटे को छोड़ दिया।

भटियारी का चोर बेटा छूट गया। मैंने तो छुड़ाया, तो उसके भले के लिए ही था। किन्तु उस चोर को तो और अधिक गर्व हो गया। पकड़े जाने पर छूटने की आशा हो गयी थी। इसीलिए उस चोर ने अबकी बार और भी ज्यादा तबाही मचा दी थी। बाजार में लूट पाट की तथा अपने साथियों सहित भटियारी के बेटे ने अनेक लोगों का खून कर दिया।

नगरी के लोग एकत्रित हो कर राजा के पास गये और कहने लगे–हे राजन्! हम तो जुल्म सहते–सहते थक गये हैं। इस बार तो चार लोगों को इस डाकू ने मार डाला है। जिस राजा के यहाँ न्याय नहीं है, वहाँ प्रजा को नहीं रहना चाहिए। हम तो तुम्हारे देश को छोड़कर परदेश चले जायेंगे। तभी हमारा क्लेश कटेगा।

प्रजा की पुकार राजा ने सुनी और कहने लगा–कल का दिन छिपने से पूर्व ही मैं इस डाकू को पकड़ कर फांसी चढ़ा दूँगा। आप लोग अब जाइए। ऐसा कहते हुए प्रजा को आश्वासन दिया। दूसरे दिन राजा भोजन लेकर ऋषि के पास चला। राजा के पहुँचने से पूर्व ही भटियारी आकर पुनः रोने लगी। ऋषि रूप में स्थित मैंने कहा– हे माई! क्यों रोती हो? वह कहने लगी– हे महाराज! क्या बताऊँ! आज मेरे बेटे का मरने का दिन आ गया है। मैंने पूर्व जन्म में कोई ऐसा पाप कर्म किया होगा, इसीलिए मैं रो रही हूँ।

ऋषि ने कहा– मैं तेरे पुत्र को मरने नहीं दूँगा। ऐसे कहते हुए भटियारी को चुप किया। यह वार्ता चल ही रही थी कि बादशाह ऋषि के लिए भोजन लेकर सदा की भांति आ गया और ऋषि को भोजन करवा कर के तुंरत वापिस चल भी पड़ा। महात्मा ने पूछा–हे राजन्! आज इतनी जल्दी क्यों जा रहे हो? रुको, कुछ वार्ता करो। बादशाह कहने लगा–आज मुझे जल्दी जाना है। उस पहले वाले डाकू को फांसी देना है, उसने खून कर दिया है।

ऋषि कहने लगा–हे राजन्! उसको फांसी नहीं देना! मेरे कहने से छोड़ देना है। बादशाह कहने लगा–महाराज! यह तो चार आदमियों का खून करने वाला है। इसको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। जो राजा अपराधी को दण्डित नहीं करता, वह राजा नरक का अधिकारी हैं। अब आप ही बतलाइए मैं तो जो कुछ आप कहोगे, वही करूँगा। मुझे मालूम है कि आप मुझे अधोगति में नहीं जाने देंगे।

ऋषि ने कहा–यद्यपि तुम्हारी बात सत्य है। फिर भी आप इसे छोड़ दे। ऋषि के कहने पर राजा ने उस हत्यारे को छोड़ दिया। वह भटियारी का बेटा चोर डाकुओं से जा मिला। एक रात्रि में उन डाकुओं ने मिल कर नगरी पर हमला कर दिया। शहर की जनता ने जाकर राजा के पास पुकार की। राजा ने कहा–अबकी बार मैं उस डाकू को छोड़ूँगा नहीं। चाहे कोई भी मुझे क्यों न रोके? ऐसा कहते हुए प्रजा को शांत किया और उस डाकू को पकड़ लिया। फांसी पर चढ़ाने का हुकम जारी कर दिया और राजा ने कहा–

मैं पहले ऋषि को भोजन देकर आता हूँ। वापिस आकर फांसी चढ़ा दूँगा। इधर भटियारी भी ऋषि के पास आकर रोने लगी। तब पूछा माई क्यों रो रही हो? भटियारी कहने लगी– हे महाराज! जो कर्म करेगा

उसको फल तो वही मिलेगा। आज मेरा बेटा बचेगा नहीं। ऋषि ने कहा– मैं राजा से तुम्हारे बेटे को बचाने का प्रयास करूँगा।

उसी समय राजा भी आ गया और भोजन देकर जल्दी में वापस जाने लगा– तब ऋषि ने पूछ ही लिया आज जल्दी क्यों जा रहे हो? राजा ने पुन: वही बात दोहरायी। तब पुन: ऋषि ने कहा मेरा कहना करें तो इसे फांसी नहीं देना। ऐसी वार्ता सुन राजा पुन: बैचेन हो गया। ऋषि बार–बार एक ही बात कहे जा रहे हैं। नीति कहती है कि जिस राजा के राज में कोई व्यक्ति जुल्म करे और राजा उसको दण्डित नहीं करे तो स्वयं पाप का भागी होता है। इसने तीन अपराध कर लिये हैं, किन्तु मैंने आप के कहने से माफकर दिये हैं। अब प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है। अधिक से अधिक तीन बार माफ किया जा सकता है।

ऋषि ने कहा– हे राजन! सुनो! यदि चोर अपनी आदत चोरी करना नहीं छोड़ता, तो हम साधु अपनी साधुता कैसे छोड़ सकते है? यदि अपना स्वभाव ही छोड़ दिया, तो साधुपना ही अपना व्यक्तित्व ही चला जाएगा। अब जो तुम्हारी राजनीति कहती है, वही तुम करो। जो दण्ड इसके लायक है, वही इसे प्रदान करो। मैं कुछ भी नहीं कहता। इस प्रकार से राजा ने भटियारी के बेटे फांसी चढ़ा दिया और अपना कार्य पूरा किया।

उस राजा सेरविलोल ने संत की सेवा की थी। इसका फल राजा को मिला। उसके स्वांति शाह पुत्र हुआ। यह जांभोजी का शिष्य बना था। दोजक छोड़, भिस्त की प्राप्ति की थी।

नाथोजी कहने लगे हे वील्ह! उस भटियारी ने संत की सेवा की थी। नित्य प्रति लकड़ी डाल कर जाना, झाड़ू बुहारी करना, यह निस्वार्थ सेवा का फल भठियारी को भी मिलना था। वह अपने पुत्र को तो नहीं बचा सकी थी। दिन–रात पुत्र के मोह में बेचैन रहती थी। एक दिन उस ऋषि ने कहा– हे माता! अब मैं संसार से चलना चाहता हूँ। मेरा समय आ गया है। मेरा जीवन पूर्ण हो गया है। अब तू मेरे से क्या चाहती है? जो कुछ माँगोगी वही मैं दूँगा। तब भठियारी कहने लगी– मैं आपके ही जैसा पुत्र चाहती हूँ। ऐसा वरदान सुन कर ऋषि चिंता में पड़ गया और कहने लगा– यह संसार कुछ भी काम का नहीं है। मेरे जैसा पुत्र तो मैं ही हो सकता हूँ। दूसरा कहाँ से लाता? इस जन्म में तो तुम्हारी पुत्र प्राप्ति की इच्छा पूरी नहीं कर सकता, किन्तु दूसरा जन्म लेकर ही आना होगा। तभी इस माता का बेटा बन सकूँगा। इसकी इच्छा की पूर्ति कर सकता हूँ। इस प्रकार के वचन देकर वह ऋषि शरीर छोड़ चुका था।

संत सेवा के प्रभाव से वह भटियारी बिश्नोई के घर पर जन्म लेकर आयी है। और वह ऋषि इसका बेटा बन कर आया है। वह बालक कहने लगा– मैं अपने पुण्य के प्रताप से स्वर्ग तो गया था, किन्तु वहाँ पर मुझे कौन रहने देता? क्योंकि मैंने बेटा बनने का वचन इस माँ को दिया था। इस समय यह माता मुझे घर–घर लिए डोलती है। कह रही है कि यह मेरा बेटा बोलता नहीं है। मैं बोलना तो जानता था किन्तु यह जान कर नहीं बोला था कि पूर्व जन्म में मैंने बहुत बकवास किया था, उसका फल जो मुझे मिल ही गया है। स्वर्ग लोक में पहुँचा हुआ, मुझे वापिस मृत्यु लोक में आना पड़ा। इस समय जाम्भोजी की कृपा से मैं इन्हीं की शरण में आ गया हूँ। इनकी आज्ञा से मैं बोल चुका हूँ। अब मुझे किसी भी प्रकार का भय नहीं है। अपनी जगह पर वापिस चला आया हूँ मैं तो अब यहीं रहूँगा, ऐसा कहते हुए उस योग भ्रष्ट बालक ने अपने पूर्व जनम

की कथा सुनायी। और पुनः मौन हो गया।

माता ने यह सभी कुछ सुना और आश्चर्य चकित हो गयी। कहने लगी-क्या मैं पूर्व जन्म में भठियारी थी ? यह जन्म मेरा बिश्नोई के घर पर हुआ है। क्या यह मेरा बेटा पूर्व जन्म में ऋषि था ? इस समय अपनी स्वाभाविक गति को प्राप्त हो गया। मुझे भी इसकी साधना में फिर से विघ्न नहीं डालना है। पूर्व जन्म में मैं विघ्न बन कर आयी थी। अब विघ्न नहीं बनूँगी। ऐसा विचार करते हुए वह माता उस बच्चे को वहीं छोड़ कर वापिस चली गयी।

ऊदै अतली की साधु सेवा

हे वील्ह! अब आगे मैं तुझे ऊदो अतली के पवित्र साधु सेवा के भाव की कथा सुनाता हूँ। सुनो! मेड़ताटी के पंडवाला गाँव में ऊदो एवं अतली दोनों दम्पती रहते थे। ये दोनों दम्पति कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते हुए पुण्य का संचय कर रहे थे और पाप को नजदीक भी नहीं आने देते थे। नित्य क्रिया स्नान संध्या हवन आदि नियम पूर्ण रूपेण निभाते थे। अतिथि सेवा हेतु घर में घी, दूध, दही, अन्न की कोई कमी नहीं आती थी। कोई सुभ्यागत आ जाता, तो उसे प्रेम से भोजन आदर-सम्मान देते थे। विष्णु की भक्ति एवं भक्त का विचार जानते थे। क्योंकि विष्णु ही सम्पूर्ण सृष्टि के पालन पोषण कर्ता हैं। हम विष्णु इतना तो नहीं कर सकते, किन्तु आगन्तुक अतिथि की सेवा तो कर ही सकते हैं। विष्णु की भक्ति को क्रियात्मक करना ऊदो अतली जानते थे। चार धर्म धारण करते थे। धैर्य, संयम, सत्य एवं सद्गुरु विष्णु से एकता। विष्णु की महिमा जानते थे। क्योंकि सभी के पालन पोषण कर्ता हैं। उसी रूप में विष्णु का स्मरण, साधु सेवा में लीन थे। उन्हें तो केवल भक्ति से ही प्रयोजन था। जिस दिन कोई संत सुभ्यागत घर में नहीं आता था, उस दिन दु:खी हो जाते थे। आज कुछ भजन पुण्य बना नहीं। हमारा दिन व्यर्थ में ही चला गया। ऊदो अतली जब कोई मेहमान न आते, तो चिंतित हो जाते कि आज हमारा नियम भंग हो गया। विचार करने लगे- हम लोग यहाँ पंडवाले गाँव में रह रहे हैं, किन्तु यहाँ तो एकांत है। इधर किसी का आना जाना नहीं होता। इसीलिए हम लोग इस गाँव को छोड़कर वहाँ पर जाकर बसेंगे, जहाँ पर जमात के लोग ज्यादा रहते हैं। कोई न कोई संत वहाँ पर अवश्य ही आयेगा। हमें सेवा का सुअवसर प्राप्त होगा। ऐसा विचार कर के पंडवालो गाँव छोड़ दिया। बड़ी खुशी एवं आशा के साथ पंडवालो गाँव छोड़ कर हिंगुणियें गाँव में जा कर बस गये।

वहाँ आकर बसने का कोई दूसरा कारण नहीं था। केवल संत सेवा करना ही था। वहाँ हिंगुणियें में पहले ही बिश्नोई बसते थे। वे भी अतिथि सेवा करने में चौकस थे। सदा ही गाँव के लोग सावधान रहते थे। कभी चार पाँच अतिथि आते तो बाँट कर ले जाते। चार बासों में बसने वाले बिश्नोई तथा पाँचवाँ वास में ऊदो अतली आकर बसे थे। ऊदो अतली को तो पाँचो में एक ही मिलता। चारों को तो चारों मुहल्ले वाले ले जाते। कभी दस सुभ्यागत आ जाते तो दो ही मिलते। इस प्रकार से कुछ महीनों तक चलता रहा।

एक दिन अतली कहने लगी-हे पति देव! इस गाँव में आकर बसने में भी कोई लाभ नहीं मिला। हमें तो संत भक्तों की सेवा करनी है। यही हमारा उद्देश्य है। हमें यहाँ भी नहीं रहना चाहिए। जहाँ पर हमारा

धर्म पूर्णतया निभ सके, वहीं जाकर रहना उत्तम है। हिंगुणिये से भी ऊदो अतली चल पड़े और सम्भराथल के पास ही कूदसूं गाँव में आकर बस गए। सम्भराथल से जाम्भोलाव आने-जाने वाले भक्तों के मार्ग में पड़ता है। सेवा का अच्छा अवसर प्राप्त होगा। बहुत ही लोगों का आना-जाना होगा। हमारे यहाँ रुकेंगे। हमें सेवा का अवसर प्राप्त होगा। यही विचार करके कूदसूं में बस गये। यहाँ बसने में बड़ी खुशी हुई कि यह खर्च करने की जगह उत्तम है। यहाँ से आने-जाने वाले सभी सुभ्यागत जाम्भोजी के शिष्य हैं।

आस पास में ऊदो अतली ने जो देखा और जो सुना, उससे कुछ श्रद्धा भाव में कमी आने लगी। कुछ लोग साधु भक्तों की आलोचना करते थे। उनके गुणों में भी दोष निकालते थे। गुण-दोष तो सभी में ही होते हैं। किन्तु अपना अवगुण ही दूसरों में सहज ही दीखता है। संगति का फल अवश्य ही लगता है। साधु-सन्तों की आलोचना दोष सुनते-सुनते ऊदो अतली के दिल में भी कठोरता आ गयी। वह पहले वाला भाव श्रद्धा नहीं रही। पहले तो सदा ही प्रतीक्षा करते थे कि आज कोई भगवान् का भक्त आयेगा। हम उनकी सेवा करेंगे तो वह भगवान् की ही सेवा होगी, किन्तु इस समय इस गाँव में आने के बाद तो केवल दिखावा ही रह गया था।

भोजन तो करवाते थे, स्वागत भी करते थे, किन्तु केवल देखा देखी। बिना भाव के ही सेवा कर रहे थे। जब प्रेम भाव घट गया, तो धीरे धीरे अतिथि- मेहमान भी घटते गये। ऐसा होने पर भी उन्हें किसी प्रकार की तड़पन नहीं हुई कि क्या बात है? आजकल सुभ्यागत आते क्यों नहीं? धीरे-धीरे प्रेम भाव घट गया तो अतिथि भी आने बंद हो गये। जब अतिथि नहीं सेवा नहीं तो अन्न भी नहीं। एक दिन वह दशा भी आ गयी, घर में दाना भी नहीं बचा। खेती तो करते थे, किन्तु खेती सामने न आकर पीठ दिखा जाती। जितना बीज बोते थे, उतना ही पूरा नहीं हो पाता था। ऐसी विपत्ति की दशा में दम्पति ने फिर से विचार किया कि क्या किया जावे? इस गाँव में जब से आकर निवास किया है, तभी से अन्न, धन सभी कुछ समाप्त हो गया है। यहाँ रह कर अब करना भी क्या है? ऐसा विचार कर के कुदसूं से भी चल पड़े। ऊदो अतली ने कूदसूं से आकर खीचियासर गाँव में निवास किया। जिस दिन से खींचियासर में निवास किया था, उस दिन से तो और अधिक भूख आ गयी। अन्न की बुवाई करते, किन्तु कुछ भी उपज नहीं हो रही थी। एक तो अन्न धन का अभाव, दूसरा शरीर में वृद्धावस्था झलकने लगी थी। पहले तो जब धन, युवा अवस्था से सम्पन्न थे, तब तो सभी प्रेम से मिलते थे, किन्तु अब तो सभी छोड़ कर चले गए। कोई बात ही नहीं करता था। सत्य है कि जिसको अपना कहते हैं, वे भी अन्न धन हीन व्यक्ति से परहेज करते हैं। उनसे बात करना भी पसंद नहीं करते। सभी धन के ही साथी हैं। अन्न की कमी से दोनों दुःखी हो गए। कोई भूला-भटका साधु भक्त आ भी जाये वो भी बिना अन्न धन के सेवा भी कहाँ से करें? ऐसा क्यों हुआ? बात कुछ भी समझ में नहीं आ रही थी।

ऊदो अतली प्रार्थना करने लगे-हे कर्ता! अब हम क्या करें? हमारे साथ ऐसा क्यों हुआ? अब तो आप ही हमारे रक्षक हो। प्रार्थना की भाव दशा में ऊदो अतली सम्भराथल पर श्रीदेवजी के निकट पहुँचे और हाथ जोड़ कर कहने लगे-हे देव! हमने कौन सी भूल की है? जिससे हमें दण्डित किया जा रहा है? हम पंडवाले बसते थे, तब तक तो सभी कुछ ठीक था। वहाँ से हम लोग सेवा भावना से हिंगुणिये आए थे वहाँ

पर भी अन्न-धन की कमी नहीं आयी। किन्तु जब से कुदसूं एवं खींचियासर आकर बसे हैं, तभी से घाटा दिनोंदिन बढता ही गया।

ऊदोजी कहने लगे- मैंने तो कभी भी देने में संकोच नहीं किया। यदि अतली ने नारी स्वभाव की वजह से कुछ कमी की है, तो आप ही जानो। अतली कहने लगी- हे देव! हमने तो जब तक घर में अन्न धन था, तब तक देने में आलस नहीं किया। जब घर में कुछ नहीं होगा, तब मैं कहाँ से दूँगी। बाकी तो आप स्वयं अन्तर्यामी हैं, आप ही हमारी भूल को जानते हैं।

अतली कहने लगी- हे देव! इस समय तो अन्न का अभाव है। यह टोटा आप मिटा दो तो हम कुछ करने में समर्थ हो सकते हैं। भूखों को ज्ञान, ध्यान की बात कुछ भी समझ में नहीं आती। केवल भोजन ही याद आता है। सुभ्यागत सेवा तो बहुत ही दूर की बात है।

श्री देवजी ने कहा-आप लोग पारवे गाँव जाकर बसो। वहाँ पर खेती करो। अन्न की कमी नहीं रहेगी। प्रेम से खेती करोगे, तो बहुत ही निपजेगा। जाम्भोजी की बात स्वीकार करके ऊदो पारवे गाँव जाकर बस गए। मन में अन्न की आशा अधिक ही थी।

अतली कहने लगी-अब तो सद्‌गुरु जाम्भोजी की कृपा हो गयी है जाओ खेती करो अन्न बहुत होगा, पहले की तरह अन्न का टोटा नहीं रहेगा। ऊदो अतली ने पारवे आकर खेती करी। खेती लहलहा उठी, मोठ, बाजरी, तिल आदि अत्यधिक हुए अन्न का टोटा मिट गया। घर में गायें दूध देने वाली बढ गयी। अन्न धन घी दूध दही आदि के भण्डार भर गये। अन्न से सभी कोठे भर गये थे। सभी कुछ प्राप्त हो गया था। जैसा चाहते थे वैसा ही हुआ।

ऊदो अतली मन में सोच विचार करते। सद्‌गुरु की कृपा से अन्न धन से घर भर गया। रखने को भी जगह नहीं है। किन्तु इस धन से करें भी क्या? कोई सुभ्यागत तो घर में आता ही नहीं है। किसको जिमायें? कहाँ खर्च करें? रात दिन सुभ्यागत आने की प्रतिक्षा बनी रहती थी, किन्तु कभी कोई आया ही नहीं। अपने से रहमान स्वयं ही रूठ गए हैं।

अतली कहने लगी- अपन दोनों ही सद्‌गुरु के पास सम्भराथल पर चलते हैं। उन्हीं से क्षमा माँगते हैं। वही कृपा करेंगे, तो ही हमारा धन सुपात्र के लिए खर्च होगा। ऐसा विचार करके सम्भराथल पर दम्पति पहुंचे। दोनों प्रीतम जी के पास आये। चरणों में अरदास करते हुए कहने लगे-हे देव! आपने दया की थी, तब हमें धन की प्राप्ति हुई है। किन्तु कोई सुभ्यागत तो आया ही नहीं। हम धन से क्या करें? श्री देवजी ने कहा-हे उधव! मेरी बात सुनो। संसार में निर्धन को धन ही अच्छा लगता है। जब तुम निर्धन थे तो धन ही तुमने माँगा था। वह तुम्हें मिल ही गया। सुभ्यागत तुमने कहाँ माँगे थे। बिना माँगे कुछ कैसे मिलेगा? जब से तुम्हारा सेवा भाव घटा था, तभी से तुम्हारा धन घटता गया। अब तुमने धन माँगा था तो धन मिल गया और यदि तुम्हें सेवा का भाव अब जग गया है, तो सेवा का अवसर दिया जायेगा। श्री देवजी के कहने पर अतली धन खर्चने के लिए तैयार थी। श्री देवजती ने कहा-गंगा पार से बिश्नोइयों की जमात यहाँ आयी हुई है। ये सभी सुपात्र हैं। इन्हें तुम निमंत्रण देकर ले जाओ। इनकी सेवा में अपने धन का सदुपयोग करो। ऊदो अतली ने बिश्नोइयों की जमात को निमंत्रण दिया और श्री देवजी से भी उनके साथ ही चलने का आग्रह किया।

किन्तु आगे केवल जमात ही पारवे पहुंच गयी थी।

ऊदो अतली ने मूँग, मोठ, बाजरी, घी, दूध, दही आदि का भोजन तैयार किया। बड़े ही प्रेम से जमाती के लोगों को सुपात्र मान कर भोजन दिया। जाम्भोजी के द्वारा भेजे गए भक्तों को जाम्भोजी का ही स्वरूप मान कर ऊदो अतली सेवा में तल्लीन हो गये। जमात भोजन करती, अखंड घृत धारा चलती। जब तक ना नहीं करते, तब तक घृत की धारा बंद नहीं होती। धन खर्च करने में अतली को खुशी होती। सुपात्र साधु जन भोजन करते। ऊदो स्वयं अपने हाथ से पंखा करते। अतली घी स्वयं अपने हाथ से देती थी।

''अतली के होती आखड़ी, नैकारे विना न रह खड़ी'' धन खर्च करते समय अतली का हृदय धड़कता नहीं था। क्योंकि अतली ने यह निश्चय कर लिया था कि मेरा कुछ भी नहीं है। जो कुछ है वह परमात्मा का है। उन्हीं का, उनके समर्पण है।

सम्भराथल पर विराजमान श्री देवजी ने देखा कि अतली सेवा में तल्लीन है। वह कहती है कि ''अतली के होती आखड़ी, नैकारे विना न रह खड़ी'' मैं अभी जाकर देखता हूँ कि अतली धन खर्च करने में कितनी दृढ है। जो यह कहती है कि वैसा करती है या नहीं ? अतली का प्रेम-भाव श्री देवजी को खींच रहा था। सम्भराथल पर बैठे नहीं रह सके। और पारवा के लिए श्री देवजी प्रस्थान कर गये।।

जाम्भोजी ने अपना रूप वेश बदल दिया। भिखारी जैसा वेश बना लिया। अपनी काया को पलट कर कुरूप भी हो गये। जैसा वेश वैसा स्वरूप। क्योंकि अतली की परीक्षा करके उसकी महिमा को बढाना था। स्वयं सृष्टि के कर्ता आज ऊदो-अतली के घर पर पधारे थे। कपड़े लाल वर्ण के, वे भी फटे हुए रूप कुरूप दिख रहा था। शरीर जीर्ण अवस्था को प्राप्त था। चलते हुए लड़खड़ा रहे थे। शरीर दुबला-पतला हड्डियाँ दिख रही थीं। हाथ में भिक्षा पात्र लिए हुए जमाती के लोगों ने तथा अतली ने भी देखा नहीं था कि कोई भिक्षुक आ रहा है।

जमात भोजन कर रही थी। कई लोग भोजन करवा रहे थे। अतली घी दे रही थी। ऊदोजी पंखे से हवा कर रहे थे। सभी अपने अपने कार्य में लगे हुए थे। श्री देवजी विचित्र भिक्षुक रूप में आकर जिस बर्तन में भोजन बनाया था, उसी बर्तन का ढक्कन उघाड़ दिया और स्वयं ही मिष्ठान्न लेने लगे। उसी समय ही भोजन करने वाली जमात ने देखा और भीट्यो भीट्यो कहने लगे। यह अछूत लाल कपड़े वाला कहाँ से आ गया। हमारे भोजन को छू दिया। हम भोजन नहीं करेंगे। इस प्रकार से सभी कहने लगे। कुछ लोग अतली को धिक्कारने लगे कि तुमने हम को बुलाया ही क्यों था ? यदि इस प्रकार से भोजन करवाना था तो।

अतली कहने लगी-हे मामा ! आपने ऐसा क्यों किया ? सम्पूर्ण जमात का कार्य बिगाड़ दिया। ये लोग अब आपका छुआ हुआ भोजन नहीं करेंगे। यदि आप को भोजन करना था तो मैं आपको प्रेम से भोजन परोसती। ऐसी अतली एवं जमात की रूखी बातें सुन कर वापिस मुड़ गये। अतली कहने लगी-सभी न्यात जमात नाराज हो गयी तो हो जावे, किन्तु इस पुरुष को तो मैं अपने ही हाथ से भोजन प्रसाद दूँगी, प्रेम से भोजन खिलाउँगी। हे महाराज ! आप नाराज न होइए। अपना पात्र दीजिए। मैं आपको भोजन देती हूँ। मैंने बहुत प्रतीक्षा की, किन्तु कोई आया ही नहीं। आज मैरा सौभाग्य है कि अब आप आये हैं। इस समय आप भूखे न जायें। यदि आप जैसे आये वैसे ही खाली चले गए, तो मेरा दिल टूट जायेगा।

श्री देवजी ने पतरी रख दी कि भोजन दे दो, यही संकेत था। अतली ने लप्सी से पतरी भर दी। और देवजी लेकर चल पड़े कि इतना ही मिलेगा। शायद अतली घी नहीं देगी। अतली ने आवाज लगाई मामा रुक भी तो जाओ। सभी भक्त लोग तो लप्सी घी के साथ जीम रहे हैं। आप बिना घी के कैसे जीमेंगे, यह कैसे हो सकता है ? श्री देवजी ने पतरी वापिस रख दी, अच्छा घी भी दोगी ? तो दे देवो। ''अतली के होती आखड़ी, नैकारे विना न रह खड़ी'' अतली घी की धारा पतरी में छोड़ने लगी। पत्र भी बढ़ता ही गया। घी का बर्तन भी खाली होने लगा। जाम्भोजी ना नहीं कहते कि अब बहुत हो गया बन्द करो। बिना ना किये अतली घी की धारा बन्द नहीं करती।

इस प्रकार से दोनों तरफ से परीक्षा होने लगी। इस परीक्षा में आखिर जीत तो अतली की ही हुई। पत्र भर गया, घी नीचे गिरने लगा था, किन्तु अतली ने धारा बंद नहीं की। तब श्री देवजी ने स्वयं ही ना कह कर घृत धारा बन्द करवायी। अतली ने पहचान लिया कि आज स्वयं त्रिलोकी नाथ हरि ही आ गये हैं। उनके बिना ऐसा होना असंभव है।

श्री देवजी ने कहा- अतली तुमने सेवा धर्म को अपनाया है और इसमें तू सफल हुई है। अब क्या माँगती है। जो कुछ माँगोगी वही मिलेगा। अतली ने कहा- हे दयानिधि देव! मैं आपसे क्या माँगूं, आपकी भक्ति, संत सेवा, जन्मों जन्मों तक चलती रहे। और यदि आप जन्म मरण मिटाना चाहते हैं, तो आप अपने स्वरूप में ही विलीन कर लीजिए। नर कुछ अन्य ही चिंतन करता है, किन्तु भाग्य देवता कुछ और ही कर देते हैं। हमारे करने से नहीं होगा, वह आपके ही आधीन है।

अतली सतगुरु सूं कहै, रोमावली को भार।
सो वो कहो कद उतरै, तुम ही कहो किरतार।।

अतली ने सद्‌गुरु से पूछा-हे देव! इस शरीर पर जितनी रोमावली हैं अर्थात् रोएँ हैं। उतने ही जन्मों के पाप भी साथ लगे हुए हैं। यदि ऐसा है तो यह बतलाओ कि वह पार कैसे उतरेगा। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

शब्द-119

ओ३म् विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी, पैंके लाख उपाजूं।
रतन काया बैकुंठे बासो, तेरा जरा मरण भय भाजूं।

हे अतली! तुम ठीक कहती हो किन्तु विष्णु विष्णु ऐसा जप करने से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जायेंगे। जिस प्रकार से एक-एक पाप जुड़ते-जुड़ते पापों का ढेर हो जाता है, उसी प्रकार से एक-एक नाम जपते हुए नामों का ढेर हो जाएगा। तब उन पापों को जला कर भष्म कर डालेगा। जिस प्रकार से एक एक पैसा जुड़ते करोड़ों जुड़ जाते हैं। जिस प्रकार से लकड़ी घास के ढेर को अग्नि की चिनगारी भी जला डालती है, उसी प्रकार से ज्ञान रूपी अग्नि तुम्हारे पापों को जला कर भष्म कर देगी। तुम्हारा यह रत्न सदृश शरीर नाम जप के प्रभाव से बैकुण्ठ को वास करेगा। तुम्हारा बार-बार जन्म लेना और मरना सदा के लिए मिट जायेगा। केवल दो ही बड़े भय हैं, एक मृत्यु का दूसरा बुढापे का, ये दोनों ही मिट जायेंगे।

भक्त रतने का गुरु शरण में आना

हे शिष्य ! अब मैं तुम्हे एक कथा जो गंगा के समान पवित्र करने वाली है, वह सुनाता हूँ। गाँव जांगलू में रतना राहड़ गुरु का भक्त बिश्नोई रहता था। उसने धर्म की बाड़ लगा रखी थी। साधु संतों की सेवा करता था। संतों को भोजन करवा कर के स्वयं भोजन करता था। नित्य नियम से जीवन पालन करने वाला रतना राहड़ था। रतना भक्त का विवाह बांवरलै गाँव में हुआ था। विवाह के पश्चात् दहेज देने के लिए रतने को बुलाया था। अच्छे तेज चलने वाले ऊँट पर पीलाण (काठी) मांड कर तैयार हुआ था। पीतल का बना हुआ सुंदर पिलाण, रेशम के घासिया शोभायमान हो रहे थे। ऊँट के पैरों में घुँघरू बाँधे गये थे।

स्वयं रतना श्वसुराल जा रहा था, इसीलिए अंगरखा पहना, कानों में कुंडल पहने। कमर में पेटी बाँध करके, आवश्यक शस्त्र लेकर ब्रह्ममुहूर्त में ही घर से रवाना होते हुए, प्रथम श्री देव जाम्भोजी को स्मरण किया और पश्चात् माता-पिता को प्रणाम किया। ऊँट को बिठाकर झटिति सवार होकर बांवरलै गाँव के मार्ग को पकड़ लिया।

एक कोश ही गाँव से दूर गया था कि उसी मार्ग से पैदल चलते हुए एक संत स्वाभाविक रूप से मिल गए। रतना संतों का भक्त था। इसीलिए ऊँट को बिठा दिया नीचे उतरा। संत चरणों में प्रणाम करते हुए रतना कहने लगा-

हे प्रभु ! आओ इस ऊँट पर चढो। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए हैं। आप पैदल चल रहे हैं, थक गए होंगे। इसीलिए अपना हवन करने का घृत आदि सामान ऊँट के अगले आसन पर टाँग दीजिए और आप आगे बैठ जाइए। पीछे मैं बैठ जाऊँगा। संत कहने लगा-मैं तो गुड़ै गाँव जा रहा हूँ और तू अपने श्वसुराल जा रहा है। मैं तो अपनी इच्छा से धीरे-धीरे चलते हुए आठ-दस दिनों में आऊँगा। मेरे पास हवन आदि करने का सामान है। मैं आ जाऊँगा, तुम चलो। तुम्हें तो आज ही पहुँचना होगा। आगे तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। मेरी प्रतीक्षा करने वाला कोई नहीं है। रतना कहने लगा-हे गुरु देव ! मैं आप को आज ही पहुँचा दूँगा, गुड़ा गाँव मेरे श्वसुराल के पास ही है मेरे साथ चलो। वहाँ पर आपका तथा मेरा स्वागत होगा। खीर, हलवा आदि मिष्ठान्न भोजन होगा। रास्ते में आपको ऐसा भोजन कौन जिमाएगा ? तथा गुड़े गाँव में भी ऐसा भोजन कहाँ मिलेगा ? संत की सेवा करके मैं तथा मेरा परिवार आनंदित ही होगा। जब तक आप मेरे साथ चलने को तैयार नहीं होंगे, तब तक मैं भी यहाँ से एक कदम आगे नहीं बढ़ूँगा। अब आप देरी न करें।

उस साधु ने भी भक्त का भाव देखा और हिम्मत कर के रतने के साथ ऊँट के अगले आसन पर अपना झोला झंडा टाँग कर चढ गए। रतने ने बड़े ही प्रेम से साधु को ऊँट पर चढा लिया। वह स्वाभाविक प्रेम ही था। न तो अभिमान ही था और न ही मान बड़ाई। बड़े बेग से ऊँट चला और यथा समय बांवरलै गाँव की सीमा में पहुँच गया।

आगे रतने के श्वसुराल वाले प्रतीक्षा कर रहे थे। ऊँचे चढकर उत्तर दिशा की तरफ देख रहे थे। दूर से आते हुए एक ऊँट और दो उस पर सवार दिखाई दिए। एक के सिर पर पगड़ी तथा दूसरे के सिर पर टोपी थी। गाँव में प्रवेश करते हुए लोगों ने देखा, तो आश्चर्य हुआ कि पाहुणे के साथ साधु आया है। यह तो विचित्र

बात थी। ऐसा तो कहीं देखा नहीं था। प्रथम बार ही गाँव के लोग देख कर चर्चा कर रहे थे। रतने की सासू ने जब यह बात सुनी कि दामाद के साथ साधु आया है। ऐसा सुनकर बहुत ही दुःखी हुई। क्योंकि पाहुणे के साथ तो उनके भाई-बंधु आने चाहिए थे। यह साधु को साथ लेकर आया है, तो पार पड़ेगी नहीं। कभी न कभी यह अवश्य ही साधु हो जायेगा। संगति का फल पायेगा।

ऊँट से नीचे उतर कर, जब गाँव में प्रवेश किया था, उस साधु ने गाँव के लोगों की भावना देख ली थी। रतना अपने श्वसुराल के घर में प्रवेश करने लगा था, तब साधु रतने से अलग होकर दूसरे घर की तरफ जाने लगा। रतना कहने लगा- हे गुरु जी! आप मेरे साथ आये थे। अब मेरा साथ छोड़ कर कहाँ जा रहे हैं? यह तो अच्छी बात नहीं होगी कि साथ में आये, अब अलग जाये।

रतने के साले ने कहा-जीजाजी ठीक ही कह रहे हैं। आप अलग नहीं जा सकते, साथ ही चलें। साधु ने प्रेम भाव देखा तो रतने के साथ ही घर में पहुँच गए। साधु तथा रतने के लिए अलग-अलग आसन बिछा दिए। संध्या बेला में दोनों गुरु शिष्य ने संध्यादिक नियमों का निर्वाह किया। कुछ समय तक विष्णु का जप करते हुए अपने-अपने आसन पर विराजमान हुए बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद आज जंवाई देवता जी आये हैं। आज जंवाई देवता के लिए विशेष भोजन बनाया गया था। खीर, हलवा, पूड़ी अनेकों प्रकार की सब्जियाँ आदि। भोजन का समय होने पर रतने के लिए भोजन का बुलावा आया तब रतनो कहने लगा चलो गुरु जी भोजन करने के लिये।

संत ने कहा-तुम्हीं जाकर भोजन कर आओ। मैं तो बाद में भोजन कर लूँगा। रतना कहने लगा, यह कैसे हो सकता है? आप हमारे साथ आये, भोजन अलग-अलग कैसे करेंगे। पहले आप भोजन करो पश्चात् मैं करूँगा। आप हमारे अतिथि हैं। मेरा तो यह घर है।

रतने का साला कहने लगा-विवाद बंद करो। साथ ही चलो। साधु रतने के साथ भोजन करने के लिए पहुँच गया। रतने की सासू ने देखा कि साधु तो भोजन हेतु साथ ही आ गया है। यह भी तो खीर हलवा जीमेगा। किन्तु नहीं, इसे तो सबक सिखाना चाहिए। ताकि हमारे दामाद का साथ छोड़ कर चला जाये।

सासू ने चालाकी की और भोजन घर में मंद-मंद जलता हुआ दीपक रख दिया। रतना तथा उसके दो साले साथ में भोजन करने बैठ गए। एक तरफ साधु अकेला भोजन करने बैठ गया। एक थाली में खीर आयी रतने के लिए तथा दूसरी थाली में साधु के लिए ठण्डी खट्टी बासी राबड़ी एवं ज्वार की ठण्डी रोटी। मंद प्रकाश में पता भी क्या चले? सफेद ही राबड़ी और सफेद ही खीर थी। दोनों भोजन करके बाहर आकर बैठ गए।

वार्तालाप करने लगे। भोजन की प्रशंसा करने लगे। स्वादिष्ट भोजन की चर्चा करने लगे। रतने ने कहा- गुरु जी आप तो आते ही नहीं थे। यदि न आते तो ऐसा अमृत भोजन आप कैसे प्राप्त करते? साधु ने कहा- भाई! ऐसा भोजन तो मुझे रोज ही प्राप्त होता है। रतना कहने लगा- गुरु जी झूठ मत बोलो। ऐसा अमृत भोजन आपको सदा ही कहाँ से प्राप्त होता है? यह तो कभी कोई खास मेहमान आता है, तभी प्राप्त होता है।

साधु ने एक टुकड़ा जो गौ ग्रास के लिए साथ में लाये थे, वह दिखाते हुए कहा-यह देखो रोटी का टुकड़ा। दो रोटी ज्वार की, वह भी सुबह की बची हुई बासी। और आधा सेर राबड़ी, वह भी बासी। मैंने प्राप्त

की है। ऐसा भोजन तो हम रोज ही खाते हैं, इसमें क्या आश्चर्य है ? रतने ने रोटी का टुकड़ा देखा और कहने लगा- साधु सत्य ही कहते हैं। झूठ नहीं।

रतने ने उसी समय ही ऊँट पर पिलाण माँड कर कहने लगा-मैं अब इस घर का एक ग्रास भी नहीं लूँगा। साधु तो उठकर आगे चला गया। रतना बहुत दु:खी मन से ऊँट खींचकर के रवाना हो गया। और अपनी स्त्री से कहने लगा- अब हमारा इस घर से सम्बन्ध टूट गया है। फिर मैं कभी भी लौट कर के नहीं आऊँगा। यदि तुम्हें मेरे साथ चलना है, तो अभी चल। और यदि अपने माता-पिता के पास रहना है, तो यहीं रहे। आगे ऊँट को खींचकर रतना चल पड़ा पीछे रतने की स्त्री भी चल पड़ी।

श्वसुर-साले-सास ने बहुत प्रकार से समझाया, रोकने की कोशिश करते रहे, किन्तु रतने ने किसी की एक भी नहीं सुनी। पीछे से कहने लगे-आज यह स्वामी-मोडा के साथ उनके द्वारा भ्रमित किया हुआ जा रहा है। पीछे बहुत ही पछतायेगा। हम लोग अनेक प्रकार का दहेज देते। यह लेकर जाता तो लोग सराहना करते। किन्तु इसके भाग्य में लिखा हुआ ही नहीं है। यह कैसे ले जायेगा ? गाँव के लोग कहने लगे- यह तो बड़ा भारी क्रोधी है। कुछ लोग कहने लगे-यह साधु को साथ ले आया। इसने सारा कार्य बिगाड़ दिया। सम्पूर्ण गाँव के लोगों ने रतने को रोक कर निहोरा मिन्नतें की, किन्तु रतने ने एक बात भी नहीं मानी।

रतना कहने लगा- आप लोगों ने संत से दुविधा रखी है। संत को छोड़ कर यदि मैं आपकी सेवा करूँ, तो वैसा ही होगा, मानो कोई काम धेनु को छोड़कर खरी (गधी) की सेवा करना है। वह साधु तो आ ही नहीं रहा था। मैं उसको बुला कर लाया था। मैंने ही उनका अपमान करवाया है। मैं ही पाप का भागी बना हूँ। अब तो निश्चित ही नरक में पड़ूँगा। यदि मुझे जाम्भोजी बचाये, तभी बच सकता हूँ। रतने ने गाँव के लोगों की बात का आदर नहीं किया।

गाँव के लोग कहने लगे-आज यह दो हजार का दायजा छोड़कर जा रहा है। घर में आयी हुई लक्ष्मी को ठोकर मार रहा है। इसको अपनी बेटी देकर भी हमने बड़ी भूल की है। हमारी बेटी तो किसी अन्य को भी दी जा सकती थी, किन्तु ऐसे क्रोधी से हमारा संयोग हो गया। साधु का अनादर रतने को अच्छा नहीं लगा तथा इस प्रकार से रतना अपनी पत्नी सहित गाँव से बाहर निकल आया। रात्रि में ही रतना अपनी पत्नी सहित ऊँट पर चढकर अपने गाँव जांगलू की तरफ चल पड़े। फिर वापस मुड़कर देखा तक नहीं।

सवेरा होते-होते रतना लबैरे गाँव में पहुँचा। वहाँ पर स्नान संध्या करके आगे के लिए प्रस्थान किया था। रतना अपनी श्री सहित गाँव से बाहर निकला था कि एक अत्याचार देखा और रतने ने ऊँट रोक दिया। रतने ने देखा कि चार आदमियों ने एक जीवित हिरण को पकड़ कर के चारपाई पर बाँधा था। वे लोग रतने को सामने मिल गये। रतने ने पूछा-इस चारपाई पर क्या ले जा रहे है ? उन्होंने कहा-यहाँ हमारे गाँव के ठाकुर अनड़सिंघ ने जीवित हिरण पकड़ कर के मंगवाया है। हम लोगों ने हरिण को फांसी में फांस कर जकड़ लिया है। हम लोग राजा के अनुचर भील हैं। हम तो ठाकुर साहब को भेंट देंगे।

रतने ने पूछा-ठाकुर साहब इसका क्या करेंगे ? उन शिकारी लोगों ने यह नहीं पहचाना कि यह बिश्नोई है। हमारे कार्य में विघ्न करेगा। स्वभाविक रूप से भीलों ने बतलाया कि ठाकुर साहब इस मृग को देवी के चढावेंगे। इसकी हत्या की जायेगी। ऐसा कहते हुए उस मृग को उठा कर के वापिस चल पड़े।

रतना कहने लगा– यदि आप लोग मृग को छोड़ दो तो अच्छी बात होगी और यदि आप लोग नहीं छोड़ते हैं तो मैं तुम्हारे ठाकुर से छुड़ाऊँगा। ऐसा कहते हुए रतने ने अपनी घरवाली के सहित ठाकुर के महल में प्रवेश किया। गाँव के लोगों ने आश्चर्य से देखा कि आज कुछ अनहोनी होगी। महल में आये हुए अजनबी को देखकर ठाकुर ने त्यौरी चढा करके क्रोध भरे वचन बोलते हुए कहने लगा–

कहो स्नानी कैसे आये ? क्या चाहते हो ? तब रतना हाथ जोड़ कर कहने लगा– हे ठाकुर ! तुम्हारे अनुचर वन से एक मृग ले आये हैं। उसे छुड़ाने आया हूँ। यह मृग आप मुझे दीजिए यह माँगने आया हूँ। ठाकुर कहने लगा– यहाँ कोई बिश्नोइयों के गाँव की कांकड़–सीमा नहीं है तुम इस मृग में क्या माँगते हो ? तुम्हारा कोई हक नहीं है। तुम अपनी सीमा की वस्तु की माँग कर सकते हो। यह तुम्हारी माँग पूरी नहीं होगी।

उस समय ठाकुर के पास एक चारण था, वह कहने लगा– यदि तुम इस हरिण को लेना चाहते हो तो तुम्हारे शरीर पर स्वर्ण आभूषण, हाथों में कड़े, कानों में गोखरू और यह ऊँट आदि दे दो और इस मृग को ले जाओ। रतने ने यह बात सुनी और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा– जाम्भोजी हमारे पर कृपा कर रहे हैं। ऐसा कहते हुए अपने शरीर के स्वर्ण आभूषण तथा ऊँट को ठाकुर को देकर हरिण को लेकर गाँव से बाहर आये और हरिण को तो वन में छोड़ दिया।

बिना ऊँट के पैदल ही दोनों जाते हुए आपस में बातें करते हुए जा रहे थे कि यह तो अच्छा ही हुआ। जो कुछ भगवान् करते हैं, वह ठीक ही करते हैं, यह ठाकुर भी भला आदमी है। इसने इतना थोड़ा सा धन लेकर ही इस जीवित मृग को छोड़ दिया। आज यदि यह नहीं छोड़ता तो प्राण भी देने पड़ते। हम जिंदा रहेंगे, तो धन तो वापिस आ ही जायेगा। हे देवी ! तू चिंता नहीं करना। हमने आज धर्म की रक्षा की है। '' धर्मो रक्षति रक्षित:'' हम धर्म की रक्षा करेंगे, तो धर्म हमारी रक्षा करेगा। दोनों दम्पति यही बातें करते हुए जा रहे थे। इसी बात को ठाकुर की माता ने सुना और ठाकुर के पास जाकर कहने लगी–

रे ठाकुर ! तू बहुत ही पोचा (घटिया) आदमी है। मेरा बेटा होकर थोड़े से धन के लालच में आकर तुमने अपना धर्म बेच दिया। एक तो वे दोनों हैं, जिन्होनें धन देकर धर्म की रक्षा की है। एक तू है जो धन के लिए हाथ फैला दिया। तेरे जीवन को धिक्कार है। वे दोनों मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं। उनकी तो तुझे पूजा करनी चाहिए थी। यदि मेरा कहना मानता है तो उनको वापिस बुला कर के उनका धन वापिस लौटा दो। उन्हें आदर सहित विदाई दो। अपनी माता की बात सुन कर ठाकुर ने अपना सेवक पीछे भेजा और रतने को वापस बुलाया। पाँचो कपड़े, अपनी तरफ से सिर से लेकर पाँव तक पहनाये, उनका ऊँट व धन वापिस लौटाया। रतने की पत्नी को भी अपनी बेटी मान कर उसे स्वर्णाभूषण प्रदान किए। और गा बजा कर के रतने को बिदाई दी। उसी दिन से ठाकुर ने जीव हत्या करनी और करवानी भी छोड़ दी। उनतीस नियमों का पालन करते हुए बिश्नोई सदृश आचरण करने लगा।

रतना वहाँ से चल कर अपने गाँव जांगलू पहुँचा। रतने ने आकर अपनी पत्नी सहित अपने माता-पिता को प्रणाम किया। अपने बेटे–बहू को शुभ आशीष प्रदान करते हुए देखा कि कुछ विशेष कपड़े पहने हुए है। किंतु दो हजार का दायजा न ही है और नहीं कोई साथ में पहुँचाने भी आया है। ऐसा देखकर समझ गए कि यह अपने श्वसुराल से तोड़ कर आया है।

रतना कहने लगा- हे पिताजी! संसार से तो अवश्य ही सम्बन्ध टूटा है, किन्तु त्रिलोकी नाथ से सम्बन्ध जुड़ गया है। संसार से सम्बन्ध जोड़ने में दु:ख है, किन्तु परमात्मा से जोड़ने में तो सुख ही सुख है। रतने के पिता ठकुरे ने कहा- यह ऊँट, आभूषण, गहना आदि तो मुझे दे दे और जिससे तुमने जोड़ी है, उसी के पास चले जाओ। तुम्हारे जैसे लोगों के लिए मेरे घर में जगह नहीं है। इस प्रकार से कहते हुए रतने को घर से बाहर निकाल दिया।

हे वील्ह! ऐसा कहा जाता है कि रतने को ऐसा खेत दे दिया था कि जिसकी बाजरी तोड़ ली थी। ऐसे घड़े दे दिए थे, जिनमें घी के स्थान में जल भरा हुआ था। यही धन देकर रतने को घर से बाहर निकाल दिया।

रतना जांगलू से अपनी श्री सहित सम्भराथल पर श्री देवजी के पास चला। जाम्भोजी अपने भक्तों सहित सम्भराथल पर विराजमान थे। अपने भक्तों से कहा-आप लोग यहाँ से रतने के सामने जाओ। यहाँ अति निकट ही रतना आ चुका है। मजीरा आदि लेकर जाओ। गाते बजाते हुए सम्मान करते हुए यहाँ पर ले आओ। रतने ने धर्म की रक्षा की है। उसके माता-पिता ने रतने को घर से निकाल दिया है। मैंने उसको अपना लिया है। इस प्रकार से धर्म की रक्षा करने वाला मुझे बहुत ही प्यारा है। रतना धोक धोरे पर आकर सर्व प्रथम सम्भराथल का दर्शन करता है।

जाम्भोजी द्वारा भेजी हुई भक्त मण्डली धोक धोरे पर सामने जाकर साखी, शब्द, ध्वनि का गान करते हुए बड़े ही हर्षोल्लास के सहित रतने को सम्भराथल पर प्रवेश करवाया। जाम्भोजी ने रतने को शुभाशीर्वाद प्रदान किया और कहा- रतना! तुमने धर्म की मर्यादा को बाँधा है। तेरे पिता ने कुछ नहीं दिया तो क्या हुआ, मैं तुझे सभी कुछ देता हूँ। ''तुम्हारे पास जो पानी के घड़े हैं, वह तो घृत के हो जायेंगे। और तोड़ी हुई बाजरी पुन: सिट्टे निकाल देगी।

'' पाणी सूं घृत कुड़ी से कुरड़ा, सो घी ता बाजरियो जीवनै'' तुम दु:ख मत मानना कि धर्म की रक्षा करने वाले इस प्रकार से दु:ख क्यों पाते हैं? तुम्हें दु:खी नहीं होना चाहिए। अब तुम पारवा जाकर बसो। और धर्म की रक्षा करते हुए कुल वंश की अभिवृद्धि करो। तुम्हारे कुल में सभी भक्त ही पैदा होंगे। अन्न, धन, रूप, गुण, लक्ष्मी की कोई कमी नहीं रहेगी।

उस समय रतने ने पूछा- हे देव! धर्म का मर्म क्या है? हमें क्या करना चाहिए? किस एक देवता का सहारा लेना चाहिए? इस जीवन का मूल क्या है? यह बतलाने की कृपा करें। श्री जाम्भोजी ने रतने को लक्ष्य कर के यह महत्वपूर्ण शब्द सुनाया-

शब्द-120

ओ३म् विष्णु विष्णु तू भणरे प्राणी, इस जीवन के हावै।
क्षण क्षण आव घटंती जावै, मरण दिनों दिन आवै।
पालटीयो गढ़ कांय न चेत्यो, घाती रोल भनावै।

गुरु मुख मुरखा चढ़े न पोहण, मनमुख भार उठावै।
ज्यूं ज्यूं लाज दूनी की लाजै, त्यूं त्यूं दाब्यो दाबै।
भलियो होय सो भली बुध आवै, बुरियो बुरी कमावे।

हे रतना! इस जीवन का मूल विष्णु परमात्मा ही है। विष्णु सर्व जीवों का पालन पोषण कर्त्ता सत्त्वगुण सम्पन्न परमात्मा ही है। वह विष्णु ही हमारी आत्मा है। इसीलिए तुम्हें विष्णु का ही जप करना चाहिए। यही धर्म है । यही तुम्हारा मूल है। संसार की अन्य वस्तुएँ तुम्हारे जीवन में कुछ भी सहयोगी नहीं हैं। न ही तुम्हारे साथ जाने वाली हैं। एक विष्णु का नाम प्रेम से लिया हुआ तुम्हारे साथ जायेगा।

यह शरीर तो आयु में बंधा हुआ है। आयु का समय तो क्षण-क्षण करते हुए व्यतीत हो रहा है। मृत्यु प्रतिक्षण नजदीक आ रही है। इस नाशवान शरीर को लेकर अहंकार किस बात का किया जा रहा है? यह शरीर रूपी गढ देखते-देखते ही पलट गया है। पहले कभी बाल्यावस्था थी। फिर युवावस्था आयी थी। और अति शीघ्र ही बुढापा भी आ रहा है। फिर भी सचेत नहीं हुआ। कुछ आगे के लिए भी सामान जुटाना चाहिए था। यह शरीर दिनोदिन जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। काल ने इस पर जबरदस्त प्रभाव जमा दिया है। यह एक एक क्षण कर के बदल रहा है।

गुरु मुखी होकर तो मूर्ख कार्य करता नहीं है, जो सरलता से किया जा सकता है। किन्तु मनमुखी होकर व्यर्थ का ही भार उठा रहा है। दुनिया की लज्जा-शर्म-मर्यादा में ही यदि रह कर अपना जीवन व्यतीत कर दिया, तो अपने दावे से चूक गया। दावा न्याय के लिए गुहार ऐसी करनी चाहिए कि निर्णय हो जाये और इस जीवन की बाजी में जीत जाये।

जो सज्जन प्रकृति का व्यक्ति होगा, वह तो सदा ही भला ही करेगा। और जो दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति होगा, वह सदा दुष्टता ही करेगा।''प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह किं करिष्यति। सभी प्राणी अपनी प्रकृति में ही जीते हैं, निग्रह क्या करेगा? इसलिए प्रकृति को जानना ही ज्ञान है, ज्ञान से ही मुक्ति संभव है।

तुम्हें दूसरे की कमी को देख कर चिंतित नहीं होना चाहिए। पहले अपने को ही देखना चाहिए,फिर बाहर देखना। जो बुरा (पापी) होगा, वह तो चौरासी लाख योनियों में भटकेगा। और जो भला आदमी होगा, वह जन्म-मरण के दु:ख से छूट जायेगा। इसीलिए भले- अच्छे बनने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

ग्यारहवाँ अध्याय

जाम्भोजी का भ्रमण

काबुल में जीव हत्या बंद करवाना

एक सम जाम्भोजी मक मदीन लवेयान की पाल्य उपरे खड़ा रह्या। एक झींवर जाल ले आयो। जाम्भोजी झींवर ने कह्यो-जल में जाल मत रेड़। झींवर जल मां जाल रेड़्यो। एक मछी आइ। जांभजी नफर न कहे। दवा सुणाई। मछी अमर हुई, झींवर कनी यों मछी काजी लिवी। काजी करद चलाव। मछी कट नहीं। तीन्य दिन आतस मां उकलाई। मछी क आंच लागी नहीं। काजी झींवर पकड़ि मंगायो। क्यौं व कुटण यो मछी कहाँ ते लायौ। काजी हकीकत कही, काजी मछी ले पीर क पास्य आया। काजी कह तुम कुण मरद हो। जांभोजी कह यौह माही कहगी मछी कह- विसमलाह हरे रहमान रहीम...........

हे वील्ह! श्री जम्भेश्वर जी ने केवल सम्भराथल पर ही शब्दोपदेश दिया हो, ऐसी बात नहीं है। यत्र-तत्र भ्रमण करके भूले-भटके जीवों को सुपात्र जानकर उन्हें सचेत किया। एक समय श्री देवजी मक्का-मदीना गये थे। वहाँ पर लवेयान तालाब की पाल पर खड़े थे। उसी समय ही एक झींवर मच्छी पकड़ने वाला आया। और जल में जाल डालने लगा जाम्भोजी ने झींवर से कहा- तूं जल में जाल मत डाल किन्तु झींवर ने देवजी की बात सुन कर भी अनसुनी कर दी और जल में जाल डाल दिया।

जाल में एक मच्छी फंस गयी, जांभोजी ने उस मच्छी को अमर होने का वरदान प्रदान किया, जिससे वह अमर हो गयी। उस झींवर को क्या पता ? वह तो रोज की भांति उस मच्छी को जल से निकाल कर ले गया। बाजार में जाकर उस मच्छी को काजी के हाथ बेच दी। काजी ने उसे काटने के लिए करद चलाया किन्तु वह तो बज्र देह वाली हो गयी थी। कटने में आयी नहीं। तब काजी ने उसे तीन दिन तक अग्नि में पकाई, किन्तु वह ज्यों के त्यों बनी रही। आंच लगी भी नहीं थी। काजी ने उस झींवर को पकड़ के बुलाया और पूछा-

रे कुटण! यह मच्छी तू कहाँ से लाया ? काजी के सामने जो हकीकत थी, वह उस झींवर ने बतलाई। काजी उस मच्छली को लेकर श्री देवजी के पास में आया। काजी कहने लगा- तुम कौन मरद हो ? जाम्भोजी ने कहा- मैं कौन हूँ ? यह मैं नहीं कहूँगा। मेरा परिचय तो यह मच्छी ही दे रही है। अधिक क्या बतलाऊं? इस घटना से अब तक मेरा परिचय तुम्हें नहीं मिला तो अब अधिक कहने से भी कोई फायदा नहीं है। ऐसा कहते हुए शब्द बनाया।

यह शब्द अरबी-फारसी भाषा में है। उस काजी को सुनाया था। यह शब्द काजी ने किताब में लिख लिया था। जाम्भोजी का स्वागत किया, और सदा सदा के लिए मछली न मारने का प्रण किया।

नाथोजी कहते हैं हे वील्ह! यह पारसी का शब्द होने से हमारे लोगों के समझ में नहीं आया। इसीलिए कण्ठस्थ भी नहीं हो सका था। काजी की किताब में लिखा हुआ था, उसी रूप में तुम पढ सकते हो। शब्द इस प्रकार से है-

विसमलाह हरे रहमाने रहीम, रोजे ही वाय। सेख जहान मा वामक मदीनै वा जिवाय जिकर करद

अद। नसबुद याय रबी। दसत पोसीद वव पे सेख। अवरदह। या पीर दसतगीर। अजमादर। उपदर पदास्य नेस। दह सूरा कदरव ओजू दमर धाम। नैमें वासद न मे करद अद। सेख पुरजीद की कुदरती। एमन माही सोगंद खुदाय तालाह हक बागोयौ। माही दरसे खान वागुकदः अबलि गुसल करद अदः वाजे अजली वाजः । इदवा सुखानंद मनवा जहाँ जरिः दवा दप गोस तासीर आतस कुदरती नमै करद अद। हर के सेख क एक। समुरी दइ दवा अति रोज बुखानंदः अगर हरे रोजः पुरसद मैने वासदः एक राज पीरान मुरीदानः खुद बुखानंद खवा अबरत वा मुरद वाउ आकोन अजावर कबेः सुद हाम दोजकी मन वासद परहेज बुद विसमलाह हिर रहमाने रहीम खरे खुलायक उआ अफजल अलाह सरि। अवल्य नासरे सइदान महमंद अलाहु सलम। बाजे कुल सलामः अलाह सालहीज अलाह मोमदीनः उसलेह अलाह अबीयपां।

काजी किताब मां लिख्य लीवी। पीर की कदम पोसी कीवी। जीव तणां छोड्या।

उस समय का यह शब्द सुनाया हुआ नाथोजी ने वील्होजी को सुनाया। मृत मछली को जाम्भोजी के कहने से काजी ने वापिस जल में डाल दी। मछली जल में तैरने लगी। जिसकी सांई स्वयं रक्षा करे उसे मारने वाला कौन हो सकता है?

श्री देवजी ने मक्के-मदीने में प्रहलाद पंथी जीवों को सचेत कर के वहाँ से चलकर काबुल गए। वहाँ पर सुखनखाँ रहता था। उसको दर्शन दिया, एक पहाड़ी पर आसन लगाया। वहाँ पर पाँच काबली चले आये हैं और पास में बैठ कर पूछने लगे-कि आप हिन्दू हो या मुसलमान?

श्री देवजी ने कहा- न तो मैं हिन्दू हूँ और न ही मुसलमान। आप लोग क्या चाहते हैं? यह जीवात्मा न तो हिन्दू है, और नहीं मुसलमान। आप लोग क्या चाहते हैं? दोनों पंथों से ऊपर है। काबली कहने लगे- यदि आपको भोजन करने की इच्छा हो तो आपके लिये भोजन ले आये हैं। श्री देवजी ने कहा-मेरी चिंता न करो, आप लोग सुखनखाँ के पास जाओ और उनसे कहना कि हक की कमाई करो, हक का ही खाओ।

वे पांचो सुखनखां के पास गए और पीरजी की बात कह सुनाई- सुखनखाँ उन पाँचो के साथ भोजन लेकर श्री देवजी के पास आया और कपड़े से ढकी हुई थाल आगे रखते हुए इस प्रकार से कहने लगा- हे पीरजी! यह आपके लिए भोजन लाये हैं, इससे पेट भरो, ऐसा कहते हुए सुखनखाँ परिक्रमा करते हुए श्री देवजी के सामने बैठ गया।

श्री जाम्भोजी ने कहा-मुझे भोजन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे भूख-प्यास लगती नहीं है। भूख प्यास तो उसे ही सताती है, जिनका शरीर पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। यह भोजन तुम वापिस अपने ही घर ले जाओ और एकान्त में बैठ कर खा लेना। सुखनखाँ कुछ कहने लगा-तभी उसकी थाली में तीतर का माँस था वही भोजन लेकर आया था। वे तीतर तो थाली में से जीवित होकर उड़ गये।

इस प्रकार से पीर में शक्ति देखी और सुखनखाँ चरणों में गिर पड़ा प्रार्थना करने लगा-हे पीर जी! मुझे क्षमा कर दो। मैं अब तक अज्ञान अंधकार में सोया हुआ था। अब मेरी आँखें खुल गयी। मेरे गुन्हे बकस दो। अपने जन को संसार सागर से पार उतार दो।

श्री देवजी ने उनतीस नियम बतलाते हुए कहा-फिर कभी जीव हत्या नहीं करना। नियमों का पालन करना। तूँ प्रह्लाद पँथी जीव है। यह मैं जानता हूँ, इसीलिए मैं मुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हें जगाया है, फिर सो मत जाना ।

नाथोजी कहते है- हे वील्ह! इस प्रकार से एक सौ पचपन गाँव सुखनखाँ के नाम से थे। वे सभी

जीव हत्या छोड़ कर बिश्नोई पंथ के पथिक बने। इस प्रकार से जहाँ-तहाँ भी बिछुडे हुए जीव थे, उनको वापिस सत्पंथ के पथिक बनाया।

श्री जाम्भोजी भ्रमण करते हुए काबुल से मुलतान चले आये वहाँ सूचका पहाड़ पर आसन लगा कर बैठे थे। तेरह खान और बारह काजी दर्शनार्थ आये। जो आये थे उनका पाप ताप मिट गया था। उन्होनें देखा था कि कोई फकीर पहाड़ पर बैठा ध्यान लगा रहा है। एक काजी कपड़े में हड्डी को लपेट कर के श्री देवजी के पास ले आया था। वह शक्ति- सिद्धि देखना चाहता था। काजी ने वह कपड़े में लपेटी हुई हड्डी दिखाते हुए कहा कि हे पीर जी! इस कपड़े में लपेटा हुआ क्या है आप सत्य बतलाइए?

जाम्बेश्वरजी ने हंस करके कहा-इसमें तो सोना है। काजी ने तुरंत कपड़ा हटाया और देखा कि उसमें तो सचमुच सोना ही हो गया। लपेटी तो हड्डी थी, किन्तु यह तो सोना बन गई। काजी आश्चर्य चकित होकर सोने की लकड़ी देख रहा था। श्री देवजी ने उन पच्चीस जनों की पहिचान की और उन्हें उपदेश देते हुए कहा-

हे प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीवों! आगे से कभी जीव हत्या नहीं करना। यह तुम्हारा कार्य नहीं है। यह सोना अपने घर ले जाओ। और हक की कमाई करो। उनतीस नियमों का पालन करते हुए सत्पंथ के अनुयायी बनकर वापिस अपने गुरु प्रह्लाद से जा मिलोगे।

हे वील्ह! इस प्रकार से यह बिश्नोई पंथ चला था और आगे अनेक प्रकार से विस्तार को प्राप्त हुआ था। उन सभी ने पृथक् पृथक् प्रणाम किया और सदा सदा के लिए अहिंसक होकर अपने जीवन को व्यतीत किया।

वहाँ पर मुलतान में श्री देवजी सूचका पहाड़ पर विराजमान थे। उस समय उनके पास में सरफअली और हसन अली दोनों आये और कहने लगे- यदि आप स्वयं खुदाताला ईश्वर हैं, तो कुछ ईश्वरीय चरित्र दिखाना होगा। हम लोग तभी मानेंगे। अन्यथा हम पाखण्ड को नहीं मानते हैं। आप हमें चार बात का परचा दीजिए कि जमीन में गढा हुआ धन कहाँ है, यह बतलाइए? दूसरा परचा यह दीजिए कि मृतक पशु को पुन: जीवित कर दीजिए। तीसरा परचा यह दीजिए कि हम आपके शरीर पर चोट मारेंगे, तो भी आपके शरीर में घाव न हो पाये। चौथा परचा यह होना चाहिए कि आप खाना पीना न करें। यदि ये चार परचे पूर्ण हो जायें तो आप ईश्वरीय अवतार है अन्यथा आप कोई साधारण फकीर ही हैं।

जम्भेश्वरजी कहने लगे-आप लोग इस पहाड़ी के उत्तर की तरफउस पीपल को देख रहे हो। उसके नीचे चार टोकणा जमीन में दबे हुए ये चारों बर्तन अनहरद ने रखे थे। सरफअली पूर्व जन्म में अनहारद ही था। उन टोकणों पर नाम लिखा हुआ है। हे सरफअली! पूर्व जन्म का तुम्हारा ही गाढा हुआ धन वह तेरा ही है उसे ले ले। तुम्हें इस धन की वजह से पूर्व जन्म की याद हो आयेगी। अनेकों जन्मों में भटका हुआ मनुष्य वापिस अपने स्थान में धर्म में कभी न कभी तो आही जायेगा।

हे हसन अली! तुम्हारी कोख में यह हींग का थैला है। इसे तुम धरती पर रखो और फिर ईश्वरीय करामात देखो। हसन अली ने श्री देवजी के कथनानुसार ज्योंहि थैला नीचे रखा, त्योंहि उस थैले में से एक मृग निकल कर वन में छलांग लगाता हुआ भाग गया। हे हसन! तुम्हारे हाथ में तलवार है। इसी से ही मेरे शरीर पर मार कर देखो। आज्ञा सुन कर हसन अली ने शरीर पर तलवार चलाई, किन्तु कहीं भी शरीर में स्पर्श नहीं कर सकी। हवा में खाली ही निकल गयी। जिसके शरीर में तीक्ष्ण तलवार का घाव नहीं लग सका, तो वह शरीर तो दिव्य ही होगा। इन पाँच महाभूतों से तो शरीर की उत्पत्ति नहीं होगी। तब खाना-पीना भी

किस लिये होगा। पाँच तत्त्वों द्वारा निर्मित शरीर की रक्षा हेतु खाना-पीना आवश्यक है। इस प्रकार से चारों परचे पूर्ण हुए। अतिशीघ्र ही काजी और खान श्री देवजी के परिचित हुए। उसी समय श्री देवजी ने उनको शब्द सुनाते हुए उपदेश दिया-शब्द "ओ३म्! सुणरे काजी सुणरे मुला।" दोहा "सरफ हसन परचाविया, गऊ छुड़ाई देव।"

सतगुरु शब्द सुनावियो, तिसी समय को भेव।
हज काबै का हज करां, काबुल सुखनखान।
सेफन अली हसन अली, इह प्रचे मुलतान।
इनकू प्रचा देय के, आये संभ्रस्याम।
जो बाड़े के जीव थे, तिन्हीं तिन्हीं सूं काम।

जाम्भोजी का भ्रमण

पश्चिम देशों का भ्रमण करके श्री देवजी सम्भराथल पर विराजमान हुए। कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् एक दिन एकत्रित जन समूह ने प्रार्थना करते हुए कहा-हे देवजी! आपके शिष्य हमारे गुरु भाई कहाँ-कहाँ निवास करते हैं? आप तो अन्तर्दृष्टि से सभी कुछ जानते हैं किन्तु हम अल्पज्ञ जीव इन आंखो से दर्शन करना चाहते हैं। आप एक बार जीवों पर कृपा करने हेतु प्रस्थान कीजिए, जिससे हमारा भी आपके साथ कल्याण हो सके।

श्री जाम्भेश्वरजी ने भक्तों की इच्छा पूर्ण करने हेतु पूर्व देश गंगा पार जाने का निश्चय किया। सभी भक्त संतों को भी साथ ले चलने का विचार किया। सभी साथ चलने वालों को अपनी-अपनी सवारी साथ लेकर चलने की आज्ञा प्रदान की। समय पर अपने साथ चार हजार सेवकों को साथ में लेकर सम्भराथल से प्रस्थान किया।

नाथोजी कहते हैं कि हे वील्ह! सर्वप्रथम साँवतसर गाँव में जमात सहित निवास किया था। जहाँ पर श्री देवजी ने साथरियों के साथ निवास किया, वहाँ पर साथरी बनी है। इस प्रकार से साँवतसर में साथरी की स्थापना करके वहाँ के निवासियों को कृतार्थ किया। जाम्भोजी अकेले नहीं थे। साथ में हजारों की संख्या में संत भक्त थे। सांवतसर के धारणियां बिश्नोइयों ने श्री देवजी के साथ आये हुए सुभ्यागतों का आदर सत्कार किया और भोजनादि बड़े प्रेम से जिमाया तथा पुण्य के भागी बने। सभी ने अपनी-अपनी श्रद्धानुसार घृत, अन्न, मिष्ठान्न, नारियल आदि श्री चरणों में भेंट चढाया। श्री देवजी हमारे गाँव में पधारे हैं, हमारा अहोभाग्य है। इसी खुशी में रात्रि में जागरण हुआ। साखी शब्द आदि गाये। प्रात: काल स्वयं श्री देवजी ने हवन किया और लोगों को नियम मर्यादा से अवगत करवाया। हवन प्रसाद का सुख प्राप्त कर के ग्रामीण लोग कृतार्थ हुए सभी साथरियों गुरु भाइयों को भोजन करवा कर के अश्रूपूर्ण नेत्रों से विदाई दी। श्री देवजी के साथ आये हुए संत भक्तों ने गाँव के लोगों की अपने गुरु भाइयों की भूरि-भूरि प्रशंसा की और आगे का मार्ग लिया।

दूसरी मंजिल में रोटू गाँव में श्री देवजी अपने साथरियों सहित पहुँचे। वहाँ पर भी पूर्व परिचित ग्राम वासियों ने आगत स्वागत किया। साथरी पर ही श्री देवजी के साथ ही आसन लगाया। पूर्व में नौरंगी का भात

श्री देवजी ने भरा था। रोटू में श्री देवजी ने कुछ समय पहले ही तो खेजड़ियों का बाग लगाया था। गाँव के लोगों को निहाल कर दिया था।

श्री जम्भदेवजी आज रोटू में आ गए हैं। अबकी बार न जाने किसको निहाल करेंगे। ऐसी वार्ता श्रवण कर के आस पास के गाँवों के लोग अपना दु:ख दर्द मिटाने के लिए एकत्रित होने लगे थे। हे वील्ह! केवल रोटू गाँव की ही बात नहीं थी। वहाँ तो रामसर, गुगरियाली, अबाद, दुगोली, भ्रनाऊ, खारी आदि सभी गाँवों के लोग अपनी अपनी भेंट लेकर मिलने के लिए आए थे। रोटू पर तो देवजी का स्नेह सदा ही रहा था। इसीलिए वहाँ पर पाँच दिनों तक ठहरे थे। जो जिसने सत् वरदान माँगा उसकी इच्छा पूर्ण की थी। विशेष रूप से रोटू गाँव के लोगों को आदेश देते हुए कहा– तुम्हारे यहाँ तो त्रेता युग की तुलसी ये खेजड़िया है। आप लोग इनकी रक्षा करना। ये तुम्हारी रक्षा करेगी। यह बाग हरा– भरा रहेगा तो तुम्हारे यहाँ वर्षा की कमी नहीं होगी ये खेजड़ियाँ कहीं से भी वर्षा को खींच कर ले आयेगी और तुम्हारे यहा पर तो वर्षा अवश्य ही करवायेगी। ये तुम्हे शीत, गर्मी से भी बचाएँगी। तुम्हें जीवन का प्राण आधार यहीं से ही मिलेगा।

इन वृक्षों के नीचे–ऊपर निवास करने वाले पशु–पक्षी भी तुम्हारे जीवन के आधार हैं। यदि तुम इन हरे वृक्ष, पशु, पक्षी, जीव–जन्तुओं की रक्षा करोगे, तो तुम्हारी रक्षा स्वत: ही हो जायेगी। एक के विना दूसरे का जीवन असंभव है। इस प्रकार से रोटू गाँव तथा आस पास के लोगों को उपदेश देकर श्री देवजी ने वहाँ से अपने साथरियों सहित प्रस्थान किया।

आगे गंगा पार का देश अपने साथरी भक्तों को दिखाने के लिए रवाना हुए। शाम को भ्रनाऊ में निवास किया। दूसरे दिन दूणपुर आये। वहाँ दूणपुर में वीदो राठौड़ जाम्भोजी से परिचित हो चुका था। लोगों ने कहा– वीदे राठौड़ का विवाद मिटाने वाले श्री देव आज अपनी नगरी में आ गये हैं। हमारा सौभाग्य होगा कि हम भी दर्शन– स्पर्श करके उनको अपना अहंकार समर्पित कर दें। यह मैं का व्यर्थ का भार उतार दें। मोतिये का पता लगा के आज हमारे प्राणेश्वर अपनी नगरी में आ गये हैं, तो खुशी का ठिकाना ही न रहा। सभी को संतुष्ट करके जमात आगे चल पड़ी।

तीसरा पड़ाव श्री देवजी ने चुरू के निकट सातड़ा गाँव तथा मोलासर के गाँव की सीमा पर घने वन में किया था। उसी पवित्र भूमि को धाम बना कर आगे के लिए प्रस्थान किया था। जहाँ जहाँ पर भी श्री चरणों में भूमिस्पर्श होती थी, वहीं पर ही धाम बन जाता था। क्यों न हो, मरुभूमि का यह सौभाग्य ही था। इस कठोर कंटक प्रदेश में प्रथम बार स्वयं विष्णु ही अवतार लेकर भ्रमण कर रहे थे । इससे पूर्व त्रेता युग में राम रूप में विष्णु ने अयोध्या से चल कर लंका तक की भूमि को तीर्थस्थली बनाया था। द्वापर युग में भी श्री कृष्ण के रूप में विचरण करते हुए विशेष रूप से वृज भूमि को अति पवित्र तीर्थ रूप बना दिया था। सामान्य रूप से वृन्दावन से द्वारिका तक की भूमि श्री कृष्ण के चरणों से पवित्र हुई थी। इस समय कलयुग में श्री देवजी ने बागड़ देश को अयोध्या, वृंदावन, काशी सदृश तीर्थ स्थल बना दिया।

इस समय भी उनके चरणों से सुवासित हुई भूमि पवित्र हो रही है। यहाँ की भूमि का दर्शन करने से ही पापियों के पाप कट जाते हैं। जिस प्रकार गंगा में स्नान करने से पापियों के पाप कट जाते हैं। उसी प्रकार संत महापुरुषों के चरण भी गंगा की धारा सदृश पवित्र करने वाले हैं। वहाँ सातड़ा मौलीसर के निवासियों ने उस भूमि को जाम्भोजी की वणी से नाम से विख्यात की है। उस भूमि को ही देवालय मानकर पूजा करते हैं। और अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं। हे वील्ह! कभी तुम भी जाकर अवश्य ही दर्शन करो। तथा गुप्त रहस्य को लोगों के सामने उजागर करो।

नाथोजी आगे की वार्ता कहने लगे- हे वील्ह! श्री देवजी के चरण तो एक क्षण भी कहीं टिक जाते तो वह पृथ्वी धन्य हो जाती है। हमने तो वहाँ एक रात्रि विश्राम किया था। वहाँ से जाम्भोजी की आज्ञा पाकर अपने-अपने रथ जोते और उत्तर दिशा की तरफ आगे बढे थे। उस दिन का मार्ग काफी लंबा था। अतिशीघ्र से चलकर हम लोग झूपा गाँव में पहुँचे थे। यह गाँव मरुभूमि का अंतिम गाँव है।

नित्य क्रिया, होम, जप-तप से निवृत्त हो गए थे। हमने देखा कि आज तो श्री देवजी एक टक दृष्टि से उत्तर की तरफ देख रहे है। कुछ अवश्य ही विशेष बात होगी। हमने श्री देवजी की दृष्टि अपनी ओर खींचते हुए पूछा-

हे सद्‌गुरु देव! आज हमने आपको एक टक दृष्टि से उत्तर की तरफ निहारते हुए देखा है। इधर तो कोई कहीं गाँव भी नहीं है। वन का ही साम्राज्य है। क्या होगा, इधर देखने के लिए? यदि कुछ होगा तो हमें भी बतलाने का कष्ट करें। श्री देवजी ने कहा- मैं इस भूमि को देख रहा हूँ। बहुत दूर तक निर्जन है। किन्तु यह भूमि बसने योग्य है। आप लोग अपने परिवार सहित यहीं आकर बस जाओ। यदि इस समय यहाँ बागड़ देश में धर्म का राज्य स्थापित हो चुका है। लोग धर्म, कर्म, यज्ञ करने लगे हैं। इस लिये यहाँ पर समय पर वर्षा हो रही है। किन्तु कालांतर में सदा ही ऐसा होना कठिन होगा। मैं देखता हूँ, जन संख्या की अभिवृद्धि होगी तो अत्याचार बढेंगे। यज्ञ कर्म समाप्त प्राय: हो जायेंगे तो अत्याचार बढेंगे, यज्ञ कर्म समाप्त प्राय: हो जायेंगे तो अकाल पड़ने लगेंगे। ऐसी अवस्था में आपकी कुल परंपरा के बिश्नोई लोग यहाँ इस भूमि पर बसेंगे। इस समय में यहाँ से लेकर बंगाल तक बिश्नोइयों का निवास इस भूमि पर देख रहा हूँ।

झूंपे से प्रस्थान कर के बीच- बीच में निवास करते हुए श्री जम्भदेवजी जमात सहित दिल्ली आये। जाम्भोजी के शिष्य हासम-कासम ने दिल्ली में यमुना के किनारे अपना आश्रम बनाया। उसी आश्रम में जमुना के किनारे जमात ने श्री देवजी के सहित आसन लगाया। यमुना में स्नान किया। सांयकाल में जागरण किया और प्रात: काल हवन सभी साथरियों ने मिल कर किया। पहले भी कई बार बिश्नोइयों की जमात ने यहाँ हवन किया था। शब्दों की ध्वनि सुन कर हासम कासम जाम्भोजी के शिष्य बने थे।

हासम कासम सदा ही प्रतीक्षा में थे कि न जाने कब वो स्वयं ईश्वर हरि आयेंगे, जिन्होंने हमें इस पथ का पथिक बनाया था। किन्तु आज तो सामने प्रत्यक्ष देखा था। हृदय की उमंग प्रेमाश्रुओं द्वारा बाहर निकल पड़ी। कहने लगे-हम क्या सत्य ही देख रहे हैं? या स्वप्न ले रहे हैं। अब हमने जीवन को सफल कर लिया। उनकी कृपा सिन्धु की एक दृष्टि ऊपर पड़ जाये तो महान पापी जन भी तर जाते हैं। ऐसे कहते हुए श्री देवजी के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया।

देवजी ने उनके सिर पर अपना हस्तकमल रखा और कहा-हे भक्तो! खड़े हो जाओ। तुम्हारे प्रेम की बाढ में तो सभी पाप धुल गए हैं। अब पापों का लवलेश ही नहीं रहा। नाथोजी कहते हैं-हे वील्हा! इस प्रकार से हमने हासम कासम का प्रेम देखा था, वह तो प्रेम की पराकाष्ठा थी। ऐसा प्रेम यदि सभी का ही परमात्मा हरि के प्रति हो जाये तो जन्मो जन्मों के पाप धुल जाते है।

हासम कासम ने तो हमें भी जाम्भोजी के सदृश मान कर दण्डवत प्रणाम किया था- हमने कहा था कि आप ऐसा न करें। श्री देवजी के सामने हमें शर्मिंदा न करें। हासम कासम ने कहा- आप भी तो देवजी के साथ ही रहते हैं। उनकी संगति से सुगंधित हुए हैं। जिस प्रकार से चंदन के पेड़ के पास रहने वाला दूसरा वृक्ष भी सुगंधित हो जाता है। हम आप लोगों में वही प्रभाव देख रहा हैं। श्री देवजी ने हासम कासम की कुशल मंगल पूछी। उन्होंने कहा-हे देवजी! आपकी कृपा जिन पर हो जाती है, उनका मंगल सदैव बना रहता

है। हमारी बहुत इच्छा थी कि मृत्यु से पूर्व आपके दर्शन-स्पर्श-वार्तालाप हो जाये तो कृतार्थ हो जायें।

इस समय हम अति वृद्ध हो चुके हैं। आपके पास आ नहीं सकते थे। किन्तु आप स्वयं ही दर्शन देने हेतु इन गरीबों की झोंपड़ी पर आ गए। यह हम समझ गये हैं कि आप प्रेम के भूखे हैं। केई बड़े राज महलों को छोड़ कर स्वत: ही चले आये हैं। श्री देवजी ने साह सिकंदर की बात ,तब हासम-कासम कहने लगे-

हे देव! आपका शिष्य सिकंदर तो अपना नियम जब तक जीवित रहा तब तक निभाता रहा। किन्तु अब उनकी दोनों बेगमें भी इस संसार में नहीं रही। अपने पति सिकंदर के साथ ही भिस्त चली गयी हैं। इस समय उनके घर में भक्ति भाव नहीं है। वह तो सिकंदर के साथ ही चला गया है। सिकंदर का बेटा इब्राहिम इस समय यहाँ का बादशाह बना हुआ है, किन्तु वो साह सिकंदर वाली बात बेटे में नहीं है। यह तो हरि से विमुख है।

जब हासम-कासम की वार्ता चल रही थी, उसी समय एक काजी ने भी सुना कि हासम कासम के घर एक बड़ी भारी जमात आयी है। तो वह काजी भी चला आया और श्री देवजी से पूछने लगा- आप कहाँ रहते हो ? आपका स्थान कौन सा है ? कहाँ से आये हो ? और कहाँ को जाना है ? काजी की बात सुनकर श्रीदेवजी मुस्कराते हुए कहने लगे- हे काजी ! हम तो शून्य में रहते हैं और शून्य से ही आये हैं तथा शून्य में ही जायेंगे। मेरा वही शून्य परम स्थान है। उसी शून्य से ही मैं आया हूँ और घट-घट में जायेंगे। प्रत्येक श्वांस प्रश्वास के साथ ही मैं रहता हूँ। सभी के अन्दर एवं सभी के बाहर भी मैं रहता हूँ। जहाँ कुछ भी चेतन रूप से विद्यमान है, वहीं मैं ही रहता हूँ। वह चेतनता भी मैं ही हूँ। मैं और सर्व जगत एक ही है। आप लोग मुझे ज्ञान नेत्रों से देखो तो मैं असली रूप में दिखाई दूँगा। ऐसी वार्ता श्रीमुख से श्रवण कर वह काजी शीघ्र ही राजदरबार में गया।

काजी के चले जाने के पश्चात् हासम कासम ने प्रार्थना की। हे गुरुदेव ! आप आज अपनी मण्डली सहित मेरे मेहमान बने हैं मेरा अति सौभाग्य है। मेरे यहाँ आप मण्डली सहित भोजन करो। तभी मेरी तृप्ति होगी। उसी समय ही श्रीदेवजी ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया।

भण्डारी को भेजा और कहा-जाओ भोजन तैयार करो। न्यात-जमात भोजन करेगी। भण्डारियों ने जाकर नये मकान को जल छिड़क कर शुद्ध किया। उसमें हवन करके प्रथम देवता को आहुति प्रदान की। वातावरण को सुगंधित किया। और उसमें बैठ कर पाँच पकवान बनाये। सभी न्यात जमात को प्रेम से भोजन करने हेतु बुलाया। पंक्ति लगा कर भोजन हेतु बिठाया। ईश्वरीय प्रार्थना ध्वनि बोलकर जल का आचमन करके भोजन किया।

भोजन होने के पश्चात् दोनों भाई श्री देवजी के पास हाथ जोड़ कर बैठे हुए क्षमा याचना करने लगे। इतने में ही एक संदेश वाहक आया और श्री देवजी से कहने लगा- सिकंदर बादशाह का बेटा आप से द्वेष रखता है तथा उसने अनेक कुकर्म किये हैं। अपने पिता के यश को मिट्टी में मिला दिया है। इस समय हे पीर जी ! वह आपको अपने महलों में बुलाने के लिए मुझे भेजा है।

हे वील्हा ! श्री जाम्भेश्वरजी तो घट-घट की जानने वाले हैं। तो वे अकेले ही इब्राहिम से मिलने के लिए चल पड़े। श्री देवजी ने महल में प्रवेश किया और नौ दरवाजे पार करते गए। ज्योंही पीछे ताले पड़ते गये। नौ दरवाजे बंद कर ताले लगा कर द्वार पाल ने बाहर आकर देखा तो श्री देवजी उसे बाहर खड़े दिखाई दिए।

इब्राहिम ने कहा- यदि अंदर बंद नहीं कर सकते, तो इस फकीर की हत्या कर दो। ऐसा दंगा

मचाओ और उसमें मार डालो। ऐसी राजदरबार की बात सुन कर श्री देवजी को काजी खाने, हत्या गृह में ले आये। वहाँ पर क्या देखते हैं कि एक-दो नहीं ये तो हजारों की संख्या में खड़े हैं। काजी कहने लगा- इतने लोगों की एक साथ हत्या कैसे कर सकते हैं?

हे बादशाह! आपने तो इन फकीरों से सम्पूर्ण महल ही भर दिया है। हम लोग तो इनको देख कर डर रहे हैं। न जाने ये लोग क्या कर देंगे? उनकी वार्ता सुनकर इब्राहिम स्वयं देखने आया। पीछे से एक सेवक ने आकर बादशाह को खबर सुनाई कि तुम्हारे महल के जनाने वास में वह फकीर खड़ा मैंने देखा है। स्वयं बादशाह ने हाथ में तलवार ली और रंग चौक में श्री देवजी के दर्शन किये। क्रोध में भरकर बादशाह कहने लगा-

तू पड़दे में कैसे घूमता है? यहाँ पर पुरुष प्रवेश वर्जित है, ऐसे कहते हुए खड्ग की मारने लगा, किन्तु श्री देव के शरीर में चोट नहीं लगी। बादशाह होश गुम होकर धरती पर गिर पड़ा। जाम्भोजी वैसे ही खड़े देखते रहे। हिम्मत करके दुबारा खड़ा हुआ और दुबारा वार करने लगा किन्तु वह भी खाली ही गयी। अब तो खड़ग फेंक कर माफी मांगने लगा। किन्तु आकाश में हाथ फैलाया हुए बादशाह खाली खड़ा रहा। बादशाह डर गया था। अब पछताने लगा। हाथ जोड़ कर क्षमा याचना करने लगा। श्री देवजी ने कहा- सिकंदर तुम्हारा पिता तो मेरा शिष्य था। तूं उनका बेटा होकर कुपात्र कैसे हो गया? अब तुम्हारा राज्य ज्यादा दिन नहीं चलेगा। यह तुम्हारा लोदी वंश का राज्य चला जायेगा। और यहाँ पर मुगलवंश का राज्य शीघ्र ही आयेगा।तुमने अपने पिता की चलाई हुई मान मर्यादा, हक की कमाई का नियम तोड़ दिया है। अनीति का राज्य अधिक टिकाऊ नहीं होता। ऐसा कहते हुए श्रीदेवजी वहाँ से अदृश्य हो गये और मुकाम साथरियों के पास चले आये।

उसी समय ही प्रात:कालीन वेला में आगे यमुना पार जाने के लिए जमात तैयार खड़ी थी। श्रीदेवजी जमात सहित आगे बढ़े। यमुना को पार किया। शाम के समय में इब्राहिम ने वहाँ पर आकर देखा तो जमात तो आगे जा चुकी थी। वह समय तो व्यतीत हो चुका था। वापिस लौटकर आने वाला नहीं था। बीच में पाँच मंजिलों पर विश्राम करके श्री जम्भेश्वरजी अपनी संत मण्डली सहित सरधना पहुँचे। वहाँ पर दो दिन तक विश्राम निवास किया। उस समय सभी आसपास के गाँवों के लोग मिलने हेतु आये।

सरधना से श्रीदेवजी फलावदा पहुँचे। वहाँ पर रथ को रोका। तब वहाँ के बिश्नोई लोग बड़े ही प्रेमभाव से फूल, मिष्ठान्न, घृत आदि लेकर आये। सभी ने अपनी श्रद्धानुसार भेंटे चढ़ाई। तन-मन-धन से हरि की सेवा की। जहाँ-जहाँ पर भी जाते चरण कमल टिकते थे, वहीं पर बिश्नोई लोग निवास करने लगे थे क्योंकि वह भूमि पवित्र रहने योग्य हो गयी थी। यही सद्गुरु का सामर्थ्य है। जहाँ पर भी धर्म विस्तार होने की सम्भावना थी, वहीं पर श्रीदेवजी पहुँचे। जो भी उनके मार्ग में गाँव-नगर आये, वहीं बिश्नोई पंथ में सम्मिलित होते गये।

वहाँ से आगे चल पड़े। बिश्नोई की जमात श्रीदेवजी के साथ नगीना पहुँचे। नगीने में श्री गुरुदेव ने जहाँ पर आसन लगाया , वहीं पर साथरी की स्थापना हुई। सद्गुरु के शिष्य कुलचन्द, धनों, बीछू, चेलोजी आदि बड़े उत्साह से अपनी अपनी श्रद्धा समर्पित करने हेतु श्री देवजी के पास बड़े ही प्रेम से पहुँचे। जो कुछ लाये थे, वह भाव रूप में श्रीदेवजी के चरणों में रखकर स्तुति करने लगे।

कुलचंदजी कहने लगे-हे गुरुदेव! मैं तो आपका ही हूँ। आप मेरे ही हैं। अन्य तो सभी कुछ झूठा ही है। आप की जयजयकार हो। आप दयालु कृपालु हो तथा आपका कोई आदि अन्त नहीं है। आपने कृपा करे हमें

दर्शन दिया है। मुझे निहाल कर दिया है। हे जगतकर्ता! आप हमारे दु:खों का निवारण कीजिये। इसी हेतु तो आपने अवतार ही लिया है। हे जगत के स्वामी! आप तो अन्तर्यामी हैं। हम क्या कहें? यदि आप प्रसन्न हो जावें, तो हमारे जन्ममरण के फंदे कट जायें।

हे प्रभु! हमारा धन्य भाग जो आपने हमारे यहाँ पर चरण रखे हैं। आपने यह कृपा की है, जो मेरे घर पर दर्शन देने के लिए आ गये हैं। हे अव्यक्त अनामय स्वामी! आपका नाम लेने से 84 लाख योनियों में भटकना मिट जाता है। आप तो सत्यलोक के स्वामी हो। हे निष्कामी! आपने हमारे पर बड़ी कृपा की है। अपने जन को अपनी शरण में रखो तथा कुछ सेवा का अवसर प्रदान करो। हे देव! यह मन बड़ा ही चंचल है। इसे स्थिर कीजिये। यह कार्य तो आपकी कृपा से ही हो सकेगा। इस मन ने तो शिव ब्रह्मादिक सभी को नचाया है।

कुलचंदने इस प्रकार से स्तुति की। श्री जाम्भेश हरि ने प्रसन्नता से कुलचंद के सिर पर अपना हस्त कमल धरा और कहा-क्या माँगते हो? कुलचंद हे देव! जब आपका हस्त कमल मेरे सिर पर आ गया तो मुझे अन्य सांसारिक वस्तु से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। आपकी भक्ति सदैव बनी रहे । कुलचंद जी की स्तुति पूर्ण हो जाने पर धन्ना बिछू ने भी अपनी अपनी स्तुति पृथक् पृथक् रूप से की। उसी गाँव में रहने वाले सुरगुण भँवरा भी स्तुति करने लगे।

ये तो सभी लोग पूर्व समय में कई बार सम्भराथल की यात्रा कर चुके थे। इस समय तो घर में आयी हुई गंगा को कैसे हाथ से जाने देते। इस भक्त मण्डली में चेलोजी भोले-भाले शिरोमणि भक्त थे। वे पास जाकर स्तुति करने में संकोच करते रहे। कहाँ तो मैं अपवित्र कहाँ विष्णु परमात्मा! मैं भला क्या स्तुति करूं? कैसे कहू और क्या कहूँ? कुछ समझ में नहीं आता। श्रीदेवजी ने चेलेजी का नाम लेकर अपने पास बुलाया और अपने मनोभाव प्रकट करने को कहा। चेलोजी कहने लगे- हे देव! मैं तो आपके चरणों का दास हूँ। दास कैसे अपने स्वामी की कीर्ति का बखान कर सकता है? मैं तो आपकी महिमा जानता हूँ, बखान करना तो मेरे वश की बात नहीं है। अपनी वाणी में आपकी विराट महिमा को कैसे बाँध सकता हूँ? रात-दिन आपके ही गुणों का बखान करता हूँ। मेरे भाई-बन्धु, माता-पिता तो सभी कुछ आप ही हो। आपके बिना तो मेरा जीवन व्यर्थ है। आप सदा ही मेरे हृदय में निवास करो। अपना कमल सदृश हाथ मेरे सिर पर रखो। अपने दास को साथ ही लीजिये। मेरी कुमति का हरण करो और शुद्ध ज्ञान प्रदान कीजिये।

आप तो सत्यलोक के स्वामी हैं। इस मृत्युलोक से सदा ही उदास रहते हैं। यहाँ मृत्युलोक में तो प्रह्लाद भक्त के वचनों का पालन करने हेतु आये हैं। इकीस करोड़ को तो आपने पूर्व तीन युगों में पार पहुँचा दिया। अब अवशिष्ट बारह करोड़ उद्धार करने हेतु यहाँ पर आये हैं। उन बारह करोड़ जीवों में हम भी हैं। इसलिए हमारा तो उद्धार अवश्य ही होगा। हे देव! आप संतों के प्रतिपालक हैं। आपने इससे पूर्व भी ध्रूव, प्रह्लाद, नारद, कयाधु आदि की गति की हैं। अब आप मेरी भी गति कीजिये।

हे भगवन्! मैं आपकी शरण ग्रहण कर चुका हूँ।आपके सिवा मेरा इस भवसागर में कोई नहीं है। पतितों को पार उतारने में आपकी कोई बराबरी नहीं है। यदि दोष होगा तो किसी साधक में ही होगा आप तो निर्दोष समदृष्टि भगवान् हैं। अब आप ही जानें, हम क्या जानें? आपके दर्शनमात्र से ही करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। सूखी लकड़ी के साथ हरी लकड़ी भी जल जाती है। काठ के संग लोहा भी पार लग जाता है। मैं तो आपका सेवक आपके शिष्यों के साथ यूँ ही पार उतर जाऊँगा। मुझे तो चिंता कदापि नहीं करनी चाहिये। ऐसा कहते हुए भक्त चेलोजी श्री देवजी के चरणों में गिर पड़ा।

श्रीदेवजी ने चेलेजी के सिर पर अपने दोनों हाथ रखे। उसे उठाकर गले लगाया। चेलोजी से बहुत ही प्यार किया। उसके दोनों हाथ चूमे। जिस प्रकार से माँ अपने लाडले भोले-भाले बच्चे को प्यार करती है। यही दशा श्रीदेवजी की थी। सत्य है, ईश्वर तो इसी प्रकार से जीवों से प्यार करते हैं। किन्तु ये बेटे लोग ही अपना अहंकार नहीं त्यागते, कुपात्र हो चुके हैं।

उसी समय वहाँ पर उपस्थित किसी बन्धु ने श्रीदेवजी को अपना हाथ दिखाया और कहा-महाराज! ये देखो मेरे हाथ कितने सुन्दर सौम्य हैं। श्रीदेवजी ने कहा- इन कोमल हाथों में तो कीलें ठोकी जायेंगी। हाथ पैर तो वही सफल हैं, जिससे परोपकार का कार्य सम्पन्न होवे। तूनें इन हाथों से कुछ भी नहीं किया, तो यम के द्वार पर खड़ा होना पड़ेगा।

अनेक प्रकार से श्रीदेवजी की स्तुति की तथा अपनी इच्छानुसार वरदान भी माँगा। देवजी नगीने की साथरी पर विराजमान थे। एक इमली के पेड़ के नीचे सभी को पाहल पिला रहे थे। आसपास के गाँवों के लोग आते रहे और पीते रहे। वह अमृत पाहल तो अमर ही था। वह कभी समाप्त होने वाला नहीं था। जीवनयुक्ति सिखाने वाला जल था। जिसने भी पिया, वह अमर हुआ। अपनी पंचभौतिक काया को त्याग करके भी जीवात्मा के रूप से अमर रहने का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

उस समय श्रीदेवजी की शोभा निराली ही थी। सभी के मध्य में विराजमान होते थे, तो उनकी मुख ज्योति चारों तरफ बराबर दिखती थी। शायद किसी ने उनकी पीठ देखी हो ? मैं तो कहता हूँ- हे वील्ह! मैंने कभी श्रीदेवजी की पीठ नहीं देखी। जब भी देखा तो सम्मुख ही देखा। मैं तुम से सत्य कहता हूँ, पीठ दिखाना तो कायरता की बात है। उनके नयन, कमल दल सदृश शोभायमान थे। करोड़ों कामदेवों के सदृश उनके शरीर की कांति शोभायमान हो रही थी।

भगवां वस्त्र शरीर पर अग्नि सदृश सभी पापों की निवृत्ति की सूचना दे रहा था। सिर पर टोपी शोभायमान हो रही थी। जब वो मधुर वाणी से बोलते थे, तो उपस्थित जन समूह मंत्र मुग्ध हो जाता था। उनकी एक-एक बात को पी जाते थे। एक-एक शब्द बड़ा ही अमूल्य था। हे वील्ह! मैंने अब तक ये जो एक सौ बीस शब्द कण्ठस्थ रखे हैं। वे ही शब्द मैंने तुम्हें सुना दिया हैं। इन्हें अपने अंदर से जाने मत देना। दूसरों को सुनाते रहना। इससे तुम्हारी विद्या अनंत फलवती होगी।

इस प्रकार से नगीने में श्री देवजी ने चार महीने निवास किया था। नाथोजी कहते हैं कि हमने तो यही सभी कुछ अपनी आँखों से देखा है। वहाँ के लोगों का प्रेम धारण किया है। मैं वहाँ की बात स्मरण करता हूँ, तो अभी भी रोमांचित हो जाता हूँ। उस विशाल इमली के पेड़ की मुझे बार बार याद आती हैं। उसके नीचे बैठे हुए श्री देवजी मुझे इस समय भी स्पष्ट दिख रहे हैं।

आप भी देखिए, अवश्य ही दिखेंगे। वे कहीं चले नहीं गये हैं। अब भी हृदय में बिठाएँ और अन्तर्दृष्टि से देखिए। अवश्य ही दर्शन होंगे। वे लोग भी धन्य हैं जिन्होंने साक्षात्कार एवं शब्द श्रवण किया है। उनका वह निष्कंटक प्रेम भी धन्य है। ऐसा प्रेम सभी का बन जाये, तो कार्य बन सकता है। विना प्रेम तो सूखी सरिता में नाव चलाने के समान सभी कुछ परिश्रम व्यर्थ ही है।

नगीने से प्रभु जी अपनी भक्त मंडली सहित रवाना हुए। चेलोजी कुलचंद जी आदि भी श्री भगवान् के साथ ही बिजनौर महमद पुर, गाँवों में अधिकारी भक्तों को ज्ञान, ध्यान, धन, संपत्ति, विद्या, युक्ति देकर गंगा के किनारे दारानगर गंज में तीन दिनों तक निवास किया। वहाँ गंगा के किनारे श्री देवजी के चरणचिन्ह स्थापित हुए। वहाँ पर भी श्री देवजी की साथरी की स्थापना हुई।

साथ में भक्त साथरियों ने गंगा स्नान कर के पुण्य अर्जित किया। सभी को पवित्र करने वाली गंगा भी आज विष्णु के चरणों को स्पर्श करके धन्य हुई। उन्हीं के चरणों से गंगा निकली थी। ब्रह्मा जी के कमण्डलु में आई थी और अंत में कुछ समय तक शिव की जटाओं में रमण करती हुई गंगा ने पृथ्वी पर साठ हजार सागर के पुत्रों का उद्धार किया।

बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद आज गंगा को पुन: श्री चरण स्पर्श करने का अवसर मिला था। दारानगर को इसीलिए ही तो विशेष तीर्थ बनाया। नगीने निवासी श्री देवजी के शिष्य धनों बिछू नगीने से नित्य प्रति गंगा स्नान करने के लिए यहाँ आया करते थे। क्योंकि वो देवजी के साथ थे। इस महत्व को जानते थे।

श्री देवजी ने कहा– हे धनाजी! आप नित्य प्रति स्नान करने के लिये यहाँ पर आते हैं? यह तुम्हारा नियम तो अच्छा है। किन्तु काफी दूर पड़ता है। आने-जाने में कष्ट होता है। इसीलिए आपके घर के पास जो कुआँ है उसी पर ही स्नान कर लिया करो। वह भी गंगा जल ही है। धनो बीछू कहने लगे– यह हम कैसे मान लें कि वहाँ हमारे कुएँ का जल भी गंगा जल ही है?

देवजी ने कहा– आज तुम ऐसा करो। यहाँ गंगा में अपनी धोती छोड़ जाओ और कल सुबह अपने कुएँ पर स्नान करने के लिए पानी की सिंचाई करना, तो तुम देखना कि यह तुम्हारी धोती वहीं पर तुम्हारे कुएँ में ही मिलेगी। पानी के साथ तुम्हारा वस्त्र तुम्हारे पास ही पहुँच जायेगा। जैसी आपकी आज्ञा, वैसा ही करेंगे।

धना– बीछू ने अपनी धोती गंगा में छोड़ दी और दूसरे दिन अपने कुएँ में प्राप्त कर लीया। धनो बीछू के घर के पास वह कूआँ, जहाँ पर वे दोनों नित्य प्रति स्नान करते, वह जगह भी भुलाने योग्य नहीं है।

नाथोजी कहते हैं–हे वील्ह! तुम कभी अवश्य ही जाना और मैंने तुझे जो जो भी पवित्र स्थल बतलाये हैं उन्हीं के दर्शन करके कृतार्थ होना है। दारानगर विदुर कुटि से श्री देवजी ने आगे जाने की इच्छा प्रकट की तो नगीने आदि के पट शिष्य रोने लगे। जिस प्रकार से रामजी वनवास को चले तो अयोध्या के लोग रोने लगे थे। उन्हें श्री देवजी ने दिलासा दी और कहा– मैं आपसे दूर नहीं हूँ।

''नेड़ा था पण दूर न रहीबा'' जब भी आप लोग हृदय में अन्तवृत्ति से देखोगे, तो मैं तुम्हारी आत्मा रूप में विद्यमान रहूँगा। ऐसा कहते हुए श्री देवजी जमात सहित लोदीपुर धाम की स्थापना हेतु जाकर विराजमान हुए।

लोदीपुर के भक्त जनों ने आगत स्वागत किया। पग मंडा कर साथरी में स्थापित किये। न्यात जमात के लिए तम्बू लगवाये। नाना प्रकार के व्यंजनों द्वारा न्यात-जमात को भोजन देकर तृप्त किया। चारों वर्णो के लोग श्री देवजी के दर्शन करने के लिए आ रहे थे। श्री देवजी श्री मुख से ज्ञान श्रवण करते थे। सुजीवों की खोज कर रहे थे। परिक्रमा कर के दर्शन कर रहे थे। कोटि जन्मों के पापों को हरण कर रहे थे। चारों तरफ ज्योति स्वरूप परमात्मा का दर्शन कर के कृतार्थ हो रहे थे। लोगों ने आश्यर्च चकित नेत्रों से यह दृश्य प्रथम बार ही देखा था।

लोदीपुर के धारू और घाटम दोनों परम भक्त शांत दत्तचित्त थे। इस बात को सभी जानते थे। दोनों हाथ जोड़े हुए श्री देवजी के आगे खड़े प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित कर रहे थे। भगवान् की अथाह कृपा से घाटम जी स्तुति करने लगे–

जय हो लोहट के लाला की। जो हमारे जैसे दास पर कृपालु हुए हैं। धन्य हैं माता हांसा को जिन्होंने अपनी गोद में खिलाया है। धन्य है बुआ तांतू और पीपासर के ग्वाल बाल, छोटे-बड़े सभी, जिन्होंने अपना

समय देवजी के साथ व्यतीत किया। वह बागड़ देश भी धन्य है, जिस भूमि पर विष्णु के चरण चिह्न स्थापित हुए हैं। केवल बागड़ देश ही धन्य नहीं है, हमारा देश भी धन्य हो गया है। धारू स्तुति करते हुए आगे हाथ जोड़े खड़ा था।

हे देव! आपने सत्य लोक को किस कारण से छोड़ा? अब आप स्वयं विष्णु ही यहाँ पर आ गये हैं। तो मेरे सिर पर अपना वरद हस्त रखो। जिस प्रकार से प्रह्लाद के सिर पर हाथ आपने नृसिंह रूप धारण करके रखा था। आज हमारा जन्मों जन्मों का भाग्य उदय हुआ है कि स्वयं सृजन हार ही हमारी धरती पर पधारे हैं। घाटम और धारू की स्तुति से श्री देवजी अति प्रसन्न हुए और इन भक्तों को अन्य कुछ भी नहीं चाहिये, केवल भक्ति ही प्रगाढ नित्य प्रति बनी रहे। यही वरदान दिया और जीवन युक्ति और मुक्ति प्रदान की। अनेक भांति के लोग लोदीपुर में दर्शनार्थी आते और अपनी इच्छा की पूर्ति करके जाते थे। श्री देवजी के साथ में आये हुए भक्त मंडली की सेवा गुरु भाइयों ने करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। इस प्रकार से एक माह तक श्री देवजी लोदी पुर ग्राम में रहे। वहाँ पर जितने भी प्रह्लाद पंथी जीव थे, वे सभी आकर कृतार्थ हुए थे।

नाथोजी कहते हैं- हे वील्हा! एक माह पश्चात् जब वहाँ से रवाना होने की तैयारी कर रहे थे, तभी एक सुरजी नाम की बुढिया आयी। हमने उसके प्रेम को देखा था। वह तो साक्षात् शरीर धारी भक्ति ही थी। जो मानव के रूप में आयी थी। वह हाथ जोड़ कर श्री देवजी से कहने लगी-हे देवजी! आप तो वापिस जा रहे हैं? जब आप नहीं आये थे, तब तो आपकी प्रतीक्षा में समय व्यतीत ठीक हो रहा था। किन्तु अब चले जाओगे तो इस बूढे शरीर में प्राण कैसे रहेंगे? ये मेरे प्राण तो आपके साथ ही जाना चाहते हैं, अब ये प्राण किस के सहारे से टिकेंगे?

हमने आपका बागड़ देश सम्भराथल देखा है। वहाँ के वृक्ष देखे हैं, जिनके नीचे आप बैठते हैं। ऐसा कोई वृक्ष हमारे यहाँ भी लगाइये। जिससे हम दर्शन कर के कृतार्थ हो सकें। आपके ही द्वारा लगाया हुआ रोटू गाँव में खेजड़ियों के बाग का दर्शन हमने किया है। वहाँ का दर्शन यहाँ भी होता रहे, ऐसी कुछ कृपा करो।

हे वील्हा! इस प्रकार से देवी सुरजी की प्रार्थना सुन कर श्री देव ने बागड़ देश का वृक्ष खेजड़ी वहाँ पवित्र स्थल साथरी पर लगवायी थी। जाम्भोजी महाराज की महिमा अपार है। न जाने वह खेजड़ी का वृक्ष शून्य में से कहाँ से आया? हम तथा उन ग्राम वासियों ने तो वहाँ पर वह वृक्ष लगा हुआ देखा था। कहीं से भी लाते हुए नहीं देखा था। वह वृक्ष बड़ा ही अलौकिक, प्रकृति से परे था।

कृष्ण चरित्र से तो अनहोनी भी हो जाती है। यह कृष्ण चरित्र ही था। हम तो कुछ भी निर्णय नहीं कर सके थे, क्योंकि उस देश में आस पास कहीं भी ऐसा खेजड़ी का ऐसा वृक्ष दुर्लभ है। सुरजी ने हाथ जोड़े और कहा- हे मेरे प्राणाधार! यह वृक्ष ही आपने यहाँ क्यों लगाया? इसमें यदि कुछ रहस्य है तो अवश्य ही बतलाने की कृपा करो।

श्री देवजी ने बतलाया कि वेद शास्त्रों में इस वृक्ष को शमी के नाम से कहा जाता है। त्रेता युग में इसको तुलसी कहते थे। इस समय कलयुग में इसे बागड़ देश में खेजड़ी कहते हैं कई लोग जांडी भी कहते हैं। इसकी कुछ विशेषता है। यह वृक्ष अपने आप में परोपकारी है। अपनी छत्र छाया में दूसरे वृक्षों को पनपने से रोकता नहीं है। अन्न आदि पदार्थ के लिए भूमि को उपजाऊ बनाता है। यह अपने नीचे पनपने वाले घास अन्न का जल स्वयं नहीं पीता। यह तो नीचे का गहरा पानी खींचकर पीता है। जिससे धरती में नमी बनी रहती है। पाताल का पानी आकाश में चढाने की इसकी क्षमता है। यह स्वयं खुशहाल रहकर दूसरों को भी

खुशहाल देखना चाहता है।

ऐसा गुण अन्य वृक्षों में मिलना दुर्लभ है। स्वयं सर्दी-गर्मी, बरसात सहन करके अन्य जीवों की रक्षा करता है । इसी वृक्ष से सदा ही तुम्हें प्रेरणा लेनी चाहिये। यही प्रेरणा ही जीवन को सुखमय बनाने का परम आधार है। इस प्रकार से लोदी पुर में खेजड़ी वृक्ष का आरोपण कर के खेजड़ी वृक्ष का माहात्म्य बतलाते हुए श्री जम्भेश्वरजी ने पुन: जोर देकर कहा-

इसके लगने वाली फली (सांगरी) शाक-पात के लिए उत्तम भोजन है। यह तो सर्व रोगों को हरने वाली अमृत बूंटी है। इसके पत्ते उंट गाय, आदि खाते हैं। इससे उनको पौष्टिक आहार मिलता है। किन्तु इस देव स्वरूप वृक्ष को कभी नहीं काटें। स्वत: ही इससे जो कुछ मिल जाये, वही अमृत तुल्य है।

नाथोजी कहने लगे-हे वील्ह! इस प्रकार से श्री देवजी ने खेजड़ी का दरखत लगाया। तुम भी कभी भ्रमण करने को अवश्य ही जाना। वहाँ लोदीपुर धाम में अवस्थित श्री देवजी की स्मृति रूप उस वृक्ष का दर्शन स्पर्श करके कृतार्थ होना। लोदीपुर गाँव से अपने शिष्यों सहित रवाना हुए और कई दिनों के पश्चात् लखनऊ पहुँचे।

लखनऊ में नवाबगंज में तंबू ताने और कुछ लोगों पर कृपा करने हेतु आये थे। लखनऊ का स्वांति शाह बादशाह श्री जाम्भेश्वरजी से मिलने के लिए अनेक प्रकारों की भेंट लेकर आया था। एक रात्रि में लखनऊ में ही निवास किया। स्वांति साह का उद्धार किया। स्वांतिसाह ने लखनऊ में नवाब गंज में हिन्दू और मुसलमान का मिश्रित मंदिर-मस्जिद का निर्माण करवाया। एक तरफ मंदिर दूसरी तरफ मस्जिद। हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मो का समान आदर स्वांति साह ने किया था। मंदिर में पुजारी थापन था और मस्जिद में मुल्ला रहा करते थे।

लखनऊ में केवल स्वांति साह से ही विशेष कार्य था। वह कार्य अति शीघ्र पूर्ण कर के श्री देवजी सृष्टि के चक्कर से घूमते हुए पूर्व में ही औरैया, कानपुर, आदि देशों में घूमने की इच्छा से आगे बढे। कुछ दिन चलने के पश्चात् श्री देवजी ने औरेया के शिव मंदिर में आसन लगाया। चार हजार संत भक्त साथ में थे। बड़ी भारी जमात आयी है, ऐसा सुन करके स्थानीय लोग अपनी-अपनी भेंटे लेकर श्री देवजी के दर्शनार्थ आये।

पूरबियों ने देखा कि यहाँ तो सभी साधु भक्त हवन कर रहे हैं। वेद मंत्र तुल्य ही उच्च स्वर से शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं। स्वाहा कहते हुए घृत-नारियल सामग्री की आहुति दे रहे हैं। अग्नि देव अति प्रसन्नता से उनकी दी हुई आहुति स्वीकार कर रहे हैं। ऐसे ऋषि तुल्य बिश्नोइयों का दर्शन करके कृत कृत्य हुए। आगंतुक जमात ने देखा कि उन हवन कर्ताओं के बीच में श्री देवजी ताराओं के बीच जिस प्रकार से पूर्ण चन्द्र दिखता है, उसी प्रकार दिखाई दिये। जो जहाँ आगे पीछे खड़े थे, वहीं से श्री मुख दिखता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि स्वयं यज्ञ रूप परमात्मा ही प्रगट हुए हैं।

जिस यज्ञ नारायण की स्तुति यज्ञ द्वारा करते आये हैं, वह तो आज साक्षात ही प्रकट है। इस प्रकार से औरेया में श्री देवजी आठ दिनों तक रहे। नित्य प्रति ही होम, जप, पाठ आदि होते हुए दर्शकों ने देखा। कुछ लोगों ने तो प्रथम बार ही यह कौतुक देखा था। अन्यथा तो सदा ही ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ होना देखते आ रहे थे। ये ब्राह्मण लोग तो बहुत ही प्रपंची थे। यज्ञ कर्म को अनेक विधि विधानों में फंसा कर लोगों की अरुचि पैदा करवा दी थी। यहाँ पर उन्होंने बहुत ही सरल स्वाभाविक रूप से इतना सात्त्विक यज्ञ प्रथम बार ही देखा था। बाह्य दिखावा तो आडंबर है। यह यज्ञ आडंबर रहित प्रेम भाव से किया जा रहा था। यहाँ यज्ञ पूर्ण होने पर

दक्षिणा के लिए तू तू मैं मैं नहीं थी। यज्ञ कर्म करने में जो आनंद की अनुभूति थी, वही सच्ची दक्षिणा थी। वह उन्हें प्राप्त हो रही थी।

श्री देवजी अपनी जमात के सहित औरेया के शिव मंदिर में रहने से उस मंदिर का नाम ही हरि मंदिर हो गया। क्योंकि स्वयं हरि- विष्णु ने ही आकर निवास किया था इससे पूर्व तो केवल शिव मूर्ति को ही भगवान् मान कर चल रहे थे। अब तो हरि के चरण चिन्हों से वह भूमि तीर्थ बन गयी थी। औरेया में प्रह्लाद पंथी जीवों को सचेत कर के श्री हरि आगे मुसाणपुर गाँव में पहुँचे।

मुसाणपुर गाँव के निवासी श्री हरि के परम शिष्य थे। उन्हें नित्य प्रति हवन करने का नियम पूर्व में बतलाया था। उसी नियम का पालन करते आ रहे थे। हवन करना चाहिये। केवल एक इस नियम का पालन हो जाये, तो दूसरे नियम तो स्वत: ही पालन हो जायेंगे। अलग-अलग बताने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। श्री देवजी के मुसाणपुर आने पर विराट यज्ञ का आयोजन किया गया। नित्य प्रति सवामन घृत की आहुतियाँ दी जा रही थी। अन्य सामग्री भी सुगंधित औषधियों द्वारा निर्मित की गयी। वहाँ का वातावरण सम्पूर्ण सुगंधमय हो गया था। ऐसा लगता था मानो यह स्वर्गलोक ही है। जहाँ केवल सुगंध ही है। सस्वर शब्दों का उच्चारण सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो देवलोक में गन्धर्व गान कर रहे हैं।

हे वील्हा! मैं वहाँ की महिमा का क्या क्या वर्णन करूँ? यह वाणी उस अलौकिक दृश्य का वर्णन नहीं कर सकती। किन्तु मेरा अनुभव वाणी द्वारा बाहर निकलना चाहता है। इसीलिए मैं बिना कहे रह नहीं सकता। दूर दराज गाँवों के लोग आते, यज्ञ स्वरूप विष्णु जाम्भोजी का दर्शन करते और कृत कृत्य होकर वापिस चले जाते। यह कार्यक्रम कई दिनों तक चलता रहा।

शहर कन्नोज में एक खड्ग सिंह राजा रहता था। वह कहीं वन में गया था। किसी ऋषि के आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन किया था। इस कारण से राजा को कोढ हो गया था। वह बीमारी दिनों दिन बढती ही जा रही थी। राजा स्वयं तो सचेत नहीं हो सका, किन्तु किसी ज्ञानी आदमी ने बतलाया कि यह कोढ किसी दवाई से ठीक होने वाली नहीं है। जिस अपराध से यह रोग लगा है, उसी अपराध की शांति से यह रोग मिटेगा।

राजा के बात समझ में आ गयी और सदा ही प्रतीक्षा में रहता था कि कब कोई ऐसा देव पुरुष आये और मैं उनसे क्षमा याचना करूँ जिससे मेरे रोग की निवृत्ति हो सके। हे वील्ह! जिस समय श्री देवजी मुसाणपुर में विराजमान थे, वह समय खड्गसिंह ने मिलने के लिए उचित समझा। जाम्भोजी के पास पूर्ण श्रद्धा विश्वास से राजा अपने राज्य अहंकार को गिराकर शुद्ध पवित्र होकर श्री देवजी से मिलने के लिए आया था।

श्री देवजी साथरियों के साथ विराजमान थे। हमने देखा कि वह राजा बहुमूल्य अनेकों भेंट लेकर आया था। श्री चरणों में अपने प्रिय धन के साथ ही अहंकार को भी चढा दिया था। श्री देवजी के चरणों में गिर कर गिड़गिड़ाने लगा था। देवजी ने कृपा कर के उसके सिर पर हाथ रखा। तभी खड्ग सिंह ने अपने शरीर को देखा तो कोढ झड़ चुकी थी।

हे वील्ह! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। श्री विष्णु के सामने तो किसी भी प्रकार के पाप और पाप से उत्पन्न रोग कष्ट कैसे टिक सकते हैं।

सूर्योदय होने पर अंधकार कहाँ टिकता है? सेर की गर्जना सुन कर वन्य जीव कहाँ टिक पाते है? श्री विष्णु ने तो अपने दिव्य चरित्र से बड़े बडे भयंकर राक्षसों को भी पछाड़ दिया। वह विचारी कोढ कितनी

सी है ? जो विष्णु के सामने टिक सके।

शुद्ध पवित्र शरीर हो जाने से राजा ने जामात तथा श्री देवजी को बहुत बहुत धन्यवाद दिया और प्रार्थना करने लगा- हे देव! आप सम्पूर्ण जमात सहित मेरे घर पर अवश्य ही चलो। मैं आपकी सेवा कर के जन्म सफल करूँगा। भक्त के प्रेम भाव को किसने ठुकराया है ? भगवान् तो प्रेम को देखकर दौड़े आते है। प्रेम ही संसार में सार है। बिना प्रेम तो नटवर नागर रिझते ही नहीं हैं। इस प्रकार से प्रेम भाव से अभिभूत होकर श्री देवजी के साथ हम सभी लोग कन्नौज गये थे।

मन इच्छित भोजन कर के तृप्त हुए थे। वहाँ के प्रेम भाव को कैसे भुलाया जा सकता है ? अभी भी कभी-कभी याद हो आती है। राजा ने बहुत ही बहुमूल्य भेंट श्री चरणों में रखी थी। जाम्भोजी ने कहा- हे राजन! ये बहुमूल्य वस्तुएँ मुझे नहीं चाहिये। इन्हें तू वापिस लेले और किसी परोपकार के कार्य में लगा दे।

राजा ने पूछा- हे देव! इस समय मैं क्या परोपकार का कार्य करूँ ? जो आपकी आज्ञा हो वही कार्य मैं करूँ। श्री जाम्भेश्वरजी ने कहा- यहाँ पर जहाँ मेरा आसन है, वहीं पर दिव्य मंदिर का निर्माण करवावो। यहाँ पर इस मंदिर में सभी प्रकार के लोग आयेंगे और अपनी इच्छा पूर्ति करेंगे। यह मंदिर सर्व साधारण के लिये श्रद्धा का केन्द्र होगा।

नाथोजी कहते हैं- हे वील्ह! राजा खड़गसिंह ने वहाँ पर दिव्य मंदिर का निर्माण करवाया। वैसे तो मंदिर की आवश्यकता नहीं है। हृदय रूपी मंदिर में परमात्मा साक्षात विराजमान होकर इस शरीर का संचालन करते हैं। फिर भी अल्पज्ञ जीवों के लिए बाह्य विग्रह की भी आवश्यकता होती है। छोटे बच्चों को क से कबूतर बताया जाता है। किन्तु जब बड़ा हो जाता है जो क को तो पकड़ लेता है और कबूतर को छोड़ देता है। उसी प्रकार से प्रारम्भिक अवस्था में तो मंदिर चित्र आदि का सहारा लेना ही पड़ता है, बाद में जब ज्ञान हो जाये तब स्वत: ही छूट जाता है।

मुसाणपुर एवं कन्नौज से चलकर श्री देवजी कालपी यमुना जी के घाट पर शोभायमान हुए। जहाँ पर हरि ने तम्बू लगाया, वहाँ पर भी हरि मंदिर का निर्माण वहाँ के लोगों ने करवाया। जाम्भोजी के चेले रतनदास ने वहाँ पर मंदिर बनवाने में तन-मन-धन समर्पित किया था। वहीं विष्णु मंदिर की ही राम-कृष्ण आदि नामों से पूजा अपनी रुचि के अनुसार ही पुजारी लोग करते हैं। तीन दिनों तक जाम्भोजी ने कालपी में निवास किया।

वहाँ से आगे चलकर श्री देवजी कानपुर आये। वहाँ पर भी अधिकारी जीवों को सचेत किया। पूरबिये बिश्नोई वहाँ पर व्यापार करने वाले दर्शनार्थ अपनी अपनी भेंट लेकर आये। दर्शन करके अपने पापों का विनाश किया। अपने जीवन को सफल किया।

नाथो जी कहते हैं- हे वील्ह! जब हम लोग देवजी के साथ पूर्व देश में भ्रमण कर रहे थे, तभी वहाँ के लोग एकत्रित होकर अपनी एक समस्या का समाधान करवाना चाहते थे। देवजी से आज्ञा लेकर उनमें से एक प्रतिष्ठत व्यक्ति ने कहा- हे देवेश! हमारे यहाँ पर मुसलमान बहुत ज्यादा हैं। वे यदि हमारे धर्म पालन करने में विघ्न पैदा करें, तो हमें क्या करना चाहिये ? आप ही हमें कुछ शक्ति प्रदान कीजिए ताकि हम उनको जवाब दे सकें। हमारा धर्म निर्विघ्न चलता रहे। तब श्री देवजी ने एक दिव्य चमत्कार दिखाया। उसके बारे में मैं तुझे बतला रहा हूँ।

एक सम वीसनोई गंगापार पूरब का अरज कीवी। जांभाजी! तुरकाणी को जोर है। कोई हम कुं तुरक संताव तो क्या जवाब देंगे। जाम्भाजी कोरौ कागद लपेटय दीनी। उघाड़ दैखे तो मांही अरबी दसकत

है। पारसी नवीसां नूं बचाया। पजनामौ नीसरयौ–

एक समय गंगा पार पूर्व के बिश्नोइयों अर्ज करी, हे जाम्भाजी! हमारे यहाँ पर मुसलमानों का बाहुल्य है। यदि हमें कोई तुरक सतावे तो हम उनका क्या जवाब देवें? जाम्भोजी महाराज ने एक सफेद बिना लिखा हुआ कोरा कागज हाथ में लिया, उसे लपेट दिया। थोड़ी देर में उसे उघाड़ कर देखा तो अंदर अरबी भाषा में लिख हुआ था, तथा नीचे श्री जाम्भोजी के हस्ताक्षर थे।

वहीं पर किसी अरबी फारसी जानने वाले को बुलाकर पढाया गया, तो वह पंचनामा था। वही अरबी फारसी में लिखा हुआ पंचनामा नीचे लिखा जा रहा है। अरबी जानने वाले लोगों के लिये। इस प्रकार का पंचनामा उस अरबी जानने वाले ने पढकर सुनाया–

विसमलाह हिर रमांने रहीमः फरमान बंदगी। हजरतिः सेखभल सायखेः अवलीया हजरतः सेखजीहान मां वियावानीः कुद सुलाहः श्रहुला अजीज वजान मुरीदां नैः वो मात कदानः पीरा मूरी ही फरमुद अंद केह जरती बंदगीः सेख मजकूरः गोसत ने में खुरद अदः वगल व आवः न खुरद अंदः प्रहेज दसतः सबुबराजः खवाबनबुद्धः एक पायइसतादः में मांदः रोजे वजवान मुबारकः फ रमुद अद किमादर दुनियाः फेसतात कसे आमैदमः फिसरान हि दवाराः दर असलामेः चुन्यांच कंज गाराः दान में अंदज दुहम चुना वजु वांनी फसीः नौ मुसलमै साखतः वदरदीनः महंमदरसुल अलाः स लला अलेव सलांमः आवरदमः सीजद वजु ज खुदाया ताला दिगररा क्रंदनः दुरसीतनेसः व अजखुरखद अंदः सरावः वभंगः वपोसतः व अफीमः ववद अंमैल जहाँ वह रात परहेजः कु नांनीदः एम वायदकेः हरि मोमिनः गवाजवस्यः ताब रइ सांराः नजरि सफकत बुबीनंदः दरखेयाल हीलः इसांन अफत दवौ आकु नंद वौइज कुमंदः अमा हजारः सुकर सत केफर जदांन हिदवानःपबुरजरगांन खुदगुजासतः कलमै महैमद रसुलः अरज में कुनंदः दराइदः अजीचवेह तरः हम दरीफर मुद अदः केमुरी दान वफरजदानः मनजी करह क सुभान हु तालाः सबुबरोजः गाफेल नै वासदः चुना चदर कलाम मजीद वौ फुरकानै हमीदः खंद खबर हा दइसा या अइय हुलजीनः अवमू जिक्र लाजिक्रनः कसीर नकसीराः त्रजमाइनसः एक सांने कइमान आवर दइ दपसियादे कुनंद खुदायतालाशः वसयार इयांन सबु वराजः काम कालु लाहताला जिक रूलाहः कया मनव कउदनः अलाजनु वहेमः वयत फुकरन यानीयाद कुनंद खुदापराः दरिहाल इसदादव्रतीस सतः व पहलु सत व पहलु जदः वहर चुक वासदः व अजाजी कर खुदायताला राः गाफैल ने वासदः ववाजे सलातीन्यः मोज्य मसेखरा सुकरानमाल वइ मलाक ये समै आंव रदः हजरति सेख कबुल न करद अदः वरखु वासत इसौः वरइवद की मुरीदरन फरजदानः मराकसनरूः जानंदः सलाती न्यवर इमांनीः मंजै मैं जुमलः हबुबात दीवानी चुला जल कुत वफर जोट वगर जालकः माफफरमुद अेदः के मुरीदानः वफरजदान मनः नैवा यद के समावद दसत सेखः हलाक सवदः जराकर सुलः अला सललाहः अलेहु सलमैंः फरमुद अंदः कातुलेलन पसफिनारि हरके खुदराहला कमें कुनंद जाय वौदर दोजख सः अगर समांराराजः वो मु जाहमत विरसानदः पस एस वरकुनदः तां जायजा अज खुदाय करीम वर रहीमः विसावदः अगरतोफिक खबर नै वासदः पस एहा करम सरः यह मैदर सुलराः इला सरे सांनदः अगर वो जोई निसाफनै वासदः अंगा कसतः वरतन वस कुनंदः वदि गरफर मुदनः पंज बखत गुसलःबुकुनंदःनिमाज बुग जारदःव रोजे माह मुवार करःमजान वेदारदःवज कुतमाल विदहेदःनीयत हजकाब विर सांनदःतावा जे मुरीदानःइलत मास करद अदःकीह जरती पीर दसत गीरजीःमापंजवखतःगुसलकरदनःचुगने तो

वांन:मैवाज फर मुदन:केदर वक्षत वामदाद:गुसल बुकनंद:वदिगर वखत हाये वजू साखत:निमाज बुकनंद:चुन्याचरू सुल:सलला अलउ सलमै:फरमुद असत असला तइमा दुदीन फ्मन:अकमहा फगद:अकामुदीन मत्र कहा कुफनल:हदमुदीन:इयान नीमाज रावर पाय दारद पस चुनान सती के दीन:खुदरावरपास दासत वासद वाके सेक नीमाज रात्र:कदे हददीन खुदराख रा बकर बकरद वासद्य:वगां सत खुदरन परहेज कुनंद:व दुरी वासद:की दिलरास्याह कुनंद:वसु दसु वाइगरा खुरदन परहेज कुनंद:व दुरीवासद:की वहर के सद:सवाइ वगीद:इके दान दकी वौ अजमानेस:औमा अजवौ नसतमैं कालुलाह ताला:याकल नरवौ फहुव असुदल अजा:दिगर फरमुद अज खुरदन गोसत ही साब:वीसी मारस:चुकम सायखान:महमदी व खवानंद की गोसत व खुरद:जानवर वखुसी खुरदे आंमदमज बुइसुदहीम चुनीफरमान:हक सुभानुहुताला:जंद सुध व चराहगां मरफत:पस एमुरीदान मन:ए चुनी करामात:दरमीयान सुं मा कु जासं की जानवर वखु सीखुरदं आमंद मजबुसवाद वकीत वान दकी वो राज्य दा:कुनदप सवेह तरस की परहेज कुनंद:गल वगल खुरदन माफसव जांम च्यारय सदीवा पांच सदीम फसाह कसु भानहुं ताला:महमंद मुसतफा:सललाह अलहु सलम:अफंव फरमंद सव कलमै तइय बगोयद:अलाहि लाहि इललाहि महमंद रसूली लाहि तादर आयंद भर भिसत विलाही साब:वलिलाय जाब एति य जनामु''''''

एक सम जाम्भोजी आपका हजुरीया नु कह रे थे मांड की पहेली जांणौ थौ।

जाम्भोजी कहया जाण्यस्यां –जाम्भोजी पहेली कह –

मांडा सगते धरम कराइयां,जां धरमां उपरी भाव।
दोनो पंथ बताइयां,मनै मानै जीह जाय।

साथरियाँ कहे देवजी इह कौ विचार कहो –जाम्भेजी विचार कह्यौ,श्रब जमाती सुण्यौ ।नाथजी वील्ह जी न कह्यौ वील्ह जी कथा ग्यान चरी कही –

पूर्वदेश कन्नौज कालपी कानपुर आदि में भ्रमण करते समय श्री देवजी ने वहाँ के लोगों को धर्म पर दृढ रहने के लिये कहा था। उपरोक्त शब्द प्रदान किया था तथा बतलाया था कि यदि कोई आपके साथ जोर जबरदस्ती करे, तो उपरोक्त पंचनामा शब्द दिखा देना।

कभी भी धर्म को जोर जबरदस्ती से नहीं चलाया जा सकता। धर्म तो अपनी इच्छा के अनुसार ही ग्रहण किया जा सकता है। धर्म तो स्वभाव है। अपना स्वभाव तो अपना ही रहता है। दूसरे का जोर जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। थोड़ी देर के लिये भले ही किसी को मजबूर किया जा सकता है, किन्तु समय आने पर पुन: यथावत हो जाता है।

नाथोजी कहते हैं–हे वील्ह! उस समय की बात है जब श्री देवजी के साथ हम कानपुर में थे। एक समय श्री जाम्भेजी ने स्वयं ही अपने साथ रहने वाले साथरियों से पूछा–आप माड यानी जोर ने पहेली का विचार बतलाया–यदि जबरदस्ती–शक्ति के बल पर धर्म चलाते हैं तो वह धर्म नहीं है। हिन्दु या मुसलमान जिनका जिस धर्म पर भाव है, वही धर्म ग्रहण करेगा।

दोनों हिन्दू एवं मुसलमान धर्म बता दिया है। जिसको जिस धर्म पर चलना है, वह उसी धर्म पर चले। इस प्रकार का विचार श्री देवजी ने बतलाया। सभी साथरियों ने सुना । हे वील्ह मैंने भी सुना था। और वही विचार मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तुम भी इस विचार से आगे बढना।

इस प्रकार से श्री देवजी कानपुर से जबलपुर और गाडरवाड़ा होते हुए मालवे आये। वहाँ पर

महाराज एवं दावद दोनों भाइयों को सचेत किया। ये लोग भी पूर्व देश के रहने वाले थे। श्री देवजी को देखकर उन्हें चेता हुआ। अन्यथा ये लोग बिश्नोई पंथ से दूर हटते जा रहे थे। साक्षात् विष्णु ही आये हैं, ऐसा देख कर वहाँ प्रहलाद पंथ के छ: सौ जीव भी श्री चरणों में आये और पुन: अपने पंथ को प्राप्त कर के अपनी सद्गति प्राप्त की। सोध्या जीव सुजीव ''सुजीवों की खोज की थी। यह बात सत्य है।

वहाँ से चलकर जमात मेवाड़ आयी। चित्तौड़ देश के शासक सांगा राणा और उनकी माता झालीराणी श्री देवजी के अनुयायी थे। सांगा की मांग पर ही श्री देवजी ने पूर्व देश के व्यापारियों को चित्तौड़ की राज्य सीमा में पुर, दरीबा, संभेलिया आदि गाँवो में बसाया था। वहाँ क्षत्रिय वंश के बिश्नोई निवास करते हैं। पुर में घाटमजी थापन रहते हैं। वहीं पर श्री देवजी विराजमान हुए।

पुर निवासियों ने सुना कि देश देशान्तरो से भ्रमण करते हुए आज हमारे देव हमारे ही ग्राम में पधार चुके हैं। गाँव के लोग एकत्रित होकर ढोल नगाड़े मृदंग आदि अनेकों वाद्य बजाते हुए नृत्य गान करते हुए श्री देवजी का स्वागत किया। श्री जाम्भोजी ने उन्हें ज्ञान, ध्यान नियमों का उपदेश दिया। उनके द्वारा दी हुई प्रेम भेंट स्वीकार की। संत शिरोमणि श्री देवजी पुर गाँव में विराजमान थे।

सदा ही साथ में रहने वाले हरि के परम भक्त रणधीरजी एक दातुन तोड़ लाये। वैसे तो जाम्भोजी ने नियमो में कहा था कि हरा वृक्ष नहीं काटना अर्थात् दातुन भी हरे वृक्ष का नहीं तोड़ना। किन्तु रणधीर जी ने दातनु तोड़ी। इसलिये अपराधी भाव से मुँह नीचे किये हुए खड़े थे। जाम्भोजी ने देखा कि आज रणधीर उदास खड़े है। हाथ में बैर की दातुन ले आया है।

जाम्भोजी ने कहा–हे रणधीर! यह दातुन तुमने झाड़ी की ही तोड़ी है, किन्तु डाली तोड़ तो डाली ही है। अब तुमने अपराध कर ही डाला, किन्तु अब भी समय है इसे तू जमीन में गड्ढा खोदकर गाड़ दे। यह पुन:अपने आप जैसी बैरी थी, वैसे ही बन जायेगी। इसके मीठे–मीठे फल लगेगें। बच्चे बड़े लोग जीमेंगे तो तुम्हारा प्रायश्चित हो जायेगा। यदि जान या अनजान में वृक्ष को हानि पहुंची है यानि काटा गया है तो उस पाप का शमन करने के लिये पुन:दूसरा वृक्ष लगाया जावें।

हे वील्ह! इस प्रकार से श्री देवजी के कहने पर उनकी ही प्रेरणा से वह डाली गार में गाड़ दी गयी। वही डाली हराभरा फलदार वृक्ष बन गया। अब भी वहीं खड़ा हुआ श्री सिद्धेश्वरजी की स्मृति ताजा करता था। अभी ही कुछ समय पूर्व मुझे समाचार मिला है कि घाटम जी का एक छोटा सा पौत्र उसी बैर के नीचे खेल रहा था। उस बैर का एक काँटा चुभ गया। छोटा बच्चा रोने लगा–उस बच्चे की माँ ने उलाहना देते हुए कहा–

यह जाम्भोजी ने क्या किया? बैरी का पेड़ लगाया है। यदि बड़–पीपल लगाते तो दर्शन ही करते। आज इस प्रकार से काँटा तो नहीं चुभते। इस प्रकार से दु:खी मन से घर परिवार के लोग सो गये। प्रात:काल उठकर देखा तो वहाँ पर बैर के बीच में बड़ उग आया था। यह दिव्य चरित्र गाँव के सभी लोगो ने देखा था। अब तक तो वह बैर में उगा हुआ बड़ का पेड़ ज्यों का त्यों खड़ा हुआ है। श्री देवजी का परिचय दे रहा है।

इस प्रकार से पाँच दिनों तक श्री देवजी पुर में ही रहे। जहाँ पर चरण चिह्न चिह्नित हुए वहाँ पर साथरी बन गयी। पुर से रवाना होकर श्री देवजी दरीबा होते हुए संभेलिया पहुँचे। संभेला गाँव के पास ही सांगा राणा ने तालाब खुदवाया था। तथा तीर्थ स्नान के लिये पेड़ियाँ बन्धवायी थीं।

सभी जाति पाति के लोग वहाँ पर एकत्रित हुए थे। वहाँ पर समेलन किया था। इसलिये उस जगह का नाम संभेलिया पड़ा। परम पवित्र तालाब के किनारे श्री देवजी ने आसन लगाया था। वहीं पर ही हवन यज्ञ करके ज्योति की स्थापना की थी। श्री देवजी ने तालाब का महात्म्य बतलाते हुए कहा था कि यह स्थल गंगा

यमुना जाम्भोलाव सदृश ही परम पवित्र है। इस तीर्थस्थल में स्नान करने से पापों की निवृत्ति होती है। जहाँ पर श्रीदेवजी ने आसन लगाया था, हवन किया था, वहाँ पर एक स्थिर थम्भा (खंभा) रोपा था। उस पर एक पटड़ा चढ़ाया था, जिसे यज्ञ स्तूप कहा जाता था।

सांगाराणा ने पूछा था कि- हे हरि! यह क्या कौतुक कर रहे हैं? श्रीदेवजी ने सांगा को सचेत करते हुए कहा था मैंने यहाँ पर तुम्हारे राज्य की स्थिरता हेतु यह यज्ञ स्तूप रोपा है। जब तक यह स्थिर रहेगा तब तक तुम्हारा राज्य भी स्थिर रहेगा। ध्यान रहे कि इसे कोई हिला न पाये। यदि हिल गया तो तुम्हारा राज्य भी हिल जायेगा।

सांगा राणा ने बात सत्य कर मानी और वहाँ पर चौकीदारी करने हेतु अपने सिपाहियों को बिठा दिया था तथा उसी उपलक्ष्य में साल में दो मेले भरते हैं। हे वील्ह! इस समय तो वहाँ पर जाम्भोजी का चेला साणिया भूत-प्रेत सेवी वहाँ पर पहुँच चुका है। उसी चौकी पर ज्योति मंदिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए प्रयत्नशील है तथा तालाब की संवराई खुदवायी का कार्य भी उसने अपने हाथ में लिया है।

हे वील्ह! मुझे विश्वास है कि यह व्यक्ति वहाँ पर विशाल मंदिर का निर्माण करवायोगा क्योंकि उसको वही पर इमली के पेड़ के नीचे अथाह धन की प्राप्ति हुई है। इसमें भी मैं श्रीदेवजी की ही प्रेरणा मानता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है। क्योंकि इस मंदिर की नीव तो श्री देवजी ने अपने ही हाथों से रख दी थी। जाम्भोजी का प्रारम्भ किया हुआ कार्य तो अवश्य ही दिव्य तथा परिपूर्ण होगा।

सद्गुरु जाम्भोजी ने मेवाड़ में परोपकार का दिव्य कार्य पूर्ण करके वहाँ से आगे चले और मेड़ता की तरफ प्रस्थाान किया। पीछे नौबत बजती रही। अश्रूपूर्ण नेत्रों से प्रेम विभोर होकर श्रीदेवजी को निहारते रहे। जब तक आँखों से ओझल नहीं हो गये, तब तक उन लोगों को एकटक दृष्टि लगाये हुए देखा गया।

हे वील्ह! प्रेम ही जीवन का रस है। बिना प्रेम का जीव तो शुष्क मरुभूमि की तरह केवल नाममात्र का है। सभी प्राणियों के प्रति प्रेमभाव हो, तो उन्ही में ईश्वर का दर्शन सुलभ करवाता है। प्रथम प्राणियों के प्रति प्रेमभाव होवे, तो उसी प्रेम का विस्तार ही ईश्वरीय प्रेम है। वहाँ के लोगों का प्रेमभाव तो हमने अद्भुत अनिर्वचनीय ही देखा था। संतों की मण्डली श्रीदेवजी के पीछे गंगा की धारा सदृश चली और मेड़ता आ पहुँची।

मेड़ता के राव दूदा को श्री जाम्भोजी ने केर की लकड़ी दी थी और कहा था कि यह खांडा ले जाओ। जब तक पास में रहेगा, तब तक तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा। इस बात को दूदा का बेटा जानता था। अपने पिता के लिए राज्य दिलाने वाले को भी जानता था। उस समय दूदा का बेटा राजसिंहासन पर विराजमान था। वह अपने परिवार के लोगों के साथ श्रीदेवजी का स्वागत करने हेतु अनेकों प्रेम की भेंट लेकर आया था।

राजा ने प्रार्थना करते हुए कहा-हे देव! आप अपने शिष्यों के सहित हमारे राजमहल में अवश्य ही पधारें। हम आपका उपकार कभी भी नहीं भूल सकते। आपका ही दिया हुआ यह राज्य है। हम सभी आपके ही अधीन हैं। हमारे रनिवास में आप चलें। आपकी बेटी मीरा आपके दर्शनों के लिए लालायित रहती है। दिन रात न जाने क्या कुछ मन ही मन गुनगुनाती है। यह कैसी बालिका है? हम तो उसकी गति को नहीं समझ सकते।

हे वील्ह! मीरा का दादा राव दूदा जाम्भोजी का परमभक्त था। जैसा दादा था, वैसा ही संस्कार मीरा में जन्मजात थे। दादा तो परलोकवासी हो गये, किन्तु अपनी पौत्री में भक्ति का बीजारोपण कर गये थे अथवा पूर्व जन्म की कोई भक्त देवी ही राव दूदा की पौत्री बनकर आयी थी। इस जन्म में मीरा के सद्गुरु की

परमावश्यकता थी। बिना गुरु के तो अन्धेरे में लट्ठ मारने वाली बात ही थी। दूसरा जन्म होने से पूर्व जन्म के संस्कार सोये हुए थे। इस समय कोई ऐसा आवे, तो उन संस्कारों को जाग्रत कर दे। मीरा इस समय समझदार बालिका थी। उसे तो केवल एक ज्योति मिल जाये, तो अंधकार तो भागने के लिए तैयार ही था।

जाम्भोजी ने अपने शब्दों में कहा था– 'जो ज्यूं आवे सो त्यूं थरपा, साचा सों सत भायों।' जो जिस भावना योग्यता से आता है, श्री जाम्भेश्वरजी कहते हैं कि मैं उसको उसी योग्यता के अनुसार ही ध्यान कर्मादिक देता हूँ और जो सत्य में प्रतिष्ठित लोग है वे तो मुझे बहुत ही प्यारे हैं। मीरा भी अभी बालिका ही थी। उसे किसी भी तरह से समझाया जा सकता था। वह मार्ग जो उसके अनुकूल भी हो और आसान भी हो। श्रीदेवजी ने मेड़ता के राव दूदा के महल में मीरा बालिका को एक बाल कृष्ण कन्हैया की सुन्दर मूर्ति प्रदान की और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा–

हे बेटी ! यह तुम देख रही हो। यह कौन है ? यदि तुम नहीं जानती हो, तो बतला देता हूँ। यह कृष्ण कन्हैया है। यही जगत का स्वामी है। यही घट–घट व्यापक अन्तर्यामी है। यही तेरा सर्वस्व स्वामी है। इसके अतिरिक्त इस जीव का कोई साथी नहीं है। इसकी ही पूजा–अर्चना किया कर। मीरा ने सहर्ष वह मूर्ति लेकर अपनी छाती से लगायी और सदा–सदा के लिए प्रेमसम्बन्ध जोड़ लिया। अभी बालिका के शुद्ध हृदय में वह परमात्मा का विग्रह बैठ गया था।

मीरा ने कहा– 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई। एक समय मीरा की माँ कहीं विवाहोत्सव में जाने की तैयारी कर रही थी। मीरा ने स्वाभाविक रूप से पूछ लिया कि माँ! आज कहाँ जा रही हो ? मीरा की माँ ने कहा– बेटी ! आज अपने ही सम्बन्धियों की बेटी का विवाह है, वहाँ पर दूल्हा आयेगा। वही मुझे जाना है। मीरा ने पूछा– मेरा पति दूल्हा कौन है ? कब आयेगा ? माँ ने कहा– तेरा पति तो युगों–युगों का स्वामी कृष्ण कन्हैया जो है। उसे तो तुम अपने पास ही छिपाये रखती है वही तुम्हारा दूल्हा है।

मीरा ने जाम्भोजी की बात सुनी थी। वही बात अपनी माँ के मुख से भी सुनी थी और पक्की गाँठ बाँध ली थी तथा मीरा ने घोषणा कर दी कि मेरा पति तो कृष्ण कन्हैया ही है। मेरे सद्गुरु जाम्भोजी तथा माँ ने भी मुझे यही बतलाया है। तभी से मीरा 'मैं तो अपने सवांलिया की आप ही हो गयी दासी रे'

नाथोजी कहते हैं–हे वील्ह ! भले ही मीरा का विवाह चित्तौड़गढ़ के राणा परिवार में राजकुमार रतनसिंह से हुआ था। सांसारिक सुख में मीरा अपने सांवरिये को भूल नहीं सकी थी। राज परिवार की बहू बन कर गयी थी। राज नियमों एवं अपने कर्तव्यों का पालन भी किया, किन्तु उसकी दृष्टि सदा ही भगवान् में लगी रही।

कुछ समय पश्चात् ही मीरा के पति का देहान्त हो गया था। जिनकी गोद में खेलकर मीरा बड़ी हुई थी, उन राव दूदा का देहान्त तो पहले ही देख चुकी थी। इस समय अपने पति एवं अपनी जन्मदात्री माता का भी देहान्त भी मीरा ने देखा था और झेला भी था। संसार की असारता को प्रत्यक्ष देखा था। मीरा को वैराग्य हो गया और अपने मायके मेड़ता में ही अधिकतर रहने लगी। साधु संत, भक्तों की संगति करना, भजन गाना, प्रेम में नृत्य करना, मीरा के लिए तो सहज ही था। किन्तु राजपरिवार इससे सहमत नहीं थे। वे मीरा से नाराज रहा करते थे।

मीरा को अनेकों कष्ट भी दिये। किन्तु मीरा कष्टों को भी सुख मानकर सहन कर गयी। विष का प्याला भी अमृत करके पी गयी। विषैला सर्प भी गले का हार मानकर पहन लिया। परमात्मा जिनकी सहायता करते

हैं, उनके लिए सभी विघ्न बाधाएँ निर्मूल हो जाती हैं। मीरा को उपदेश देकर जाम्भोजी ने राजा से कहा–

हे राजन्! तुम अपने पिता की चलाई हुई मर्यादा को भूल नहीं जाना। मेरा दिया हुआ खांडा और भगवां वस्त्र जब तक तुम्हारे राज्य में रहेगा, तब तक तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा।

हे वील्हा! दो दिनों तक जाम्भोजी महाराज मेड़ते में ही रहे और वहाँ से आगे के लिए प्रस्थान किया और मनाणै गाँव पहुँचे। मनाणै में मेंहदोजी राहड़ रहते थे। उन्होंने देवजी को तन–मन–धन समर्पित किया और जमात के लोगों को प्रेम से भोजन भी दिया। श्रीदेवजी के चरणचिह्न मंडवाकर अपने घर में रखे। वहीं पर छोटा भाई टोहोजी भी उनतीस नियमों का पालन करते हुए रहते थे। उन्होंने वृक्षों की रक्षा करने का बीड़ा उठाया था।

वहाँ से आगे पोलास गाँव में श्रीदेवजी ने आगमन किया। सम्पूर्ण न्यात जमात श्रीदेवजी से मिलने के लिये आयी। वहाँ के गाँवों के लोग भी जैसे हुड़िया, मनाणा, मोखमपुरा, भूतावा, दाबड़िया, पालड़ी, रामपुर , दमोही, आसोजाई, कुचामण, नैणास, पुनास, राजोद, बिचपड़ी, जालोड़ी, राणा, इत्यादि सभी गाँवों के लोगों ने एकत्रित होकर धर्म मर्यादा में रहकर जीवनयापन करने की प्रतिज्ञा की।

मेड़ता के गाँवों से आगे चले और प्रभुजी रामड़ावास जा पहुँचे। श्री की सुन्दर सौम्य मूर्ति का दर्शन करके भक्त लोग आनन्दित हुए रामड़ास में जगदीश्वर ने स्वयं आकर डेरा लगाया था। इसलिए उस को बडेर कहते हैं। बड़े लोगों द्वारा डेरा (आसन) लगाने के कारण बडेर कहते हैं। रामड़ावास में बहुत दिनों तक श्रीदेवजी रहे थे। वहाँ पर चौसठ गाँवों के लोग एकत्रित हुए थे। इसलिए रामड़ावास का महत्त्व बढ़ गया था। ये सभी गाँव जोधपुर राज्य के अधीन हैं। वहाँ पर राजा जोधा, सांतल, मालदेव तो पूर्व में ही श्री जाम्भोजी से परिचय प्राप्त कर चुके थे।

जम्भेश्वरजी जब रामड़ावास में पधारे थे, उसी दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। उसी दिन प्रथम वार रामड़ावास में चौसठ गाँवों का मेला भरा था। उसी दिन की स्मृति में अब भी कार्तिक पूर्णमासी को मेला भरता है। रामड़ास तथा अन्य गाँवों को कृतार्थ करके एक दिन सवेरे ही श्रीदेवजी रामड़ास को धाम बनाकर चल पड़े।

उनके पीछे–पीछे जमात के लोग चले आ रहे थे। न जाने अब आगे कहाँ जायेंगे, कौनसे जीवों का उद्धार करेंगे? ऐसे जीव भी कौन से रह गये हैं, जिनका कल्याण होना है? जमात के लोग पीछे–पीछे चले आ रहे थे। किन्तु जिज्ञासा शांत नहीं हो रही थी। एक रात्रि मेवासी की पहाड़ी पर व्यतीत की। इसलिए उस पहाड़ी को मेवासो कहते हैं।

वहाँ से भी प्रात:काल प्रस्थान किया और दूसरे दिन लोहावट के जंगल में पहुँचे। लोहावट का वही जंगल जहाँ पर इससे पूर्व भी जोधपुर नरेश मालदेव से भेंट हुई थी। लोहावट की साथरी में तीन दिनों तक निवास किया और आगे बढ़ चले। एक रात्रि मूंजासर तथा दूसरी रात्रि पड़ियाल पहुँचे और वहाँ निवास किया। तीसरी रात्रि को शाम के समय जाम्भोलाव पर पहुँचे।

वहाँ सरोवर पर जालवृक्ष के नीचे श्रीदेवजी विराजमान हुए वहीं पर सभी आसपास के गाँवों के लोग आये थे। उसी दिन से ही मेले की स्थापना हुई थी। जिनके मन में जो भी संशय था, उसी का समाधान श्रीदेवजी से चाहते थै। जाम्भोजी ने आये हुए भक्तों के भावों को देखकर अनेकों प्रकार से ज्ञान देकर समझाया था।

जैसलमेर के राव जैतसी ने यह सुना कि श्रीदेवजी हमारे देश में लोगों को कृतार्थ कर रहे हैं। तुरन्त अपने सभी कार्यक्रम छोड़कर के जाम्भोलाव पर आकर श्रीदेवजी के सामने हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ। राव

जैतसी ने हाथ जोड़े- हे देव! अब तो मैं भी बुढ़ापे को प्राप्त हो गया हूँ। इस जीर्ण शीर्ण शरीर का कुछ भी पता नहीं है। यह न जाने कब छूट जाये ? आपका अन्तिम दर्शन मेरा कल्याण करेगा। अब मुझे क्या आज्ञा है ? भक्तों की सेवा करूं। यदि मुझे आज्ञा प्रदान करो, तो मेरा सौभाग्य ही होगा।

श्री जम्भेश्वरजी ने रावल को सचेत करते हुए कहा- हे राजन्! यह शरीर तो पंचभूतों से बना हुआ है। इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं हैं। यह तो पराया है। परायी वस्तु चाहे तो रहे या जाये इसमें किसी का भी जोर नहीं है। तुम्हारी यह जीवात्मा, जो इस शरीर में बैठी हुई है, भोग भोग रही है और कुछ नया कर्म भी कर रही है। इन कर्मों को लेकर इस जीर्ण शरीर से प्रस्थान कर जायेगी और नया शरीर धारण कर लेगी।

तुम यह शरीर नहीं हो, तुम तो जीवात्मा परमात्मा स्वरूप हो। अमृतस्या पुत्रा तुम तो अमृत अविनाशी परमात्मा के पुत्र हो। उस सर्वसमर्थ बाप के बेटे होकर चिन्तित नहीं होना चाहिये। अपने राजकुमार को अपना राज्यभार सौंप दो और अब अन्तकाल में केवल परमात्मा विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे के थोड़े से जीवन को व्यतीत कर दो। यदि तुम्हें कुछ परोपकार कार्य करने की इच्छा है, तो यहाँ पर सरोवर पर मिट्टी खुदवाई हेतु कुछ धन खर्च करो। तुम्हारा पुण्य बढ़ेगा। यही परोपकार का पुण्य कार्य होगा।

जेतसी ने पूछा- हे देव! आपकी कृपा से जैसा अपने आज्ञा प्रदान की है, वह मैं अवश्य ही पूर्ण करूँगा। किन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि आप यहाँ पर बहुत समय तक विराजमान रहे हैं। अब भी, इससे पूर्व भी किन्तु आप इस वृक्ष के नीचे ही बैठे रहे हैं। आपके लिए हम लोगों ने कोई आसन, मंदिर, मेड़ी आदि का निर्माण नहीं किया। आपकी स्मृति सदा बनी रहे, इसके लिए मैं यहाँ पर एक कमलासन का निर्माण करना चाहता हूँ। यद्यपि आप तो कमल सदृश ही निर्लेप है। फिर भी हमारे जैसे साधारण लोगों के लिए आपकी स्मृति सदा तरोताजा बनी रहे, इसके लिए मैं आप से प्रार्थना कर रहा हूँ।

ऐसा कहते हुए जैतसी ने श्रीचरणों को पकड़ लिया और कहा- आप हमारी भावना को समझेंगे और ठेस नहीं पंहुचायेंगे। हे वील्हा! रावल जैतसी की श्रद्धा भक्ति भाव से भगवान् तो द्रवित हो गये और कहा- जो तुम्हारी इच्छा है।

ऐसा कहते हुए रावल जेतसी को कमलासन बनाने की आज्ञा प्रदान की। रावल जेतसी ने तुरंत जैसलेमर से पत्थर मंगवाकर श्री देवजी के बैठने की स्मृति में कमलासन का निर्माण करवाया। श्रीदेवजी ने जाम्भोलाव की महिमा का वर्णन श्रीमुख से करते हुए कहा-

हे भक्तो! यह पवित्र सरोवर परमपावन तीर्थ बन गया है। मुझे भी यह स्थान बहुत ही प्रिय लगता है। यहाँ पर आकर कोई सज्जन तालाब से मिट्टी निकालेगा, स्नान, संध्या, हवन आदि करेगा तो उसके सकल पाप मिट जायेंगे। बहुत समय तक जाम्भा सरोवर पर रहने के पश्चात् एक दिन वहाँ से श्रीदेवजी अपने साथरियों के साथ प्रस्थान कर गये। वहाँ पहला पड़ाव रणीसर में किया। वहाँ पर भी साथरी की स्थापना करके दूसरा पड़ाव जैसला में किया। वहाँ से आगे चला-नाथूसर के पास झींझाला पर सैंसे कसवें के गाँव में पुनः आये।

वहाँ से किसनासर के पास जाँगलू की साथरी पर श्रीदेवजी आये। वहाँ से आगे चलकर कूदसूं के पास खारा गाँव में आसन लगाया। श्रीदेवजी के पास जमाती लोगों ने जल की मांग की तब गाँव के लोगों ने कहा- यहाँ तो जल खारा है। यह बात जमाती लोगों ने श्रीदेवजी से कहा कि आप तो कहते यहाँ का जल मीठा है, किन्तु यहाँ के लोग तो खारा बता रहे हैं। श्री देवजी ने कहा- यदि गाँव के लोग खारा बता रहे हैं तो खारा ही होगा, ये लोग झूठ क्यों बोलेंगे ?

ऐसा कहते हुए श्री देवजी आगे बढ़ गये। गाँव के लोगों ने कूएँ का पानी दूसरे दिन पीया तो खारा ही हो

गया। दूसरे दिन अलाय की साथरी में श्रीहरि ने आसन लगाया। जहाँ पर भी श्री चरण टिके वहीं पर साथरी की स्थापना हो गयी। वहाँ पर श्रीदेवजी तीन दिनों तक रहे और वहाँ से चलकर अपनी मातृभूमि पीपासर चले आये।

यहीं पीपासर में ही तो श्री देव के माता-पिता को बाल्य लीलाओं द्वारा प्रसन्न किया था। यहीं पीपासर में ही तो श्रीदेवजी ने माता हांसा, पिता लोहटजी को प्रसन्न किया था। वहीं इस पवित्र ब्रजभूमि में वही कन्हैया ही स्वयं नन्द-जसोदा लोहट हांसा को पुत्र रूप में आकर कृतार्थ किया था। अब तो वो पूज्य माता पिता स्वर्गवासी हो गये थे। अपनी पैतृक सम्पत्ति भी वितरण कर चुके थे। पीपासर के लोगों ने अपने को अपना ही सम्बन्धी आया जानकर धन्य माना।

पीपासर से विदा होकर अतिशीघ्र ही जाम्भोजी सम्भराथल पर ही आ विराजे। बहुत दिनों के पश्चात् श्रीदेवजी सम्भराथल पर आये हैं। ऐसा सुनकर आसपास के गाँवों के लोग छोटे बड़े सभी आने लगे। बहुत दिनों तक इस प्रकार से मिलन, आगत स्वागत होता रहा। लोग अपनी समस्या लेकर आते, कोई कहता- हे महाराज!

आप तो बहुत वर्षों के बाद यहाँ पर लौटकर आये हैं। आपके बिना तो हमारा जीवन व्यर्थ ही हो गया। कोई अपनी घरेलू समस्या लेकर उपस्थित होता। कोई कहता मेरी गाय, भैंस, बकरी आदि खो गयी। आप बताने का कष्ट करें। कोई शिकारी आकर पूछता- हे महाराज! मेरा बाण निशाने पर लगता क्यों नहीं ? कोई राजा आकर अपनी आयु के बारे में पूछता ? कोई पुत्रहीन नारी आकर पुत्रप्राप्ति की कामना करती। कोई धनहीन नारी आकर धन प्राप्ति का उपाय पूछती।

श्री जाम्भोजी 'जो ज्यूं आवे सो त्यूं थरप्या' का सिद्धांत अपनाते। सभी को यथा योग्यता अनुसार कुछ न कुछ तो प्रदान अवश्य ही करते। सांईं के दरबार में आया हुआ कोई खाली हाथ लौटकर नहीं जाता था। ऐसी महिमा से मण्डित श्रीदेवजी सम्भराथल पर विराजमान रहते।

बारहवाँ अध्याय

बारह थाप घणां न ठाहर

नाथोजी कहते हैं कि हे शिष्य! श्री देवजी ने एक शब्द में कहा था कि मैं अपना कार्य पूर्ण कर लूँगा अर्थात् बारह करोड़ का उद्धार हेतु आया हूँ। यही मेरा प्रमुख कार्य है। इसे पूर्ण करके मैं अधिक समय तक नहीं रुकूँगा। मुझे ऐसा आभास हुआ है कि वह समय आ चुका है।

एक समय सद्‌गुरु देव अति प्रसन्न हुए और अपने शिष्य संतों को पास बुलाया। चार हजार संत श्री देवजी के साथ रहा करते थे। ये सभी संत योग्य थे। उनमें से कुछ संतों को महंत बनाया। अन्य कुछ लोगों को उनके सहायक नियुक्त किया। काली पोशाक के संतों का महंत रेड़ोजी को बनाया और श्री देव ने स्वयं रेड़ोजी के सिर पर आशीर्वाद का वरद हस्त रखा। रणधीर जी को भगवी पोशाक का महंत बनाया और ऋधि-सिद्धि का धनी बनाया। सभी संतों ने मिल कर रणधीर को महंत गद्दी पर बिठाया। लाल पोशाक के संतों का महंत निहालदास को बनाया। ये तीनों महंत सद्‌गुरु की आज्ञा में चलने वाले संत शिरोमणि थे।

सफेद पोशाक के महंत की सफेद पोशाक-जाम्भाणी टोपी,चोला,चादर,एवं माला श्री देवजी ने अपने पास ही रख ली। किसी अन्य को नहीं दी। श्री देवजी ने कहा-

यह सफेद पोशाक सन्दूक में रख दो। हे वील्ह! उसी समय वहाँ पर उपस्थित जमाती लोगो में से किसी ने पूछा-हे देव! यह सफेद पोशाक आप किस के लिये रख रहे हो?

इसका भेद (रहस्य) हमें बतलाने की कृपा करो ?उसी समय ही कुछ मुस्कराकर श्री देवजी ने कहा -

कि एक स्वांति साह बादशाह लखनऊ का था। उसने मेरे से शब्द सुना था।वह अज्ञान अन्धकार में लिप्त था, किन्तु अन्त समय में जाग्रत हुआ था। उसका शरीर पूर्ण हो गया है। वह मृत्यु को प्राप्त कर के स्वर्ग गया। किन्तु वहाँ से अतिशीघ्र ही लौट आया है। और रेवाड़ी में परशराम के घर जन्म ले लिया है। इस समय वह चार वर्ष का बालक हो चुका है। आठ वर्ष के पश्चात् वह बालक यहाँ पर आयेगा। उसे यह सफेद पोशाक दे देना।

रणधीर ने पूछा हे देव! आप अपनी ज्योति समेटना चाहते हैं। हम उस बालक को कैसे पहचानेंगे? श्री देवजी ने कहा-आप लोग उन्हें शब्द सुनाना। एक बार सुनने से ही उसको शब्द याद हो जायेगा। यही उसकी पहचान होगी। उसे यह सफेद पोशाक देकर महंत बना देना। वही मेरा उत्तराधिकारी होगा। इस पंथ का प्रचार-प्रसार करेगा। उस बालक का नाम बिठल होगा। उसे पुरोहित बना देना। वह धर्म प्रचार करने में अति कुशल वक्ता,ज्ञाता एवं कवि होगा। वह बिठल मेरा ही स्वरूप है। उसे सभी भूप भी मानेंगे।

नाथोजी कहते हैं-हे वील्ह! यह बात संवत पन्द्रह सौ तिरानवै के प्रारम्भ काल में कही थी। श्री देवजी ने भविष्य में घटने वाली घटना का संकेत दिया था। इस समय तुम यहाँ पर मेरे पास बैठे हुए ज्ञान श्रवण कर रहे हो। यह कोई अकस्मात घटना घटित नहीं हुई है। वह बिठल तुम ही हो जो इस समय यहाँ पर पहुँच गये हो। यह ठीक समय है। तुम्हारे पर जाम्भोजी की अपार कृपा रही है। तुम्हारे पूर्व जन्म का तुम स्मरण करो तो तुम्हें ये बातें सत्य सिद्ध हो जायेंगी।

हे वील्ह! यह कृपा केवल तुम्हारे पर ही नहीं हुई है। मेरे ऊपर भी वही कृपा हुई है। उसी समय मुझे भी अपने पास बुलाया और कहने लगे "नाथिया तूं खड़ीजै ना"

हे नाथा! तू अपना शरीर संभाल कर के रखना। मेरा अन्तर्धान हो जाये, तो भी तू वियोग में शरीर को नहीं त्यागना। यह मेरी आज्ञा है। क्योंकि तुम्हारे कण्ठस्थ एक सौ बीस शब्द हैं। ये शब्द तू बिठल को सुनाना। अपने पास का यह अमूल्य धन अपने शिष्य को देकर के उऋण हो जाना। बिठल को अपना शिष्य बना कर इस रखी हुई पोशाक को सौंप देना।

हे वील्ह! अब तक मैं भी जिन्दा था। केवल इसलिये कि श्री देवजी की रखी हुई धरोहर एवं शब्द मैं तुझे दे दूँ। अब मैंने तुझे पोशाक भी दे दी और शब्द -धन भी दे दिया।अब मेरा कार्य भी पूर्णता की ओर बढ रहा है। जो कुछ भी तुम्हें अन्य बात पूछनी है तो पूछ लो। इस प्रकार से वील्हो ने अपने पूर्व जन्म का वृतान्त श्रवण किया और रोमांचित होकर आँखें बन्द कर ली। समाधिस्थ होकर पूर्व जन्म को देखने लगे। कुछ समय तक इस प्रकार से अवस्थित होकर के आत्मा के अथाह सागर से कुछ ज्ञान के कण प्राप्त कर के पुन:वील्ह ने पूछा-

हे गुरुदेव! यह बिश्नोई पंथ पृथक पंथ ही चला है। इसके पुरोहित, गुरु, याचक भी तो भिन्न ही होने चाहिये। किस को क्या अधिकार सौंपे हैं? कृपया बतलावें? क्योंकि किसी भी पंथ का संस्कार ही बिगड़ गया, तो जड़मूल से ही पंथ धूल धूसरित हो जायेगा। जिस पन्थ का कोई रखवाला ही नहीं होगा, तो वह पंथ बिखर जायेगा। यदि ऐसी कोई व्यवस्था की है, तो बतलाने का कष्ट करें।

नाथोजी उवाच-इस पंथ के तीन रखवाले नियुक्त किये गये हैं। तीनों को ही श्री गुरुदेव ने अलग-अलग अधिकार दिये हैं। अन्त समय में यही बात साथरियों ने भी पूछी थी। श्री देवजी ने इस प्रकार से बतलाया था। वही बात मैं तुम्हें बतलाता हूँ-

चार पोशाकों के चार महंतो की स्थापना जाम्भोजी ने की है। इनका कर्तव्य कर्म होगा कि ''संजीवन मन्त्र'' यानि ''सुगरा मंत्र'' देने का प्रथम अधिकार होगा। हवन पूजा पाठ आदि धार्मिक कार्य करने के लिये भ्रमण करेंगे तथा सोयी हुई प्रज्ञा को जागृत करेंगे। संत ही इस मेरे भगवें वेश के अधिकारी होंगे। मोह माया से छूटकर स्वंय का कल्याण एवं जगत कल्याण हेतु जिस किसी भी प्रकार से प्रयत्नशील रहेंगे। धार्मिक क्रियाओं द्वारा संस्कार, हवन, आदि करते हुए धर्म का प्रचार-प्रसार करना साधु-संतों का मुख्य कर्म होगा।

दूसरा महत्वपूर्ण कर्म पुरोहित का होता है। जो विवाह मृत्यु एवं जन्म पर संस्कार करवाता है। बिश्नोई पंथ के पुरोहित भी बिश्नोई को ही नियुक्त किया है। ये पुरोहित कलश की स्थापना कर के पाहल मन्त्र एवं हवन करके संस्कार करवायेंगे, इसलिये इन्हीं को स्थापक(थापन) कहा जायेगा। संस्कार करने का कार्य पुरोहित थापनों को सौंपा है।

तीसरा कार्य वंशावली लिखना एवं विवाहोत्सव में गाना -बजाना एवं दान ग्रहण करना गायणों को सौंपा है। जागरण, सत्संग करना, हरि का गुण गान करना तो सभी को ही अधिकार है। जो जानता है, वह यह कार्य करे। आप लोग अपने अपने दायित्व का निर्वाह करके बिश्नोई पंथ के पथिक बन कर अपने जीवन को सफल बनायें।

नाथोजी कहते हैं हे वील्ह! श्री जाम्भोजी ने इस प्रकार से सभी का कार्य निर्धारण किया है। वैसे तो कोई कर्म न्यून या महान नहीं है। अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। ये चारों वर्ण तो भगवान् ने ही बनाये हैं। किन्तु गुण कर्म के आधार पर ही जाति वर्ण व्यवस्था का निर्धारण होता है। जो लोग जिस योग्य थे, उनको वैसा ही कार्य सौंपा गया। जिनको जो कार्य सौंपा गया, उन्होंने हाथ जोड़ कर स्वीकार किया। क्योंकि वे लोग उस कार्य के योग्य ही थे। हे वील्ह! उस समय श्री देवजी ने रणधीर को

अपने पास बुलाया और हंसते हुए कहने लगे–हे रणधीर! तुम तो महंत ऋद्धि –सिद्धि के मालिक हो। विश्वंभर की स्वर्णनगरी से सिलम लाया था। उसका क्या करेगा?

इस प्रकार का धन तो मृत्यु का कारण बन जाता है। मैं तो अतिशीघ्र ही शरीर का परित्याग करूँगा। पीछे तुम्हें इस सिलम से क्या करना है? रणधीर ने हाथ जोड़े और कहा –हे देवजी ! इसमें तो आप ही प्रमाण हैं। जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही मैं करने को तैयार हूँ। आपकी कृपा होगी तो असंभव को भी संभव कर दूँगा।

जम्भेश्वरजी ने कहा–यह स्वर्ण सिलम अखूट है। इसको जितनी काटेगा इतनी ही वृद्धि को प्राप्त हो जायेगी। इसलिये इस अलौकिक वस्तु से कुछ अलौकिक परोपकार का कार्य ही करना। जाम्भोलाव तालाब खुदवाना, वहाँ पेड़ी बंधवाना। तथा यहाँ सम्भराथल के नीचे भी तालाब खुदवाने का कार्य परोपकार का होगा। तुम्हें इस सिलम से ऐसे मन्दिर का निर्माण करवाना चाहिये, जिसमें बैठ कर हवन, पूजा–पाठ, सत्संग हो सके। और यदि तुम लोग मेरे जीवन का स्मृति चिह्न बना सको, तो वह भी आने वाली पीढी के लिये प्रेरणादायक होगा। तुम्हें ऐसा ही कुछ कार्य करना चाहिये जो चिर स्थायी होवे,तथा साधना–भजन करने में सहायक सिद्ध हो सके।

हे रणधीर! यदि तुम इस सिलम से परोपकार का कार्य करते रहोगे, तो तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। यह वस्तु तुम्हारे पास ही रहेगी। तुम से कोई छीन कर के नहीं ले जा सकता। चोरी कर के नहीं ले जा सकता। यदि कोई ले भी जायेगा तो भी वापिस तुम्हारे पास चली आयेगी। यदि तुम्हें मारने के लिये विष भी दे देगा, तो भी तुम्हारे पर असर नहीं होगा। यह सिलम ऐसी सिद्धिवान है।

श्री देवजी ने रणधीर को एक मुद्रिका देते हुए कहा–यह अपने पास में रखना। जब तक यह तुम्हारे पास में रहेगी तब तक कोई भी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यह मुद्रिका इस सिलम की रक्षा के लिये देता हूँ। जब तक यह मुद्रिका तुम्हारे पास में रहेगी, तब तक सिलम भी रहेगी। किन्तु एक बात का ध्यान रखना होगा। यदि वह मुद्रिका प्रसन्न होकर किसी को स्वंय ही तुमने दे दी, तो तुम्हें खतरा पैदा हो जायेगा। फिर तो यह मुद्रिका, एवं सिलम तथा तुम तीनों ही बिखर जाओगे। धन के लोभ में लोग कुछ भी कर सकते हैं। इसलिये तुम्हें जितना हो सके अतिशीघ्र ही आवश्यक कार्य कर लेना चाहिये।

तुम्हें भोजन करते हुए सावधान रहना चाहिये,भोजन में विष मिलाया जा सकता है और विष जीवन को समाप्त कर देता है। इसलिये अपने हाथ में यह अंगूठी पहने रखो, नित्य प्रति भोजन करने के पश्चात् यह अंगूठी वाला हाथ मुख पर फेर लेना, भूल मत करना। यदि कोई विष दे भी तो शीघ्र ही विष का प्रभाव समाप्त हो जायेगा।

हे रणधीर! यह मुद्रिका तुम ग्रहण करो। इसे सामान्य नहीं समझना। यह वही अंगूठी है जो रामचंद्रजी ने हनुमान को दी थी और लंका में भेजा था। सीता की खोज करने के लिये। तुम्हें आश्चर्य होगा–इसी मुद्रिका के प्रभाव से ही हनुमान जी समुद्र को पार कर गये थे और लंका में सीता की खोज कर ली थी। सीता को विश्वास इसी मुद्रिका से ही दिलाया था। लंका में जाकर सकुशल वापिस लौट आया था। ऐसा ही कार्य तुम्हें भी करना होगा। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना कि तुम्हारी प्रसन्नता से दी हुई यह मुद्रिका चली जायेगी। ऐसा कहते हुए जाम्भोजी ने अपने हाथ की अंगूठी रणधीर को सौंप दी।

रणधीरजी को दिव्य वस्तु सौंपने पर समीपस्थ रहने वाले साथरियों ने हाथ जोड़े–

हे देव! आपने अलग–अलग सभी को दिव्य वस्तुएँ प्रदान की हैं। हमारा भी उद्धार कैसे होगा? यह भी

कुछ उपाय करो ? अपना हाथ हमारे सिर पर भी धरो। आप तो अपने स्वरूप में लीन हो रहे हो,अब तो हमें पता चल ही गया है। जिस प्रकार से हमारी भी सद्गति हो जावे, ऐसा उपाय हमें भी बता दो। आपके पीछे हमारा उद्धार करने वाला कौन होगा ? हम लोग पुण्य दान किसको करें, किसकी उपासना पूजा करें ? आप की ही वार्ता हम तो सत्य मानते हैं। आपके सिवा अन्य कोई भी हमारा उद्धारक नहीं है।

ऐसी भक्तों की जिज्ञासा सुन कर के श्री जम्भेश्वरजी कहने लगे-**आप लोग एक विष्णु के नाम का ही जप कीजिये, यही सबसे बड़ा धर्म है। इसी धर्म की नौका पर सवार होकर संसार सागर से सहजता से पार उतर जाओगे। विष्णु यह परमपिता का नाम है। इसका उच्चारण कोई भी कर सकता है यहाँ ऊंच-नीच, जाति-पाँति का भेदभाव नहीं है। इसी नाम के प्रताप से मृत्यु को जीता जा सकता है। जो कुछ लेना है, तो नाम ही लीजिये। नाम के प्रभाव से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। जिन्होंने भी एकाग्रता से विष्णु का नाम जप किया है, उन्होंने मानो सभी कुछ कर लिया है। नाम में ही योग,यज्ञ, तप आचार आदि समाहित हो जाते हैं।**

श्री देवजी ने कहा-हे शिष्यों! अब मैं तुम्हें पूजा का विधि-विधान बताता हूँ। पूजा के योग्य कौन है ? यह भी सुनो। सायं काल में नित्यप्रति विष्णु का गुणगान, साखी-भजन, आरती सभी परिवार के लोग मिल बैठ कर सस्वर गान करो। कण्ठ सुर से गाया हुआ प्रेम गान नौ प्रकार की भक्ति ही है। परमात्मा विष्णु का गुणगान करना, यही पूजा है यह कार्य तुम लोग नित्यप्रति किया करो। नित्य तुम्हारे घर परिवार में जागरण होगा। इससे भगवान् प्रसन्न होंगे।

''सांझे जमो सवेरे थावण'' सांयकाल में जमो -जागरण एवं प्रात:काल हवन करो।

कलश की स्थापना करके पाहल करो,यही ईश्वरीय पूजा है। हे लोगो ! मेरा शिष्य Cिश्नोई होगा वह हवन किये बिना रह नहीं सकता। अवश्य ही नित्यप्रति हवन करेगा।

श्री जाम्भोजी ने कहा -हे शिष्यों! हवनीय अग्नि में ही विष्णु का मुख है। यदि आप विष्णु जाम्भोजी का दर्शन करना चाहते हैं, तो अग्नि में ही दर्शन करो। यह दर्शन करना तो नित्य हवन रूपी कार्य से हो सकता है और यदि वार्ता करना चाहते हैं, तो शब्द पढो। उनसे वार्ता भी हो सकेगी।

यदि नित्यप्रति अग्नि की पूजा हवन द्वारा करते रहोंगे तो कभी भी अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं होंगे।घर में सुख शांति बनी jहेगी।आने वाली संतान सुपात्र होगी।

जीवन में युक्ति-मुक्ति मिलेगी। इसलिये हवन एवं जागरण करना यह तुम्हारा कर्तव्य कर्म है। इसे नि:स्वार्थ भाव से करते रहो। जो मनुष्य नित्य प्रति हवन करता है,देवता विष्णु की पूजा इस प्रकार से करता है, वह तो देव तुल्य ही है। ऐसे Cिश्नोई यज्ञ कर्ता का दर्शन भी देव तुल्य कल्याण कारक है।

साथरियों ने हाथ जोड़ कर पूछा-हे देव, आपने जो नित्य प्रति हवन एवं जागरण की बात कही है, यह तो हमेशा होना कठिन है, क्योंकि हम तो गृहस्थ लोग हैं। हमारी बहुत सी जिम्मेवारियाँ है। कैसे निभा पायेगें ? यदि इस नियम में कुछ ढील दी जाये, तो हो सकता है यह नियम निभ भी जाये। हे देव ! धर्म को आगे चलाने के लिये कठोरता से कार्य नहीं चलेगा।उसमें कुछ लचीला पन तो आना ही चाहिये।इसके बारे में आप जैसा आदेश देंगे, वही मान्य होगा।

श्री जाम्भोजी ने इस प्रकार की समस्या का समाधान करते हुए कहा-यदि आप लोग नित्यप्रति जागरण एवं हवन करने में समर्थ नहीं हो, तो भी यह नियम त्यागने योग्य नहीं है। कुछ विशेष दिनों में तो अवश्य ही जागरण-हवन करो। जैसे -अवतार की जयन्ती-जन्म दिवस,पूर्णमासी, ग्रहण के अवसर पर, जन्म संस्कार,

सूतक की शुद्धि के लिये, मृत्यु के तीसरे दिन पातक निकालने के लिये, विवाह के समय, जागरण, गृह प्रतिष्ठा या अन्य उत्सव पर, होली के अवसर पर, सुगरा मन्त्र संस्कार के अवसर पर, अमावस्या के पर्व पर या अन्य किसी भी प्रकार की अशुद्धि दूर करने के लिये ये कुछ समय आते हैं। ऐसे समय पर हवन-यज्ञ अवश्य ही करना चाहिये।

दो महान् पर्व आते हैं। एक अमावस्या दूसरी पूर्णमासी। इन दोनों अवसरों पर तो हवन अवश्य ही करें। आप लोग प्रत्येक गाँव में हवन करने हेतु एक चौकी-मन्दिर की स्थापना अवश्य ही करें। वहाँ पर सभी गाँव के लोग एकत्रित होकर अमावस्या का हवन अवश्य ही करें। आप लोग गोपालन करते हो। एक बिलौने का घी अमावस्या को देव अर्पण अवश्य ही करो। इससे तुम्हें नित्यप्रति हवन का फल मिलेगा।

साथरियों ने पूछा-हे गुरुदेव! आप हवन की बात करते हैं। किन्तु हम लोग तो वेद मन्त्र तो जानते ही नहीं हैं। बिना वेद मन्त्रों के, बिना विधि विधान के यज्ञ कैसे सम्पन्न होगा? इसके लिये नित्य प्रति या प्रति अमावस्या को हम वेदज्ञ पंडित कहाँ से लायेंगे?

श्री देवजी ने कहा-आप लोग मेरे द्वारा उच्चारण किये हुए शब्द तो सुने ही होगें। आपको याद भी अवश्य ही होगें। यदि याद नहीं हैं, तो आपके साथ में नाथो मौजूद है। इसको एक सौ बीस शब्द कण्ठस्थ हैं। इससे सीख लेना। आप लोग हवन करते समय इन शब्दों का सस्वर उच्चारण करो। एक शब्द पूर्ण हो जाने पर''स्वाहा''कह कर के आहुति प्रदान करो।

गुरुदेव ने कहा -''मोरा उपख्यान वेदूं,कण तत भेदू'' मैंने जो ये शब्द उच्चारण किये हैं, ये वेद ही हैं। जिस प्रकार वेद मन्त्र ध्वनि से उच्चारण किये जाते हैं, उसी प्रकार से ही ये शब्द भी बोले जाते हैं। जो लाभ वेद मन्त्रों से आपको मिलेगा, वही लाभ इन शब्दों से भी प्राप्त हो जायेगा।वेद मन्त्र तो आपके वश की बात नहीं है। अति दुरूह हैं। कहीं थोड़ी भी यदि उच्चारण के स्वर में गड़बड़ी हो गयी, तो उनका प्रभाव उल्टा हो जायेगा।

स्वर के अपराध से वृत्रासुर मारा गया था और इन्द्र को शक्ति मिली थी। वृत्रासुर के पिता ने अपने बेटे की अभिवृद्धि के लिये और इन्द्र का नाश करने के लिए यज्ञ किया था। उस समय मंत्रों का उच्चारण किया -इन्द्र शत्रों वर्धस्व स्वाहा इन्द्र का शत्रु बढे,यह कहना चाहता था किन्तु वैदिक स्वर के उल्टा हो जाने से इन्द्र की अभिवृद्धि हो गयी। और वृत्रासुर मारा गया था। इसलिये तो ये शब्द मरुभाषा के वेद मन्त्र हैं। इनसे कोई स्वर का अपराध नहीं है। जैसा आप चाहे वैसा उच्चारण करें। वेद मन्त्रों सदृश ध्वनि का प्रसार करें। और स्वाहा कह कर के आहुति प्रदान करें।

श्री देवजी ने कहा -हे शिष्यो! आप लोग जल्दी ही भूल जाते हो। मैंने उनतीस नियमों में एक नियम यह भी बतलाया है कि ''होम हित चित प्रीत सूं होय,वास बैकुण्ठा पावो'' हवन करे, किन्तु सर्व हिताय।सर्व सुखाय,तथा चित्त-मन लगा कर के करो। एवं प्रेम भाव से भी करे। तो बैकुण्ठ की प्राप्ति होगी। यही विधि और विधान है। जिस यज्ञ में ये तीनों बातें नहीं हैं और अन्य सभी कुछ वेद मन्त्र आदि है, तो ऐसा तुम्हारा यज्ञ करना अव्यवहारिक (अफल दायक) है।

यज्ञो वै विष्णुः ''यज्ञ ही विष्णु है।इसके द्वारा ही विष्णु की उपासना है।आप लोग जो कुछ भी कमाई करते हैं, उसका फल देने वाला तो ईश्वर विष्णु ही है।विष्णु द्वारा दिया हुआ फल आप लोग यज्ञ के द्वारा वापिस विष्णु को ही लौटाते हैं और यदि नहीं लौटाते तो आप लोग चोर हैं। आपकी चोरी कब तक चलेगी? एक दिन ऐसा कभी आ जायेगा,जो एक साथ सभी कुछ निकल जायेगा। यज्ञ करने के पश्चात् जो अवशिष्ट

बचता है, वह आपका भोजन अमृत तुल्य है। तुम्हारे पापों का नाश करने वाला है। यज्ञ करने से ही वर्षा होती है। वर्षा से ही अन्न पैदा होता है।

अन्न से रजवीर्य बनता है। उससे मावन शरीर बनता है। मानव जीवन का मूल आधार यज्ञ ही है।

साथरियों ने पूछा हे गुरुदेव! हवन के बारे में तो आपने जो कहा, वह हम समझ गये। हवन से पूर्व जागरण के बारे में भी कुछ अवश्य ही बतलाइये ? नित्य प्रति जागरण का नियम तो निभना असंभव ही है। श्री विष्णु जाम्भोजी ने कहा -जागरण का अर्थ सत्संगति है। यह ''उत्तम संग सू सगूं,उतम रंग सूं रंगू'' उत्तम संग तो नित्य करना चाहिये। उत्तम रंग तो सदा ही चढाना चाहिये।

''सांझ आरती गुण गाओ'' यह नियम भी जागरण का ही रूप है। शाम को सोने से पूर्व थोड़ी देर के लिये भगवान् के गुणगान करो। यदि आप लोग आरती, साखी, भजन नहीं जानते तो कैसे गा सकते हो ? तब अन्य किसी दूसरे गुणी ज्ञानी धर्माचारी पुरुष द्वारा भी जागरण कराया जा सकता है। किन्तु यह तो नित्य प्रति असंभव है। इसलिये एक महिने में अमावस्या आती है। उस दिन अवश्य ही जागरण करवावे। प्रत्येक घर में यदि करवाने की सामर्थ्य नहीं है, तो गाँव के सामुहिक स्थान-देवस्थान में बैठ कर सभी लोग सामूहिक कर सकते हैं।

यदि अमावस्या के दिन में सामूहिक रूप से समिलित नहीं हो सकते, तो अपने घर में ही वर्ष में एक बार तो अवश्य ही जागरण (सत्संग) करवावें। उसको भी पुण्य उतना ही प्राप्त हो जायेगा। इसलिये हे शिष्यो! मैंने तुम्हें हवन और जागरण का माहात्म्य विस्तार से बतला दिया है। मैंने जो भी आपको बतलाया है यें सभी बातें केवल कहने-सुनने की नही हैं। ये तो जीवन का आधार हैं। इनसे आपके जीवन में उन्नति आयेगी। जब तक जिओगे तो सुखी होकर और मृत्यु पर मुक्ति दिलाने वाली ये बातें आप लोग ग्रहण करो।

विशेष रूप से अमावस्या के दिन व्रत करो। तथा हवन विष्णु की उपासना करो। अन्य सांसारिक कार्य से दूर रहना होगा। तो किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाएँ, हानि ,अकाल मृत्यु,आदि व्याधियों से बचाव होगा। जागरण सत्संग पशु से मानव बनायेगी। सोये हुए लोगों को जागृत करके उन्हें अंधकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाने वाली होगी। यह बिश्नोई एक पन्थ यानि मार्ग है। इस पर जो भी चलेगा, वह विष्णु के पास पहुँच ही जायेगा। इस पंथ को आगे भी बढाना है। यहीं तक के लिये ही नही है, रुकना मत, आगे बढते ही जाना है।

हे शिष्यों! आगे के लिये आप लोग इस मार्ग का प्रसार करना। आप लोगों ने इस मार्ग पर चलकर अनुभव प्राप्त कर लिया है। यदि आपको अच्छा लगा होगा तो आप अपनी संतान को भी बता देना तथा जो भी इस पंथ का अनुयायी हो सके, उन्हें इस पंथ पर चलने के लिए प्रेरित करना। इसी पंथ पर चलकर ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर आदि अनेक राज,भक्त योगी, ऋषि, अपना कल्याण कर चुके हैं। इस समय इस कलयुग में भी मैं वही प्राचीन मार्ग बताने के लिये इस रूप में आया हूँ। मैंने अब तक इस पंथ के अनुयायी बारह करोड़ बना दिये हैं। इस समय मैं अपना कार्य पूर्ण कर चुका हूँ। बारह थाप घणा न ठाहर'' अब मैं ज्यादा दिन नहीं ठहरूँगा।

इस धर्म मार्ग का भार अब मैं आप लोगो के कंधे पर डाल कर जाता हूँ,आप लोग इसे अच्छी प्रकार से निभाएँगे। इस मार्ग को लुप्त नहीं होने देंगे। वैसे तो मेरा कहीं आना या जाना होता ही नहीं है। ''गुरु आसन संभराथले''मेरा आसन तो सम्भराथल पर ही अडिग है। आप लोग भूल मत जाना। यदि भूल गये तो दौरे में गिरोगे। जहाँ चिन्हो तहां पायो'' आप लोग जहाँ पर भी मुझे याद करोगे, वहीं पर उपस्थित रहूँगा। फिर भी जो

तुम्हें यह मेरी देह दिखाई देती है, यह अभी नहीं रहेगी। इस देह से जो कार्य करना था, वह संपन्न हो गया है। अभी अधिक दिन रखने का कुछ भी प्रयोजन नहीं है। ''कहै सतगुरु भूल मत जाइयो,पड़ोला अभै दोजखे''

हे वील्ह! सद्गुरु ने पूर्व शब्द में कहा है कि आप लोग भूल मत जाना, यदि भूल गये तो दोजख में गिर जाओगे।अब तक तो नहीं भूले हैं किन्तु समय सभी कुछ भूला देता है। ज्यों-ज्यों समय आगे बढेगा त्यो-त्यों भूल भी बढती जाएगी। इसलिये भूले-भटके लोगों को सचेत करते रहना अपना धर्म है। इस धर्म से हम गुरु शिष्य मुख न मोड़ें। सदा सचेत रह कर इस पंथ रूपी खेत की रखवाली करें। तभी जाम्भोजी के शिष्य बन पायेंगे।

नाथोजी ने अपने शिष्य वील्ह को जाम्भोजी की लीला का बखान करते हुए आगे कहा-जब हम साथरिया लोग जाम्भोजी की तरफ एक टक दृष्टि से देख रहे थे कि आगे क्या आदेश देंगे, इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय हमारी मनोभावना को देखकर श्री जाम्भोजी ने गुप्त शंका का समाधान करते हुए इस प्रकार से कहा-

हे साथरियो! हे सज्जनो! आप लोग संसार की मोह माया को त्याग कर आध्यात्मिक मार्ग में प्रवृत्त हो रहे हो। आपका अवश्य ही कल्याण होगा। निवृत्ति मार्ग में आप अवश्य ही चलें। किन्तु प्रवृत्ति मार्ग,परोपकार कार्य भी भुलाने योग्य नहीं है।

जो अब तक मर्यादा मैंने बाँधी है, उसको भी आगे स्थिर रखना है। आप लोग सहयोग की भावना से कार्य करना। किसी विशेष पर्व पर अमावस्या,पूर्णमासी,होली, विवाहोत्सव आदि शुभ अवसरों पर एकत्रित होकर एक दूसरे के दु:ख को समझने की कोशिश करो।

यह समाज सहयोग की भावना से ही विकसित हो सकेगा। ''संघे शक्ति कलयुगे'' इस समय कलयुग व्यतीत हो रहा है। कलयुग में तो एकता,सामूहिकता,में ही शक्ति है। बिखराव में तो तिनका-तिनका होकर उड़ जायेगा। एकता में सभी तिनके मिलकर एक गट्ठर बन जायेगा। वह तोड़ने से नहीं टूटेगा।

यह आपका बिश्नोई समाज अभी नया ही बना है। इसको बाह्य तूफानों से डर रहेगा। आप समाज के अग्रगण्य लोग सचेत रहेंगे, तो ये अन्य धर्मो क तूफान आपके पास आ कर मन्द गति को प्राप्त कर के हवा के रूप में परिवर्तित होकर निकल जायेंगे। यह समाज सुचारू रूप से चले, इसके लिये मैंने साथरियों की स्थापना कर दी है जहाँ तहाँ जो भूमि पवित्र थी, उसी भूमि पर मैं गया हूँ। वहीं पर साथरी बन चुकी हैं। ये साथरियाँ धर्म प्रचार करने हेतु धर्म पीठ हैं। यहाँ पर आप साधु-संत रह कर अपने आस पास के गाँवों में धर्म प्रचार करेंगे।

हे साथरियों! आप लोग भी मेरे साथ थे। हमने वहाँ पर विश्राम किया है। कुछ समय तक ठहरे हैं। आप लोगों ने अवश्य ही वहाँ की भूमि की पवित्रता का अनुभव किया ही होगा। इस समय आप लोग जहाँ, जिस साथरी में जिसको रहना ठीक हो वहीं पर आप लोग जा सकते हो। धर्म का प्रचार होवे, पतित जीवों का उद्धार हो सके, तो यह बहुत ही पुण्य का कार्य होगा। आप लोग धर्मोपदेश देने में भी कभी आलस नहीं करना। विद्या दान ही बहुत बड़ा दान है। इन धार्मिक कार्यो के लिये ये साथरियाँ उपयुक्त स्थान होगी।

मैं जहाँ कहीं भी थोड़ी देर के लिए ठहरा था तथा अपने साथरियाँ साथ में थे वहीं साथरी नाम से कही जाती है और जहाँ में मैंने अधिक समय तक विश्राम किया है, वह धाम कहलायेंगे। साथरियाँ तो अनन्त हैं, किन्तु धाम सीमित संख्या में हैं। विशेष रूप से यह सम्भराथल तो मुझे बहुत ही प्रिय स्थल धाम है यहाँ पर तो मैंने जीवन का अधिकांश समय धर्मोपदेश करते हुए तथा गऊ चराते हुए बिताया है। यह सर्व शिरोमणि

कैलाश पर्वत है। इस कैलाश पर जो चढ़ जायेगा, वह तो स्वर्ग (मोक्ष धाम) पर भी पहुँच जायेगा। मेरा आसन स्थिर तो सम्भराथल पर ही रहा है। आगे भी रहेगा। मैंने यहाँ ग्वाल-बालों के साथ गउवें चराई हैं, अनेकों दिव्य लीला, कृष्ण चरित्र दिखलाया हैं। बड़े बड़े उद्दण्ड लोगों को मात्र शब्द द्वारा ही उनकी शैतानता को नष्ट कर दिया। जो कार्य मैंने इस जन्म में कर दिखाया है, वह तो मैं पूर्व राम-कृष्ण अवतार में भी नहीं कर पाया हूँ। उन अवतारों में तो मैंने जड़मूल से व्यक्तियों का नाश किया। किन्तु अबकी बार तो उनके पापों का क्षय कर रहा हूँ।

पीपासर यह पास में ही मेरी जन्मभूमि है। जन्म भूमि एवं माँ को कैसे भूला जा सकता है। यह तो स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। वे पीपासर के ही बालक थे। जिनके साथ मैंने बहुत खेल खेले हैं। माता-पिता, बुआ आदि सम्बन्धियों को भी आश्चर्य चकित कर दिया करता था। मेरी तो कुछ स्वाभाविक क्रियाएँ ही थी, किन्तु पीपासर वासियों के लिए तो अलौकिक घटनायें बन जाती थी। यह पीपासर भी धाम है।

यहाँ पास में ही उत्तर की तरफ सम्भराथल की सीमा में ही तालवा ग्राम है। इसमें आप देख रहे हैं एक जाल का वृक्ष एवं दो खेजड़े के वृक्ष खड़े हैं। ये तीनों वृक्ष त्रिवेणी हैं। इनके बीचोबीच शिव धूणा हैं। यहाँ तो शिवरात्रि को विशेष पूजा होती आई है। इस समय ये लोग भूल गये हैं। आप खोद कर देखना। एक त्रिशूल तथा धूणा की विभूति यहाँ मिलेगी। यह पवित्र स्थान भी अति निकट ही है। यह शिव धाम तीनों युगों का है। यह भी धाम की कोटि में ही आता है।

आपने देखा होगा कि कपिल सरोवर, जहाँ पर राजा जेतसी ने कमलासन बनाया है तथा स्वच्छ जल से तालाब भरा हुआ शोभायमान हो रहा है। मैंने वहाँ भी जीवन का बहुत समय व्यतीत किया है। वह स्थान पहले से ही तीर्थ तो था और अब यहाँ पर कमलासन की स्थापना हो जाने से धाम भी बन गया। हमारे प्रिय संतों को चाहिए कि आप लोग वहीं पर ही स्थाई निवास करो। तीर्थ स्नान,धाम का दर्शन करके अपने जीवन को सफल बनावो। पाण्डवों ने यहीं पर ही यज्ञ, दान, तप करके महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी। आप लोग भी वहीं तपस्या करके मनेन्द्रियों पर विजय हासिल करके सच्चे अर्थों में साधु बनो। इसलिए जाम्भोलाव धाम एवं तीर्थ दोनों ही है।

हे शिष्यो! आप लोग एवं कुछ राजा लोग भी मेरे साथ रोटू गाँव में गये थे। नौरंगी का भात भरा था। वहाँ पर खेजड़ियों का बाग लगाया था। उनके वहाँ अन्न का भण्डार भरा रहने का वचन दिया था। उससे पूर्व भी साणियाँ को रोटू गाँव से निष्कासित किया था। रोटू नगरी मुझे बहुत ही प्यारी है। बार-बार मुझे खींच ले जाती है। इसलिए रोटू गाँव में साथरी बनी है। वह भी धाम कहा जाये, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मैंने राव दूदा को खाण्डा दिया था। उनका राज्य स्थिर किया था। कुछ समय पूर्व भी मैं मेड़ता गया था। आप लोग भी साथ में ही थे। छोटी बालिका मीरा दूदा की पौत्री को कृष्ण कन्हैया की एक सुन्दर मूर्ति प्रदान की थी। मीरा तो दादा की सुपौत्री भक्ति के रंग में रंग गयी थी। पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। किन्तु मीरा का भाई जगन्नाथ राज्यमद में मस्त हो रहा था। उसको कुछ भी नहीं दिख रहा था। वह अपने दादा के खांडे का सम्मान करना नहीं जानता। इस प्रकार से उस खांडे को अपने पास कब तक रखेगा, कुछ समय पश्चात् ही वह उस पवित्र खांडे का अपमान करेगा, यह मैं देख रहा हूँ।

किसी सम्बन्धी के उलाहने पर फेंक देगा, तब उसका राज्य स्थिर कैसे रहेगा? जो भी होगा, वह होनहार ही होगा अन्यथा कुछ भी नहीं होगा। यह जगन्नाथ तो केवल नाम मात्र का ही जगन्नाथ है। उस जगत के नाथ को तो वह कुछ भी नहीं जानता। यह जगन्नाथ अपने सम्बन्धियों के यहाँ पर विवाह में सम्मिलित

होने के लिए आसोजाई डूंगरी गाँव में जायेगा। वहाँ पर उसके सम्बन्धी उलाहना देंगे कि ' तू कांई राज करे है, राज तो बाबोजी यालो खांडो करे है'' इसी बात पर वह खांडा फेंक देगा। मूठ वहीं पर ही रह जायेगी और वह खांडा केशोजी संत वहाँ से ले आयेंगे और रोटू गाँव में भादुओं के घर पर रख देंगे। कहाँ की वस्तु कहाँ तक पहुँचेगी, यही तो कृष्ण चरित्र है। इसलिए मैं कहता हूँ कि रोटू धाम परम पवित्र, मुझे बहुत ही प्रिय है। यहाँ पर खेजड़ियों का बाग, साथरी, खाण्डा इत्यादि अलौकिक वस्तुएँ होंगी।

पूर्व में लोदीपुर धाम है। वहाँ पर सुरजी देवी के कहने पर एक खेजड़ी का वृक्ष लगाया था। वह वृक्ष अजर अमर है। यह परम पवित्र निशानी सदा सदा ही भक्तों के भाव को पोषित करती रहेगी। पूर्व गंगा पार के लोगों के लिये तो वह सम्भराथल ही होगा। आप लोगों ने भ्रमण के समय अवश्य ही दर्शन किया होगा, आगे भी दर्शन करते रहना।

इधर जोधपुर नगर के समीप ही रामड़ावास धाम है। आसपास के गाँवों के मध्य में ऐसा परम पवित्र धाम है। राम ने जहाँ पर निवास किया था, इसलिये यह तो पूर्व में भी धाम बन चुका था। उसी धाम को ही शिष्यों ने उजागर किया है। मुझे यह भूमि अत्यन्त प्रिय लगी थी। इसलिये मैंने अन्य भूमि को छोड़ कर रामड़ावास में अधिक समय निवास किया था। इन सभी धामो में संत लोग निवास करें। और सोये हुए लोगों को सचेत करें। इन धामों के साथ ही साथ सभी साथरियो में भी अवश्य ही निवास करें।

नाथोजी कहते हैं कि हे वील्ह! इस प्रकार से सभी को अलग-अलग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार साथरियो में और धामों में रहने की आज्ञा जाम्भोजी ने प्रदान की थी। उन्हें इच्छित वस्तुएँ भी प्रदान की थी। सम्भराथल पर चाँदनी -तंबू जो कुछ भी था, वही सभी कुछ अन्यत्र स्थानों में बाँट कर दे दिया।

रहने के लिये पवित्र स्थान होना चाहिये। पहनने के लिये वस्त्र एवं भवन भी चाहिये। तथा पेट की भूख मिटाने के लिये अन्न की आवश्यकता होती है। अन्न की पूर्ति के लिये चौबीस जगहों पर श्री देवजी के आज्ञानुसार भण्डारे चलते थे।

आगन्तुक सुभ्यागत की सेवा अड़सठ तीर्थों में स्नान के समान फलदायक होती है। कहा भी है-अड़सठ तीर्थ एक सुभ्यागत,घर आये आदरियो। जहाँ जहाँ पर भी साथरियाँ, धाम हैं, जहाँ पर भी संत लोग निवास करते हैं वहाँ वहाँ पर भोजन -जल आदि की व्यवस्था करना श्री देवजी ने बतलायी थी। अन्त समय में साथरियों को सचेत करते हुए श्री देवजी ने कहा था-

आप लोग यह भण्डारे की व्यवस्था आगे भी चलाये रखोगे। अपनी कमाई का दसवाँ भाग पुण्य दान में खर्च करते रहोगे। यदि ऐसा चलता रहेगा, तो तुम्हारे घर में अन्न, धन, रूप, लक्ष्मी, गुण आदि की कभी कमी नहीं रहेगी।

नाथोजी कहते हैं हे वील्ह! इस प्रकार की बहुत सी बातें श्री देवजी ने अन्तर्धान होने से पूर्व सभी को एकत्रित करके बतलायी थी। ये बातें मैंने श्री मुख से श्रवण की थी। वही बातें मैं तुझे बतला रहा हूँ। ये बातें कोई ज्यादा प्राचीन नहीं है। अभी थोड़े ही वर्षो की तो बात है। मैंने इन बातों को संजोय कर के रखी थी। कोई श्री देवजी का उत्तराधिकारी आयेगा तो मैं उसे बतलाऊँगा। अब तुम यहाँ पर सौभाग्य वश आ ही गये हो, तो मैं तुझे बतला देता हूँ।

श्री देवजी की कृपा से ही मैं अब तक जीवित रहा हूँ। मेरे दूसरे साथी तो उनके साथ ही प्रयाण कर गये थे जाम्भोजी ने मुझे स्वयं ही कहा था ''नाथियां तूं खड़ी जै मति'' संवत् पन्द्रह सौ तिरानवे मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष सप्तमी को श्री जाम्भोजी सम्भराथल छोड़ कर लालासर गाँव के जंगल में एक हरि कंकेहड़ी वृक्ष के नीचे

जाकर विराजमान हुए

हे वील्ह! मैं यह तो नहीं कह सकता कि आप अन्तर्यामी सद्‌गुरु देव वहीं पर ही क्यों विराजमान हुए अवश्य ही कुछ रहस्य उस भूमि का रहा होगा। सदा की भांति सम्भराथल पर आने वाले भक्तों ने सम्भराथल को सूना देखा। पीछे-पीछे लालासर की साथरी पर ही पहुँच गये थे। वहाँ पर उपस्थित होकर न्यात जमात के प्रबुद्ध जनों ने हाथ जोड़ कर श्री देवजी से विनती करते हुए कहा-हे देव!

आप तो अब इस लोक को छोड़ कर चले जायेंगे हम आपके दास अत्यन्त शोक को प्राप्त हो जायेंगे। आप तो पूर्ण ब्रह्म अन्तर्यामी हैं। हमको भी साथ ले चलने की कृपा करें। आपके बिना हम यहाँ अकेले कैसे रहेंगे ? आपसे बिछुड़ने की पीड़ा हम कैसे सहन करेंगे। हम लोगों को आप छोड़कर जा रहे हैं, हमारा वश भी क्या चलेगा ?

वहाँ पर उपस्थित संतों ने हाथ जोड़ते हुए कहा-हे स्वामी! जल बिना मीन नहीं रह सकती, क्योंकि जल ही उसका प्राणाधार है। हम भी तो आपके बिना कैसे रहेंगे ? बिना प्राणों के शरीर कैसे रह सकता है ? जल बिना मीन,चकोर बिना चंदा कैसे हो सकता है ? न जाने आपके मन में क्या आया कि आप इह लोक को त्यागने को तैयार हैं। आपने अपनी सम्पूर्ण धरोहर लौटा दी है। इससे हमें विश्वास होता है कि आप अब ठहरोगे नहीं, शीघ्र ही चलने की तैयारी कर रहे हैं। हम सत्य कहते हैं कि आपके बिना हम जीवन धारण नहीं कर सकते। ऐसा कहते हुए न्यात-जमात संत भक्त मण्डली चुप हो गयी।

हे वील्ह ! ऐसी ही प्रेम भरी वाणी सुनकर श्री देवजी ने हँसते हुए कहा -आप लोग व्यर्थ में ही चिंता में पड़े हुए हो। यह देह सदा ही स्थिर रहने वाली नहीं है। "देह न जीती जाणो"अब तक कोई भी इस शरीर को जीत नहीं सका है। इसका अन्त तो एक दिन अवश्य ही होने वाला है। यह शरीर धारण करने का अवश्य ही कोई प्रयोजन होता है। बिना किसी कार्य के कोई भी यहाँ मृत्यु लोक में शरीर धारण करके आता नहीं है।

जब कार्य पूर्ण हो जाये, तो फिर यहाँ रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। बिना प्रयोजन यदि यहाँ पर करोड़ों साल तक भी रहे, तो भी कुछ होने वाला नहीं है। जब कार्य सिद्ध हो जाये तो देह का प्रयोजन पूर्ण हो जाता है। जिस प्रकार से कोई कार्य वश घर से बाहर जाता है और उसका जब कार्य पूर्ण हो जाता है, तो शीघ्र ही लौट आता है। इसी प्रकार से यह जीव बटाऊ है। इसे तो यहाँ से आगे प्रस्थान करना ही होगा। इस प्रकार से श्री देवजी ने सभी को सीख दी ओर कहा -अब आप लोग अपने अपने स्थान को चले जायें।

एक बात और भी सुनते जाओ। जब मैं यह शरीर त्याग करूँगा तब मैं ओंकार की ध्वनि करूँगा। आप लोग ध्यान से सुनोगे तो तुम्हें सुनाई देगी। उस समय जो प्रेमाधिकता से ओंकार की ध्वनि के साथ ही जो प्राणों का त्याग करेगा, उसको निश्चित ही बैकुण्ठ की प्राप्ति होगी। आप लोगों ने सत्य मार्ग का अनुगमन किया है अन्त समय में यदि ओकांर की ध्वनि सहित प्राणों का त्याग कर दोगे, तो निश्चित ही सद्गति की प्राप्ति होगी। तथा जो लोग मोह ग्रस्त हैं उनको अभी समय लगेगा।

अब आप लोग अपने-अपने घर जाओ। यहाँ संसार से चलने की तैयारी करो। यदि आप लोगों को साथ ही चलना है, तो अवश्य ही चलो। नाथोजी कहते हैं, हे वील्ह! श्री देवजी के प्रत्यक्ष द्रष्टा ही वहाँ पर थे।

उस रात्रि को वहाँ पर हमने एक दिव्य आश्चर्य देखा था। वह मैं तुम्हें बतलाता हूँ। वहाँ पर हमने सूर्य सदृश चार बालकों को देखा था। वे हो सकते हैं सनकादिक ही हों। उस समय सनकादिको नें स्तुति वैदिक छन्दों द्वारा करते हुए कुछ भाव विह्वल होकर शब्द कहे थे। मैं उन शब्दों का स्पष्ट अर्थ तो नहीं समझ सका था। क्योंकि वह शब्द संस्कृत भाषा के थे। वे मेरी समझ से बाहर थे। किन्तु मैं इतना तो कह सकता हूँ कि

वे स्तुति कर रहे थे। उनका स्वर मधुर था। सहसा ही मन को आकृष्ट करने वाला गायन था। उनकी दिव्य स्वर लहरी सुनते हुए मैं अपने आप को तथा समय को भी भूल गया था। इस समय मैं यह कहने में असमर्थ हूँ, कि उन्होंने कितने समय तक स्तुति की थी।

सनकादिक तो स्वयं ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र हैं,उनको किसी भी प्रकार की आधी -व्याधि प्रभावित नहीं कर सकती। वे तो काल के भी महाकाल हैं। इसलिये सदैव पाँच वर्ष की अवस्था में बने रहते है। उन्होंने जय -विजय पर थोड़ी भृकुटि टेढी की थी। दोनों भगवान् के द्वारपालों को मृत्यु लोक में राक्षस बन कर आना पड़ा था। वे सनकादिक उस रात्रि में आये थे और विष्णु रूप जाम्भोजी के सामने हाथ जोड़े खड़े थे। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि ये जाम्भोजी तो साक्षात विष्णु ही हैं। ये सनकादिक इन्हें वापिस बुलाने के लिये ही आये होगें। ये सनकादिक तो बैकुण्ठ लोक से लेकर मृत्यु लोक पर्यन्त अबाध गति से भ्रमण करते रहते हैं। इन्होंने श्री देवजी के पास आकर प्रार्थना की थी। आपने अब तो सभी जगहों पर देख लिया है। आपके द्वारा दिया हुआ वचन अब पूर्ण हो गया है। अब आप वापिस चलिये। यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा।

हे वील्ह! ऐसी ही कुछ संभावना मैंने देखी थी। वह मैंने तुझे बतलायी। हे वील्ह! श्री देवजी ने मिगसर का महीना शरीर त्यागने के लिये चुना था। क्योंकि पूर्व कृष्ण अवतार में श्री कृष्ण ने गीता में मिगसर माह की बड़ाई करते हुए ऐसा कहा था '''मासानां मार्गशीर्षो अहम्''' अर्थात् महीनों में मिगसर का महीना मैं हूँ। भगवान् का जन्म कृष्ण पक्ष को प्रस्तुत करने के लिये ही तो आये थे। अष्टमी आठ संख्या में जन्म होना ठीक ही था, क्योंकि अब आगे एक संख्या का विकास होना था। वह संख्या भी सर्वोच्च है। उस संख्या को पूर्ण किया अर्थात् नौ संख्या वाली नवमी को अपना कार्य पूर्ण हो गया। अब तो यहाँ एक क्षण रहना भी असंभव हो गया,कहाँ भी है -''बाराँह थाप घणा न ठाहर''सनकादिक तो हार्दिक वन्दना कर के वहाँ से वापिस चले गये।

उनके पश्चात् हमने देखा कि इन्द्र,कुबेर,गन्धर्व,किन्नर आदि भी स्तुति कर रहे थे। वह रात्रि तो अनेक ज्योतियों से जगमगा रही थी। यदि उस दिन मैं वहाँ पर नहीं होता तो ये आँखें बिना देखे आँख भी नहीं कहलाती। आँखों की दिव्यता तो देखने में ही है। रूप राशि तो उनकी अपूर्व ही थी। ये मेरे शब्द आँखों से देखे हुए दृश्य को नहीं कह सकते। कानों से उनकी स्तुति के वचन सुन कर इन कर्ण इन्द्रियों को सफल किया है।

ये देवता लोग भिन्न भिन्न प्रकार से स्तुति कर के अपने अपने लोक को चले गये।

नाथोजी कहते हैं, हे वील्ह! मैं सम्भराथल वासी श्री देवजी की महिमा कहाँ तक बखान करूँ। उनके दिव्य गुणों का तो कोई पार ही नहीं था। जिन्होंने पिच्चासी वर्षो के जीवन में अधिकतर समय सम्भराथल पर ही व्यतीत किया । न जाने सम्भराथल ही उनको इतना प्यारा क्यों था? शायद उनकी संभर -सोनवी नगरी यहीं पर ही थी। अपने ही ठीक स्थान पर बैठकर उन्होंने अलौकिक लीलाएँ की थी।

मैंने तो यह देखा है कि उनके पास से कोई जीत कर नहीं गया। जो भी आया अहंकार को गिरा कर के गया। उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को चेताया था। किसी भी प्रकार के मजहब-धर्म के झूठे पक्षपाती नहीं थे। जो सच्चा था, उन्हें ही अपना मानते थे। उनकी घोषणा थी कि '''जो ज्यूँ आवै,सो त्यूँ थरप्या,साचा सूं सतभायो।''

जहाँ उजाड़ था, वहाँ नगर बसा दिये। स्वयं ही ज्ञान का कथन किया। उन्होंने शब्द कहे। ये शब्द तो मानव जाति की अमूल्य थाती हैं। ये शब्द इनके स्वयं के अनुभूत हैं। किसी अन्य शास्त्र वेद की नकल नहीं हैं। यही

तो कारण था कि जो भी पास में आया था, शब्द श्रवण किया, वही उनका हो गया।

लोगों को मार्ग पर लाने के लिये उनके पास कोई शस्त्र नहीं था। ''ज्ञान खड़गूं जथा हाथे,कौन होयसी हमारा रिपूं'' जिनके हाथ में ज्ञान रूपी खड्ग होगा, उसका शत्रु संसार में कौन हो सकता है ? इसलिये श्री देवजी के पास ज्ञान रूपी खड्ग था, तो उनका कोई शत्रु भी नहीं था। वे तो अजात शत्रु थे।

अनेकों काजी पंडित किताब ले लेकर आये। उन्होंने किताब के अनुसार शास्त्रार्थ करने की कोशिश की। श्री देवजी ने कहा -आप लोग तो किताबों में लिखी हुई बात का रटन करते हैं। मैं तो अपनी आँखो देखी बात कहता हूँ। ये बातें हो सकता है, शास्त्रों में लिखी हुई हैं या नहीं, किन्तु मैं जो कहता हूँ वह सत्य कहता हूँ। आप लोगो ने तो राम -रावण के बारे में पढा होगा, किन्तु मैंने तो रावण को देखा है,उसके साथ लंका में यृद्ध किया था। राम का जीवन जीया है,तुम्हारी हमारी क्या बराबरी ?

योगी लोग बाह्य दिखावा ही करके अपने को योगी कहते थे। योग क्या है ?उसके बारे में तो कुछ जानते ही नहीं थे। योग का अर्थ तो जीव ईश्वर का मिलन होता है। किन्तु ये लोग तो परमात्मा से दूर का भी नाता नहीं रखते थे। संसार के रंग में रचे पचे थे। उन को भी योग मार्ग में प्रवृत्त किया। धन्य हैं वे लोग, जो श्री देवजी के संपर्क में आये,और अपने जीवन का उद्धार किया। ज्ञान रूपी खड्ग से संसार को जीता। सभी को अपना माना। ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का भेदभाव नहीं रखा।

मैंने तो अपने सद्‌गुरु भगवान् को कण-कण में देखा है। केवल सम्भराथल पर अकेले खड़े हैं। ऐसी बात नही है। मेरा तो यह अन्तिम जन्म है, क्योंकि भगवान् का वचन ऐसा ही कहता है। बहुत जन्मों के पश्चात् कोई ज्ञानी जन ही भगवान् को प्राप्त होता है। सभी जगह सर्वत्र वासुदेव परमात्मा ही विराजमान हैं। ऐसा देखने वाला महात्मा तो संसार में दुर्लभ ही है। मुझे तो ऐसा ही अनुभव हो रहा है।

हे वील्ह ! मैं तो श्री देवजी के पास आकर कृत कृत्य हो गया हूँ। अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। केवल श्री देवजी की आज्ञानुसार तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था। अब तुम आ ही गये हो और मेरे पास जो भी ज्ञान की संपत्ति श्री देवजी की धरोहर थी, वह मैंने तुझे दे दी है। अब तुम्हें आगे क्या पूछना है ?

वील्हा उवाच-हे गुरुदेव ! श्री देवजी के अन्तर्धान होने से पूर्व उन्होंने अन्तिम उपदेश क्या दिया था वह संक्षेप में मुझे बतलाने की कृपा करें। तथा अन्तर्धान होना,तथा उसके पश्चात् क्या क्या घटनाएँ घटित हुई, यह भी बतलाने की कृपा करें। इस समय आपके सिवाय अन्य कोई प्रामाणिक साक्षात् द्रष्टा पुरुष यहाँ नहीं है।

नाथोजी उवाच-हे शिष्य ! जब श्री देवजी सम्भराथल से लालासर आ गये और नवमी को प्रस्थान का समय अति निकट आया जान कर मेरे जैसे कुछ लोगों ने श्री देवजी से प्रार्थना करते हुए कहा-हे देव ! आप तो अपनी ज्योति समेट रहे हैं। आपके बिना यह सत्पंथ कैसे चलेगा ? इसमें अनेक विघ्न बाधाएँ आयेंगी।

जब तक आप विद्यमान थे,तब तक तो सभी कुछ ठीक था। अब आगे क्या होगा ? इस पंथ का स्वामी किसी को नियुक्त कर के जाइये। हमें क्या करना चाहिये,जिससे हमारा कल्याण होवे ऐसी बात बतलाइये ?

श्री देवजी ने कहा-मैंने तुम्हें जो वील्हा नाम बतलाया था, वही इस पंथ का स्वामी होगा। इसमें सन्देह नहीं करना। रेवाड़ी में परसराम सुथार के घर जन्म ले चुका है आठ वर्ष के पश्चात् यहाँ आयेगा। हे वील्ह ! वही तुम ही हो। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण तुम देख ही रहे हो। जाम्भोजी की बात सत्य हो रही है। अब तुम्हें जाम्भोजी के चलाये हुए सत्पंथ को आगे बढाना है। इसमें आने वाली विघ्न बाधाएँ दूर करनी हैं। मैंने तुझे जाम्भोजी द्वारा दी हुई वस्तुएँ भेख और शब्द दे ही दिये। अब इनकी मान मर्यादा रखना तुम्हारा धर्म है।

श्री देवजी ने अन्तिम उपदेश देते हुए कहा था कि इस धर्म से बढकर कोई धर्म नहीं है। आप लोग ठीक

तरह से उनतीस नियमों का पालन करो। ये नियम सदा ही शाश्वत (नित्य) हैं। समय परिवर्तन होता जायेगा किन्तु ये नियम मानव जाति के लिये सदैव ही उपयोगी बनते जायेंगे। इन नियमों से जीवन में युक्ति सीखो और मृत्यु पर मुक्ति प्राप्त करो।

हे वील्ह !श्री देवजी ने अपनी प्रतिज्ञानुसार मिगसर कृष्ण पक्ष नवमी के दिन शुभ वेला में ओंकार की ध्वनि करते हुए इस संसार के शरीर को छोड़ कर ज्योति स्वरूप विष्णु से अपनी ज्योति को मिला लिया। ओंकार की ध्वनि के साथ ही बादलों में चमकती हुई विद्युत सदृश शरीर से आत्मा विलग हो गयी। शरीर रूपी बन्धन से आत्मा मुक्त हो कर परमात्मा बन गयी। आत्मा अपने स्वरूप को प्राप्त हो गयी। पीछे संसार के लोगों के दर्शन एवं वार्ता के लिये धारण किया हुआ शरीर ही शेष रह गया।

श्री देवजी तो पूर्ण ही थे और पूर्णता को प्राप्त हो गये। हम लोग कब तक इस शरीर से बंधे रहेंगे ? ऐसा मान कर देवजी के साथ ओम की ध्वनि करते हुए, जो जहाँ थे वहीं स्वेच्छा से प्राण त्यागने लगे। न जाने कितने ही लोग, जो भगवान् का वियोग सहन नहीं कर सके उन्होंने भी बैकुण्ठ प्राप्ति की इच्छा से अपने को शरीर,परिवार,धन, दौलत से विलग कर लिया। जो लोग शुद्ध पवित्र हो गये थे। वे ही यह अद्भुत कार्य कर रहे थे। कहा भी है –''साहिल्या हुवा मरण भय भागा,गाफिल मरणे घणा डरे।''

प्रेम की लीला को कैसे बुद्धि की कसौटी पर कसा जा सकता है ? यह प्रेम जिसको हो जाता है, वही जानता है। संसार का प्रेम भी तो वियोग सहन नहीं कर सकता। तो जीव ईश्वर का शुद्ध सात्त्विक प्रेम कैसे सहन होगा ? जिस प्रकार से सर्प कंचुकी को छोड़ देता है, उसी प्रकार से जीवात्मा शरीर को छोड़ कर अपने पुण्य प्रताप से ज्योति से ज्योति को मिला रहे थे। न जाने कितने वियोग दुःख सहन न करने के कारण शरीर को त्याग कर के गये, यह तो गोविन्द ही जाने।

नाथोजी कहते हैं, हे वील्ह ! नवमी के दिन तो हम लोग सभी वही लालासर साथरी में ही रहे। दसमी के दिन प्रातःकाल की बेला में श्री देवजी के शरीर को समाधिस्थ करने हेतु,हमने दिव्य– अलौकिक स्वर्ग से प्राप्त सन्दूक में शरीर को समाधिस्थ करने हेतु हमने दिव्य शरीर को उठाया और वहाँ से चल पड़े। हम लोगों ने शरीर को समाधि देने के लिये सर्वोत्तम स्थान जाम्भोलाव ही चुना था। जहाँ पर श्री देवजी ने कमलासन बनाया था। इसी विचार से लालासर से चल कर पहला पड़वा समभराथल के पास ही गाँव तालवा में लिया था।

उसी दिन ही हमें अतिशीघ्रता से आगे बढना था। रात्रि निवास जागलूं की साथरी पर करना था। किन्तु जो होनहार है, वही होता है। न जाने देवजी की यही इच्छा थी। वहाँ पर ही बीकानेर का राजा जेतसी दर्शनार्थ आया था। जेतसी ने देखा कि हम लोग शरीर को लेकर आगे बढने की तैयारी कर रहे हैं। जेतसी ने कहा – संतो ! आप लोग यह स्थान छोड़ कर कहाँ जा रहे हो ? यहीं पर वह प्राचीन शिव का परम पवित्र धूणा है, यहीं पर ही समाधि लगाइये।

हमारे देश के देवता अन्य देश में कैसे ले जा सकते है ? ऐसा मैं कदापि नहीं होने दूँगा। संतों की इच्छा पर राज इच्छा हावी हो गयी। हमारे में संत शिरोमणि रणधीर ने कहा–वहाँ पर स्वयं श्री जाम्भोजी ने कमल कोश बनाया है। हम लोग वहीं ले जाना चाहते हैं। राजा ने कहा– हे संत जनो ! मैं अधिक विवाद नहीं करना चाहता। मेरी प्रार्थना है कि यहीं तालवा गाँव में शिव धाम पर समाधिस्थ कर दो। आप संत लोग मुझे क्षमा कर दो और जरणा करो।

राज आज्ञा संतों ने स्वीकार करी और वहीं पर जाल वृक्ष के नीचे शरीर को संदूक सहित रखा नींव

खोदने कार्य एकादशी के दिन प्रारम्भ कर दिया और त्रयोदशी के दिन समाधि दी गयी। वही दिन मंदिर के नींव रखने का भी है। वार शनिवार कृष्ण पक्ष तेरस मिगसर के महिने में मुकाम मंदिर प्रारम्भ हुआ। चौबीस हाथ गहरी नींव समाधि हेतु खोदी गयी थी। हमें यह देखना था कि यहाँ पर शिव का धूणा है या नहीं? इसीलिए चौबीस हाथ की गहराई में हमें शिव धूणा आदि प्राप्त हुए थे ठीक स्थान एवं समय पर श्री देवजी के सुरनर शरीर को समाधिस्थ किया गया।

बीकानेर के राजा जेतसी ने कहा-यहाँ पर अति शीघ्र ही समाधि मंदिर का निर्माण होना चाहिये। आगे आने वाले समय में श्री देवजी की यादगार बनी रहे। जैसा श्री देवजी का दिव्य शरीर एवं जीवन था। उसी अनुरूप ही मंदिर का निर्माण भी होना चाहिये। सदा सदा के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहे।

हे वील्ह! इस प्रकार की आज्ञा प्रदान कर के स्वयं जेतसी ने समाधि अपने हाथ से देकर वापिस अपने राज्य बीकानेर में पहुँचा। बीकानेर से ही लालपत्थर मंदिर निर्माण हेतु भेजना प्रारम्भ किया। रोल गाँव के सिलावटों को बुलाया गया। आठ सिलावटे पत्थर घड़ने के लिए बुलाये थे। अन्य लोग उनका सहयोग करते थे। मजदूरी रणधीर चुकाते थे। सिलाएं जेतसी द्वारा भेजी जा रही थी।

उस समय हमने एक आश्चर्य देखा था। दिन भर नौ सिलावटे कार्य करते शाम को जब रणधीरजी मजदूरी चुकाते तो आठ की ही चुकती। एक वह नौवाँ न जाने कौन था? उसका कुछ भी पता नहीं चल सका था। वैसे तो ईश्वर की लीला वही जाने, किन्तु हमारा यह अनुमान था कि हो सकता है नौवें स्वयं जाम्भोजी ही थे। या उनका कोई प्रिय देवदूत रहा होगा। वह कोई अलौकिक पुरुष ही था, जिसे हम पहचान नहीं सके ।

इस प्रकार से कार्य लगातार चलता रहा। दिन दूना रात चौगुना कार्य आगे बढता जा रहा था। रणधीर जी सोनवी नगरी से सिलम लाये थे। उसी को काट काट कर के दाम चुका रहे थे। रात्रि में काटते तो प्रात: काल पुन: वैसी ही हो जाती थी। वह तो सिद्धि वाली वस्तु थी। कभी समाप्त होने वाली वस्तु नहीं थी। जेतसी की आज्ञा थी कि जितना हो सके, उतना सुंदर मंदिर बनाया जावे। धन की कमी नहीं आयेगी। वैसे धन हेतु राजा के पास जाकर हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं थी। मंदिर निर्माण का कार्य अबाध गति से चलता रहा। किसी प्रकार की विघ्न बाधाएं नहीं आयीं। मंदिर सुंदर कलाकृति से बन रहा था।

इस प्रकार से छज्जों तक मंदिर बन चुका था। आगे का कार्य गुम्बज बनाने की तैयारी चल रही थी। जैसा प्रारम्भ हुआ था वैसा ही विशाल गुम्बज (शिखर) बनाने के लिए अनेक कलाकारों से सलाह ली जा रही थी।

तालवा गाँव ही श्री देवजी का अंतिम मुकाम हुआ। इस लिये इस स्थल का नाम मुकाम ही हो गया। सदा के लिए अंतिम मुकाम में अवश्य ही कुछ मिलेगा। जैसी जिसकी भावना होगी, वह अवश्य ही प्राप्त होगा। कुछ लोग तो दृष्ट धन की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, वह तो सांसारिक ही है। तथा कुछ शारीरिक एवं मानसिक तथा कुछ ही जन जो आध्यात्मिक की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। सांसारिक धन मान प्रतिष्ठा की प्राप्ति की लालसा वाले जन लालच में पड़कर धर्म-अधर्म, नीति-अनीति कुछ भी नहीं देख पाते हैं। कैसे भी मिले मुझे धन मिलना चाहिये।

हालांकि श्री जाम्भोजी ने मरुदेश में अभी ही शांति की वर्षा की थी। लालच, लोभ, ठगाई से लोगों को निवृत्ति दिलाई थी, किन्तु वर्षा होते हुए भी यदि घड़े को उल्टा करले, तो पानी कैसे भरेगा? घट ऊंधे बरसत बहु मेहा, नीर थयों पण ठालूं, उनमें से कुछ लोग ऐसे ही थे।

रणधीर जी सोने की सिलम से दिव्य मंदिर बना रहे थे। सत्रह महीने तक लगातार कार्य चलता रहा

था। छज्जों तक मंदिर बन कर के तैयार हो गया था। उसी समय ही चेना नामका एक व्यक्ति जो बिश्नोई समाज का पुरोहित था, उन्होंने देखा कि इस प्रकार से मंदिर का निर्माण साधुओं के द्वारा किया जा रहा है तो इसका चढावा भी वही लेंगे। यह चढावे का तो हमारा जन्म जात अधिकार है। यदि साधु लोग निर्माण करवायेंगे तो पूजा चढावा ये ही लोग लेंगे। अपने हाथ तो कुछ भी नहीं लगेगा। जैसे तैसे मंदिर के पुजारी हम बनें, ऐसा ही कार्य करना चाहिये।

एक दिन चैने ने अपने घर रणधीर को बुलाया और दूध पीने का आग्रह किया। रणधीर जी ने भक्त का आग्रह प्रेम-भाव देख कर दूध पिया। किन्तु चेने ने दूध में जहर मिलाया था । रणधीर जी ने दूध पीकर वह अपना अंगूठी वाला हाथ अपने मुँह पर फेर लिया। विष का कुछ भी असर नहीं हुआ। चैने ने सोचा था कि रणधीर को मार कर सोने की सिलम मैं ले लूँगा। मंदिर का कार्य करवाऊँगा और पुजारी भी मैं ही बनूँगा। यहाँ पर बहुत ही चढ़ावा आयेगा। मेरी पीढी दर पीढी निहाल हो जायेगी। किन्तु जिस पर जाम्भोजी का वरदहस्त था, वह क्या जाने। इस मारण कार्य में असफल हो गया।

एक दिन चैना रणधीर जी की शिष्या रुकमा, बखतू के पास गया और कहने लगा- हे बेटियो! तुम दोनों रणधीर की चेली हो। तुम्हारे हाथ का भोजन रणधीर नित्य प्रति करते हैं। उनके पास क्या सिद्धि है कि उनको विष भी नहीं मार सकता। उन बेटियों ने बतलाया- हे कुल उद्धारक! रणधीर के पास जाम्भोजी की दी हुई मूंदड़ी है। वो भोजन करके अपना मूंदड़ी वाला हाथ अपने मुख पर फेर लेते हैं। इससे जहर कुछ भी असर नहीं करता है।

चैने ने हाथ जोड़े हे पुत्रियो! अपने कुल का उद्धार करो। जिस प्रकार से हम मंदिर का निर्माण करवायें और पूजा अपने हाथ में प्राप्त करें। रुकमा कहने लगी ऐसा आप क्यों सोचते हैं? हमारे तो गुरु साक्षात् हरि के समान हैं। हम कैसे धोखा कर सकती हैं? यह नरक में पड़ने वाला ऐसा कार्य हम तो नहीं करेगी।

चैने ने कहा-मैं कब कहता हूँ कि तुम ऐसा विष प्रयोग कर के मारने का यत्न करो। तुम तो उनसे अंगूठी ले लो। बाकी कार्य मेरा ही है। तुम्हें किसी भी प्रकार का पाप नहीं लगेगा। जो करेगा, वही भरेगा। तुम्हारे पर रणधीर प्रसन्न हैं। जो तुम मांगोगे वही दे देंगे।

नित्य प्रति रुकमा वखतू के रणधीर जी भोजन करते थे। एक दिन रुकमा बक्तू रणधीरजी के पास गयीं और हाथ जोड़े विनती करने लगीं-हे पूर्ण गुरु आप तो परमात्मा के ही रूप हो। हमने आप से कभी माँग नहीं रखी। आज हमारे एक बच्चे के पेट में दर्द हो रहा है। आप अपने हाथ की अंगूठी दीजिये। उसके पेट पर घुमायेंगी और उसका दर्द मिटा कर आपको वापिस दे देंगी। आपकी अंगूठी में सिद्धि है।

रणधीर ने दयालु स्वभाव से ही कुछ नहीं विचारा और अंगूठी प्रसन्न होकर प्रदान कर दी। चैने को पता चला कि आज अंगूठी रणधीर के पास नहीं है। तब वह दौड़ा-दौड़ा रणधीर के पास गया और भोजन की प्रार्थना करने लगा। रणधीर जी ने भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उस दिन भोजन का निमंत्रण क्या था मौत ही स्वीकार कर ली। उसे ही निमंत्रण देकर बुला ली।

जब काल आ जाता है, तो सभी कुछ भूल जाता है। इसीलिए जाम्भोजी के वचनों को भूल ही गये। प्रेम और अधिक प्रसन्नता में वचन की स्मृति नहीं रहती। और न ही चेने के कपट को समझ सके थे। जो होनहार है, वही होता है, अन्यथा कुछ भी नहीं होता। श्री रणधीर को श्री देवजी ने कहा भी था कि यह सोने की सिला क्या लाया है, यह तो तेरी मौत है इसे तू ले आया।

उनके वचन भी सत्य होने थे। रणधीरजी की आयु समाप्त हो गयी थी। चैने ने विषमय भोजन रणधीर को करवाया और रणधीर के प्राण पंखेरू उड़ गये। चैने की जो योजना थी, वह भी विफल हो गयी। जो जांही की वासना, सो तांही के पास'' जो अलौकिक वस्तु सीलम रणधीर के पास रहने वाली थी, वह चैने के पास कैसे रहेगी ? वह मूंदड़ी एवं सोने की सिलम, दोनों ही जहाँ की थी वही चली गयी। चैनो खाली हाथ ही रह गया। वहाँ रणधीर का शरीर शव रूप में पड़ा हुआ था। और कुछ भी नहीं मिला।

चैना बीकानेर के राजा के भय से भाग कर दिल्ली चला गया। हे वील्ह ! इधर हमारे जैसे कुछ वृद्ध संतों ने रणधीर के शरीर की क्रियाकर्म कर दी और फिर बीकानेर जाकर राजा से पुकार की। जेतसी राजा ने कहा- अब क्या हो सकता है ? वह तो मेरे राज्य से बाहर निकल चुका है। आप लोगों ने आने में देर कर दी। रणधीरजी को मारने वाला जा चुका है। आप लोग वापिस चले जाओ और मंदिर का कार्य पूरा करो। व्यर्थ का वाद-विवाद बढाने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार से विघ्न उपस्थित हो गया। हम भी यही नियति है ऐसा समझ कर शांत हो गये।

हमारे पास धन तो नहीं था। धन के स्वामी रणधीरजी तो जा चुके थे। धन भी उनके साथ ही चला गया। मंदिर छज्जे तक आया था। अब तक गुम्बद नहीं बना था। हम लोगों ने गाँवो में जाकर भिक्षा माँगी और उपर का मंदिर पूर्ण कर के कलश चढाया। संतों की मंडली एवं गाँवो के पंचों का सहयोग था। स्याणों जी गाँव जाँगलू के स्वयं मंदिर बनाने में सहयोग कर रहे थे। हम लोग धन एकत्रित कर रहे थे। ऊपर का गुम्बुद वैसा सुंदर नहीं बन पाया, जैसा नीचे का छज्जों तक का। जैसा प्रारम्भ में बन रहा था, वैसा हम लोग कैसे बना सकते थे ? हमारे पास धन का अभाव होने से ऊपर का भाग कच्चा ही बन पाया।

इस प्रकार से समाधी-(ज्योति मंदिर) वि. सं. पन्द्रह सौ सतानवै चेत सुदी सातम को मुख्य मंदिर बन कर तैयार हुआ। और संवत सोलह सौ की कार्तिक पूर्णिमा को बिश्नोइयों की पंचायत एवं साधुओं ने मिलकर कलश चढाया। उसी दिन से ही मंदिर में जो पूजा पाठ हवन प्रारम्भ हो गया था। जो यह चल ही रहा है। इस शुभ कार्य को आगे बढाते रहना। अब तो तुम यहाँ के अधिकारी आ गये हो।

वील्ह उवाच- हे गुरु देव ! मैं यहाँ पर देख रहा हूँ, लेकिन मेरी आँखें श्री जाम्भोजी की कोई निशानी देखना चाहती है। किन्तु अब तक मुझे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। उनके वस्त्र, पात्र, खडाऊ, आदि कहाँ चले गये ? इसी धाम में ये वस्तुएँ सुरक्षित होनी चाहिये थी किन्तु नहीं हैं। इस का कारण क्या है ?

नाथोजी उवाच- हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें बतला रहा था कि रणधीर जी की मृत्यु हो जाने से जब खाली हाथ चैनो भाग कर दिल्ली चला गया था। न तो यहाँ के राजा के पकड़ में आया और न ही समाज के वश में रहा। वह वहाँ दिल्ली में कुछ समय तक रहा था। ऊपर से देखने में तो बहुत ही सुंदर जवान दिखता था, किन्तु उसका दिल काला था। अपना कार्य बनाने में बड़ा ही चतुर था। उसने वहाँ दिल्ली में रहते हुए किसी प्रकार से बादशाह से सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। उसमें एक काजी ने सहायता की थी। इस प्रकार कुछ समय तो में दिल्ली में रह कर समय व्यतीत किया, ऐसा जान कर कि अब तक वहाँ का मामला ठण्डा पड़ गया।

एक दिन चैने ने काजी से कहा कि अब मैं वापिस अपने बागड़ देश में जाना चाहता हूँ। मुझे मेरी मातृभूमि एवं मेरे सम्बन्धी याद आते है। यदि आप मेरी सहायता करें, तो मुझे वापिस अपने कुटुम्ब में मिला सकते हैं। आप बादशाह से एक प्रमाण पत्र बीकानेर राजा के नाम लिखा दो, जिससे मुझे वापिस जाने में कोई खतरा न रहे। यह बात काजी ने बादशाह से कही और उनसे कागज लिखवा कर चैने को दे दिया। दिल्ली

बादशाह से प्रमाण पत्र लेकर चैना वापिस अपने देश को चल पड़ा। सर्व प्रथम जसरासर गाँव में प्रवेश किया।

वहाँ पर बिश्नोइयों को बादशाह का फरमान दिखाया और वहाँ के चौधरी लोगों से कहा- आप मुझे वापिस समाज में सम्मिलित कर लो। चौधरियों ने मुकाम में इस विषय पर विचार करने के लिए सभा बुलायी।

उसी समय यह पता चला कि चैनो वापिस आ गया है, तो उसका छोटा भाई मेहो अपने घर में रखी हुई जाम्भोजी की तीनों चीजें-चोला, टोपी और चींपी पात्र लेकर यहाँ से रवाना हो गया। मेहो ने सोचा कि भाई वापिस आ रहा है। उन्होंने रणधीर को मार डाला। अब तेरी बारी है। ये पूज्य वस्तुएँ लेकर बीकानेर राज्य से बाहर जाम्भोलाव चला जाऊँ। इन पवित्र वस्तुओं पर जो चढावा आयेगा, वह मुझे मिलता रहेगा। अन्यथा यहाँ तो चैनो छीन लेगा।

मेहा यहाँ से चलकर जांगलू तक पहुँच गया था। जांगलू के स्याणोजी वणियाल एवं धनराज भाटी ने मेहोजी को वहीं रोक लिया और कहा -आप आगे न जायें। यहीं पर आप निवास करे। चैने से डरने की आवश्यकता नहीं है। हम तुम्हारे साथ हैं। हर प्रकार से सहयोग करेंगे। इस प्रकार कहते हुए जांगलू में ही मेहो को बसा दिया और तीनों चीजें वहीं पर रखवा दी थी। कुछ दिनों के पश्चात् पंचायत की प्रार्थना पर टोपी तो वापिस मुकाम में पहुँचा दी, अब यहीं उनके घर पर रखी होगी।

चोला और चींपी-पात्र जो सैंसे के घर पर भंग कर दी थी, वह वहीं जांगलू में दर्शनार्थ विद्यमान है। तुम दर्शन करना चाहते हो तो अवश्य ही करो। चेनो को वापिस समाज में सम्मिलित करने या न करने हेतु आस पास के सभी गाँवों के मुखिया लोगों की एक महा पंचायत हुई। उस पंचायत में हे वील्ह !मैं भी उपस्थित था। उस समय उपस्थित पंचायत के सामने चैने ने हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार से कहा -

हे पंचों ! मैं अपराधी हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें। न्यात गंगा के समान पवित्र होती है। मैं अब आप न्यात गंगा में गोता लगा रहा हूँ। अब भी यदि पवित्र नहीं हुआ तो आगे कभी भी नहीं हो सकूँगा। मुझे दिल्ली के बादशाह ने क्षमा करते हुए प्रमाण पत्र दे दिया है। अब मैं आप से क्षमा याचना कर रहा हूँ। आप लोग मुझे वापिस समाज में मिलाने का कष्ट करें।

पंचों ने कहा-क्या करना चाहिये ? इसने तो अपराध किया है। किन्तु अपराध का प्रायश्चित भी तो कर लिया है। इतने वर्षो तक बाहर रह कर क्षण-क्षण में दु:खी होकर ,पाप की आग में जलता रहा है। अब तो यह स्वत:ही शुद्ध-पवित्र हो गया है।

जाम्भोजी ने तो कहा था -क्षमा करनी चाहिये। हमें तो क्षमा करना चाहिये।

उसी समय वहाँ पर उपस्थित प्रेमो जी साधु ने जाम्भोजी का अनादि मंत्र कलश पूजा बोल कर,कलश की स्थापना करके पवित्र पाहल बनाया और चेनो को पाहल देकर चोखा करलिया।तब से चैनो से चोखा हो गया। हे वील्ह्! जाम्भोजी का यह सिद्धान्त था कि टालो मत ? यदि कोई अपराध स्वीकार करके पश्चात्ताप करता हुआ पंथ में सम्मिलित होना चाहता है तो उसे वापिस मिला लो। पंथ में मिलाने में पुण्य है, टालने में पाप है। यदि एक भी व्यक्ति अपने कुकर्मों को छोड़ कर पुण्य कमाने के लिये तैयार हो जाता है, तो वह बहुत बड़ा पुण्य का कार्य है। इस प्रकार से चैने से चोखा होकर पुन:बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हो गया।

नाथोजी अपने शिष्य वील्हो जी को संबोधित करते हुए अपनी अन्तिम इच्छा प्रगट करते हुए कहने लगे

–हे वील्ह! मैंने तुमको संवत् सौलह सौ एक तक की प्रमुख घटनाएँ विस्तार से सुनाई हैं। ये बातें सुनते हुए लगभग दस वर्ष हो गये है। इन दस वर्षो में तुमने आत्मोन्नति की बातें सुनी हैं। जाम्भोजी की लीला जो तुम्हें सुननी थी, वह मैं तुम्हें सुना चुका हूँ। जाम्भोजी द्वारा दी हुई सफेद पोशाक, मैंने तुझे प्रदान कर दी थी। वह तो तुम्हारी ब्रह्मचारी दीक्षा थी।

अब तुम ज्ञानी प्रौढ हो चुके हो। मैं तुम्हें जाम्भोजी का भगवां वस्त्र प्रदान करता हूँ और साधु गुरु दीक्षा मन्त्र सुनाता हूँ। इस प्रकार से नाथोजी ने वील्ह को संवत सौलह सौ ग्यारह में साधु दीक्षा मंत्र देकर साधु परपंरा को आगे बढाने का आदेश दिया।

नाथोजी ने अपना अन्तिम उपदेश शिष्य को देते हुए कहा –हे शिष्य ! गुरु शिष्य परंपरा आदि काल से चली आ रही है। मैं तो अब ज्यादा दिन नहीं ठहरूँगा क्योकि मेरा यहाँ से प्रस्थान करने का समय आ चुका है और न ही यहाँ अब रहने का प्रयोजन ही है। मैने अपना सर्वस्व धन विद्या तुम्हें प्रदान कर दी है। इस विद्या धन को सुरक्षित रखते हुए तुम्हें और भी नयी नयी खोज करनी है। सदा ही विद्या प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहना है। विद्या का कोई अंत नहीं है। मैंने जो कुछ कह दिया है, इतना ही नहीं है। इससे आगे भी बहुत कुछ है।

हे शिष्य! तुम्हारे पास जो भी विद्या है, उसका सदुपयोग करो। दूसरों को देते रहो। विद्या भ्रमण करते हुए ज्ञान,दान,यज्ञ करो। भूले भटके लोगों को सचेत करो। इस बिश्नोई पंथ को आगे बढाओ। अन्य भी जो लोग उत्तम पंथ के अनुनायी बनना चाहते हैं उन्हें बनाओ। अज्ञानान्धकार में भटके हुए लोगों को ज्ञान मार्ग में लाओ।

साखी शब्द हरिजस द्वारा साहित्य की सरंचना करो। साहित्य ही समाज की रीढ है। मैंने तुझे जाम्भोजी का जीवन चरित्र सुनाया है। अब तक तो कण्ठस्थ रखने की ही बात थी, किन्तु आगे कण्ठस्थ रखने की क्षमता क्षीण हो जाएगी। इसलिये इन शब्दो को तथा इन कथाओं को लिपि बद्ध करो। जिससे आनेवाले समय के लिये उपस्थित रह सके।

मैंने तुम्हें गुरु दीक्षा प्रदान की है। इस परंपरा को भी आगे बढाते रहना है। मैं अधिक समय तक नहीं रह सकूँगा। इस पंथ के स्वामी तुम्हीं होंगे। ऐसा ही श्री देवजी की आज्ञा थी। समाज की बाह्य एवं आन्तरिक सुरक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य होगा।

जैतसी का मुकाम मन्दिर में आगमन

वील्हो उवाच -हे गुरु देव !क्या सिद्धेश्वर साक्षात विष्णु स्वरूप जाम्भोजी हम लोगो को छोड़ कर चले गये ?क्या उनका दर्शन दुर्लभ हो गया ?उन्होंने पच्चासी वर्षो में अनेक लीलाएँ की थी। क्या अब भी यदा कदा किसी ने उनकी लीला चरित्र प्रत्यक्ष देखा है ?आगे भी देखते रहेंगे ऐसी संभावना है ?बिना चमत्कार के तो नमस्कार नहीं होगा। आपने आदेश दिया है कि जाम्भोजी की आज्ञा का मैं पालन करूँ, किन्तु मेरे में कुछ भी तो शक्ति नहीं है। मैं यह दुरूह कार्य कैसे निभाऊँगा ? ऐसा प्रश्‍न पूछने पर नाथोजी कहने लगे -

हे शिष्य ! जाम्भोजी के बैकुण्ठ वास, शरीर का अन्तर्धान होने के पश्चात् की बात बतलाता हूँ। जिससे तुम्हें आश्चर्य एवं विश्वास होगा। जाम्भोजी कहीं गये नहीं हैं। न तो वे जन्म लेते हैं और न ही उनके माता-पिता, बहन-भाई आदि कुटुम्बी भी हैं। जिनका जन्म नहीं होगा, तो वह मरेगा भी कैसे ?आवश्यकता पड़ने पर चमत्कार भी दिखाते हैं। आगे भी मौजूद रहेंगे। उन्होंने कहा है -''गुरु आसन सम्भराथले''गुरु का आसन तो सदैव ही सम्भराथल पर विद्यमान रहेगा। आप लोग भूल नहीं करना।

हे वील्ह ! जांभोजी के अन्तर्धान होने के पश्चात् संवत पन्द्रह सौ अठानवै के प्रारम्भ काल की बात है। जब मुकाम समाधि मन्दिर बन कर तैयार हो गया था। बीकानेर का राजा जेतसी जाम्भोजी का परम भक्त था। उन्होंने जाम्भोजी की कृपा से ही राज्य प्राप्त किया था। मंदिर बनवाने में भी पूरा सहयोग दिया था। जेतसी अपने साथ में अपने मित्र नागौर के राजा को तथा कवि को साथ में लेकर मुकाम आया था। यह देखना था कि मंदिर की प्रतिष्ठा हो गयी है। कैसी व्यवस्था चल रही है। जैतसी ने मंदिर के चारों तरफपरिक्रमा की और सीढ़ी लगाकर मंदिर के ऊपर चढ़ा, तथा निज मंदिर में चढ़ावा किया और कहने लगा-

'जाम्भोजी री जायगा बड़ी जायगा।'' उसी समय ही साथ में एक राजपूत था उसने एक दोहा कहा-

' छाया खोज न दीसतो, सोह हूँतो जिणरो कह्यो।

खुध्या तिस नींद न व्यापती, थांहरो जांभो हूँ पणि मर गयो।

' उस कवि का कहने का यह आशय था कि जाम्भोजी के शरीर की छाया नहीं होती थी। उनके पैरों के निशान नहीं होते थे। तृष्णा, भूख और नींद नहीं सताती थी। छः उर्मियों से उपर उठे हुए थे। जैसा वो कहते थे, वही होता था। उनके वचन सिद्ध थे। ये सभी गुण धर्म होते हुए भी तुम्हारे जाम्भोजी मर गये।

हे वील्ह ! उस समय वहाँ पर हम लोग उपस्थित थे। प्रथम तो उस राजपूत ने जो कहा वह यथार्थ ही था। उससे हम प्रसन्न थे। किन्तु अंतिम पंक्ति में जाम्भोजी के मरने की बात कही, वह हमारे लिए असहनीय थी। वह तो बिल्कुल अनर्गल बात थी। निंदा वचन को हम कैसे सहन कर सकते थे। उसी समय ही निहालदास ने उनके जवाब में एक अन्य कवित कहा-

' अंजू गंग जल बहै, अंजू छलियो रेणायर।

अंजू मेर नहीं टर्‌यो, अंजू रवि तपै दिणायर।

अंजू चंद आकासि, अंजू घण पवण फरकै।

अंजू त्रिख रिख वनि बसै, अंजू कपूर महकै।

तीन लोक चवदै भुवण, वंदन मुखि जग जस भयौ।

संसार करन अछै अभै, मं कहि मं कहि जाम्भो मुवौ।

निहालदासजी ने जवाब देते हुए बतलाया- कि जाम्भो मूवो' जाम्भोजी मर गये, ऐसा क्यों कहा है? यह असंभव है, जाम्भोजी कैसे मर सकते हैं? अब तक गंगा जल बहता है। अब तक समुद्र में जल भरा हुआ है। अब तक सुमेरू पर्वत अपने स्थान पर अडिग है। अब तक सूर्य उगता है और तपता है। अब तक चन्द्रमा आकाश में चमकता हुआ दिखाई देता है। अब तक पवन चलती है। सभी को श्वास रूप से जीवन प्रदान करती है। अब तक सप्तर्षि वन में बसते हैं। अब तक कपूर में महक आती है। जाम्भोजी की महिमा तो तीन लोक एवं 14 भवनों में फैल रही है। उनकी वन्दना करने से जगत में यश की प्राप्ति होती है। वे तो साक्षात् विष्णु जगत के कर्ता, धर्ता, अभय दान देने वाले, यहीं पर ही विद्यमान हैं। जाम्भो मर गया,ऐसा न कहो, न कहो।

'दूहो कवत जैतसी सांभल्या, ल्यौनी देखा, खोल्य न देखों, बिश्नोई अर्ज करण लागा, चवदस रे दिन कजियौ रहयो, साम्ही अमावस री राति आई, नाल्हाजी ने राति सुता आवाज हुई, खोले तो खोलण द्यो, मति पालियौ, आहं की निसा करिस्या, परभात तबूत खोल्य दरस्या, माथ पसेव का मोती, हाथे जप माली फिरै। कहण लागा- बीजा रा सबद साचा न पिंड काचा। जाम्भाजी रा सबद ह साचा पिंड इ साचा। अतरी कह- पछे पछतावो कियो, असड़ो कोई हिंदवाण तुरकाण कई कीयौ नही सो आपा कीयौ। अपार रो पार कीणी पायो न पायसी। हमें कोई हींदवाण तुरकाण विचारज्यो मती।

उपर्युक्त दोहा कवित जैतसी ने सुनकर सचेत हुआ और कहने लगा- यदि ऐसी बात है तो समाधि खोलकर देख लेते हैं। हे वील्ह! उस समय वहाँ पर उपस्थित बिश्नोई भाई बन्धुओं ने राजा के सामने प्रार्थना करते हुए कहा- ऐसा मत करो। तुम्हारे लिए यह ठीक नहीं होगा। किसी भक्त राजा को ऐसा दु:साहस नहीं करना चाहिये। इस प्रकार से संवत पन्द्रह सौ अठानवें की वैशाख कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को आपस में विवाद रहा। रात्रि को अमावस्या थी। इसलिए वहाँ पर काफी लोग उपस्थित थे। बिश्नोई कहने लगे हम समाधि को नहीं तोड़ने देंगे। राजा है तो क्या हुआ? बलिदान हो जायेंगे। ऐसा अधर्म कदापि नहीं होने देंगे।

निहालदास ने रात्रि में प्रार्थना करते हुए कहा- हे देव! मैंने तो आपकी कृपा से जो कुछ कहना था, वह कह दिया। यह मेरा कथन केवल कवित ही न रह जाये। मेरे वचन को सत्य करने की आप कृपा करेंगे। अन्यथा सुबह वह राजा समाधि तोड़ देगा। सभी के सामने आप और हम लज्जित हो जायेंगे। इस प्रकार की करुण पुकार करते हुए निहालदास सो गये। रात्रि में आकाशवाणी सुनाई दी कि हे नाल्हा! यदि समाधि खोलते हैं तो खोलने देना। उन्हें रोकना नहीं। उनको विश्वास दिलायेंगे।

प्रात:काल वैशाख की अमावस्या के अवसर पर समाधि की एक डाबड़ी उखाड़ी और राजा ने स्वयं अन्दर झाँक कर देखा कि जाम्भोजी ज्यों के त्यों ज्योतिस्वरूप बैठे हुए हैं। उनके माथे पर पसीने की बूँदें मोती की तरह चमक रही हैं। हाथ में माला जप रहे हैं। जैतसी कहने लगा- अन्य महापुरुषों के तो केवल शब्द ही सच्चे हैं, शरीर कच्चा है। जो फूट गया, टूट गया, बिखर गया। किन्तु जाम्भोजी के तो शब्द ही सत्य है और शरीर भी सत्य सनातन है। इतना कहते हुए उसने वापिस सिला लगा दी। आँखें चकाचौंध हो गयी

और पछतावा करने लगा– मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। जाम्भोजी के शब्द नहीं माने और उन्हें देखने की कोशिश की। निर्माण की हुई समाधि को तोड़ा। इस प्रकार का कार्य न तो किसी हिन्दू ने किया और न ही किसी मुसलमान ने किया। जो आज हमने करके दिखाया।

उस अपार का पार अब तक किसी ने भी नहीं पाया है और न ही कभी पा सकेगा। आगामी इस प्रकार की घटना किसी को भी नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार का परचा लेकर जैतसी वापिस बीकानेर पहुँचा। अपने परिवार को यह घटना बतलायी और कहा– मैं तो अतिशीघ्र ही संसार से प्रस्थान करूँगा। आप लोग सदा ही जाम्भोजी के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास रखें। तुम्हारा राज्य सुचारू रूप से चलता रहेगा। तुम नहीं जानते, मुझे यह राज स्वयं जाम्भोजी की कृपा से ही मिला था।,

जांगलू की कंकेहड़ी धाम

नाथोजी कहते हैं– हे वील्हा! तुम्हारे यहाँ इस पंथ में सम्मिलित होने से पूर्व, अभी ही कुछ दिनों की बात है कि गाँव जांगलू की बरसिंगवाला तालाब के पास ही कंकेहड़ी वृक्ष के जंगल में एक व्यक्ति भेड़ बकरियाँ चरा रहा था। वह व्यक्ति तालाब की सीमा के बाहर पश्चिम धोरे में एक कंकेहड़ी के नीचे बैठा हुआ अपनी भेड़ बकरियों को चरा रहा था। उस समय ज्येष्ठ का महीना, कृष्ण पक्ष की एकादशी थी। उस ग्वाले ने अकस्मात् एक योगी पुरुष को देखा। जो साक्षात् विष्णु स्वरूप जाम्भोजी सदृश ही था। कानों में आवाज सुनाई दी। वह महापुरुष कह रहे थे–

हे ग्वाला! तुम ऐसा करो कि जल्दी से जांगलू जाओ और गाँव के लोगों से कहना कि कल द्वादशी तिथि है। वर्षा होने वाली है। तालाब में गोबर खाद बिखरा पड़ा है। सफाई का अभाव है। वर्षा के जल को गोबर खाद अपवित्र कर देगा। शीघ्र ही गाँव के लोग चले आयें और तालाब की सफाई कर दें।

वह ग्वाला कहने लगा– हे महाराज! आप की बात तो सत्य है। किन्तु मैं यहाँ से भेड़ बकरियों को छोड़कर चला जाऊँगा तो भेड़िये–नाहर आदि हमारे धन को खा जायेंगे। इनकी रखवाली कौन करेगा? महात्माजी ने कहा– इनकी रखवाली मैं करूँगा। तूँ जल्दी जा और वापिस लौटकर आजा। उस ग्वाले ने कहा– आप क्या भेड़–बकरी चराना जानते हैं? कैसे रखवाली करोगे? जांगलू गाँव यहाँ से तीन कोस दूर है। मैं जल्दी कैसे आ सकूँगा? अरे ग्वाले! तुम बहुत ही भोले हो। मैं तो सभी जीव योनियों की रक्षा करता हूँ। तुम्हारे ये कितने से जानवर हैं। अब तुम देरी ना करो, अतिशीघ्र जाओ और उनसे कह करके लौट आओ।

वह ग्वाला उन सिद्ध पुरुष की बातों में आ गया और अपना पशु धन उनके हवाले करके भागता हुआ गाँव आया और गाँव के मुखिया वरसिंग के बेटे स्याणे से कहते हुए और वहाँ की सारी बातें बताते हुए उन्हें सचेत कर के दौड़ा–दौड़ा वापिस आ गया। जहाँ पर जिस कंकेहड़ी के नीचे छोड़कर गया था, वहाँ आकर देखा तो कोई नहीं था। उस ग्वाले ने पैरों के निशान देखे किन्तु वे भी नहीं थे। ग्वाला आश्चर्यचकित हो गया

कि यह क्या हुआ ? क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ? मुझे क्या हो गया है ? चलूँ मेरे पशुधन को देखूँ, कहाँ गया होगा,अब तक जीवित है या नहीं ? धोरे पर चढ़कर देखा कि वहीं पर ही पशुधन विचरण कर रहा है।

एक साधारण ग्वाले के समझ में कुछ नहीं आया। ग्वाला ही क्या, बड़े-बड़े योगी, यति, लोग निरंतर जिनका ध्यान, जप,पूजा,पाठ आदि करते हैं, तो भी उनके समझ में कुछ नहीं आता। बुद्धि द्वारा अगम्य को बुद्धि द्वारा कैसे जाना जा सकता है।

जांगलू गाँव के लोगों ने स्याणे को अगुवा करके द्वादशी के दिन सूर्योदय के साथ ही तालाब सफाई का कार्य प्रारम्भ किया। जब प्रात:काल में गये थे, तो एक भी बादल नहीं था। किन्तु हवन, यज्ञ, प्रसाद पूर्ण होते ही न जाने कहाँ से बादल उमड़कर आये और लोगों के देखते ही देखते तालाब स्वच्छ जल से भर गया।

उन सभी लोगों ने परमात्मा विष्णु जाम्भोजी को ही निमित्त कारण माना। वह कोई अन्य साधारण योगी नहीं था, वे तो विष्णु ही थे। इस प्रकार से समय-समय पर अज्ञानान्धकार में सोये हुए जनों को जाग्रत करते आये हैं। उस दिन से लेकर आज पर्यन्त उसी गाँव के लोग, ठीक उसी समय पर उसी तालाब पर हाजिर होकर हवन-तालाब की सफाई आदि कार्य करते हैं। इन्द्र देवता को यज्ञ द्वारा प्रसन्न करके वर्षा करवाते हैं।

हे वील्ह ! यह परचा भी अद्भुत ही था। जाम्भोजी के अन्तर्धान होने के पश्चात् लोगों को प्राप्त हुआ था। मैं समझता हूँ कि आगे भी प्राप्त होता रहेगा। इस पवित्र जगह पर आने से ही पाप-पंक धुल जायेगा। शारीरिक, मानसिक, रोगों का निदान हो सकेगा।

''श्रद्धावान लभते ज्ञानम्'' श्रद्धावान पुरुष को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। तर्क की कैंची से तो कुछ भी काटा जा सकता है। मैं तुझे यह कहना चाहता हूँ कि तुम कहीं दुर्भाग्यवश तर्क रूपी कैंची मत ले लेना। अन्यथा तो आत्मा-परमात्मा के आध्यात्मिक सुख से वंचित हो जाओगे। भगवान् की लीला का आनन्द श्रद्धावान हृदय से ही लिया जा सकता है। कहीं ऐसा न हो कि तुम कुतर्क के जाल में पड़कर अपने को शुष्क बना लो।

इस प्रकार से गुरु शिष्य के संवाद के द्वारा जाम्भा पुराण पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ है। अब आगे जाम्भोजी के शिष्यों द्वारा किया हुआ कार्य का अवलोकन dिया जायेगा। सर्वप्रथम वील्होजी के कार्य एवं धर्म रक्षार्थ आंदोलन को देखेंगे। तत्पश्चात् वील्होजी की शिष्य परम्परा एवं साहित्य संरचना तथा अन्य कार्यों के बारे में विचार किया जायेगा। इस पंथ ने कहाँ पर क्या-क्या बलिदान दिया है, ऐसे धर्मवीर सज्जनों का स्मरण किया जायेगा।

यह जाम्भा पुराणा का पूर्वार्द्ध पूर्ण हुआ। अब आगे उतरार्द्ध प्रारम्भ किया जा रहा है।

बारहवाँ अध्याय का उतरार्द्ध

वील्होजी का धर्म प्रचार-प्रसार

बिश्नोई पंथ एवं पंथ के प्रवर्तक गुरु जाम्भोजी के बारे में वील्होजी ने अपने गुरु नाथोजी से आद्यान्त पर्यन्त सुना और अपने गुरु नाथोजी के बैकुण्ठवासी होने के पश्चात् अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके, वील्होजी भ्रमणार्थ निकल पड़े।

वील्होजी ने देखा कि इस समय दो तरह की समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। प्रथम तो बिश्नोई लोग ही पंथ से विचलित हो रहे हैं। दूसरी समस्या यह थी कि जहाँ कहीं गाँव में बिश्नोई बने थे, किन्तु अल्प संख्या में ही। एक भाई तो बिश्नोई बन गया था, किन्तु दूसरे बहुत से भाई, सगा-सम्बन्धियों ने बिश्नोई पंथ स्वीकार नहीं किया था। उन बहुतों के बीच में एक का गुजारा चलना कठिन था। उन्हें धर्म पालन में कठिनाइयाँ हो रही थी। दूसरे लोग जानबूझकर कठिनाइयाँ पैदा कर रहे थे।

कहाँ-कहाँ कौन-कौन, बिश्नोई बने हैं, यह कुछ भी पता नहीं था। उस समय तक संगठन नहीं बना था। केवल बिश्नोई ही बने थे। जब बने थे तो जाम्भोजी का हाथ सिर पर था। किन्तु अब उनका मालिक कोई नहीं था। वील्होजी के सामने ये सामाजिक समस्यायें थीं। जो कुछ जाम्भोजी ने शब्दों द्वारा कहा था, वह तो नाथोजी के कण्ठस्थ था, तथा दो चार आदमी ऐसे और भी हो सकते थे किन्तु उनसे वील्होजी की भेंट नहीं हुई थी।

गुरु नाथोजी से वील्होजी ने शब्द तो श्रवण अवश्य ही किये थे। जाम्भोजी द्वारा की हुई अलौकिक लीला भी श्रवण परम्परा से सुनते-सुनाते आ रहे थे। अब तक लिखित कुछ भी नहीं था। केवल कर्ण परम्परा से सुनने-सुनाने से तो साहित्य के लुप्त होने का खतरा था। या हेराफेरी भी हो सकती थी। इसलिए लिखा जाना आवश्यक था। वील्होजी से पूर्व जाम्भोजी के संत-भक्तों ने साहित्य की रचना की थी। जिनमें उदोजी नैण, , तेजोजी, समसदीन, डैलहजी, आंछरे, कील्हजी चारण इत्यादि थे। इनके द्वारा साखी, छंद, कथा, आदि लिखे गये थे, किन्तु अपर्याप्त थे। साहित्य ही समाज का दर्पण होता है। किंतु इस साहित्यरूपी दर्पण से यह समाज वंचित था।

जाम्भोजी द्वारा स्थापित किए हुए पंथ की अभिवृद्धि भी होनी चाहिये। क्योंकि यह पंथ मार्ग युक्ति-मुक्ति दिलाने वाला था। जो पंथ के पंथिक बन चुके थे, वे तो कायम रहे और भी नवीन पंथ में सम्मिलित होना चाहते थे तो उनको भी सम्मिलित किया जाये। अधिकारी को ज्ञान देना पुण्य का कार्य है। वह किसी भी जाति-देश का हो सकता है। धर्म का प्रचार-प्रसार एवं साहित्य अभिवृद्धि हेतु जो होनहार युवक हैं, उन्हें प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाना हैं। इसके लिए शिष्य परम्परा भी आगे बढ़े और इस पंथ के पहरेदार तैयार हो सके। इसके लिए भी प्रयत्न करना आवश्यक था।

जहाँ-जहाँ पर भी जाम्भोजी की साथरियां हैं, जहाँ बिश्नोई बहुतायत में रहते हैं। वहाँ पर धर्म प्रचार का केन्द्र बनाया जावे। साधु समाज वहाँ पर निवास करे और अपनी साधना में रत रहकर धर्म प्रचार प्रसार करें उन्हीं साथरियों में पंचायत स्थापित की जाये। जो कुमार्ग पर चलने वाले लोगों को दण्डित करें। साम-दाम-दण्ड-भेद से धर्म को कायम रखा जावे। इसके लिए वील्होजी प्रयत्नशील हुए इन सभी कार्यों की पूर्ति हेतु आध्यात्मिक शक्ति के साथ ही साथ लौकिक राज शक्ति की भी आवश्यकता होती है। जाम्भोजी की अपार

कृपा से सिद्धि को तो प्राप्त हो गये, किन्तु जाम्भोजी की तरह ही अपार शक्तिमान भगवान् तो नहीं बन सके थे। बिना राज सहायता के वील्होजी अपने ही बलबूते पर आगे कदम बढ़ाने में असमर्थता महसूस करने लगे। धर्म की अभिवृद्धि भी राजकीय सहायता के बिना होना संभव नहीं थी। इसलिए वील्होजी ने विचार किया कि जोधपुर राजा से जाकर एक बार मिलूँगा। जोधपुर के राजा जाम्भोजी के परम भक्त थे। जोधपुर के राजा सूरसिंह के पास वील्होजी संत मण्डली सहित पहुँचे। जोधपुर के राजदरबार की लौहपौल पर जाकर आसन लगाया। वील्होजी ने सभी संतों के सहित शब्द ध्वनि का गुंजार करते हुए लौहा-पौल पर हवन किया। उसी समय मधुर ध्वनि राजा के कानों में पड़ी। पूर्व संस्कार जाग्रत हुए

उस समय सूरसिंह ने कहा-यह लौहपौल की तरफकौन गा रहा है ? मेरे कानों में मधुर ध्वनि गुंजायमान हो रही है। तब एक चारण ने जवाब देते हुए कहा- हे राजन ! जाम्भोजी के चेले आये हैं। वे शायद परचा शक्ति प्रदर्शित करने के लिए आये हैं। यदि आप चलो, तो दर्शन कर आते हैं। उनकी करामात देख आते हैं। साधुओं के पास जाने में सुख ही मिलेगा। वह चारण तो यह बात व्यंग्य भाव से कह गया था क्योंकि चारण के मन में द्वेष भाव था।

राजा ने चारण की बात स्वीकार करके संतों के लिए भेंट सजा कर तैयार की। स्वर्ण थाल में फूल, मिठाई, घृत आदि लेकर राजा सुसज्जित होकर अपने मंत्रियों के साथ चला। राजा सूरसिंह संतों के पास नम्रता से आया था। वील्होजी संत मंडली सहित विराजमान थे। राजा ने परिक्रमा कर के थाल वील्होजी के आगे रखा। वील्होजी ने राजा का स्वागत किया। कुशल क्षेम समाचार पूछे। परस्पर कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् राजा ने कहा-

हम तो आपकी कृपा से ठीक ही हैं। जब आप जैसे संत महापुरुषों के चरण हमारे राज्य में पड. जायें तो अकुशलता कैसे ठहरेगी ? हमारे तो परदादा, दादा, पिताजी आदि सभी सदा ही संतों के सेवक रहे हैं। आप की कृपा से ही हमारा कल्याण होता आया है। संसार की संपत्ति, राज आपकी कृपा से ही मिलता है। आप ही हमारे सर्वस्व हो। ऐसी प्रार्थना कर के राजा जब चुप हो गया तब उस चारण ने आगे बात चलाते हुए कहा-

क्या सचमुच में ही आप जाम्भोजी के चेले हो ? या आप कोई अंधे जाट हो ? जाम्भोजी में तो बड़ी करामात थी। आप में भी तो कुछ होनी चाहिये। यहाँ राज दरबार में संत लोग आते हैं, तो कोई न कोई अद्भुत चमत्कार दिखाते हैं। यदि नहीं दिखाते तो बाँसों की मार खा कर चले जाते हैं। क्या आप लोग भी उन्हीं की तरह बाँसों की मार खाकर जाओगे या कुछ करामात दिखाओगे ? चारण द्वारा कही गयी इस प्रकार की बात वील्होजी ने सुनी और श्री विष्णु जाम्भोजी का स्मरण किया। वील्होजी का शरीर रोमांचित हो गया- रोंगटे खड़े हो गये। इतना उत्साह एवं रोमांचित हुआ, स्वत: ही मुख से वाणी का प्रसार होने लगा।

वील्होजी ने कहा- मैं कौन हूँ, यह बताता हूँ। ऐसा कहते हुए सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर जाम्भोजी तक की वंशावली बताना प्रारम्भ किया। इसी रूप में अपना परिचय दिया। वील्होजी ने अपना पूर्ण परिचय देकर फिर कहा- हे राजन ! अब भी तुम्हें विश्वास नहीं हुआ है और भी जानना पहचानना चाहता है, तो पूछ लें। इस समय तो मेरे साथ जाम्भोजी की शक्ति विद्यमान है। राजा ने वील्होजी की बात सुनी और सत्य ही मानी तथा कहने लगा-

आज वैशाख महीने की अक्षय तृतीया का पवित्र दिन है। इस समय गर्मी का मौसम है। यहाँ बागड़ देश में वर्षा ऋतु में होने वाले मतीरा, काकड़िया और बाजरी का सिट्टा अपनी सिद्धि से बना कर जीमाओ।

तो हम जानेंगे कि आपने जो बात कही थी, वह सत्य थी। अन्यथा केवल वंश परंपरा का बखान करने से सिद्ध तो नहीं हो जाता। आप जाम्भोजी की करामात लेकर आये हैं, वह सत्य तभी मान्य होगा।

राजा की ऐसी भावना जान कर के वील्होजी ने जाम्भोजी का स्मरण करते हुए चादर ओढ कर शरीर को ढक लिया। और चादर के अंदर हाथ ले जाकर सर्व प्रथम दो सौ बाजरी के सिट्टे निकाल कर दिये।

राजा ने देखा कि सिट्टे तो बाजरी के ज्यों के त्यों हैं। खाने योग्य हैं। तब राजा ने कहा- अब आप दो काकड़ी दीजिये। बाजरी जीमने के पश्चात् काकड़ी जीमेंगे। तब मन प्रसन्न होगा। राजा के कहने की देरी थी कि दो बड़ी-बड़ी काकड़ी भी निकाल कर दे दी। उन बड़ी-बड़ी बिना मौसम की, बिना ही खेत की, उन अलौकिक बाजरी व काकड़ी को जीमकर के राजा अति प्रसन्न हुआ।

सूर सिंह कहने लगा- मैंने आज से ही आपको गुरु धारण कर लिया है। किन्तु अब तक आपने मारवाड़ का मेवा मतीरा (तरबूज) तो नहीं दिया। बिना मतीरे तो कुछ बात नहीं बनी। वील्होजी ने उसी समय ही बुकुल परदे से आठ-आठ सेर के तीन मतीरे निकाल कर दिये। ये मतीरे पुराने नहीं थे। वे तो मानो अभी अभी बेल से तोड़ कर लाये थे। उनके गूँढ नाल हरी थी। एक मतीरा फोड़ कर देखा तो लाल गुलाब की भाँति खिला हुआ था। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने सिट्टियाँ, काकड़ी और मतीरा जीम कर के देखा बड़ा ही आनंद आया।

राजा वील्होजी की स्तुति करते हुए कहने लगे- आप तो जाम्भोजी के सदृश ही सिद्धिवान हो। हम लोगों ने आपकी परीक्षा करने की कोशिश की है, आपका पार कैसे पाया जा सकता है? हम लोग तो अल्प अज्ञानी, मूढ लोग हैं। हम क्या जानें संत महापुरुषों की महिमा? वील्होजी की चरण वंदना स्वयं राजा करने लगे- सत्य ही है। ऐसे संत महापुरुषों की चरण वंदना करने से केवल्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

वील्होजी ने राजा सूरसिंह को धर्म, राजनीति, एवं मर्यादा का उपदेश देते हुए कहने लगे- हे राजन! सुगुरु एवं कुगुरु में बड़ा ही अन्तर है। इसलिये तुम्हें सावधान रहना चाहिये। कहीं कुगुरु, पाखण्डी कोई तुम्हारी श्रद्धा का अनुचित लाभ न उठाले। सुगुरु होगा, वह सुमार्ग बतायेगा। सुगुरु दया, शीलवान, सदा संतोषी,परोपकारी, संसार सागर से पार उतारने वाला होगा। इन सद्‌गुणों के द्वारा तुम्हें सतगुरु की पहचान कर लेनी चाहिये।

इसके विपरीत कुगुरु होगा वह झूठ,कपट,कुमार्गी,कुकर्मी,भ्रमित करने वाला,भांग ,पोस्त,मांसाहारी होगा। दया हीन,जीव हत्यारा,अकल विहीन आदि दुर्गुणों से युक्त होगा। वील्होजी ने कहा -हे राजन! इन कुगुरुओं से दूर ही रहना श्रेष्ठ है। यह परीक्षा कर के ही संगति करना। सुगुरु मिल जायेगा तो सुख की प्राप्ति होगी। कुगुरु मिलेगा तो दुख आयेगा। सुगुरु भ्रम मिटायेगा,तो कुगुरु भ्रमित करेगा। सुगुरु स्वर्ग दिखायेगा तो कुगुरु नरक ले जायेगा। सुगुरु पार उतार देगा तो कुगुरु डुबो देगा। वील्होजी ने कहा -हे राजन !सुगुरु और कुगुरु में अन्तर बहुत है। इस प्रकार से वील्होजी ने अनेक छन्दों द्वारा राजा सूर सिंह को ज्ञान दिया। वील्होजी ने राजा को ज्ञान एवं परचा दोनों ही दिया।

तब राजा कहने लगा -हे गुरुदेव! आपने मुझ पर कृपा करी। स्वत: ही हमारे यहाँ पर पधारे। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मुझे आप अपना दास मान कर आज्ञा प्रदान कीजिये। वील्होजी कहने लगे-मैं क्या मांगूं। मुझे अपने लिये कुछ भी नहीं चाहिये। मैं तो "आत्मा से ही आत्मा में सतुंष्ट हूँ" किन्तु जाम्भोजी द्वारा चलाया हुआ सत्पंथ कायम रहे, लोग सन्मार्ग पर चले,जीवन में युक्ति सीखे और मृत्यु पर मुक्ति को प्राप्त करें। यही

श्री जाम्भोजी का सत्पंथ है।

इस समय कुछ लोग इस पंथ से विमुख हो रहे हैं। और बिश्नोइयों को अन्य विधर्मी लोग नाजायज तंग कर रहे हैं। उन्हें धर्म छोड़ने के लिये मजबूर कर रहे हैं। कम से कम आपके राज्य में धर्म पालन की तो स्वंतत्रता होनी चाहिये। कोई किसी को धर्म पालन करने से रोके नहीं। मैं तो यही चाहता हूँ। इसके लिये आप राज सहायता प्रदान करें।

मुझे अधिकार दीजिये कि मैं जिसे मार-पीट करूँ आपके पास आकर पुकार करे तो आप उसे सद्बुद्धि प्रदान करें। हमारे संतों की सुरक्षा हेतु कुछ सिपाही भी दीजिये। इनको लेकर मैं गाँव गाँव में भ्रमण करूँगा और बिगड़े हुए लोगों को सही मार्ग पर लाऊँगा। यही मेरे गुरु का आदेश है। यही आपकी भी मान्यता होनी चाहिये। राजा ने कहा -ऐसा ही होगा।

वील्होजी ये साधन लेकर वहाँ से चल पड़े। वहीं जोधपुर के गाँवों में भ्रमण करते हुए फिटकासणी, रसीदै, गुड़ै आदि गाँवो के बीच तम्बू खूँटा रोप दिया। जो कोई भी चाहे बिश्नोई पंथ के अन्दर से विरोधी था चाहे बाहर से कोई विरोधी था,उन्हें खूँटे से बाँधा और कोरड़े (कपड़े का बना हुआ दण्ड) से पिटाई की। एसा कुछ ही गाँवों में किया था कि आगे से आगे स्वत:ही बात फैल पड़ी कि वील्होजी आ रहे हैं। सावधान हो जाओ। अपनी इच्छा से स्वयं ही धर्म का पालन करो। अन्यथा जबरदस्ती मार कूट के धर्म पर कायम करेंगे।

जब वील्होजी उन गाँवों में भ्रमण कर रहे थे तब किसी आदमी ने आकर वील्होजी से कहा -महाराज! आप तो हम लोगों पर ही जोर चलाते हैं, आप से थोड़ी दूर पर ही रुड़कली गाँव में जाम्भोजी विराजमान हैं, वह तो जाम्भोजी की तरह चहुंदिश मुख वाला है, स्वयं अपने को जाम्भोजी कहता है। वील्होजी ने कहा-यहाँ से कितना दूर होगा? दूर नहीं है। यहाँ से तो केवल पाँच कोश पर ही है।

वील्होजी वहाँ से रवाना हुए और कहने लगे-यह तो बहुत ही शुभ समाचार है। यदि जाम्भोजी स्वयं ही हैं, तो अवश्य ही दर्शन लाभ होगा। अन्यथा पाखण्डी का अन्त होगा। वील्होजी ने रुड़कली के तालाब पर उस व्यक्ति के पास ही जाकर डेरा डाल दिया। शाम को तो वील्होजी ने गाँव के लोगों के साथ जागरण किया और प्रात:काल हवन करके फिर उसके पास गये। वह व्यक्ति सांणिया था। भूत-प्रेत सेवी था। लोग उसे स्याणा कहते थे। इसी नाम से वह प्रसिद्ध था। वैसे वह स्याणा तो नहीं था, किन्तु दुनिया भी तो स्याणी कहाँ है?

सांणिया ने देखा कि वील्होजी आ रहे हैं। स्याणियां भी उन्हें देखकर ध्यान मुद्रा में तन कर बैठ गया। वील्होजी ने सांणिये को प्रणाम किया। वह तो बहुत ही डर गया था। साणियां कहने लगा -आओ संतो बैठो। संत तो मेरे ही स्वरूप हैं। वील्होजी ने कहा-

आप अपना धर्म बताओ? यहाँ क्या कर रहे हो? किस प्रकार से अपना पंथ चला रहे हो?

वह साणियां कहने लगा -हे भाई! मेरी बात सुनो। मेरा धर्म मैं बतलाता हूँ। स्नान से पूर्व सवा सेर जल पीना,पश्चात् भोजन करें। भोजन से पूर्व स्नान करें तो करे, न करे तो भी चलता है। चहमैं चहमैं भजन भी बतलाता हूँ। मैं तो इसी प्रकार का धर्म बतलाता हूँ। यदि आपको अच्छा लगता है तो आप धारण करलो।

वील्होजी ने विचार किया कि यह तो सभी भूत -प्रेत के लक्षण है। यह कोई देवता नहीं है न ही यह जाम्भोजी हो सकते। यह तो जाम्भोजी से विपरीत चलता है। यदि जाम्भोजी का स्वरूप है तो मैं परिक्रमा कर के देखुंगा,जाम्भोजी का मुख तो चारो तरफ बराबर दिखता था। ऐसा विचार करके वील्होजी परिक्रमा

करने लगे तो वह साणिया भी चारो तरफ घूमने लगा। अपना मुख वील्होजी के तरफ ही रख रहा था। पहले तो वील्होजी ने समझाया कि इस प्रकार से घूमना नहीं चाहिये। परन्तु वह नहीं माना तो वील्होजी ने पीठ पर अपना घुटना लगाया। गला पकड़ा। तब वह कहने लगा छोड़ दो छोड़ दो अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

वह कहने लगा-मैंने सोचा था कि अब जाम्भोजी नहीं रहे मैं अपनी करतूत कर लूंगा । किन्तु अब मुझे पता चला है कि जाम्भोजी तो वील्होजी के रूप में विद्यमान है। फिर मैं तो कभी ऐसी हरकते नहीं करूँगा। अब मैं यहाँ से चला जाऊंगा। जाम्भोजी की साथरी संभेलिया में जाकर कुछ परोपकार का कार्य करूँगा। जहाँ पर चितौड़ नरेश ने तालाब खुदवाया है वहाँ पर मुझे एक इमली के पेड़ के नीचे अपार धन गड़ा हुआ दिखता है।

उस धन का सदुपयोग करूँगा वहाँ पर ज्योति मन्दिर का निर्माण करवाऊंगा और तालाब के पैड़ी बन्धवाऊंगा। जाम्भोजी के पन्थ का प्रचार प्रसार करूँगा। इस प्रकार से वील्होजी के सामने वह भूत साधक साणियां प्रतिज्ञा करता हुआ रूड़कली से प्रस्थान कर गया। साणियां ने संभेलिया जाकर इमली के पेड़ के नीचे गढा हुआ धन निकाल लिया,एक पूर्ववीया महिला से बावन बीघा जमीन खरीदी और विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया।

चौमुखा वह मन्दिर जाम्भोजी के जीवन की '''चहूँ दिश परसै'''चारो तरफ मुख दिखाई देने की बात को प्रगट करता है विशाल जाम्भोलाव तालाब को खुदवाया, उसके पेड़ी बंधवायी। संभेलिया में धर्म प्रचार प्रसार का स्थान कायम किया। वही पर सांणिये ने घुड़साल बनवायी,चारो तरफ चार विशाल गोपुर द्वार बनवाये,अपने रहने के लिये भी विशाल भवनों का निर्माण करवाये। वही पर ही साणियां की समाधि लगी हुई है। उस पर भी समाधि मन्दिर का निर्माण हुआ है।

इतना समय व्यतीत हो जाने पर भी वह ज्योति मन्दिर जैसा का तैसा अपनी भव्यता का परिचय दे रहा है। वर्षा के समय बांध का पानी भर जाता है किन्तु मन्दिर ज्यों का त्यो खड़ा हुआ काल को बाधित कर रहा है। उस मन्दिर को देखकर ऐसा लगता है कि उसकी नींव बहुत ही गहरी है। जितना वह ऊंचा है उतना ही वह नीचे धरती में गहरा होगा।

ऐसा दिव्य मन्दिर अन्यत्र दुर्लभ है। काल तो सभी को खा जाता है किन्तु वह मन्दिर तो काल का भी काल होता नजर आ रहा है। उसी मन्दिर के आस पास तीन गाँव विश्नोइयो के है -पुर,दरीबा,और संभेलिया। ये गाँव व मन्दिर भीलवाड़ा शहर के अति निकट है।

सांणिया को रूड़कली से उठाने के पश्चात वील्होजी ने अन्य गाँवो में भी व्यापक भ्रमण किया था। जहाँ पर भी देखा कि किसी प्रकार से धर्म की हानि हो रही है वहीं पर अपना प्रयोग किया तथा इस कार्य में सफल हुए। विश्नोई पन्थ में कुछ शिथिलता आ गयी थी वील्होजी ने पुन:उसमें जान डाल दी थी। वील्होजी जैसे संत ही पन्थ के थम्भ है। अन्य संत तो डाल के समान है। जाम्भोजी तो पन्थ के मूल है

जहाँ जहाँ पर जाम्भोजी ने भ्रमण किया था। पंथ की स्थापना की थी। वहीं वहीं पर वील्होजी भी पहुँचे थे। गंगा पार,पूर्वदेश,मालवा,मेवाड़,जोधपुर,बीकानेर आदि सभी जगहों पर घूम-घूम कर धर्म का प्रचार प्रसार किया। मेवाड़ में पुष्कर तीर्थराज में स्नान कर के पुन: जोधपुर के चौरासी गाँवो में आये। वहाँ से मेड़ता पोलास, हींगोली आदि गाँवो में भी वील्होजी के चरण चिह्नों से धरती धन्य हुई। बीकानेर राज्य में भ्रमण करते हुए रासीसर गाँव में खेजड़ी के नीचे आसन लगाया था,वह खेजड़ी वील्होजी की स्मृति ताजा कर रही है। वील्होजी ने सुगुरु कुगुरु का भेद बताया-

सुगुरु ध्याया सुख होय,कुगुरु ध्याया दुख पावै।
सुगुरु भेद कर्म छेद, कुगुरु संग पाप कमावै।
सुगुरु संग स्वर्ग सुख, कुगुरु संग साथ विगौवै।
सुगुरु उतारै पार, कुगुरु डूबै अरु डुबोवै।
सुगुरु सेव लाभै स्वर्ग, कुगुरु दुख नरका तणौ।
विल्ह कहै जो पारखो, सुगुरु कुगुरु अन्तर घणौ।

अन्य किसी गाँव में वील्होजी पहुँचे थे तो उस गाँव की हालत भी ठीक नहीं देखी। तो कहने लगे –

परहरिये सो गाँव,नाव विष्णु को न भणीजै।
नही साध सूँ गुष्ट,ज्ञान श्रवणे न सुणीजै।
घणो वाद अहंकार,घणी पर निंद्या कीजै।
नहीं साच सूँ प्रीत,मुखअलियो बोलीजै।
मेट्यौ सतगुरु को कह्यौ,बुध शैतानी पाकड़ी।
वील्हा विलंब न कीजियै,जिण नगरी एका घड़ी।

तब लोगों ने पूछा –महाराज! तब हम कैसे गाँव में निवास करें। तब वील्होजी ने कहा

जिंहि नगरी धर्म दृढाय,सत्य सिंवरण नर सूरा।
सझै सुचील सीनान,जुगत्य जणां पण पूरा।
मेल्ही मन की भ्रान्त,भ्रम भोलावै भानै।
जपै नाम श्री विष्णु को,आन की सेवा न मानै।
ओलख्यो जम्भ साचो गुरु,धन जीतब ताह को जीयौ।
वील्हा कई दिन जीव जै,तिह नगरी वासो लियो।

वील्होजी ने लोगों को धर्म की महत्ता बताते हुए कहा –

धर्म किया सुख होय,लाछ लछमी धन पावै।
धर्म उत्तम कुल अवतरै,जलम दालद नहीं आवै।
धर्म जीव जुग्य बलह,रूप ओपमा इधिकारी।
धर्म ता मान महन्त,ज्ञान तेसुं प्रीति पियारी।
संसार जुगत आगै मुक्त,लाभ घणौ छै देहूँ पर।
वील्ह कहै आलस मत कर,जो गुरु कह्यौ सो धर्म कर।

पाप का निषेध करते हुए इस प्रकार से कहा –

पाप न कर मत्य हीण,हलत हारस।
जल मंत्र पाप,मध्यम कुल अवतरस्य।
मान घटी सी न खरी पर,पाप भूख दुःख भोग्यवस्य।
सिर भार फिरसी,पर सार पुलंतो।
पाप तणै पोसाय कर,सिर मार्‍यो भोजन लस्य।
वील्ह कहै हारस्य जन्म,पाप न कर बोह दुख सहस्य।

गाँवों में भ्रमण करते हुए वील्होजी ने अनुभव किया कि सभी बिश्नोई एक दुसरे से परिचित नहीं हैं।

अपने सुख-दु:ख की बात किससे कहें? ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे सभी लोग एक जगह एकत्रित हो सकें। जहाँ पर ज्ञान की चर्चा हो और सामाजिक व्यवस्था दृढ हो सके। यह बिश्नोई पन्थ सुदृढता से आगे बढ सके।

इसके लिये वील्होजी ने वि. संवत सौलह सौ अड़तालीस में चैत्र अमावस्या का मेला जाम्भोलाव में स्थापित किया। आसोज की अमावस्या का मेला मुकाम में वील्होजी ने प्रारम्भ करवाया। फाल्गुन की अमावस्या का मेला तो आदि अनादि काल से ही चला आ रहा था। जहाँ जहाँ पर साथरियाँ बनी थी वहाँ वहाँ पर वहाँ के स्थानीय लोगों को प्रत्येक अमावस्या को एकत्रित कर के हवन करने का कार्यक्रम वील्होजी ने ही प्रारम्भ किया था।

यज्ञ करने का अर्थ भी यही है कि यज्ञ-देव, पूजा,संगति करण,और दान। यज्ञ कर के देवपूजा करे। परमात्मा से संगति स्थापित करे,और दान करे। स्वाहा कह कर के आहुति देना दान है और समाज को एकत्रित करना संगति करण है। तथा इस शुभ कार्य द्वारा परमात्मा की प्राप्ति करना भी यज्ञ से संभव है। स्वाहा द्वारा आहुति दी जाती। इस दान में यही भावना होती है कि ''इदं न मम''यह मेरा नहीं है। आपका ही है हे प्रभु! आपको ही समर्पित है।

इस त्याग भाव से यज्ञ जीवन जीना सिखाता है। यदि सभी लोग त्याग भाव से यज्ञ कर के पश्चात उपभोग करें तो किसी प्रकार का उपद्रव होने की संभावना नहीं रहती। वील्होजी ने मेले पर उपस्थित जन समूह को नियमों पर अटल रहने का आदेश दिया। सामाजिक व्यवस्था ठीक ढंग से चलती रहे, इसके लिये जगह जगह साथरियों को केन्द्र बिन्दु बना कर पंचायतों की स्थापना की।

यदि कोई अनजान में धर्म को तोड़ता है तो उसे प्रायश्चित करवा कर के पाहल देकर पुन:शुद्ध किया जावे। यदि कोई जान कर धर्म विमुख होकर शैतानी करता है, तो उसे दण्ड देकर वापिस पंथ में सम्मिलित किया जावे। और यदि दण्ड देना भी स्वीकार न करे तो, उसे समाज से बहिष्कृत किया जावे। इस प्रकार के नियम वील्होजी ने बना कर लागू करवाये। बिना समाज के अकेला व्यक्ति जी नहीं सकता। उसे कहीं न कहीं तो सहारा लेना ही पड़ेगा। धर्म की रक्षा करने हेतु सामाजिक बहिष्कार भी एक उपाय है

प्रारम्भ में तो धर्म जबरदस्ती ही चलाना होता है। किन्तु धीरे-धीरे धर्म पर चलने में अभ्यस्त हो जाता है, तो धर्म आनन्द दायक हो जाता है। प्रारम्भिक सुख का परिणाम अन्त में दु:खमय हो जाता है। वह सुख राजसी होता है और जो प्रारम्भिक सुख दु:ख मय मालूम पड़ता है, उसका परणिाम आनन्दमय होता है। वह सुख सात्त्विक होता है। और न तो प्रारम्भ में सुखमय है और न अन्त में वह सुख तामसी होता है। इसलिये धर्म के मार्ग पर चलने में प्रारम्भ में कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। वील्होजी इन बातों से लोगों को अवगत करवाते और धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं।

वील्होजी ने अपने जीव काल में विशाल साहित्य की रचना की है। हालांकि वील्होजी से पूर्व भी कवि लोगों ने साखियाँ, छन्द, हरिजस, कथाओं के द्वारा जाम्भोजी के जीवन चरित्र को दर्शाया है। वील्होजी ने अपने से पूर्व संत महापुरुषों की विधि को तो ज्यों की त्यों अपनायी है। वील्होजी ने साखी, छन्द, हरजस आदि की रचना की तथा विशेष रूप से कथा साहित्य की रचना वील्होजी ने ही प्रारम्भ की थी।

वील्होजी ने-कथा धड़ाबंध,कथा औतारपात,कथा गूगलिये की,कथा पूल्होजी की,कथा दूणपुर की,कथा जैसलमेर की,कथा झोरड़े की इत्यादि रचना की थी। इन्हीं कथाओं के आधार पर जाम्भोजी की पावन लीला एवं इतिहास टिका हुआ है। ये सभी कथाएँ परमानन्दजी के पोथे में हस्तलिखित उपलब्ध हैं।

वील्होजी स्वंय तो सर्वश्रेष्ठ कवि,धर्मप्रचारक,एवं सिद्धसंत महापुरुष थे ही। वे इस समाज की उन्नति एवं अभिवृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। इसके साथ ही उन्होंने अपने दो शिष्य भी समाज को दिये केशोजी गोदारा एवं सुरजनजी पूनिया। अपने गुरु के सदृश ये दोनों ही साहित्यकार एवं धर्म प्रचारक सिद्ध महापुरुष हुए इन्होंने अपने गुरु के कदमों पर चल कर इस समाज की बहुत ही सेवा की है।

इस समय वर्तमान में चलने वाली संत परंपरा भी वील्होजी से प्रारंभ हुई है। इस समय भी संतों की दो परंपराएँ चलती हैं। एक तो वील्होजी की परंपरा दूसरी वील्होजी के गुरु भाई खिदरोजी की परंपरा। वील्होजी के दोनों शिष्यों की चर्चा आगे की जायेगी। प्रसिद्ध साखी ''करमणी चलणो इणि संसारि'' की रचना वील्होजी ने की थी। इस साखी का विषय है करमा और गौरा दो महिलाएँ जिन्होंने रामासड़ी गाँव में वृक्षों की रक्षा हेतु बलिदान दे दिया था। उस घटना के वील्होजी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। इसका वर्णन आगे किया जायेगा।

वील्होजी ने मुकाम मन्दिर से नवीन जीवन प्रारंभ किया था। सर्व प्रथम मुकाम के गुरु मन्दिर में आकर वील्होजी ने अपने जीवन के उद्धार की प्रार्थना इस प्रकार से की थी।

गुरु तार बाबा, तू पालक सरब दुःख भंजन, हम अपराधी तेरा।। 1।।
गुरु तार बाबा, जीवड़ो लोभी अरु लब्धी ,इण खूनी खून किया बहुतेरा।। 2।।
गुरु तार बाबा, मरमर गयो जन्म फिर आयो, इण मन न छाड़ी मेरा।। 3।।
गुरु तार बाबा, आवागवण सह्या दुःख संकट,फिरियो अनंत ही फेरा।। 4।।
गुरु तार बाबा, स्वदेज अंडज जेरज उद्भिज, भुगती खैंण अनेरा।। 5।।
गुरु तार बाबा, लख चौरासी चौचक भीतर, भरम्यो वहोली वेरा।। 6।।
गुरु तार बाबा, बहु दुःख सहया शरण बिन गुरु की, कर कर कर्म कुफेरा 7।
गुरु तार बाबा, बैर किया बैरी उठि लागा, मैं शरणै ताक्यो तेरा।। 8।।
गुरु तार बाबा, मन परच्यो पूरो गुरु पायो, न भजूं आन अनेरा।। 9।।
गुरु तार बाबा, अरज करूं जंभेश्वर आगे, मोहि संमल्हो अब की वेरा।। 10।।
गुरु तार बाबा, वील्ह कह वीनती गुरु आगे, द्यो पार गिराय बसेरा।। 11।।

जगत के बाबा जी से वील्होजी ने प्रार्थना की थी। स्वयं ही परमात्मा के समर्पण हो गये थे। अहंकार को बाहर निकाल दिया एवं परमात्मा को हृदय मन्दिर में बैठने को जगह प्रदान कर दी थी। लगभग चौरासी वर्षो तक संसार में जीवन यापन कर के अपने जीवन को सफल बनाया। वील्होजी ने अपना कार्य पूर्ण करने के लिए अपने शिष्य सुरजन जी को उत्तराधिकारी बनाया और अपनी अन्तिम इच्छा स्वभाव प्रकट करते हुए राग धनाश्री में उमाहो गाया था।

अंतिम उमंग,हृदय की परम पवित्र, प्रेम-भावना उमाहो में साकार मूर्तिमान होकर अजर अमर हो गयी। वील्होजी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में उमाहो मान्य है। उमाहो में किसी कवि का कवित्व नहीं है। यह तो उनके जीवन का सार है। अन्त समय में उमाहो के रूप में प्रवाहित हुआ है। हमारा जीवन भी उमाहो की तरह बन जाये, तो हम भी कृत कृत्य हो जायें। जिस प्रकार अपना नया जीवन 'गुरु तारि बाबा से प्रारम्भ किया था, वही मुकाम से ही अन्तिम विदाई लेते हुए उमाहो का उच्चारण किया था। प्रेम रस से हृदय आनन्दित होकर उमाहो के रूप में शब्द रस प्रगट हुआ। आओ हम भी रसास्वादन करें।

बाबो जंबू द्वीपे परगटियो, चोचक हुयो उजास।
आप दीठो केवल कथे, जिंहि गुरु की हम आस।।

बलि जाऊं जांभेजी रे नाम नै, साधां मोमणां रो प्राण आधार।
थे जारे हिरदे वसो, तेरा जन पहुंता पार।। टेर।।
संभरथल रली आवणा, जित देव तणो दीवाण।
परगटियो पगड़ो हुयो, निस अंधियारी भांण।। 1।।
एकलवाई थल खड्र्यो, करत सभी मुख जाप।
शिम्भू को सिंवरण करै, जोई जपे सोई आप।। 2।।
भूख नहीं तिसना नहीं, गुरु मेल्ही नींद निवार।
काम किरोध व्यापै नहीं, जिहिं गुरु की बलिहार।। 3।।
भगवीं टोपी पहरंतो, गहि कथा दस नाम।
झीणी बांणी बोलंतो, गुरु बरज्यो वाद विराम।। 4।।
सिकंदर परमोधियो, परच्यो महमंद खान।
राव राणा निंव चालिया, सांभल केवल ज्ञान।। 5।।
मधम तां उत्तम किया, खरी घड़ी टकसाल।
कहर क्रोध चुकाय के, गुरु तोड़्यो माया जाल।। 6।।
सीप वसै मंझ सायरा, ओपत सायर साथ।
रैणायर राचे नहीं, चाहै बूंद स्वात।। 7।।
जल सारे विण माछला, जल बिन मच्छ मर जाय।
देव थे तो सारो हम बिना, तुम बिन हम मर जाय।। 8।।
बोह जल बैड़ी डूबंता, बूझे नहीं गिंवार।
केवल जंभ बाहरो, म्हांनै कौण उतारे पार।। 9।।
हंसा रो मान सरोवरां, कोयल अंबा राय।
मधु कर कमल रै करै, तेरा साध विसनु के नांव।। 10।।
जल बिन तिसनां ना मिटै, अन्न बिन तिरपत न थाय।
केवल जंभ बाहरो, कोण कहे समझाय।। 11।।
पपहियो पीव पीव करे, बोली सहै पियास।
भूयं पड़ियो भावै नहीं, बूंद अधर की आस।। 12।।
ठग पोहमी पाहण घणां, मेल्ही दूनी भुलाय।
पाखंड कर पर मन हड़ै, तहां मेरो मन न पतियाय।। 13।।
गुरु काच कथीर न राचही, गुरु विणज्या मोती हीर।
मेरो मन लागो श्याम सूं ,गुदड़ियो गुणा को गहीर।। 14।।
निर्धनियां धन वाल्हो, किरपण वाल्हो दाम।
विखियां ने वाहली कामणी, तेरा साधु विसन के नाम।।15।।
धन्य परेवा बापड़ा, थारो वासो थान मुकाम।
चूण चुगे गुटका करे, सदा चितारे श्याम।। 16।।
अंबाराय बधावणां, आनंद ठामो ठांय।

श्याम उमाहो मांडियो, पोह कियो पार गिराय।। 17।।
बोल्यो गुरु उमाहड़ो, करमन मोटी आस।
आवागवण चुकाय के, म्हाने द्यो अमरापुर वास।। 18।।
अवसर मिलिया मोमणां, भल मेलो कब होय।
दुःखी बिहावे तुम बिना, हर बिन धीर न होय।। 19।।
काही के मन को धणी, कांही के गुरु पीर।
वील्ह भणे विसनोइयां, आपां नाम विसन के सीर।। 20।।

उमाहो –राग धनाश्री

अन्तिम बार भाव निवेदन करके वील्होजी ने अपनी ज्ञान प्राप्ति स्थल, मुकाम समाधि स्थल को प्रणाम किया और मुकाम से प्रस्थान कर के रामड़ावास पहुँचे। पूर्व में जाम्भोजी ने रामड़ावास की धरती पर चरण रखे थे। वहीं पर वील्होजी ने अपना पंचभौतिक शरीर त्यागने के लिये उपयुक्त समझा था। वील्होजी ने अपने दो परम शिष्य केशोजी एवं सुरजन जी को पास में बुला कर उन्हें अन्तिम उपदेश देकर कृतार्थ किया। सुरजन जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। जहाँ सतगुरु देव बैकुण्ठ धाम में विराजमान थे वहीं उन्हीं के पास ही जीवात्मा प्रेमाधिकता के कारण पहुँच गयी। जिस समय वील्होजी ने शरीर त्यागा था,उस समय का वर्णन गोविन्दरामजी ने इस प्रकार किया है –

मनोहर छन्द – वील्हजु महाराज तब धामहि,सिधारे जब।
संमत सोलासे अरू,तेहतरो बखाणिये।
सूरज उतर दिस,काल सोई जानों रूत।
रितु ही बसंत,मधुमास जु प्रमाणिये।
विष्णु वरत सुदि,सोउ एकादशी तिथि।
मानो वार में सु आदिवार,दितवार मानिये।
उतरा नखत मानो,ध्रुव कर जोग जानो।
तुल सुं लगन काल,अमृत जु जानियै।

कालान्तर में वील्होजी की समाधि अमर करने हेतु साहबरामजी ने मन्दिर का निर्माण करवाया। स्वयं साहबराम जी ने कहा –

साध जो साहबराम,सुन्दर बनायो धाम।
आठूजाम विष्णु नाम,मन्दिर में गाइये।
मन्दिर की सुन्दरता,नित ही छिव रूप।
इंडो ही अनूप रूप,समाद को ध्याइये।
समंत उन्नीस सो जूं,इग्यारे की साल मन्दिर।
कंवार सुदि पुन्यु वार,सुक्र हुं सुनाइयै।
साहब राम जु की भेंट, यही,मानो मेरे प्रभु।
टेलही सै नित चित,चरणां मैं लाइयै।

सिद्ध कवि सुरजन जी महाराज

वील्होजी के उतराधिकारी शिष्य सुरजन जी योगी कवि,पण्डित,बहुज्ञानी,स्वर ज्ञान के परम ज्ञाता थे। दूसरे शिष्य केशोजी भी सुरजन जी की तरह ही कवि एवं ज्ञानी थे। दोनों ही जाम्भोजी के प्रिय, मानो मन रूप ही थे। सुरजन जी का जन्म समय वि सं- सौलह सौ चालीस और मृत्यु सत्रह सौ अड़तालीस अनुमानित है। भींयासर गाँव के पूनियाँ गोत्र के बिश्नोई थे। बचपन में ही वैराग्यवान होकर वील्होजी के शिष्य बन गये थे।

एक समय सुरजन जी अपनी साधु मण्डली के साथ भ्रमण करते हुए जोधपुर नरेश जसवंतसिंह के पास पहुँचे। जोधपुर के लौह पोल पर सुरजन जी ने अपने गुरु वील्होजी की भांति आसन लगाया। संध्या बेला में आरती एवं साखियाँ मधुर ध्वनि में सुरजन जी ने अपने साथियों के साथ गायीं। ऐसी प्रिय मनमोहक ध्वनि नगरी के लोगों ने सुनी। सवा प्रहर रात्रि व्यतीत होने तक मजीरा झांझ का झणकारा राजा एवं नगरी के लोगों ने प्रथम बार ही सुना था। उस समय तो गाना बजाना पूर्ण करके भगवान् का ध्यान करते हुए सो गये।

प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में उठ खड़े हुए शौच स्नानादिक नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर सुरजन जी हवन करने बैठे। वेद रूपी शब्दों की मधुर ध्वनि गाते हुए यज्ञ देवता की प्रसन्नता के लिये आहुति प्रदान की। कानो में वेद मंत्र की ध्वनि सुनाई दे रही थी। जो बहुत ही कर्ण प्रिय थी। नासिका में दिव्य हवन की सुगंधी प्रवेश कर रही थी।

अकस्मात् ही जोधपुर नरेश एवं रानी का मन बुद्धि आकर्षित हुआ। और पूछा कि इधर लोहा पोल पर रात्रि से लेकर अब तक भजन कर रहे हैं वे लोग कौन हैं? उस समय राजा के पास रहने वाला एक आवड़ दान चारण कहने लगा-हे राजन! यह तो बिश्नोई साधुओं का टोला है। न जाने यहाँ पर किस कार्य हेतु आया है। चारण ने तो यह बात उपेक्षा भाव से कही थी, किन्तु जसवंतसिंह कहने लगा-चलो, मिलने चलते हैं। राजा ने भेंट सजाई और प्रेम भाव से मिलने के लिये चल पड़े।

राजा ने चारण के भाव को अनसुना कर दिया। वह राजा पूर्ण धार्मिक विचारों वाला आदमी था। वह धर्म के मर्म को जानने का इच्छुक था। इसलिये संत मिलन हेतु राजा चला। राजा जानता था कि संत के पास जाने में लाभ ही लाभ हैं। चारण भी राजा के साथ ही साथ चला था। राजा ने सुरजन जी के सामने भेंट रखी। और आगत स्वागत करने के पश्चात पूछा -

उसी समय ही वह चारण बोला-खेती तो फल युक्त हो गयी है, किन्तु कैर फूले-फले नहीं हैं? यह व्यंग्यात्मक वचन कहा -सुरजन जी ने जवाब देते हुए कहा -यही तो मुझे हैरानी-परेशानी है कि ऐसी हरकत क्यों की जा रही है? फिर वह चारण कहने लगा-आप साधु हो गये, फिर भी हैरान-परेशान हो तब साधु ही क्यों बने? तब सुरजन जी ने इस प्रश्न का जवाब देते हुए एक छन्द कहा-

ऐक बड़ो हरान,पाव जसराज पखारे।
मेछागढ मेड़ते जाय,जोधाण जुहारे।
महल गया घर मेल,पीव परदेश पधारे।
दिज मूरत देहरा ;गाय बजाय सिधारे।
मुवौ न कोई मीर छल,च्यार खूंट काने चड़ी।

हरान आठ एकण समै,हुवा जूं मुरधर बापड़ी।

सुरजन जी ने कहा- मैं हैरान नहीं हूँ। मैं तो सर्वथा आनन्द में हूँ। हैरान तो वही होगा जो नित्य प्रति राजा के पाँवो में पड़ा रहता है। कभी मेछागढ कभी मेड़ते,कभी जोधपुर जाकर दीनता से प्रणाम करता है। अपना घर-परिवार स्त्री को छोड़ कर दो पैसों के लिये भटकता है।

हे चारण! हम क्यों हैरान होंगे? हमें तो द्विज की भाँति दरवाजे तक लोग सामने आते हैं। गा बजा कर स्वागत कर के अपने घर तक ले जाते हैं। हरि का भक्त ज्ञानी ध्यानी, अब तक कोई मरा नहीं है,ये तो सदा सदा के लिए अमर हो गये हैं। चारों दिशाओ में उनके नाम का गुणगान सदैव होता आया है और होता रहेगा।

हे चारण! यहाँ तो तुम्हारे जैसे कोई पराधीन,हैरान होगा। इस मरुधर भूमि में तो एक से एक बढकर महापुरुष हुए हैं। इस धरती को अपनी तपस्या से पवित्र तीर्थ बना दिया है। कहीं-कहीं सोने की थाली में लोहे की मेख होना संभावित-स्वाभाविक है। सुरजनजी ने इस विषय में ओर भी अनेकों छन्द कहे हैं।

उसी समय जोधपुर नरेश के मंत्री दुर्गादास ने कहा -महाराज! कोई अद्भुत परचा दीजिये। आप परमेश्वर जाम्भोजी की शिष्य परंपरा में इस समय सर्वश्रेष्ठ हैं। आप से पूर्व आपके गुरु वील्होजी यहीं पर आये थे। उन्होनें भी अद्भुत परचा दिया था। आप भी तो उनके जैसे ही सिद्ध पुरुष हैं। अवश्य ही कुछ अलौकिक कार्य करके दिखाएँ। सुरजनजी का इशारा जानकर दुर्गादास कहने लगा-

महाराज! इस समय वर्षा का समय आ चुका है। किसान लोग आकाश में बादलों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु कहीं भी बादल की एक टुकड़ी भी नहीं दिखाई देती है। वर्षा कहाँ से आये? आप मरूधर में वर्षा करवा दो, तो हम राजा-प्रजा निहाल हो जायेंगे। सुरजनजी वहीं पर ही स्थित हो गये। हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे- उसी समय ही सुरजनजी ने एक कवित गाया- वह इस प्रकार से हे-

गुड़े बंब निसाण, झील पड़ो गिरवरा।
आजरा पुन पालग आवौ,धूंधले बादले वरसो धरा।
ज्ञान मोरा तणौ ध्यान मोटा धणी। धेन आसीस दो दधारा।
भावनी पीव भरतार ने लाज ही, आज गजराज प्रहलाद धू उधरै।
जगत में भगत की भीड़ भाजै, नीबल से सबल होय रोशने।
कीजियै लांघणै बाल, मायत लाजै।
हुय प्रसन्न मेह करो मोटा धणी, दुनि कर जोड़ आसीस दीजै।
विनती श्याम सुरजन तणी, संभलो कालपै माह कर मेह दीजै।

इस छन्द द्वारा सुरजनजी ने हार्दिक प्रार्थना की तो मेघों के देवता इन्द्र उसी घड़ी प्रसन्न हुए जैसलमेर की तरफसे बादल आये। घने बादल गर्जना करते हुए बिजलियाँ चमकने लगीं। घने बादलों से धरती पर दिन में ही रात्रि का आभास होने लगा। बीच-बीच में चमकती हुई बिजली रात्रि का आभास करवा रही थी। आकाश में बादल आ गये मानो काले पहाड़ ही आ गये हों।

सम्पूर्ण मरुधर देश में एक ही समय बहुत ही वर्षा हुई। सात दिनों तक लगातार ही वर्षा होती रही। सभी तालाब, नदी-नाले जल से परिपूर्ण हो गये। उफनने लगे। इसी प्रकार से अपार वर्षा हुई। दुष्काल की निवृत्ति हुई। नाना प्रकार का अन्न घास आदि उग आया और चारों तरफ हरियाली का ही साम्राज्य हो गया। सुरजनजी को धन्यवाद दिया।

सुरजनजी की कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। कहा भी है- सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फ ल

आश्रयत्वम्' जो मन वचन कर्म से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, ऐसे योगी द्वारा की जाने वाली सम्पूर्ण क्रियाएँ फलवती होती हैं।

जाम्भोजी के बताये हुए नियमों पर चलकर सुरजनजी ने सतगुरु की कृपा से सिद्धि को प्राप्त हुए थे। सुरजनजी ने जोधपुर नरेश से अपने राज्य में जीवरक्षा एवं वृक्षों की रक्षा करने का पट्टा लिखवाया था। सुरजनजी वहीं जोधपुर के गाँवों में ही विचरण करने लगे थे। इस बार चतुर्मासा सुरजनजी ने रामड़ावास में ही करने का विचार किया। वहीं रामड़ावास से पूर्व एक तालाब पर झोंपड़ी बनाकर के रहे लगे थे। उस समय उनके पास सवारी के लिए बैलगाड़ी थी। सुरजनजी के बैल स्वेच्छा से जंगल में घास चरते थे। उन्हें कोई नहीं रोकता था।

उसी समय ही कापरड़े में पशु मेला लगा था। सुरजनजी ने अपने मोटे तकड़े बैल भी कापरड़े भेज दिये थे। वहाँ पर कोई प्रतियोगिता में सम्मिलित होना था। वहीं पर जोधपुर नरेश के मंत्री दुर्गादास ने सुरजनजी के बैल देखे और उन्हें अच्छे लगे। तब सेवक से छीनकर अपने पास मंगवा लिये। जो अच्छा धन होता है, वह तो राजा का ही होता है।

दुर्गादास ने कहा: सुरजनजी की सिद्धि एक बार और देखेंगे। जब जोधपुर में एक छन्द गाकर वर्षा करवायी थी, किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि वह वर्षा सुरजनजी ने ही करवायी थी। हो सकता है स्वत: ही हो गयी हो। एक बार यहाँ उन्हें अवश्य ही बुलाना है। इसी बहाने दर्शन लाभ भी होगा ही।

उस सेवक से कहा– तुम जाओ अपने सिद्धिवान गुरु को यहाँ बुला लाओ, तभी बैल वापिस मिलेंगे। ऐसी वार्ता सुनकर सेवक वापिस रामड़ावास खाली हाथ लौट आया और दुर्गादास की करतूत सुनाई। सुरजनजी ने दूसरा रथ जोड़ा और कापरड़ै जाकर चबूतरे पर रथ खोला। उसी समय सुरजनजी को आया देखकर दुर्गादास ने हाथ जोड़ा और सादर लाकर आसन पर बिठाया।

उसी समय एक चारण कहने लगा– हे महाराज! एक बात बतलाओ? जब इस शरीर को छोड़कर जीव हंस अन्यत्र गमन करता है, तो वह किस पर सवारी करता है? इस समय आप तो रथ पर सवार होकर आये हैं। किन्तु जीव की अंतिम सवारी क्या होगी? सुरजनजी ने एक कवित कहा–

मन राज वेहिरयो, उध दोय रे अधर।
जड़ी मेख धीरज, पावे देसा सधर।
दान मान ज्यूं रथ, कब सवारथ केवटी।
सहज शील संतोष, लाज चावड़े लपेटी।
खांच सीध बल बिरला, कोउ जमी गहण मांवे ही।
तेतीस कोड़ दहै आगलो, कहो रथ दीठो कहीं।

दुर्गादास कहने लगा–

रथ भारी चालै नहीं, खांचै कहो कुण आज।
अहरी रथ सुणिये नही, थेई कह्यो महाराज।

सुरजनजी ने बतलाया–

सिंवर खंचियौ वे छुट्यो, वैणासर दूजै पहैर।
दधीच हाड़ बाढ़ दीधै, विदिया गुर।
मोरधुज मुकंध कंध, दैना के पूगे करण कंध मंडियो।

आण मलह्यो कलिजुगे कु किया, भीत कव स्वार्थी रूंखा।
जु गाडी बूड़ रही,जुग जुग अवचरै देखे रथ खेवै दई।
खांचण वाले बहु भये, जुग जुग बहु प्रकार।
जो रथ कूं नित खांचही, ताका सुणो विचार।
पांच करोड़ प्रहलाद, नगा छलियो निरमल।
सात करोड़ हरचदं, नव कूंता सुतन कुल।
खरा कोट खट् दूणा, जीव जपै काल जाती।
पांच सात नव कोड़ बाहरा भार पड़यो बहुभांति।
सुरदेव धुर हुव स्वार्थी, खैवे राज गिरी किसन।
तिणवार शाख सुरजन कै, तूं बाग मेल मोटा विसन।
दोहा: ज्ञान सुण्यो प्रसन्न भयै, दुर्गादास सुन ज्ञान।
कछु अस्तुति करत है, जोरत जान जुग पान।

इस प्रकार से दुर्गादास हाकिम को परचाया और अपने बैल छुड़वाकर वापिस रामड़ावास चले आये। सुरजनजी ने अनेकों कविताएँ, साखी, छन्द, कथाएँ आदि की रचना की थी। जिनमें प्रमुखत: साखियाँ, गीत, हरजस, दोहा, कवित, कथा चेतन, कथा चिंतामणी, कथा धर्मचरी, कथा हरिगुण, कथा औतार की, कथा परिसिंध, ज्ञान महात्म्य, ज्ञान तिलक, कथा गजमोख, कथा उखापुराण, भोगल पुराण, रामरासौ इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

सुरजनजी उच्चकोटि के साहित्यकार कवि तो थे ही साथ ही साथ धर्म प्रचारक, गायक एवं कथावाचक भी थे। जाम्भोलाव माहात्म्य कथा सुरजनजी ने मेले के अवसर पर आगन्तुक तीर्थ यात्रियों को सुनाई थी। यह कथा गद्य एवं पद्य दोनों में वर्णित है। जिसका सारांश पीछे लिख चुके हैं।

सुरजनजी परलोक गमन विक्रम सम्वत् 1748 में जाम्बोलाव पर ही हुआ था। उनके पंचभौतिक शरीर को भींयासर गाँव में लाकर समाधिस्थ किया गया था। अब भी वहाँ पर लाल पत्थर का चबूतरा बना हुआ है। उनके दिव्य जीवन की गाथा कह रहा है।

सिद्ध संत श्री केशोजी

केशोजी गोदारा सिद्ध संत एवं महान् कवि थे। उनका जन्म संवत सौलह सौ तीस में माडिया गाँव में ही गोदारा परिवार में हुआ था। ये बाल्यकाल में ही वैराग्यवान हो कर वील्होजी के शिष्य बन गये थे। वील्होजी द्वारा ही केशोजी ने ज्ञान ध्यान अर्जित किया। केशोजी ने अपने गुरु वील्होजी के ही सिद्धान्त को आगे बढाया। साहित्य रचना में केशोजी पौराणिक कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। उनका साहित्य बहुत ही विस्तृत है। वील्होजी जो कार्य नहीं कर सके, उसी कार्य को केशोजी ने पूर्ण किया। केशोजी द्वारा रचित साहित्य इस समय निम्नलिखित रूप में उपलब्ध है–

उन्नीस साखियाँ, तेरह हरजस, इक्यासी कवित, सत्ताईस सवैये, पिच्यासी चन्द्रायण, एक सौ सोलह

दोहा, तेरह सोरठे, अवतार की स्तुति में, तथा कथा बाललीला, कथा ऊदे अतली की, कथा सैसे जोखाणी की, कथा मेड़ते की, कथा इसकंदर की, कथा जती तलाव की, कथा विगतावली, कथा लोहापांगल की, प्रहलाद चरित्र, कथा भीव दुसासणी, कथा सुरगारोहणी, कथा बहसोवनी, कथा म्रघ लेखा, इत्यादि प्रसिद्ध।

साहबरामजी ने जम्भसार में लिखा है– ''केशव तो केशव सम जानो'' केशोजी तो केशव भगवान् जाम्भोजी सदृश ही थे। जाम्भोजी विष्णु के परम प्रेमी भक्त थे। ऐसे प्रिय भक्त को यदि जाम्भोजी विष्णु मिल जाये तो अचम्भे की बात नहीं है। अवश्य ही मिले होंगे।

केशोजी साखी शब्दों के गायक कलाकार उच्च कोटि के थे। उन्होंने जहाँ पर भी बैठ कर मधुर ध्वनि में गाया, वहीं मधुर ध्वनि श्रवण करके उनके ही सुनने वाले हो गये। उनको कभी छोड़ नहीं सके। उन्होंने अपनी कला से सभी को मोहित कर के धर्म पंथ पर चलने के लिए मजबूर कर लिया। कितने ही पापी जनों को पाप पंक से निकाल कर के शुद्ध पवित्र बनाया। उनतीस नियमों पर चला कर सतपंथ के पथिक बनाया। एक समय केशोजी रामड़ावास पधारे थे। उनसे मिलने के लिए जोधपुर नरेश जसवंत सिंह आये थे। मारवाड़ की भूमि में बार बार अकाल की विभीषिका असहनीय है। जसवंतसिंह ने प्रार्थना करते हुए कहा था–

हे सद्गुरु देव! आप हमारे देश में पधारे हैं। आपको मैं जाम्भोजी एवं वील्होजी ही मानता हूँ। आपके गुरु भाई सुरजन के सदृश आप भी हमारे देश में वर्षा करवाइये? भयंकर दुर्भिक्ष को भगाइये। आप की कृपा से ही तो हम लोग सुखी हो सकते हैं।

केशोजी ने वर्षा हेतु विराट यज्ञ का आयोजन किया। स्वयं ने ही वेद मंत्र रूपी ध्वनि का प्रसारण किया। यज्ञ में आहूति प्रदान की। ''यज्ञात् भवति प्रजन्यो, यज्ञ कर्म समुद्भव'' यज्ञ करने से वर्षा होती है, इसीलिए यज्ञ कर्म करो। ऐसी आज्ञा भगवान् कृष्ण ने दी है। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य कर के केशोजी ने हित, चित और प्रेम से यज्ञ किया। उसका फल वर्षा के रूप में लोगों ने प्रत्यक्ष देखा।

केशोजी ने यज्ञ कार्य पूर्ण किया ही था, तभी जसवंत जी ने यज्ञ की महिमा एवं केशोजी के श्रद्धा विश्वास को वर्षा के रूप में प्रत्यक्ष देखा था। घन उमड़ घुमड़ कर के चारों तरफसे आकर मूसलाधार बरसने लगे थे। सात दिनों तक लगातार वर्षा होती रही थी। जब नहीं रुकने का अवसर हुआ। तो पुन: राजा ने प्रार्थना की कि हे महाराज! अब आप इसे रोकिये। अन्यथा तो जल ही जल हो जायेगा। सभी धरती डूब जायेगी। अनर्थ हो जायेगा। केशवजी ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा–

हे देव! अब तो आप कृपा कीजिए, वर्षा को रोकिए। हमने तो आपका प्रत्यक्ष दर्शन वर्षा के रूप में ही कर लिया है। अब हम पूर्णतया तृप्त हो गये हैं। अब हम पूर्णतया तृप्त हो गये हैं। आपकी कृपा से हमारे सभी कार्य सफल हो जाते हैं। आपके बिना ऐसा दिव्य कार्य भला कौन करेगा? अब तो कृपा कर के वर्षा रोक दीजिये। आप भी तो देख रहे है कि धरती के जीव त्राहि त्राहि कर रहे हैं। आप तो भक्तों के रक्षक हैं।

इस प्रकार से प्रार्थना करने पर आठवें दिन वर्षा शांत हुई। केशोजी ने काल का मुँह इस प्रकार से तोड़ डाला। जसवंतसिंह जी अति प्रसन्न हुए और केशोजी के कहने पर पाँच सौ बीघा जमीन गोचारण हेतु प्रदान की।

केशोजी को अधिकार प्रदान किया कि धर्म रक्षार्थ विचरण करो। जनता को धर्म का रस पिलाओ। यदि लोग प्रेम रस से धर्म को नहीं अपनाते हैं तो भी उन्हें दंडित करके धर्म पर वापिस लगाओ। राजा ने कहा कि मैं इस कार्य में तुम्हारी सहायता करूँगा। आप साम, दाम, दण्ड तथा भेद से या अन्य किसी

भी प्रकार से भूले-भटके लोगों को सन्मार्ग बताओ। इस कार्य में आपसे कोई अपराध या कोई व्यक्ति दंडित हो जायेगा, तो भी मैं आपका ही पक्ष लूंगा। क्योंकि आप निस्वार्थ भाव से दुनिया की भलाई हेतु कार्य करने जा रहे हैं। इस प्रकार कहते हुए नृप वापिस जोधाणे चला गया। केशोजी सभी जगहों पर भ्रमण करते हुए गंगा पार बिश्नोइयों के गाँवो में भी गये। मेवाड़, मालवा, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए धर्म का प्रचार किया। बहुत से अज्ञान रूपी सर्प से ग्रसित लोगों को ज्ञान का दिव्य मार्ग बताया और उन्हें काल रूपी सर्प से मुक्त करवाया।केशोजी ने अपने गुरु वील्होजी द्वारा पंचायत संगठन कार्य को आगे बढाया और उन्हें सुदृढता प्रदान की। वि. सं. सत्रह सौ छतीस में अपनी जन्म भूमि में ही वैकुण्ठ वास को प्राप्त हुए। केशोजी की कीर्ति उनके कवित्व भाव से अमर हो गयी है। रचनाकार कवि तो चला गया, किन्तु उनकी रचना अजर अमर हो गयी है। उनके व्यक्तित्व को अभी भी उजागर करती हुई प्रेरित करती है। इस समय हमारे पास उपलब्ध है। यह जाम्भा पुराण भी इन्हीं संतों की रचनाओं के आधार पर लिखा गया है।

संत एवं भक्तों द्वारा समाज को देन

अधिकतर हजूरी संत एवं समाज सुधारक साहित्यकारों के बारे में तो पूर्व ही चर्चा कर आये हैं। जाम्भोजी के बैकुण्ठ धाम पश्चात् वील्होजी, सुरजन जी एवं केशोजी के बारे में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। अब आगे कुछ विशिष्ट संत एवं भक्तों के बारे में संक्षेप में चर्चा करेंगे।

माखन जी- माखन जी का जन्म संवत सौलह सौ पचास में अनुमानित है। ये नगीना के रहने वाले संत थे। इन्होंने एक सौहलों की रचना की थी जो प्रसिद्ध है। राग खंभावची में गाया जाता है। इसके द्वारा जाम्भोजी की महिमा का वर्णन किया है। रचना बहुत ही महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार से है-

जिभिया जपले जंभ सवेरा, आज संभरथल आनंद अपारा।। टेर।।
सुर तेतीसों रहत सन्मुख, आगे ऊधोजन करत उचारा।
देव घणा सब हिल मिल गावे, इन्द्र बधावा मंगलचारा।। 1।।
जैसे दणीयर उदय होत है, तिमर तुटत होत उजारा।
मुनि जन वेद पढत है ब्रह्मा, धनि धनि लोहट भाग तुम्हारा।। 2।।
षोड़स अड़षट नरपति आये, बड़े बड़े भूपति भूप भुजारा।
हर्ष भये शब्दों की धुन सुन, परसत कर कर प्रीत पियारा।। 3।।
अवगत नाथ अयोध्या के पति, तुम ही ब्रजपति नंद कंवारा।
आज संभरथल आये हो स्वामी, नवखंड पृथ्वी खेल पसारा।। 4।।
झिग मिग जोति विराजे शंभू, कंचन नगर अनूप कीवारा।
तीन लोक जाकि महिमा गावे, पावत 'माखण' मोख द्वारा।। 5।।

हीरानंद- जन्म संवत सत्रह सौ पचास है। इनके द्वारा रचित हिडोलणों नाम से एक रचना प्राप्त है। जिसमें जाम्भोजी के हजूरी शिष्यों के नाम दिये गये है। यह इतिहास ज्ञात करने हेतु बहुत ही प्रामाणिक

महत्वपूर्ण रचना है। जागरणों में गायी जाती है। उन हजूरी संत भक्तों का स्मरण किया जाता है। आइयें हम भी उन्हें स्मरण कर के पुण्य के भागी बने–

सरस हिंडोलणो संभरथल, झूले हो साध।।। टेर।।
शील, संयम दोय थंभ रोपै, नांव बेड़े आधार।
चार डांडी सरल सुंदरी, वेद के झणकार।।
सत्य धीरज वणे मरवो, जड़त प्रेम सवार।
सूरत पटड़ी बैठ कर, थे झूलो जंभद्वार।। 1।।
लोहट हांसा नाम पूरे, जिण लियो उरलाय।
नौरंगी के भात ल्याये, संग साहिल्या आय।।
सिरियां झीमा रूपां, मरियां, मांगी पूर्व प्रीत बिचार।
दोय कंवर आगे धरे लाछां, आये झूलण वार।। 2।।
भुवा तांतू चली झूलण, नायकी लीवी बुलाय।
अजब देश वीरदे तहां, झाली पोंहती आय।।
लोचां गौरा अवर मांगू, पालै वचन विचार।
उदो अतली हेत सेती, झूले जंभद्वार।। 3।।
राव दूदा टोहा ठकरा, केल्हण बरसिंग लेख।
लोहा पांगल भीयां परच्या, सोहन नगरी देख।।
रावण गोविंद लक्ष्मण पांडू, मोतिये के भाय।
रणधीर अली सैंसा साल्हा, सहजे देत झुलाय।। 4।।
खीयां नाथा पूरब झीमां, राणा प्रीति विचार।
कोजा बूढा लूणा सायर, आये पूल्ह पुंवार।।
धन्नो बिच्छु सुरगण भवंरा, चेला कुलचंद पियार।
प्रहलाद की प्रतग्यां कारण, विष्णु को अवतार।। 5।।
महाराज दाउद घाटम, पूरो थापन हर खेता ।
धारू चोखा वैरा प्रीत हिरदे, धरी मंगला रेड़ा।।
हासम कासम संताँ,सेती, सदा सहाय।
दास सैंसो उदोदास आयो,पांच को समझाय।। 6।।
रावल जैतसी सांगा राणा, लूणो मालदे राव।।
महम्मंद खान मुल्ला सधारी, आय परसे पाव।।
शाह सिकंदर राव शांतल, सेख सदू जाण।
कान्हा तेजा अल्लू चारण, बलि बलि करत बखाण।।7।।
हुकम उदो दीन बोल्यो, वील्ह कियो उपदेश।
सुजा सुरजन आलम केशव, ज्ञान का उपदेश।
चंदन रायचंद जसो पंचायण, शब्द का आचार।
हीरानंद की अरज एती, संगत पार उतार।। 8।।

स्वंय कवि हिंडोलने में झूलता है और अन्यों को भी झूलाता हुआ पूर्व सतपुरुषों का स्मरण कर के कृत कृत्य हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि एक समय हीरानन्दजी पूर्व देश गंगा पार चले गये थे। वहाँ बिश्नोइयों के गाँव नजदीक नहीं थे। हीरानन्द जी नित्य नियम से दोनों समय में हवन करते थे। पैदल यात्रा चलते हुए जहाँ पर भी विश्राम करते, वहीं शुद्ध गो घृत से हवन करते थे। आस पास कहीं भी बिश्नोईयों के गाँव नहीं होने से शुद्ध घृत की प्राप्ति नहीं हो सकी। उनके पास जो घृत था वह समाप्त हो गया था। ऐसी परिस्थिति में हवन करने का नियम निभाना था। वहाँ ऐसी जगह में घी प्राप्त होना असंभव था। नियम टूट गया तो टूट ही जायेगा। हीरानन्द जी ने ऐसी दशा में हरि को ही याद किया। प्रार्थना की कि घी रखने का पात्र खोल कर शून्य में फैलाया, वहीं पर ही घी से पात्र भर गया। इसको कहते हैं कि सिद्धि। जो शुभ कामनाएँ की जावें, वह पूर्ण हो जाये। हीरानन्द जी भी ऐसे ही सिद्धि पुरुष जाम्भोजी के चेले थे।

हरजी-वणियाल-हरजी जांगलू के थापन गृहस्थ थे। इनका जन्म काल वि. संवत-सत्रह सौं पैतालीस में होना अनुमानित है। ये दामो जी के शिष्य थे। इनके द्वारा निम्नलिखित साखियाँ प्राप्त हैं। हरजी द्वारा रचित साखियाँ विशेष रूप से प्रचलित हुई हैं, जो जागरणो में गायी जाती हैं, जो जाम्भोजी के जन्म की हैं-

लोहट तणी जे लाज, पतिराखो पूरा धणी। तथा सही विसवा वीस,देव तणी परमोध, ये विशेष रूप से जाम्भोजी के बारे में कथन की गयी हैं। तथा पौराणिक कथाएँ साखियों के रूप में महीपत मछ अवतार, राजा बलि के द्वार, तथा कुछ साखियाँ मन पर भी हैं। इन साखियों द्वारा हरजी अजर-अमर हो गये।

परमानन्दजी बणियाल -हरजी के समकालीन ही उनके ही भाई बन्धुओं में परमानन्द जी हुए ये बचपन में ही वैराग्य धारण करके विरक्त साधु हो गये थे। परमानन्दजी की समाज सेवा अतुलनीय है। इन्होंने अपने जीवन में "पोथो ग्रन्थ ग्यान" नाम से संग्रह किया था। उन्होंने स्वंय ही घोषणा की है -

बड़ पोथो गिण वील्ह को,दूजो सुरजन दास।
तीजै मुकनु मुझ गुरु,सुरताण पिता मुझ आख।
दसुंधी दासो खीराज जी,रासो जी सुरताण।
ऐ पांचू परत्या बाँच के,पोथो लिख्यो प्रवाण।
कै बाता सुणी साधा कनां,कै पोथिया मां परवाणि।
परमाणंद सुरताण रै,लिखिया सबद सुजाणि।
दीठा वाच्या मैं लिख्या,सासतर मा था सोय।
ग्याता कोई बांच के,दोस न देइयो मोय।
मैं तो मांड्या मोह कर,पुस्तक देखी विचारि।
सबदां रा अरथ अनंत है,जांणै सिरजण हारि।
कचा सब संसार है,सच्चा सबद ततसार।
परमांणद सूं परम गुरु,राखो हेत विचार।

परमानन्दजी से पूर्व में जितने भी कवि लेखक हुए उनकी रचनाओं का संग्रह परमानन्द जी ने "पोथो ग्रंथ ग्यान" में किया। उन्होंने अपने ही हाथ से पाँच प्रतियाँ लिखी। प्रथम तो विशाल ग्रन्थ है, दूसरे उसी का ही संक्षेप रूप में है।

परमानन्दजी के इस उपर्युक्त दोहे से ही स्पष्ट होता है कि उनको सब से बड़ी पोथी वील्होजी के हाथ

की प्राप्त थी। दूसरी सुरजन जी के हाथ की थी। तीसरी पुस्तक परमानन्द जी के ही गुरु मुकनाराम जी की थी। और चौथी पोथी अपने पिता सुरताण जी की थी। पांचवी दसुंधीदास की थी। इन पांचों पोथियों से संग्रह करके एक रूप में ''पोथो ग्रन्थ ग्यान'' बनाया था। और कुछ बातें अलिखित भी थी। उनका भी संतों से सुन कर पोथे के रूप में संग्रह किया।

यह जाम्भा-पुराण आप के हाथ में है। इसका भी मुख्य आधार परमानन्द जी का पोथा ही है। दूसरा आधार साहबरामजी द्वारा रचित एवं संग्रहित जम्भसार है। कुछ बातें अभी भी लिखित रूप में नहीं थी, किन्तु कर्ण परंपरा से सुनते आ रहे हैं, उनको भी लिखित रूप दिया गया है।

परमानन्दजी ने अपने समय में लेखन कार्य करके बिश्नोई समाज एवं मरुभूमि के साहित्य का बहुत बड़ा कार्य किया है। यदि परमानन्द जी संग्रह नहीं करते तो उन महापुरुषों की रचनाएँ अब तक कभी नष्ट हो गयी होतीं। उन्हें बचाने का कार्य परमानन्द ने ही किया था। परमानन्दजी एक अच्छे संग्राहक के साथ ही साथ स्वयं कवि भी थे। उन्होंने स्वयं भी अनेक साखियाँ, दोहा, छंदों की रचना की है।

शब्दवाणी के गद्य एवं पद्य में प्रसंग परमानन्दजी ने लिखे हैं। उनके द्वारा रचित-हरजस, साखियाँ, विसन स्तोत्र, फुटकर छन्द कवित, गद्य में साका, संवत्सरी, दोहा आदि प्रसिद्ध हैं।

ऊदोजी अडिग-अडिग गोत्र के बिश्नोई ऊदोजी थे। इनका जन्म रुड़कली जोधपुर के पास ही वि.संवत अठारह सौ अठारह में हुआ था। ये बचपन से ही धार्मिक प्रवृति के थे। जीवन के प्रारम्भिक काल युवावस्था में गृहस्थ थे। इनके कोई संतान नहीं थी। उस समय संपन्न किसान एवं प्रतिष्ठित विद्वान् के रूप में इनको मान्यता प्राप्त थी। ऊदोजी अधेड़ अवस्था में जब आ गये और शास्त्रो के अनुसार पचास वर्ष को पार कर गये तो वानप्रस्थ अवस्था में प्रवेश कर गये थे।

उसी समय सर्दियों की रात्रि में अपने कुएँ से सिंचाई कर रहे थे। उसी समय उनको वैराग्य होने में निमित कारण था। उन्होंने कहा -

आव जाव उठ बैठ, ठंडी बाजै बूक रे।
भजियो नहीं भगवान्, ऊदा चाकरी में चूक रे।

कुएँ से जल सिंचाई करते समय ऐसा ही होता है। आना-जाना, उठना-बैठना और ठण्डी हवाओं को झेलना। यह क्या था? ऊदो जी कहने लगे-मेरे लिये ऐसा क्यों हो रहा है? मैंने भगवान् का भजन नहीं किया। स्वयं से कहा -हे ऊदा! कहीं न कहीं चाकरी (सेवा) में चूक हुई है। उसी का ही फल मैं भोग रहा हूँ। वह भी किस लिये ?दुनिया तो अपनी संतान के लिये करती है, किन्तु मैं किस लिये ?

वहीं से सभी कुएँ की सिंचाई का सामान छोड़ कर ऊदोजी मालवै की तरफ चले गये। वहीं पर भेख लेकर साधु बन गये। हरि के भजन में लग गये। चार पाँच वर्षो पश्चात् ऊदोजी भ्रमण करते हुए होली के दिनों में वापिस रुड़कली आये। वहाँ उन्होंने होली के दिनों में महिलाओं द्वारा फागण के अश्लील गीत गाते हुए और नाचते हुए देखा।

ऊदोजी ने कहा-बहनो! आपको ये अश्लील गीत शोभा नहीं देते। उन स्त्रियों ने कहा-महाराज! यदि हम फाल्गुन के गीत न गायें, तो क्या गायें? आप ही बतलाइये? तब ऊदोजी ने बैठ कर उन्हीं गीतों के लय में ''लूर'' गाकर सुनाई और कहा -यह भगवान् की भक्ति का गीत गाइये। जाम्भोजी ने कहा भी है-जाणी गीत विवाहे गाइये'' भगवान् कृष्ण की भक्ति का गीत गाइये। जो गोपियों ने कृष्ण विरह में गाया था। उस दिन से उन महिलाओं ने ऊदोजी रचित यह ''लूर'' गायी। और अब तक गा रही हैं।

"लूर"

गिरधर गोकल आय,गोपी संदेशो मोकल्यो।
मोह दरशन को चाव,प्रेम पियारा कानजी।टेर।
थारै माथै मुकुट सुढाल,केसर तिलक जु हद बण्यौ।
मोहन नैण विसा|ल,सुन्दर बदन सुहावणौ।1।
घूंघर बारै केश,कानां कुण्डल झलक रहै
ओही मनोहर वेस,म्हारै मन में रम रहयौ।2।
गल बैंजती माल,पीतांबर कट काछनी।
हाथ लकुटिया लाल,सांम सलूणों सांवरो।3।
गावै छतीसूं राग,गिरधर मुरली मोहनी।
मोहे मोहे सुरनर नाग,गोपी मोहे गुवालिया।4।
वै दिन कान्ह चितार,महीड़ो मोपे मांगता।
अब तुम गये विसार,मथुरा में महाराज बने।5।
चेरी कंस की दास,भली बसाई भामनी।
वा संग कियो निवास,सैंस सहेली छाड़ कै।6।
थानै झूरै जसोदा माय,राधा पलक न बिसरै।
ललिता जीव ललचाय,दरसण कारण दूबली।7।
थानै झूरै बिरज की नार,घर घर झूरै गुवालिया।
गऊ तिण तज्यौ मुरार,बछड़ा खीर न पीवही।8।
ऊदो कहै कर जोड़,कांय बिसारी कानड़वा।
म्हारी अर्ज सूणो रणछोड़,दरस दया कर दीजिये।9।

साहबरामजी ने ऊदोजी के बारे में इस प्रकार से लिखा है –

उद्धव जी अणभै अधिकारी,नाना शास्त्र किये संवारी।
जंभगुरु के दर्शन भये,प्रहलाद चरित विष्णु चरित कहै।
कवत छन्द नाना विध वांणी,उद्धव जी बहु भांत बखाणी।
बहुत काल जग में रहे,फेंरू सुध संप्रधा गये।

साहबरामजी राहड़–हजूरी भक्त रतना राहड़ की परंपरा में तारोजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि,संवत अठारह सौ इकोतर में हुड़िया गाँव में हुआ था। छोटी अवस्था में ही ये गोविन्दराम जी के शिष्य बन गये थे। ये उच्च कोटि के कवि थे। इन्होंने अपने से पूर्व कवियों कि कविताओं की व्याख्या अपनी भाषा में की है।

इनकी कीर्ति का आधार उनका विशाल ग्रन्थ जम्भसार है। जम्भसार में अपने ढंग– अपनी शैली में अपने आदरणीय गुरुओं की रचना को दोहा, चौपाई, छन्दों के रूप में लिखा है। जो कथाएँ पूर्व आदरणीय संतों ने लिखी हैं, वह तो सम्पूर्ण साहित्य साहबरामजी ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। जो कथाएँ उन पूर्व ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हैं, वे सभी कथाएँ जम्भसार में उपलब्ध होगी। जो जम्भसार में नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। जैसे जो महाभारत में नहीं मिलेगा, वह कही नहीं मिलेगा। यह उक्ति जम्भसार में चरितार्थ होती है।

स्वंय अपने अनुभव की रचना सार शब्द गुंजार है। जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। इससे साहबरामजी का

व्यक्तित्व एवं ज्ञानी पना झलकता है। इन्होंने हवन समाप्ति पर बोले जाने वाले धूप मन्त्रों की रचना की है जो अति सुन्दर एवं महत्वपूर्ण है। साहबरामजी ने सन् अठारह सौ सतावन की गदर का वर्णन अपनी आँखों देखा किया है।

साहबरामजी ने दो प्रसिद्ध साखियाँ परम भक्त प्रहलाद,तथा नरसिंह नर मुलतान की रचना की थी। तथा एक प्रसिद्ध आरती-कूं कूं केरा चरण पधारो। भी इनकी ही रचना है। इस आरती से पता चलता है कि साहबरामजी कितने ज्ञानी, अन्तर्मुखी कवि थे।

भगवान् विष्णु जाम्भोजी को हृदय रूपी हवेली में बिठाकर आरती की है। साहबराम जी ने हरजस एवं भजन भी बहुत सुंदरता से गाये। उनके द्वारा रचित भजन एवं हरजसों की संख्या बीस है।

इनका देहान्त गाँव दुतरावाली में संवत-उन्नीस सौ अड़तालीस में हुआ था। वहीं पर ही उनका समाधि मन्दिर बना हुआ है। उनके परिवार के लोगों ने ही बनाया है। इस ग्रन्थ ''जाम्भा-पुराण का आधार भी यही जम्भसार ग्रन्थ है। साहबरामजी प्राचीन कवियों में अन्तिम कवि थे। उनके बाद ऐसा कोई विशेष कवि इस समाज को नहीं मिल सका है जो प्राचीन परंपरा को आगे बढा सके।

बलिदान -कथाएँ

करमा और गौरा का बलिदान

करमा और गौरा दो बहिनों ने खेजड़ी वृक्ष की रक्षा के लिये अपना बलिदान सहर्ष दिया था। इस घटना के प्रत्यक्ष द्रष्टा वील्होजी ने साखी में इस घटना का भाव पूर्ण यथार्थ वर्णन किया है। वह साखी इस प्रकार है-

'''साखी छन्दा की'''

dje.kh py.kk b.k llkj] lHky dj dj pkfy; A
thoMk u tk[kk gk;] lkbl vk Mj ikfy;A
ikfy; lk mj pr volj] jk[k eu vejk ijhA
djk lkjh xj Qjekbl] pr dj dj.kh [kjhA
eku vk.k fiNk.k lrx:] iki l eu ikfy;A
pr.kk llkj dje.kh] lHky dj dj pkfy;A1A
dje.kh tik fo'.k dk uke] txr x# eu e jgA
HkfDr r.kk u ey ek.k] gh.kk c.k u dgA
o.k gh.kk u dg djek] jgh flj dk/k ekfM;kA
lk ej.k lxke gok] ej.k dk chM]k fy;kA
ey ek;ktky pkyh] jk[k rkxk iFk dkA
Lox lkek iko ijB] ti uko folu dkA2A

dje.kh pyrh flofj;k] “;ke ljhj lr ?k.kkA
dje.kh xkjk yhoh cyk;] vk volj N vki.kkA
vki.kk volj jke xkjk] fy[kh dye lk ugh feVA
tk; pkgV 'khl ekM;k] fy[kh L;kgh uk feVA
ckgh rx lekgh vkl] gh gdkjk cjfr;kA
/kU; rjk /;ku djek] lh>rh lkdk fd;kA3A
x# Qjekbl [kkM /kkj] volj vkik lkfj;kA
vki.k thoMk dcy] ij tho mckfj;kA
mckfj;k tho v# tho dkt] vljk [kkVk fg;kA
:[kk Åij ej.k /kkj;k] dht D;l dj.kh fd;kA
dj.kh iky mtky lriFk] ie rr mikb;kA
tho dkt i.k nhUg] dh;k x# Qjekb;kA4A
djek [kMht [ktfM;k dkt] jokIMh d pkgVA
ler lkyk l lkj] le; e> v: bdlBA
bdlB e> vkj tB ekl] d'.k i[k vkj Fkkoj fnuA
cht d fnu fd;k i;k.kk] lfj;k l/kk euA
fujokgh uke u lh[k] ekVh iko n cM p<hA
x# ilkn ohYg cky] djek v: xkjk [kMhA5A

जोधपुर के अन्तर्गत रैवासड़ी-रामासड़ी गाँव की रहने वाली करमा और गौरा दोनों ही गुरु देव के वचनों का पालन करते हुए धर्म पर दृढ रहने वाली थी। एक दिन अकस्मात् गौरा करमा के घर पहुँची। और कहने लगी- हे करमणी। अपने को संसार में ही रह कर जीवन यापन करना है। किन्तु जीवन जीना कठिन है। हमें अत्यन्त संभल कर के ही चलना है। अन्यथा एक पैर भी चूक गया, तो हम गिर जायेंगी। और न जाने कहाँ जाकर गिरेंगी,फिर संभलना कठिन होगा।

वैसे यह शरीर जो नाशवान ही है। इसका तो डर नहीं है। एक यह शरीर टूट जायेगा, तो दूसरा मिल जायेगा। वह चाहे किसी पशु-पक्षी योनि का हो, परन्तु खतरा तो इस शरीरस्थ जीवात्मा का है। उसकी कहीं दुर्गति नहीं हो जाये। कर्मानुसार कहीं नीच योनि में चला गया, तो फिर दु:ख का कोई आर पार ही नहीं है।

हे करमा ! इसलिये तो मेरा तो कहना बस इतना ही है कि इस संसार में जीवन जीते हुए,कार्य करते हुए, इस मन को तो अजर अविनाशी परमात्मा के अमर धाम की तरफ ही लगा दें। अमरापुर में जाने के लिये वही कार्य सुचारू रूप से करो,जो जाम्भोजी ने फरमाया है। अपनी मान मर्यादा,गुरु का मार्ग तथा सदगुरु को पहचान कर के सचेत हो जा। इस समय सचेत होने का अवसर आ चुका है। सम्पूर्ण जीवन की कमाई का फल उपस्थित हो चुका है।

हे करमा ! यह हमारी परीक्षा की घड़ी उपस्थित हुई है। यदि हम इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गयी तो फिर हमारा धार्मिक अनुष्ठान केवल ढकोसला मात्र ही था। इसलिये सचेत होकर बहुत ही सावधानी से पैर आगे बढाना है।

हे करमा! विष्णु को नाम द्वारा स्मरण करो। वही विष्णु ही सर्व देवाधिदेव है तथा जगद्‌गुरु जाम्भोजी भी वही है। उन्हीं को मन में रखते हुए हमें आगे बढना है। कहीं ऐसा न हो कि इस शुभ अवसर पर कोई सांसारिक मोह माया की तरफ चंचल मन न चला जाये। दूसरी सावधानी यह भी रखनी होगी कि वह भक्ति,ज्ञान,कुल,धन,बल आदि का अहंकार किंचित मात्र भी न आ जाये। यदि ऐसा न हुआ तो हमारा कर्तव्य पूर्णता से निभ जायेगा। दूसरी बात का ध्यान यह भी रखना होगा कि कठिन से कठिन विपत्ति,अनर्थ में भी किसी को कठोर वचन गाली-गलौच न कहे। यदि तुम्हारे ऊपर कोई अन्याय करता भी है, तो उसे शांत करने के लिये उसके सामने अपना सिर मांड दीजिये। वह मर जायेगा और यदि ईंट का जवाब पत्थर से देंगे तो कलह कभी शांत नहीं होगी और धर्म अनुष्ठान में बाधा उपस्थित होगी।

इन्हीं सभी समस्याओं के समाधान के लिये हे करमा! कभी भी ओछी बाणी न बोलें। सदा ही हित कर प्रिय बोलें। करमा ने गौरा की बात को बहुत ही ध्यानपूर्वक सुनी और कहने लगी-हे गौरा। आज तू इस प्रकार की बातें क्यों कह रही है? आखिर इस समय कौन सी विपत्ति आ पड़ी है? जो इस प्रकार की बातें तू कहने को उतावली हो रही हो।

हे करमा! तुम तो बहुत ही भोली एवं अनजान हो। तुम्हें यही मालूम नहीं है कि कल के दिन अपने ही इस प्रिय गाँव की सीमा में दुष्ट हत्यारों का प्रवेश हो चुका है। वे लोग राजमद,धनमद,एवं बलमद से अन्धे हो रहे हैं। उन्होंने अपने गाँव के खेतों में अपने ही हाथ से पाल-पोष बड़े किये हुए पुत्रवत प्रिय वृक्षों को काट रहे हैं। तुम्हें यह पता हो जाना चाहिये कि इस गाँव के ठाकुर ने ही इन लोगों को कुल्हाड़ी देकर भेजा है

हमारे बिश्नोई भाई-बन्धुओं ने इस का डट कर विरोध किया है। अब तक तो एक टहनी भी काटने नहीं दी है। उन लोगों के साथ संग्राम हुआ है। उस परस्पर के युद्ध में अब तक तो धर्म की ही विजय हुई है। जितने भी हमारे लोग हैं, वे सभी मरने के लिये तैयार हैं। यह निश्चित हो चुका है कि कोई भी पीछे नहीं हटेगा। चाहे सभी को प्राणों की बाजी लगानी क्यों न पड़ जाये। हमारे धर्मवीर भाई-बन्धु-पुत्र आदि सभी जब इस संसार को तिनके की तरह तोड़ कर जाने के लिये तैयार खड़े हुए हैं, तो हमें भी पीछे नहीं रहना चाहिये।

स्त्री तो सदा ही धर्म के कार्य में पुरुष से दो कदम आगे ही रही है। सदा ही अन्याय का डटकर विरोध किया है। राम के साथ सीता ने कदम से कदम मिलाया था। द्रौपदी ने भी तो पाण्डवों को विजय श्री दिलवायी थी और दुष्टों का विनाश करवा कर के धर्म की रक्षा की थी। वे भी तो सभी नारियाँ ही थी। उसी प्रकार से हम भी तो उन्हीं की संतान हैं तो भला पीछे क्यों रहें। यदि हम उन दुष्टों के सामने जाकर सत्याग्रह नहीं करेंगी तो हमारा तो वंश ही नष्ट हो जायेगा। साथ ही साथ धर्म भी चला जायेगा और सब से बड़ी हानि तो यह होगी कि हमारे सभी दरखत कट जायेंगे। इनमें एक भी नहीं बचेगा।

ये हमारे दरखत ही नहीं रहे, तो हमारा जीवन ही दूभर हो जायेगा। इन के बिना तो हम जी भी नहीं सकते और न ही जीना चाहेंगे। इसलिये हे करमा! मैं तो संसार की मोह-माया छोड़ कर ही घर से चली थी। अब मुझे मरने में किंचित भी भय नहीं है। पंथ की डोरी न टूटे,आगे से आगे जुड़ती रहे। इसलिये इस समय हमें कुछ करना ही होगा। मैंने तो इस संसार से नाता तोड़ लिया है और स्वर्ग की तरफ एक पाँव आगे बढा दिया है। पीछे का सम्बन्ध टूटते ही आगे का स्वत: ही जुड़ जायेगा। मेरे हृदय में तो विष्णु नाम का स्मरण ही है। उसी को मैंने धारण किया है। वही मेरे सच्चे प्रेरक हैं जो भी मुझसे करवायेंगे, वह अच्छा ही होगा। इसलिये हे करमा! तू भी इस मार्ग पर चलने के लिये तैयार

होजा।

हे करमा! मैं जब इस कार्य के लिए घर से चली थी तो उस समय परम पिता परमात्मा का स्मरण करते हुए चली थी। यह मैं तुम से सच कह रही हूँ कि यहाँ पहुँचते पहुँचते मेरे शरीर में सत बहुत ही आ चुका है। वही परमात्मा ही शक्ति दाता है। इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है। अब तो मुझे इस धर्म के मार्ग से पीछे कोई भी मोह जाल नहीं हटा सकता। इस प्रकार से कहते हुए गौरा ने करमां को ज्ञान तत्त्व समझाया और धर्म का अकुंर उत्पन्न करके अपने साथ चलने के लिये तैयार कर ली।

करमा भी गौरा के साथ ही घर से निकल कर सहर्ष चल पड़ी। करमा भी गौरा की तरह इस शुभ अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी। होनहार को कोई मिटा नहीं सकता। जो कुछ भी अपने भाग्य या कर्मो में लिखा हुआ है,वह लेख तो अमिट है। उसे तो सुख या दु:ख द्वारा भोग कर ही मिटाया जा सकता है। भूख की निवृति तो भोजन द्वारा ही की जा सकती है। दबाने से दबेगी नही। कर्मो का फल दु:ख सुख भी तो दबाने से नहीं दबता,किसी न किसी रूप में प्रगट हो ही जाता है।

दोनों ओर से रणबांकुरे युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। यदि करमां और गौरा उनके बीच में न आती तो न जाने कितना अनर्थ हो जाता। कितनी माता-बहिनें विधवा हो जाती और न जाने कितने बच्चों के सिर से पिता का, भाई का साया उठ जाता। करमा गौरा दोनों ही हरि का स्मरण करते हुए दोनों पक्षों के बीच में जाकर खड़ी हो गयी। उधर से ग्राम पति ठाकुर के अनुचर जो वृक्ष काटने की तैयारी में थे।

कहने लगे- ये औरतें यहाँ क्यों आ गयी? इनको यहाँ से भगा दो। यहाँ पर कुछ ऐसा हो सकता है, जो इन से देखा नहीं जा सकता। जो इन से देखा नहीं जायेगा, ये कायर हैं। इधर वृक्ष रक्षार्थ खड़े हुए बिश्नोई कहने लगे- हे माता बहनो! तुम यहाँ से चली जाओ। तुम्हारा कुछ भी यहाँ पर कार्य नहीं है। हम पुरुष लोग यहाँ पर उपस्थित है। अपने प्राणों की बाजी लगा कर के भी वृक्षों की रक्षा करेंगे। एक भी दरखत नहीं कटने देंगे।

वे दोनों देवियाँ कहने लगीं-आप पुरुष लोग पीछे हट जाओ। यह शुभ अवसर तो हमारे लिये ही आया है। जब तक हम आगे नहीं बढेंगी, तब तक धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। ऐसा कहते हुए दोनों आगे बढी और उन हत्यारों के सामने जाकर निर्भय भाव से खड़ी होकर कहने लगीं-आप लोग इस प्रकार की दुर्भावना छोड़ दीजिये और वापिस अपने घर लौट जाइये। जब तक हमारे शरीर में प्राण रहेगा तब तक तुम लोग वृक्ष तो क्या, एक पता भी नहीं काट सकते। हमें मार कर भले ही यह सम्पूर्ण वन काट लेना।

ठाकुर के अनुचर लोग कहने लगे-यदि हम काटेंगे तो तुम क्या कर सकती हो? हम अपना सिर दे सकती हैं, हमें रूँख कटते हुए देखने में अपने सिर से भी ज्यादा पीड़ा होती है। इसलिए सहर्ष अपना तन वृक्षों की रक्षार्थ दे देंगी। वे भ्रमित अन्यायी लोग कहने लगे- यदि ऐसा है तो हम भी देखते हैं। तुम किस प्रकार से अपना सिर सौंप देती हो? ऐसा कहते हुए उन्होंने एक साथ दो खेजड़ी के पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाना प्रारम्भ किया।

करमा और गौरा ने भी अन्त समय जान कर ओ३म् की ध्वनि करते हुए मन को परमात्मा के साथ जोड़कर अपने शरीर को ले जाकर स्वयं ही उन वृक्षों के चिपका दिया। कुल्हाड़ी की चोट वृक्ष के नहीं लगने दी। अपने ही शरीर पर झेल ली। कुल्हाड़ी की धार से शरीर का एक एक अंग कटकर

गिरने लगा, किन्तु अपने शरीर से रूंख प्यारे हैं। इसीलिए उनको नहीं कटने दिया। खून की धारा बह चली। वहाँ की धरती लाल हो गयी। सूर्य देवता साक्षी थे। तथा वहाँ पर उपस्थित जन समूह भी साक्षी था। दोनों वीरांगनाओं ने देखते ही देखते शरीर के टुकड़े करवा लिये। फिर भी अपने लक्ष्य से नहीं हटी। ऐसा देख कर दोनों ओर से हा हा कार होने लगा, किन्तु अब क्या हो सकता था ? बाण तरकस से निकल चुका था। उन दोनों की आत्मायें तो वहाँ से प्रयाण कर चुकी थी। पीछे शरीर ही अवशेष मात्र टुकड़ों के रूप में पड़े हुए थे।

इस प्रकार शांति पूर्वक स्वेच्छा से मरण सुन कर, देख कर उन दुष्ट जनों का पत्थर सदृश ह्रदय भी पिघल गया और वहाँ पर सभी द्रवित होकर आँसू बहाने लगे और बिश्नोइयों से आकर क्षमा प्रार्थना करने लगे। कहने लगे- हम अपराधी हैं। आप लोग जो चाहो सो करो। हमारा सिर आपके आगे झुका हुआ है। इसे काट लीजिये। तभी हमें शांति मिल सकेगी। अन्यथा हम पश्चाताप की आग में जीवन भर जलते रहेंगे, तो भी हमारा पाप नहीं उतरेगा।

बिश्नोई कहने लगे महाशय जी ! आप अपना सिर अपने पास ही रखिए। हमें इन सिरों की आवश्यकता नहीं है। जिन सिरों में ज्ञान नहीं है। ऐसे मस्तकों से हम लेकर भी क्या करेंगे ? और न ही तुम्हारा मस्तक काट लेने से हमारी माता-बहिनों का पुन: जीवित होने का कारण बनेगा। किन्तु इसके बदले में हम यह चाहेंगे कि हमारे गुरु जाम्भोजी की बताई हुई मर्यादा का धर्म का पालन हो। आप लोग कभी भी इसमें अड़चन न करें। फिर कभी इस प्रकार से वन काटने का, जीव हत्या करने का, दु:साहस न करें। जिन्होंने हंसते हुए वृक्ष रक्षा हेतु अपने प्राण दे दिये उनका दिया हुआ बलिदान व्यर्थ न जाये।

हम आप से यही चाहेंगे कि आप राजा की तरफ से लिखित प्रमाण-पत्र प्रदान करें कि हम फिर कभी ऐसा कार्य नहीं करेंगे, जिससे जीव हत्या एवं वृक्षों का काटना हो। गाँव पति ठाकुर ने बिश्नोइयों की बाते स्वीकार की और जीव हत्या एवं वृक्ष न काटने का पक्का पट्टा लिख कर दिया।

वील्होजी साखी में लिखते हैं कि करमा और गौरा ने जैसा गुरु जाम्भोजी ने फरमाया था वैसा ही किया। आये हुए अवसर का लाभ उठाया। दूसरे जीवों की भलाई के लिए अपने प्राण समर्पण कर दिये। इससे बढकर और परोपकार क्या हो सकता है ? वृक्षों की रक्षा के लिए जिन्होनें अपना जीवन बलिदान दिया है, हमें भी उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिये।

करमा और गौरा ने बिश्नोई पंथ का नाम उज्ज्वल किया। प्रेम तत्त्व का पसारा किया। करमा और गौरा खेजड़ियों के लिए बलिदान हो गई। वह भी रेवासड़ी के चौराहे पर सम्पूर्ण जमात के सामने। यह घटना वि.सं. सौलह सौ इकसठ के ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष द्वितीया तिथि और वार शनिवार के दिन घटित हुई थी।

करमा और गौरा तो धर्म रक्षार्थ बलिदान देकर अमर हो गयीं और सदा सदा के लिए रूंखों की रक्षार्थ प्रमाण प्रस्तुत कर गयीं। निश्चित ही ऐसे लोगों की दुर्गति नहीं हुआ करती। गुरु की कृपा से वील्होजी कहते है कि मैंने यह साखी सुनाई है और करमा और गौरा का बलिदान ही मेरी इस प्रेरणा का स्रोत है।

तिलवासणी के शूरवीरों का बलिदान

तिलवासणी गाँव जोधपुर राजा के अधीन था। इस गाँव में बिश्नोइयों का निवास होता आ रहा है। बिश्नोइयों को अपना ग्राम एवं वन, वन्यजीव अति प्रिय थे। वे लोग अपने प्रिय गाँव को स्वर्ग से कम नहीं मानते थे, क्योंकि जो सुख स्वर्ग से मिलने वाले थे, वे अपने ग्राम में उपलब्ध थे। धार्मिक अनुष्ठानों तथा अपने परिश्रम से ही उन लोगों ने अपने गाँव को स्वर्ग सदृश बनाया था।

गाँव का वन सदा हरा-भरा रहता था। समय पर वर्षा होती थी। अनाज के भण्डार भरे रहते थे। पशुओं के खाने के लिए हरा घास, जल की कमी नहीं रहती थी। जिससे गायें आदि दुधारू पशु भरपूर दूध देते थे। दूध, दही, घी आदि सेवन करने से वहाँ के बिश्नोई अति बलिष्ठ थे और उनकी भावना सात्त्विक थी। जिससे धर्म के कार्य के लिए सदा तत्पर रहते थे। सद्गुरु के वचनों को ही वेदवाक्य मान कर उनका पालन करते थे।

तिलवासणी के निकट ही खेजड़ले गाँव में भाटी राजपूत लोग रहते थे। उस समय राजपूतों का राज्य था। खेजड़ला गाँव तथा तिलवासणी, वहाँ के भाटी गोपालदास के आधीन थे। गोपालदास वहाँ का एक तरह का राजा ही था। किसानों से आमदनी का चौथा भाग लेता था। बिश्नोइयों से अनाज-आमदनी का पाँचवाँ भाग लेता था। जाम्भोजी महाराज ने तत्कालीन राजाओं से बिश्नोइयों के लिये पाँचवाँ हिस्सा करवाया था, क्योंकि बिश्नोई परिश्रमी बहुत होते हैं। अन्न अधिकता से उपजाते थे तथा दान देने की प्रवृति अधिक होने से उन्हें यह छूट प्राप्त थी।

भाटी गोपालदास को किवाड़ आदि कुछ बनवाने के लिये लकड़ी की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने अपने कारीगर किरपे को लकड़ी लाने के लिये वन में भेजा। अन्य जगहों पर तो लकड़ी मिलना दुर्लभ थी क्योंकि वृक्ष पहले ही कट चुके थे। सभी जगहों पर भटक कर किरपो बिश्नोइयों के गाँव तिलवासणी पहुँचा और देखा तो आश्चर्य चकित रह गया क्योंकि वहाँ पर वृक्ष से वृक्ष जुड़े हुए एक से एक अति सुन्दर सुहावने तथा उपयोगी भी थे।

अपने साथियों से किरपे ने कहा-देखते क्या हो ? अपनी अपनी कुल्हाड़ी संभालो और पेड़ काटना प्रारम्भ करो। सेवक जनों ने संकुचाते हुए कहा-ठाकुर साहब ये वृक्ष तो बिश्नोईयो के हैं। जरा पहले सोच लीजिये। किरपे ने उनकी बात की परवाह नहीं की और वृक्ष काटने का आदेश दे दिया। स्वंय तैयार हो कर खड़ा हो गया।

वन काटे जा रहे हैं, आप बिश्नोई लोग अचेत हो कर सो रहे हो। क्या इतनी जल्दी ही जाम्भोजी के उपदेश भूल गये ? क्या इसी प्रकार से वन कटता रहेगा ?क्या आप लोग ऐसी दशा में बिश्नोई कहलाने के अधिकारी हो सकते हो ? यदि वन कट गया तो फिर आप लोग क्या सुखी जीवन जी सकते हो ? बिना वन के तो सुखी जीवन जीने की कल्पना भी कैसे की जा सकती है ? यह घोर अनर्थ पक्का बिश्नोई तो सहन नहीं कर सकेगा। उठो, जागो, कुछ करो या मरो।

इस प्रकार की ध्वनि सभी धर्म प्रेमी बन्धुओं के कर्ण रन्ध्रों में गुंजायमान हुई। सभी लोग एकत्रित हुए और विचार किया कि अब क्या करना चाहिये ? सभी लोग एक स्वर से आकाश को गुंजायमान करते हुए जय जय कार के साथ कहने लगे, हमारे प्राण भले ही चले जाय, किन्तु वृक्ष नहीं कटने देंगे। हमारा सर्व सम्मत यही अन्तिम फैसला है।

उसी समय गाँव के पाँचो और पीथो दो चौधरियों ने आगे आकर समझाते हुए कहा- आप लोग शांत रहिये। कहीं जोश में होश मत खो देना। हम दोनों आपके प्रतिनिधि बनकर के ठाकुर गोपालदास के पास गाँव खेजड़ले जाते हैं। उनको जाकर यहाँ की स्थिति बतलायेगें तथा किरपो एवं उनके साथियों को दण्डित करवायेंगे। तब तक आप लोग धैर्य धारण करो।

पाँचो और पीथो खेजड़ले गाँव के ठाकुर गोपालदास के सामने उपस्थित हुए और उन्हें वहाँ की स्थिति से अवगत करवाया। परन्तु गोपालदास के ऊपर तो मद का भूत सवार था। उसने उन बिश्नोइयों की एक भी बात नहीं सुनी और धमकाते हुए कहा-

तुम लोग इस गाँव व जमीन में क्या माँगते हो ? इस धरती में तुम्हारा कुछ भी नहीं है। जो कुछ धरती के ऊपर या अन्दर है, वह सभी कुछ मेरा ही है। यह तिलवासणी गाँव बाबेजी म्हाने ही दिया है। यदि अपनी खैर चाहते हो तो बिश्नोइयों चुप चाप वापिस लौट जाओ। मैंने जिन आदमियों को भेजा है, वे तो अपना कार्य करेंगे ही और उनकी रक्षा के लिये आज ही एक सौ सिपाहियों को और भेज रहा हूँ। अब आप चाहे जैसा करना,अपनी जोर अजमाइश कर के देख लेना। यही आपको जवाब है।

आज तो आप लोग वृक्ष नहीं काटने दे रहे हैं, कल यह भी कहोगे कि हम हिस्सा भी नहीं देंगे। ऐसी जनता हमें नहीं चाहिये। पाँचो और पीथो ने हाथ जोड़ कर अरदास की, किन्तु उसका कुछ भी असर उस ठाकुर पर नहीं पड़ा।

और इस प्रकार का कठोर जवाब सुन कर दोनों चौधरी वापस आ गये। आते ही जमात को फैसले से अवगत करवा दिया और कहा- अब हमें पीछे नहीं हटना है। प्राण देकर भी वृक्ष बचायेंगे। दूसरे दिन प्रात: काल ही किरपो ने वृक्ष कटवाने प्रारम्भ कर दिये। ज्योंही कुल्हाड़ी की आवाज सुनाई दी, त्योंही हजारों धर्मवीर पुरुष जाम्भोलाव तालाब के जल से स्नान कर के तैयार हो गये। सभी एक दूसरे से आगे बढ कर वृक्षों के चिपकने के लिए उतावले हो रहे थे। यह शरीर, पुत्र, पौत्र, भाई- बंधु का नाता तोड़ कर लोग स्वेच्छा से प्राण देने के लिए हजारों की संख्या में खड़े हुए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति के अनुसार सर्व प्रथम शांत दल को आगे भेजा गया और गर्म दल से कहा-कि तुम पीछे रहो। यदि एक या दो लोगों के जीवन दान से समस्या हल हो सकती है तो फिर क्यों लड़ाई द्वारा हजारों लोगों का खून खराबा किया जावे। इस नीति के अनुसार सर्व प्रथम खिवणी खोखर परम भक्ता को आदर देते हुए उन राक्षसों के सामने मरने के लिए जाने दिया। खिवणी सहर्ष आगे बढ़ी। किरपो जिस पेड़ को काट रहा था उसी के जाकर चिपक गयी।

प्रथम तो किरपे ने कहा- अरे भोली-भाली नारी यह क्या कर रही है ? तू अपने घर जा, यहाँ तुम्हारा कुछ भी कार्य नहीं है।यदि यहाँ से नहीं हटती है, तो यह देख धारीदार कुल्हाड़ा आ रहा है। ऐसा कुल्हाड़ा ऊपर उठाते हुए कहा। यह कुल्हाड़ा आने दीजिये, रोकिये नहीं, मुझे इससे कुछ भी भय नहीं है। मैंने हृदय में विष्णु को धारण कर रखा उसे तो यह तुम्हारा कुल्हाड़ा काट नहीं सकता और यह शरीर तो आज नहीं तो कल, कभी न कभी काल के वश में हो ही जायेगा। आत्मा अजर-अमर अविनाशी को कौन मार सकता है ? पाप पुण्य ही व्यक्ति के साथ जाते हैं और सभी कुछ यहीं धरा रह जाता है। तो फिर सांसारिक वस्तुओं से मोह भी कैसा ?

जहाँ वृक्ष पर चोट पड़ रही थी, उसे निर्दयता से काटा जा रहा था, अब वृक्ष की तो रक्षा हो गयी किन्तु किरपे की कुल्हाड़ी खिवणी के शरीर पर चलने लगी। जो वृक्ष को काट सकता है, तो वह मानव शरीर

को भी काट सकता है। उस दुष्ट प्रकृतिवान मानव ने ऐसा ही किया। शरीर का एक एक अंग कुल्हाड़ी की चोट झेलते हुए कटकर शरीर से विलग होकर गिरने लगा। सम्पूर्ण शरीर के कई टुकड़ा कर चुका था। तब कहीं शरीर के प्राण पखेरू उड़ गये।

शरीर के जीवित रहते किरपो खेजड़ी का एक भी वृक्ष नहीं काट सका। इस दृश्य को दूर उपस्थित जन समूह ने अपनी आँखो से देखा था। ऐसी हृदय विदारक घटना देख कर कुछ गर्म दलीय युवको में जोश आ गया। वे कुछ अनहोनी कर गुजरने के लिए सशस्त्र तैयार थे। किन्तु उन प्रधानों ने उनको रोका और अनुशासन बरतने के लिए कहा। वे अनुशासित योद्धा थे। उनकी बात का आदर करते हुए कुछ देर के लिए ठहर ही गये।

दुष्ट किरपो के भी खून सवार हो गया था। उसका हृदय कठोरतम हो गया था और फिर से खेजड़ी वृक्ष पर कुल्हाड़ी का वार प्रारम्भ कर दिया। अब की बार भक्त मोटे ने कहा– मेरी बारी है। मुझे जाने दीजिये। अति शीघ्रता से मोटा भी जाकर रूँख से चिपक गया और कुल्हाड़ी के घाव को अपने शरीर पर झेल लिया।

किरपे ने फिर समझाते हुए कहा– जो दुर्गति खिंवणी की हुई है, वही तेरी भी होगी। मेरे में दयाभाव नाम की कोई वसतु नहीं है। दया का तो खाता ही खाली है। क्यों अपने जीवन को मिटा रहा है? हट जाओ यहाँ से। मोटा भक्त तो अपने धर्म पर दृढ था। गुरु देव की आज्ञा का पालन करने वाला था। मोह माया जनित क्लेश का लेश भी नहीं था। भला वह यह अवसर कैसे हाथ से जाने देता?

खिवणी की तरह मोटा भक्त भी हंसते हुए दरखत से चिपका रहा, और परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए शरीर से प्राण अलग होते हुए देखता रहा। किरपे ने कुल्हाड़ी द्वारा चोट पर चोट करते हुए शरीर के कई टुकड़े कर दिये और दूर खड़ा होकर अट्टहास करने लगा।

किरपा उच्च स्वर से कहने लगा– आप लोग आते जाइये और मैं काम तमाम करता जाऊँगा। अब तक मेरी कुल्हाड़ी में धार है और मेरे शरीर में ताकत भी है। न तो मैं ही पीछे हटूँगा और न ही आप लोग पीछे हटना।

नेतू नैण से ये कठोर वचन नहीं सहे गये और भीड़ के अंदर से बाहर निकल आयी। आते समय अपने लोगों को सचेत भी कर दिया कि आप लोग धैर्य रखिये। कहीं ऐसा न हो कि परस्पर युद्ध हो जाये और अपनी शांति की योजना धरी की धरी रह जाये और फिर कभी भी हम रूँखों की रक्षा करने में सफल नहीं हो सकेंगे। यह मेरा बलिदान तुम्हारे लिए निर्णायक सिद्ध होगा। ऐसा कहते हुए नैतू नेण आगे बढ चली। पीछे से उन जाम्भाणी लोगों ने बार–बार धन्यवाद दिया और परमात्मा से प्रार्थना भी की–

हे प्रभु! हमें शक्ति प्रदान करो। नेतू को शक्ति–भक्ति दो। जो यह अपने मार्ग से पीछे नहीं हटे। आज ही यह निर्णायक युद्ध होने जा रहा है। महान् कौन है? स्वेच्छा से मरने वाला या मारने वाला? सहन शक्ति तो भी महान् शक्ति है। इसके सामने शस्त्र की शक्ति तो कुछ भी नहीं है। यही निर्णय होना है कि विजय किस की होती है? ''यतो धर्म: ततो जय''

नेतू ने उस वृक्ष को अपने प्रिय शिशु की भांति छाती से चिपका लिया। भला कोई अपने जीवित रहते हुए अपनी प्रिय संतान को कटने थोड़े ही देगा। नेतू ने तो ऐसा ही किया था। गुरु के वचनों का पालन किया था। किरपे ने यह दृश्य देखा तथा पीछे खड़े बिश्नोइयों की जमात ने भी देखा।किरपा थोड़ी देर के लिए रुक भी गया, क्योंकि उसके हाथ ऊपर उठने से इंकार कर रहे थे। किरपे ने सचेत होकर कहा–

हे नारी! तू यहाँ क्या कर रही है? यह नहीं देख रही है। तुम्हारे ही सामने एक स्त्री, एक पुरुष कट

गये हैं। यह देख कर तुम्हारे अंदर कायरता नहीं आ रही है? स्त्री जाति की होकर भी यह दुष्कर कार्य करने जा रही है। तुम्हें किसी ने बहकाया होगा, अब भी मौका है, वापिस लौटने का, चली जा।

नेतू ने कहा- रे दुष्ट! तूँ मुझे क्या समझा रहा है? अब तक तुझे धर्म के मर्म का पता ही नहीं है? मैं कुछ भी करने जा रही हूँ, यह मेरा कार्य परम धार्मिक है। मैं तो अपनी आत्मा की आवाज पर ही जो कुछ कर रही हूँ। मेरे साथ सद्गुरु जाम्भोजी के वचन हैं। मैं मर्यादा की पाल बाँधने जा रही हूँ। किन्तु तुम्हारे जैसे दुष्ट लोग तोड़ने के लिए उतावले हो रहे हैं। धर्म केवल कहने सुनने की बात नहीं है। धर्म तो क्रिया रूप से करके दिखाने की बात है। मुझे तो जो कुछ करना था, वह कर लिया। अब तुझे जो कुछ करना है, वह कर के दिखादे, रुक क्यों गया। मैं स्त्री जाति की होने से कोई कमजोर नहीं हूँ। पुरुष होने से कोई शूरवीर या महान् नहीं हो सकता। तन, मन, श्वास, मास, आत्मा आदि तो स्त्री पुरुष में समान ही है। फिर भेद कैसा? आदमी किसी जाति में पैदा होने से महान् नहीं हो जाता। उसकी महानता तो उसके कर्मानुसार होती है।

तो फिर यह बात है। इसीलिए पीछे नहीं हटोगी। यदि तुम्हें पीछे नहीं हटना है, तो पीछे मुझे भी नहीं हटना है। ऐसा कहते हुए कुल्हाड़ा उपर उठा ही लिया और सभी के देखते हुए उस निर्दयी, पत्थर हृदय प्राणी ने कुल्हाड़े का वार नेतू के ऊपर कर ही दिया। खेजड़ी तो नहीं कटी किन्तु नेतू का एक हाथ कटकर दूर जा गिरा। खून की धारा बह चली। दूसरी चोट से दूसरा हाथ कट कर गिर पड़ा। दोनों भुजायें कट जाने से रूँख की पकड़ तो छूट गयी और नीचे धरती पर नेतू गिर पड़ी। नीचे गिरते हुए भी सिर अब तक उस पेड़ के चिपका हुआ ही था, मानों अंतिम बार नमन कर रही हो। शरीर भी अंतिम श्वास ले रहा था। उस दुष्ट से नत मस्तक भी नहीं देखा गया और पूरा जोर लगा कर सिर भी धड़ से अलग कर दिया। नेतू के प्राण पंखेरू उड़ गये।

जहाँ पर योगी, तपस्वी, हजारों वर्षो की साधना से पहुँच पाते हैं, उसी दिव्य लोक को आत्मा ने प्रयाण किया। किन्तु खून से लथ-पथ शरीर, वहीं धरती माता की गोद में लेट गया।

धरती माता से ही पैदा हुआ था और अति शीघ्र ही माता की गोद में समाहित हो गया। कठोर पत्थर सदृश दिल भी ऐसी घटना को देखकर पिघल ही जायेगा। किरपै के हाथ की कुल्हाड़ी छूट कर नीचे गिर पड़ी। बार-बार पुनः उठाने की कोशिश की परन्तु उठा नहीं सका। उसके सहयोगियों ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया। किन्तु पेड़ काटने की हिम्मत किसी में भी नहीं हो सकी। सभी हार कर वहाँ से जान बचाकर भाग खड़े हुए

खेजड़ले जाकर गोपालदास को इस घटना का पूरा वृतान्त सुनाया और कहने लगे- तीन स्त्री-पुरुषों ने बलिदान दे दिया है। किन्तु एक भी वृक्ष कटने नहीं दिया है। हम तो खाली हाथ लौट आये हैं। अब पुनः वहाँ पर जाने की हमारी हिम्मत नहीं हो रही है। चाहे आप स्वयं ही जाना चाहो, तो जा सकते हैं। वहाँ पर तो हजारो स्त्री-पुरुष मरने के लिए तैयार खड़े है। अब आगे हो सकता है, द्वन्द्व युद्ध हो जाये।

हजूर! संभल कर ही जाना होगा। गोपालदास भी तो आखिर मनुष्य ही था। उसके शरीर में भी तो एक मानव का दिल धड़क रहा था। हृदय पसीज गया और कहने लगा- रे दुष्टो! तुम्हारे अंदर कुछ भी दया नहीं है। अरे वे लोग तो मानव नहीं देवता हैं। उन्होंने तो अपना बलिदान देकर मेरी आँखें खोल दी हैं। मैं भी पहले भ्रम में ही था। क्या ऐसा भी हो सकता है? वृक्षों की रक्षा के लिए भी कोई बलिदान दे सकते है? ऐसा तो कभी भी इतिहास में न तो कहीं लिखा गया है और न ही कहीं सुना भी गया है। यह तो दुनिया की अद्भुत घटना है।

ऐसा कहते हो ठाकुर साहब ! अभी ही तो कुछ वर्ष पूर्व रामासड़ी में ही दो स्त्रियों ने वृक्ष रक्षार्थ प्राणों की आहूति दी थी। यह जान कर भी आप अनजान क्यों बन रहे हो ? ऐसा ग्राम के चौधरी ने बतलाया। गोपाल दास ने अज्ञता प्रगट करते हुए कहा- यह मैं सच कह रहा हूँ। मुझे इस पूर्व की घटना का पता नहीं था। यदि ऐसा मालूम होता तो मैं ऐसी घटना कभी नहीं होने देता। मुझे मेरे समीपस्थ लोगों ने अंधेरे में रखा है।

जो होनहार थी वह तो हो गयी। अब मुझे पश्चाताप की आग में जीवन भर जलना होगा। वे तो बेचारे झटिति कट गये। किन्तु मेरा एक-एक टुकड़ा धीरे धीरे पछतावा करता हुआ जलेगा। यदि यह जलना कुछ हल्का हो सके, तो इसका कोई उपाय कीजिये। चौधरीजी ! यह दुख कुछ हल्का हो सके इसके लिए तो यही उपाय होगा कि आप स्वयं विनम्र भाव से अपराधी बन कर उन बिश्नोइयों की जमात में जाकर क्षमा याचना करें। वे दयालु हैं, शायद आप के अपराध को देखते हुए माफी दे दे। यही उपाय हो सकता है।

गोपालदास तिलवासणी गाँव में अपने विश्वास पात्र लोगों को साथ लेकर पहुँचा और अपना सिर पंचायत के सामने झुकाया और कहा- यह सिर तुम्हारा है। चाहे तो इसे काट लो। चाहे तो इसे छोड़ दो। पांचो- पीथो चौधरी वहाँ पर उपस्थित थे। उन्होंने तथा सम्पूर्ण जमात ने कहा कि अब आपका सिर काटने से तो ये जीवित नहीं हो सकते। किन्तु उनके सम्मान के लिए तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि फिर कभी रूँख नहीं काटेंगे और न ही किसी को काटने देंगे।

ठाकुर ने बिश्नोइयों की बात का आदर किया और यह समझौता लिखित रूप से कर के दिया। उसी दिन से फिर कभी भी हरे वृक्ष काटने की हिम्मत नहीं की। बिश्नोई लोग अमन चैन से रहने लगे।

यह कथा वील्होजी ने अपनी साखी ''विज्ञानी आत्म थक्यो'' में वर्णन की है। वील्होजी इस घटना के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। तथा इसी का अनुसरण करते हुए साहबरामजी ने जम्भसार में विस्तार से वर्णन की है। उसी परंपरा का पालन करते हुए इस कथा का यह हिन्दी भाषा में रूपांतर कर दिया है।

बूचो जी का बलिदान

विक्रम संवत सोलह सौ तीस से सत्रह सौ छतीस के बीच में संत केशोजी महान् कवि हुए थे। केशोजी उस समय बूचो के बलिदान के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। अपने गुरु वील्होजी की भांति इन्होंने भी खड़ाणे की अनेक साखियाँ विरचित की हैं। उन साखियों में ही यह प्रसिद्ध साखी बूचेजी की है। जिसमें कवि ने उक्त घटना का सविस्तार वर्णन किया है ''बूचो बारां करोड़''

बूचो भक्त मेड़ता परगने के पोलावास गाँव का रहने वाला एक सच्चा विष्णु का भक्त था। उस गाँव में सभी बिश्नोई भाई ही निवास करते थे। जिस गाँव में बिश्नोई निवास करते थे, वहाँ वहाँ रूँखों का बाहुल्य था। जो अब भी देखा जा सकता है। जहाँ पर रूँख अधिक होंगे, वहाँ वर्षा भी ज्यादा होगी। जिस वजह से तालाब जल से लबालब भरे रहते थे। उन्हीं तालाबों के आस पास तथा सम्पूर्ण वन में ही वृक्ष इतने गहरे तथा घने थे कि पत्तों के भार से नीचे झुके हुए थे। धरती पर टिक चुके थे। कहीं पर भी धरती खाली नहीं थी। उन में भी अधिकतर खेजड़ी के ही वृक्ष थे। क्योंकि उस क्षेत्र में और दरखत कम ही पनपते हैं।

अन्य वृक्ष तो अपने नीचे धान- घास आदि को पनपने ही नहीं देते, किन्तु खेजड़ी वृक्ष अपने नीचे दूसरों को पनपने में सहायता ही देते हैं। किसी अन्य से विरोध न होकर सहयोग ही रहता है। इतना घना वन भी इसलिए ही था क्योंकि बिश्नोई लोग जाम्भोजी के वचनों को पालने वाले थे ''जीव दया पालनी, रूंख लीलो नहीं घावै'' इस नियम का अक्षरस: पालन करते आ रहे थे। इसलिए न तो स्वयं ही काटते थे और न ही दूसरों को काटने देते थे।

उस समय बिश्नोई केवल अपने बलबूते पर ही वृक्षों की रक्षा कर रहे थे किन्तु राजकीय सहायता बिना तो वृक्षों की रक्षा करना उनके लिए कितना कठिन था। उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिश्नोइयों के गाँव भी प्राय: एक ही जगह पर हुआ करते थे। वे अपना समूह बना कर आस पास के ही जंगलों में बस जाया करते थे। मेड़ते परगने में उस समय तथा अभी भी लगभग पन्द्रह बीस गाँव बिश्नोइयों के थे। वे सभी एक ही जंगल में बसे थे। इसीलिए वन की हरियाली दूर दूर तक बड़ी ही सुहावनी लग रही थी। उससे बाहर तो अज्ञानी लोगों ने वृक्ष काट लिये थे। जब कभी ईंधन व इमारती लकड़ी की आवश्यकता पड़ती थी सभी लोग बिश्नोइयों के गाँवो की सीमाओं में ही दृष्टि लगाये रखते थे। उनसे रक्षा बिश्नोई करते थे।

कुछ वस्तुएँ पूजनीय होती हैं, जिनमें एक ईश्वर विष्णु की भक्ति- उपासना करना, गुरु जाम्भोजी महाराज, एवं उनके वचन- शब्द, गऊ जो माता तुल्य दूध देती है, वन्य जीव, हरिण, मयूर आदि तथा खेजड़ी वृक्ष जो तुलसी मानी जाती है। यदि इन पूजनीय वस्तुओं की हानि होती है तो बिश्नोई लोग कदापि सहन नहीं कर सकते।

रैण और राजोद गाँव भी पोलास गाँव के निकट ही पड़ते हैं। वहाँ पर उस समय जाम्भोजी के शिष्य राव दूदा के पौत्र रहा करते थे। हालांकि दूदा तो परम धार्मिक था, किन्तु उनकी औलाद उस प्रकार से धार्मिक नहीं थी। वे ही लोग उस समय वहाँ पर जागीरदार थे। मेड़ते का राज्य तो उनसे छिन गया था क्योंकि उन्होंने जाम्भोजी के वचन नहीं माने थे। अब ये लोग यहीं पर ही रह कर अपने दिन व्यतीत कर रहे थे, किन्तु अपनी दुष्टता नहीं छोड़ी।

दूदा तो सुगरा था। गुरु के वचनों को मान कर अपने राज्य में हरे वृक्ष न काटने का नियम बनाया था। किन्तु उनकी औलाद इतनी जल्दी ही उन नियमों को भूल चुकी थी।

जहाँ तहाँ भी हरे-सूखे वृक्ष दिखाई दिये, वहीं से कटवाकर मंगवाने प्रारम्भ कर दिये। हरे वृक्ष काट काट कर के रैण और राजोद का वन तो प्राय:खाली कर दिया था। अब पोलास के जंगल की भी बारी आ चुकी थी।

लगभग होली के आस पास के दिन थे और किसान अपनी फसलें खेतों से समेट कर घर आ चुके थे। होली की खुशियाँ मनाने की तैयारियाँ चल रही थी। वन-खेत तो प्राय: सूना हो चुका था। उस शून्य जन रहित वन में उस दूदे की औलाद ने घात लगा कर अनेक खेजड़ी के वृक्ष काट लिये और काट कर एकत्रित कर लिये,तथा बैलगाड़ियो में भर कर वहाँ से उठा कर ले भी गये।

ग्वालों द्वारा पोलास के बिश्नोइयों को यह खबर मिली कि अपने ही वन से रूँख कट गये हैं। एक तरह से धरती खाली हो गयी है। यदि इसी प्रकार का क्रम चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं कि सम्पूर्ण वन कट जायेंगे। गाँव के लोग एकत्रित हुए और वन में जाकर जहाँ जहाँ पर वृक्ष कटे थे वहाँ वहाँ पर पेड़ो के मूल देखे तो बात सच्ची ही निकली।

वहीं से पंचों ने चिट्ठी लिख कर चारों ओर बिश्नोइयों के गाँवो में भेजी और स्वंय उन लोगों ने पैरो के निशान देखे और पैर के निशाने पर आगे चले तथा राजोद गाँव पहुँच गये। वहाँ जाकर देखा तो वृक्षो का ढेर लगा हुआ था। मानो होली जलाने के लिये ही लगाया हो। खोजी ने पैरों के निशान देख कर यह बतलाया कि ये तो नरसिंघदास ठाकुर के ही आदमी हैं। जिनमें करम चंद, दुरजण आदि प्रमुख हैं। इन्हीं लोगों ने यह अन्याय किया है।

जमात एकत्रित हो चुकी थी। सभी ने कहा- वास्तव में यह तो बड़ा ही पापी जागीरदार है। इसी पाप के कारण तो इनका मेड़ता छिन गया है। वहाँ पर बिश्नोई ही नहीं, किन्तु वहाँ के स्थानीय मान्यता प्राप्त लोग ब्राह्मण,बनिया,राजपूत,आदि एकत्रित हुए थे। पंचायत होने लगी थी। किन्तु बुद्धि हीन उन लोगों ने नरसिंघदास का ही साथ दिया। बिश्नोइयों का पक्ष नहीं लिया। क्योंकि उनको यह भय था कि कहीं ग्राम पति ठाकुर नाराज हो गया तो हमें यहाँ से निकाल देगा। इसलिये स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्याय का ही साथ दिया।

बिश्नोइयों के प्रधान ने भरी सभा के बीच में खड़े होकर कहा- यदि तुम लोग अन्याय का साथ देना चाहते हो तो भले ही दो,किन्तु ये दरख्त तो इस नरसिंघदास ने ही कटवाये हैं। हम पीछे नहीं हटेंगे।

''सिर धन आवै सिर साटै,सिर साटै सनमान,
सिर साटै लाभै सुरग,जे सिर दीनों जाय।

हम अपना बलिदान दे देंगे किन्तु इस प्रकार से वन का विनाश नहीं होने देंगे। वहाँ पर उपस्थित जन समूह ने इस बात पर आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा-कि यह असंभव है। क्या कभी कोई रूँखों के बदले भी अपने प्राण निछावर कर सकता है? कदापि नहीं। हम लोग भी धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, पूजा पाठ यज्ञ उपासना,आदि यही धार्मिकता है। कहीं कोई वृक्षों के बदले मर जाना भी क्या कोई धार्मिकता है? हे बिश्नोइयों! क्यों व्यर्थ में अपने प्राणों से हाथ धो रहे हो?

बिश्नोइयों ने सम्बोधन कर के कहा-हम लोग केवल कहते ही नहीं हैं, करके भी दिखाते हैं। धर्म तो केवल कहने-सुनने की वस्तु नहीं है। वह तो आचरण का विषय है। हमारे गुरु जम्भेश्वर जी ने हमें यही सिखाया है कि प्राणो को देकर भी हरे वृक्षों की रक्षा करो। एक या दो के शरीर भले ही चले जायें, किन्तु उसके बदले में धर्म की रक्षा होगी। तो उससे असंख्य प्राणियों की रक्षा होगी। यही सब से बड़ा परोपकार है।

यदि ऐसी बात है तो हम सभी लोग यहाँ देख रहे हैं तुम्हारे बीच में से कौन मरने के लिये तैयार है। किस व्यक्ति को घर परिवार, स्त्री-बच्चे प्यारे नहीं हैं? कौन व्यक्ति ऐसा है जो शरीर को इस धर्म रक्षार्थ सहर्ष सौंप देगा? शस्त्र की पैनी धार के सामने स्थिर कौन रहेगा?यदि ऐसा कोई है तो अवश्य ही सामने आये,और अपनी शूरवीरता दिखाये।

ऐसी वार्ता श्रवण कर के बूचोजी भक्त बीच में से निकल कर सामने आकर खड़े हो गये। बूचोजी ने अभी ही यौवनावस्था में पदार्पण किया था। ऐसा भी कहा जाता है कि थोड़े ही दिन पूर्व उड़सर गाँव में विवाह हुआ था,और अपनी पत्नी आदि का मोह माया छोड़कर सभी के बीच में निर्भय होकर खड़ा था।

बूचोजी ने ललकारते हुए कहा- यह मैं शहीद होने के लिए तैयार खड़ा हूँ। आइये, कौन आकर मेरा काम तमाम करेगा? मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं बिल्कुल इस जगह से हिलूँगा नहीं। सामने हाथ उठाऊँगा नहीं। मेरा सिर धड़ से अलग कर दीजिये। न ही अन्य कोई मेरा भाई बंधु विरोध करते हुए आपका सामना करेगा। आप लोगों में से जो अपने को शूरवीर समझता है। वह सामने आ जाइये। मेरी एक शर्त है, वह भी सुन लो। मेरे बलिदान हो जाने के बाद फिर कभी भी तुम्हारे सम्बन्धियों में से कोई भी हरा वृक्ष नहीं काटेगा और न

ही कटवाने की प्रेरणा ही देगा। यह जो वृक्ष कट गये हैं, इनकी जगह पर तुम्हें दूसरे रूँख लगवा कर देने होंगे। यही रूँख कटने की घटना इस इलाके में अंतिम होनी चाहिये। इसलिए मेरा शरीर तुम्हारे समर्पित है। मेरा सिर काट लीजिये परन्तु रूँख नहीं काटना।

राजोद गाँव के ठाकुर नरसिंघदास की तरफसे बूचे जी का सिर छेदन के लिए रतने को हाथ में नंगी तलवार देकर भेजा गया और कहा- बिना कुछ सोचे समझे, बिना दया दिखाये, तुम जाकर उस सभा के बीच में खड़े व्यक्ति का सिर काट लो। मैं देखता हूँ कि कैसे नहीं कोई विरोध करता है। जहाँ थोड़ा भी विरोध करते हुए यदि देखा गया, तो हम समझेंगे कि यह इनका धर्म नहीं, पाखण्ड है। यदि ये लोग पाखण्डी सिद्ध हो जायेंगे, तो इन्हीं सभी को यहाँ से भगा देंगे।

बूचो जी ने हाथ जोड़ कर भगवान् विष्णु का नाम स्मरण किया और गुरु जाम्भोजी से प्रार्थना की कि हे गुरु देव! अब तो इस पंथ के आप ही रखवाले हैं। यह मेरी तथा समाज की परीक्षा की घड़ी आ गयी है। इस अवसर पर आप मुझे शक्ति प्रदान कीजिये, ताकि मैं शांति पूर्वक धर्म का निर्वाह कर सकूँ। इस शरीर की मुझे चिंता नहीं है। किसी भी प्रकार से धर्म की रक्षा हो जाये, यही मैं चाहता हूँ।

रतने ने सभी के देखते ही देखते बूचे जी के शरीर पर नंगी तलवार से वार किया और सिर धड़ से अलग होकर धरती पर गिर पड़ा। खून की धारा बह चली। धरती माता के एक सपूत ने अपने खून से माता के मस्तक पर तिलक किया था। जिससे यह धरती भी गौरवता को प्राप्त होकर सदा के लिये उस मरु भूमि का मस्तक ऊँचा कर दिया। ऊपर आकाश में सूर्य देवता देख रहे थे। उस दिन तो भगवान् सूर्य कुछ अधिक ही प्रसन्न हो रहे थे। मानो आशीर्वाद देने के लिए किरण सीधी धरती पर उतर कर के आ रही थी। देवता भी अत्यधिक प्रसन्न होकर मौसम को सुहावना बना दिया था। उपस्थित जन समूह ने भी हर्ष की ध्वनि प्रकट करके बूचोजी की जय जय कार की। चारों ओर से धन्य धन्य की ध्वनि गूँज रही थी।

बूचोजी के प्राण तो शरीर से विलग होकर स्वर्ग को प्रस्थान कर गये थे और जाते-जाते धर्म की मर्यादा को बांध गये। फिर कभी भी मेड़ता की अधिकार भूमि में हरे वृक्ष नहीं काटे गये। नरसिंघदास ने आकर जमात से क्षमा याचना माँगी और निवेदन किया कि आज से मैं और मेरा सम्पूर्ण परिवार जाम्भोजी की आज्ञा का पालन करेगा। आप बिश्नोई लोग मेरे बड़े गुरु भाई हैं। जो भी कार्य करूँगा,मैं आप लोगों से पूछ कर ही करूँगा। मुझे क्षमा प्रदान कीजिये।

अब मुझे वास्तविकता का पता चल गया है। हरे वृक्ष तथा वन्य जीव कितने हमारे लिये परोपकारी हैं। इन को काट बाढ कर हम कभी सुखी नहीं हो सकते। इसलिये आज से मेरी यह प्रतिज्ञा होगी कि मैं कभी भी न तो स्वयं रूँख काटूँगा और न ही दूसरों को काटनें दूँगा। आज बूचे जी के बलिदान ने मेरी आँखें खोल दी है।

यह घटना वि संवत् सत्रह सौ के होली के पश्चात चेत वदी तीज को घटित हुई थी। उस दिन हस्त नक्षत्र मंगलवार था।

केशोजी कहते हैं कि सुकर्म कर के बूचोजी स्वर्ग में पहुँच गये थे। यह वार्ता मैंने विचार पूर्वक सच्ची कही है। इसे सुन कर लोगो के मन में धार्मिक भावना उदय हो सके, यही मेरा उद्देश्य है।

रामूजी खोड़ का बलिदान

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम समय में अपने प्राणो का बलिदान देने वाले रामूजी खोड़ गोत्र के बिश्नोई थे। उन्होंने राज कर्मचारियों द्वारा जबरदस्ती से कर उगहाने के विरोध में अपने को युद्ध की विभीषिका में होम दिया। जोधपुर से लगभग चालीस कि.मी.पूर्व में कापरड़ा गाँव है। वहाँ पर उस समय विशाल मेले का आयोजन होता था। दूर दूर से लोग क्रय-विक्रय करने के लिये आते थे। प्रत्येक वस्तु का वहाँ व्यापार होता था। सम्पूर्ण भारत से व्यापारी वहाँ पहुँचते थे। इसी मेले में ही जाम्भाणी लोग भी जाते थे। प्रत्येक वर्ष इस मेले का आयोजन चैत्र के महीने में होता था। बे खटके लोग मेले में प्रवेश करते थे। कभी किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जाता था। और न ही लोगों का ऐसा कर देने का स्वभाव ही था।

संवत् सत्रह सौ के चैत्र मेले में कापरड़ा में राजा की आज्ञा लिये बिना ही मेले में प्रवेश कर लगा दिया था। प्रत्येक व्यक्ति एवं पशु धन,सामान आदि सभी पर कर लाया गया था। गरीब जनता में त्राहि त्राहि मच गयी थी। राज कर्मचारियों के सामने जाकर विरोध करने की हिम्मत किसी को भी नहीं पड़ रही थी। जिस प्रकार से अन्य लोगों से अन्याय पूर्वक जबरदस्ती से कर लिया जा रहा था, उसी प्रकार बिश्नोइयों से भी डाण (कर) मांगा गया। तब बिश्नोई बन्धुओं ने कर देने से मना कर दिया।

जब कर्मचारियों ने पूछा-आप लोग ही क्यों नहीं देते ? तब बिश्नोईयों ने कहा-हम जाम्भोजी के शिष्य हैं। हमारे लिये सभी जगहों पर कर (डाण) माफ है। जहाँ कहीं भी अन्याय होगा,हम उसे सहन नहीं करेंगे। वह चाहे हरे वृक्ष काटने का हो ? चाहे वन्य जीव मारने की बात हो अथवा गरीब जनता को कष्ट देने की बात हो। हम इसका डट कर विरोध करेंगे। स्वयं मर जायेगें,दुष्टों को मार देगें,किन्तु अपने सामने अन्याय नहीं होने देंगे। इस बात को आप ठीक से समझ ले और हमारे तथा इन जनता के सामने से हट जाओ।

राजकर्मचारियों ने उन बिश्नोइयों की बात को अनसुनी कर दी और लोगों से कर उगाहना प्रारम्भ कर दिया। बिश्नोइयों की जब बारी आयी तब उन्होंने कुछ भी नहीं दिया। बिना कुछ दिये,उन कर्मचारियों की परवाह किये बिना ही मेले में प्रवेश कर गये। उसी समय ही उन्होंने रोका तो आपस में लड़ाई प्रारम्भ कर दी गयी।

एक तरफ तो जाम्भोजी के शिष्य और दूसरी तरफ राजकर्मचारी थे। मोर्चा बन्दी होकर युद्ध का रूप धारण कर लिया। दोनों तरफ से तलवारें खींच ली गयी। कोई भी पक्ष पीछे हटने को तैयार नहीं था। सभी अपनी आन मान की दुहाई पर डटे हुए थे। उसी समय ही रामू जी खोड़ दूल्हा बने हुए बारात सहित विवाह के लिये जा रहे थे। सिर पर मोड़ बंधा हुआ था। बारात सहित रामूजी ने देखा कि भीड़ इकट्ठी हो रही है। काफी शोर शराबा भी हो रहा है। अपने गन्तव्य स्थान में जाकर उस भीड़ में प्रवेश कर गये और पूछा कि क्या बात है ? ऐसा क्या होने जा रहा है ?

उस समय वहाँ के लोगों ने स्थिति से अवगत करवाया। रामू जी ने भीड़ में प्रवेश करते हुए सभी लोगों को पीछे हटाया और कहा-अब आप लोग रुक जाओ। मैं विवाह करने जा रहा हूँ। मुझे तो विवाह ही रचाना है। तो फिर यहाँ पर ही क्यों न रचाऊँ ? ऐसा मौका बार बार कहाँ मिलता है ? कुछ दिनों के पश्चात तो यहाँ से जाना ही होगा इससे तो अच्छा है कि अभी तुरंत ही इस परोपकार कार्य को करता हुआ पहुँच जाऊँ।

बाद में तो यमराज जबरदस्ती खींच के ले जायेंगे। अब तो मैं स्वंय ही अपना मार्ग चुन लेता हूँ। आप लोग अनेक युद्ध में आहत होंगे,इससे कुछ भी लाभ नहीं है। यदि मेरे एक के प्राण देने से आप लोगों के प्राण

भी बचेंगे तथा मर्यादा की पाज पुन: बंध जायेगी। अन्याय सदा के लिये बंद हो जायेगा। मैं अभी युवा हूँ जैसी युद्ध में करामात दिखा सकता हूँ, शायद आप उतनी नहीं दिख सकोगे। अन्य उपस्थित जन समूह ने रामूजी का ही अनुसरण किया।

रणभेरी बज उठी। दोनों तरफ से भयंकर युद्ध हुआ। इधर तो नेतृत्व रामोजी कर रहे थे। उधर वहाँ के राजकर्मचारियों का प्रधान। रामोजी अपनी वीरता दिखाते हुए अनेक लोगों को मौत के घाट उतारा और अन्तिम में स्वयं ही मृत्यु का वरण किया। वहीं पर ही रण में युद्ध करते हुए बलिदान दे दिया। रामोजी की स्वर्ग यात्रा के साथ ही युद्ध रुक गया

जोधपुर राज दरबार तक खबर पहुँची। तब राजकर्मचारियों को ही राजा ने दंडित किया। तथा शूरवीर रामोजी के लिये बार-बार धन्यवाद कहा। उसी दिन से ही स्वयं राजा ने ही आज्ञा प्रसारित कर दी कि इस बलिदान के बदले में यही कर सकता हूँ कि पुन:कभी भी राजकर्मचारी मेले आदि में इस प्रकार का कर नहीं लगायेंगे। सत्य निष्ठा के साथ प्रजा का पालन करूँगा। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे राज्य में ऐसे शूरवीर लोग निवास करते हैं।

धवा गाँव के निवासी रामोजी खोड़ का यह अद्भुत और निराला ही बलिदान था। यह घटना केशोजी के अनुसार वि.सं.सत्रह सौ में चैत्र सुदी एकादशी मघा नक्षत्र वार मंगलवार को घटित हुई थी। इस घटना के स्वंय केशो जी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। जिन्होंने एक साखी '''हटवाड़े हलचल हुवो''' में विस्तार से वर्णन किया है। साहबरामजी ने केशोजी का अनुसरण करते हुए जम्भसार में कथा के रूप में वर्णन की है।

इस घटना के कुछ समय पूर्व ही रामोजी ने भाव विभोर होकर एक साखी की रचना की थी, ऐसा लगता है कि रामोजी सांसारिक बंधन में बंधने के लिये सिर पर मोड़ बांध कर भले ही जा रहे हो, किन्तु उसकी भावना तो सदा ही परलोक में स्वर्ग या मोक्ष प्राप्ति की तरफ ही लगी हुई थी।अपने जीव दर्शन कर के फिर इस संसार रूपी डाल में रमण करने में हानि दिखा कर,स्वर्ग का सुख जो चंपा,मरवा,केवड़ा की सुगन्धी है, उसकी ओर ही आकर्षित करते हुए नजर आ रहे है। आगे स्वर्ग में हरिश्चन्द्र,युधिष्ठिर,प्रह्लाद आदि से मिलने की आतुरता प्रगट होती है।

कहीं वृद्धावस्था न आ जाये। फिर भंवरे की पांख भीग जायेगी,उड़ नहीं सकेगा।

इसलिये श्रावण का महीना आने से पूर्व ही घर का निर्माण करना आवश्यक है। इन्हीं भावो को दर्शाती हुई यह महत्वपूर्ण साखी नीचे दी जा रही है। यह बहुत अच्छी राग में गायी जाती है। इस साखी से रामू जी की मन की भावना का पता चलता है।

साखी

जां थलीयां देवजी भंवरा अवतरयो, जां थलीयां छै गाढ़ो नूर।
भक्तां रे मन चान्दणो, दिलमां ऊगो सूर।।1।।
अली यल टोली भंवरो रम रहयो, रहयो दिसावर छाय।
बाग बिहूणों भंवरो क्यों रहें।।2।।
आवो Vkok भंवरा घर चिणा ;आयो सांवणीया रो मास।
भीजण लागी पांखड़ी छीजण लागो मास।।3।।
घण गरजे दावण खिंवै, चातक मने उदास।
सर छलिया सरिता वह, रटत पीयास पीयास।।4।।

तोड़ो तोड़ो भंवरा पिंजरो, भांज करो चकचूर।
मोमण स्वर्गे नावड़्या, तूं काय रहीयो मजूर।।5।।
भंवरा एक सनेसड़ो मोमणा ने, थै कहियो जाय।
पींजर नांही प्राणीयां, थाई दिस लहिया आय।।6।।
हीरा विणजो साधो मोमणो, भले न चढ़िस्यां हाथ।
हमे जपस्यां निस्तारसा, रमस्यां झूलरीये रे साथि।।7।।
स्वर्गे सोरभ अति घणी, मोर रही बणराय।
चंपो मरवो केवड़ो, भंवर रह्या रंगलाय।।8।।
मेलो गुरु प्रहलाद सुं, मेलो हरिचंद राय।
मेलो पांचे पांडवे, धन्य कूंता दे मांय।।9।।
जां बूठो तां वाहीयो, जारा सुपह सुवाया खेत।
ते जन भंवरा नीपजां, जारा जम्भगुरु सुं हेत।।10।।
कर सुक्रत स्वर्गे गया, ते जन पहुंता पार।
बीनतड़ी रामो कह, म्हारी आवागवण निवार।।11।।

खेजड़ली में 363 स्त्री पुरुषों का बलिदान

जाम्भाणी साहित्य में अनेकों कवि हुए हैं, जिन्होंने काव्य रचना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी कवि परंपरा में वि.सं.सत्रह सौ से सत्रह सौ निब्बे के बीच महा कवि गोकुल जी हुए हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में अनेकों स्तुति परक रचनाऐं की है। साथ ही खेजड़ली की प्रसिद्ध घटना के प्रत्यक्ष-दृष्टा भी थे। गोकुलजी ने उस घटना को देख कर अपने भावों को छन्दोबद्ध किया है। जो साखी के रूप में प्रसिद्ध है।

साखी का प्रारम्भ अजीत सिंह जोधपुर के राजा से होता है। और अन्त तीन सौ तिरेसठ स्त्री-पुरुषों के बलिदान से होता है। प्रारम्भ-पण पालण पिसण गंजण, रूंखा राखण हार ''' अन्त-गुणि गूंथि गोकल कह साखी,खेजड़ली खल खट सांभल्यौ''' जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजी जाम्भोजी के शिष्य थे। जोधाजी क ी प्रार्थना पर जाम्भोजी ने उनको बैरीसाल नगाड़ा दिया था। गुरु जाम्भोजी की कृपा से ही जोधपुर नगर आबाद हुआ था। उन्हीं जोधाजी की परंपरा में वि.सं.सत्रह सौ के पश्चात् अजीत सिंह जी जोधपुर के राजा बने थे।

गोकुलजी ने अजीत सिंह की महिमा का वर्णन साखी के प्रारम्भ में किया है। अजीत सिंह पूर्णतया धार्मिक राजा था। प्रजा का पालन न्याय पूर्वक करता था। ऐसे ही अजीत सिंह का पुत्र अभयसिंह हुआ। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राजसिंहासन पर बैठा। अपने राज्य की सीमा की सुरक्षा के साथ ही साथ राज्य विस्तार की भावना से गुजरात में भी कई इलाकों पर चढाई कर के विजय हासिल की थी। राजा अपना अधिकतर समय युद्ध में ही व्यतीत करता था।

स्वयं राजा अभयसिंह सेना सहित गुजरात से विजय श्री हासिल कर के आया ही था। खुशियाँ मनाई जा रही थी। राजा का सम्पूर्ण कार्य सूत्र भण्डारी गिरधर के ही हाथ में था। जैसा चाहता था, वैसा ही राजा से करवा लेता था। राजा पूर्णतया गिरधरदास के हाथ चढ चुका था। इसलिये गिरधरदास की ही मनमानी चलती थी।

गिरधरदास स्वयं ही राजा के पास जाकर कहने लगा-हे अन्नदाता! इस समय राज कोश की हालत बहुत

ही खराब चल रही है। कर्मचारियो की नौकरी के लिये भी रुपये नहीं बचे हैं तथा आपने जो किला बनवाया प्रारम्भ कर रखा है, उसके लिये सामग्री चाहिये। यदि आप आज्ञा दो तो मैं व्यवस्था करूँ। मुझे आशा है कि इधर बिश्नोइयो के गाँवो में खेजड़ी के वृक्ष बहुत है। उन्हें कटवाकर लाता हूँ और उस ईन्धन से चूना जलाया जायेगा।

इससे अपनी सम्पूर्ण समस्या हल हो जायेगी। अभयसिंह ने भण्डारी को समझाते हुए बतलाया कि बिश्नोई लोग जाम्भोजी के शिष्य हैं। वे तुम्हें हरे वृक्ष काटने नहीं देंगे।

तुम्हें खाली हाथ लौटना होगा। फिर हरे वृक्ष काटना कोई पुण्य का कार्य नहीं कहा जा सकता।

यदि वे लोग काटने नहीं देंगे, तो भी कोई बात नहीं है। उसके बदले में उनसे कुछ रुपये लेने की माँग रख दी जायेगी। या तो पेड़ काटने देंगे। इन लकड़ी की व्यवस्था कहीं और जगह से कर लेंगे। आप चिंता न कीजिए। आपके तो दोनो हाथो में लड्डू है। यह कार्य तो आप मेरे पर छोड़ दीजिए। मैं स्वयं ही व्यवस्था करूँगा। अभय सिंह को पूर्णतया आश्वासन देकर कुछ सिपाहियो को तथा वृक्ष काटने वाले मजदूरो को लेकर गिरधर दास सीधा जोधपुर से चल कर पचीस कि.मी.दक्षिण पूर्व में खेजड़ली गाँव पहुँचा और वृक्ष कटवाना प्रारम्भ कर दिया।

वृक्ष पर कुल्हाड़ी की चोट पड़ने से आवाज को वहाँ के लोगो ने सुना तथा देखते ही देखते वहाँ पर हजारों आदमी इकट्ठे हो गये। और उन वृक्ष काटने वाले आततायी लोगों के हाथ से कुल्हाड़ी छीन ली और उनको वहाँ से भगा दिया। निहत्थे लोग गिरधर दास के पास पहुँचे और सम्पूर्ण वृतान्त से अवगत करवाते हुए कहने लगे–

हम तो दुबारा वृक्ष काटने नहीं जायेंगे। इस बार तो किसी प्रकार प्राण बचा कर भाग आये। अब की बार तो प्राणों की रक्षा होनी भी कठिन है। यह वृक्ष काटने का दुष्कर कार्य हम से नहीं बनेगा। इसके बदले आप के वचनों की अवहेलना करने से चाहे आप हमें फांसी ही क्यों न चढा दे।

गिरधरदास राजमद से मस्त हुआ घोड़े पर सवार होकर बिश्नोइयो के पास पहुँचा और अकड़ कर जोर से ललकारते हुए कहने लगा–आप लोग कौन होते हैं,हमारे कर्मचारियों को रोकने वाले ? आप को पता होना चाहिये कि ये सभी राजकीय आदमी थे। इनको रोकने की आपको हिम्मत कैसे हुई ? आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ ? यदि नहीं जानते तो मैं बतला देता हूँ कि मैं जोधपुर राजा अभयसिंह का खास भण्डारी गिरधरदास हूँ। इन कर्मचारियों के साथ जो आप लोगों ने व्यवहार किया है वह मेरे साथ हुआ है। मेरा अपमान राजा का अपमान है। आप सभी लोग राज दण्ड के भागी होंगे।

बिश्नोईयो की जमात की तरफसे अणदे ने आगे बढ़ कर हाथ जोड़ते हुए बतलाया कि हमें इस बात का पता नहीं था कि वे सभी राजकर्मचारी थे। हमें कोई आपका या राजा का अपमान करना आवश्यक नहीं था। यह तो अनजान में ही हो गया। किन्तु अजीत सिंह के पुत्र अभयसिंह पर हमें यह भरोसा नहीं होता कि वे कभी हरे वृक्ष कटवा सकते हैं। यह तो हम कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। जिनके पिता जी ने आगे बढकर सदा ही अपने पितामह की चलाई हुई मर्यादा का पालन किया। उनका पुत्र यह मर्यादा कैसे तोड़ सकता है ? भण्डारीजी आप भूल से यहाँ बिश्नोइयों की सीमा में प्रवेश कर गये हैं। यदि जोधपुर से इसी कार्य के लिए आये हैं तो वापिस लौट जाइये। इसी में ही आपका भला है।

मुझे शिक्षा देने वाला गंवार कौन है ? इसे बंदी बनाया जाय और पुन: वृक्ष काटने का कार्य प्रारम्भ किया जाये। यह मेरी आज्ञा है। किन्तु महाराज ! आपकी आज्ञा हम नहीं मानेंगे, यहाँ पर कोई बच कर वापिस नहीं

जायेगा। जिस अवस्था में हम खड़े हैं, यह बड़ी ही नाजुक अवस्था है। ऐसा कहते हुए गिरधरदास के अंग रक्षक एवं कर्मचारियों ने वृक्ष काटने से साफ इनकार कर दिया। और वापिस जोधपुर लौटने की तैयारी करने लगे।

गिरधरदास का मद चूर हो गया था और घोड़े से नीचे उतर कर चौधरी अणदे के पास जाकर हाथ मिलाते हुए कहना लगा– ठीक जैसा आप कहते हैं, वैसा ही करूँगा। अपने कर्मचारियों को मैंने रोक लिया है। यदि आप लोगों को रूँखो से प्रेम ज्यादा है, तो मुझे कटवाने का कोई शौक नहीं है। यह लकड़ी का प्रबंध तो मैं कहीं और जगह से कर लूँगा। इस त्याग के बदले में आप लोगों को रुपया तो अवश्य ही देना होगा। राज कोष में रुपयों की महत्ती आवश्यकता है।

बिश्नोइयों ने एक स्वर से कहा– न तो हम वृक्ष का एक पत्ता ही तोड़ने देंगे और न ही इस अन्याय के लिए एक रुपया ही हम तुम्हें देंगे। क्योंकि हमारी ही कमाई के रुपये तुम लेकर, उससे कहीं पर वृक्ष ही कटवाओगे। यहाँ नहीं तो कहीं अन्यत्र ही हरे वृक्ष तो कटेंगे ही। यह कार्य हम कदापि नहीं होने देंगे। इन वृक्षों के बदले हमारा सिर ले सकते हो। यहाँ तुम देख रहे हो अनेकों सिर देने के लिए तैयार खड़े हैं। इन्हीं खोपड़ियों से ही एक किला तैयार हो जायेगा, ये काट कर ले जाओ।

भण्डारी गिरधरदास चुप होकर अपने साथियों के साथ वापिस जोधपुर के लिए चल पड़ा। जाते समय उसकी अवस्था बिश्नोइयों ने देखी थी। क्रोध से भरा हुआ था। होंठ फड़क रहे थे। कुछ करना चाह रहा था। किन्तु अल्प शक्तिवान होने से कुछ करने में असमर्थ था। काले सर्प को छेड़ दिया था। मन में व्यथा लेकर जोधपुर पहुँचा था। बिश्नोई उसके मन के भाव को समझ चुके थे। नाराज होकर यह जा रहा था, तो कोई न कोई खतरा अवश्य ही उपस्थित करेगा। इसीलिए अपने को भी चैन से नहीं बैठना चाहिये।

दुष्ट व्यक्ति अपनी दुष्टता अवश्य ही करेगा। उसके मन में दया का सर्वदा अभाव ही होता है। वह किसी के उपदेश को भी ग्रहण नहीं करता । इसीलिए कोई न कोई उपाय तो अवश्य ही करें। आग लगने से पहले ही कुआं अवश्य ही खोद लेना चाहिये। चौधरी लोग एकत्रित हुए और पंचायत की। उसमें यही निर्णय लिया गया कि अब की बार वह दुष्ट आयेगा जरूर और आते समय वह बहुत बड़ी सेना लेकर आयेगा।

अपने पास उस बहुत बड़ी सेना का सामना करने के लिए सेना तो नहीं है, परन्तु प्रत्येक बिश्नोई का बच्चा सैनिक है। इस खेजड़ली गाँव को युद्ध का मैदान बना सकते हैं। अपने को प्राणों की बाजी लगा कर भी धर्म पर अडिग रहना है। इसीलिए चौरासी गाँवों में जो इस कार्य के लिए आ सकते हैं। सहयोग दे सकते हैं। उन्हें चिट्ठी भेजी जाय। पत्र लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। अणदे चौधरी ने चाचा की सलाह से पत्र लिखा–

मान्यवर! बिश्नोई बंधु अब तक तो जाम्भेजी महाराज की अपार कृपा से हम लोग धर्म रक्षार्थ तत्पर थे। अब श्री गुरु देव का कृपा हस्त तो अपने सिर पर है। हमारी परीक्षा की घड़ी आ चुकी है। यदि हम लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये तो समझो कि वास्तव में जम्भेश्वर जी के शिष्य बिश्नोई हैं।

बात इस प्रकार से है कि जोधपुर राजा अभयसिंह का भण्डारी गिरधर दास अपनी दुष्टता करने के लिए तत्पर है । यह बिजली निश्चित ही बिश्नोइयों पर गिरने वाली है। वह दुष्ट अभी-अभी यहाँ पर आया था। हरे वृक्ष देखकर तथा बिश्नोइयों की धन धान्य की सम्पन्नता देखकर मन ललचा गया है। उसने यही कहा है– या तो हरे वृक्ष काटेंगे और इन्हें बचाना है तो इनके बदले में रुपये देने होंगे। प्रथम दाव तो हम सब ने मिल कर निष्फल कर दिया है। उसे खाली हाथों वापिस लौटा दिया है। किन्तु उससे पूरी तरह चिढ गया है।

वह अब बहुत भारी सेना लेकर वापिस आएगा और वन का विनाश करेगा। हम ग्रामवासी आपका

सहयोग चाहते हैं। यह धर्म की रक्षा का सवाल है न कि व्यक्ति गत स्वार्थ का। जो लोग अपना सिर सौंपने को तैयार हैं, वे ही लोग यहाँ पर आने का कष्ट करें। जो कायर तथा धर्म विमुख हैं वे लोग आने का कष्ट न करें। अधिक न लिखते हुए थोड़े में ही बहुत समझ कर अतिशीघ्र खेजड़ली गाँव पहुँचे। आपके ही अपने खेजड़ली ग्राम निवासी।

इस प्रकार से पत्र लिखकर बहुत से पत्र वाहकों को देकर भेजा और अति शीघ्र सूचित किया। पत्र मिलते ही चौरासी गाँवों के लोग प्रत्येक गाँव से दस, बीस आदमी एकत्रित कर के सजधज कर के आने लगे। कुछ लोग गुड़े आकर के ठहरे थे। कुछ लोगों ने खेजड़ली आदि गाँवों में आकर आसन लगाया था। गिरधर दास के आने की प्रतीक्षा करने लगे थे।

हजारों की संख्या में बिश्नोइयों का आगम हो चुका था। सभी लोग परम धार्मिक थे। संसार का नेह नाता तोड़कर ही आ गये थे। सभी लोग मरने के लिए तैयार खड़े थे। अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। जगह जगह पर आरती-साखियाँ गायी जा रही थी। बड़े विशाल हवन हो रहे थे। सर्वत्र उत्सव मनाया जा रहा था। मानो विवाह हो रहा हो। सभी बाराती मालूम पड़ रहे थे। सर्वत्र ज्ञान चर्चा चल रही थी। अपने देश समाज में जन्म लेकर धर्म रक्षार्थ अपने को वहाँ तक आया हुआ मान कर गर्व का अनुभव कर रहे थे। घर परिवार की चिंता छोड़कर कर्मयोगी की भांति वसुधैव कुटुम्बकम का नाता जोड़ लिया था। अब उनके जीवन-मरण दोनों समान ही बन चुके थे।

उधर गिरधरदास खिन्न मन से जोधपुर पहुंचा और राजा के पास जाकर वहाँ की खेजड़ली की घटना को बढा चढा कर बखान किया। राजा भी कुछ क्रोधित हुआ, किन्तु पुन: शांत होकर कहने लगा- महाराज! ये बिश्नोई लोग बिना दंडित किये काबू में नहीं आयेंगे। ये लोग धर्म के नाम पर दिनोंदिन उच्छृंखल होते जा रहे हैं। आप जितनी भी इन लोगों को ढील दोगे, उतने ही ये लोग बिगड़ते चले जायेंगे। इसीलिए मेरा तो यही विचार है कि कल ही बहुत बड़ी सेना के साथ मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दीजिये। मैं वहाँ के सम्पूर्ण वृक्ष कटवा लाता हूँ। ये लोग इन्ही वृक्षों पर गर्व कर रहे हैं। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी इस प्रकार से गिरधरदास ने कठोर वचनों से राजा को अपने पक्ष में कर ने की कोशिश की थी।

गिरधरदास! तुम ऐसा मत कहो। मैं भी तो आखिरकार राठौड़ वंशी राजपूत हूँ। कुछ धर्म-कर्म के बारे में समझता हूँ और न ही तो मुझे समझना चाहिये। यह तो बड़ा ही नाजुक मामला है। ये लोग जाम्भोजी के शिष्य हैं। मर जायेंगे पर पीछे नहीं हटेंगे। मैं भला प्रजा को मार कर राज भी तो किस पर करूँगा ? इस प्रकार से तो मेरा कुल ही कलंकित हो जायेगा। हमारे यहाँ तो जोधुपर बसाने वाले हमारे दादाजी से लेकर अब तक किसी ने भी निर्दोष प्रजा पर अत्याचार नहीं किया है। वे सदा ही वृक्षों की रक्षा करते आये हैं।

और हे भण्डारी! तुम्हारी बुद्धि न जाने ऐसी क्यों हो गयी ? जो मुझे भी धर्म विरुद्ध मार्ग में धकेल रही है। इतना बड़ा कार्य करने से पूर्व मैं अपनी नगरी के विद्वानों से अवश्य ही सलाह लूँगा। फिर आगे की कार्यवाही करूँगा। ऐसा कहते हुए अभयसिंह ने पंडित, योगी, संन्यासी, यति आदि समाज के नीति विशारद विद्वान् लोगों को बुलाया और उनसे यही पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिये ? एक तरफ तो राजनीति व्यवस्था का प्रश्न है, दूसरी तरफ धर्म का प्रश्न है। इधर भण्डारी की मति मुझे पाप कर्म की तरफ खींच रही है, मुझे क्या करना चाहिये ?

राजा की बात का श्रवण करके सभी ने एक मत से कहा- कि हे राजन! धर्म की मर्यादा जो तुम्हारे यहाँ आदि काल से चली आ रही है, उसे तोड़ना नहीं चाहिये। बिश्नोई लोग प्राण देने के लिए तैयार खड़े हैं। वे

लोग केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं हैं। उनका कार्य तो सर्वजन हिताय है। जो कार्य सर्वसाधारण की भलाई के लिये होता है, उसे ही ज्ञानी लोग धर्म कहते हैं। वृक्षों की रक्षा होगी तो उससे कृषि में बढोतरी होगी। अच्छी वर्षा होगी, तो धन धान्य से देश परिपूर्ण होगा। किसान ही तो हमारे अन्नदाता देवता हैं। उन्हें आप मारने की बात मन से ही निकाल दीजिये। हम सभी लोगों का तो यही कहना है। अब आप आगे जैसा उचित समझें वैसा ही करें। इस प्रकार कहते हुए विद्वानों की सभा विसर्जित हो गयी।

गिरधर दास ने राजा के पास आकर समझाते हुए कहा- हे राजन! जिस सभा का आपने आयोजन किया था, ये तो सभी लोग आप के विरोधी हैं। यदि ये लोग आपके तथा राज्य के सहयोगी होते तो राज्य की उन्नति की ही बात कहते। ऐसी धार्मिक ढकोसले वाली बात ही क्यों कहते ?

इधर देखिए, आपका किला बिना लकड़ी और धन के अधूरा पड़ा हुआ है। विरोधी राजाओं को जीत कर राज्य विस्तार का स्वप्न भी अभी अधूरा ही पड़ा हुआ है। राजा प्रजा पर शासन नहीं चला सकता, तो फिर वह राजा ही कहाँ का है। इस प्रकार से प्रजा मनमानी करने लग जायेगी, तो फिर तुम्हारा शासन ही डोल जाएगा। आपके पास बहुत बड़ा सैन्य बल, कोष तथा सुरक्षा के लिए किला भी चाहिये। इन आवश्यक वस्तुओं के अलावा भी आप के लिए मेरे जैसा हितैषी बुद्धिमान मंत्री भी होना चाहिये। किन्तु आप तो मेरी बात का महत्व भी नहीं समझ रहे हैं।

ये जो जिनको आप विद्वान् कहते हैं, उनकी सभा आपने की है। इनमें से तो आपके हित की बात कहने वाला कोई नहीं है। ये लोग शास्त्र पढते हैं, मांग कर खाते हैं, झोंपड़ी में निवास करते हैं। हे महाराज! इन लोगों की राजनीति का क्या पता है? इन लोगों के सहारे से कहीं राजनीति चलती है? पेट भरने के सिवाय ये लोग जानते भी क्या हैं? इनसे आप पूछेंगे तो ये लोग तो वही धर्म का पुराना ही ढोल बजायेंगे। आज जो परिस्थिति राजा के सामने आ चुकी है, इससे उनको कुछ भी लेना देना नहीं है। जिन लोगों को इसका ज्ञान है, उनकी बात की आप अवहेलना कर रहे हैं, यह आपके राज्य के लिए शुभ नहीं है।

कल तो इन बिश्नोइयों ने राजपुरुष एवं सैनिकों की परवाह नहीं की थी। वे लोग मारने के लिए तैयार खड़े थे। वह तो मैं ही था? जो बड़ी ही चातुरी से वहाँ से निकल कर भाग आया था। ऐसे लोगों के साथ आप दया भाव किस लिए दिखा रहे हैं? उन्होंने राजाज्ञा की परवाह बिल्कुल ही नहीं की है। आज तो वे राजाज्ञा तोड़ते हैं, कल वे लोग जो आपको अपनी आमदनी से पाँचवाँ हिस्सा देते हैं, वह भी नहीं देंगे। धीरे धीरे से वे लोग यह भी कहने लगेंगे कि यह धरती तो हमारी है। हमारे ऊपर राजा और कौन होता है?

वे लोग अपना अलग ही राज्य स्थापित कर लेंगे। मैं सच्च कहता हूँ कि आपके हाथ से यह समझो कि बिश्नोइयों का इलाका निकल ही चुका है। राजा में ही जब शक्ति नहीं होगी, तो इसका लाभ उठाने से कौन चूकेगा? इस लिए समय रहते हुए उन लोगों को सबक सिखाना चाहिये। किन्तु भण्डारी! दादाजी की बाँधी हुई मर्यादा का क्या होगा? क्या मैं अपने कुल मर्यादा की पाज तोड़ दूँ? क्या कुल को कलंकित होने दूँ? क्या ये बिश्नोई लोग धर्म के लिए ही तो शहीद होने के लिए तैयार नहीं हैं? क्या वे वास्तव में उद्‌ण्डता से आप लोगों को पेश आ रहे हैं?

जाम्भोजी के शिष्य उनतीस नियम पालन करने वाले ऐसा तो कदापि नहीं कर सकते। सच सच बताओ मुझे क्या करना है? आपको तो कुछ भी नहीं करना होगा। महाराज! कार्य तो मैं ही आपका सेवक करूँगा। आपको तो केवल आज्ञा ही देनी होगी। तथा जो आपने धन मर्यादा की, बिश्नोइयों की बात कही है, इसमें कोई हानि की बात नहीं है। मैं सेना लेकर आपकी आज्ञा से जाऊँगा। न तो धर्म मर्यादा टूटने की नौबत

आयेगी और न ही कुल कलंकित होगा।

ये बिश्नोई लोग धर्म भीरू डरपोक हैं। राजा की सेना देख कर डरकर भाग जायेंगे। किसी को भी मरने मारने की नौबत ही नहीं आयेगी। हमें तो हरे वृक्ष नहीं काटना है। उनकी भावना को आहत भी नहीं करना है। यह लकड़ी की व्यवस्था तो कहीं और जगह से भी हो जायेगी। हमें तो उन लोगों को भयभीत कर के रुपये लेना है।

हे अन्नदाता ! इन लोगों के पास धन बहुत है। सभी संपन्न हैं। वहाँ धरती में गड़ा हुआ धन कहीं काम नहीं आ रहा है। और यहाँ पर तो धन की आवश्यकता है। प्रजा का धन तो न्यायत: राजा का ही होता है। धन प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना काहे का अन्याय है। जब उनके पास धन ही नहीं रहेगा तो फिर वह राजा की अवहेलना करने का गर्व था वह भी चूर चूर हो जायेगा। धन के अभाव में वे लोग संगठित होकर उपद्रव भी नहीं कर सकेंगे। पुन: धन प्राप्ति के लिए उद्योग प्रारम्भ कर देंगे, जिससे देश में खुशहाली होगी। यदि यह नीति आपको उचित लगती है, तो मुझे आज्ञा दीजिये। मैं अति शीघ्र ही आपका खजाना रुपयों से भर दूँगा इससे तो आपका राज्य समृद्ध ही होगा।

राजा अभयसिंह को वाक्जाल में फंसा कर भण्डारी गिरधरदास ने सेना सहित खेजड़ली गाँव जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली और हजारों सैनिकों सहित तथा दरखत काटने वाले मजदूरों को साथ लेकर गिरधरदास ने खेजड़ली गाँव की सीमा में प्रवेश किया।

बड़ी भारी सेना के घोड़ों की टाप सुन कर वन्य जीव हरिण आदि इधर उधर भागते हुए सुरक्षित स्थानों की खोज करने लगे। बीच में पड़ने वाले गाँवो के लोगों ने देखा और समझ गये कि अब जो होनहार है वही हो कर रहेगा। परीक्षा की घड़ी आ चुकी है। अब हमें भी पीछे नहीं रहना चाहिये। ऐसा कहते हुए घर बार छोड़कर सेना का ही अनुसरण किया।

खेजड़ली के घने जंगल में पहुँच कर वर्तमान में जाल नाडिया, जहाँ पर तालाब था, वह स्वच्छ जल से परिपूर्ण था। वहीं पर जाकर सेना ने डेरा लगाया। जगह जगह पर तम्बू तन गये। और भादवे महीने के काले कजरारे बादल भी गिरधरदास के हृदय की कलुषता देखकर रोते हुए आँसूं टपकाने लगे। बादलों की घनी घटाओं ने सूर्य देवता को भी छिपा लिया था। सूर्यदेवता भी मानो उन दुष्टों को दर्शन देना नहीं चाहते थे। सूर्य अप्रकाशित होने से दिन में भी चारों ओर अंधकार ही था। क्योंकि वह काला दिन आगे आने वाला था जिसकी सूचना प्रकृति भी दे रही थी।

रात्रि का चन्द्रमा पूरे यौवन पर होने पर भी धूमिल ही था। उन दुष्ट प्राणियों को अमृत पान से मानो वंचित रखना चाहता था। कहीं कहीं एक दो तारे टिम टिमा रहे थे, मानो यही सूचना दे रहे थे कि धर्म का प्रकाश तो अब कहीं दो चार जगहों पर ही रह गया है। अन्यत्र तो सर्वत्र पाप का अंधकार छा गया है। जब कोई भयंकर विपत्ति आती है, तो प्रकृति पूर्व ही सूचित कर देती है।

बिश्नोइयों की जमात रात्रि में सो नहीं सकी। किन्तु वह गिरधरदास अपनी योजना को प्रात: काल ही सफल करने के लिए रात्रि में मंत्रणा कर के सो गया। बिश्नोई लोग भी पूरी रात्रि मंत्रणा करते रहे। प्रात: काल ही वह दुष्ट अपना सम्पूर्ण बल लगायेगा और निश्चित ही पेड़ काटेगा। हमें किस तरह से उसका सामना करना है ? कैसे रूंखों की रक्षा करनी है ?

रात्रि में पंचायत ने यही निर्णय लिया कि हम लोग प्रजा हैं। यह राजा का सैन्यबल है। इन लोगों के पास सैन्य बल है। इन लोगों के पास शस्त्र हैं। हमारे पास तो कुछ भी नहीं है। यदि हम इनके साथ युद्ध करते हैं

तो जीत नहीं सकते। हिंसा से तो हिसा अधिक ही होगी। गुरु जाम्भोजी ने कहा है कि "जे कोई आवै हो हो करता आपजै हुइये पाणी''' यदि हम लोग इसी सिद्धान्त को अपनायें, तभी सफल हो सकते हैं। इसीलिए जब प्रात: काल जब वह भंडारी रूंख कटवाना प्रारम्भ करे, तब जितने भी रूंख काटने वाले इकट्ठे लोग रहेंगे और अलग-अलग पेड़ों को काटेंगे, तो उतने ही लोग आकर रूंखों से चिपक जायेंगे। शरीर कटा देंगे किन्तु रूंख नहीं कटेंगे। किसी प्रकार का सामना नहीं करना है। मन में सहनशीलता धारण करनी होगी। कहीं ऐसा न हो कि आप लोग अत्याचार देख कर उत्तेजित हो जायें और युद्ध कर बैठें। यदि ऐसा किसी को करना है, तो वे कृपया पीछे हट जायें। प्रथम शांति से कार्य करें।

प्रात: काल भगवान् भास्कर ने प्रथम किरणों को प्रसारित किया। सभी संसार के प्राणी सूर्यदेव को प्रणाम करते हुए अपने अपने कार्य में प्रवृत्त हुए आज बिश्नोइयों की जमात का सदा की भांति कार्य नहीं था। कुछ विशेष कार्य करने जा रहे थे। ब्रह्ममुहूर्त में ही उठ कर सदा की भांति जाम्भोलाव तथा गंगाजल में स्नान किया। संध्या- वंदन, हवन आदि कार्य संपन्न कर के परमात्मा का ज्योति रूप में दर्शन किये। सूर्योदय के साथ ही भगवान् मरिचि मालिनी को प्रणाम किया।

उधर सूर्योदय पर भण्डारी तथा उनकी सेना उठी और उठते ही अणदे के घर के सामने हरी-भरी खेजड़ी के वृक्ष पर दृष्टि लगाई तथा इधर उधर घनी बनी देखकर वहीं से काटने का विचार किया। अच्छा मौका देखकर सशस्त्र सैनिकों को रक्षा के लिए तैनात कर दिया और स्वयं भण्डारी तथा राजकर्मचारी कुल्हाड़े लेकर सैकड़ों की संख्या में एक ही साथ वृक्ष काटने लगे। वृक्ष कटने की आवाज जमात ने सुनी जो चौरासी गाँवों से आकर एकत्रित हो चुके थे।

सभी शिक्षित सिपाही की भांति कतार बद्ध होकर खड़े हो गये थे। नारी पुरुष सभी लोग अपना जीवन समर्पण करने के लिए ही तो आये थे। इसी लिए स्वर्ग में जाने के लिए सभी उतावले हो रहे थे। अभी मैं देखता हूँ, अपना सिर कटवा दूँगा, किन्तु दरखत नहीं कटने दूँगा।

भीड़ को नियंत्रित किए हुए चौधरी लोग अपने अपने गाँव से आये हुए खड़े थे। बिना आज्ञा कोई आगे पाँव भी नहीं रख रहा था। जो जिस समय योग्य था, उन्हीं को भेजने की योजना थी। जमात ने देखा कि एक या दो नहीं, सैकड़ों लोग एक साथ वृक्ष काट रहे थे। इसीलिए सभी को एक साथ ही रोकना था। प्रत्येक गाँव के दस पच्चीस आदि संख्या में गाँव की जनसंख्या के अनुसार ही उन लोगों के पास भेजने का निर्णय अति शीघ्रता से लिया गया।

तुरंत चौधरियों से आज्ञा पाकर विष्णु को हृदय में धारण कर के जिभ्या से विष्णु का जप करते हुए गुरु जम्भेश्वरजी को नमन करके वहाँ से एक साथ ही तीन सौ तिरेसठ स्त्री पुरुषों ने प्रस्थान किया और जहाँ पर वृक्ष कट रहे थे, वहाँ जाकर बिना कुछ बोले-सुने निर्भय होकर रूंखों से चिपक गये। वहाँ पर राजकर्मचारी खेजड़ी पर घाव कर ही रहे थे। उसी घाव पर अपने शरीर के अंग हाथ, पाँव, सिर रख दिये। जो चोट पहले लग चुकी थी, आहत हो चुका था, उतनी तो परमात्मा से क्षमा माँगी और आगे के लिए पेड़ों को पूर्णतया सुरक्षित कर दिया।

जो चोट पेड़ों पर पड़ रही थी, पेड़ कट रहे थे। वो चोट अब शरीरों पर पड़ रही थी। शरीर बिना कुछ हुंकार किए ही झेल रहे थे। इस बलिदान यज्ञ में सर्वप्रथम आहुति देने का श्रेय एक कुंवारी कन्या अमृता देवी को मिलता है। इसके पीछे उनकी अन्य बड़ी बहने दामा, चीमा को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इन कन्याओं की बहादुरी देख कर उनकी माँ कान्हा कालीरावणी ने भी पीछे रहना ठीक नहीं समझा। वह भी अपने शरीर

के अनेक टुकड़े करवा कर के स्वर्ग गति को प्राप्त किया।

पुरुषों में सर्वप्रथम अणदोजी, विरता वणियाल, चाचोजी, ऊदोजी,कान्होजी तथा किसन जी ने अपने प्राणों की आहुति खेजड़ी वृक्ष रक्षार्थ दी। इनके पीछे तो तांता ही लग गया था। एक ही क्षण में यह घटना घटित हो गयी। इसके बाद तो लोग सचेत हो गये थे। पीछे कुछ उत्साही नवयुवक गर्मदल के भी तैयार खड़े थे। किन्तु उनको तो दो हाथ दिखाने का मौका ही नहीं मिला था। सभी के देखते ही देखते तीन सौ तिरेसठ शरीरों के एक साथ हाथ-पाँव, सिर, धड़ आदि के टुकड़े टुकड़े होकर धरती पर गिरने लगे। खून से धरती लाल हो गयी।

भण्डारी गिरधरदास ने जब तक रोकने का आदेश नहीं दिया, तब तक वे कर्मचारी शरीर के टुकड़े करते ही रहे। तीन सौ तिरेसठ शरीरों के न जाने कितने टुकड़े उन दया हीन जनों ने किये होंगे उसका कोई अन्तपार नहीं है। जब वे कर्मचारी एक-एक शरीर को काट चुके थे फिर मुड़ कर पीछे देखा तो एक या दो नहीं, हजारों की संख्या में लोग खड़े हैं। कहाँ तक काटोगे ? ज्यूं-ज्यूं काटोगे त्यूं-त्यूं ही उन लोगों में जोश दुगुना-चौगुना होता जायेगा।

कर्मचारी लोगों ने तो वृक्ष काटने से साफ इंकार कर दिया। कुल्हाड़ी फेंक कर जोधपुर की तरफ ही भाग खड़े हुए सैनिकों ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। आते समय भण्डारी सब से आगे आया था, किन्तु जाते समय हारा हुआ उदास मन से पीछे-पीछे भागता हुआ किसी प्रकार से जोधपुर नरेश को समाचारों से अवगत करवाया।

अभयसिंह से बधाई लेते हुए कहने लगा- हे महाराज! ये तुम्हारे सैनिक तथा कर्मचारी पहले ही कायर पड़ गये। इनका दिल कमजोर है। यदि ये लोग साथ देते, तो मैं अवश्य ही कार्य सिद्ध करके आता। अब तक कुछ सैकड़ों राज विद्रोहियों का सफाया किया है और यदि थोड़ी देर तक ये सैनिक न भागते, तो मैं सदा के लिए आपका नाम रोशन कर देता। यहाँ पर लाशों एवं दरखतों का ढेर लगा देता।

अभय सिंह ने आश्चर्य प्रगट किया और भण्डारी को पुरस्कार के बदले दण्डित किया और उसे पद से हटा दिया और कहा- रे दुष्ट! यह पाप तुमने किया है किन्तु मेरे शासन अधिकार में हुआ है इसलिए इसके फल का भागी तो मैं ही हूँ। एक तो वो लोग है जो वृक्षों के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे रहे थे एक तूं है जो उनके प्राणों को लेने के लिए तैयार हो गया। अरे निर्दयी! कुछ तो दया करनी सीखता। तेरा हृदय कठोर पत्थर सदृश है, तूं क्या सिखेगा? इस प्रकार से कठोर वचनों से प्रताड़ित किया तथा अभयसिंह स्वयं पश्चाताप की आग में जलने लगा।

विक्रम संवत सत्रह सौ सतियासी में भादवा सुदी दसमी मंगलवार को यह घटना घटित हुई थी। उस समय की प्रात: काल की वेला में ही आमने सामने आकर खड़े हो गये थे प्रथम तो हरे वृक्ष काटने प्रारम्भ भंडारी ने ही किये थे। उनका अनुसरण उनके कर्मचारियों ने किया था। भंडारी के चले जाने के पश्चात उन मृत शरीरों का क्रियाकर्म किया।

तथा बिश्नोईयों की जमात ने हार-जीत का निर्णय किया कि आखिरकार जीत तो हमारी ही हुई है। इतने लोगों के सिर कट जाने पर भी रूंखों की रक्षा तो हो ही गयी। यदि सिर साटै रूंख रहै तो भी सस्तो जांण'' इन रूंखों की रक्षा सदा के लिए हो गयी यह कोई छोटी बात नहीं है। यह जीवन धर्म के कार्य में आ जाये, तो जीवन सफल है। एक दिन तो इस शरीर को तो जाना ही होगा।

अभय सिंह को न तो दिन में चैन था न ही रात में। आखिर हार कर अपना दु:ख हलका करने के लिए

एक दिन खेजड़ली गाँव में आया और उस जगह को देखा जहाँ धरती खून से लाल हो गयी थी। उन मृत आत्माओं को प्रणाम किया और उन्हें तथा उनके माता-पिता उनके गुरु को प्रणाम किया तथा बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

बिश्नोइयों की जमात में जाकर अपने सिर की पगड़ी जमात के चरणों में रख दी और प्रार्थना करते हुए कहा- यह मेरा सिर आपके चरणों में है। चाहे आप इसे उतारें या छोड़ें? मैं आपका अपराधी हूँ, मैं जब तक जीवित रहूँगा, तब तक पश्चात्ताप की आग में जलता रहूँगा। आप न्यात गंगा के समान पवित्र हैं। मुझे उबार सकती है।

बिश्नोइयों की जमात ने अभयसिंह को क्षमा करते हुए कहा- जिन लोगों ने रूंखों की रक्षा के लिए बलिदान किया है, उनका आप और हम यही उपकार कर सकते हैं कि फिर कभी आपके राज्य में कोई इस प्रकार से रूंख नहीं काटे। और जो कोई चोरी से काटे, तो आप उसे दंडित करें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अभयसिंह ने उनकी यह बात स्वीकार करते हुए उन बिश्नोइयों को पक्का पट्टा लिखकर दिया और साथ ही भविष्य में पुन: ऐसी घटना तो क्या? कोई एक पत्ता भर नहीं काट सकेगा। इस वन को पुन: हरा-भरा बनाऊँगा तथा नये-नये वृक्ष लगाऊँगा ऐसी क्षमा याचना करते हुए अभयसिंह वापिस जोधपुर पहुंचा और अपने राज्य में हरे वृक्षों की रक्षा तथा जीव रक्षा का नियम बना दिया था। उसका पालन कड़ाई से होता था।

तत्कालीन लेखकों ने बिश्नोई समाज की उपेक्षा की थी तथा अभी भी करते चले आ रहे हैं। इसीलिए यह घटना इतिहास में अपना स्थान नहीं पा सकी। इस समय पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है। इसे कैसे बचाएँ इसके लिए तो प्रयत्नशील हैं। किन्तु इस बलिदान घटना को महत्व कम ही दिया जा रहा है। यदि इस घटना को समाज में उजागर किया जावे, तो भारत में गाँवो की जनता इससे प्रेरणा लेकर हरे वृक्षो के महत्व को समझेगी।

बहुत वर्षो तक यह बात उजागर नहीं हो सकी, क्योंकि केवल जाम्भाणी साहित्य तक ही सीमित रही। दुर्भाग्यवश जाम्भाणी साहित्य पढने का कष्ट उन विद्वानों, इतिहास लेखकों ने नहीं किया। बिश्नोई तो कृषक समाज होने से अनपढ था। वह इस बात को जन-जन तक कैसे पहुँचाये कोई उपाय नहीं दिख रहा था।

अभी ही कुछ वर्षो से आधुनिकता की लहर में कुछ बिश्नोई भी पढ लिख कर जाग्रत हुए किन्तु साहित्य के प्रचार-प्रसार में नगण्य है। इस समय दुनिया में पर्यावरण प्रदूषित हो जाने से त्राहि त्राहि मची हुई है। सभी के प्राण घुट रहे है। अंतिम अवस्था में पहुंच चुके हैं। ऐसी अवस्था में खेजड़ली का बलिदान मानव समाज को प्रेरित करने में बहुत बड़ा सहयोगी हो सकता है। यदि हम उसे प्रचारित करते हुए घर घर पहुँचाने का प्रयास करें। यह कार्य करना ही धार्मिकता है क्योंकि यह सभी कुछ सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय है।

तारोजी भक्त द्वारा जीव रक्षा

तारोजी भक्त सदा ही संध्या, वंदन, स्नान, ध्यान एवं हवन करके ही भोजन करते थे। सदा ही जिनके यहाँ अतिथि सुभ्यागत का आदर- सत्कार होता था। गुरु जाम्भोजी में पूर्ण श्रद्धा-भक्ति थी। उनतीस नियमों का पालन करने में सदा ही तत्पर रहते थे। जीवों पर दया भाव ही अपना परम धर्म समझते थे । वे तो एक सच्चे बिश्नोई ही थे।

उस समय वि.सं. उन्नीस सौ के लगभग की बात है, जब बिश्नोई लोग राजस्थान की मरुभूमि से उठकर ''जहाँ बूठो तहां बाहिये'' की नीति अपनाते हुए पंजाब में जाकर बस गये थे। इधर तो राजपूतों का राज्य था, किन्तु मरुभूमि से बाहर वर्तमान हरियाणा पंजाब में अंग्रेजों का राज था। अंग्रेज तथा मुसलमान इन दोनों से बिश्नोई लोग पीड़ित थे। धर्म की रक्षा करने में कठिनता हो रही थी, परन्तु फिर भी अपने धर्म पर डटे हुए थ।

राजपूताने के लोग तो बिश्नोइयों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म-कर्म के बारे में जानते थे, किन्तु अंग्रेज लोग राजमद में अंधे हो गये थे। वे कब किसी हिन्दुस्तानी की परवाह करने वाले थे। जो भी मन में आया वही अत्याचार प्रजा पर करते थे।

इधर हांसी हिसार के आस पास बिश्नोइयों की बस्ती थी। वहीं पर शीशवाल गाँव में तारोजी राहड़ भी रहा करते थे। एक समय तारोजी अपने खेत में कार्य कर रहे थे। उसी समय ही उनके आस पास हरिणों की टोली निर्भय होकर विचरण कर रही थी। पशु भी तो प्रेम भाव को पहचानते हैं। हिंसक तथा अहिंसक का भेदभाव समझते हैं। जहाँ शिकारी लोग बसते हैं, वहाँ हरिण पलायन करके, जहाँ दयावान लोग बसते हैं, वहाँ आकर विचरण करने लग जाते हैं। ऐसा ही दृश्य वहाँ तारो जी के आस पास का था।

एक बार हरिणों का शिकार करने के लिए अंग्रेज अफसर इधर-उधर भटकता हुआ बिश्नोइयों के गाँव शीशवाल में पहुँच गया। क्योंकि अन्यत्र तो शिकार मिलनी दुर्लभ थी। वे दुष्ट लोग पहले ही खा चुके थे। कुछ बचे हुए इधर बिश्नोइयों की शरण ग्रहण की थी। इसलिए वह अंग्रेज अफसर भी उन हरिणों के पीछे-पीछे शीशवाल तक पहुँच गया था। बिश्नोइयों के गाँवो में निर्भय होकर विचरण करते हुए उन्होंने देखा तो आश्चर्यचकित हो गया और तुरंत बंदूक भर के हरिण के ऊपर गोली चला दी। वह गोली हरिण को नहीं लगी।

उसी समय ही तारोजी अपने खेत में कार्य कर रहे थे, ज्योंही बंदूक की आवाज सुनी, त्योंही आगे बढ़ कर झट उस अफसर को रोक दिया। कहने लगे रुक जाओ, फिर गोली नहीं चलाना। वह तनिक रुक कर तारे को डाँटते हुए कहने लगा- दूर हट जाओ! मेरा शिकार जा रहा है। यदि उसमें विघ्न डाला, तो मैं तुझे भी उसी गोली का शिकार बना दूँगा।

तारे ने मृत्यु को सामने खड़ी देखी थी। फिर भी कुछ भी परवाह नहीं की और पुन: उस अंग्रेज को रोकते हुए अति निकट पहुँच गये। वह तो मदान्ध था। किसी भारतीय को क्या समझता था ?

झट से दूसरी गोली चला दी। ज्योंही उस अफसर ने घोड़ा दबाया, बंदूक की आवाज गुंजायमान हुई त्योंही तारे भक्त ने अपनी लाठी का प्रयोग अंग्रेज ऊपर कर दिया। लट्ठी लगते ही अंग्रेज धरणी पर गिर गया। हरिण तो वन में भाग चुका था। हरिण की रक्षा हो गयी। अपने सामने हत्यारे से बचा लिया और एक ही चोट से उस अफसर को धूल चटा दी।

वह तो वहाँ से चुपके से उठ कर अपने घोड़े पर सवार होकर वहाँ से भागा और हाँसी जाकर ही दम लिया। तारो अपने खेत में अपना कार्य करने लग गया। उस अफसर ने हांसी जाकर तुरंत ही तारे की गिरफ्तारी का वारंट जारी करवा दिया। दूसरे दिन ही पुलिस वारंट एवं हथकड़ी लेकर शीशवाल में तारे के पास पहुँच गयी। और बंदी बना कर हांसी जेल में डाल दिया। न तो कोई फरियाद करने वाला ही था और नहीं कोई सुनने वाला ही था। जेल में पड़े हुए भगवान् गुरु जाम्भोजी का ही स्मरण करते रहे।

जब भोजन का समय आया, तब नौकर भोजन लेकर उपस्थित हुआ, तब तारोजी ने भोजन करने से मना कर दिया। जेल अफसर ने आकर पूछा– क्या बात है ? आप भोजन नहीं करेंगे ? तारो जी ने कहा– मैं गुरु जाम्भोजी का शिष्य बिश्नोई हूँ। प्रथम तो स्नान, फिर संध्या, उसके बाद हवन करके, फिर भोजन करूँगा। जब तक ये नियम नहीं निभेंगे, तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा। जेल अधीक्षक ने समझाया कि इस प्रकार से तो तुम भूख मर जाओगे। तुम्हें पता है कि तुम्हारे जुर्म के अनुसार तुम्हें सात महीने की जेल हो गयी है। यदि जिंदा रहना है, तो खाना ही होगा। अन्यथा सात महीने भूखे तो जीवित नहीं रह सकोगे।

सात महीने ही क्यों ? चाहे सात साल भी मुझे जेल में रहना पड़े किन्तु मैं अपने धर्म को नहीं तोड़ सकता। यदि आप मुझे भोजन करवाना चाहते हैं, तो मुझे मेरे धर्म–कर्म पूर्णतया निभाने दीजिये। जेल अधिकारी ने अपनी असमर्थता प्रगट कर दी, तो तारोजी ने भी अपनी असमर्थता प्रगट कर दी। इस प्रकार से तारोजी ने सात दिन रात भूखे ही जेल में रह कर व्यतीत कर दिये। अधिकारियों ने सजग होकर पहरा देकर अच्छी प्रकार से जांचा और परखा था। सातवें दिन गुरु महाराज की कृपा से जेल के ताले खुल गये और सातवें दिन बाहर आ गये। धर्मो रक्षति रक्षितः '' आप धर्म की रक्षा करोगे, तो धर्म आपकी रक्षा करेगा।

अंग्रेज अफसरों को भी तारोजी की दृढता के सामने झुकना पड़ा। और कभी भी बिश्नोइयों के गाँवो में शिकार खेलना छोड़ दिया। अंग्रेज सरकार ने अनेकों प्रमाण पत्र भी लिख कर दिया था, जो अब भी मौजूद है। यह सभी कुछ बिश्नोइयों की धर्म परायणता औ जीव रक्षा से ही संभव हुआ था।

जोधपुर नरेश तख्तसिंह का ताम्र पत्र

वि.सं. उन्नीस सौ में जोधपुर के राजा तख्तसिंह थे। उन्हीं राजा के यहाँ सिद्धि नाम का सेवक था, जो राजा का अति विश्वसनीय था। अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से राजा को अपने वश में कर के स्वकीय स्वार्थ सिद्धि कर लिया करता था।

एक समय शिकार करने के शौकीन सिद्धि साहब जोधपुर से निकले थे। अन्यत्र तो शिकार मिलना दुर्लभ था, क्योंकि हिंसक जन पहले ही चट कर चुके थे। वह भटकता हुआ जोधपुर के पास ही बिश्नोइयों के गाँव हिंगोली पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा कि हरिणों की तो अनेक टोलियाँ विचरण कर रही थी। उसने हिंगोली गाँव के पास जाकर डेरा डाल दिया और वहीं पर प्रतीक्षा करने लगा। सिद्धि के देखते ही देखते एक हरिणों की टोली निर्भय होकर जल पीने के लिए आयी। और तालाब का स्वच्छ जल पीकर पुनः वन की तरफ जाने लगी, तो सिद्धि ने तुरंत एक हरिण पर गोली चला दी। सिद्धि को तो कुछ भी डर नहीं था किन्तु वह प्रथम गोली चूक गया था, वह हरिण को नहीं लगी। किसी प्रकार बंदूक की आवाज सुन कर हरिण तो वन की तरफ छलांग लगाते हुए आँखो से ओझल हो गया था। दूसरी गोली भर कर सिद्धि अखाड़े में तैयार

होकर बैठा ही था। उसी समय ही गोली की आवाज सुन कर बिश्नोई लोग अपने अपने घर से लाठियाँ लेकर अकस्मात् निकल आये। और आगे आकर तालाब की पाल पर देखा कि एक शिकारी बैठा हुआ है। किसी हरिण को मारने की ताक में है।

तुरंत एक व्यक्ति ने जाकर सिद्धि साहब को सूचित करते हुए ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए, एक लट्ठी की चोट जड़ दी। सिद्धि उन लोगों के क्रोध की स्थिति को देख कर वहाँ से किसी प्रकार से जान बचा कर भागा। बिश्नोई लोग भी अपना कार्य सफल हुआ मानते हुए अपने घरों को लौट गये।

सिद्धि चोट खाकर सीधा जोधपुर दरबार में राजा तखतसिंह के पास पहुँचा और जाकर अपनी व्यथा कथा बढा-चढा कर सुनाई। अनेकों प्रकार से बिश्नोइयों की निंदा की गयी और कहा गया कि वे लोग आज कल बहुत ज्यादा इतरा रहे हैं। राजकीय आज्ञा का भी उल्लंघन करने लग गये हैं। यदि आप स्वयं जाकर उन लोगों को सबक नहीं सिखायेंगे तो हो सकता है वे लोग आप के ही हाथ से ही निकल जाय, इसलिए समय रहते उनसे निपटना आवश्यक है।

राजा के सामने अपनी चाटुकारिता का प्रदर्शन भी इस प्रकार से किया। उन सिद्धि की बातों पर राजा ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और कहा- कभी मैं देखूँगा। ऐसा कहते हुए राज्य कार्य में निमग्न हो गये। एक दिन पुन: पिछली बात याद दिलाते हुए कहा- महाराज! आप तो राजा हैं। शिकार खेलना आपका धर्म है। कभी कभी मनोरंजन के लिए भी ही सही अवश्य ही वन में चलना चाहिये। शिकार सुलभ करवाना तो आपके सेवक का कर्तव्य है। आप नि:संकोच होकर मेरे साथ चलिये।

ऐसा कहते हुए राजा को उस दुष्ट ने मनाकर तैयार कर लिया और दूसरे दिन प्रात: काल ही चलने की तैयारी की। जब नगर से बाहर जाने लगे तब मंत्री महोदय ने पूछ लिया कि महाराज! आज इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हैं? सिद्धिं साहब ने आगे बढ़कर कहा-

महाराज शिकार खेलने के लिए मेरे साथ जा रहे हैं। जा तो रहे हैं, सो ठीक है, किन्तु कहाँ जा रहे हैं? जरा बतलाओ तो सही मैं भी सुनूँ। सिद्धि ने कहा- हम बिश्नोइयों के गाँवो में हिंगोली जा रहे हैं। वहाँ पर एक ही जगह पर हरिणों की टोली मिलेगी। राजा साहब को मैं खूब शिकार खिलाऊँगा। आप लोग निश्चिंत रहिये। मंत्री ने राजा साहब को संबोधित करते हुए कहा-

हे राजन! आप यदि इस अवस्था में हिंगोली जा रहे हैं तो वापिस घोड़े पर सवार होकर तो नहीं आ सकोगे। जीवित या मृत चार आदमियों द्वारा चारपाई पर लिटाकर ही लाना होगा। पहले चारपाई तथा आदमियों की व्यवस्था कर के जाइये। ऐसा जोरावर कौन है? जोधपुर नरेश से टक्कर लेगा और जीवित बच जायेगा, नहीं महाराज! कोई राजा नहीं है, किन्तु पीछे नहीं हटेंगे। ये तो स्वयं मर जायेंगे या आपको भी। इसलिए मेरा तो कहना केवल इतना ही है कि आप हिंगोली जा रहे हैं तो अकेले कदापि न जाइये।

राजा वापिस मुड़ गये और सेना को तैयार किया, साथ में दो हजार सैनिक लिए। घोड़ा, पैदल, हाथी द्वारा सजधज कर सेना चली। अनेकों अस्त्र शस्त्रों से सुज्जित होकर सेना चली। मानो किसी राजा पर विजय प्राप्त करने के लिए कूच किया हो अथवा अपने राज्य की सीमा में किसी विरोधी राजा ने हमला कर दिया हो। ऐसी तैयारी को देखते हुए आगे कोई न तो राजा था और न ही विरोधी। वहाँ तो केवल धर्म प्रेमी बिश्नोई थे।

हिंगोली के तालाब पर जाकर तम्बू गाड़ दिये। बिश्नोइयों के घरों के चारों ओर सैनिक पहरा देने लगे। कोई भी व्यक्ति घर से बाहर न निकल पाये। यदि कोई जबरदस्ती से निकलने की कोशिश करे तो उसको गोली मार दो, ऐसी ही राजाज्ञा सैनिकों को दी गयी।

सैनिक आज्ञा का पालन करते हुए अपने अपने मोर्चे संभाल लिये। बिश्नोइयों को घरो में ही कैद कर दिया किन्तु किसी को भी इस बात का पता नहीं चला कि यह क्या और क्यों हो रहा है? राजकीय सेना को देख कर सभी घबरा चुके थे। उन्हें यह तो भय हो गया था कि अब हमारे द्वारा रक्षित हरिणों की रक्षा न हो सकेगी। हो सकता है ये लोग इसी कार्य के लिए ही आये हों, तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। हम कर भी क्या सकते है? हमारे हाथ पाँव तो बंध चुके हैं। शरीर निष्क्रिय हो चुका है। किन्तु फिर भी मन तो अब भी आजाद है, क्यों न सभी मिलकर हरि-कीर्तन करें, भगवान् विष्णु का नाम स्मरण करें। इस पंथ के रखवाले तो गुरु जाम्भोजी ही हैं। सभी ने अपने-अपने स्थानों में भगवान् का ही स्मरण किया।

सुबह से लेकर दोपहर तक तो इस प्रकार से घेरा लगा ही रहा। उधर सिद्धि और तख्तसिंह तालाब पर छिप कर अखाड़े में बैठ गये। मृग की प्रतीक्षा करते रहे। दोपहर दिन में एक मृगों का झुंड पानी पीने के लिए मस्ती के साथ उछल-कूद करता हुआ आया। दूर से आते हुए सिद्धि ने देखा और राजा को बतलाया, कि देखिये महाराज! अब अपने को यहाँ पर आने का कार्य सिद्ध होने वाला है। जिसकी हम प्रतीक्षा कर रहे है, वही मृगों की डार आ रही है। आप सचेत हो जाइये।

नरेश तख्तसिंह ने देखा कि सचमुच में ही सौंदर्य के प्रतीक प्रकृति का जीता जागता नमूना आ रहा है। इतने एक साथ और निर्भय युक्त हरिण तो राजा ने पहली बार ही देखा था। आँखे सौन्दर्य की ग्राहक होती हैं। जब उन्हें इच्छित स्वरूप मिल जाये तो फिर अपलक दृष्टि से ही निहारती हैं। आँखे तो आँखे ही हैं। वह चाहे राजा की हो चाहे भिखारी की हो।

मृगों के समूह ने तालाब में आकर भरपूर जल पिया और जुगाली करते हुए आगे-पीछे कतार लगाये हुए ज्योंही तालाब से बाहर निकले, त्योंही उस द्वारा प्रेरित राजा ने पिछले हरिण पर गोली चला दी किन्तु देव योग से कुछ ऐसी करामात हुई की गोली खाली चली गयी और हरिण चौकड़ी भरते हुए आँखो से ओझल हो गया।

राजा भी पीछा छोड़ने वाला कहाँ था? इसीलिए तुरंत घोड़े पर सवार होकर हरिणों का पीछा किया। हरिणों को घोड़ा कहाँ पहुँच सकता था। फिर भी पहुँचना आवश्यक था। इसीलिए घोड़े के चाबुक मारा और घोड़ा ज्योंही छलांग मारने लगा, त्योंही घोड़ा और तख्तसिंह दोनों ही धरती पर लेटने लगे। घोड़ा तो बच गया था, चोट नहीं आयी, क्योंकि वह तो बिल्कुल ही निर्दोष था, वह तो अपने जातीय जीव को बचाना ही चाहता था, परन्तु लाचारी वश कर ही क्या सकता था?

तख्तसिंह नीचे गिर कर बेहोश हो चुका था। जब होश आया तो हाथ कंधे से टूट चुका था। गुरु जाम्भोजी ने ही तख्तसिंह को सचेत किया था, उन्होंने ही यह शिक्षा दी थी कि हे राजन! यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम स्वयं तो ठीक ही मालूम पडते हो, किन्तु दूसरों के बहकावे में आकर इस प्रकार से पाप कर्म करने को तत्पर हो जाते हो। इसीलिए ही तुम्हारे लिये यह दण्ड दिया गया है।

राजा दण्ड पाकर सचेत हुआ और सैनिकों को आज्ञा दी कि वापिस जोधपुर चलो। फिर कभी ऐसा कार्य मैं नहीं करूँगा। गुरु महाराज की कृपा से बिश्नोई स्वतंत्र हो गये। जो दूसरे के धर्म का भला नहीं चाहता, उसका भला कैसे हो सकता है?

तख्तसिंह ने बिश्नोइयों को अपने पास बुलाया और उन्हें यथा योग्य वस्त्र, आभूषण, भूमि, रुपये प्रदान करके सम्मानित किया और उनसे पूछा कि आप लोगों को कोई तकलीफ हो तो आप लोग मुझ से अवश्य ही कहिये। मैं दूर करूँगा। आपके धर्म पालन की दृढता से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। मैं भी आपके धर्म

पालन में सहयोगी बन कर कुछ प्रायश्चित करना चाहता हूँ।

बिश्नोइयों ने कहा- महाराज! प्रथम तो हमारे सभी लोगों की शुभ कामनाएँ आप के साथ रहेगी और जाम्भोजी भगवान् की अपार कृपा भी होगी। इससे आप का हाथ पुनः ठीक हो जाये। तथा यहाँ पर हरे वृक्ष एवं वन्य प्राणियों को सदा ही खतरा बना रहता है, इन्हें बचाने के लिए हमें सदा ही संघर्ष करना पड़ता है यदि आप राजकीय सहयोग प्रदान कर सके तो वह कार्य सुलभता से हो सकता है। तख्तसिंह ने बिश्नोइयों से आज्ञा ली और जोधपुर जाकर ताम्र पत्र लिखवा कर बिश्नोइयों को दिया, जिसका विवरण इस प्रकार से है- ''श्री परमेश्वर जी सत्य छै''

श्री राज- राजेश्वर महाराजाधिराज श्री तख्तसिंह जी वचनात थापन बिश्नोइयां रा गाँवाँ री सींव में नीली खेजड़ी कोई बाढण पावै नहीं, सिकार खेलण पावै नहीं, कोई नीली खेजड़ी बाढसी, सिकार खेलसी सो दरबार रो गुनैगार होसी। संवत उन्नीस सौ वैशाख बदी एक गढ जोधपुर।

इतनी प्रतिज्ञा करने वाले तख्तसिंह का हाथ पुनः जैसा था, वैसा ही जुड़ गया। राजा प्रजा ने आनंद मंगल से अपने जीवन को व्यतीत किया।

सन् 1857 के सैनिक विद्रोह में गो रक्षा

सन् अठारह सौ सत्तावन में अंग्रेज शासन के विरोध में भारतीय जन मानस में बहुत बड़ा उफान आया था। देश की आजादी के लिये देश भक्तों ने बिगुल बजाया था। उसमें कामयाबी तो पूर्णतया नहीं मिल सकी थी, फिर भी आजादी के बीज तो बोये जा चुके थे। वही पौधा कालांतर में फलीभूत होता हुआ सुमधुर फलदायक बना था।

उस समय जाम्भोजी के चेले वर्तमान के हरियाणा में बसते थे। जाम्भोजी ने भ्रमण काल में पूर्व ही घोषणा कर दी थी कि इधर उत्तर की तरफ किसी समय में आप बिश्नोई लोग बसेंगे। जब अठारह सौ सत्तावन की गदर मची थी तब बिश्नोई लोग हरियाणा में हिसार एवं हांसी के इलाके में बसते थे। वहाँ पर उस क्षेत्र में ही मुसलमान भी बहुतायत से रहते थे। कभी कभी हिन्दू मुसलमानों में आपसी तकरार हो जाया करती थी। किन्तु उस गदर के अवसर पर तो राजा का शासन डोल चुका था। कुछ मनचले लोग अपनी मनमानी करने लग गये थे।

मुसलमान हिन्दू धर्म को आहत करने के लिए गो हत्या जैसा घोर अपराध करने लग गये थे। उन्हें रोकने की किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। हिन्दू धर्म के रक्षक तो बिश्नोई ही हो सकते थे। असली हिन्दू धर्म के प्रहरी तो बिश्नोई ही थे। क्योंकि बिश्नोई स्वयं गोपालक स्वयं शक्तिमान जाम्भोजी की कृपा से ओत प्रोत थे। बिश्नोई गाँवो में बसते थे। वे सभी एक जुट होकर एक दूसरों के लिये भलाई करने के लिए गोपालन तथा खेती करते हुए अपने आप में समर्थ थे। अपनी रक्षा के लिये किसी के आगे जाकर रक्षा के लिये भीख माँगने की आवश्यकता नहीं थी।

आदमपुर, सदलपुर, चीदड़ा, बड़ोपल, धांगड़ आदि बिश्नोइयों के गाँव थे। उस समय चींदड़ा के तालाब पर मुसलमानों की खेड़ पलटन पड़ी थी। एक थके हुए, चिल्लाते हुए, क्रंदन करते हुए, एक सांड को

मार रहे थे। और पाँच ओर भी बंधे हुए थे। यह अन्याय सहन करने योग्य कदापि नहीं था। सामो ने यह घटना आदमपुर जाकर बिश्नोइयों की जमात को सुनाई। सामों की बात सुन कर बिश्नोईयों के रोंगटे खड़े हो गये। उसी समय जो जहाँ पर था, वहीं से रवाना होकर धर्म की रक्षार्थ सांड (वृषभ) को छुड़ाने के लिए तैयार हो गये।

बिश्नोइयों की सेना जब चिंदड़ के तालाब पर पहुँची तो आगे अनेको मुसलमान एकत्रित थे। वे अपना भोजन गो हत्या द्वारा प्राप्त कर रहे थे। बिश्नोइयों ने दूर से ही उनको ललकारा और सावधान होने की चेतावनी दी। यदि आप लोगों को जीवित रहना है, जगत में जीना है, तो इन साँडों को छोड़ दीजिये। अन्यथा जैसा आप लोग इन निरीह जानवरों को मार रहे हैं, वही दशा तुम्हारी होगी।

वे मदमस्त लोग कहाँ बिश्नोइयों की चेतावनी सुनने वाले थे। दोनों और भयंकर युद्ध हुआ। आखिर में उन विधर्मियों, गो हत्यारे लोगों को मैदान छोड़ कर भागना पड़ा था। धर्मो रक्षति रक्षितः धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी भी रक्षा करेगा।

वहाँ से भागकर वे मुस्लिम अपने जाति भाइयों के पास पहुँचे और अपनी दुर्दशा का वर्णन किया। उन लोगों ने जगह जगह पर कागज लिख कर भेजा और अपने जमाती लोगों को एकत्रित किया। उन विधर्मियों एवं जाम्भाणों के साथ इसी बात को लेकर सदलपुर, आदमपुर, शीशवाल आदि स्थानों पर भयंकर युद्ध हुआ। आखिर विजय जाम्भाणों की हुई थी।

आखिर में मुसलमानों को ही मैदान छोड़ कर पलायमान करना पड़ा था। इस प्रकार से वह आया हुआ विपत्ति काल धीरे धीरे शांत हुआ था। संभवतः इस घटना से प्रभावित होकर अंग्रेजो ने आदेश पत्र (परवाने) लिख कर दिये थे, जिनमें पूर्णतया बिश्नोइयों की सीमा में वन्य जीव रक्षा क्षेत्र तथा हरे वृक्ष रक्षा का केन्द्र घोषित किया था।

उन्हें मालूम था कि यह ऐसी शूरवीर कौम है, जो या तो अपने धर्म की रक्षा करने के लिए स्वयं मर जायेंगे या किसी अन्य को ही मार डालेंगे। इसीलिए ही प्रमाण पत्र लिख कर दिया तथा प्रचारित किया था। शिकारियों को बिश्नोइयों के गाँवों से दूर रहने का सख्त आदेश दिया था। वह पत्र निम्नलिखित प्रकार से है- पत्र इस प्रकार से अंग्रेजी में था उसका अनुवाद हिन्दी में इस प्रकार से है-

जनाब डिप्टी कमिश्नर साहिब बहादुर सी एम किंग एस्कवायर जिला फिरोजपुर बनाम तहसीलदार साहिब तहसील फाजिल्का। जो चिट्ठी चीफ सैक्रेटरी गवर्मेंट पंजाब मवर्खे 13 फरवरी सन् 1896 के हवाले से है।

सरिश्ते हाजा से वजरिये तहरीर नं. 185 मवर्खे 8 जुलाई 1896 ई. आपके नाम दरबारे शिकायत रहने वाले 16 गाँव बिश्नोइयों के निश्वत मुलाजीमान फौज है कि वह अकसर दंगा फसाद को आमादा हो जाते हैं तथा मजहबी ख्यालात को सदमा पहुँचाते हैं और नजर हिकारत से देखते हैं। जिससे गाँव वालों को मौका शिकायत का होता है। इसीलिए मैं फिर से उसकी तरफआपकी तवज्जह दिलाता हूँ कि कमिश्नर साहिब बहादुर ने आम हुकमजारी कर दिया है कि बिश्नोइयों के गाँव में चारिन्द पारिन्द जानवरों को कोई शिकार न करे। इसी प्रकार का यह दूसरा आदेश पत्र भी उपलब्ध हुआ है। इस युद्ध में विश्नोईयों के केवल तीन व्यक्ति शहीद हुए थे तथा उन विधर्मियों के तीन सौ व्यक्ति मारे गये थे।

अज्ञात शहीदों का स्मरण

12 अप्रेल सन 1947 में गुड़ा मालानी गाँव के चिमनाराम पुत्र गोरखाराम ने हरिणों की रक्षा करते हुए शिकारियों द्वारा गोली के शिकार हो गये। शिकारी की गोली हरिण के नहीं लगने दी। वह गोली हंसते हुए अपनी छाती पर झेल ली। धन्य है वह वीर बिश्नोई जिन्होंने गुरु महाराज के नियमों का पालन किया और दूसरों के लिये प्रेरणा के स्रोत बने।

इसी प्रकार से उसी गाँव के प्रतापराम ने 12 अप्रेल 1947 में ही उसके साथ ही अपना बलिदान दिया। तथा श्री अर्जुनराम गाँव भक्तासनी ने भी 3 फरवरी 1948 में उसी प्रकार तन मन धन सभी कुछ समर्पण किया।

श्री चूनाराम पुत्र श्री हरदान रोहिचा कलां ने भी अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हुए सांसारिक मोह माया को तिनके की भांति तोड़ कर सदा के लिए जन्म मरण के दुख से छूटने का मार्ग अपनाया और शहीद हो गये।

भींयाराम पुत्र श्री मालाराम गाँव बनाड़ ने 17 मई 1963 को अपना सर्वस्व हरिणों के लिए व वन्य जीवों के लिये समर्पण किया। हम जियेंगे तो सभी हमारे साथी वन्यजीवों तथा मानवों, वृक्षों को साथ लेकर ही, अन्यथा दूसरों को मार कर या मरते हुए देख कर एक क्षण भी जीवित रहना अच्छा नहीं है। ऐसी भावना से स्वेच्छा से अपना प्राण शिकारियों के सामने प्रस्तुत कर दिया। उन दुष्टों ने हरिण के बदले भींयाराम को लक्ष्य बनाया। इन्हीं सभी महानुभावों को मरणोपरांत राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण जन सहयोग सम्मेलन जोधपुर ने 15 जनवरी 1987 में सम्मानित किया था।

इसी परंपरा की कड़ी में लोहावट गाँव के बिड़दाराम खीचड़ के सुपुत्र बीरबल ने भी अपने प्राणों की आहुति वन्यजीव रक्षार्थ दी थी। 17 दिसम्बर 1977 में प्रात: कालीन वेला घर में आये हुए मेहमानों की सेवा से शुद्ध हुई आत्मा ने, परमात्मा ने मिलन किया था। बीरबल को किसी ने जबरदस्ती नहीं भेजा था। वह तो हरिण को छटपटाते हुए देख कर सहसा दौड़ पड़े थे और जीव रक्षार्थ अपना बलिदान दे दिया था। गुरु महाराज के वचन हृदय में धारण कर रखे थे, 'साहिल्या हुआ मरण भय भागा''

वृक्ष ही जीवन है

इस जमाने की सब से बड़ी समस्या मानव के सामने पर्यावरण प्रदूषण की है। जीवन जीने के लिए हमें श्वास चाहिये। एक क्षण भी हम बिना श्वास के नहीं जी सकते। वह श्वास हमें बाह्य वातावरण वायु से प्राप्त होता है। वायु को देवता कहा गया है। वायु हमें प्राण देता ही रहता है। उसके बदले में हम से कुछ मांगता नहीं है।

इस वायु को हमने क्या दिया ? और तो कुछ भी नहीं दे सके, दुर्गन्धी तो अवश्य ही दी है। शुद्धता को तो हमने पिया है, उसके बदले में दुर्गन्ध को हमने छोड़ा है। अच्छी वस्तु को हम लोग शरीर की ऊर्जा के रूप

में ग्रहण करते है। और उसे विकारमय कर के बाहर निकाल देते हैं। वही वायु में फेल जाती है। इस प्राकृतिक नियम की भी तो सीमा होती है। किन्तु इस समय सीमा से बाहर हो चुका है। इसीलिए सर्वत्र त्राहि त्राहि मची हुई है। अनेकों प्रकार की बीमारियों एवं दुष्काल आदि चारों तरफसे मानव को त्रस्त कर रहे हैं।

वृक्ष हमारे लिए इसलिए उपयोगी हैं कि बाह्य वातावरण में फैले हुए धुएँ आदि की गैस, दुर्गन्धिमय वायु को ये वृक्ष स्वयं पान कर लेते हैं। उनकी तो ये खुराक हैं और इसके बदले में हमें शुद्ध वायु ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। वह हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी है। उस शुद्ध वायु से ही हमें श्वास प्राप्त होता है। जो वायु वृक्ष छोड़ते हैं। वह तो मानव आदि जीव धारी पी जाते हैं। वह इनकी जीवन शक्ति है। और जो वायु मानव आदि छोड़ते हैं, वह वृक्ष पी जाते हैं। उनके लिये वह जीवनी शक्ति है। इस प्रकार से परस्पर सहयोग से यह जीवन चलता है। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है।

वृक्षों का विनाश हो जायेगा तो सर्वनाश हो जायेगा। हमें मिटना नहीं है, जीना है। स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ा नहीं मारना है। यदि ऐसा किया गया तो हम स्वयं अपराधी होंगे। एक बार यह मानव शरीर प्राप्ति का अवसर मिला है। किन्तु ध्यान रहे, अपराधी को पुन: वही शरीर तो नहीं मिलेगा। उसे अपराध का दण्ड तो अवश्य ही मिलेगा। वहाँ लख चौरासी जीया योनी में भटकना ही हो सकता है। इसलिए इस समय सचेत होने की परमावश्यकता है।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः